Printed & Published by Pt. Ramchandra Sharma at the
Sanatan Dharm Press, Moradabad 1-8-192[illegible]

॥ श्रीहरिः ॥



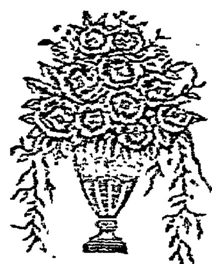
महाभारत–हरिवंश उत्तरार्धकी

विषयसूची

अध्याय	विषय	पृष्ठ

महाभारत हरिवंशपर्वकी विषयसूची समाप्त





॥ श्रीहरिः ॥

महाभारत

हरिवंश-उत्तरार्ध

भविष्यपर्व ३

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥ * ॥

शौनक उवाच । जनमेजयस्य के पुत्राः पठ्यन्ते लौमहर्षणे । कस्मिन् प्रतिष्ठितो वंशः पाण्डवानां महात्मनाम् ॥१॥ एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं परं कौतूहलं हि मे । त्वत्तः कथयतः सर्वं वेद्म्यहं तत् परिस्फुटम् ॥ २ ॥ सौतिरुवाच । पारीक्षितस्य काश्यायां द्वौ पुत्रौ संबभूवतुः । चन्द्रापीडश्च नृपतिः सूर्यापीडश्च मोक्षवित् ३

श्रीगणेशाय नमः । नारायण नरोत्तम—नर और, सरस्वती देवीको प्रणाम करके इतिहास पुराण आदिकी व्याख्या करे * शौनकने कहा, कि–हे लोमहर्षणके पुत्र सूतजी ! जनमेजयके किन पुत्रोंका शास्त्रमें वर्णन मिलता है और महात्मा पाण्डवोंका वंश किसमें प्रतिष्ठित हुआ था, १ इस बातका मुझे बड़ा कुतूहल होरहा है, मैं इस बातको आपसे स्पष्टरीति पर सुनना चाहता हूँ, आपके कहने पर मैं सब बातको यथार्थरीतिसे जानसकूँगा ॥२॥ सूतपुत्रने कहा, कि–राजा परीक्षितके पुत्र जनमेजयके काशीराज की पुत्रीमें चन्द्रापीड और सूर्यापीड नाम वाले दो पुत्र उत्पन्न हुए थे इनमें चन्द्रापीड तो राजा हुआ था और सूर्यापीडने मोक्ष

चन्द्रापीडस्य पुत्राणां शतमुत्तमधन्विनाम् । जानमेजय इत्येवं
ख्यातं भुवि परिश्रुतम् ॥४॥ तेषां श्रेष्ठस्तु राजासीत् पुरे वाराण-
साह्वये । सत्यकर्णो महाबाहुर्यज्वा विपुलदक्षिणः ॥५॥ सत्य-
कर्णस्य दायादः श्वेतकर्णः प्रतापवान् । अपुत्रः स तु धर्मात्मा
प्रविवेश तपोवनम् ॥ ६ ॥ तस्माद्वनगताद्गर्भं यादवी प्रत्यपद्यत ।
सुचारोर्दुहिता सुभ्रूर्मानिनी भ्रातृमालिनी ॥ ७ ॥ स तु जन्मनि
गर्भस्य श्वेतकर्णः प्रजेश्वरः । अन्वगच्छद्धृतं पूर्वैर्महाप्रस्थानमच्यु-
तम् ॥ ८ ॥ सा दृष्ट्वा संप्रयान्तं तं मानिनी पृष्ठतोऽन्वयात् । पथि
सा सुषुवे सुभ्रूर्वने राजीवलोचनम् ॥ ९ ॥ कुमारं तं परित्यज्य
भर्त्तारं चान्वगच्छत । पतिव्रता महाभागा द्रौपदीव पुरा पतीन्१०
स तु राजकुमारोऽसौ गिरिकुञ्जे रुरोद ह । छायार्थं तस्य मेघास्तु

पाई थी ॥ ३ ॥ चन्द्रापीड़के श्रेष्ठ धनुषको धारण करने वाले सौ
पुत्र हुए थे,वे क्षत्रिय पृथ्वीमें जानमेजय नामसे प्रसिद्ध हुए थे४
उसमें सत्यकर्ण सबमें श्रेष्ठ था, वह महाभुज वाराणसीपुरीमें
राजा हुआ था, उसने बहुतसी दक्षिणा (वाले यज्ञोंसे परमात्मा
का) पूजन किया था ५ सत्यकर्णके श्वेतकर्ण नाम वाला प्रतापी
पुत्र उत्पन्न हुआ था, वह धर्मात्मा अपुत्र था अतः तपोवनको
चलागया था६जब वह वनमें चलागया तब उससे सुचारुकी पुत्री
भ्रातृमती सुन्दर भौं वाली यादवी मानिनीने गर्भ धारण किया ७
राजा श्वेतकर्ण उस बालकके उत्पन्न होनेके समय अपने पूर्वजों
के द्वारा किये हुए अच्युत महाप्रस्थानको करने लगा ॥ ८ ॥
उसको जाता हुआ देख कर मानिनी उसके पीछे चलने
लगी, मार्गमें उस सुभ्रुने कमलकी समान नेत्र वाले कुमारको
उत्पन्न किया ॥ ९ ॥ परन्तु वह उस कुमारको त्याग कर जिस
प्रकार पहिले महाभागा पतिव्रता द्रौपदी अपने पतियोंके पीछे
गई थी इसी प्रकार वह भी अपने पतिके पीछे चल दी ॥१०॥

प्रादुरासन् समन्ततः ॥ ११ ॥ श्रविष्ठायाश्च पुत्रौ द्वौ पिप्पला-
दश्च कौशिकः । दृष्ट्वा कृपान्वितौ गृह्य तं प्रक्षालयतां जलैः ।
निघृष्टौ तस्य तौ पार्श्वौ शिलायां रुधिरप्लुतौ ॥ १२ ॥ अज-
श्यामौ तु पार्श्वौ तावुभावपि समाहितौ । तथैव तु समारूढौ अज-
पार्श्वस्ततोऽभवत् ॥ १३ ॥ ततोऽजपार्श्व इति तौ चक्राते तस्य
नाम ह । स तु वेमकशालायां द्विजाभ्यामभिवर्धितः १४ वेमकस्य
तु भार्या तमुद्वहत् पुत्रकारणात् । वेमक्याः स पुत्रोऽभूद्ब्राह्मणौ
सचिवौ च तौ ॥१५॥तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च युगपत्तुल्यजीविनः॥
स एष पौरवो वंशः पाण्डवानां प्रतिष्ठितः ॥ १६ ॥ श्लोकोपि
चात्र गीतोयं नाहुषेण ययातिना । जरासंक्रमणे पूर्वं भृशंप्रीतेन

वह राजकुमार गिरिकुञ्जमें (पड़ा हुआ) रोने लगा, तब उस
पर छाया करनेके लिये मेघ प्रकट हुए ॥११॥ श्रविष्ठाके पिप्प-
लाद और कौशिक नाम वाले दो पुत्र थे उस बालकको देखकर
उन्हें दया आगई और उन्होंने उसके ऊपर जल छिड़का, उस
समय उसके दोनों पार्श्व शिलासे घिस जानेके कारण छिल रहे
थे और उनमेंसे रुधिर निकल रहा था ॥ १२ ॥ उसके वे दोनों
पार्श्व बकरेकी समान काले होगए थे, वे उसी प्रकार बड़े होगए
थे, अतः वह अजपार्श्व होगया ॥ १३ ॥ इस लिये उन दोनोंने
उसका अजपार्श्व नाम रक्खा, और उन दोनों विप्रोंने उसे वेमक
(नामक स्वर्गवासी मुनिके) आश्रममें बड़ा किया १४ वेमककी
भार्याने उसको पुत्रके कारणसे अर्थात् पुत्रकी समान पाललिया
इस लिये वह वेमकीका पुत्र होगया और वे दोनों ब्राह्मण उसके
मंत्री होगए ॥ १५ ॥ उन (तीनों) के पुत्र पौत्र एक समय तक
जीवित रहे थे, इस प्रकार पाण्डवोंका पौरववंश प्रतिष्ठित हुआ
था ।१६। नहुषके पुत्र बुद्धिमान् राजा ययातिने जरासंक्रमणके
समय प्रसन्न होकर यह वचन कहा था, कि-॥ १७ ॥ पृथ्वी

धीमता । आचन्द्रार्कग्रहा भूमिर्भवेदपि न संशयः । अपौरवा न न तु मही भविष्यति कदाचन ॥ १८ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि
प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

शौनक उवाच । उक्तोयं हरिवंशस्ते पर्वाणि निखिलानि च । यथा पुरोक्तानि तथा व्यासशिष्येण धीमता ॥ १ ॥ तत्कथ्यमानममितमितिहाससमन्वितम् । प्रीणात्यस्मानमृतवत् सर्वपापविनाशनम् ॥ २ ॥ सुखश्राव्यतया धीर मनो ह्लादयतीव नः । जनमेजयस्तु नृपतिः श्रुत्वा चाख्यानमुत्तमम् । सौते किमकरोत् पश्चात् सर्पसत्रादनन्तरम् ॥ ३ ॥ सौतिरुवाच । जनमेजयस्तु स नृपः श्रुत्वा चाख्यानमुत्तमम् । यदारभत्तदाख्यास्ये सर्पसत्रादनन्तम् ॥ ४ ॥ तस्मिन् सत्रे समाप्तेऽथ राजा पारीक्षितस्तदा । यष्टुं स वाजिमेधेन सम्भारानुपचक्रमे ॥५॥ ऋत्विक्पुरोहिता-

चाहे सूर्य चन्द्रमा और ग्रहों तक ही रहे, परन्तु अपौरवा (पुरुके वंशजोंसे रहित) कभी नहीं होगी १८ प्रथम अध्याय समाप्त ॥१॥

शौनकने कहा, कि–बुद्धिमान् व्यासजीके शिष्यने पहिले जिस प्रकार सारे पर्व कहे थे उसी प्रकार आपने सब पर्व और हरिवंश कह दिया ॥ १ ॥ अमित इतिहासोंसे भरा हुआ सर्वपाप विनाशक आपका कहा हुआ यह इतिहास हमें अमृतकी समान तृप्त करता है ॥२॥ यह सुखपूर्वक सुननेके कारण हमारे मनको प्रसन्न कर रहा है, परन्तु हे सौते ! राजा जनमेजयने इस उत्तम आख्यानको सुननेके बाद सर्पयज्ञके अनन्तर क्या किया था ॥३॥ सौतिने कहा, कि–राजा जनमेजयने इस उत्तम आख्यानको सुनने और सर्पयज्ञके अनन्तर जिस कार्यका आरम्भ किया था, उसको मैं कहता हूँ ॥ ४ ॥ उस यज्ञके समाप्त होने पर राजा परीक्षितका पुत्र जनमेजय अश्वमेध यज्ञ करनेके लिए सामग्रिएँ एक-

चार्यानाहूयेदमुवाच ह । यक्ष्येऽहं वाजिमेधेन हयमुत्सृज्यतामिति
ततोऽस्य विज्ञाय चिकीर्षितं तदा कृष्णो महात्मा सहसाऽऽजगाम।
पारिक्षितं द्रष्टुमदीनसत्त्वं द्वैपायनः सर्वपरावरज्ञः ॥ ७ ॥ पारी-
क्षितस्तु नृपतिर्दृष्ट्वा तमृषिमागतम् । अर्घ्यपाद्यासनं दत्त्वा पूज-
यामास शास्त्रतः ॥ ८ ॥ तौ चोपविष्टावभितः सदस्यास्तस्य
शौनक । कथा बहुविधाश्चक्रुराश्रिताः वेदसंहिताः ॥ ९ ॥ततः
कथान्ते नृपतिर्नोदयामास तं मुनिम् । पितामहं पाण्डवानामा-
मात्मनः प्रपितामहम् ॥ १० ॥ महाभारतमाख्यानं बह्वर्थं श्रुत-
विस्तरम् । निमेषमात्रमपि मे सुखश्राव्यतया गतम् ॥ ११ ॥
विभूतिविस्तारकरं सर्वेषां नो यशस्करम् । त्वया सुविहितं ब्रह्मन्
शंखे क्षीरमिवाहितम् ॥ १२ ॥ अमृतेन तु तृप्तिः स्याद्यथा स्वर्ग-

त्रित करने लगा ॥ ५ ॥ उसने ऋत्विज पुरोहित और आचार्य
को बुला कर कहा, कि—मैं अश्वमेध यज्ञ करूँगा, अतः अश्व
छोड़ना चाहिये ॥ ६ ॥ राजा जनमेजयके (यज्ञ) करनेके विचार
को जान कर, परावरको जानने वाले द्वैपायन वेदव्यासजी
अदीनसत्त्व राजा जनमेजयको देखनेके लिए सहसा आगए ७
उन ऋषिको आया हुआ देख कर राजा परीक्षितके पुत्रने पाद्य
अर्घ्य आदि देकर उनकी शास्त्रोक्तविधिसे पूजा की ८ तदनन्तर
वे दोनों बैठ गए और उसके सदस्य भी बैठगए, हे शौनक !
तब वे अनेक प्रकारकी वेदसम्मत कथाओंको कहने लगे ॥ ९ ॥
बातचीत होनेके अनन्तर उस राजाने पाण्डवोंके पितामह और
अपने प्रपितामहसे कहा, कि—॥ १० ॥ अनेक प्रकारके अर्थों
वाला और अनेक श्रुतियोंसे भरा हुआ महाभारत नामक आख्यान
मैंने सुना, इसको सुननेमें बड़ा सुख मिलता है, अतः यह समय
निमेष भरकी समान बीत गया ॥ ११ ॥ यह आख्यान विभूति
को बढ़ाने वाला है सबोंको यश देने वाला है, शंखमें क्षीर भरने

सुखेन च । तथा तृप्तिं न गच्छामि श्रुत्वेमां भारतीं कथाम् ।१३। अनुमान्य तु सर्वज्ञं पृच्छामि भगवन्नहम् । हेतुः कुरूणां नाशस्य राजसूयो मतो मम ॥ १४ ॥ दुःसहानां तथा ध्वंसो राजन्यानामुपप्लवे । राजसूयं तथा मन्ये युद्धार्थमुपकल्पितम् ॥१५॥ राजसूयस्तु सोमेन श्रूयते पूर्वमाहृतः । तस्यान्ते सुमहद्युद्धमभवत्तारकामयम् ॥१६॥ आहृतो वरुणेनाथ तस्यान्ते सुमहाक्रतोः । देवासुरं महायुद्धं सर्वभूतभयावहम् ॥ १७ ॥ हरिश्चन्द्रश्च राजर्षिः क्रतुमेनमुपाहरत् । तत्राप्याडीबकं नाम युद्धं क्षत्रियनाशनम् १८ ततोऽनन्तरमार्गेण पाण्डवेनातिदुस्तरः । महाभारत आरम्भः संभृतोऽग्निरिव क्रतुः ॥१९॥ तदस्य मूलं युद्धस्य लोकक्षयकरस्य

की समान आपने इसको रचा है ॥ १२ ॥ जिस प्रकार अमृत से और स्वर्गसुखसे तृप्ति नहीं होती है, इसी प्रकार इस भारती कथाको सुनते २ मेरी तृप्ति नहीं होती है ।१३। आप सर्वज्ञ हैं, आपका अनुनय कर मैं आपसे (कुछ) बूझता हूँ मैं कौरवोंके नाशमें राजसूययज्ञको हेतु मानता हूँ १४ उपप्लव नामक स्थानमें दुःसह राजाओंका ध्वंस होगया था, मैं समझता हूँ कि-राजाओं को नष्ट करनेके लिए ही राजसूय यज्ञ रचा गया है १५सुना है, कि-पहिले सोमने भी राजसूय यज्ञ किया था, उसके अन्तमें तारकासुर नामक बड़ा भारी संग्राम हुआ था । १६ । तदनन्तर वरुणने इसको किया था,उस समय भी इस महायज्ञके अन्तमें सब प्राणियोंको भय देने वाला देवासुर नामक बड़ा भारी संग्राम हुआ था राजर्षि हरिश्चन्द्रने भी राजसूय यज्ञ किया था;तब भी क्षत्रियोंको नष्ट करने वाला आडीबक नामक युद्ध हुआ था१८ तदनन्तर सरल पाण्डवने भी महाभारतयुद्धको आरम्भ करने वाले छिपे हुए अग्निकी समान इस यज्ञको आरम्भ कर लिया था ॥ १९ ॥ तब भी इस संसारनाशके हेतु राजसूय महायज्ञको

तु । राजसूयो महायज्ञः किमर्थं न निवारितः ॥ २० ॥ राजसूयो ह्यसंहार्यो यज्ञाङ्गैश्च दुरत्ययैः । मिथ्या प्रणीते यज्ञांगे प्रजानां संक्षयो ध्रुवः ॥ २१ ॥ भवानपि च सर्वेषां पूर्वेषां न पितामहः । अतीतानागतज्ञश्च नाथश्चादिकरश्च नः ॥२२॥ ते कथं भवता नेत्रा बुद्धिमन्तश्च्युता नयात् । अनाथा ह्यपराध्यन्ते कुनेतारश्च मानवाः ॥ २३ ॥ व्यास उवाच । कालेन विपरीतास्ते तव पूर्वपितामहाः । न मां भविष्यं पृच्छन्ति न चापृष्टो ब्रवीम्यहम् २४ सामर्थ्यं च न पश्यामि भविष्यस्य निवर्तने । परिहर्तुं न शक्या हि कालेन विहिता गतिः ॥ २५ ॥ त्वया त्विदमहं पृष्टो वक्ष्याम्यागन्तुभावि यत् । अतश्च बलवान् कालः श्रुत्वापि न करिष्यसि ॥२६॥ न संरम्भान्न चारम्भान्न वै स्थास्यसि पौरुषे ।

आपने क्यों नहीं रोका था ॥ २० ॥ इस राजसूयके अङ्ग दुरत्यय हैं अत एव राजसूय यज्ञके सब अङ्ग पूर्ण रीतिसे नहीं होसकते और यज्ञांगके मिथ्या करने पर अवश्य ही प्रजाओंका नाश हो जाता है ॥ २१ ॥ आप हमारे पूर्वजोंके पितामह हैं, भूत और और भविष्यको जानने वाले नाथ हैं और हम सबोंको उत्पन्न करने वाले हैं ॥ २२ ॥ आपसे गुरुके होने पर भी वे बुद्धिमान् नीतिच्युत क्यों होगए थे, क्योंकि खोटे नेता वाले वा अनाथ पुरुष ही अपराध कर सकते हैं ॥ २३ ॥ व्यासजीने कहा, कि- कालसे विपरीतहुए तुम्हारे पितामहोंने मुझसे भविष्यके विषयमें कुछ प्रश्न नहीं किया, और विना बूझे हुए मैं कुछ नहीं कहा करता हूँ ॥ २४ ॥ और मैं आपनेमें भविष्यको लौटनेकी शक्ति भी नहीं देखता, कालकी रचीहुई गतिको लौटा भी नहीं जा सकता ॥ २५ ॥ अब तुमने मुझसे बूझा है, अतः भावी बात कहता हूँ, परन्तु काल बड़ा बलवान् है तुम मेरी बातको सुन कर भी न मानोगे ॥ २६ ॥ तू भयसे अथवा उत्साहसे पौरुष (पुरुष

लेखा हि काललिखिताः सर्वथा दुरतिक्रमाः ॥२७॥ अश्वमेधः क्रतुः श्रेष्ठः क्षत्रियाणां परिश्रुतः । तेन भावेन ते यज्ञं वासवो धर्षयिष्यति ॥ २८ ॥ यदि तच्छक्यते राजन् परिहर्तुं कथंचन । दैवं पुरुषकारेण मा यजेथाश्च तं क्रतुम् २९ न चापराधः शक्रस्य नोपाध्यायगणस्य ते । तव वा यजमानस्य कालो हि दुरतिक्रमः ॥ ३० ॥ तस्य संस्थाकृतमिदं कालस्य परमेष्ठिनः । यथा दृष्टं प्रजासर्गं गमिष्यति युगक्षये ॥३१॥ तथा यज्ञफलानां च विक्रेतारो द्विजातयः । तत्पश्येयं निबोधस्व त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥३२॥ जनमेजय उवाच । निवृत्तावश्वमेधस्थ किं निमित्तं भविष्यति । श्रुत्वा परिहरिष्यामि भगवन् यदि मन्यसे ॥३३॥

के योग्य)कर्ममें स्थित न रह सकेगा क्योंकि—कालके लिखे हुए लेखोंको मेटना बड़ा कठिन है ॥ २७ ॥ यज्ञोंमें श्रेष्ठ अश्वमेध राजाओंको प्रसिद्ध करने वाला है, इस महत्त्वके कारण द्वेषके वशमें होकर इन्द्र तुम्हारे यज्ञमें गड़बड़ी डालेगा २८ हे राजन् ! यदि इस प्रारब्धको तुम पुरुषार्थसे किसी प्रकार रोक सकते हो तो रोको और इस यज्ञको मत करो २९ इस विषयमें न इन्द्रका अपराध होगा, न तुम्हारे उपाध्यायोंका अपराध होगा और न यज्ञ करने वाले आपका ही कुछ अपराध है, किन्तु कालका लाँघना बड़ा कठिन है ३० परमेष्ठी कालकी इच्छासे तुम्हारे यज्ञ (पर अश्वमेध यज्ञ)की समाप्ति रच दी गई है, और (तुम्हारे यज्ञके अनन्तर) प्रजाओंकी सृष्टि प्रलयकालकी समान नष्ट होने लगेगी, (यह बात ऋषियोंने अपनी ज्ञानदृष्टिसे) देखी है॥३१॥ (और उस समय) द्विजाति यज्ञोंके फलोंको बेचने लगेंगे परन्तु तुम चराचरसहित त्रिलोकीको कालके अधीन जानो (अतः शोक न करो) ॥ ३२ ॥ जनमेजयने कहा, कि—हे प्रभो ! अश्वमेध यज्ञका होना किस कारणसे बन्द होजायगा, हे भगवन् ! आपकी

व्यास उवाच । निमित्तं भविता तत्र ब्रह्मकोपकृतं प्रभो । यत्नेश्च परिहर्तुं त्वमित्येतद्भद्रमस्तु ते ॥३४॥ त्वया वृत्तं क्रतुं चैव वाजिमेधं परन्तप । क्षत्रिया नाहरिष्यन्ति यावद्भूमिर्धरिष्यति॥३५॥ जनमेजय उवाच । निवृत्तावश्वमेधस्य ब्रह्मशापाग्नितेजसा । अहं निमित्तमिति मे भयं तीव्रं तु जायते ॥३६॥कथं ह्यकीर्त्या युज्येत सुकृती मद्विधो जनः । लोकान्नुत्सहते गन्तुं खं सपाश इव द्विजः यथा ह्यनागतमिदं दृष्टमत्र मखाशनम् । यद्यस्ति पुनरावृत्तिर्यज्ञस्याश्वासयस्व माम् ॥ ३८ ॥ व्यास उवाच । उपात्तयज्ञो देवेषु ब्राह्मणेषूपपत्स्यते । तेजसा व्याहृतं तेजस्तेजस्येवावतिष्ठते ।३९। औद्भिज्जो भविता कश्चित् सेनानीः काश्यपो द्विज । अश्वमेधं

बातको सुन कर यदि आप अनुमति देंगे, तो मैं उसका परिहार करूँगा ॥ ३३ ॥ व्यासजीने कहा; कि-हे प्रभो ! ब्राह्मणों पर कोप करना यज्ञ बन्द होनेमें निमित्त होगा, अब तुम इसका परिहार करनेकी चेष्टा करना ! तुम्हारा कल्याण हो ३४ हे परन्तप! तुम्हारे अश्वमेध यज्ञ करनेके अनन्तर जब तक पृथिवी रहेगी तब तक क्षत्रिय इस अश्वमेध यज्ञको न कर सकेंगे ॥ ३५ ॥ जनमेजय ने कहा, कि-ब्राह्मणशापरूपी अग्निके तेजसे निवृत्त होने वाले इस यज्ञमें मैं निमित्त होऊँगा(यह सुन कर)मुझे तीव्र भय होता है ॥ ३६ ॥ मुझसा पुण्यात्मा पुरुष अकीर्तिसे संयुक्त होकर, पाशसे बँध कर आकाशमें उड़नेका उत्साह न करने वाले पक्षीकी समान, (पुण्य)लोकोंमें जानेका उत्साह कैसे कर सकेगा ३७ आपने भविष्यमें होने वाले यज्ञनिवृत्तिके वृत्तान्तको जिस प्रकार देखा है उसी प्रकार यदि इसकी पुनरावृत्ति देखी हो तो मुझे आश्वासन दीजिए ॥ ३८॥ व्यासजीने कहा, कि-यह उपसंहृत हुआ अश्वमेधयज्ञ देवता और ब्राह्मणोंमें (ज्ञानरूपसे) स्थित रहेगा, क्योंकि-तेजसे उपसंहृत हुआ तेज तेजमें ही रहता है ३९

कलियुगे पुनः प्रत्याहरिष्यति ॥ ४० ॥ तद्युगे तत्कुलीनश्च राजसूयमपि क्रतुम् । आहरिष्यति राजेन्द्र श्वेतग्रहमिवान्तकः ॥ ४१ ॥ यथावलं मनुष्याणां कर्तृणां दास्यते फलम् । युगान्तद्वारमृषिभिः संवृतं विचरिष्यति ॥ ४२ ॥ तदा प्रभृति हास्यन्ति नृणां प्राणाः पुराकृतीः । न निवर्तिष्यते लोके वृत्तान्ता वर्तनेष्विह ॥ ४३ ॥ तदा सूक्ष्मो महोदर्को दुस्तरो दानमूलवान् । चतुराश्रम्यशिथिलो धर्मः प्रविचलिष्यति ॥४४॥ तदा ह्यल्पेन तपसा सिद्धिं प्राप्स्यंति मानवाः । धन्या धर्मं चरिष्यन्ति युगान्ते जनमेजय ॥ ४५ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि
द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

एक काश्यप नामका सेनानी ब्राह्मण (योगी) पृथिवी खोदने पर प्रकट होगा, वह कलियुगमें अश्वमेध यज्ञको फिर करेगा ४० हे राजन् ! अन्तक जिस प्रकार श्वेतग्रहको करता है तैसे ही उस युगमें उसके कुलमें उत्पन्न हुआ पुरुष राजसूय यज्ञको भी करेगा ॥ ४१ ॥ उस समय यज्ञ, कर्ता मनुष्योंको श्रद्धादिरूप फल देगा, और वह ऋषियोंसे रक्षित होकर युगान्तद्वार (कलियुगके आरम्भ) में विचरण कर सकेगा ॥ ४२ ॥ उस समय मनुष्योंकी इन्द्रियें शिष्टाचारोंको त्याग देंगी और मनुष्य प्राचीन वृत्तान्तकी आवृत्ति करना छोड़देंगे अर्थात् प्राचीन कथाएं भी बन्द होजावेंगी ॥ ४३ ॥ उस समय दान जिसकी जड़ है, ऐसा थोड़ासा धर्म भी बड़ा भारी फल देगा (अर्थात् अधिक विघ्नोंके कारण थोड़ासा दान भी बड़ा फल देगा) और चारों आश्रमोंके धर्म शिथिल होजावेंगे ॥ ४४ ॥ उस समय थोड़े तपसे ही मनुष्योंको सिद्धि मिलने लगेगी, हे जनमेजय ! उस समय जो पुरुष धर्माचरण करेंगे, वे धन्य हैं ॥४५॥ दूसरा अध्याय समाप्त ॥ २ ॥

जनमेजय उवाच । आसन्नं विप्रकृष्टं वा यदि कालं न विद्महे तस्माद् द्वापरसंश्लिष्टं युगान्तं स्पृहयाम्यहम् ॥१॥ प्राप्ता वयं तु तत्कालमनया धर्मतृष्णया । आदद्यात् परमं धर्मं सुखमल्पेन कर्मणा ॥ २ ॥ शौनक उवाच । त्रासमुद्वेगकरणं युगान्तं समुपस्थितम् । प्रनष्टधर्मं धर्मज्ञ निमित्तैर्वक्तुमर्हसि ॥३॥ सौतिरुवाच । पृष्ट एवं भविष्यस्य गतिं तत्त्वेन चिन्तयन् । युगान्ते सर्वभूतानां भगवानब्रवीत्तदा ॥ ४ ॥ व्यास उवाच । अरक्षितारो हर्तारो बलिभागस्य पार्थिवाः । युगान्ते प्रभविष्यन्ति स्वरक्षणपरायणाः अक्षत्रियाश्च राजानो विप्राः शूद्रोपजीविनः । शूद्राश्च ब्राह्मणाचारा भविष्यन्ति युगक्षये ६ कांडस्पृष्टाः श्रोत्रिय श्च निष्क्रियाणि हवींषि च । एकपंक्त्यामशिष्यन्ति युगान्ते जनमेजय ॥७॥ शिल्प-

---

जनमेजयने कहा, कि–हमें अपने मोक्षका समय समीप प्रतीत नहीं होता, अतः हम धर्माधर्मकी समता वाले द्वापरको बाँधने वाले कलियुगके वृत्तांतको सुनना चाहते हैं ॥१॥ शौनकने कहा, कि-त्रास और उद्वेगको करने वाला और धर्मको नष्ट करने वाला कलियुग उपस्थित होगया है, हे धर्मज्ञ! सूतपुत्रने कहा, कि इसप्रकार बूझने पर उन्होंने कलियुगमें भविष्यकी गतिका विचार करके सब मनुष्योंकी गति कहना आरम्भ किया, कि-४-५ व्यासजी ने कहा कि-कलियुगमें राजा अपनीही रक्षामें परायण रहेंगे, कर को लेलिया करेंगे और रक्षा न किया करेंगे५ और क्षत्रिय पुरुष राजा न हुआ करेंगे, ब्राह्मण शूद्रोंकी आजीविका करने लगेंगे, और कलियुगमें शूद्र ब्राह्मणोंकेसे आचार करने लगेंगे६ और हे जनमेजय! कलियुगमें श्रोत्रिय ब्राह्मण बाणको धारणकरेंगे अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रियोंकेसा आचार करेंगे, और हवियें पंचयज्ञोंसे हीन हो जावेंगी और सब एक पंक्तिमें बैठकर खाने लगेंगे हे राजा जनमेजय! कलियुगके मनुष्य शिल्पी होंगे, झूठ बोलनेमें लगे रहेंगे,

सन्तोऽनृतपरा नरा मद्यामिषप्रियाः । मित्रभार्या भविष्यन्ति युगांते जनमेजय ॥८॥ राजवृत्तिस्थिताश्चौरा राजानश्चौरशीलिनः । भृत्याश्चानिर्दिष्टभुजो भविष्यन्ति युगक्षये ॥ ९ ॥ धनानि श्लाघनीयानि सतां वृत्तमपूजितम् । अकुत्सना च पतिते भविष्यति युगक्षये ॥१०॥ प्रनष्टचेतना मर्त्या मुक्तकेशा विचूलिनः । ऊनषोडशवर्षाश्च प्रयास्यन्ति नराः सदा ॥ ११ ॥ अट्टशूला जनपदाः शिवशूलाश्चतुष्पथाः । प्रमदाः केशशूलाश्च भविष्यन्ति युगक्षये ॥१२॥ सर्वे ब्रह्म वदिष्यन्ति सर्वे वाजसनेयिनः । शूद्राभो वादिनश्चैव भविष्यन्ति युगक्षये ॥ १३ ॥ तपोयज्ञफलानां च विक्रेतारो द्विजातयः । ऋतवश्च भविष्यन्ति विपरीता युगक्षये ।

मद्य और मांससे प्रेम करेंगे तथा भार्याकोही मित्र मानेंगे ।७।८। चोर राजाओंके सा वर्ताव करेंगे राजा चोरोंके सा वर्ताव करेंगे और नौकर बिना आज्ञा दिये हुये ही खाने लगेंगे ९ तथा कलियुगमें धनियोंकी ही प्रशंसा होगी, सज्जनोंके आचारका सत्कार न होगा और पतित पुरुषकी निन्दाभी न हुआ करेगी ॥ १० ॥ मनुष्योंको धर्म अधर्मका ज्ञान भी न रहेगा, मुक्तकेशा और विचूली अर्थात् विधवाएँ और संन्यासी परस्पर सन्तान उत्पन्न करेंगे; और मनुष्य सोलह वर्षसे पहिले ही मर जाया करेंगे ११ शहरोंमें केवल अन्न ही बिका करेगा और चौराहोंमें वेद बिका करेंगे अर्थात् टकेके ऊपर कथा हुआ करेगी, स्त्रियें केशशूला होंगी, अर्थात् व्याभिचारिणियें होंगी ॥ १२ ॥ सब ब्रह्मवादी होजावेंगे अर्थात् ब्रह्मवादके छलसे कर्मभ्रष्ट होजावेंगे और सब वाजसनेयी हो जावेंगे अर्थात् दूसरी शाखाओंका लोप होजानेसे तीन वेदोंसे होसकने वाला यज्ञ लुप्त हो जावेगा, और कलियुगमें शूद्रोंकी पूजा हुआ करेगी ॥ १३ ॥ ब्राह्मण तप और यज्ञोंके फलको बेचने लगेंगे तथा युगक्षयके समय सब ऋतुएं विपरीत होजा-

शुक्लदन्ताजिताक्षाश्च मुण्डाः काषायवाससः । शूद्रा धर्मं चरिष्यन्ति शाक्यबुद्धोपजीविनः ॥ १५ ॥ श्वापदप्रचुरत्वं च गवां चैव परिक्षयः । स्वादूनां विनिवृत्तिश्च विप्रा दन्तगते युगे १६ अन्त्या मध्ये निवत्स्यन्ति मध्याश्चान्तनिवासिनः । यथा निम्नं प्रजा सर्वा गमिष्यन्ति युगक्षये ॥ १७ ॥ तथा द्विहायना दम्यास्तथा पल्वलकर्षकाः । चित्रवर्षी च पर्जन्यो युगे क्षीणे भविष्यति सर्वे चौरकुले जाताश्चौरयानाः परस्परम् । स्वल्पेनाढ्या भविष्यन्ति यत्किंचित्प्राप्य दुर्गताः ॥ १९ ॥ न ते धर्मं करिष्यन्ति मानवा निर्गते युगे । ऊषरबहुला भूमिः पन्थानस्तस्करावृताः २०

वेंगे १४ उस समय श्वेत दाँत वाले सूक्ष्म दृष्टि वाले शूद्र मूँड मुडाकर गेरुए वस्त्र पहन कर धर्म करने लगेंगे;और मनुष्य शाक्य तथा बुद्ध मतवाले हो जावेंगे अर्थात् नास्तिक हो जावेंगे ॥१५॥ भेडिये व्याघ्र आदि हिंसक जीव बढ़ जावेंगे और गौओंका क्षय होजायगा तथा इस अन्तिम युगमें स्वादु वस्तुएं नहीं रहेंगी १६ म्लेच्छ लोक मध्यदेश अर्थात् कुरु पञ्चालमें निवास करेंगे, और मध्यदेशके पुरुष अन्त्यजोंके देशमें रहा करेंगे और कलियुगमें सब प्रजा नीचताका वर्ताव किया करेंगी, ॥ १७ ॥ दोवर्षके बछड़ेको ही हलमें जोत दिया जाया करेगा, तथा तलैया में खेती हुआ करेगी और कलियुगमें मेघ भी चित्रवर्षी होगा अर्थात् इस प्रकार वर्षा करेगा, कि बैलका एक सींग गीला हो जाय एक सींग सूखा रहजाय,१८सबके सब चोरोंके कुलमें उत्पन्न होकर परस्पर चोरी किया करेंगे, थोड़े धनसे ही सब धनवान् होजाया करेंगे, और थोड़ी विपत्ति पड़ने पर मनुष्योंकी दुर्गति हो जाया करेगी और कलियुगमें मनुष्य धर्मको न किया करेंगे, पृथ्वी ऊषरबहुला हो जावेगी अर्थात् अधिक क्षारवाली मट्टीके कारण मस्वेदवती होकर बीजोंको नष्ट करने वाली हो जावेगी

सर्वे वाणिज्यकाश्चैव भविष्यन्ति कलौ युगे। पितृदत्तानि देयानि विभजन्ते सुतास्तदा । हरणाय प्रपत्स्यन्ते लोभानृतविरोधिता:२१ सौकुमार्ये तथा रूपे रत्ने चोपक्षयं गते । भविष्यन्ति युगान्ते च नार्यः केशैरलंकृताः ॥ २२ ॥ निर्विहारस्य भूतस्य गृहस्थस्य भविष्यति । युगान्ते समनुप्राप्ते नान्या भार्यासमा गतिः ॥२३॥ कुशीलानार्यभूयिष्ठं वृथारूपसमन्वितम् । पुरुषाल्पं बहुस्त्रीकं तद्युगान्तस्य लक्षणम् ॥ २४ ॥ बहुयाचनको लोको न दास्यति परस्परम् । अविचार्य गृहीष्यन्ति दानं वर्णान्तरात्तथा ॥ २५ ॥ राजचौराग्निदण्डार्तो जनः क्षयमुपेष्यति ॥ सस्यनिष्पत्तिरफला तरुणा वृद्धशीलिनः । ईदृशा सुखिनो लोका भविष्यन्ति युगक्षये वर्षासु वाताः परुषा नीचाः शर्करवर्षिणः । सन्दिग्धः परलोकश्च

और मार्ग चोरोंसे घिर जावेंगे, ॥ २० ॥ कलियुगमें सबमनुष्य वाणिज्य करने लगेंगे, और पिताओंके दिये हुए (तथा शास्त्रसे जिनका बिभाग न किया जासके ऐसे गहनोंको भी) पुत्र बाँटने लगेंगे, और लोभ तथा झूँठके कारण विरोध करके एक दूसरेके अंशको छीनने लगेंगे, ॥ २१ ॥ कलियुगमें स्त्रियें सुकुमारता रूप और रत्नोंका क्षय होने पर केशोंके ही अलंकारोंको धारण करेंगी ॥ २२ ॥ चन्दन माला आदिसे रहित गृहस्थकी कलियुग में स्त्रीके समान और कोई गति न होगी२३बहुतसे कुशील तथा असज्जन पुरुषोंका हो जाना और व्यर्थका रूप बनाना पुरुषों की अल्पता और स्त्रियोंका आधिक्य कलियुगका लक्षण है २४ मनुष्य बहुत याचना करने लगेंगे, और परस्पर दान न देंगे तथा हीनवर्णसे भी दान ले लिया करेंगे ॥ २५ ॥ राजा चोर अग्नि और दण्डसे घबड़ाया हुआ संसार नष्ट होने लगेगा, धान्योंकी उत्पत्ति फलरहित होगी,तरुण पुरुष वृद्धोंकी समान वर्ताव करेंगे और कलियुगमें पुरुष तृष्णाके कारण सुख न पासकेंगे॥ २६ ॥

भविष्यति युगक्षये ॥ २७ ॥ आत्मानश्च दुराचारा ब्रह्मदूषण-
तत्पराः । आत्मानं बहु मन्यन्ते मन्युरेवाभ्ययाद्द्विजान् ॥२८॥
वैश्याचाराश्च राजन्या धनधान्योपजीविनः । युगापक्रमणे सर्वे
भविष्यन्ति द्विजातयः ॥ २९ ॥ अप्रवृत्ताः प्रपत्स्यन्ते समयाः
शपथास्तथा । ऋणं सविनयभ्रंशं युगे क्षीणे भविष्यति ॥३०॥
भविष्यत्फलो हर्षः क्रोधश्च सफलो नृणाम् । अजाश्चैवोपरो-
त्स्यन्ते पयसोऽर्थे युगक्षये ॥ ३१ ॥ अशास्त्रविदुषां पुंसामेवमेव-
स्वभावतः । अप्रमाणं वदिष्यन्ति नीतिं पण्डितमानिनः ॥३२॥
शास्त्रोक्तस्याप्रवक्तारो भविष्यन्ति युगक्षये। सर्वे सर्वं हि जानंति
वृद्धाननुपसेव्य वै ॥ ३३ ॥ न कश्चिदकविर्नाम युगान्ते समु-

तथा कलियुगमें रूखी वायु चलने लगेगी और रेतेकी वर्षा होने लगेगी तथा मनुष्योंको परलोकमें सन्देह होने लगेगा, आत्मज्ञानकी बातें करने वाले व्यभिचारी होंगे । और ब्रह्ममें दूषण लगाने वाले होंगे , अपनेको ही बहुत मानेंगे और ब्राह्मणोंमें क्रोध आजावेगा २८ राजे वैश्योंकेसा आचरण करने लगेंगे और धन धान्यसे आजीविका करने लगेंगे, धर्मकी मर्यादाका भंग होने पर सभी द्विजाति बन जावेंगे ॥२९॥ सांकेतिक और शपथ झूंठी होने लगेगी और कलियुगमें ऋणको विनय करके माफ करा लिया जाया करेगा ३० मनुष्य बिना कारण ही हर्ष करेंगे और मनुष्योंका क्रोध सफल हुआ करेगा। और कलियुगमें दूधके लिये बकरियोंको रोका जाया करेगा ॥ ३१ ॥ शास्त्रके न जानने वाले पुरुषोंके स्वभावके अनुसार पण्डितमानी पुरुष प्रमाणरहित नीतिको कहा करेंगे ३२ कलियुगमें शास्त्रोक्त बातके कहने वाले न रहेंगे वृद्धोंकी सेवा बिना किये हुए ही सब को जानने वाले हो जावेंगे ३३ कलियुगके आने पर ऐसा कोई भी पुरुष न होगा जो कवि न हो, दूसरेके कर्मोंको करने वाले

पस्थिते । न क्षत्राणि नियोक्ष्यन्ति विकर्मस्था द्विजातयः । चौर-
प्रायाश्च राजानो युगान्ते पर्युपस्थिते ३४ कुण्डा वृषा नैकृतिकाः
सुरापा ब्रह्मवादिनः । अश्वमेधेन यक्ष्यन्ति युगान्ते जनमेजय ३५
अयाज्यान् याजयिष्यन्ति तथाऽभक्ष्यस्य भक्षिणः । ब्राह्मणा
धनतृष्णार्ता युगान्ते समुपस्थिते ॥ ३६ ॥ भो शब्दमभिधास्यंति
न च कश्चित् पठिष्यति एकशंखास्तथा नार्यो गवेधुकपिनद्धकाः
नक्षत्राणि वियोगीनि विपरीता दिशस्तथा । सन्ध्यारागोथ
दिग्दाहो भविष्यत्यवरे युगे ॥ ३८ ॥ पितॄन् पुत्रा नियोक्ष्यन्ति
वध्वः श्वश्रूश्च कर्मसु । वियोनिषु चरिष्यन्ति प्रमदासु नरा-
स्तदा ॥ ३९ ॥ वाक्शरैस्तर्जयिष्यन्ति गुरून् शिष्यास्तथैव च ।
मुखेषु च प्रयोक्ष्यन्ति प्रमत्ताश्च नरास्तदा ॥ ४० ॥ अकृता-

ब्राह्मण क्षत्रियोंको धर्मका उपदेश न देंगे, और कलियुगके आने पर सब राजे प्रायः चोर हो जावेंगे; ॥ ३४ ॥ हे जनमेजय! कलि-युगके समय कुण्ड (पतिके न मरने पर भी जारसे उत्पन्न हुए) वृष (वीर्यकी वर्षा करनेवाले)छली पुरुष और शराबी ब्रह्मवादी बन कर अश्वमेधयज्ञ करेंगे ॥ ३५ ॥ यज्ञ न कराने योग्य पुरुषों को यज्ञ कराया करेंगे और अभक्ष्य वस्तुको भी खाने लगेंगे और कलियुग आने पर ब्राह्मण धनकी तृष्णासे आर्त होंगे ॥ ३६ ॥ सब अरे अरे कह कर बोला करेंगे कोई भी शास्त्रको न पढ़ा करेगा स्त्रियें एक शंखवाली होंगी और गवेधुक(कुसुम्भके बीज की समान आकार वाले तृणविशेष)के अलंकारोंको पहनेंगी ३७ बिना ही योगके नक्षत्र जहाँ तक पहुँच जावेंगे दिशायें विपरीत हो जावेंगी और कलियुगमें दिशायें जलने लगेंगी ॥ ३८ ॥ पुत्र पिताको, वधुएं सासोंको कर्म करनेकी आज्ञा देवेंगी और मनुष्य पशुपक्षियोंकी स्त्रियोंसे गमन करेंगे ॥ ३९ ॥ शिष्य गुरुओंको वाणीरूप बाणोंसे छेदेंगे और प्रमत्त हुए पुरुष मुखोंमें अपवित्र

ग्रासं भोक्ष्यन्ति नराश्चैवाग्निहोत्रिणः । भिक्षां बलिमदत्वा च भोक्ष्यन्ति पुरुषाः स्वयम् ॥ ४१ ॥ पतीन् सुप्तान् वञ्चयित्वा गमिष्यन्ति स्त्रियोऽन्यतः । पुरुषाश्च प्रसुप्तासु भार्यासु च परस्त्रियम् ॥४२॥ नाव्याधितो नाप्यरुजो जनः सर्वोऽभ्यसूयकः । न कृतिप्रतिकर्ता च काले क्षीणे भविष्यति ॥ ४३ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

जनमेजय उवाच।एवं विलुलिते लोके मनुष्याः केन पालिताः । निवत्स्यन्ति किमाचाराः किमाहारविहारिणः ॥१॥ किं कर्माणः किमीहन्तः किं प्रमाणाः किमायुषः । कां च काष्ठां समासाद्य प्रपत्स्यति कृतं युगम् २ व्यास उवाच । अत ऊर्ध्वं च्युते धर्मे गुण-

---

वस्तुओंका प्रयोग करेंगे ॥ ४० ॥ अग्निहोत्री पुरुष चार ग्रासोंको न देकर भोजन कर लिया करेंगे और पुरुष भिक्षा तथा बलि को भी न देकर आप ही भोजन कर लिया करेंगे, ॥४१॥ स्त्रियें अपने सोते हुए पतियोंको धोखा देकर दूसरेके पास जाकर रमण किया करेंगी, और पुरुष भी अपनी स्त्रियोंके सोजाने पर दूसरी स्त्रियोंसे रमण करेंगे ॥ ४२ ॥ कोई भी पुरुष व्याधि और मन की पीड़ासे रहित न होगा, सब डाह करेंगे और समयके क्षीण होने पर अर्थात् कलियुगके आने पर कोई उपकार करने पर प्रत्युपकार न करेगा ॥ ४३ ॥ तीसरा अध्याय समाप्त ॥ ३ ॥

जनमेजयने कहा, कि—जब इस प्रकार संसार कलुषित हो जायगा तब मनुष्य किसके द्वारा पालित होंगे अर्थात् उनकी रक्षा कौन करेगा और वह कैसा आचार विचार करेंगे तथा किस प्रकार आहार विहार करेंगे ॥ १ ॥ कैसे कर्म करेंगे कैसी चेष्टा करेंगे, कितने लम्बे चौडे होंगे और उनकी कितनी आयु हुआ करेगी और कैसी अवस्था होने पर सत्ययुग फिर आवेगा॥ २॥

हीनाः प्रजास्ततः । शीलव्यसनमासाद्य प्राप्स्यन्ते ह्रासमायुषः ३
आयुर्हान्या बलग्लानिर्बलग्लान्या विवर्णता। वैवर्ण्याद्व्याधिसंपीडा
निर्वेदो व्याधिपीडनात् ।४। निर्वेदादात्मसम्बोधः सम्बोधाद्धर्म-
शीलता । एवं गत्वा परां काष्ठां प्रपत्स्यति कृतं युगम् ५ उद्देशतो
धर्मशीलाः केचिन्मध्यस्थतां गताः । विमर्षशीलाः केचित्तु हेतुवाद-
कुतूहलाः ॥ ६ ॥ प्रत्यक्षमनुमानं च प्रमाणञ्चेति निश्चिताः ।
अप्रमाणं करिष्यन्ति नेति पण्डितमानिनः ॥७॥ अप्रमाणं करि-
ष्यन्ति वेदोक्तमपरे जनाः । तदा मुखभगाश्चैव भविष्यन्ति
स्त्रियोऽपराः ॥८॥ नास्तिक्यपरमाश्चापि केचिद्धर्मविलोपकाः ।
भविष्यन्ति नरा मूढा मन्दाः पण्डितमानिनः ॥९॥ तदात्वमात्र-

व्यासजीने कहा, कि-अब आगेको धर्मके च्युत होने पर प्रजा गुणहीन हो जावेगी और धर्मके नष्ट होने पर आयुका ह्रास हो जायगा ॥ ३ ॥ आयुकी हानिसे बलपर ग्लानि होने लगेगी और बलकी ग्लानिसे, वर्ण उदास होजायगा और विवर्णतासे व्याधि पीड़ा देने लगेगी और व्याधिपीड़ा होने पर देह आदि में वैराग्य होने लगेगा, ॥४॥ उस वैराग्यसे विवेकका उदय होगा और विवेकसे धर्मशीलता आने लगेगी, इस प्रकार पराकाष्ठा होने पर सत्ययुगका आरम्भ होगा ॥ ५ ॥ (कलियुगमें पुरुषों में) लेशमात्र धर्म रहेगा,कोई मध्यस्थरूप बन जावेंगे (और धर्म न करेंगे) कोई विवेक ही करेंगे और कोई हेतुवादमें ही चतुर होंगे (काम न करेंगे) ॥ ६ ॥ और निश्चित (सौगत और वैशेषिक) पुरुष प्रत्यक्ष और अनुमानको ही मानेंगे और(चार्वाक) एक (प्रत्यक्ष) प्रमाणको ही मानेंगे और पण्डितमानी पुरुष कुछ नहीं कुछ नहीं कहेंगे ॥ ७ ॥ उस समय दूसरे पुरुष वेदोक्त बातको अप्रमाण करेंगे तथा स्त्रियें मुखभगा होंगी ॥ ८ ॥ उस समय पुरुष मूढ़,मन्द, पण्डितमानी, धर्मका लोप करने वाले और

श्रद्धेयाः शास्त्रज्ञानबहिष्कृताः।दाम्भिकास्ते भविष्यन्ति वादशील-कुतूहलाः ॥ १० ॥ तदा विचलिते धर्मे जनाः शेषपुरस्कृताः । शुभान्येवाचरिष्यन्ति दानसत्यसमन्विताः ॥ ११ ॥ सर्वभक्षो ह्यसंगुप्तो निर्गुणो निरपत्रपः । भविष्यति तदा लोकस्तत्कषायस्य लक्षणम् ॥१२॥ विप्राणां शाश्वतीं वृत्तिं यदा वर्णावरा जनाः । प्रतिपत्स्यन्ति वृत्त्यर्थं तत्कषायस्य-लक्षणम् ॥१३॥ कषायोपप्लवे लोके ज्ञानविद्याप्रणाशने । सिद्धिं स्वल्पेन कालेन यास्यन्ति निरुपस्कृताः ॥ १४ ॥ महायुद्धं महानादं महावर्षं महाभयम् । भविष्यति युगे क्षीणे तत्कषायस्य लक्षणम् ॥ १५ ॥ विप्ररूपाणि रक्षांसि राजानः कर्णवेदिनः । पृथिवीमुपभोक्ष्यन्ति युगान्ते समु-

---

नास्तिक होंगे ॥ ९ ॥ तदात्व (वर्तमानकाल) में ही श्रद्धा रखने वाले, शास्त्रके ज्ञानसे शून्य, दम्भी और वाद तथा शीलमें आश्चर्य करने वाले होंगे (अर्थात् उस समय धर्मवाद भी दुर्लभ होगा, उसके आचरणकी तो बात ही क्या ?) तब धर्मके विचलित होने पर (कोई) (विष्णुस्मरण आदि) शेष धर्मोंसे युक्त दान और सत्यसे युक्त पुरुष शुभ (दया) आदि कर्मोंको ही करेंगे ११ उस समय संसार सर्वभक्षी अजितेन्द्रिय, गुणरहित और निर्लज्ज होजावेगा, यही कलुषका लक्षण है ॥ १२ ॥ जब ब्राह्मणोंकी वृत्तिको ब्राह्मणोंसे उतरते हुए वर्ण वाले आजीविकाके लिए ग्रहण करने लगेंगे, तब (पूर्ण) कलियुगके चिन्ह जानो॥१३॥ जब ज्ञान और विज्ञानको नष्ट करने वाली कलुषतासे संसारमें गड़बड़ी होने लगेगी, उस समय ज्ञान (शास्त्रीय-बोध) और विद्या (आत्मदर्शन) से रहित पुरुष, थोड़े (त्याग) से सिद्धि पा जाया करेंगे ॥ १४ ॥ युगके क्षीण होने पर महायुद्ध महानाद महावर्षा महाभय होगा, यह कषायका लक्षण है ॥ १५ ॥ कलियुगके आने पर राक्षस ब्राह्मणोंका रूप धारण कर लेंगे और

परिस्थते ॥१६॥ निःस्वाध्यायवषट्कारा अनेगारश्चाभिमानिनः। विप्राः क्रव्यादरूपेण सर्वभक्षा वृथाव्रताः ॥१७॥ मूर्खाः स्वार्थपरा लुब्धाः क्षुद्राः क्षुद्रपरिच्छदाः। व्यवहारोपवृत्ताश्च च्युता धर्माच्च शाश्वतात्॥१८॥ हर्तारः पररत्नानां परदारापहारकाः। कामात्मानो दुरात्मानः सोपधाः प्रियसाहसाः ॥ १९ ॥ तेषु प्रभवमानेषु तुल्यशीलेषु सर्वतः। अभाविनो भविष्यन्ति मुनयो बहुरूपिणः॥ २० ॥ उत्पन्ना ये कृतयुगे प्रधानपुरुषाश्रयाः। कथायोगेन तान् सर्वान् पूजयिष्यन्ति मानवाः। २१। तथा चौरा भविष्यन्ति तथा चैलापहारिणः। भक्ष्यभोज्यापहाराश्च करण्डानां च हारिणः॥ २२ ॥ चौराश्चौरस्य हर्तारो हन्ता हन्तु-

---

राजा चुगलखोरोंके द्वारा पृथ्वीका उपभोग करेंगे १६ ब्राह्मण राक्षसोंकी समान स्वाध्याय और वषट्कारसे हीन होजावेंगे, नीतिरहित और अभिमानी होजावेंगे सर्वभक्षी होजावेंगे और मिथ्या व्रत करने लगेंगे॥ १७ ॥ उस समय मनुष्य मूर्ख, स्वार्थपरायण लोभी क्षुद्र और हलके ओढने वाले होंगे और शाश्वत धर्मसे च्युत होकर भोजन वस्त्रमें ही लगे रहेंगे ॥ १८ ॥ दूसरेके रत्न और स्त्रियोंको छीनने वाले कामात्मा दुरात्मा और छली होंगे और उनको साहस प्रिय होगा ॥ १९ ॥ वे सब एकसे शील वाले जब ऐश्वर्यशाली होजावेंगे तब अनेक प्रकारका रूप धारण करने वाले बहुतसे विनाशकी ओर दौड़ने वाले मुनि प्रकट हो जावेंगे ॥२०॥ उस समयके मनुष्य कृतयुगमें उत्पन्न हुए प्रधान पुरुष (ईश्वर) के आश्रयसे रहने वाले भक्तोंकी कथायोगसे पूजा करेंगे (परन्तु अपने आप तैसा आचरण न करेंगे) २१ उस समय पुरुष वस्त्र चुराने वाले, भक्ष्य और भोज्य वस्तुओं को चुराने वाले और अन्ने उपले वा करण्डियोंको चुराने वाले होजावेंगे ॥ २२ ॥चोर चोरोंको चुराने लगेंगे और मारने वाले

भविष्यति । चौरैश्चौरक्षये चापि कृते क्षेमं भविष्यति ॥ २३ ॥ निःसारे क्षुभिते लोके निष्क्रये व्यन्तरस्थिते । नराः श्रयिष्यंति वनं करभारप्रपीडिताः ॥२४॥ पितॄनाज्ञापयिष्यन्ति पुत्राः कर्मणि सर्वशः । स्नुषा श्वश्रूस्तथा चैव युगान्ते मत्युपस्थिते ॥ २५ ॥ वाक्शरैरर्दयिष्यन्ति गुरून् शिष्याः समन्ततः । यज्ञकर्मण्युपरते रक्षांसि श्वापदानि च ॥ २६ ॥ कीटमूषकसर्पाश्च धर्षयिष्यन्ति मानवान् । क्षेमं सुभिक्षमारोग्यं सामर्थ्यं वापि बन्धुषु । उद्देशतो नरश्रेष्ठ भविष्यति युगक्षये ॥ २७ ॥ स्वयंपाला स्वयंचौरा युगसम्भारसंभृताः । मण्डलैः प्रचलिष्यन्ति देशे देशे पृथक् पृथक् २८ स्वदेशेभ्यः परिभ्रष्टा निःसाराः सह बन्धुभिः । नराः सर्वे भविष्यन्ति तदा कालपरिक्षयात् ॥२९॥ तदा स्कन्धे समाधाय कुमा-

को भी उस समय मारने वाले होजावेंगे इस प्रकार जब चोरों के द्वारा चोरोंका क्षय होजायगा तब शान्ति विराजने लगेगी २३ जब संसार निर्धन होजायगा, क्षुब्ध होजायगा, संध्योपासनसे रहित होजायगा और जब सब वर्ण एक हो जावेंगे, तब मनुष्य करके भारसे पीड़ित होकर वनको चले जावेंगे ॥ २४ ॥ कलियुगके आने पर पुत्र पिताओंको सब कामोंके लिए आज्ञा देने लगेंगे और बधुए सासोंको आज्ञा देने लगेंगी ॥ २५ ॥ शिष्य वाणीरूप बाणोंसे गुरुको चारों ओरसे छेदेंगे; यज्ञकर्मके बन्द होजाने पर राक्षस, हिंसक प्राणी कीट मूषक और सर्प मनुष्यों को धर्षित करने लगेंगे, हे नरश्रेष्ठ ! कलियुगके समय कुशल, सुभिक्ष, आरोग्य और बन्धुओंका एकत्रित रहना लेशरूपसे ही रहेगा ॥ २६ ॥ २७ ॥ युगके भारसे आवृत हुए पुरुष अपने आप ही पालक और चोर बन कर सेनाओंको साथ ले पृथक् पृथक् देशोंमें विचरण करेंगे ॥ २८ ॥ उस समय कालके क्षीण होनेसे धनरहित हुए पुरुष अपने देशसे भ्रष्ट होकर अपने

रान् विद्रुता भयात् । कौशिकीं प्रतरिष्यन्ति नराः क्षुद्भयपीडिताः॥
अङ्गान् वङ्गान् कलिङ्गांश्च काश्मीरानथ मेकलान् । ऋषिकांत-
गिरिद्रोणीः संश्रयिष्यन्ति मानवाः ॥ ३१ ॥ कृत्स्नं वा हिमवत्-
पार्श्वं कूलं च लवणाम्भसः । अरण्येषु च वत्स्यन्ति नरा म्लेच्छ-
गणैः सह ॥३२॥ नैव शून्या न चाशून्या भविष्यति वसुन्धरा ।
गोप्तारश्चाप्यगोप्तारः प्रभविष्यन्ति शस्त्रिणः ॥३३॥ मृगैर्मत्स्यै-
र्विहंगैश्च श्वापदैः सर्पकीटकैः । मधुशाकफलैर्मूलैर्वर्तयिष्यन्ति
मानवाः ॥ ३४ ॥ चीरं पर्णं च बहुलं वल्कलान्यजिनानि च ।
स्वयंकृतानि वत्स्यन्ति यथा मुनिजनास्तथा ॥३५॥ बीजानामा-
कृतिं निम्नेष्वीहन्तः काष्ठशङ्कुभिः । अजैडकं खरोष्ट्रं च पालयि-
ष्यन्ति यत्नतः ॥ ३६ ॥ नदीस्रोतांसि रोत्स्यन्ति तोयार्थे कूल-

बांधवोंको साथ लेकर मारे २ फिरेंगे ॥२९॥ उस समय क्षुधा और भयसे पीड़ित हुए मनुष्य अपने कुमारोंको कंधे पर चढ़ा भयसे भाग कर कौशिकी नदीको तरने लगेंगे ॥ ३० ॥ उस समय भयसे घबड़ाये हुए मनुष्य अंग वंग कलिंग कश्मीर मेकल और ऋषियोंकी प्यारी गिरिद्रोणियोंका आश्रय लेंगे ॥ ३१ ॥ मनुष्य म्लेच्छोंके साथ हिमाचलकी तलैटियोंमें, समुद्रके तट पर और वनोंमें निवास करेंगे ॥ ३२ ॥ पृथ्वी खाली या भरी नहीं रहेगी और रक्षा करने वाले शस्त्रधारी पुरुष भी अरक्षक हो जावेंगे ॥ ३३ ॥ मृग मत्स्य पक्षी हिंसक प्राणी सर्प कीट मधु शाक फल और मूलोंसे अपनी आजीविका करेंगे ॥ ३४ ॥ उस समय मनुष्य अपने बनाए हुए चीर (चीथड़े) पत्ते वल्कल वस्त्र और मृगछालाओंको ही अधिकतर ओढ़ेंगे ॥ ३५ ॥ पर्वतकी गुफा आदि निम्न स्थानोंमें रह कर पुरुष जंगलके और ग्रामके धान्यों के स्वरूपको जाननेकी इच्छासे उसको सम्पादन करनेमें समर्थ भेड़ बकरियोंको और गधे तथा ऊँटोंको यत्नपूर्वक पालेंगे ३६

माश्रिताः । पक्वान्नव्यवहारेण विपणन्तः परस्परम् ॥ ३७ ॥
तनूरुहैर्गथा जातैः समूलान्तरसंवृतैः । बह्वपत्याः प्रजाहीनाः कुल-
लक्षणवर्जिताः ॥ ३८ ॥ एवं भविष्यन्ति तदा मनुष्याः काल-
कारिताः । हीनाद्धीनं तदा धर्मं प्रजा समनुवत्स्यति ॥ ३९ ॥
आयुस्तत्र च मर्त्यानां परं त्रिंशद्भविष्यति । दुर्बला विषयग्लाना
रजसा समभिप्लुताः ॥४०॥ भविष्यति तदा तेषां रोगैरिन्द्रिय-
संक्षयः । आयुः प्रक्षयसंरोधाद्विषादः प्रभविष्यति ॥४१॥ शुश्रू-
षवो भविष्यन्ति साधूनां दर्शने रताः । सत्यं च प्रतिपत्स्यन्ति
व्यवहारोपसंक्षयात् ॥४२॥ भविष्यन्ति च कामानामलाभाद्धर्म-
शीलिनः । करिष्यन्ति च संकोचं स्वपक्षक्षयपीडिताः ॥ ४३ ॥
एवं शुश्रूषणे दाने सत्ये प्राणाभिरक्षणे । चतुष्पादः प्रवृत्तश्च

जलके लिए नदियोंके तट पर जाकर नदियोंके सोतोंको और नदियोंको रोकने लगेंगे और परस्पर पक्कान्नका व्यवहार करेंगे ॥ ३७ ॥ मूलधनके साथ कलाद्रव्य (व्याजधन) के लिए पुरुष कलह करेंगे, उनके बहुतसी सन्तानें होंगी, वे कुलके लक्षणों से रहित होंगी और तुच्छ होंगी ।३८। कालकी प्रेरणासे मनुष्यों के ऐसे होजाने पर हीन पुरुषोंसे और भी हीन प्रजा उत्पन्न होती चली जावेगी३९उस समय मनुष्योंकी आयु अधिकसे अधिक तीस वर्षकी हुआ करेगी, वे दुर्बल होंगे, विषयोंसे उनको ग्लानि होगी और वे रजोगुणसे व्याप्त होंगी ॥ ४० ॥ उस समय रोगोंसे उन की इंद्रियोंका क्षय होने लगेगा, और आयुके क्षयसे उनको विषाद होने लगेगा ॥ ४१ ॥तब वे शुश्रूषा करने लगेंगे और साधुओंके दर्शनमें प्रेम करने लगेंगे और व्यवहारके क्षीण होनेसे सत्यका आश्रय लेने लगेंगे ॥ ४२ ॥ और कामनाओंके न मिलनेसे धर्म-शील होने लगेंगे और अपने पक्षके क्षयसे संकुचित होकर अधर्म को कम करने लगेंगे । ४३ ॥ इस प्रकार शुश्रूषा दान सत्य और

धर्मः श्रेयोऽभिपत्स्यते ॥ ४४ ॥ तेषां लब्धानुमानानां गुणेषु परिवर्तताम् । स्वादु किं न्विति विज्ञाय धर्मं एवं वदिष्यति ४५ यथा हानिः क्रमात् प्राप्ता तथा वृद्धिः क्रमाद्गता । प्रगृहीते यतो धर्मे प्रपत्स्यति कृतं युगम् ॥ ४६ ॥ साधुवृत्तं कृतयुगे कषाये हानिरुच्यते । एक एव तु कालः स हीनवर्णो यथा शशी ॥ ४७ ॥ छन्नो हि तमसा सोमो यथा कलियुगे तथा । पूर्णश्च तमसा हीनो यथा कृतयुगे तथा ॥ ४८ ॥ अर्थवादः परं ब्रह्म वेदार्थं इति तं विदुः । अनिर्णिक्तमविज्ञातं दायाद्यमिव धार्यते ॥४९॥

प्राणाभिरक्षण रूप चार पादोंमें प्रवृत्त हुआ धर्म(अहिंसादिरूप) श्रेयको पावेगा ॥ ४४ ॥ श्रेयको पाने वाले मनुष्योंमें अन्वय-व्यतिरेकसे धर्म और अधर्मके फलोंको देख कर 'शब्द आदि गुणोंमें रमण करना अच्छा है, वा धर्ममें प्रेम करना अच्छा है' ऐसा सन्देह कर तत्त्व वस्तुका निश्चय कर मनुष्य धर्मका प्रकार कहेंगे, कि-॥ ४५ ॥ जिस प्रकार क्रमशः हानि आई थी उसी प्रकार क्रमशः वृद्धि आगई है, अब धर्मके ग्रहण करनेसे सत्ययुग आजावेगा ॥ ४६ ॥ कृतयुगमें सदाचरण होता है और कषाय (कलियुग) में हानि (पाप) होता है, काल एक ही है, और चन्द्रमाकी समान हीनवर्ण (फीकी प्रभावाला) होजाता है ४७ जिस प्रकार चन्द्रमा अंधकारसे ढकने पर नहीं दीखता है, इसी प्रकार काल (स्वरूप धर्म) कलियुगमें ढका रहता है और कृत-युगमें अंधकारसे हीन हुए चन्द्रमाकी समान प्रकाशित होता है ४८ परब्रह्म अर्थवाद है (सत्यअर्थका कहना अर्थात् तत्त्वभूतका कीट-भृगन्यायसे ध्यानक्रियाके द्वारा वैसा ही होजाना वेदार्थ कहलाता है,वह पिताके दिये हुए मलिन स्वर्णपिण्डको स्वर्णपिंडको न जान कर अपनेको दरिद्र माननेकी समान है,उस मलके दूर होने पर मैं धनवान् हूँ;इस प्रकारके निर्णयकी समान ब्रह्मकी भी प्रत्यक्

इष्टवादस्तपो नाम तपो हि स्थावरं कृतम् । गुणैः कर्माभिनिर्वृत्तिः गुणास्तथ्येन कर्मणा ॥ ५० ॥ आशीस्तु पुरुषं दृष्ट्वा देशकालानुवर्तिनी । युगे युगे यथा कालमृषिभिः समुदाहृता ॥ ५१ ॥ इह धर्मार्थकामानां देवतानां प्रतिक्रिया । आशिषश्च शुभाः पुण्यास्तथैवायुर्युगे युगे ॥ ५२ ॥ यथा युगानां परिवर्तनानि चिरं प्रवृत्तानि विधिस्वभावात् । क्षणं न संतिष्ठति जीवलोकः क्षयोदयाभ्यां परिवर्तमानः ॥ ५३ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि
चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

सूत उवाच । इत्येवमाश्वासयतो राजानं जनमेजयम् । आर्तीः

स्वरूपसे धारणा कीजाती है ॥ ४९ ॥ वर्णाश्रमके योग्य तपोधर्म इष्टवाद है अर्थात् स्वर्गादि अभीष्टको कहने वाला है क्यों कि-तप अनादि और अव्यभिचारी फलवाला शास्त्रमें निश्चित किया गया है, तदनन्तर गुण अर्थात् देहादिसे कर्मकी सिद्धि होती है और सत्यकर्मसे गुण अर्थात् देहादिक उत्पन्न होते हैं इस प्रकार सिद्ध होता है, कि-कर्मोंसे मुक्ति नहीं मिलसकती इसलिए ब्रह्म का आश्रय लेना चाहिये ॥५०॥ आशीः-अर्थात् एक ही कर्मसे फलप्राप्ति-देश और कालके अनुसार होती है, ऋषियोंने कहा है, कि-युग युगमें श्रद्धाके तारतम्यसे कर्मका न्यूनाधिक फल होता है ॥ ५१ ॥ इस मृत्युलोकमें धर्म अर्थ और कामका तथा देवताओं (की पूजा) का फल आशीः (कर्म) और शुभ पुण्य युगके अनुसार फल देते हैं ॥५२॥ जैसे ब्रह्माजीके स्वभाववश चिरकालसे युगोंका परिवर्तन होता आरहा है, इसी प्रकार क्षय और उदयसे बदलता हुआ जीवसमूह क्षण भरके लिए भी (एक आकारमें) नहीं रहता है ५३ चौथा अध्याय समाप्त ॥४॥

सूतने कहा, कि-राजा जनमेजयको आश्वासन देते हुए ऋषि

तानागतं वाक्यमृषेः परिषदा श्रुतम् ॥ १ ॥ अमृतस्येव संवाहः
प्रभा चन्द्रमसो यथा । अतर्पयत तच्छ्रोत्रं महर्षेर्वाङ्मयो रसः २
धर्मकामार्थसंयुक्तं करुणं वीरहर्षणम् । रमणीयं तदाख्यानं कृत्स्नं
परिषदा श्रुतम् ॥३॥ केचिदश्रूणि मुमुचुः श्रुत्वा दध्युस्तथापरे ।
इतिहासं तमृषिणा पाणाविव निदर्शितम् ॥४॥सदस्यान् सोऽभ्य-
नुज्ञाय कृत्वा चापि प्रदक्षिणाम् । पुनर्द्रक्ष्याम इत्युक्त्वा जगाम
भगवानृषिः ॥ ५ ॥ अनुजग्मुस्तदा सर्वे प्रयान्तमृषिसत्तमम् ।
लोके प्रवदतां श्रेष्ठं ये विशिष्टास्तपोधनाः ॥ ६ ॥ याते भगवति
व्यासे तदा ब्रह्मर्षिभिः सह । ऋत्विजः पार्थिवाश्चैव प्रतिजग्मु-
र्यथागतम् ॥ ७ ॥ पन्नगानां सुघोराणां कृतानां वैरयातनाम् ।
जगाम रोषमुत्सृज्य राजा विषमिवोरगः ॥ ८ ॥ होत्राग्निदीप्त-

के भूत भविष्यत् विषयक वाक्यको(जनमेजयकी) सभाने भी सुना
था ॥१॥ अमृतके प्रवाह और चन्द्रमाकी प्रभाकी समान महर्षि
का वाक्यमय रस सभाके मनुष्योंके कानोंको तृप्त कर रहा था २
धर्म अर्थ और कामसे भरा हुआ, करुणारसपूर्ण और वीरोंको
हर्षित करने वाला महाभारतका रमणीय आख्यान सारी सभा
ने सुना ॥३॥ ऋषिके द्वारा हाथमें धरे हुए की समान दिखाये
हुए महाभारतके इतिहासको सुन कर कोई पुरुष आँसू गिराने
लगे और कोई पुरुष ध्यानस्थसे होगए ।४। उस समय भगवान्
वेदव्यास ऋषि यज्ञकी प्रदक्षिणा कर तथा सदस्योंसे मैं फिर आप
लोगोंके दर्शन करूँगा यह कह कर चले गए ॥ ५ ॥ उस समय
श्रेष्ठ २ सब तपस्वी भी गमन करते हुए वक्ताओंमें श्रेष्ठ ऋषि
सत्तमके पीछे २ चलने लगे ॥ ६ ॥ ऋषियों सहित भगवान्
व्यासजीके चले जाने पर ऋत्विज और राजे भी इच्छानुसार
चले गए ॥ ७ ॥ जिस प्रकार सर्प विषको त्याग देता है, इसी
प्रकार भयंकर सर्पोंको वैरके कारण यातना देकर राजा जन-

शिरसं परित्राय च तक्षकम्। आस्तिकोऽथाश्रमपदं जगाम स महामुनिः ॥ ९ ॥ राजापि हस्तिनपुरं जगाम स्वजनावृतः। अन्वशासच्च मुदितस्तदा प्रमुदिताः प्रजाः ॥ १० ॥ कस्यचित्त्वथ कालस्य स राजा जनमेजयः। दीक्षितो वाजिमेधेन विधिवद्भूरिदक्षिणः ॥ ११ ॥ संज्ञप्तमश्वं तत्रास्य देवी काश्या वपुष्टमा। संविवेशोपगम्याथ विधिदृष्टेन कर्मणा॥१२॥ तां तु सर्वानवद्यांगीं चकमे वासवस्तदा। संज्ञप्तमश्वमाविश्य तया मिश्री बभूव सः॥१३ तस्मिन् विकारे जनिते विदित्वा तत्त्वतश्च तत्। असंज्ञप्तोयमश्वस्ते ध्वंसेत्यध्वर्युमब्रवीत् ॥ १४ ॥ अध्वर्युर्ज्ञानसम्पन्नस्तदिंद्रस्य विचेष्टितम्। कथयामास राजर्षेः शशाप स पुरन्दरम्१५ जनमेजय उवाच। यद्यस्ति मे यज्ञफलं तपो वा रक्षतः प्रजाः।

मेजय भी रोषको त्याग कर चला गया ॥ ८ ॥ धिष्ण्याग्नियोंसे दमकते हुए शिर वाले तक्षककी रक्षा करके महामुनि आस्तीक भी अपने आश्रमको चले गए ॥ ९ ॥ तब राजा जनमेजय भी अपने बांधवोंको साथमें लेकर हस्तिनापुरको चला गया और प्रसन्न होकर प्रसन्न प्रजाका शासन करने लगा ॥ १० ॥ कुछ समयके अनन्तर बहुत सी दक्षिणा देने वाले राजा जनमेजयने अश्वमेध यज्ञकी दीक्षा ली ॥ ११ ॥ अश्वका आलभन किया गया, तब काशिराजकी पुत्री देवी वपुष्टमा, शास्त्रानुसार कर्मसे उसके पासमें बैठ गई ॥१२॥ उस समय इन्द्रने उस सर्वांगसुन्दरी की कामना की, और वह उस आलभन किये हुए अश्वमें घुस कर वपुष्टमाके साथ मिश्रित हो गया ॥१३॥ इस विकारके होने पर इस बातको भली प्रकार देख कर जनमेजयने अध्वर्यु से कहा, कि–तेरा यह घोड़ा नहीं मरा है, तेरा नाश हो ॥ १४ ॥ तब अध्वर्यु ने ज्ञानदृष्टिसे जान कर इन्द्रकी करतूत राजासे कही तब उस राजर्षिने इन्द्रको शाप दिया, कि–॥ १५ ॥ जनमेजयने

फलेनानेन सर्वेण ब्रवीमि श्रूयतामिदम् ॥ १६ ॥ अद्यप्रभृति देवेन्द्रमजितेन्द्रियमस्थिरम् । क्षत्रिया वाजिमेधेन न यक्ष्यन्तीति शौनक ॥ १७ ॥ ऋत्विजश्चाब्रवीत् क्रुद्धः स राजा जनमेजयः ॥ दौर्बल्यं भवतामेतद्यदयं धर्षितः क्रतुः ॥ १८ ॥ विषये मे न वस्तव्यं गच्छध्वं सह बान्धवैः । इत्युक्तास्तत्यजुर्विप्रास्तं नृपं जातमन्यवः ॥१६॥ अमर्षादिन्द्रशासश्च पत्नी शालागताः स्त्रियः । राजा परमधर्मज्ञस्तामसौ जनमेजयः ॥ २० ॥ असतीं वपुष्टमामेनां निर्यातयत मे गृहात् । यया मे चरणौ मूर्ध्नि पातितौ रेणुगुण्ठितौ ॥ २१ ॥ शौंडीर्यं मे यया भग्नं यशो मानश्च दूषितः । न चैनां द्रष्टुमिच्छामि परिक्लिष्टामिव स्रजम् ॥ २२ ॥ न स्वादु

कहा, कि-यदि मेरे प्रजारक्षण तप और यज्ञका कुछ फल हो तो उस सबके फलसे मैं जिस बातको कहता हूँ, उसको सुनो हे शौनक ! आजसे अजितेन्द्रिय अस्थिर इन्द्रकी क्षत्रियगण अश्वमेधयज्ञसे पूजा नहीं करेंगे ॥ १६ ॥ १७ ॥ तदनन्तर राजा जनमेजयने क्रोधमें भर कर ऋत्विजोंसे भी कहा, कि-यह आपकी दुर्बलता है, कि जो मेरे यज्ञका अपमान हुआ है ॥ १८ ॥ अब आप मेरे राज्यमें न रहें और अपने बांधवोंके साथ यहाँसे चले जाँय, इस प्रकार कहने पर ब्राह्मणोंको भी क्रोध आ गया और उन्होंने उस राजाको छोड़ दिया ॥ १६ ॥ अमर्षमें भरा हुआ राजा जनमेजय अपने रनवासकी रानियोंके पास पहुँचा, फिर परमधर्मज्ञ राजा जनमेजय वपुष्टमाके विषयमें कहने लगा, कि-॥ २० ॥ इस असती वपुष्टमाको मेरे घरसे निकाल दो; इसने अपने धूल भरे हुए पैर मेरे शिर पर धर दिए हैं ॥ २१ ॥ इसने मेरे माहात्म्यको दूषित कर दिया है और मेरे यश तथा मानको भी दूषित कर दिया है, मैं इसको खींची हुई मालाकी समान नहीं देखना चाहता ॥ २२ ॥ जो मनुष्य दूसरे

सोऽश्नाति नरः सुखं स्वपिति वा रहः। अन्वास्ते यः प्रियां भार्यां परेण मृदितामिह ॥२३॥ पुनर्नैवोपभुञ्जन्ति श्वावलीढं हविर्यथा। एवमुच्चैः प्रभाषन्तं क्रुद्धं पारिक्षितं नृपम्। गन्धर्वराजः प्रोवाच विश्वावसुरिदं वचः ॥ २४ ॥ विश्वावसुरुवाच। त्रिशतशतयज्वानं वासवस्त्वां न मृष्यते। अप्सरास्तेन पत्नी ते विहितेयं वपुष्टमा ॥२५॥ रम्भानाम्नाप्सरा देवी काशिराजसुता मता। सैषा योषिद्वरा राजन् रत्नभूतानुभूयताम् ॥ २६ ॥ यज्ञे विवरमासाद्य विघ्नमिन्द्रेण ते कृतम्। यज्वा ह्यसि कुरुश्रेष्ठ समृद्ध्या वासवोपमः ॥ २७ ॥ बिभेत्यभिगवांच्छकस्तव क्रतुफलैर्नृप। तस्मादावर्तितश्चैव क्रतुरिन्द्रेण ते विभो ॥२८॥ मागैषा

से धर्षित की गई अपनी भार्याको रखता है, वह पुरुष स्वादु वस्तुओंको नहीं खा सकता और एकान्तमें शयन भी नहीं कर सकता ॥ २३ ॥ जैसे कुत्तेकी चाटी हुई हविका फिर उपभोग नहीं किया जासकता; इसी प्रकार दूसरेसे छू हुई स्त्रीका उपभोग नहीं किया जासकता, राजा जनमेजय क्रोधमें भर कर इस प्रकार ज़ोरसे बोलरहा था, उस समय गंधर्वराज विश्वावसु कहने लगा२४ विश्वावसुने कहा, कि-तुमने तीन सौ यज्ञ किये हैं यह बात इन्द्र को सह्य नहीं है, इस लिए उसने रम्भा नाम वाली अप्सराको तुम्हारी भार्या वपुष्टमा बना दिया था अर्थात् रम्भाको वपुष्टमा का रूपधर कर भेजा था वह काशीराजकी पुत्री प्रतीत होने लगी थी अतः हे राजन्! आप अपनी श्रेष्ठ स्त्रीको रत्नस्वरूप जानिये ॥ २५ ॥ २६ ॥ यज्ञमें विवर देख कर इन्द्रने तुम्हारे यज्ञमें यह विघ्न कर दिया, हे कुरुश्रेष्ठ! तुम यजन करने वाले हो, और समृद्धिमें इन्द्रकी समान हो ॥ २७ ॥ हे राजन्! तुम्हारे यज्ञके फलोंसे तिरस्कृत होता हुआ इन्द्र डरता रहता था, हे विभो! इस लिए इन्द्रने तुम्हारे यज्ञमें यह विघ्न डाल

वासवेनेह प्रयुक्ता विघ्नमिच्छता । कृतोविवरमासाद्य संहतं ह्यश्व वाजिनम् ॥ २९ ॥ रत्नमिन्द्रेण रम्भायां मन्यसे यां वपुष्टमाम् । अथ ते गुरवः शप्तास्त्रियज्ञशतयाजिनः ॥ ३० ॥ भ्रंशितस्त्वं च विप्राश्च बलादिन्द्रसमादिह । त्वत्तश्चैव सुदुर्धर्षात्त्रियज्ञशतया· जिनः ॥३१॥ बिभेति हि सदा त्वत्तो ब्राह्मणेभ्योऽपि वासवः । एकेन वै तदुभयं तीर्णं शक्रेण मायया ॥३२॥ स एष स महा- तेजा विजिगीषुः पुरन्दरः । कथमन्यैरनाचीर्णं नप्तुर्दारानविक्र- मेत् ॥ ३३ ॥ विश्वावसुरुवाच । यथैव हि परा बुद्धिः परो धर्मः परो दमः । यथैव परमैश्वर्यं कीर्तितं हरिवाहने । तथैव त्वयि दुर्धर्षे त्रियज्ञशतयाजिनि ॥ ३४ ॥ मा वासवं मा च गुरुमात्मानं

दिया था ॥ २८ ॥ तुम्हारे यज्ञमें विघ्न डालना चाहने वाले इन्द्रने यह मायाकी थी उसने यज्ञमें विवर (कोई दोष) देख कर अश्वको संहत (मारा हुआ)देख कर जिसको आप वपु- ष्टमा समझते थे, उस रंभामें रमण किया था, इस पर तुमने अपनेको तीन सौ यज्ञ कराने वाले गुरुओंको शाप देदिया इससे तुम तथा ब्राह्मण इन्द्रकी समान बल (ऐश्वर्यसे क्रोधके कारण) भ्रष्ट होगए हो, तीन सौ यज्ञ करने वाले दुराधर्ष आपसे और ब्राह्मणोंसे इन्द्र सर्वदा डरता ही रहता है अब इन्द्र माया कर के एक आपके द्वारा ही उन दोनोंसे पार होगया है ।२९-३२। विजय चाहने वाला इन्द्र महातेजस्वी है वह अन्य सत्पुरुषोंने जिसका आचरण कभी नहीं किया है ऐसे पोतोंकी स्त्रियों पर आक्रमण करना रूप कर्मको कैसे कर सकता है ॥ ३३ ॥ हरि- वाहन इन्द्रमें जितनी परम बुद्धिपरम धर्म परम धन और परमै- श्वर्य कहा जाता है, उतनी ही बुद्धि आदि तीन सौ यज्ञ करने वाले दुराधर्ष आपमें भी रहती है ॥ ३४ ॥ तुम इन्द्रको अपने गुरुको, अपने आपको अथवा वपुष्टमाको भी दोष मत दो, क्यों

मा नपुष्टगाम् । गच्छ दोषेण कालो हि सर्वथा दुरतिक्रमः ३५
ऐश्वर्येणाश्वमाविश्य देवेन्द्रेणासि रोषितः । आनुकूल्येन देवस्य
वर्तितव्यं सुखार्थिना ॥३६॥ दुस्तरं प्रतिकूलं हि प्रतिस्रोत इवा-
म्भसः । स्त्रीरत्नमुपभुंक्ष्वेमामपापां विगतज्वरः ॥३७॥ अपापा-
स्त्यज्यमाना वै त्यजेयुरपि योषितः । अदुष्टास्तु स्त्रियो राजन्
दिव्यास्तु सविशेषतः ॥३८॥ भानोः प्रभा शिखा वन्हेर्वेदीहोत्रे
तथाहुतिः । परामृष्टाप्यसंसक्ता नापदुष्यन्ति योषितः ॥ ३९ ॥
ग्राह्या लालयितव्याश्च पूज्याश्च सततं बुधैः । शीलवत्यो नम-
स्कार्याः पूज्याः श्रिय इव स्त्रियः ॥ ४० ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि
पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

कि—समयका उल्लंघन करना बड़ा कठिन है॥३५॥ इन्द्रने अपने
ऐश्वर्यसे अश्वमें प्रवेश करके आपको क्रोध दिला दिया था, सुख
चाहने वाले व्यक्तिको देवेन्द्रके अनुकूल होकर बर्ताव करना
चाहिये ॥३६॥ जलके प्रवाहके प्रतिकूल होकर तैरना कठिन है,
अब तुम निःसन्ताप होकर इसस्त्री रत्नका उपभोग करो ।३७।
यदि निष्पाप स्त्रियोंको भी त्याग दिया जाया करेगा तो स्त्रियें
भी स्वामियोंका त्याग करने लगेंगी, हे राजन् ! स्त्रियें अदुष्ट
(अल्प दोष वाली) होती हैं और विशेषतः दिव्य होती हैं ३८
सूर्यकी प्रभा, अग्निकी शिखा और वेदीहोमकी आहुति छूने पर
भी अछूती रहती है, इसी प्रकार स्त्रियें भी छूने पर अदूषित
रहती है (संभोग करने पर ही दूषित होती हैं) ॥ ३९ ॥ बुद्धि-
मान् पुरुषको शीलवती स्त्रियोंका ग्रहण करना चाहिये, उनका
लालन करना चाहिये और सत्कार करना चाहिये, तथा उनका
लक्ष्मीकी समान पूजन करना चाहिये ४० पाँचवाँ अध्याय समाप्त

सौतिरुवाच । एवं स विश्वावसुनानुनीतः प्रसादमागम्य वपुष्टमायाः । चकार मिथ्या व्यतिशंकितात्मा शांतिं परां मानवधर्मदृष्टाम् ॥ १ ॥अममभिविनिवर्तमानसं सः समभिलपञ्जनमेजयो यशः स्वम् । विषयमनुशशास धर्मबुद्धिर्मुदितमना रमयन् वपुष्टमां ताम् ॥२॥ न हि विरमति विप्रपूजनान्न च विनिवर्तति यज्ञदानशीलात् । न विषयपरिरक्षणाच्च्युतोऽभून्न च परिगर्हति तां वपुष्टमां च ॥३॥विधिविहितमशक्यमन्यथा हि यदपिरचिंत्य-सया पुराब्रवीत् सः । इति स नृपतिरात्मवांस्तदासौ तदनुविचिंत्य बभूव वीतमन्युः ॥ ४ ॥ इदं महाकाव्यमृषेर्महात्मनः । पठन् नृणां पूज्यतमो भवेन्नरः । प्रकृष्टमायुः समवाप्य दुर्लभं लभेच्च सर्वज्ञफलं च केशवम् ॥ ५ ॥ शतक्रतोः कल्मषविप्रमोक्षणं पठ-

सूतपुत्रने कहा, कि-निष्कारण ही जिसका चित्त दूषित होरहा था ऐसा राजा जनमेजय विश्वावसुके अनुनय करने पर वपुष्टमा पर प्रसन्न होगया और उसे मनुष्योचित परम शान्ति मिली १ धर्मबुद्धि राजा जनमेजय जिसमें श्रम करनेके लिये अब मन नहीं लगाना पड़ेगा ऐसे अपने यशसे प्रकाशित होकर अपने देशका शासन करने लगा और मनमें प्रसन्न होकर वपुष्टमाके साथ रमण करने लगा ॥ २ ॥ वह ब्राह्मणोंकी पूजा करनेसे नहीं छूटता था और उसका यज्ञ और दान करनेका स्वभाव कभी नहीं बदलता था, अपने देशकी रक्षा करनेमें वह कभी नहीं चूकता था और वपुष्टमाकी निन्दा भी कभी नहीं करता था ॥ ३ ॥ अपने विचार करके जिस बातको पहिले कहा था कि-प्रारब्धके विधानको लौटा नहीं जा सकता,इस बातको विचार कर वह आत्मवान् राजा क्रोधरहित होगया ॥ ४ ॥ महात्मा ऋषिके इस महाकाव्यको पढ़ने पर मनुष्य पूजनीय हो जाता है और बड़ी आयुको पाकर कठिनतासे मिलने वाले सब बातोंको जानने के

न्निदं मुच्यति कल्मषान्नरः । तथव कामान् विविधान् समश्नुते तथामुक्तापश्च चिराय नन्दति ॥ ६ ॥ यथा हि पुष्पप्रभवं फलं द्रुमाः फलात् प्रजायन्ति पुनश्च पादपाः । तथा महर्षिप्रभवा इमा गिरः प्रवर्धयन्ते तमृषिं प्रवर्धिताः ॥ ७ पुत्रानपुत्रो लभते सुवर्च-मश्च्युतः पुनर्विन्दति चात्मनः स्थितिम् । व्याधिं न चाप्नोति चिरं स बन्धनं क्रियां च पुण्यां लभते गुणान्वितः ॥ ८ ॥ पति-मभिलषते च सत्सु कन्या श्रवणमुपेत्य शुभा मुनेस्तु वाचः । जन-यति च सुतान् गुणैरुपेतान् स्वजनहिते द्विषतां प्रमर्दनं च ॥ ९ ॥ विजयति वसुधां च राजवृत्तिर्धनमतुलं लभते द्विषज्जयं च । विपुल-

---

फलरूप केशवको पाजाता है ॥ ५ । इन्द्रके पापको छुड़ाने वाले इस आख्यानको पढ़ने पर मनुष्य पापसे छूट जाता है तथा अनेक प्रकारकी कामनाओंको भोगता है और कामनाओंको प्राप्त करके बहुत कालतक आनन्द पाता है ६ जिसप्रकार वृक्ष पुष्पसे उत्पन्न होनेवाले फलोंको उत्पन्न करते हैं और फलसे फिर वृक्ष उत्पन्न होते हैं, इसी प्रकार महर्षिसे उत्पन्न हुई यह वाणियें बढ़ कर फिर उन ऋषियोंको ही बढ़ाती है (अर्थात् व्यासजीसे उत्पन्न हुआ यह ग्रंथ व्यासजीको ही बढ़ाता है यह एक आश्चर्य है) ७ इस ग्रन्थको सुननेसे अपुत्र पुरुष सुन्दर कान्ति वाले पुत्रोंको पाता है और च्युत पुरुषकी फिर पहिलीसी स्थिति हो जाती है और उस पर व्याधि वा बन्धनका अवसर आकर नहीं पड़ता है और वह पुरुष गुणोंसे युक्त होने पर पुण्यमयी क्रियाको पाता है ॥ ८ ॥ व्यास मुनिकी शुभ वाणियोंको सुन कर कन्या सज्जन पुरुषोंमेंसे अभिलषित पतिको पाती है और गुणवान् पुत्रोंको उत्पन्न करती है और शत्रुओंका मर्दन करने वाले और अपना हित करने वाले पुत्रको भी उत्पन्न करती है ॥ ९ ॥ और राजा के आचारका पालन करने वाला पुरुष इस ग्रन्थको सुननेसे पृथ्वी

गनि लभेच्च वैश्यः सुगतिमिमाच्छ्रवणाच्च शूद्रजातिः ॥ १० ॥
पुराणमेतच्चरितं महात्मनामधीत्य बुद्धिं लभते च नैष्ठिकीम् ।
विहाय दुःखानि विमुक्तसङ्गः स वीतरागो विचरेद्वसुन्धराम् ११
इत्येतदाख्यानमुदाहृतं वै प्रतिस्मरन्तो द्विजमण्डलेषु । स्थैर्येण
धैर्येण पुनः स्मरन्तः सुखं भवन्तोऽनुचरन्तु लोकम् ॥१२॥ इति
चरितमिदं महात्मनामृषिकृतमद्भुतवीर्यकर्मणाम् । कथितमिदं स-
मासविस्तरैः किमपरमिच्छसि किं ब्रवीमि ते ॥ १३ ॥

इति श्रीमद्भारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भविष्यान्त-
र्ग्रंथार्थप्रकाशो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

जनमेजय उवाच । प्रभावं पद्मनाभस्य स्वपतः सागराम्भसि ।

को जीत लेता है, अतुल धन पाता है और शत्रुओंको जीत लेता है और वैश्य बहुतसा धन पाता है तथा शूद्र जाति वाला पुरुष इसको सुननेसे सुगति पाता है ॥ १० ॥ और (ब्राह्मण) महात्मा पुरुषोंके इस प्राचीन चरित्रको सुन कर नैष्ठिकी बुद्धिको पाता है और दुःखोंको त्याग कर मुक्तसंग हो रागको छोड़ कर पृथ्वी पर विचरण करता है ॥ ११ ॥ मैंने आपसे यह आख्यान कहा अब तुम पृथिवीमण्डलमें विचरण कर ब्राह्मणोंकी मण्डलियोंमें इसका स्मरण करके स्थिरता और धीरतासे इसका (स्मरण) वर्णन करते हुए संसारमें विचरण करो ॥ १२ ॥ व्यासऋषि का रचा हुआ यह अद्भुत वीर्य और कर्म वाले महात्माओंका चरित्र सबको और विस्तारसे आपको सुना दिया, अब आप और क्या सुनना चाहते हैं उसको मैं आपसे कहूँ ॥ १३ ॥ छठा अध्याय समाप्त ॥ ६ ॥

जनमेजयने कहा, कि–हे योगवेत्ताओंके स्वामिन् ! आप समुद्रके जलमें शयन करने वाले पद्मनाभके प्रभावको और पहिले पुष्कर में देवता और ऋषि जिस प्रकार प्रकट हुए थे, इस सारे योग

पुष्करे वै यथेऽद्भुता देवाः सपितरणाः पुरा ॥१। एतदाख्याहि (वृत्तान्त का मुझसे वर्णन करिये क्योंकि—भगवान्की कीर्तिको सुनते २ मेरा मन नहीं भरता [नीलकण्ठ—आगे नवम श्लोकमें लिखा है; कि-"वक्तुमर्हसि धर्मज्ञ यशो नारायणात्मकम् हे धर्मज्ञ ! आप नारायणात्मक यशका वर्णन करिये" और श्रुतिमें लिखा है कि-"न तस्येशो कश्चन,तस्य नाम महद्यशः तस्मिन् यशो निहितं विश्वरूपम् उन परमात्मा कोई स्वामी नहीं है, उनका नाम महान् यश है, उनमें विश्वरूप यश प्रतिष्ठित रहता है" इस प्रकार इस प्रकरणके आरंभमें श्रुतिप्रसिद्ध नारायणात्मक यशको कहनेके लिए कह कर इस प्रकरणका आरंभ किया गया है और इस प्रकरणके उपसंहार (अन्त)में भी कहा है,कि 'अधीत्य सर्व-मध्यात्मं देवलोके महीयते—सब अध्यात्मको पढ़ कर देवलोकमें सत्कार पाता है"इस प्रकार आदि और अन्तके वर्णनके वर्णनसे यह छब्बीस अध्याय वाला सारा प्रकरण ब्रह्मपरक प्रतीत होता है। और जो इस प्रकरणमें जगत्की उत्पत्ति आदि कही है, वह निम्नलिखित न्यायके अनुसार अफल (साधारण फल वाली) होने पर भी इसीका अङ्ग है।"तत्फलवत्संनिधौ अफलं तदंगभूतम् (तत्त्वमसि) आदि फल वाले महावाक्यके सामने कुछ नहीं है, अर्थात् साधारण फलवाली है अंग है" और इसकी ही अत एव तत्त्वमसि आदि महावाक्योंसे जिसका प्रतिपादन किया जाता है ऐसे अद्वैत ब्रह्मकी प्राप्तिके लिए ही यह प्रकरण है। और जो इस प्रकरणमें देवता और असुर आदि शब्द हैं, उनको भी एकाग्र (ब्रह्म की समान निर्विशेष निश्चल और शम काम आदि चित्तकी वृत्तिविशेष समझना चाहिये। "सलिल एको द्रष्टा, द्वैतो भवतीति ह्युवाच प्रजापतिः॥ देवाश्चासुराः—जल (ब्रह्म) एक ही द्रष्टा है, वही दो होजाता है, देवता और असुर प्रजापतिके

निखिलं योगं योगविदांपते। शृण्वतस्तस्य मे कीर्तिं न तृप्तिरपि-

पुत्र है" इस उदाहरणसे प्रतीत होता है, कि-यह प्रकरण ब्रह्म तत्त्वका निरूपण करनेके लिए, रचा गया है। यद्यपि एकार्णव आदि शब्दोंके सलिल आदि श्रुतिके समान अर्थ वाला होनेपर यहाँ पर मूलमूली-भावके होने पर खण्डप्रलयका व्याख्यान है, यहाँ शंका होसकती है क्योंकि-आकाश आदिके न होने पर भी केवल जलधातुके ही सद्भावका श्रवण है, तथापि पूर्वापरके विरोधसे इसकी उपेक्षा करनी चाहिये इस प्रकार यहाँ पर निम्न लिखित श्लोकोंके अनुसार व्याख्या करनी चाहिये कि-"एकार्णवं विशुद्धा चित् विष्णुरव्याकृतं नभः। पुष्करं द्विविधं कार्यं शयनागौ सुरासुरौ॥ अनयैव दिशाध्यात्माधिदैविकरूपकैः॥ निरूपितं पुराणेषु पूर्वेष्वपि न संशयः॥ पुष्करं पुष्करप्रादुर्भावे तदिह दृश्यते। अतस्तद्व्याख्यया सर्वं पुराणं व्याकृतं भवेत्॥ विद्याधिकारानगताश्वमेधादिकेष्विह। इन्द्रवृत्रादयः शब्दा आत्ममोहपराः कृताः॥ अत्रापि ब्रह्मणस्तद्वत् पारोक्ष्येण निरूपणम्। चक्रे दुर्जनचारेभ्यस्तत्त्वरत्नं सुरक्षितुम्॥ अनयैव दिशा वेदे ज्ञेयं वृत्रवधादिकम्। इत्याशयेन भगवान् व्याख्यत् पारोक्ष्यतत्परम्॥-अर्थात्-एकार्णव विशुद्ध चित् है, विष्णु अव्यक्त आकाश है। पुष्करकी (आध्यात्मिक और आधिदैविक) इस प्रकार दो प्रकार से व्याख्या करनी चाहिये। देवता और असुर शय तथा काम हैं। पहिले पुराणोंमें भी इसी प्रकार आध्यात्मिक और आधिदैविकरूपसे व्याख्या की है, पुष्करप्रादुर्भावमें भी यही बात दीखती है, अतः उसकी व्याख्या करनेसे ही सब पुराणकी व्याख्या हो जायगी अर्थात् पुराणभरकी व्याख्या करनेका फल मिल जावेगा। विद्याका अधिकार पाने पर जाननेमें आने वाले अश्वमेध आदि में वेदमें इन्द्र वृत्र आदि शब्द आत्ममोहपरक रूपमें कहे हैं

जागते ॥२॥ कियन्तं चैव कालं वै शयितः पुरुषोत्तमः । किमर्थं

इसी प्रकार यहाँ पर ब्रह्मका परोक्षनीतिसे निरूपण किया है। यही बात वृत्रवध आदिके विषयमें भी समझनी चाहिये, दुर्जन रूप चोरोंसे रत्नकी रक्षा करनी चाहिये इस आशयसे व्यासजीने परोक्षरीतिसे तत्पर (ब्रह्मपर-ऊपरसे संसारपरक व्याख्याकी है' और इस पुष्करप्रादुर्भावमें अपनी बुद्धिके अनुसार यत्र तत्र अध्यात्मविद्याके स्वरूप और आधिदैविकरूपसे यथामति व्याख्या करते हैं, कि राजा जनमेजय संसारियोंकी अतिविकट गतिको सुन कर अत्यन्त उद्विग्न होरहा था और उसने श्रुतिमें यह भी सुना था, कि-"तरति शोकमात्मवित्, नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय-आत्मवान् पुरुष शोकके पार होजाता है,और मुक्ति पानेका और कोई मार्ग नहीं है" अतः राजा जनमेजयने आत्मज्ञानसे अतिरिक्त और कोई श्रेयका साधन न देख कर उसको विस्तार पूर्वक जाननेकी इच्छासे बूझा, कि-(समुद्रके जलमें) सागरकी समान अनन्त अपार (एकं रसं०महद्भूतमनन्तमपारम्,सलिल एको द्रष्टा द्वैतो भवति-एक रस स्वरूप, अनन्त अपार महाभूतरूप, सलिल (उपनामक ब्रह्म) एक द्रष्टा है और वह ही द्वैत होजाता है। इत्यादि श्रुति प्रसिद्ध) ब्रह्ममें, न कि-प्राकृत समुद्रके जलमें, (क्योंकि-"नष्टाग्निह्यनिले लोके नष्टाकाश-महीतले । आकाश महीतल पवन और जललोकके नष्ट होने पर" इस श्रुतिसे इनके कारण अग्नि आदिके भी नष्ट होने पर परब्रह्मका शेष रहना ही प्रतीत होता है) अर्थात् शुद्ध ब्रह्ममें शयन करने वालेको (स्वमपीतो भवति तस्मादेनं स्वपितीत्याचक्षते-अपने लीन हुआ होता है इससे उसको स्वपिति-सोने वाला कहते हैं) अर्थात् ईश्वरग्रासरूप चौथे पद्मनाभके (अर्थात् पद्म-सारा प्रपञ्च जिनकी नाभिरूप गर्भमें रहता है ऐसे मायो-

शयते कालं तस्य कालस्य सम्भवः ॥ ३ ॥ कियता चैव कालेन

पाधिक ईश्वरके) सृष्टि आदि करनेकी सामर्थ्य (प्रभाव)को कहिये । यहाँ पर मुख्य प्रश्न यह है, कि—निष्कल ब्रह्मपुरुषमें अव्यक्त लीन होजाता है, इस प्रकार श्रुति और स्मृतिमें जिसका अव्यक्त नामसे वर्णन किया है ऐसे मायावी शुद्ध ब्रह्ममें लीन होने वाले ईश्वरके अर्थात् स्व (अपने) मायातीत रूपमें (पहुँच जाने वाले अर्थात् योगके द्वारा निष्फल ब्रह्ममें वा कैवल्य समाधि में लीन होने वाले मायावी ईश्वरके प्रभावको कहिये । और दूसरा प्रश्न यह है कि-"योम पुष्करमम्बरम्"-इस कोशमें पुष्कर का आकाशवाची बताया है । और "ओं खं ब्रह्म,अमृतं दिवि परमे व्योमन्"। इसमें ब्रह्मको भी आकाश बताया है,उस पुष्कर शब्द वाच्य ब्रह्ममें देवता और ऋषि (इन्द्रिय और प्राण)किस प्रकार उत्पन्न हुए हैं और तीसरा प्रश्न यह है, कि-योगसूत्रमें संशुद्ध पुरुषोंके ब्रह्मको प्राप्त करनेके उपायको कहिये ॥ १॥२॥ वह पुरुषोत्तम कितने समय तक सोते रहते हैं और वह कालके उत्पादक होने पर भी उसमें शयन क्यों करते हैं [नीलकण्ठ श्रुति और स्मृतिमें लिखा है, कि—"तस्मादव्यक्तमुत्पन्नं त्रिगुणं द्विजसत्तम—हे द्विजसत्तम ! उससे तीन गुणों वाला अव्यक्त हुआ" वह अव्यक्त मायावी ईश्वर मायाके तिरोधानके बाद और प्रादुर्भावसे पहिले कितने समय तक रहता है और वह कालकी योनि (उत्पादक) होने पर कालमें क्यों शयन करता (वर्तमान रहता) है अर्थात् परिमित काल वाली सृष्टिको क्यों करता है प्रवाहकी समान सर्वदा सृष्टि क्यों नहीं करता रहता है] ॥३॥ वह देवताओंका स्वामी कितने समयमें जागता है और वह भगवान् उठ कर किस प्रकार सारे संसारको रचते हैं [नीलकण्ठ-जनमेजय प्रलयावस्थाकी अवधि बूझने लगा कि—वह देवताओं

प्रबुध्यति सुराधिपः । कथमुत्थाय भगवानसृजन्निखिलं जगत् ४ के प्रजापतयस्तात आसन् पूर्वं महामुने । कथं निर्मितवांश्चैव चित्रं लोकं सनातनः ॥ ५ ॥ एकमेकार्णवे लोके नष्टे स्थावर-जङ्गमे । नष्टे देवासुरगणे प्रनष्टोरगराक्षसे ॥ ६ ॥ नष्टानलानिले लोके नष्टाकाशमहीतले । केवलं गह्वरीभूते महाभूतविपर्यये ॥७॥ प्रभुर्महाभूतपतिर्महातेजा महाकृतिः । आस्ते सुरगुरुश्रेष्ठो विधिमास्थाय कां मुने ॥८॥ तन्मे त्वमु ।पन्नाय ब्रह्मन्नेतदसंशयम् । वक्तु-

के स्वामी कितने समयमें जागते हैं और जब यह अद्वितीय कूटस्थ है तब वह सारे जगत्को कैसे रचता है अर्थात् कूटस्थ ही पर भी उपादान कारण कैसे बन जाता है]॥४॥ (इसी बात को बूझते हैं, कि-) हे महामुने ! पहिले प्रजापति कौन थे और सनातनने अर्थात् सर्वदा एक रूप कूटस्थने विचित्र लोकको किस प्रकार रचा था॥५॥हे मुने!जब स्थावरजङ्गम जगत् नष्ट होकर जगत् एक समुद्र रूप (आत्मरूप) होजाता है और देवता असुर तथा सर्प और राक्षस नष्ट होजाते हैं और पवन अग्नि तथा आकाश और महीतल जिससमय नष्ट होजाता है और जिस समय महाभूतों का विपर्यय होकर संसार गह्वर रूप होजाता है तब महाभूतपति महातेजस्वी, महाकृति और देवताओंके गुरुओंमें श्रेष्ठ प्रभु किस नियतिको ग्रहण करके सृष्टि रचते हैं[नीलकण्ठ लोक शब्द आत्म-वाचक भी है,क्योंकि-श्रुतिमें लिखा है,कि-आत्मानं लोकमुपासीत-"आत्मस्वरूप लोककी उपासना करे" अतः एकार्णव नामक शुद्ध चिन्मात्र आत्माके नष्ट होने पर अर्थात् चिदात्माके स्थावर आदिके अदृश्य होजाने पर आकाश आदिका जिसमें विपर्यय हो जाता है वह (महाभूतपति स्रष्टा) ईश (महातेजाः) समष्टि तैजस रूप सूत्रात्मा अथवा (महाकृति)अत्यन्त विस्तृत विराटरूप होकर इनमेंसे किस नियतिका आश्रय लेकर सृष्टिकरता है,वह महदादिके

महेशि भविष्ठ यशो नारायणात्मकम् ॥६॥ प्रादुर्भावं पुरस्कृत्य

ईशसे भी श्रेष्ठ हैं] ॥ ६-८ ॥ इस लिये हे भविष्ठ ब्रह्मन ! मुझ उपपन्न (अधिकारी पुरुष से आप नारायणात्मक यशका इसप्रकार वर्णन करिये, जिससे मुझे (किसी प्रकारका) संदेह न रहे [नीलकण्ठ-"अध्यारोपापवादाभ्यां निष्प्रपञ्च प्रपञ्च्यते- अध्यारोप और अपवादसे निष्प्रपञ्च पुरुषका प्रपञ्चन (वर्णन) किया जाता है (वेदान्तसारमें लिखा है, कि-असर्पभूते रज्जौ सर्पारोपवत् वस्तुनि अवस्त्वारोपः अध्यारोपः । वस्तु सच्चिदानन्दमद्वयं ब्रह्म, अज्ञानादि सकलजडसमूहः अवस्तु । अपवादो नाम रज्जुविवर्तस्य सर्पस्य रज्जुमात्रत्ववत् वस्तुविवर्तस्य अवस्तुनः अज्ञानादेः प्रपञ्चस्य वस्तुमात्रत्वम् । तदुक्तम्-सतत्त्वतोऽन्यथा भावो विवर्त इत्युदीरितः॥ अर्थात् जैसे रज्जु वास्तवमें सर्प नहीं होती है, परन्तु तो भी भ्रम होने पर अज्ञानवश उसमें सर्प आरोपित होता है अर्थात् वह रज्जु सर्प मालूम होने लगती है ऐसे ही सच्चिदानन्द अद्वितीय ब्रह्मवस्तु अवस्तुरूप अज्ञानादि जड-समूहके आरोपका नाम अध्यारोप है । जिसका जो वास्तविकस्वरूप हो उसको उस वास्तविकस्वरूपसे अन्यस्वरूपकी प्रतीतिका नाम विवर्त है जैसे कि अन्धकारमें पड़ी हुई रज्जुका विवर्त्त सर्प होता है, उसी रज्जु विवर्त्त सर्पका रज्जुतज्ञान अपवाद है, ऐसे ही वस्तुविवर्त्त अज्ञानादि समस्त अवस्तु प्रपञ्चका वस्तुत्वज्ञान अपवाद है ॥)इस न्यायका आश्रय लेकर ही अद्वैत ब्रह्मको सिद्ध किया जासकता है, परन्तु अध्यारोपकी समान दुर्बोध होनेसे अनुपपन्न है और आपने भी बार २ इसका ही वर्णन किया है, अतः मुझ संशयाविष्टका मन जिस प्रकार निःसंशय होजाय उस प्रकार आप अविद्यावच्छिन्न नरके द्वारा अपनेमें कल्पित ईश सूत्र और विराट तक नार कहलाने वालेके स्थान

भूतं भव्यं महात्मनः । श्रद्धानामुपविष्टानां भगवान् वक्तुमर्हसि १०
वैशम्पायन उवाच । नारायणयशोज्ञाने या भवेद्भवतः स्पृहा ।
त्वद्वंशानघपूतस्य कार्यं कुरुकुलर्षभ ॥ ११ ॥ शृणुष्वादिपुरा-
णेभ्यो देवताभ्यो यथाश्रुति । ब्राह्मणानां च वदतां श्रुतोऽस्माभि-

नारायणके अर्थात् शुद्ध वस्तुके तदात्मक(ईश आदिसे घट तक के) वैभवविलासको तत्त्वतः कहिये । इससे यह बात सूचित की है, कि-अनन्तर अबाह्य कृत्स्न और प्रज्ञानघन श्रुतिप्रसिद्ध बाह्या-भ्यन्तर शुद्ध चिन्मात्ररूप सर्वत्र सुननेमें आने वाले नारायणको प्रमाणपूर्वक समझाइये] ॥ ६ ॥ आप हम श्रद्धापूर्वक बैठे हुए पुरुषोंसे महात्मा (परमात्मा) के भूत प्रादुर्भावको और भव्य प्रादुर्भावको कहिये [नीलकण्ठ-आप हम श्रद्धालुपुरुषोंसे, विद्वद्-दृष्टिसे अधिष्ठानसे अभिन्न होनेके कारण अनित्यसिद्ध भूत प्रादुर्भावको और मूढोंकी दृष्टिमें उत्पन्न होने वाले भव्य-प्रादुर्भाव को कहिये] ॥ १० ॥ वैशम्पायनजीने कहा, कि- हे निष्पाप कुरुकुलर्षभ ! आपको जो नारायणके यशको जाननेकी स्पृहा होरही है, यह तुम्हारे कुलके अनुरूप है और यज्ञ आदि कार्य की फलरूप है [नीलकण्ठ-प्रश्न करने वालेको उत्साहित करते हुए वैशम्पायनजी कहने लगे, कि हे निष्पाप कुरुकुलर्षभ ! नारा-यणके यशको जाननेकी जो तुम्हें स्पृहा हुई है, वह तुम्हारे वंशके अनुरूप है और धनको बाँटने वाले भाइयोंके धनकी समान तुम्हारे पास आगई है वह स्पृहा (यज्ञ आदि) पूत अनुष्ठानका फल है, क्योंकि-श्रुतिमें लिखा है, कि-" तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसा नाशकेनेति श्रुतेः-अर्थात् ब्राह्मण परब्रह्मको वेदका अनुवचन करके और यज्ञ दान तप आदिसे जानना चाहते हैं"] ॥ ११ ॥ मैंने प्राचीन देवताओंसे और महात्मा ब्राह्मणोंके कहने पर पद्मनाभके प्रभावकी जो बात

महात्मनाम् ॥ १२ ॥ तथा च तपसा दृष्टो बृहस्पतिसमद्युतिः । पाराशर्यस्ततः श्रीमान् गुरुर्द्वैपायनोऽब्रवीत् ॥ १३ ॥ तत्तेहं संप्रवक्ष्यामि यथाप्रज्ञं यथाश्रुतम् । न विज्ञातुं मया शक्यमृषिमात्रेण भारत॥१४॥कः समुत्सहते ज्ञातुं परं नारायणात्मकम् । विश्वात्मनो यं ब्रह्मापि न वेदयति तत्त्वतः ॥१५॥ श्रुतं मे विश्वदेव नां यद्रहस्यं महर्षिणाम् । तदिदं सर्वदेवानां तत्त्वतस्तत्त्ववादिनाम्१६

सुनी है, उसको आप सुनिये ॥१२॥ बृहस्पतिकी समान कान्ति वाले अपने गुरु व्यासजीके मैंने पुण्यवश दर्शन पाये हैं, उन पराशरके पुत्र श्रीमान् व्यासजीने जो वात कही थी ॥ १३ ॥ हे भारत ! मैंने जिस प्रकार सुना है, उसको मैं अपनी बुद्धिके अनुसार कहता हूँ क्योंकि हे भारत ! मैं ऋषि ही हूँ, अतः उस सब बातको नहीं जान सकता [नीलकण्ठ–मैंने जो बात देवता आदि से सुनी है, और द्वैपायनसे सुनी है उस सबका जानना और कहना बड़ा कठिन है, इसी लिए मैं उसे अपनी बुद्धिके अनुसार थोड़ा बहुत कहता हूँ, हे भारत ! मैं मन्त्रद्रष्टा ऋषि हूँ अतः मैं भगवान्के मन्त्रको ही जानने वाला हूँ आत्मवित् नहीं हूँ, इस लिये पूर्ण रीतिसे उसका व्याख्यान नहीं कर सकता, यही बात छान्दोग्य उपनिषद्में नारदजीने भी सनत्कुमारसे कही है] १४ वेद भी जिन परमात्माके तत्त्वको पूर्णरूपसे नहीं जानते; उन को पूर्णरूपसे कौन जान सकता है [नीलकण्ठ–वेद भी परम पुरुष नारायणको अर्थात् शुद्ध चिदात्मक पुरुषको पूर्णरीति (मुख्यवृत्ति) से नहीं जानते, किन्तु भागलक्षणासे जानते हैं उन होनेसे अनुपपन्न रीतिसे कैसे वर्णन कर सकता हूँ] ॥१५॥ किया है, अतः शुभ ... वाले सर्वदेव विश्वेदेवताओंका और होजाय उस प्रकार मैंने सुना है, उस नारायणात्मक यज्ञकोही कल्पित ईश सूत्र ओरात्मवेत्ता और कर्म करने वाले पुरुषोंको

तदध्यात्मविदां नित्यं कारणं चैव कर्मिणाम् । अधिदैवं च यद्दैवं तद्दैवमिति संज्ञितम् ॥ १७ ॥ यद्भूतमधिभूतं च यत्परं च

भी इस कारणका विचार करना चाहिये जो देवताओंका भी देवता है, वह दैव (सबको आनन्द देने वाला प्रारब्ध) कहलाता है [नीलकण्ठ-मैंने जो विश्वेदेवताओंका और महर्षियोंका गोपनीय रहस्य सुना है, वह यही है कि जो तुमने नारायणात्मक यश बूझा है । विश्वेदेवता सर्वदेव हैं अर्थात् वह अनारोपित रूपसे सर्वात्मस्वरूप हैं । क्योंकि-श्रुतिमें लिखा है, कि-"सर्वं खल्विदं ब्रह्म" "सर्वं यदयमात्मा- यह सर्व ब्रह्म ही है यह आत्मा सर्व है" उन कृपालुओंका ऐसा स्वभाव है, कि-वे शिष्यों पर कृपा करके तत्त्व कहते रहते हैं, जो कारण अर्थात् प्रवर्तक वस्तु है वह दैव अध्यात्मज्ञानी देवताओंका और कर्मिष्ठ विद्वानोंका अधिदैव (देवताओंसे भी अधिक) दैव-ज्ञान नाम वाला महाभाग है, और वह देवताओंका दैव सबको सुख देने वाला भागस्वरूप है । श्रुतिमें भी लिखा है कि-एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति-इसकी मात्रा पर ही सब आजीवन करते हैं] ॥ १६॥१७ ॥ जो भूत है अधिभूत है और जो महर्षियोंसे पर है और सत्य तथा देवदृष्ट है उसको वेदवेत्ता जानते हैं [नीलकण्ठ-अब अध्यायके अन्तमें सब प्रश्नोंके उत्तरको संक्षेपसे कहते हैं, कि-इस ब्रह्मका भूतत्व अर्थात् अनादित्व व्यवहार-मायामें भी है और यह अधिभूत है अर्थात् सब भूतोंमें सद्रूपसे अनुस्यूत है, तात्पर्य यह है कि —अनन्त है, जाड्यरूपसे माया भी सर्वत्र पुगी हुई है इस लिए वह महर्षियोंसे ज्ञेयतासे पर (श्रेष्ठ) है परन्तु मायोपाधिकमें भी रहता है अतः उसको सत्य कहा है और मायाके बाधित होने पर वह भी बाधित होजाता है अतः वह असत्य है अर्थात् सत्य होने पर भी अविद्या है और जो

महर्षिणाम् । यत् सत्यं देवदृष्टं च यत्तद्वेदविदो विदुः ॥१८॥ यः कर्ता कारको बुद्धिर्मनः क्षेत्रज्ञ एव च । प्रधानं पुरुषः शास्ता एकस्त्वदभिशब्द्यते ॥१९॥ कालः कालं स्वापयति द्रष्टा स्वाधीन एव च । प्राणः पञ्चविधश्चैव ध्रुवमक्षय एव च ॥ २०॥ उच्यते

चित् है वह देवदृष्ट है अर्थात् देव (चक्षुरादिप्रत्यक्षका भी) दृष्ट (प्रत्यक्ष) है । श्रुतिमें लिखा है, कि–न हि दृष्टेर्द्रष्टारं पश्येत् प्राणस्य प्राणमुत चक्षुषश्चक्षुः–अर्थात् दृष्टिके द्रष्टाको नहीं देखा जासकता, वह प्राणका प्राण है नेत्रका नेत्र है अर्थात् ज्ञानमात्र-स्वरूप है, और वह वेद सत्य ज्ञान और अनन्त ब्रह्म है, उसको वेदवेत्ता जानते हैं । इससे सागरजलका अर्थात् ब्रह्मका शुद्धरूप कह दिया] ॥ १८ ॥ जो कर्ता कारक बुद्धि मन क्षेत्रज्ञ प्रधान पुरुष और शास्ता है वह एक ही है [नीलकण्ठ–ब्रह्मके तटस्थ लक्षणका निरूपण करते हुए कहते हैं, कि–जो (आकाश आदि के) कर्ता हैं, (हिरण्यगर्भके द्वारा भौतिकके) कारक हैं, बुद्धि और मनःस्वरूप हैं (इस प्रकार महान् अहंकार रूपत्व कह दिया) क्षेत्रज्ञ है अर्थात् उनमें साक्षिमात्रसे द्रष्टृत्व रहता है (इस से पञ्चनामका प्रभाव कह दिया) भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्म एतत्–भोक्ता भोग्य प्रेरिताको मान कर सब ब्रह्म तीन प्रकारका कहलाता है" इसी लिये कहा है, कि–वह प्रधान है अर्थात् जड़ है पुरुष है अर्थात् जीव है, शास्ता है अर्थात् ईश है, ये तीनों एक परमात्मा ही हैं] ॥ १९ ॥ काल कालको शयन कराता है, वह द्रष्टा और स्वाधीन है, वह पाँच प्रकारका प्राण है, ध्रुव है, अक्षय है, उसमें परायण रहने वाले उसका अनेक प्रकारसे वर्णन करते हैं वही सबको उत्पन्न करता है और शमन करता है, जो हमसे कर्म कराता है उसने हमें रक्खा है, उस ईशकी हम पूजा करते हैं; अतः हम

निविधैर्भावैस्तमेवानघ तत्परैः । स एव भगवान् सर्वं करोति विकरोति च ॥२१॥ योऽस्मान् कारयते कर्म तेनाऽस्म व्याकुलीकृताः । भजामहे तमेवेशं तमेवेच्छाम निर्वृताः ॥२२॥ यो वक्ता यश्च वक्तव्यो यश्चाहं तद्ब्रवीमि वः । इदं शृणुत यच्छ्रेयो यच्चान्यत् परिजल्पथ ॥ २३ ॥ याः कथाश्चैव वर्तन्ते श्रुतयो वोथ

शान्त होकर उसकी ही उपासना करते हैं [नीलकण्ठ—अब तीसरे प्रश्न "वह कितने समय तक शयन करता है" का उत्तर देते हैं, कि—वह काल (ब्रह्म) कालको शयन कराता है अर्थात् कालका भी काल है, इसी लिये स्वाधीन है, कालके अधीन नहीं है, वह किस प्रकार उठ कर सृष्टि करता है इस प्रकार सृष्टिविषयक प्रश्न किया था, ढाई श्लोकमें उसका उत्तर देते हैं, कि—प्राणोपासक अनेक प्रकारके भावोंसे तथा पञ्चप्राणरूपसे उसकी उपासना करते हैं, हे अनघ ! वह ध्रुव है अर्थात् अविनाशी है इसी लिये अव्यय अर्थात् ह्रास शून्य है उसकी ही प्राणवृत्तिके भेदसे पाँच प्रकारसे उपासना की जाती है वही भगवान् वियदादिको रचता है और आत्मस्वरूपसे विकृत होजाता है। योऽस्मान् कर्म कारयते एष ह्येव साधु कर्म कारयति जो हमसे कर्म कराता है, वही हमसे सत्कर्म कराता है" इत्यादि श्रुतिप्रमाणके द्वारा ब्रह्मसे व्याकुल किये हुए अर्थात् विधिनिषेधके चक्करमें पड़े हुए हम शान्त होकर उसकी ही यज्ञोंसे प्रार्थना करना चाहते हैं]२२ जो वक्ता वक्तव्य और श्रवणक्रिया श्रेय है, और जिसका तुम और भी अनेक रूपोंसे वर्णन करते हो उसको मैं तुमसे कहता हूँ नीलकण्ठ—सब चिन्मात्र है इसको दो श्लोकोंसे वर्णन करते हैं, कि—जो वक्ता (वाणीका प्रवर्तक) वक्तव्य (अर्थ) अहं (वक्तृत्वाभिमानी जीव) है और जो श्रेय अर्थात् मोक्ष है और तुम जिस जिस स्वर्ग आदिका वर्णन करते हो वह सब चिन्मात्र है] २३

गह्वराः । विश्वं विश्वपतिर्देवाः सर्वं नारायणात्मकम् ॥ २४ ॥
यत्सत्यं यदनृतमादिमत्क्षरं वै यद्भूतं भवति मिथश्च यच्च भव्यम्।
यत्किंचिच्चरमचराख्ययं त्रिलोके तत्सर्वं पुरुषवरः प्रभुर्वरिष्ठः २५

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि पुष्कर-
प्रादुर्भावे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

वैशम्पायन उवाच । चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां तु कृतं

जो (भूतार्थवादरूप) कथाएँ होती रहती हैं और जो गह्वर (रहस्य-प्रतिपादक) श्रुतियें हैं,विश्व (पाल्य)विश्वपति (पालक) देवता (करण) हैं यह सब नारायणात्मक है (यह मैं तुमसे कहता हूँ) ॥ २४ ॥ जो सत्य है, जो असत्य है, जो आदिम है, क्षर है, जो भूत भविष्य और मिथुन है और इस त्रिलोकी में जो चराचरात्मक है, जो पुरुषवर है प्रभु इन सबसे श्रेष्ठ है [नीलकण्ठ—इसी बातका उपसंहार करते हैं, कि—जो लौकिक सत्यानृतरूप है, आदिम (आदिका है) क्षर अर्थात् कार्य है वह उभयात्मक भूत और मिथ-बीज और अङ्कुर-आदि परम्पराका जनक है, भविष्यरूप है चर (परिणामी) है और अचर (कूटस्थ) है वरिष्ठ (नारायण) हैं वरीयान् (पुरुष) है, वर (समष्टिजीव , है और (व्यष्टिजीव) है, इन सब कल्पितोंकी अपेक्षा शुद्ध प्रभु वरिष्ठ हैं] ॥२५॥ सातवाँ अध्याय समाप्त ७

वैशम्पायनजीने कहा, कि हे जनमेजय ! सत्ययुगको चार सहस्र वर्षका कहते हैं और इसकी संध्या आठ सौ वर्षकी होती है [नीलकण्ठ—ज्ञानसाधनवैराग्यसिद्ध्ये पुत्तिकादिवत् । ब्रह्मादेः क्षयितां वक्तुं युगमानमिहोच्यते ॥ ज्ञानके साधन वैराग्यको लानेके लिए पुत्तिकादिकी समान ब्रह्मा आदि भी क्षीण होजाते हैं, इस बातको जतानेके लिए इस अध्यायमें युगोंका मान कहा जाता है" देवताओं चार सहस्र वर्षोंका सत्ययुग

युगम् । तस्य तावच्छती सन्ध्या द्विगुणा जनमेजय ॥ १ ॥ तत्र धर्मश्चतुष्पादो ह्यधर्मः पादविग्रहः । स्वधर्मनिरताः सन्तो यजन्ते चैव मानवाः ॥२॥स्थिता धर्मपरा विप्रा राजवृत्तेः स्थिता नृपाः ।

होता है और युगसंध्या आठ सौ वर्षकी होती है अर्थात् आठ सौ वर्ष तक दोनों युगोंके धर्म मिले हुए चलते हैं देवमानके अनुसार यह४८००वर्ष होते हैं और सौरमानके अनुसार १७२८०० वर्ष होते हैं । सावनमानके अनुसार प्रतिवर्ष पाँच दिन पन्द्रह घड़ी इकतीस पल और तीस विपल बढ़ जाते हैं और यह भी एक राशिमें तीन सम्वत्सरोंका स्पर्श करने वाले गुरुमें सम्वत्सर के लुप्त होने पर हीन हो जाते हैं अर्थात् सौर और सावन मान की संख्या एकसी होजाती है] ॥१॥ कृतयुगमें धर्म (तप शौच दया और सत्य इन) चार पादोंसे पूर्ण रहता है और धर्म अधर्मके पादोंको बाँध लेता है तथापि उसका पाद रहता है उस समय मनुष्य अपने धर्ममें निरत रह कर यजन किया करते हैं ब्राह्मण धर्ममें परायण रहते हैं और राजे राजधर्ममें परायण रहते हैं, वैश्य कृषिमें परायण रहते हैं और शूद्र शुश्रूषामें परायण रहते हैं [नीलकण्ठ-अर्थात् सत्ययुगमें फलकी कामनासे रहित हिंसाशून्य धर्म होता है, त्रेतायुगमें फलकी कामनासे कर्म किये जाते हैं द्वापरमें दम्भसे किये जाते हैं,और कलियुगमें धर्मका लोप होजाता है अथवा फलकामना शून्य धर्म सत्ययुग है। सकाम कर्म त्रेतायुग है,दांभिक धर्म द्वापर है और धर्मलोप कलि है परन्तु प्रथमयुगमें फलकी इच्छा न रख कर धर्म किया जाता है तब भी जिस प्रकार फलके लिये आम उत्पन्न करने पर भी उसके पीछे छाया और गन्ध भी अपने आप उत्पन्न होजाती है, इसी प्रकार निष्काम धर्म भी फल देता ही है तो उस समय भी हीनसम्पत्ति वाला पुरुष दूसरे बहुतसी सम्पदा वाले पुरुष

कृष्यामभिरता वैश्याः शूद्राः शुश्रूषवस्तथा ॥ ३ ॥ सदा सत्यं तपश्चैव धर्मश्चैव विवर्धते । सद्भिराचरितं यच्च क्रियते ख्यायते च यत् ॥४॥ एतत्कृतयुगे वृत्तं सर्वेषामेव भारत । प्राणिनां धर्मबुद्धीनामपि चेन्नीचयोनिनाम् ॥ ५ ॥ त्रीणि वर्षसहस्राणि त्रेतायुगमिहोच्यते । तस्य तावच्छती सन्ध्या द्विगुणा परिकीर्तिता ६ द्वाभ्यामधर्मः पादाभ्यां त्रिभिर्धर्मो व्यवस्थितः । तत्र सत्यं च सत्वं च कृते सर्वं प्रवर्तते ॥ ७ ॥ त्रेतायां विकृतिं यान्ति वर्णा लौल्येन संयुताः । चातुर्वर्ण्यस्य वै कृत्यात्यान्ति दौर्बल्यमाश्रिताः ॥ ८ ॥ एष त्रेतायुगविधिर्विहितो देवनिर्मितः । द्वापरस्यापि या चेष्टा तामपि श्रोतुमर्हसि ॥९॥ द्वापरं द्वे सहस्रन्तु वर्षाणां कुरुसत्तम ।

को देख कर अपनेको ऐश्वर्यहीन मानता हुआ दुःखी होने लगता है इस प्रकार कृतयुगमें भी अधर्मरूप दुःख है, इसी लिये कहा है, कि कृतयुगमें भी पादविग्रह (एक पाद वाला) अधर्म रहता है, इस लिये धर्म अधर्म आदि सबको उखाड़नेमें समर्थ तर ज्ञानका ही सम्पादन करना चाहिये] ॥ २ ॥ ३ ॥ उस समय सत्य तप और धर्म सर्वदा बढ़ता रहता है और सज्जन पुरुष जिस धर्मका आचरण करते हैं, दूसरे उसका उपदेश देते हैं ॥ ४ ॥ हे भारत ! कृतयुगमें सब धर्मबुद्धि प्राणी इसी प्रकार आचरण करते हैं और नीच योनि वाले पुरुष भी धर्मानुकूल ही व्यवहार करते हैं ॥ ५ ॥ कालगणनामें त्रेतायुग तीन सहस्र वर्ष का कहलाता है और उसकी सौ से दुगनी अर्थात् छः सौ वर्षकी त्रेतायुगकी संधि होती है ॥ ६ ॥ उस समय अधर्म दो पादोंसे रहता है और धर्म तीन पादसे स्थित रहता है, कृतयुगमें सत्य और सत्त्व आदि सब प्रवृत्त रहता है ॥ ७ ॥ धर्मफलकी स्पृहा वाले मनुष्य विकृत होजाते हैं और चारों वर्णके धर्मके शिथिल होनेसे सब वर्ण दुर्बल होजाते हैं ॥ ८ ॥ देवने त्रेतायुगकी विधि

तस्य तावच्छती सन्ध्या द्विगुणा परिकीर्तिता ॥ १० ॥ तत्राप्यथ परा विप्रा ज्ञानिनो रजसावृताः । शठा नैष्कृतिकाः क्षुद्रा जायंते कुरुपुङ्गव ॥११॥ द्वाभ्यां धर्मः स्थितः पद्भ्यामधर्मस्त्रिभिरुत्थितः । विपर्ययं शनैर्यान्ति कृते ये धर्मसेतवः ॥ १२ ॥ ब्राह्मण्यभावा नश्यन्ति तथास्तिक्यं विशीर्यते । व्रतोपवासास्त्यज्यन्ते द्वापरे युग-पर्यये ॥१३॥ तथा वर्षसहस्रन्तु वर्षाणां द्वे शते तथा । संध्याया सह संख्यातं क्रूरं कलियुगं स्मृतम् ॥ १४ ॥ तत्राधर्मश्चतुष्पादः स्याद्धर्मः पादविग्रहः । कामनिष्ठास्तमश्छन्ना जायन्ते तत्र मानवाः नैवोपवासकृत् कश्चिन्न च साधुर्न सत्यवाक् । आस्तिको ब्रह्म-वक्ता वा नरो भवति वै तदा ॥१६॥ अहंकारगृहीताश्च प्रक्षीण-

रची है, अब द्वापरयुगकी जो चेष्टा है, उसको भी आप सुनिये ६ हे कुरुसत्तम ! दो हजार वर्षका द्वापर होता है और उसकी संध्या भी चारसौ वर्षकी होती है ॥ १० ॥ उस समय भी ब्राह्मण अर्थपरायण ज्ञानी और रजोगुणसे युक्त होते हैं और हे कुरु-पुङ्गव ! शठ नैष्कृतिक और क्षुद्र भी होते हैं ॥ ११ ॥ उस समय अधर्म तीन पादोंसे खड़ा रहता है और धर्म दो पादोंसे वर्तमान रहता है और कृतयुगके धर्मसेतु उस समय धीरे २ बदल जाते हैं ॥१२॥ जब द्वापर युगके बदलनेका समय आता है तब(कलि की संकरतासे) ब्राह्मणभाव नष्ट होने लगते हैं, आस्तिकता नष्ट होने लगती है, मनुष्य व्रत और उपवासोंको त्यागने लगते हैं १३ इसी प्रकार एक सहस्र दो सौ वर्ष तक युगसंध्यासहित क्रूर कलि-युग रहता है (ऐसा धर्मशास्त्रोंमें) कहा है ॥ १४ ॥ तब अधर्म के चारों पाद तहाँ वर्तमान रहते हैं और धर्मका एक पाद रहता है, उस समय कामनामें निष्ठा रखने वाले अज्ञानग्रस्त प्राणी उत्पन्न होते हैं ॥ १५ ॥ उस समय न कोई उपवास करेगा न कोई साधु रहेगा और उस समय कोई आस्तिक ब्रह्मवक्ता मनुष्य

स्नेहबान्धवाः। विप्राः शूद्रसमाचाराः शूद्रास्त्वाचारलक्षणाः १७ दूषकास्त्वाश्रमाणां च वर्णानां चैव संकराः। अगम्येष्वभिरं-स्यन्ते वर्तत्येवं कलौ युगे ॥१८॥ एवं द्वादशसाहस्रं तदेकं युग-मुच्यते। तदेकसप्ततिगुणं मन्वन्तरमिहोच्यते ॥ १९ ॥ त्रय्यां चैव न सन्देहो युगान्ते जनमेजय। दिव्यं द्वादशसाहस्रं युगं तु कवयो विदुः। एतत् सहस्रपर्यन्तं तदहो ब्राह्ममुच्यते ॥२०॥ ततोऽहनि गते तस्मिन् सर्वेषामेव देहिनाम्। शरीरनिर्वृतिं चक्रे रुद्रः संहार-

---

नहीं होगा ॥ १६ ॥ उस समय अहंकार मनुष्योंको जकड़ लेगा, बांधवों पर स्नेह क्षीण होजावेगा, ब्राह्मण शूद्रके सा धर्म पालने लगेंगे और शूद्र ब्राह्मणोंके सा आचार पालने लगेंगे ॥ १७ ॥ कलियुगमें मनुष्य आश्रमधर्मोंको दूषित करने वाले, वर्णोंमें संकरता फैलाने वाले और अगम्य स्त्रियोंमें रमण करने वाले होंगे ॥ १८ ॥ इस प्रकार बारह हजार (दिव्य) वर्षोंका एक युग अर्थात् चतुर्युगियोंका समय मन्वंतर कहलाता है ॥ १९ ॥ हे जनमेजय ! युगान्त (प्रलय तक) तो त्रयी (धर्म अर्थ और काम) में तो कोई सन्देह नहीं है (परन्तु मोक्ष दुर्लभ है) देव-ताओंके बारह सहस्र वर्षोंको कवि युग (चतुर्युगी) कहते हैं, जितने समयमें सहस्र चतुर्युगी बीत जाती हैं,उतने समयमें ब्रह्माजी का एक दिन बीतता है [नीलकण्ठ–तद्यथेह कर्मचितो लोकः क्षीयते। एवमेवामुत्र पुण्यचितो लोकः क्षीयते–अर्थात् जिस प्रकार कर्मसे एकत्रित किया हुआ दीखने वाला पदार्थ क्षीण होजाता है इसी प्रकार पुण्यसे सम्पादन करने पर दीखनेमें आने वाला पदार्थ (लोक) क्षीण होजाता है' इत्यादिसे स्थावरसे लेकर ब्रह्मा तक सब विनाशी हैं। अतः मोक्षके लिए यत्न करना चाहिये] ॥२०॥ ब्रह्माजीके दिनके पूर्ण होने पर संहारकी बुद्धि वाले रुद्र सब प्राणियोंके शरीरमें सुखासक्तिको उत्पन्न कर देते

बुद्धिमान् ॥ २१ ॥ देवतानां च सर्वेषां ब्राह्मणानां महीपते । दैत्यानां मानवानां च यक्षगन्धर्वरक्षसाम् ॥२२॥ देवर्षीणां ब्रह्मर्षीणां तथा राजर्षिणामपि । किन्नराणामप्सरसां भुजङ्गानां तथैव च ॥२३॥ पर्वतानां नदीनां च पशूनां चैव भारत । तिर्यग्योनिगतानां च सत्त्वानां मृगपक्षिणाम् ॥२४॥ महाभूतपतिर्देवः पञ्चभूतानि भूतकृत् । जगत्संहारणार्थाय कुरुते वैशसं महत् ॥२५॥ भूत्वा सूर्यश्चक्षुषी चाददानो भूत्वा वायुः संहरन् प्राणिजातम् ।

हैं ॥२१॥ हे राजन् ! वह देवता ब्राह्मण दैत्य मानव यक्ष गंधर्व राक्षस देवर्षि किन्नर अप्सरा भुजंग पर्वत नदी पशु और तिर्यक् योनिमें रहने वाले मृग पक्षियोंके शरीरमें भी शिव सुखासक्तिको उत्पन्न कर देते हैं (इस प्रकार महादेव उनका संहार कर डालते हैं) ॥२२—२४॥ तदनन्तर महाभूतपति महादेव पञ्चभूतोंका संहार करते हैं इस प्रकार जगत्का संहार करनेके लिए बड़ी बीभत्स लीला करते हैं [नीलकण्ठ—इसप्रकार भौतिकसंहारको कह कर भूतसंहारका भी वर्णन करते हैं, कि महाभूतपति आकाश आदि पाँच महाभूतोंको और भौतिक संसारको संहारके लिए ही उत्पन्न करते हैं, पुरुषके लिए उत्पन्न नहीं करते हैं, तात्पर्य यह है, कि मशक आदिकी समान सब वस्तु नाशके लिए ही उत्पन्न होती है, किसीको भी कहीं सुख नहीं मिलता है, अत एव सब बीभत्स है] ॥२५॥ वह सूर्य होकर मनुष्योंके नेत्रोंको हर लेता है और वायुरूप होकर प्राणियोंको हरने लगता है और अग्नि होकर सब लोकोंको भस्म करता है और मेघ होकर फिर वर्षा करने लगता है [नीलकण्ठ—अब बीभत्सताका वर्णन करते हैं, कि वह दिनके अन्तमें सूर्य होकर लोकोंके नेत्रोंको हरता है और वायु होकर प्राणोंको हर लेता है, फिर अग्नि बन कर सूखे हुए कपूरकी समान उन सबको निःशेष कर डालता है, फिर मेघ बन

भूत्वा वह्निर्दहते सर्वलोकान् मेघो भूत्वा भूय एवाभ्यवर्षत् २६
इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि पुष्करप्रादुर्भावे
प्रश्नोत्तरं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

वैशम्पायन उवाच । भूत्वा नारायणो योगी सप्तमूर्तिर्विभावसुः । गभस्तिभिः प्रदीप्ताभिः संशोषयति सागरान् १ पीत्वार्णवांश्च सर्वान् स नदीकूपांश्च सर्वशः । पर्वतानां च सलिलं सर्वं

कर वृष्टिसे एकार्णवरूप होजाता है, इस प्रकार पृथ्वीका लय होने पर जल आदि भी ब्राह्मलय होने पर अपनी २ योनिमें लीन होजाते हैं] ॥ २६ ॥ आठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ८ ॥

वैशम्पायनजीने कहा, कि-योगी नारायण अग्नि (की समान संयोग न करके भी) सात मूर्ति धारण कर अपनी प्रदीप्त किरणों से समुद्रको सोखने लगते हैं [नीलकण्ठ-सर्वं दृश्यं विनाशीति ज्ञात्वा नाशविवर्जितम् । पदं नेतुं विनेयान्हि तृतीयो योग उच्यते सब दृश्य (प्रपञ्च) विनाशवान् है, इस बातको जान कर नाश, रहित पदमें पहुँचानेके लिए (ब्रह्माके गमनशील) दिनमें तीसरा योगप्रश्न कहा जाता है अर्थात् तीसरे योगप्रश्नका उत्तर दिया जाता है॥"योगी नारायण शुद्ध चिन्मात्र है वह वन्हिकी समान असंयोग होकर भी महान् अहंकार और पञ्च तन्मात्रा इस प्रकार सात शरीर वाला होकर चैतन्यसे उद्दीपित तत्तदाकार वृत्तिरूप किरणोंसे सागरकी समान अनन्तरूप वाले विषयोंको सोखने लगता है अर्थात् अपनेमें लीन करने लगता है] ॥ १ ॥ वह समुद्रोंको नदियोंको कूपोंको और पर्वतोंके सब जलोंको भी अपनी किरणोंसे पीकर पृथ्वीको सहस्रों प्रकारसे छिन्न भिन्न करके रसातलमें जाकर रसातलके सारे उत्तम जलको पी जाता है और जो जलमें रह कर प्राणियोंको आनन्द देता है उस सब को अरविन्दाक्ष पुरुषोत्तम ग्रहण कर लेता है [नीलकण्ठ—

पीत्वा च रश्मिभिः ॥ २ ॥ भित्त्वा सहस्रशश्चैव महीं नीत्वा रसातलम् । रसातलजलं कृत्स्नं पिबते रसमुत्तमम् ॥ ३ ॥ अप्सु सृजन् क्लेदमन्तर्दधाति प्राणिनां ध्रुवम् । तत्सर्वमरविंदाक्ष आदत्ते पुरुषोत्तमः ॥ ४ ॥ वायुश्च बलवान् भूत्वा स विधूयाखिलं जगत् । प्राणोदयं सुराणां च वायुना कुरुते हरिः । ततो देवगणानां च सर्वप्राणेन देहिनाम् ॥ ॥ ५ ॥ ये चेन्द्रियगणाः सर्वे

विराट्के प्रविलापनको कह कर अब सूत्रात्माके प्रविलापन (लीन करनेके वर्णन) को कहते हैं कि–वह नदी और कूपकी समान मनकी कामनाओंको संशोषण कर लेता है–अपनेमें लीन कर लेता है, इसी प्रकार पर्वतकी समान काम क्रोध आदिके जल (अर्थात् सामर्थ्य) को रश्मियोंसे अर्थात् प्रत्यक्प्रवण परिणामों से (आत्मोन्मुखचित्तकी वृत्तियोंसे)पीकर अर्थात् अपनेमें लीन करनेके अनन्तर स्थूल और सूक्ष्म शरीरधारिणी पृथ्वीको सहस्रों प्रकारसे भेद कर अर्थात् लीन करके और रसा–पृथ्वी–के तल अर्थात् अधिष्ठान कारण ब्रह्मकी समान बनाकर तहाँ पर रहनेवाले अपहतपाप्मत्व आदि संकल्प तकके गुणसमूहको अर्थात् मानुषानन्दादिसे भी उत्कृष्ट आनन्दका पान कर लेता है अब शंका होती है, कि–जलमें अर्थात् कारण ब्रह्ममें मनको मृदु करने वाला आनन्द कहाँसे आया, इसका उत्तर देते हैं, कि वह कार्यको रचकर उसे प्राणियों–कार्योपाधियोंमें जीवन धारणके लिए धरता है, उसका भी वृत्तिरूप होनेसे अपनेमें संहार कर लेता है] २–४ तदनन्तर वह बलवान् वायु बन कर सारे जगत्को कँपा डालते हैं फिर हरि वायुके द्वारा देवताओंके प्राणोंका उदय करते हैं, तदनंतर देवता और प्राणियोंका इन्द्रियसमूह और पृथ्वीके आश्रयसे रहने वाले पूय (गन्ध विशेष) घ्राण (इन्द्रिय विशेष) और शरीर नामक जो गुण पृथिवीके आश्रयसे रहते हैं और जिह्वा

ये चा ये च यतोद्भवाः । पूयं प्राणं शरीरं च पृथिवीमाश्रिता गुणाः ॥ ६ ॥ जिह्वारसश्च क्लेदश्च संश्रिताः सलिलं गुणाः । रूपं चक्षुर्विपाकश्च ज्योतिरेवाश्रिता गुणाः ॥ ७ ॥ स्पर्शः प्राणश्च चेष्टा च पवनं संश्रिता गुणाः । परमेष्ठिनं वरेण्यं च हृषीकेशं समाश्रिताः ॥ ८ ॥ ततो भगवता तत्र रश्मिभिः परिवारिताः । वायुना कृष्यमाणाश्च रूपान्योन्यसमाश्रयात् ॥९॥ तेषां संघर्ष-

रस और क्लेद नामक जो गुण जलके आश्रयसे रहते हैं और रूप चक्षु तथा विपाक नामक जो गुण ज्योतिके आश्रयन रहते हैं, स्पर्श प्राण चेष्टाये पवनके आश्रमसे रहने वाले गुण यह सब गुण परमेष्ठी हृषीकेश वरेण्यका आश्रय लेलेते हैं तदनन्तर भगवान्के द्वारा वायुमे खेंचे हुए रूप आदि किरणोंसे घिर कर परस्पर मिल जाते हैं, उनके संघर्षसे पावक उत्पन्नहोकर सैंकड़ों प्रकारसे जलने लगता है और वह सम्वर्तक अग्नि सम्पूर्ण लोकोंको जलाने लगता है [नीलकण्ठ–इस प्रकार उत्तम अधिकारियोंके लिए मनोमात्र साधन योगको कह कर मध्यमपुरुषों के लिए वायुनिरोधपूर्वक योगका उपदेश देते हैं, कि–वह योगी मूलाधार आदि सब चक्रोंको भेदनेमें समर्थ होकर पादादि जानु-पर्यन्त भूम्यान आदिको तंत्रोक्तरीतिसे अपना शरीर बना कर उसको कँपा कर ऊपर ऊपर उसका प्रविलापन करता हुआ पाँच प्राण और इन्द्रियोंके ऊपर सहस्रार वा भ्रूमध्यमें योगी वायुसे इन प्राण आदिको जीतता हुआ पहुँच जाता है (इसी बातको विस्तार पूर्वक कहते हैं) तदनन्तर योगी देवता और प्राणियों को यह न समझे, कि–मेरे अतिरिक्त और कोई मुमुक्षु नहीं है अन्यथा भेदका विलय न होनेसे मुक्तिकी असिद्धिरूप आपत्ति पड़ सकती है, इन्द्रिय आदि जिन विषयोंकी उत्पत्तिस्थान हैं वे इन्द्रिय और पूय प्राण तथा शरीर ये गुणकार्यभूत होकर पृथ्वी

णोद्भूतः पावकः शतधा ज्वलन् । अदहन्निखिलाँल्लोकानुग्रः सम्वर्तकोनलः ॥ १० ॥ स पर्वतांस्तरून् गुल्माँल्लतावल्लीः स्तृणानि च । विमानानि च दिव्यानि पुराणि विविधानि च ११ आश्रमांश्च तथा पुण्या दिव्यान्यायतनानि च । यानि चाश्रयणीयानि तानि सर्वाणि सोदहत् ॥१२॥ भस्मीभूतांस्ततः सर्वा-

के आश्रयसे रहने वाले,] इसी प्रकार जल आदिके गुण आदि (योगीके सहस्रारमें पहुँचने पर) सूत्रात्मा हृषीकेश-इन्द्रियोंके ईशका आश्रय ले लेते हैं, तदनन्तर उनको; प्राप्त होकर तहाँ पर भगवान् अन्तर्यामी कर्ताके साथ सूत्ररूपमें मिल कर सूक्ष्म वृत्तियोंसे परिहृत होकर वायुसे आकर्षित होकर इन्द्रियें और रूप आदि विषय एकभावसे जब मिल जाते हैं तब उनके संघर्षसे उत्पन्न हुआ जगत्का कारण अद्वैतवस्तु प्रकाशस्वरूप अग्नि सम्पूर्ण लोकोंको अर्थात् कर्मफलभूत सम्पूर्ण कर्मोंको ही भस्म कर डालताहै] ॥ ५-१० ॥ [नीलकण्ठ-अब स्वरूपसे भी लोकदाहका वर्णन करते हैं, कि-] वह सम्वर्तक अग्नि तरु गुल्मलता वल्ली तृण विमान तथा नाना प्रकारके दिव्य नगरों को और पर्वतों तकको जला डालता है ॥ ११ ॥ तदनन्तर वह पुण्यमय आश्रम दिव्य मन्दिर और सब आश्रयणीय वस्तुओं को भस्म कर डालता है [नीलकण्ठ-देहादि उपास्यरूप सब आश्रयणीय मात्र होते हैं अत एव मनके दाहसे उनका भी दाह होजाता है । श्रुतिमें लिखा है, कि-"असतोऽधि मनोऽसृजत मनः प्रजापतिमसृजत प्रजापतिः प्रजा असृजत-असत्के अनन्तर मनको रचा, मनने प्रजापतिको रचा, प्रजापतिने प्रजाको रचा, इस प्रकार सब कुछ मनमें ही प्रतिष्ठित है"]। ॥१२॥ लोकगुरु हरि भस्म हुए सब लोकोंको जलयुक्त कर्मसे फिर निर्वपन करने लगे अर्थात् शान्त करने लगे वा बोने लगे, सहस्र नेत्र वाले महा-

ल्लोकाँल्लोकगुरुर्हरिः । भूयो निर्वापयामास जलयुक्तेन कर्मणा ॥ १३ ॥
सहस्रदृङ्महातेजा भूत्वा कृष्णो महाघनः । दिव्यतोयेन हविषा
तर्पयामास मेदिनीम् ॥ १४ ॥ ततः क्षीरनिकाशेन स्वादुना पर-
मांभसा । शिवेन पुण्येन मही निर्वाणमगमत् परम् ॥ १५ ॥ ते

तेजस्वी कृष्ण महामेघ बन कर दिव्य जलरूपी हविसे पृथिवीको तृप्त करने लगे, तदनन्तर क्षीरकी समान स्वादु श्रेष्ठ और पुण्य-शुभ जलसे पृथिवी परम शान्त हुई; चारों ओरसे जलको धारण करने वाले पर्वत भी जलमें आच्छन्न होगए और वे सब सत्त्वों से रहित पर्वत एकार्णवमय होगए। नीलकण्ठ-इस प्रकार समाधिमें कार्य और कारणके प्रलयको कह कर व्युत्थानमें चार श्लोकोंसे उसकी उत्पत्तिको कहते हैं, कि-योगी भोक्तामें भोग्य की कल्पना करता है, क्योंकि-भोगके लिए आरब्ध कर्मका नाश होने पर भी सञ्चित और क्रियमाणका दाहसे स्पर्श न होनेके कारण जलयुक्त (कारणीभूत) अविद्यासंस्कारशेषसे उनको शान्त करता है। क्योंकि-भूयश्चान्ते विश्वमायानिवृत्तिः-फिर अन्तमें विश्वमायाकी निवृत्ति होती है,अतः देहपात पर्यन्त मायाका लेश चला जाता है,ऐसा प्रमाण मिलनेसे वह बार बार उठकर उसको शान्त करता है, "विषयके भेदसे जिसकी सहस्र दृष्टियें होरही हैं ऐसा सहस्रनेत्र परमज्योतिरूप कृष्ण (कर्षक) संहर्ता होकर भी महाघनकी समान जगदंकुरके रचयिता भी होजाते हैं" इसी बात को कहते हैं; कि-दिव्य जलसे अर्थात् चिच्चन्द्रमण्डलसे टपके हुए भावनामृतरूप दिव्य हविसे-भावनामृतरूपी विशुद्ध हविसे पृथिवीको तृप्त करने लगे अर्थात् व्युत्थानके समय आदिमें शरीर चेतनासे व्याप्त होजाता है तदनन्तर सत्त्व स्वच्छ होनेसे क्षीरकी समान माना जाता है। उस सरीखे चित्तत्त्वाकाररूपी चैतन्या-मृतात्मक परमजलसे दोनों शरीर शांत होजाते हैं अर्थात् योगी

नगा जलसंछन्ना पयसः सर्वतोधराः । एकार्णवजला भूत्वा सर्व-
सत्त्वविवर्जिताः ॥१६॥ महाभूतान्यपि शतं प्रविष्टान्यमितौजसम्।

का स्थूलशरीर और सूक्ष्मशरीर भी शान्त होजाता है। लिखा है,कि-'न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम्'-जिसको योगाग्निमय शरीर मिल जाता है उस पर रोग जरा और मृत्यु आक्रमण नहीं करते हैं'इस प्रकार उसका स्थूल शरीर शान्त होजाता है और उसका सूक्ष्म शरीर भी "तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः" इस श्रुतिके अनुसार (नष्ट अथवा लीन) होजाता है, इसकी दृष्टिमें सब बाह्यवस्तु भी चिन्मात्र हो जाती है अर्थात् जिन पर्वत आदिको परमार्थरूपसे ग्रहण कर लिया था वे पर्वत वृक्ष आदि जलसंच्छन्न होजाते हैं अर्थात् वे उसको चित्से अवगुण्ठित प्रतीत होते है और वह पर्वत भीतर बाहर सर्वत्र जलरूप चित् व्याप्त रहते हैं अर्थात् सैंधवघनकी समान चिद्घन होते हैं इसी बातको कहते हैं,कि-वे चिद्रूप होकर आकाश आदि सबके सत्त्व (सत्ता) से रहित होजाते हैं, अर्थात् यह स्पष्ट प्रतीत होने लगता है, कि सर्वत्र ब्रह्मसत्ता ही व्याप्त होरही है वियदादि अर्थात् आकाश आदिकी पृथक् सत्ता नहीं है अर्थात् योगी पुरुष जगत्को देखता हुआ भी उसको द्विचन्द्र की समान बाधित रूपमें ही देखता है] ॥ १३-१६ ॥ अमित तेजस्वी परमात्मामें उस समय सैंकड़ों महाभूत लीन होजाते हैं, इस प्रकार वह अमित बुद्धिमान् सनातन पुरुष शोषण करके और पीकरके सूर्य पवन आकाश और प्राणिरहित सूक्ष्म एकार्णवजलमें किसी प्राचीन रूपको धारण कर शयन करते हैं, एकार्णवजलमें लाखों प्राणी उनमें लीन रहते हैं; ऐसे अव्यक्त परमात्माको कोई स्पष्टरूपसे नहीं जान सकता [नीलकण्ठ-योग का मुख्य फल शुद्धात्मदर्शन है, इस बातका तीन श्लोकोंमें वर्णन

नष्टार्कपवनाकाशे सूक्ष्मे जनविवर्जिते ॥१७॥ संशोपंगिरा पीत्वा च वसत्येकः सनातनः। पौराणं रूपमास्थाय किमप्यमितबुद्धिमान्. एकार्णवजले ह्यासीद्योगी योगमुपागतः। अयुतानां सहस्राणि गतान्येकार्णवेऽम्भसि। न चैनं कश्चिदव्यक्तं व्यक्तं वेदितुमर्हति १८ जनमेजय उवाच। एकार्णवविधिः कोऽयं यश्चैव परिकीर्तितः। क

करते हैं, कि-(१) सूर्य आदि जिसमें प्रकाश नहीं कर सकते और पवन आदिका जहाँ प्रवेश नहीं है, ऐसे शुद्ध वस्तु (चैतन्य) में स्थित योगीमें महाभूत लीन होजाते हैं, (२) इस प्रकार विषयों में वँटे हुए ज्ञानका प्रत्याहरण करके और उसको निर्विशेषरूपसे अपनेमें लीन करके वह योगी एक प्रकारके वाणी और मनके अगोचर रूपमें स्थित होजाता है, (३) इसी वातको कहते हैं, कि-दुःखके संयोग वियोगरूप-योगको जानने वाला योगी चिद्रूप होजाता है, जब वह चैतन्यमय होजाता है तब अयुत-अपृथग्भूत रज्जु आदिमें सर्प आदिकी समान आत्मामें अध्यस्त वियदादि के सहस्रों अनन्तों वृत्तिभेद उस शुद्धब्रह्मात्मक योगीमें लीन हो जाते हैं, तात्पर्य यह है, कि-यह मट्टीमें घड़ेकी समान निवृत्ति-रूप लय नहीं होता, किन्तु रज्जुमें सर्पकी समान लय होता है, उस समय बुद्धिवृत्ति भी लीन हो जाती है, अतः इस अव्यक्त हुए प्रत्यगात्माको कोई नहीं जानता] ॥१७-१८॥ जनमेजयने कहा, कि-आपने जो एकार्णवविधि कही यह एकार्णवविधि क्या है ? और पुरुष नाम वाला कौन है ? योग क्या वस्तु है और योगवान् कौन है ? [नीलकण्ठ-जनमेजय योगको संक्षिप्तरूप से सुनकर उसको विस्तृतरूपसे सुननेकी इच्छासे बूझने लगा, कि-जिस प्रकार प्रतिदिन होने वाले नित्यप्रलयकी अवधि है क्या इसी प्रकार आत्यन्तिक प्रलयकी भी कोई अवधि है या नहीं ? यदि है, तो कैवल्य अपने आप ही सिद्ध होजावेगा; फिर संशोष

एष पुरुषो नाम किं योगः कश्च योगवान् ॥ २० ॥ वैशम्पायन उवाच । एतावन्तमसौ कालमेकार्णवविधिं प्रति । करिष्यतीमं भगवानिति कश्चिन्न बुध्यते ॥ २१ ॥ न वै माता न च द्रष्टा न ज्ञाता नैव पार्श्वगः । ततोऽवज्ञायते कश्चिद्वन्दे तं देवमीश्वरम् २२

दान पान आदि साधनानुष्ठानोंकी क्या आवश्यकता है,इस प्रकृत वा दैनंदिन नहीं किन्तु ज्ञानसाध्य प्रलयका आपने पहिले उपदेश दिया था, यह प्रथम प्रश्न है। और यह एकार्णव नाम वाला पुरुष कौन है और वह किस प्रकारके योग वाला है अर्थात् लाख और काष्ठकी समान योग वाला है ? जल और सैंधवकी समान योग वाला है अथवा रज्जु और उरगकी समान योग वाला है। और कौन जीव योगवान् होता है ? और सम्बन्धी और संबंध-रूप योगका क्या स्वरूप है ?] ॥ २० ॥ वैशम्पायनजीने कहा, कि-भगवान् एकार्णवविधिको इतने समय तक करेंगे इस बात को कोई नहीं जान सकता [नीलकण्ठ-वैशम्पायनजी क्रमशः चारों प्रश्नोंके उत्तर देने लगे, कि-भगवान् इस एकार्णवविधिको इतने समयकी प्रतीक्षा करके करेंगे, इस बातको कोई नहीं जान सकता, ज्ञानमात्रसे ही सिद्ध होने वाले प्रलयका, दूसरोंकी समान कालका नियम नहीं है, अतः साधनका अनुष्ठान करना ही चाहिये] ॥२१॥ तहाँ पर न कोई माता (मान करने वाला) होता है, न द्रष्टा होता है, न ज्ञाता होता है, न कोई पार्श्वमें रहता है इनसे ही किसी वस्तुको जाना जासकता है (परन्तु तहाँ कोई नहीं होता है)ऐसे ईश्वर देवको मैं प्रणाम करता हूँ[नीलकण्ठ-वह पुरुष एक है, इसका उत्तर देते हैं, कि-अहंकारशून्य होनेसे और साक्ष्यके अभावसे न कोई तहाँ माता होता है, न प्रमाता होता है और साक्षीवृत्तिका विलय होनेसे न कोई द्रष्टा होता है और अन्तिम अन्तःकरणकी वृत्ति ब्रह्मविद्यासे वह प्रत्यक्चविषय

नभः क्षितिं पवनमथ प्रकाशयन् प्रजापतिं भुवनचरं सुरेश्वरम् ।
पितामहं श्रुतिनिलयं महामुनिं शशास भूः शयनमरोचयत् प्रभुः॥२३

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि पुष्कर-
प्रादुर्भावे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

वैशम्पायन उवाच । एवमेकार्णवी भूते शेते लोके महाश्रुतिः॥

करता है, अत एव तहाँ पर तटस्थ नहीं होता अर्थात् वह प्रत्यगात्मरूप होता है, "वह योग कैसा होता है" इसका उत्तर देते हैं, कि-उस अवस्थामें लाख और काठका संयोग आदि तीनों पृथक् २ दीखते हैं और जिस प्रकार जल सैंधव एकत्रित दीखने पर भी पृथक् २ अनुमानमें आते हैं, इसी प्रकारका योग तहाँ नहीं होता, किन्तु रज्जुमें सर्पकी बाधारूप योग तहाँ पर होता है] ॥ २२ ॥ प्रभु आकाश पृथ्वी पवन भुवनचर सुरेश्वर प्रजापतिका अपनेमें लय करके सोना चाहने लगा [नीलकण्ठ—अब योगवान् कौन है, इसका उत्तर देते हैं, कि-प्रभु नभ आदिरूप देह इन्द्रिय आदि संघातको प्रकाशित कर देते हैं अर्थात् अपने चैतन्यसे व्याप्त कर देते हैं इस व्याप्त करनेके कारण प्रजा के अध्यक्षत्वके अभिमानी, चक्षु आदि (देवताओं) के ईश्वर इन्द्रियोंकी प्रवृत्ति निवृत्तिमें स्वतन्त्र इस प्रकारके जीव वस्तुवृत्तके द्वारा कार्यस्वरूप पितके शुद्ध चैतन्यस्वरूप पिता अर्थात् शुद्ध चैतन्यस्वरूप पितामह वाले इसी लिये एक श्रुतिके द्वारा ही जानने में आने वाले मुमुक्षुरूपसे मनन शीलको अपनेमें स्वस्वरूपमें लीन करने वाले ईश निरोधावस्थाको चाहने लगे,तात्पर्य यह है, कि-शुद्ध ही उपाधिके अभिमानसे बद्ध होकर योगका अधिकारी हो जाता है] ॥ २३ ॥ नवम अध्याय समाप्त ॥ ९ ॥

वैशम्पायनजीने कहा, कि-महायशस्वी नारायण प्रभु संसार के इस प्रकार एकार्णवमय होजाने पर महासमुद्रकी समान बड़े

मच्छाद्य सलिलं सर्वं हरिर्नारायणः प्रभुः ॥ १ ॥ महतो रजसो मध्ये महार्णवसमस्य वै । विरजस्को महाबाहुरक्षरं ब्रह्म यं विदुः२ आत्मरूपप्रकाशेन तपसा संवृतः प्रभुः। त्रिकमास्थाय कालं तु ततः सुष्वाप सोऽव्ययः ॥ ३ ॥ पुरुषो यज्ञ इत्येवं यत् परं परि-

भारी रजके बीचमें सब जलको आच्छादित करके शयन करते हैं, उनको तत्ववेत्ता पुरुष विरजस्क महाभुज और अक्षर कहते हैं [नीलकण्ठ—"तं यज्ञरूपतो योगमुक्त्वा तुर्ये निगद्ये मार्कण्डेय-समाधिश्च तद्विघ्नेषु निदर्शनम् ॥-अब चौथे पुष्करप्रादुर्भावा-ध्यायमें यज्ञ रूपसे योगका वर्णन करके, मार्कण्डेयकी समाधि और उसमें जो विघ्न पड़ते हैं उनको दिखाया जाता है" शुद्ध चिदात्मामें महायशस्वी ईश सलिलकार्य जगत्का उपसंहार कर के शुद्ध चिन्मात्ररूपमें स्थित रहते हैं, इसी बातका प्रतिपादन करनेके लिए ब्रह्मके बंधनमें पड़नेका वर्णन करते हैं, कि-रजो-गुणके कार्य कर्म फल भूत समुद्रकी समान दुर्लंघ्य देह इन्द्रिय आदिके मध्यमें प्रणव तत्त्वमसि वाक्यरूप उपास्तिक्रिया और गत्यक्तत्वके साक्षात्कारसे जगत्से उद्धार करनेमें समर्थ देह आदि के धर्मका स्पर्श न करने वाली महाभुजाओंकी समान अक्षर और ब्रह्म नाम वाली भुजाएँ उन ईशके हैं ऐसे ईश शुद्ध ब्रह्ममें शयन करते हैं]॥१।२। अव्यक्त प्रभु आत्मरूप आकाशसे त्रिकालमें स्थित होकर शयन करने लगे [नीलकण्ठ जिसको परब्रह्म कहते हैं वह परमात्मा शयन करनेलगता है अर्थात् अपने स्वरूपको भूलगया, इस का कारण यह है, कि-मनोरथात्मक चैतन्याभासरूप तपसे उनका असङ्गरूप तिरोहित होजाता है, इसलिये वह भूत भविष्यत् वर्तमान रूप तीन प्रकारके कालमें अधिष्ठित होगया-सोनेलगा अर्थात् अपने स्वरूपको भूलगया] ३ जिस श्रेष्ठ पुरुषको यज्ञपुरुष कहते हैं और जो कुछ पुरुष नाम वाला है वह सब पुरुषोत्तम है [नीलकण्ठ

कीर्तितम् । यच्चान्यत् पुरुषाख्यं स्यात् सर्वं तत् पुरुषोत्तमः ४
ये च यज्ञपरा विप्रा ऋत्विजा इति संज्ञिताः । आत्मदेहात् पुरा
भूता यज्ञेभ्यः श्रूयतां तदा ॥ ५ ॥ ब्रह्माणं परमं वक्त्रादुद्गातारं

इस प्रकार प्रभुके ही बन्धनको दिखाकर निवृत्तिके उपाय योग को यज्ञरूपसे दिखानेके लिये कहते हैं, कि-पुरुषकी समान शिर हाथ आदि रूपवाला पुरुष यज्ञ है अर्थात् योगयज्ञसे यज्ञपुरुषको प्राप्त किया जासकता है और जो पुरुषाख्य परम पुरुष उत्तम पुरुष कहलाता है और जो श्रुतियोंमें वियदादिपुरुष चिदात्मरूपसे प्रसिद्ध हैं, वह सब पुरुषोत्तम हैं] ॥ ४ ॥ और यज्ञपरायण ऋत्विग नाम वाले ब्राह्मण आत्मदेहसे उत्पन्न हुए हैं और वह यज्ञके लिए ही उत्पन्न हुए हैं, इस बातको तुम मुझसे (विस्तार के साथ) सुनो [नीलकण्ठ-इस प्रकार माप्यको कहकर प्रापक को कहते हैं,कि यज्ञरूपी परब्रह्ममें निष्ठा वाले ब्राह्मणोंकी समान, रागादिशून्य कालात्मकरूप परात्मामें मिलाने वाले ऋत्विग अर्थात् तप आदि चित्पुरुषसे उत्पन्न हुए हैं, ये अनादि संसार में पहिलेसे चले आते हैं, ये यज्ञ(यज्ञपुरुषस्वरूप) ब्रह्मके लिए ही उत्पन्न हुए हैं,पशु आदि साधारण विषयभोगके लिए उत्पन्न नहीं हुए हैं,यह बात जिस प्रकारसे है उसको तुम मुझसे सुनो]५ प्रभुने अपने मुखसे परब्रह्म और सामका गान करने वाले उद्गाता को उत्पन्न किया और भुजाओंसे होता तथा अध्वर्युको उत्पन्न किया [नीलकण्ठ-अब योगयज्ञके ऋत्विजोंकी स्तुति करते हैं अर्थात् कालात्मक परात्मामें सङ्गति करने वालोंकी स्तुति करते हैं, कि-कठोपनिषद्में लिखा है, कि-"विश्वसृजां सत्रे ब्रह्म ब्रह्माभवत् स्वयं अमृतमेभ्य उदगायत्" विश्वस्रष्टाओंके यज्ञमें ब्रह्म (वेद) ब्रह्मा बने थे और इन्होंने अमृत (अपने आपे) का ही इनसे गायन किया, यहाँ पर ब्रह्म और अमृत शब्दसे वेद और

च सामगम् । होतारमथ चाध्वर्युं बाहुभ्यामसृजत् प्रभुः ॥ ६ ॥
ब्राह्मणो ब्राह्मणस्वाच्च संप्रस्तारं च सर्वशः । तन्मित्रं वरुणं
स्पृष्ट्वा प्रतिष्ठातारमेव च ॥ ७ ॥ उदरात् प्रतिहर्तारं पोतारं चैव

उसके अर्थोंका ग्रहण किया गया है, यहाँ पर परम विशेषण होने से उपनिषत्प्रतिपाद्य ब्रह्मका ही ग्रहण किया जायगा, उस साध्यकी आवृत्ति ही अमृतसाधन होनेसे अमृत कहलाती है वे दोनों ब्रह्मा और उद्गाता शब्द ही यहाँ कहे हैं और उनको मुखसे उत्पन्न बताकर उनका अन्तरङ्गत्व कहा है "होत्रध्वर्यु-सत्यञ् होतैषामासीत् प्राणो अध्वर्युरभवदिति" यहाँ पर सत्य को होता और प्राणको अध्वर्यु बताया है, सत्योक्ति और प्राण-जय मुखमें होने पर भी उपकारक होने पर कुछ बहिरङ्ग हैं] ६ ब्राह्मण, ब्राह्मण होनेसे संप्रस्तार, और उसके मित्र वरुणको छूकर प्रतिष्ठाताको (अपनी भुजाओंसे रचा)[नीलकण्ठ-ब्रह्म-रूपी वेदका अध्येता (पढने वाला) होनेसे ब्राह्मण (ब्रह्म) ने ब्राह्मणच्छन्दसी नाम वाले संप्रस्तार (प्रस्तोता) को उसके मित्र मैत्रावरुण नाम वाले प्रस्तार (प्रतिष्ठाता) को रचा, श्रुतिमें लिखा है, कि-"अर्शस . ब्रह्मणस्तेजः भूतं ह प्रस्तोतैषामासीत्, ऋतमेषां प्रशास्तासीत्, अपानो विद्वानावृत्तः प्रतिमातिष्ठदध्वरः ब्रह्मका तेज कहा गया, उस समय तेजः भूत इनका प्रस्तोता बना, ऋत इनका प्रशास्ता बना और अपान विद्वान् आवृत्त बना इस प्रकार (ब्रह्मात्मक) यज्ञ प्रतिष्ठित होगया।" इत्यादि श्रुतियोंमें कहे हुए तेजोभूत ऋत पानाख्य शब्दोंसे धी बल पूर्वस्मृति स्व-धर्माचरण जय अनुकूलप्राणाख्य मूलबन्ध आदि (योगमें) निहित पदार्थ समझने चाहियें]॥ ७ ॥ हे भारत ! उसने उदरसे प्रति-हर्ता और पोताको उत्पन्न किया यज्ञिय-अग्नीध्र और सुब्रह्मण्य को उत्पन्न किया और भुजाओंसे यज्ञिय ग्रावा और उन्नेताको

भारत । अच्छावाकं मनोरूभ्यां नेष्टारं चैव भारत ॥ ८ ॥ पाणि-
भ्यामथ चाग्नीध्रं सुब्रह्मण्यं च यज्ञियम् । ग्रावाणमथ बाहुभ्या-
मुन्नेतारं च यज्ञियम् ॥ ९ ॥ एवमेवैष भगवान् षोडशैतान् जग-
त्पतिः । प्रवक्तॄन् सर्वयज्ञानामृत्विजोऽसृजदुत्तमान् ॥१०॥ तदेष
वै वेदमयः पुरुषो यज्ञसम्मितः । वेदाश्च तन्मया सर्वे सांगोप-
निषदक्रियाः ॥ ११ ॥ स्वपित्येकार्णवे चैव यदाश्चर्यमभूत् पुरा।

उत्पन्न किया [नीलकण्ठ—तात्पर्य यह है,कि—यज्ञमें ब्रह्मा उद्गाता होता अध्वर्यु ब्राह्मणाच्छंसी प्रस्तोता मैत्रावरुण प्रतिप्रस्थाता प्रतिहर्ता पोता अच्छावाक नेष्टा आग्नीध्र सुब्रह्मण्य ग्रावस्तोता और उन्नेता सोलह होते हैं,योगमें भी यथाक्रम मण्त्र,तदर्थभावन, सत्योक्ति,प्राणजय, बुद्धिकी तीक्ष्णता,पूर्वस्मृति,आचार, अपान-जय,भाविदुःखचिन्ता ईशपूजा,दान, योगोत्साह,सात्विकी श्रद्धा वेदान्तश्रवण, इन्द्रियशौर्य और योगांगोंकी ऊर्जिती ये सोलह पदार्थ काममें लाये जाते हैं] ॥ ८ ॥ ९ ॥ जगत्पति भगवान्ने इस प्रकार सब यज्ञोंके प्रवर्तक इन सोलह ऋत्विगोंको रचा [नीलकण्ठ—जगत्पतिने (आगे कहे जाने वाले) चार सबीज-योग और पाँचवे निर्बीज योगरूप सब योगयज्ञोंके उपनिषत्प्रोक्त प्रापकोंको रचा] ॥ १० ॥ इस प्रकार यह यज्ञसंमित पुरुष वेद-मय है और अंग उपनिषद् तथा क्रियासहित सब वेद भी तन्मय हैं [नीलकण्ठ—यह ऋत्विजोंको रचने वाले भगवान् वेदमय हैं, अर्थात् एक वेदसे ही जाननेमें आते हैं, क्योंकि—श्रुतिमें लिखा है, कि- 'नावेदविन्मनुते तं बृहन्तम्—उस महान्को वेदका मनन न करने वाला मनन नहीं कर सकता' परमात्मा यज्ञके द्वारा सम्यक् मित है अर्थात् यज्ञने उसको परोक्ष कर रक्खा है, वेद भी तन्मय हैं, अर्थात् उसका ही प्रतिपादन करने वाले हैं और क्रियाएँ भी तन्मय हैं अर्थात् उसको ही प्राप्त करने वाली हैं]११

श्रूयते तद्यथा वृत्तं मार्कंडेयो यदन्वभूत् ॥ १२ ॥ जीर्णो भगवत-
स्तस्य कुक्षावेव महामुनिः । बहुवर्षसहस्रायुस्तस्यैव वरतेजसा ॥१३॥
इति तीर्थप्रसङ्गेन पृथिवीतीर्थगोचरः । आश्रमानपि पुण्यांश्च तीर्था-
न्यायतनानि च ॥ १४ ॥ देशानाष्ट्राणि चित्राणि पुराणि विवि-
धानि च । जपहोमरतः क्षान्तस्तपो घोरं समाश्रितः ॥ १५ ॥

जब यह एकार्णवमें शयन कर रहे थे, उस समय एक आश्चर्य हुआ, मार्कण्डेय मुनिने उसका अनुभव किया था [नीलकण्ठ- जिसका ऊपर वर्णन किया गया है ऐसा साधनकालविशिष्ट योगी जब एकार्णव अर्थात् चिन्मात्रमें शयन करता है अर्थात् चिन्मात्र में प्रवेश करनेकी चेष्टा करता है उस समय विश्वरूपका दर्शन और भूत और भविष्यत्का दर्शन आदि आश्चर्य होता है "वेदं सर्वं ह पश्यः पश्यति यच्चान्यदिच्छन्न लभते तदत्र गत्वा विन्दते- वह तब सब बातोंको जान जाता है और वह द्रष्टा सब बातोंको देखने लगता है और जिन बातोंको यहाँ चाहता हुआ नहीं पाता था उन सब वस्तुओंको तहाँ जाकर पालेता है" अब यहाँ पर मार्कण्डेयजीकी एक आख्यायिका कहते हैं] ॥ १२ ॥ महामुनि मार्कण्डेय उनकी कुक्षिमें जीर्ण होगए थे अर्थात् घुस गए थे परमात्माके वरदानसे उनकी सहस्रों वर्षकी आयु होगई थी, वह तीर्थयात्राके निमित्त पृथिवीके सब तीर्थोंमें घूमा करते थे और पवित्र आश्रम और तीर्थस्वरूप देवालय देश राष्ट्र और विचित्र नगरोंमें जप और होममें निरत रह कर घोर तप किया करते थे [नील- कण्ठ-महामुनि मार्कण्डेय जी भगवान्की कुक्षिमें जीर्ण होगए थे अर्थात् सब उपाधियोंके दूर होने पर भगवान्में लीन होगए थे, अब ढ़ाई श्लोकमें मार्कण्डेयकी स्तुति की है, तीर्थके निमित्तसे तीर्थ- यात्रा करने पर ही सर्वतीर्थस्वरूप परमात्माके दर्शन मिल सकते हैं, केवल दक्षिणा आदि पानेके लिए तीर्थयात्रा करने पर प्र-

मार्कण्डेयस्ततस्तस्य शनैर्वक्त्राद्विनिःसृतः । निष्क्रामन्तं न चात्मानं जानीते देवमायया ॥ १६ ॥ निष्क्रान्तस्तस्य वदनादेकार्णवमथो गतः । सर्वतस्तमसाच्छन्नं मार्कण्डेयो निरीक्षते ॥१७॥ तस्योत्पन्नं भयं तीव्रं संशयश्चात्मजीविते । देवदर्शनसंहृष्टो विस्मयं

आत्मदर्शन नहीं मिल सकता] ॥ १३-१५ ॥ तदनन्तर मार्कण्डेयजी धीरे २ उनके मुखमेंसे निकलने लगे परन्तु देवमायाके कारण निकलते समय उनको अपना स्वरूप प्रतीत नहीं हुआ [नीलकण्ठ-इस प्रकार चिन्मात्रमें लीन मार्कण्डेय उत्थान संकल्पके विना ही सोये हुए की समान समाधिमेंसे उठ बैठे थे, इस बातको कहा है, वह मुखसे अर्थात् अपने लयस्थानमें उठे] १६ उनके मुखमेंसे निकलने पर मार्कण्डेयजी फिर समुद्रमें आपड़े और उन्होंने चारों ओर अन्धकार छाया हुआ देखा [नीलकण्ठ-इसप्रकार व्युत्थित होनेपर मार्कण्डेयजी एकार्णव अर्थात् चिन्मात्र में प्रवेश करना चाहने लगे परन्तु उसको उन्होंने आवरणविक्षेप शक्तिवाले अज्ञानांधकारसे घिरा हुआ देखा, तात्पर्य यह है, कि-उन्होंने चित्तसत्त्वको तत्त्वमें लगाना चाहा, परन्तु तत्त्व अंधकार से ढक रहा था अतः मार्कण्डेयजीने रज्जुमें सर्पकी समान विक्षेपरूप ऐश्वर्यको ही देखा] ॥ १७ ॥ तब उन्हें भय लगा और उन्हें अपने जीवनमें भी संदेह होने लगा और वह परमात्माके दर्शनसे हर्षमें भर कर परमविस्मित हुए [नीलकण्ठ-श्रुतिमें लिखा है, कि-"द्वितीयाद्वै भयं भवति-दूसरेसे भय होता है" यही द्वैतदर्शनसे उत्पन्न होने वाला भय उनको होने लगा और उन्हें अपने जीवनमें अर्थात् स्वरूपस्थैर्यमें भी यह सन्देह होने लगा, कि-स्वरूप निर्विशेष है, वा सविशेष है; (उन्होंने विवेकबलसे अपने संदेहको काट डाला, इस बातको दिखाते हैं, कि—) देवदर्शन करके अर्थात् शुद्ध साक्षात्कारसे उनको परमानन्द प्राप्त हुआ वह

चागमत् परम् ॥ १८ ॥ संचिन्तयति मध्यस्थो मार्कण्डेयोऽति-
शंकितः । किंस्विद्वचेदं नो मोहः स्वप्नोनुभूयते ॥ १९ ॥
व्यक्तमन्यतमो भावो ह्येतेषां भविता मम । नहीदृशमसंक्लिष्टम-
युक्तं सत्यमर्हति ॥ २० ॥ नष्टचन्द्रार्कपवने च्छन्नपर्वतभूतले ।
कतमः स्यादयं लोके इति चिन्ता व्यवस्थिता ॥ २१ ॥ अपश्य-
च्चापि पुरुषं शयानं पर्वतोपमम् । तोयाढ्यामिव जीमूतं मध्ये मग्नं

''कारणका अभाव होने पर भी सृष्टिको देख कर'' परम विस्मित हुए) ॥१८॥ बड़ी भारी शंकामें पड़े हुए मार्कण्डेय मध्यमें खड़े होकर विचार करने लगे, कि-क्या मैं (मनके) मनोरथ बाँध रहा हूँ या मुझे चिन्ता होरही है अथवा क्या मैं स्वप्न देख रहा हूँ [नीलकण्ठ-विवेकका वर्णन करते हैं, कि-मार्कण्डेयजी मध्यस्थ होकर अर्थात् सविशेष और निर्विशेषका निर्णय न करनेके कारण विचारने लगे, कि-क्या मैं मनके मनोरथ बाँध रहा हूँ, अथवा मोह अर्थात् इन्द्रजालसे उत्पन्न हुआ भ्रम होरहा है, अथवा स्वप्न देख रहा हूँ] ॥ १९ ॥ इनमेंसे कोई बात मुझे प्रतीत होरही है, क्योंकि-ऐसी असंश्लिष्ट और अयुक्त बात नहीं होसकती [नीलकण्ठ-मनोरथ आदि इनमेंसे ही एक भाव प्रतीत होता है, कोई वस्तुतत्त्व प्रतीत नहीं होता, क्योंकि-मनोरथ आदि सत्य मनोहर आदि पारमार्थिक संगरहित और अविद्या आदि क्लेशशून्य, नहीं हो सकते] ॥२०॥ जब चन्द्रमा सूर्य पवन नष्ट होगए और पर्वत तथा पृथ्वी आदि (जलमें) ढक रहे हैं तब यह कौनसा लोक है, इस प्रकार मार्कण्डेय चिन्ता करने लगे [नीलकण्ठ-अब उन की चिन्ताका कारण कहते हैं, कि-महाभूतोंका नाश होने पर भी जो भास रहा है वह चिन्ता (मनोरथ) आदिमेंसे ही कोई हो सकता है, अतः यह दीखनेवाला कौन है इस बातको वह विचारने लगे] ॥ २१ ॥ और उन्होंने महासमुद्रके बीचमें पर्वतकी समान

महार्णवे ॥२२॥ तपन्तमिव तेजोभिर्भास्वन्तमिव वर्चसा । जाग्रन्तमिव गाम्भीर्याच्छ्वसन्तमिव पन्नगम् ॥ २३ ॥ स देवं प्रष्टुमायाति को भवानिति विस्मयात् । तथैव च शनैर्भूयो मुनिः कुक्षिं प्रवेशितः ॥२४॥ स प्रविष्टः पुनः कुक्षौ मार्कण्डेयः सुनिश्चितः । तथैव चरते भूयो विजानन् स्वप्नदर्शनम् ॥२५॥ स तथैव यथापूर्वं पृथिवीमटते पुनः । पुण्यतीर्थानि पूतानि निरीक्षन्निति भूतले।

पुरुषको जलके धनी बादलकी समान शयन करते हुए देखा [नीलकण्ठ–इस प्रकार तत्त्वका निश्चय न होनेसे मार्कण्डेयजी सन्देहनिवृत्तिकी इच्छा कर रहे थे,इतनेमें ही उन्होंने अपने आराध्य कारणोपाधिके अभिमानी देवताको देखा, उसके प्रतिबोधित करने पर मार्कण्डेय कृतकृत्य होगए,इसी बातको कहते हैं, कि-उन्होंने परमानन्द स्वरूप समुद्रमें जलके धनी मेघकी समान (कृष्ण) को शयन करते हुए देखा] ॥ २२ ॥ वे अपने तेजसे तप रहे थे और वर्चस्से प्रकाशित हो रहे थे और गम्भीरता से जागसे रह थे और सर्पकी समान श्वास लेरहे थे ॥ २३ ॥ तदनन्तर मार्कण्डेय उस मूर्तिसे विस्मयमें भर कर यह बूझनेके लिये बढ़े; कि–आप कौन हैं ? इतनेमें ही उन्होंने मार्कण्डेयजी को फिर अपनी कुक्षिमें डाल लिया[नीलकण्ठ–अर्थात् वह पहिले की समान फिर चिन्मात्रको प्राप्त होगए] ॥ २४ ॥ जब मार्कंडेय उनकी कुक्षिमें फिर पहुँच गए, तब मैं स्वप्न देख रहा हूँ" यह समझ कर उनकी कुक्षिमें विचरण करने लगे [नीलकण्ठ–इस प्रकार चिन्मात्र होगए और द्वैतको स्वप्नकी समान मानने लगे, अर्थात् वह संप्रज्ञात समाधिमें पहुँच कर जगत्को स्वप्नकी समान मानने लगे] ॥ २५ ॥ वह जिस प्रकार पहिले पृथिवी पर विचरण करते थे उसी प्रकार उस दिव्यभूतलमें पवित्र तीर्थोंको देख कर विचरण करने लगे [नीलकण्ठ—अर्थात् वह व्युत्थान

ऋतुभिर्यजमानांश्च समाप्तवरदक्षिणैः। पश्यते देवकुक्षिस्थान् यज्ञियाञ्छतशो द्विजान् ॥ २७ ॥ सद्वृत्तमाश्रिताः सर्वे वर्णा ब्राह्मणपूर्वकाः। चत्वारश्चाश्रमान् सम्यग्यथोद्दिष्टपदानुगाः २८ वर्षाणां शतसाहस्रं मार्कण्डेयो महामुनिः। विचरन् पृथिवीं कृत्स्नां न च कुंक्ष्यतमैक्षत ॥ २९ ॥ ततः कदाचिदथ वै पुनर्वक्त्राद्विनिःसृतः। सुप्तं न्यग्रोधशाखायां बालमेकं निरीक्षते ।३०।

की समान संप्रज्ञातमें भी यटना करने लगे] ॥ २६ ॥ मार्कण्डेयजीने उन देवकी कुक्षिमें श्रेष्ठ श्रेष्ठ दक्षिणा देकर समाप्त किये जाने वाले यज्ञोंसे यजन करते हुए सैंकड़ों यज्ञिय द्विजों को देखा [नीलकण्ठ-अर्थात् हार्दाकाशमें स्थित इन सबको देखा] ॥ २७ ॥ तहाँ पर ब्राह्मण आदि सब वर्ण सद्वृत्तिका आश्रय लेकर रहते थे और चारों आश्रम भी शास्त्रोक्त मार्गका अनुसरण करके चलते थे ॥ २८ ॥ महामुनि मार्कण्डेय सहस्र वर्ष तक तहाँकी भूमिमें फिरे, परन्तु उनको परमात्माकी कुक्षिका अन्त नहीं मिला ॥ २९ ॥ फिर वह एक समय उनके मुखमेंसे फिर निकल आए और उन्होंने न्यग्रोधकी छायामें सोते हुए एक बालकको देखा, वह अव्यक्त (अस्पष्ट) होनेसे भयंकर लगने वाले, सब भूतोंसे रहित नीहार (कोहर) से घिरे हुए जलकी समान समुद्रमें शयन कर रहा था [नीलकण्ठ-तत्त्वनिश्चय बड़ी कठिनतासे होता है, इस बातको कहनेके लिए फिर मार्कण्डेयके मोहका वर्णन करते हैं, कि-एक समय वह फिर समाधि से व्युत्थित होगए और न्यग्रोधवृक्षकी शाखामें अर्थात् नीचेको जाने वाले स्थूल संसारके एक देशमें सोते हुए अर्थात् अनाविष्कृत ऐश्वर्य वाले शान्त (बालक) अपने आराध्यको देखा उनको किस समय मोह हुआ था, इसको कहते हैं, कि-शुद्ध ज्ञान सामर्थ्यके अज्ञानरूपी अन्धकारसे पूर्ववत् तिरोहित होजाने पर

यथा चैकार्णवजले नीहारेण वृतान्तरे । अव्यक्तभीषणे लोके सर्वभूतविवर्जिते ॥ ३१ ॥ स भूयो विस्मयाविष्टः कौतूहलसमन्वितः । बालमादित्यसंकाशं न शक्नोत्युसर्पितुम् ॥ ३२ ॥ सोऽचिंतयदथैकान्ते स्थित्वा सलिलसन्निधौ।पूर्वदृष्टमिदं नेति शंकितो देवमायया ॥३३॥ अगाधे सलिलस्तब्धे मार्कण्डेयः प्लवन् मुनिः न शान्तिं लभते तत्र श्रमात् सन्त्रस्तविक्लवः ॥३४॥ तथैव भगवान् हंसो गतो योगेन बालताम् । बभाषे मेघतुल्येन स्वरेण पुरुषोत्तमः ॥ ३५ ॥ श्रीभगवानुवाच । मा भैर्वत्स न भेतव्यमि-

---

तथा संसारके भी चार प्रकारके भूतग्रामसे शून्य होजाने पर, इसी लिये द्वितीयके न होने पर भीषण समयमें मार्कण्डेयको मोह हुआ था, श्रुतिमें लिखा है, कि–"तस्मादेकाकी बिभेति–इस लिये एकाकी डरता है' अर्थात् अविद्यावस्थामें एकाकीको भय लगने पर भगवान् गुरु आदिके रूपमें प्रकट होकर भक्तों पर अनुग्रह करते हैं, इसी बातको अगले श्लोकमें कहते हैं]॥ ३० ॥ ३१ ॥ वह विस्मयमें भर कर फिर कौतूहल करने लगे और सूर्यकी समान प्रकाशवान् बालकके पास न जा सके [नीलकण्ठ— समाधिमें सारे व्यावहारिक तीर्थक्षेत्र आदिका दर्शन हुआ और व्युत्थानमें भी उसका ही दर्शन हुआ इससे मार्कण्डेयजी विस्मित होने लगे और दिव्य एकाकी बालकका दर्शन करके कौतूहलयुक्त होगए] ॥ ३२ ॥ देवतामासे सशंकित हुए मार्कण्डेय एकान्तमें जलकी निधिके पास खड़े होकर यह विचारने लगे, मैंने इस बातको पहिले देखा है वा नहीं देखा है ॥ ३३ ॥ जिसका जल स्तब्ध (स्थिर) होरहा था ऐसे अगाध समुद्रमें तैरते तैरते जब मार्कण्डेयजी थक गए जब श्रमके कारण वह घबडा गए, परन्तु उनको शान्ति नहीं मिली ॥ ३४ ॥ उस समय पुरुषोत्तम भगवान् हंस जो योगसे बालक बन गए थे

हैवायाहि चान्तिकम् । मार्कण्डेय मुने धीर बालस्त्वं श्रमपीडितः॥
मार्कण्डेय उवाच । को मां नाम्ना कीर्तयते तपः परिभवन् मम ।
बहुवर्षसहस्रायुर्द्धर्षयंश्चैवमेन यः ॥ ३७ ॥ न ह्येषु समुदाचारो
देवेष्वपि समाहितः।मां ब्रह्मापि स विश्वेशो दीर्घायुरिति भाषते३८
कस्तपो घोरशिरसो ममाद्य त्यक्तजीवितः । मार्कंडेयेति मां प्रोच्य
मृत्युमीक्षितुमिच्छति ॥ ३९ ॥ वैशम्पायन उवाच । एवमाभाषते
क्रोधान्मार्कण्डेयो महामुनिः । अथैनं भगवान् भूयो बभाषे तत्

उन्होंने मेघकी समान (गम्भीर) स्वरमें कहा ॥३५॥ श्रीभगवान्ने कहा, कि-हे वत्स!तू डर मत और मेरे पास आ, हे धीर मुने मार्कण्डेय!तू बालक है अत एव श्रमसे पीड़ित होरहा है ३६ मार्कण्डेयजीने कहा, कि-मेरे तपका तिरस्कार करता हुआ कौन मुझे नाम लेकर बुला रहा है, मैं अनेक सहस्र वर्षोंकी आयु वाला हूँ, तब यह मेरा अपमान कौन कर रहा है ॥३७॥ ऐसा आचार तो देवताओंमें भी नहीं होसकता, विश्वके स्वामी ब्रह्मा जी भी मुझे दीर्घायु कह कर बुलाते हैं ॥ ३८ ॥ आज कौन मरनेको तयार हुआ पुरुष मुझ घोरशिर नाम वाले मृकण्डके पुत्र मार्कण्डेयके तपका अपमान कर मुझे मार्कण्डेय नामसे बुला कर अपनी मृत्यु देखना चाहता है ॥ ३९ ॥ वैशम्पायनजीने कहा, कि-महामुनि मार्कण्डेय क्रोधमें भर कर इस प्रकार भाषण कर रहे थे, तब अपनेमें परायण रहने वाले मार्कण्डेयसे भगवान् कहने लगे ॥ ४० ॥ श्रीभगवान्ने कहा, कि-हे वत्स ! मैं तेरा जनक हूँ, मैं हृषीकेश हूँ, तेरा पिता हूँ, तुझे आयु देने वाला प्राचीन पुरुष हूँ, तू मेरे पास क्यों नहीं आता [नीलकण्ठ-इस प्रकार तप और अवस्थामें अपनेको वृद्ध मानने वाले मार्कण्डेयजीके गर्वको दूर करनेके लिए और ऐकात्म्यभावको जतानेकी इच्छासे भगवान्ने उनसे मैं तेरा पिता हूँ, मैं हृषीकेश

परायणम् ॥४०॥ श्रीभगवानुवाच । अहं ते जनको वत्स हृषी-
केशः पिता गुरुः । आयुःप्रदाता पौराणः किमर्थं नोपसर्पसे ४१
मां पुत्रकामः प्रथमं पिता ते ह्यङ्गिरा मुनिः । पूर्वमाराधयामास
तपस्तीव्रमुपाश्रितः ॥ ४२ ॥ ततस्त्वां घोरशिरसं दहनोपमतेज-
सम् । दत्तवानहमात्मेष्टं महर्षिममितायुषम् ॥४३॥ तत्र नोत्सहते
चान्यो यो न भूत्या ममात्मकः । द्रष्टुमेकार्णवगतं क्रीडन्तं योग-
धर्मिणम् ॥ ४४ ॥ वैशम्पायन उवाच । ततः प्रसन्नवदनो वि-
स्मयोत्फुल्ललोचनः।मूर्ध्नि बद्धांजलिपुटो मार्कण्डेयो महातपाः ४५
नामगोत्रे ततः श्रुत्वा दीर्घायुर्लोकपूजितः । अथाकरोन्नमस्कारं

हूँ, इत्यादि वचन कहा है] ॥ ४० ॥ तुम्हारे पिता अंगिरा
वंशी मुनिने पुत्रकी इच्छासे पहिले तीव्र तप करके मेरी आरा-
धना की थी [नीलकण्ठ हिरण्यगर्भका नाम अंगिरा है, श्रुति
में लिखा है, कि-" एतं नु एवाङ्गिरसं मन्यन्तेऽङ्गानां हि रसः
स्तेन" इस प्रकार विश्वपितामें अंगिरा शब्दकी वृत्ति दीखती
है] ॥४२॥ तब मैंने तुझ अग्निकी समान तेज वाले और आत्मा
को इष्ट समझने वाले घोरशिर नाम वाले और मृकण्डकी संतान
होनेसे मार्कण्डेय कहाने वाले अमितायु महर्षि पुत्रको दिया
था ॥ ४३ ॥ जो विभूतिमें मेरी समान नहीं हो वह एकार्णवमें
पहुँच कर क्रीड़ा करते हुए मुझ योगधर्मीको नहीं देख सकता
[नीलकण्ठ-तात्पर्य यह है, कि-जड़ और अजड़ दो पदार्थ हैं,
इनमें जड़ अजड़को नहीं देख सकता और अजड़ जड़को नहीं
देख सकता, यदि वह भी दृश्य होजाय तो उसमें भी जडत्वकी
आपत्ति होजायगी अतः हम दोनोंकी एकात्मता निश्चित है]४४
वैशम्पायनजीने कहा, कि-उस समय मार्कण्डेयजीका मुख प्रसन्न
होगया और उनके नेत्र हर्षके कारण खिलगए फिर महातपस्वी
मार्कण्डेयने दोनों हाथ जोड़ कर अपने शिर पर लगाए ॥४५॥

प्रणतः शिरसा प्रभुम् ॥४६॥ मार्कण्डेय उवाच । इच्छेऽहं तत्त्वतो मायामिमां ज्ञातुं तवानघ । यदेकार्णवमध्यस्थः शेषे त्वं बाल-रूपवान् ॥ ४७ ॥ किंसंज्ञः कश्च भगवाँल्लोके विज्ञायसेऽनघ । तर्कये त्वां महाभूतं न भूतमिह तिष्ठति ॥४८॥ श्रीभगवानुवाच । अहं नारायणो ब्रह्मा सम्भवः सर्वदेहिनाम् । सर्वभूतोद्भवकरः सर्वभूतविनाशनः ॥४९॥ अहमैंद्रे पदे शक्रः ऋतूनामपि वत्सरः। अहं युगे युगाख्यश्च युगस्यावर्त एव च ॥ ५० ॥ अहं सर्वाणि

फिर संसार जिनकी पूजा करता है ऐसे दीर्घायु मार्कण्डेयने अपने नाम और गोत्रको सुन कर शिर झुका कर प्रभुको प्रणाम किया ॥ ४६ ॥ मार्कण्डेयजीने कहा, कि-हे अनघ ! मैं आपकी मायाको ठीक २ जानना चाहता हूँ, आप एकार्णवके बीचमें बालकका रूप धारण करके शयन कर रहे हैं ॥४७॥ हे अनघ ! आपका नाम क्या है और आप लोकमें किस प्रकार जाने जाते हैं मेरा विचार है, कि-आप महाभूत हैं, क्योंकि-कोई भूत यहाँ पर नहीं है ॥ ४८ ॥ श्रीभगवान्ने कहा, कि-मैं नारायण हूँ, ब्रह्मा हूँ, और सब प्राणियोंका उत्पत्तिस्थान हूँ, सब भूतोंकी उत्पत्तिको करने वाला हूँ और सब भूतोंका विनाश (अपनेमें लय) करने वाला हूँ [नीलकण्ठ-श्रीभगवान् मायाके तत्त्वको कहने लगे, कि-मैं नारायण हूँ अर्थात् नार नाम वाला सारा प्रपञ्च लयाधिष्ठान उपाधिके स्पर्शसे शून्य है, वही मायासे अन्य प्रकारका दीखता है-वही मायासे अन्य प्रकारका भासता है, इसका ज्ञान होने पर मायाकी निवृत्ति होजाती है और इसका ज्ञान न होने पर रज्जूरगकी समान ब्रह्मादिरूपसे माया ही भासित होती रहती है] ॥४९॥ [नीलकण्ठ-अब ऐकात्म्यको ग्रहण न कर सकने वालोंकी उपासनाके लिए अगले श्लोकोंमें विभूतियोंका वर्णन करते हैं, कि-] मैं इन्द्रपदका शक्र हूँ, मैं

सत्त्वानि देवतान्यखिलानि च । भुजगानामहं शेषस्ताक्षर्योऽहं सर्व-
पक्षिणाम् ॥५१॥ अहं सहस्रशीर्षाद्यैर्नः परैरभिसंस्तुतः । आदित्यो
यज्ञपुरुषो देवो यज्ञमयो मखः । अहमग्निर्हव्यवाहो यादसां पति-
रव्ययः ॥ ५२ ॥ यत् पृथिव्यां द्विजेन्द्राणां तपसा भावितात्म-
नाम् । बहुजन्मनिरुद्धात्मा ब्राह्मणो यतिरुच्यते ॥ ५३ ॥ ज्ञान-
वान् दृष्टविश्वात्मा योगिनां योगवित्तमः । कृतान्तः सर्वभूतानां
विश्वेषां कालसंज्ञितः ॥५४॥ अहं कर्मक्रिया जीवः सर्वेषां धर्म-
दर्शनः । निष्क्रियः सर्वभूतेषु स्वात्मज्योतिः सनातनः ॥ ५५ ॥

युगमें युगान्त और युगका आवर्त हूँ ॥ ५० ॥ मैं सर्वसत्त्वस्वरूप और संपूर्णदेवतास्वरूप हूँ, मैं सर्पोंमें शेष हूँ और सब पक्षियोंमें गरुड़ हूँ ॥ ५१ ॥ मैं सहस्रशीर्षा आदि परोंसे घिरा हुआ हूँ अर्थात् सहस्रशीर्षा आदि वेदमंत्रोंसे मेरी ही स्तुति की जाती है मैं आदित्य हूँ, यज्ञपुरुष हूँ, देव हूँ, और यज्ञमय मख हूँ मैं हव्य को पहुँचाने वाला अग्नि हूँ, और जलचर जीवोंका स्वामी वरुण हूँ, अव्यय हूँ ॥ ५२ ॥ तपसे पवित्र अन्तःकरण वाले पृथिवी के ब्राह्मणोंमें अनेक जन्मों तक आत्माको वशमें रखने वाला जो ब्राह्मण यति कहलाता है, वह मैं ही हूँ [नीलकण्ठ—स्वधर्मानुष्ठानरूप तपसे शुद्ध चित्त वाले ब्राह्मणोंमें जो ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण संन्यासी कहलाता है,वह मैं ही हूँ "ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति ब्रह्मवेत्ता ब्रह्म ही होजाता है" इस शास्त्रमें जिस रूपमें ब्रह्मका वर्णन किया है, वह मायासे अनारोपित रूप ब्रह्म मैं ही हूँ,] ॥ ५३ ॥ मैं ज्ञानवान् हूँ, विश्वके सब प्राणियोंको मैं देखता हूँ, योगियोंमें योगवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हूँ और विश्वके सबभूतोंका काल नाम वाला कृतान्त यम हूँ ॥ ५४ ॥ मैं कर्म क्रिया और जीवरूप हूँ और सबोंके धर्मको दिखाने वाला हूँ, मैं सब प्राणियोंमें निष्क्रिय और आत्मज्योति सनातन पुरुष हूँ ॥ ५५ ॥ प्रधान पुरुष हूँ, देवता

प्रधानं पुरुषो देवोऽहमाद्यस्त्वव्ययोऽव्ययः। अहं धर्मस्तपश्चाहं सर्वाश्रमनिवासिनाम् ॥ ५६ ॥ अहं हयशिरो देवः क्षीरोदो यो महार्णवे। ऋतं सत्यं च परमपदमहमेकः प्रजापतिः ॥ ५७ ॥ अहं सांख्यमहं योगमहं तत्परमं पदम्। अहमिज्यो भवश्चाहमहं विद्याधिपः स्मृतः ॥ ५८ ॥ अहं ज्योतिरहं वायुरहं भूमिरहं नभः। अहमापः समुद्राश्च नक्षत्राणि दिशो दश। अहं वर्षमहं सोमः पर्जन्योऽहमहं रविः ॥५९॥ क्षीरोदः सागरश्चाहं समुद्रो वडवामुखः। वन्हिः संवर्तको भूत्वा पिवंस्तोयमहं रविः ॥ ६० ॥ अहं पुराणं परमं तथैवेह परायणम्। अहं भूतस्य भव्यस्य वर्तमानस्य सम्भवः ॥ ६१ ॥ यत्किंचित्पश्यसे चैव यच्छृणोपि च किंचन। यच्चानुभवसे लोके तत्सर्वं मामकं स्मृतम् ॥ ६२ ॥ विश्वं सृष्टं मया पूर्वं सृजेयं चाद्य पश्य माम्। युगे युगे च स्रक्ष्यामि मार्क-

हूँ, आदिम हूँ, अक्षय हूँ, अव्यय हूँ, सब आश्रमनिवासियोंका धर्म और तप भी मैं ही हूँ ॥ ५६ ॥ क्षीरोद समुद्रमें जो हयशिर देव हैं, वह भी मैं ही हूँ, मैं ऋत सत्य और एक प्रजापति रूप हूँ ॥ ५७ ॥ मैं सांख्य हूँ, मैं योग हूँ, और मैं परमपद हूँ मैं पूजनीय, भव, और विद्याधिप कहलाता हूँ ॥५८॥ मैं ज्योति वायु भूमि आकाश जल समुद्र और दशों दिशारूप हूँ और वर्ष चन्द्रमा मेघ और सूर्य भी मैं ही हूँ ॥ ५९ ॥ मैं क्षीरसमुद्र हूँ और मैं संवर्तक अग्नि वड़वामुख अग्नि होकर जलको पीता रहता हूँ और मैं सूर्यरूप हूँ ॥ ६० ॥ मैं परम प्राचीन हूँ और संसारी मुझमें परायण रहते हैं और मैं भूत भविष्यत् वर्तमान का उत्पत्ति स्थान हूँ ॥ ६१ ॥ संसारमें तू जो कुछ वस्तु देखता है और जो कुछ सुनता है और जिस २ का अनुभव करता है, वह सब मेरा कहलाता है ॥६२॥ मैंने पहिले विश्वको रचा था और अब भी मैं रचूँगा, इस बातको तुम देखना, हे मार्कण्डेय!

डेयाऽखिलं जगत् ॥६३॥ तदेतदखिलं सर्वं मार्कण्डेयावधारय । शुश्रूषुर्मम धर्मांस्तु: कुक्षौ चर सुखी भव ॥ ६४ ॥मम ब्रह्मा शरीरस्थो देवाश्च ऋषिभिः सह । व्यक्तमव्यक्तयोगं मामवगच्छापराजितम् ॥ ६५ ॥ अहमेवाक्षरो मन्त्रस्त्र्यक्षरश्चैव सर्वशः । त्रिपदश्चैव परमस्त्रिवर्गार्थनिदर्शनः ॥ ६६ ॥ वैशम्पायन उवाच। एवमेतत्पुराणेषु वेदान्ते च महामुनिः । वक्त्रं व्याहृतवानाशु मार्कण्डेयं महामुनिः ॥ ६७ ॥ प्रवेशयामास ततो जठरं विश्वरूपधृक्।

मैं प्रत्येक युगमें सारे जगत्को रचा करता हूँ ॥ ६३ ॥ हे मार्कण्डेय ! इस बातको तुम निश्चित समझो, और मेरे धर्मको सुनने की इच्छासे मेरी कोखमें विचरण कर सुखी हो [नीलकण्ठ—तू मेरे धर्म-ऐश्वर्य-को पाने की इच्छासे मेरी कोखरूप निर्विकल्प समाधिका अनुष्ठान कर और सुखी होजा अर्थात् संसारके दुःख से शून्य होजा] ६४ देवता और ऋषियों सहित ब्रह्माजी मेरे शरीरमें स्थित रहते हैं,तुम मुझे अपराजित व्यक्त और अव्यक्त योग जानो [नीलकण्ठ-ब्रह्मा आदिके प्रति मैं तटस्थ कारण नहीं हूँ, किन्तु अभिन्न निमित्तोपादानरूप कारण हूँ इसी लिए कहता हूँ, ब्रह्माजी मेरे शरीरमें सुवर्णमें कुण्डलकी समान स्थित हैं तात्पर्य यह है, कि-सब मुझमें ही ओतप्रोत होरहा है] ।६५। मैं एक-अक्षर, त्र्यक्षर मंत्र और धर्म अर्थ तथा कामको दिखाने वाला त्रिपद हूँ [नीलकण्ठ—मैं एकाक्षर अर्थात् अकार हूँ, श्रुति में लिखा है, कि-"अकारो वै सर्वा वागिति" अकार ही सब वाणीस्वरूप है, और मैं त्र्यक्षर अर्थात् ओंकार हूँ और मैं त्रिपद अर्थात् गायत्री भी हूँ] ।।६६।। वैशम्पायनजीने कहा, कि-महामुनि व्यासजीने पुराण तथा वेदान्तोंमें महामुनि मार्कण्डेयजीके मुखके पास पहुँचनेका यह वर्णन किया है ६७ तदनन्तर विश्वरूपधारीने मार्कण्डेयको अपने मुखमें घुसा लिया तदनन्तर

ततो भगवतः कुक्षिं प्रविष्टो मुनिसत्तमः । रराम सुखमासाद्य शुश्रूषुर्हंसमव्ययम् ॥ ६८ ॥ तदक्षरं विविधगर्थाश्रितो वपुर्महार्णवे व्यपगतचन्द्रभास्करे । शनैश्चरन्प्रभुरपि हंससंज्ञितोऽसृजञ्जगद्विसृजति कालपर्यये ॥ ६९ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

वैशम्पायन उवाच । आपवः स विभुर्भूत्वा कारयामास वै

अव्यय हंसकी शुश्रूषा करना चाहने वाले मुनिसत्तम मार्कण्डेय जी भगवान्‌की कोखमें घुस सुख पाकर रमण करने लगे [नीलकण्ठ—मार्कण्डेय हंसस्वरूप परमात्माकी निर्विकल्पसमाधिसे आराधना करनेकी इच्छासे उनमें लीन होगए] ॥ ६८ ॥ वह हंस नाम वाला अक्षर अनेक शरीरोंको धारण करता है तब भी चन्द्रमा और सूर्यरहित महार्णवमें धीरे २ चल कर सृष्टि करता है और कालका लौट फेर होने पर जगत्‌का प्रलय करता है [नीलकण्ठ-हंस संज्ञा वाला अविनाशी ब्रह्म अनेक प्रकारके शरीरोंका आश्रय लेने पर भी चन्द्रमा सूर्यके कारण मन और चक्षुसे रहित अर्थात् कार्यकारणकी प्रपञ्चसे शून्य चिन्मात्रावस्थामें स्थित होकर भी भूमिजयके क्रमसे अविद्याके लेशके वश में होकर समाधिसुखके विच्छेद कालमें जगत्‌को रचता है और समय आने पर उसको लीन कर लेता है] ॥ ६९ ॥ दशवाँ अध्याय समाप्त ॥ १० ॥

वैशम्पायनजीने कहा, कि—वह विभु कुंभसंभव आपव मुनि बन कर अपनी आत्माको ढक कर तप करने लगे [नीलकण्ठ-ब्रह्मैव ब्रह्मविदिति विस्पष्टयितुमापवात्। पञ्चमेऽथापवादीनां जन्म संक्षिप्य वर्ण्यते-ब्रह्मको जानने वाला ब्रह्म ही है इस बातको स्पष्ट करनेके लिए आपव-वशिष्ठजीसे आपवादिकोंका जन्म

तपः । छादयित्वात्मनो देहमात्मना कुम्भसम्भवः ॥ १ ॥ ततो महात्माऽतिबलो मतिं लोकस्य सर्जने । महतां पञ्चभूतानां विश्वभूतो व्यचिन्तयत् ॥२॥ तस्य चिन्तयतस्तत्र तपसा भावितात्मनः। निराकाशे तोयमये सूक्ष्मे जगति गह्वरे ॥३॥ ईषत् संक्षोभयामास सोऽर्णवं सलिले स्थितः । सोऽनन्तरोर्मिणा सूक्ष्ममथच्छिद्र-

संज्ञिमरूपसे कहा जाता है" वह हंस नामवाले प्रभु आपव अर्थात् वसिष्ठ नाम वाले ब्रह्मर्षि बन कर योग तपको करने लगे, उस समय उन्होंने अपने कुंभसे उत्पन्न देहको ढक लिया था अर्थात् समष्ट्यभिमानीको ग्रहण कर स्थूल देहकी तादात्म्यताको त्याग दिया था । इस प्रकारकी कथा मिलती है, कि—वसिष्ठ का कुंभसे जन्म हुआ था, मित्र और वरुणने यज्ञकी दीक्षा ली थी उस समय उर्वशीको देख कर उनका वीर्य कुम्भमें गिर पड़ा था इससे अगस्त्य और वशिष्ठ उत्पन्न हुए थे] ॥ १ ॥ तदनन्तर वह अतिबली महात्मा विश्वभूत होकर पञ्च महाभूतोंकी और लोकोंकी सृष्टि करनेका विचार करने लगे [नीलकण्ठ— वह ईश्वर थे और उन्होंने देहसे अपनी आत्माको ढक लिया था ऐसे अनन्त शक्ति प्रभु वसिष्ठजी भौतिक लोकके और उसके उपादानभूत पञ्च संख्यक वियदादिकी सृष्टि करनेका विचार करने लगे, वह विश्वभूत थे अर्थात् विश्वात्मा थे "स ऐक्षत इमांल्लोकानुत्सृजा इति—उसने विचारा कि—मैं इन लोकोंको रचूँ' इस श्रुतिका अर्थ इस श्लोकमें दिखाया है] ॥ २ ॥ जगत्के आकाशरहित सूक्ष्म और गह्वरभूत होनेपर तपसे पवित्र अन्तःकरण वाले वसिष्ठ इसप्रकार चिन्ता करने लगे [नीलकण्ठ-निराकाश जलमय अर्थात् चिन्मय दुर्लक्ष्य दुरवगम वस्तु में लीन होने पर, ईक्षणरूप तपसे जिनका अहंकार बढ़ गया था ऐसे प्रभु चिन्ता करने लगे] ॥ ३ ॥ सलिलमें खड़े हुए

मभूत्तदा॥४॥तत्र शब्दगतिर्भूत्वा मारुतद्रवसम्भवः । स लब्ध्वा-न्तरमक्षोभ्यो व्यवर्धत समीरणः ॥ ५ ॥ विवर्धता बलवता तेन संक्षोभितोऽर्णवः । अन्योन्यवेगाभिहता ममन्थुश्चोर्मयो भृशम् ६

वसिष्ठ समुद्रको कुछ हिलाने लगे, तदनन्तर ऊर्मियोंके साथ सूक्ष्म छिद्र होगया [नीलकण्ठ-भावितात्मा चिदात्मा अधिष्ठानमें स्थित होकर परमतत्त्वको कुछ क्षुब्ध करने लगे, तात्पर्य यह है, कि-शुद्ध चित् समष्टि अहंकारसे मैं ईश्वर हूँ ऐसी भावना करने लगा वह ईश्वर फिर अनन्तर ऊर्मिसे अर्थात् दूसरे संकल्पसे इन्द्रियोंसे ग्रहण न किया जा सकने वाला आकाश नाम वाला छिद्र अपने ही आप ही होगया] ॥ ४ ॥ तहाँ वह मारुत द्रव-सम्भव शब्दगति होगए,फिर वह अक्षोभ्य वायु अन्तरको पाकर बढने लगा [उस छिद्रमें वह दूसरे संकल्पसे शब्दगति होगया, फिर वह ईश्वर दूसरे संकल्पसे आकाशमें शब्दरूपसे गतिको देने वाला होगया, वायुवेगसे ही शब्दगतिरूपसे उसका आविर्भाव होता है, तात्पर्य यह है, कि-वायुके अनुग्रहसे ही संयोग और विभागहेतुकी गति उत्पन्न होती है, ये दोनों ही शब्द आविर्भावमें कारण हैं । आकाशके अनन्तर ही उत्पन्न हुआ वायु शब्द और गतिका निमित्त बन गया] ॥ ५ ॥ उस बलवान् वायुने बढ़ कर समुद्रको क्षुब्ध कर डाला और ऊर्मियें भी परस्परके वेगसे टकरा कर एक दूसरेको मथने लगीं [नीलकण्ठ-वायुने चिदात्माको किस प्रकार क्षुब्ध किया इस बातको कहते हैं कि-इस समय चित् अहंकार आकाश और वायु थी, तहाँ पर चित्ने अहंकारकी जड़ताको हर लिया दूसरेने उसके शुद्धत्वको नष्ट कर दिया, इस प्रकार अहंकारके प्रकट होने पर वायुका निःस्पन्दत्व हत होगया और वायुसे अहंकारत्वका निःस्पन्दत्व हत होगया,इस प्रकार परस्परके अभिघातसे वे संकल्पभेदरूप

महार्णवस्य क्षुब्धस्य तस्मिन्नंमसि मथ्यति । कृष्णवर्त्मा समभवत् प्रभुर्वैश्वानरोऽर्चिमान् ॥ ७ ॥ तत्र संशोषयामास पावकः सलिलं बहुः । क्षयाज्जलनिधेच्छिद्रमभवन्निःसृतं नभः ॥ ८ ॥ आत्मतेजोद्भवाः पुण्या आपोऽमृतरसोपमाः । आकाशं छिद्रसम्भूतं वायुराकाशसम्भवः ॥ ९ ॥ आज्यसंघर्षणोद्भूतं पावकं

ऊर्मियें समुद्रको व्याकुल करने लगीं] ॥ ६ ॥ जब जलके मथने पर समुद्र क्षुब्ध होने लगा, तब उसमेंसे अर्चिष्मान् कृष्णवर्त्मा प्रभु अग्नि उत्पन्न होगया ॥ ७ ॥ तब अग्नि बहुतसे जलको सुखाने लगा, जलनिधिका क्षय होनेसे आकाश निकल आया [नीलकण्ठ रूपवान् तेजसे नीरूप निदात्माके अपादानसे अतिकलुषता आगई अर्थात् तब तेजने शुद्ध वस्तुको दूर कर दिया, इस प्रकार जलनिधि परमेश्वरका क्षय होने पर ऐश्वर्यसे जो छिद्र हुआ वह पूर्वोक्त आकाश ही हुआ] ॥ ८ ॥ अमृतकी समान पवित्र जल आत्मतेजसे उत्पन्न हुए हैं, आकाश छिद्रसे उत्पन्न हुआ है और वायु आकाशसे उत्पन्न हुआ है [नीलकण्ठ— "आत्मन-आकाशः संभूतः-आत्मासे आकाश उत्पन्न हुआ" इत्यादि श्रौतवाद है, वह आकाश (चित्) ही सर्वत्र है, जलकी सृष्टि कहते हुए कहा है, कि-वह आत्मरूप तेजसे उत्पन्न हुए हैं "आत्मतेजोद्भवाः" आदि आधा श्लोक जलनिधिके क्षयसे पूर्व होना चाहिये क्योंकि-तेज और जलके बीचमें ही आकाश-सृष्टि का अन्वय बैठता है । आकाश अर्थात् ईश्वर छिद्रसम्भूत होगया उस छिद्रभूताकाशमें वायु उत्पन्न हुआ । तथापि आकाशाद्वायुः-आकाशसे वायु उत्पन्न हुआ यह वेदवाद औपचारिक है। मूलकारण ही अनन्त कार्यस्वरूप होनेसे नटकी समान तत्तद्रूपसे भासित होता है । आकाशवृक्षके अंकुरादिकी समान सृष्टि क्रम की विवक्षा यहाँ नहीं है] ॥ ९ ॥ महाभूतोंके आदिदेव आज्य-

चाज्यसम्भवम् । दृष्ट्वा प्रीतियुतो देवो महाभूतादिभावनः ॥१०॥ दृष्ट्वा भूतानि भगवाँल्लोकसृष्ट्यर्थतत्त्ववित् । ब्रह्मणो जन्मसहितं बहुरूपो विचिन्वति ॥ ११ ॥ चतुर्युगादिसंख्याते सहस्रयुगपर्यये। यत् पृथिव्यां द्विजेन्द्राणां तपसा भावितात्मनाम् ॥ १२ ॥ बहुः जन्मनिरुद्धात्मा ब्राह्मणो यतिरुत्तमः । ज्ञानवान् दृष्टविश्वात्मा

संघर्षणोद्भूत अग्निको जलसे उत्पन्न हुआ देखकर प्रसन्न होगए [नीलकण्ठ-घृतकी समान द्रव होनेसे आज्यको जल कहा है, उस जलके दृढ़तर अश्लेषको संघर्षण कहा है अर्थात् जलका श्लेप न होना पृथ्वी है । श्रुतिमें लिखा है, कि-'तद्यदपांश आसत् सा महत्यसौ पृथिव्यभवत्-जो जलका अंश है, वही महती उपनाम वाली पृथ्वी है" और ओले आदिकी समान दृढ़त्वको प्राप्त हुआ जल ही पृथ्वी है, ऐसी आज्यसंघर्षणस्वरूपा पृथ्वीरूप शरीरमें जठराग्नि उत्पन्न हुआ है उस परम्परासे जलके द्वारा उत्पन्न हुए पार्थिव अग्नि (भोक्ता) को देख कर अर्थात् शब्द आदि गुण वाले भोग्यस्वरूप महाभूतोंको देख कर और भोक्ता जीव को देख कर महाभूतोंके आदिभूत (अहंकार) की आत्मस्वरूप से कल्पना करने वाले अर्थात् अहंकारादिके रचयिता देव ईश्वर भौतिक हिरण्यगर्भको रचनेके विचारसे प्रसन्न होगए] ॥१०॥ लोककी सृष्टिके तत्त्वकी जानने वाले बहुरूप ईश ब्रह्माजीके हित-कारक जन्मका विचार करने लगे [नीलकण्ठ-शुद्धरूप जीवेश सृष्टिकी बहुलता करके अपना हित चाहने वाले ब्रह्माजीके जन्म का विचार करने लगे, यह वर्तमान पद देकर यह बात सूचित की है, कि-यह उनका प्रवाहनित्य नियम है वह प्रत्येक कल्प में संकल्पमात्रसे ब्रह्माकी सृष्टि करते हैं] ॥ ११ ॥ चार युग वाले सहस्र युगोंमें अर्थात् पूर्वकल्पमें पृथिवीके तपसे पवित्र अन्तः करण करने वाले द्विजेन्द्रोंमें जो अनेक जन्मों तक आत्माको वश

योगिनां योगवित्तमः ॥ १३ ॥ तं योगवन्तं विज्ञेयं सम्पूर्णैश्वर्य-विक्रमम् । देवो ब्रह्मणि विश्वे च नियोजयति योगवित् ॥१४॥ ततस्तस्मिन् महातोये हविषो हरिरच्युतः । स्वपन् क्रीडंश्च विविधं मोदते चैव पावकिः ॥ १५ ॥ पद्मं नाभ्युद्भवं चैकं समुत्पादित-वांस्तदा । सहस्रपत्रं विरजो भास्कराभं हिरण्मयम् ॥१६॥ हुता-

में रखने वाला ज्ञानवान्, योगियोंमें श्रेष्ठ विश्वरूपका उपासक ब्राह्मण होता है १२-१३ उस पूर्ण ऐश्वर्य विक्रम वाले विज्ञेय योगवान्को योगवेत्ता देव सम्पूर्ण विश्वमें ब्रह्मापद पर नियुक्त करते हैं [नीलकण्ठ-अत एव वह ब्राह्मण दृष्टविश्वात्मा होजाता है अर्थात् सूत्रात्मभावका साक्षात् कर लेता है,इस लिए वह सब का उपासना करने योग्य होजाता है उस सम्पूर्ण ऐश्वर्यविक्रम वालेको विश्वेश वेद और जगत्में सन्ततिको अविच्छिन्न रखने लिए नियुक्त करते हैं। तात्पर्य यह है,कि-सूत्रोपासकों में जो श्रेष्ठ होता है, वह अग्रिम कल्पमें ब्रह्मा होता है] ॥ १४ ॥ तदनन्तर अच्युत हरि महाजलमें शयन करते हैं और तैजस ब्रह्मा प्राणियों के कर्म रूप हविसे सोकर और अनेक प्रकारकी क्रीड़ा करके आनन्द करते रहते हैं[नीलकण्ठ-ब्रह्माकी नियुक्ति करनेके अन-न्तर हरि सृष्टिविक्षेपसे शून्य होनेके कारण निर्विशेष स्वस्वरूपमें स्थित होजाते हैं और नियुक्त हुए तैजस ब्रह्मा प्राणियोंके कर्म वश कर्मका अपने आप उपरम होने पर शयन करते हैं और सब प्राणियोंके कर्मके प्रकट होने पर अनेक प्रकारकी क्रीड़ा करते हैं, इस प्रकार ब्रह्माण्डके अधिपति बन कर आनन्द करते हैं] १५ उस समय हरिने अपनी नाभिसे एक कमल उत्पन्न किया, उस के सहस्र पत्र हैं, वह धूल रहित है और सूर्यकी आभाकी समान है, सुवर्णका है, वह प्रदीप्त हुए अग्निकी शिखाकी समान उज्ज्वल है, सुगंधित, शरद् ऋतुके सूर्यकी समान तेज वाला महात्मा

शनं ज्वलितशिखोज्ज्वलत्प्रभं सुगन्धिनं शरदमलार्कतेजसम् ।
विराजते कमलमुदारवर्चसं महात्मनस्तनुरुहचारुदर्शनम् ॥ १७ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि
एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

वैशम्पायन उवाच । अथ योगविदां श्रेष्ठं सर्वभूतमनोमयम् ।
स्रष्टारं सर्वभूतानां ब्रह्माणं सर्वतोमुखम् ॥१॥ तस्मिन् हिरण्मये

विष्णुके शरीरसे उत्पन्न हुआ चारुदर्शन कमल विराजता रहता है [नीलकण्ठ-ब्रह्माजीके भवन रूप ब्रह्माण्डात्मक हरिकी पद्ममुख से स्तुति की जाती है, यहाँ पर ब्रह्माजीके जन्मके समय पहिले पद्मकी ही स्तुति करते हैं, कि-"ज्वालामालाकुलं भाति विश्वस्यायतनं महत् विश्वका आयतन ज्वालामालाओंसे आकुल होकर प्रकाशित होता रहता है" इत्यादि श्रुतिप्रसिद्ध नाभिका यहाँ ग्रहण करना चाहिये, क्यों कि आपव नाम वाले वशिष्ठकी समाधि यहाँ चल रही है, उस कमलमें योगभूमिरूप अनन्त पत्र हैं वह रजोगुणसे रहित है, चारों ओरसे दमक रहा है, मनका हरण करता है, उसकी तेजः शिखाएँ अग्निज्वालाओंकी समान दमक रही है और वह समाधिकालमें रमणीय विषयोंके स्वादरूप सुगंधि वाला है और वह क अर्थात् ब्रह्मके मल अर्थात् अविद्यारूपसे शोभा दे रहा है और हार्दाकाशरूप तनुमें उस पर चढ़ा जा सकता है] ॥ १६ ॥ १७ ॥ ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ॥११॥

वैशम्पायनजीने कहा, कि-तदनन्तर आपवने तेजके सब गुणोंसे युक्त और पार्थिव लक्षणोंसे युक्त अनेक योजनमें फैले हुए उस सुवर्णमय कमलमें योगवेत्ताओंमें श्रेष्ठ, सब प्राणियोंके मन और भूतमय सब प्राणियोंके स्रष्टा सर्वतोमुख ब्रह्माको उस कमलमें नियुक्त कर दिया [नीलकण्ठ-"लेशतोऽपि न भेदोऽस्ति बाह्याभ्यन्तरविश्वयोः । इति वक्तुं मुनिः प्राह पद्मेनाम्बुजसम्पदम्-

पद्मे बहुयोजनविस्तृते । सर्वतेजोगुणमये पार्थिवैर्लक्षणैर्युते ॥२॥ तच्च पद्मं पुराणज्ञाः पृथिवीरूहमुत्तमम् । नारायणांगसम्भूतं मवदन्ति महर्षयः॥३॥ या तु पद्मासना देवी पृथिवीं तां प्रचक्षते । ये गर्भसारांकुरतस्तान् दिव्यान् पर्वतान् विदुः ॥ ४ ॥ हिमवन्तं च मेरुं च निलं निषधमेव च । कैलासं मुञ्जवन्तं च यथाद्रिं गन्धमादनम् ॥५॥ पुण्यं त्रिशिखरं चैव कान्तं मन्दरमेव च । उदयं कन्दरं चैव विंध्यमस्तं च पर्वतम् ॥ ६ ॥ एते देवगणानां च

भीतरी बाहरी विश्वमें लेशमात्र भी भेद नहीं है,इसी बातको कहने के लिये मुनि व्यासजीने कमलकी सम्पत्तिको दिखानेके लिये छठा अध्याय कहा है'तदनन्तर आप सब भूतोंके मनोमय अर्थात् जलाकाशकी समान प्रत्येक व्यक्तिमें व्याप्त सूत्रात्मावाले सब भूतों के रचयिता सर्वतोमुख ब्रह्माको सब तेज (सूर्य आदि) और गुण (गंध आदि) वाले पार्थिव अर्थात् मनोमय होने पर भी स्थूल भूमिके सब गुणोंसे युक्त कमलमें ब्रह्माजीको नियुक्त करते हैं]॥१।२॥पुराणको जाननेवाले महर्षि पृथ्वीमेंसे उत्पन्न हुए उस पद्मको नारायणके अङ्गसे उत्पन्न हुआ बतलाते हैं[नीलकण्ठ— श्रुतिमें पृथिवीको भी शरीर बताया है "यच्छरीरं सा पृथिवी—जो शरीर है वह पृथिवी है" अर्थात् शरीरके भीतर एक कमल है, वह अन्तर्यामी नारायणके अंगसे उत्पन्न हुआ है अतः शरीरके भीतर ही है]॥ ३ ॥ जहाँ पर पद्मका आसन है उस देवीको पृथिवी कहते हैं और जहाँ पर पद्मका आसन स्थान है वह भी पृथिवी (शरीर) है और जो कमल गर्भके साररूप अंकुर (अस्थिएँ) हैं उनको दिव्य पर्वत कहते हैं ॥ ४ ॥ (उन पर्वतों के नाम इस प्रकार हैं) हिमाचल, मेरु, निल, निषध, कैलास, मुंजवान्, गंधमादन, पुण्यमय त्रिशिखर, रमणीय मन्दर, उदय, कन्दर, विन्ध्य और अस्ताचल पर्वत ५–६ ये सब कामनाओंसे

सिद्धानां च महात्मनाम् । आश्रमाः पुण्यशीलानां सर्वकामयुता-
द्रुमः ॥ ७ ॥ एतेषामितरो देशो जम्बुद्वीप इति स्मृतः । जम्बु-
द्वीपस्य संख्यानं याज्ञिया यत्र चक्रिरे ॥८॥ गर्भाद्यत् स्रवते तोयं
देवामृतरसोपमम्।दिव्यतीर्थशतापोग्यस्ता दिव्याः सरितः स्मृताः॥
यान्येतानि तु पद्मस्य केसराणि समन्ततः । असंख्याताः पृथिव्यां
तु विश्वे ते धातुपर्वताः ॥ १० ॥ यानि पद्मस्य पत्राणि भूरी-
ण्यूर्ध्वं नराधिप । ते दुर्गमाः शैलचिता म्लेच्छदेशा विकल्पिताः ।
यान्यधः पद्मपत्राणि वासार्थं तानि भागशः । दैत्यानामुरगाणां

भरे हुए हैं इनमें(ये शरीरपक्षमें अस्थिरूप पर्वत हैं)पुण्यमय कर्म करने वाले महात्मा सिद्धोंके आश्रम हैं अर्थात् महात्मा सिद्ध इन में योगसाधना करते है ॥ ७ ॥ इन पर्वतोंका एक दूसरा देश है वह जम्बूद्वीप है, तहाँ पर याज्ञिक पुरुष यज्ञ करते हैं अर्थात् जम्बूद्वीप कर्मभूमि है ॥ ८ ॥ और कमलके गर्भसे जो जल टपकता है वह देवताओंके अमृतरसकी समान है और प्रकाशवान् तीर्थ जिनके भूभंग हैं वह नदियें दिव्य नदियें कहलाती हैं [नीलकंठ- यज्ञका वर्णन करके अब यज्ञसे जलकी उत्पत्ति होती इस बातको दिखाया है क्योंकि-"अग्नौ प्रास्ताहुतिःसम्यगादित्यमुपतिष्ठते । आदित्याज्जायते वृष्टिः वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः-अग्निमें भली प्रकार होमी हुई आहुति आदित्यके पास पहुँचती है, आदित्यसे वृष्टि होती है वृष्टिसे अन्न होता है और अन्नसे प्रजा होती है" और दिव्य नदियें ब्रह्माण्डको भेद कर मेरुपर्वत पर गिर कर चारों दिशाओंमें फैल जाती हैं]९ और इस कमलके चारों ओर जो केसर हैं,वे पृथिवीमें बहुतसे धातुपर्वत हैं(और शरीरके कमलमें धातुरूप पर्वत हैं) १० और हे राजन् ! पहाड़ोंसे घिरे हुए दुर्गम म्लेच्छ- देश इस पद्मके ऊपरको जाने वाले बहुतसे पत्ते हैं ॥ ११ ॥ महात्मा दैत्य और सर्पोंके लिये विभागपूर्वक बनाया हुआ

च पातालं तन्महात्मनाम् ॥ १२ ॥ तेषामधोगतं तत्तदुदकेत्यभि-
संज्ञितम् । महापातककर्माणो मज्जन्ते यत्र मानवाः ॥ १३ ॥
पद्मस्थाने कुशं तत्तदेकार्णवजलं महत् । प्रोक्तास्ते दिक्षु संघाता-
श्चत्वारो जलसागराः ॥ १४ ॥ ऋषेर्नारायणस्यायं महापुष्कर-
सम्भवः । प्रादुर्भावोऽप्ययं तस्मान्नाम्ना पुष्करसम्भवः ॥ १५ ॥
एतस्मात् कारणात्तज्ज्ञैः पुराणैः परमर्षिभिः । यज्ञियैर्वेददृष्टार्थै-
र्यज्ञो पद्मविधी कृतः ॥ १६ ॥ एवं भगवता पद्मे विश्वस्य परगो

पाताल इस कमलके नीचेको जानेवाले पत्तोंका बना हुआ है १२
उसके नीचे जो जल है उसमें महापातक करने वाले पापी डूबते
रहते हैं ॥ १३ ॥ (पृथ्वीरूप) पद्मके प्रान्तमें जो "कु" अर्थात्
पृथ्वी जिसमें "श" शयन करती है-रहती है वह) कुश जल
है, वह समुद्रका बडा भारी जल है (और शरीररूप पृथिवीके
प्रान्तमें चितरूप समुद्र शोभा देरहा है)इस प्रकार आपसे इकट्ठे
चारों दिशाओंके समुद्र कह दिये ॥ १४ ॥ नारायण स्वरूप
ऋषिके हृदयमें इस प्रकार बडा भारी कमल उत्पन्न होता है,
इस लिये यह प्रादुर्भाव भी पुष्करसम्भव नामसे कहा जाता है
(नीलकण्ठ—इस प्रकार योगियोंके हृदयरूप दर्पणमें प्रादुर्भाव
होता है, हृदयमें स्थित इस संस्काररूप हेतुसे यह स्थूल संसार
भी पुष्करसम्भव (कमलसे उत्पन्न हुआ) कहलाता है] १५
इसीलिये वेदके तत्त्वको जानने वाले और इस बातको जानने
वाले प्राचीन यज्ञिय महर्षि यज्ञको कमलके आकारका चिनवाया
करते हैं [नीलकण्ठ—व्यवहारको कह कर वस्तुतत्त्वको कहते हैं
कि-महापुष्करसम्भव (कमलरूप ब्रह्माण्डके बीजरूप) योगि-
कल्पित कमलके उदाहरणसे कर्मयोगरूप यज्ञके अधिकारी पुरुष
यज्ञको ईंटोंसे चुन पद्मकी समान स्थूल पुष्कर प्रादुर्भावको
दिखाते हैं, वे वेदके तत्त्वको जानने वाले होते हैं अतः मूढोंको

विधिः । पर्वतानां नदीनां च देवतानां च निर्मितः ॥१७॥ विष्णु-स्तथैवाप्रतिमप्रभावः प्रभाकरो वै भगवान्महात्मा । स्वयं स्वयंभूः शयनेऽसृजत्तदा जगन्मयं पद्मनिधिं महार्णवे ॥ १८ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

वैशम्पायन उवाच । चतुर्युगादिसम्भूतौ सहस्रयुगपर्यये । विघ्नस्तमसि सम्भूतो मधुर्नाम महासुरः ॥ १ ॥ तस्यैव च सहा-

स्थूलरूपमें दिखाते हैं। तात्पर्य यह है, कि—सूक्ष्मसे ही स्थूल है, स्थूल सूक्ष्म नहीं होसकता है अर्थात् बीज वट हो जाता है, परन्तु सैंकडों वर्षोंमें वट बीज नहीं होसकता, अतः मानस पुष्करसे ही स्थूल पुष्करकी उत्पत्ति युक्त] है ॥ १६ ॥ इस प्रकार भगवान्ने पद्ममें विश्वकी देवताओंकी नदियोंकी और पर्वतोंकी व्यावहारिक विधि दिखा दी है ॥१७॥ अप्रतिम प्रभाव वाले प्रभाकार महात्मा स्वयम्भू भगवान्ने शयन करते समय अपने आप महासमुद्रमें जगन्मय पद्मनिधि बना दी है [नीलकंठ-स्थूल देहका विस्मरण हो चिन्मय परमात्मामें लीन हुआ योगी ब्रह्माण्डरूप अनेक कमलोंको रच सकता है अथवा परमात्माने चिन्मयमें लीन होनेके समय इस प्रकारके अनन्त कमल अनन्त प्राणियोंमें रच दिये हैं] ॥ १८ ॥ बारहवाँ अध्याय समाप्त १२

[नीलकण्ठ–"सप्तमे लयविक्षेपौ विघ्नौ तामसराजसौ। सत्त्वेन विष्णुनाक्षेप्यौ मधुकैटभरूपकौ" अब इस सप्तम पुष्करप्रादुर्भावाध्यायमें तामसविघ्नरूप लयका मधु नाम रख कर और राजस-विघ्नरूप विक्षेपका कैटभ नाम रख कर तथा सत्त्वका विष्णु नाम रख कर, विष्णुके द्वारा मधु कैटभोंके दूर करनेका वर्णन किया जाता है] वैशम्पायनजीने कहा, कि—सहस्र युग बीतने पर जब चतुर्युगोंका आदियुग कृतयुग आरंभ हुआ उस समय दो दैत्य

योन्यो भूतो रजसि कैटभः । तौ रजस्तममाविष्टौ सम्भूतौ कामरूपिणौ ॥२॥ एकार्णवजलं सर्वं क्षोभयन्तौ महासुरौ । कृष्णरक्तांबरधरौ श्वेतदीप्तोग्रदंष्ट्रिणौ ॥ ३ ॥ उभौ मदकटोदग्रौ केयूरवलयोज्ज्वलौ । महाविकृतताम्राक्षौ पीनोरस्कौ महाभुजौ ॥४॥

उत्पन्न हुए थे एक अन्धकारमें विघ्नस्वरूप मधु उत्पन्न हुआ दूसरा उसकी सहायता करने वाला रजमें कैटभ नामक दैत्य उत्पन्न हुआ, ये दोनों इच्छानुसार रूप धारण करने वाले थे और रजोगुण तथा तमोगुणसे घिरे हुए थे [नीलकण्ठ—चतुर्युग के आदिम युग कृतयुगमें अर्थात् सात्त्विक योगधर्ममें दो दैत्य उत्पन्न होने लगते हैं, क्योंकि-कृतयुगमें भी अधर्मका एक पाद रहता है, इस बातको पहिले ही कह आये हैं सहस्रयुगपर्ययरूप प्रलयके अर्थात् अमित अविद्या रूप रात्रिके क्षयके समय चित्तको तत्त्वमें लगाने पर चित्त प्रतिदिनके अभ्यासवश जो तमोगुणमें लीन होता है, उस लयको यहाँ मधु कहा है । इसी प्रकार रजोगुणकी प्रबलता होने पर सत्त्वगुणके उत्कर्षसे क्षणभरको तत्त्वलाभ होने पर भी चित्त जो फिर संसारोन्मुख होजाता है, उस विक्षेपको यहाँ पर कैटभ समझना चाहिये, और सत्त्वके समीपवर्त्ती जीवको ब्रह्मा समझना चाहिये और जीवको संसारमें गिराना उसकी हिंसा समझनी चाहिये और सत्त्वको विष्णु समझना चाहिये, और शरीरमें सत्त्वके होनेपर ही उनका नाश होता है और सत्त्वके होने पर ही वह होते हैं अतः अग्रिम कल्प में उनको विष्णुका पुत्र कहा है] ॥ १ ॥ २ ॥ वे महान् असुर एकार्णवके जलको क्षुब्ध करने लगे, उनमेंसे एक काला वस्त्र धारण कर रहा था और एक लाल वस्त्र धारण कर रहा था, उन दोनोंकी श्वेत डाढ़े प्रदीप्त थी और उग्र थीं ॥ ३ ॥ दोनों उत्कट मदसे उद्दण्ड होरहे थे और उज्ज्वल केयूर तथा वलयको

महच्छिरःसंहननौ जङ्गमाविव पर्वतौ । नीलमेघाभ्रसंकाशावादित्यप्रतिमाननौ ॥ ५ ॥ विद्युदम्भोदताम्राक्षौ कराभ्यामतिभीषणौ । पादसंचारवेगाभ्यामुत्क्षिपन्ताविवार्णवम् ॥६॥ कम्पयन्ताविव हरिं शयानमरिसूदनम् । तौ तत्र विहरन्तौ स्म पुष्करे विश्वतोमुखम् ॥७॥ पश्यतां दीप्तवपुषं योगिनां श्रेष्ठमुत्तमम् । नारायणसमाज्ञप्तं सृजन्तमखिलाः प्रजाः । दैवतानि च च विश्वानि मानसांश्च सुतानृषीन् ॥ ८ ॥ ततस्तावूचतुस्तत्र ब्रह्माणमसुरोत्तमौ । दृप्तौ युयुत्सकौ क्रुद्धौ रोषसंरक्तलोचनौ ॥ ९ ॥ कस्त्वं पुरुषमध्यस्थः सितोष्णीषश्चतुर्मुखः । आवामगणयन्मोहादास्से त्वं विगतज्वरः ॥ १० ॥ एह्यावयोर्बाहुयुद्धं प्रयच्छ कमलोद्भव ।

धारण कर रहे थे, उनकी आँखें विकार भरी और ताँबेकी समान लाल २ होरही थीं, उनका वक्षःस्थल पुष्ट था और भुजाएँ बड़ी बड़ी २ थीं ।४। उनके शिर और शरीर बहुत बड़े थे, इस लिए वह चलते फिरते पर्वतोंकी समान प्रतीत होते थे, वे दोनों काले मेघ और श्वेत बादलोंकी समान थे और उनका मुख सूर्यकी समान (दमक रहा था) ॥ ५ ॥ बिजली और मेघकी समान अतिभीषण वे राक्षस अपने हाथोंसे और पादसंचारके वेग से समुद्रको उछालने सा लगे ।६ और वह उस पुष्करमें विहार करके विश्वतोमुख शयन करते हुए अरिसूदन हरिको कँपानेसे लगे उन्होंने प्रदीप्त शरीरवाले, योगियोंमें श्रेष्ठ ब्रह्माजीको नारायण की आज्ञासे देवता विश्वेदेवा और मानसपुत्र आदि सारी सृष्टिको रचते हुए देखा ॥ ७ ॥ ८ ॥ तदनन्तर रोषसे लाल लाल नेत्र वाले घमण्डमें भरे हुए अत एव युद्ध करना चाहने वाले दोनों असुरसत्तम ब्रह्माजीसे कहने लगे ॥ ९ ॥ पुरुषके बीचमें बैठा हुआ श्वेत पगड़ी वाला और चार मुख वाला तू कौन है? तू हम दोनोंका अपमान कर यहाँ पर निश्चिंत होकर बैठा हुआ

आवाभ्यामतिवीराभ्यां न शक्यं स्थातुमाहवे ॥ ११ ॥ कस्त्वं कश्चोद्भवस्तुभ्यं केन वासीह चोदितः । कः स्रष्टा कश्च वै गोप्ता केन नाम्नाभिधीयते ॥१२॥ ब्रह्मोवाच । यः क इत्युच्यते लोके ह्यविज्ञातः सहस्रशः । तत्सम्भवं योगवन्तं किं मां नाभ्यनगच्छथः । मधुकैटभावूचतुः । नावयोः परमं लोके किंचिदस्ति महामते । आवां च्छादयतो विश्वं तमसा रजसातथा १४ रजस्तमोमयावावां यतीनां दुःखलक्षणौ । छलकौ धर्मशीलानां दुस्तरौ सर्वदेहिनाम् ॥ १५ ॥ आवाभ्यां मुह्यते लोक उच्छ्रिताभ्यां युगे युगे । आवामर्थश्च कामश्च यज्ञाः सर्वपरिग्रहाः ॥१६॥ सुखं यत्र मुदो यत्र यत्र श्रीः सन्निवृत्तयः । एषां यत्कांक्षितं चैव तत्तदावां विचिन्तय ॥१७॥ ब्रह्मोवाच । यत्तद्योगवतां श्रेष्ठ यच्च सर्वं मया-

---

है ॥१०॥ हे कमलोद्भव ! आ तू हमारे साथ भुजायुद्ध (कुश्ती) कर, तू हम महावीर्य पुरुषोंके साथ युद्धमें नहीं टिकसकेगा ११ तू कौन है और तेरी उत्पत्ति किससे हुई है और तुझे किसने प्रेरणाकी है, तेरा रक्षक और तेरा उत्पादक कौन है ॥ १२ ॥ ब्रह्माजीने कहा, कि-जो अविज्ञात पुरुष लोकमें क (जल-चित्) कहलाता है, क्या उससे उत्पन्न हुए योगवान् मुझको तुम नहीं जानते हो ॥१३॥ मधु कैटभोंने कहा, कि- हे महामते ! संसारमें हम दोनोंसे श्रेष्ठ और कोई नहीं है, हम दोनों रज और तमसे विश्वको आच्छादित करते रहते हैं ॥ १४ ॥ हम दोनों रजोगुण और तमोगुणमय हैं और यतियोंको दुःख देने वाले हैं, और धर्मशीलोंको ठगते रहते हैं और सब प्राणियोंसे दुस्तर हैं ॥१५॥ हम जब युग २ में बढ़ जाते हैं तब संसार मोहमें पड़ जाया करता है । हम अर्थ और कामस्वरूप हैं और हम सर्वपरिग्रह यज्ञस्वरूप हैं ॥ १६ ॥ जहाँ पर सुख रहता है जहाँ पर प्रसन्नता रहती है, और जहाँ पर श्री तथा संनिवृत्ति रहती है और जो इनका कांक्षित

नितम् । तत् सनाभा । गुणवान् सत्त्वजोऽस्मि प्रतिष्ठितः ॥१८॥ यत् परं योगयुक्तानामक्षरं सत्त्वमेव च । रजसस्तमसश्चैव यत् स्रष्टा जीवसम्भवः ॥ १९ ॥ यतो भूतानि जायन्ते सात्त्विकानीतराणि च । स एव युक्तः समरे वशी वां शमयिष्यति ॥ २० ॥ वैशम्पायन उवाच । ततः शयानं श्रीमन्तं बहुयोजनविस्तृतम् । पद्मनाभं हृषीकेशं प्रणम्योवाच (?) तावुभौ ॥२१॥ जानीवस्त्वां विश्वयोनिमेकं पुरुषसत्तमम् । तवोपासनहेत्वर्थमिदं नौ विद्धि कारणम् ॥ २२ ॥ अमोघदर्शनं सत्यं यतस्त्वां विदुरीश्वरम् । ततस्त्वामभितो देव कांक्षावः प्रतिवीक्षितुम् ॥ २३ ॥ तदिच्छावो वरं दत्तं त्वया ह्यावामरिन्दम । अमोघं दर्शनं देव नमस्तेऽस्त्वजितंजय ॥२४॥ श्रीभगवानुवाच । कानिच्छतो द्रुतं ब्रूत वरानसुर-

---

है, उन सबको हम दोनोंका स्वरूप जानो ॥ १७ ॥ ब्रह्माजीने कहा, कि-जो योगियोंमें श्रेष्ठ है और जिस सबकी मैंने पूजाकी है, उसको अपनेमें रख कर मैं गुणवान् सत्त्वज (विष्णुसे उत्पन्न) प्रतिष्ठित हूँ ॥ १८ ॥ जो योगियोंका परम है और जो अक्षर तथा सत्त्व है और जो रज तथा तमका स्रष्टा है और जो जीवका उत्पत्ति स्थान है ॥ १९ ॥ और जिससे सात्विक प्राणी तथा दूसरे प्राणी उत्पन्न होते हैं ऐसा वशी पुरुष समरमें तुम्हें वशमें करेगा ॥ २० ॥ वैशम्पायनजीने कहा, कि-तदनन्तर अनेक योजनमें विस्तृत शयन करते हुए पद्मनाभ हृषीकेशको प्रणाम करके वे दोनों कहने लगे, कि-॥२१॥ हम आपको विश्वयोनि एक पुरुषसत्तम जानते हैं आपकी उपासनाके लिए हमने यह करतूत की है इसका आप निश्चय रखिये ॥ २२ ॥ आपका दर्शन अमोघ है, क्योंकि-आपको ईश्वर कहते हैं इस लिए हे देव ! हम आपको चारों ओरसे देखना चाहते हैं १३ हे अरिदमन! हम चाहते हैं, कि-हम आपको वरदें, और हे अजितञ्जय!

सत्तमौ । दत्तायुषौ मया भूयस्त्वहो जीवितुमिच्छथः ॥ २५ ॥ तस्माद्यदेष वां यत्नस्तत् प्राप्नुतं महाबलौ । वध्यौ भवन्तौ तु स्यातां तावित्येवाब्रवीद्धरिः । उभावपि महात्मानावूर्जितौ व्रतवर्जितौ ॥ २६ ॥ मधुकैटभावूचतुः । यस्मिन्न कश्चिन् मृतवांस्तस्मिन् देशे विभो वधम् । इच्छावः पुत्रतां यातुं तव चैव सुराधिप ॥ २७ ॥ श्रीभगवानुवाच । वाढं सुतौ मे भवतौ भविष्ये कल्पसम्भवे । भविष्यथो न सन्देहः सत्यमेतद्ब्रवीमि वाम् ॥ २८ ॥ वैशम्पायन उवाच । वरं प्रदायाथ महासुराभ्यां सनातनो विश्ववरोत्तमो विभुः । रजस्तमोभ्यां भवभावनोपमौ ममन्थ तावूरुतले सुरारिहा ॥ २९ ॥ त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

आपका दर्शन भी अमोघ है ॥ २४ ॥ श्रीभगवान्‌ने कहा, कि-हे असुरसत्तमों ! तुम कौनसा वरदान पाना चाहते हो, उसको शीघ्र बताओ, मैंने तुम्हें आयु देदी थी फिर भी तुम जीवित रहना चाहते हो, यह एक आश्चर्यकी बात है ॥ २५ ॥ इस लिये तुमने जिस कामके लिये यत्न किया है, उस कामनाको मुझसे शीघ्र ही माँगलो तदनन्तर पापरहित उन दोनों बलवान् महात्माओंसे हरिने कहा, कि-मैं वर चाहता हूँ कि-तुम वध्य होजाओ अर्थात् मारे जाओ ॥ २६ ॥ मधु कैटभ कहने लगे, कि-हे देव ! जिस देशमें कोई न मरा हो, हे देव ! उस देशमें हम मारे जावें और हे सुराधिप ! हम आपके पुत्रभी बनना चाहते हैं ॥ २७ ॥ श्रीभगवान्‌ने कहा, कि-बहुत अच्छा ! तुम अगले कल्पमें मेरे श्रेष्ठ पुत्र होंगे, इसमें कुछ सन्देह नहीं है, यह बात मैं तुमसे सत्य

हम जब युग २ में वह वैशम्पायनजीने कहा, कि-सनातन विश्ववर हैं । हम अर्थ और कामरूप वश करने वाले विभु इस प्रकार उन हैं ॥ १६ ॥ जहाँ पर सुख जनकी उपमा वाले महाराक्षसोंको वर और जहाँ पर श्री तथा संनिहित जंघाओं पर मथने लगे ॥ २६ ॥ ॥ १३ ॥

वैशम्पायन उवाच । स्थित्वा तस्मिंस्तु कमले ब्रह्मा ब्रह्मविदां

वैशम्पायनजीने कहा, कि-तदनन्तर ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ महामुन ब्रह्माजी उस कमलमें स्थित हो ऊपको मुख करके तपश्चर्या करने लगे[नीलकण्ठ-भ्रादिसंज्ञं विराडादि त्रयं युक्त्यानुभूतितः। विमुच्य सुस्थिताद्भूम्नो व्युत्थाना सृष्टिरष्टमे ॥-अब इस अष्टम पुष्कराध्यायमें भू आदि संज्ञा वाले विराट् आदि तीनोंका युक्ति से अनुभव करके उनको त्याग कर सुस्थित भूमासे व्युत्थान सृष्टि का वर्णन किया जाता है" जिस प्रकार स्फटिकमें जपाकुसुमकी समीपतासे रक्तत्वका अध्यास होता है और स्फटिकांशका प्रमोष (त्याग) होने पर पद्मरागका अध्यास होने लगता है और इसी प्रकार रात्रिमें चाँदनीमें इन्द्रनील मणिका अध्यास होने लगता है, इसी प्रकार शुद्धचित्तमें मायोपाधिकी समीपतासे ईश्वरत्वका अध्यास होने लगता है और तहाँ ही पर मायाबलके तारतम्यसे सूत्रात्मत्व और विराट्त्वका अध्यास होनेलगता है इसलिए शास्त्रमें विहित प्रणवकी अकार उकार और मकारकी आधी मात्रा इस प्रकार ढाई मात्राओंकी प्रतिलोमतासे अविद्योपाधि जीव स्थूलदेहके संगको त्यागकर क्रमशः २ अर्थोंका उत्तरोत्तर प्रविलापन करता हुआ साक्षात्कार करे। आधी मात्रामें प्रतिष्ठित होने पर द्वैतदर्शन न होने पर आत्मा स्वरूपप्रतिष्ठ होजाता है। यह आत्मा आवरणविक्षेप शक्ति वाली अविद्याका आश्रय है, तहाँ आवरणांशसे शुद्ध रूप तिरोहित हो रहा है, विक्षेपांशसे ईश आदि स्थूल देह तकका प्रतिभास होरहा है। ईशादिकोंमेंसे उत्तर उत्तरका पूर्व पूर्व में आवृत्ति करना वस्तुस्थिति है। तहाँ पर आवरणांशका तो सांख्यनामक विचार विरोधी है और विक्षेपांशकी योगसे ही निवृत्ति होती है और सोपाधिक भ्रम उपाधिनिवृत्तिके बिना परोक्षज्ञान मात्रसे निवृत्त नहीं होसकता

वरः । ऊर्ध्वबाहुर्महाबाहुस्तपो घोरं समाश्रितः ॥१॥ ज्वलन्निव च तेजस्वी भाभिः स्वाभिस्तमोनुदः । बभासे सर्वधर्मस्थः सहस्रांशुरिवांशुमान् ॥ २ ॥ अथान्यद्रूपमास्थाय शम्भुर्नारायणो-

इस प्रकार योगी जब स्थूलदेहके संगको त्याग देता है तब उस में विराड्भाव होजाता है, स्फटिकमें इन्द्रनीलत्वाध्यासस्थानीय अचित् ग्रन्थिरूप होनेसे ब्रह्मसंज्ञकका मनःकल्पित पुत्र सांख्य-योगसे प्रतिबोधित होने पर निवृत्त होजाता है, तदनन्तर चन्द्रिका की निवृत्ति होने पर स्फटिकमें पद्मरागत्वके अध्यासकी समान सूत्रात्मा होजाता है उसी ब्रह्मका मानसिक पुत्र ध्रुव नाम वाला है वह भी सांख्य योगसे जाननेमें आकर निवृत्त होजाता है, इसी प्रकार स्फटिकमें लौहित्य (लालिमा) के अध्यासकी समान ब्रह्मका मानसिक पुत्र ईशभी जिसका कि—भूःभुवः और भुवर् नाम है पहिलेकी समान निवृत्त होजाता है। तदनन्तर शुद्ध चित् ही अवशिष्ट रह जाता है। इसी बातको ब्रह्मा नारायण कपिल भूः भुवः स्वः आदि दैविकवृत्तान्तको इकीस श्लोक तक निरूपित किया जाता है, तदनन्त "न रराम" आदि श्लोकसे अध्यायकी समाप्ति तक योगी चिदात्मा होता हुआ भी जगत्की सृष्टिके समय सबको चिदात्मक ही रचता है" यह बात कही जावेगी। अक्षर योजना तो इस प्रकार करनी चाहिये कमलमें अर्थात् मानस ब्रह्मांडमें गणनाख्य आलम्बन वाला (ऊर्ध्वबाहु) सर्वप्रविलयरूप घोर तपको करने लगा] ॥१॥ उस समय सर्वधर्मस्थ ब्रह्मा अपनी किरणोंसे प्रदीप्त होकर अंधकारका नाश करने लगे अतः सहस्र किरणों वाले सूर्यकी समान प्रतीत होने लगे[नील-कण्ठ—(सर्वधर्मस्थ) योगधर्मस्थ अपनी चिद्दीप्त किरणोंसे अज्ञानरूपी अंधकारका नाश करने लगा] ॥ २ ॥ उस समय शंभु अव्यय नारायणने दूसरा रूप बनाया वह सनातन

ऽव्ययः । द्विधा कृत्वात्मनात्मानमचिन्त्यात्मा सनातनः ॥ ३ ॥ आजगाम महातेजा योगाचार्यो महायशाः । सांख्याचार्यश्च मतिमान् कपिलो ब्राह्मणो वरः ॥४॥ देवर्षिभिः स्तुतावेतौ ब्रह्म ब्रह्मविदां वरौ । उभावपि महात्मानावूर्जितौ क्षेत्रतत्परौ ॥ ५ ॥ तौ प्राप्तावूचतुस्तत्र ब्रह्माणममितौजसम् । परावरविशेषज्ञौ पूजितौ परमर्षिभिः ॥६॥ बहुत्वाद् दृढपादश्च विश्वात्मा जगतः स्थितिः ।

अचिन्त्यात्मा दो भागोंमें बँट गए । ३ । (उन दोनोंका वर्णन किया जाता है) तहाँ पर महातेजस्वी महायशस्वी योगाचार्य नारायण आगए और सांख्यके आचार्य बुद्धिमान् कपिल ब्राह्मण भी आगए [नीलकण्ठ—नारायण और कपिल योगशास्त्र और सांख्यशास्त्रके अधिष्ठाता हैं सांख्याचार्य मतिमान् थे अर्थात् उपपत्तिको ही प्रधान मानते थे] ॥ ४ ॥ देवर्षियोंसे स्तुति पाने वाले ये दोनों श्रेष्ठ ब्रह्मवेत्ता ब्रह्माजीके पास आये, ये दोनों महात्मा बलवान् थे और क्षेत्रतत्पर थे अर्थात् विचार और चित्त निग्रहरूप क्षेत्रमें तत्पर थे (ये दोनों पुरुष एक है, अनेक है और प्रकृति मिथ्या है और सत्य है इस प्रकार परस्पर विरोधी विचारों को कहते थे तब भी योगमाहात्म्यसे योगीके समीप आगए) परमर्षियोंसे पूजित पर और अवरके विशेषको जानने वाले वे पूजनीय दोनों महात्मा अमित ओज वाले ब्रह्माजीके पास आकर कहने लगे [नीलकण्ठ—दोनों अपने मतके विरुद्धांशको त्याग कर अविरुद्धांशमें एकमत होकर ब्रह्माजीसे कहने लगे] ॥६॥ जगत्की स्थिति परमात्मा दृढपाद होनेसे विश्वात्मा हैं, वह सब लोकोंके ग्रामणी हैं, ब्रह्मा हैं लोकगुरु हैं और श्रेष्ठ हैं [नीलकंठ-अविद्या आदिसे परामृष्ट लोकोंके गुरु होनेसे श्रेष्ठ हैं और लोकों के बहुत होनेसे बंधमोक्षकी व्यवस्थाके आवश्यक होनेसे जीवोंके अधिक होनेके कारण नियन्ता सेनापति तटस्थकी समान अवश्य

ग्रामणीः सर्वलोकानां ब्रह्मा लोकगुरुर्नरः ॥ ७ ॥ तयोस्तद्धननं

मानना चाहिये, जिनसे भोग प्राप्त होते हैं ऐसे विषय इन्द्रिय बुद्धि रज्जूरगके बंधनकी समान दृढ़ नहीं मानने चाहिये, किन्तु वृत्तिनिरोधसे उनको त्याग ही देना चाहिये और व्यवहारकी अनन्तता से जिसके सत्य पाद दृढ़ हैं ऐसा है, इस प्रकारविषय आदिकी सत्यतासे प्रकृतिकाभी सत्यत्व कह दिया, यह योगाचार्यका वचन है। सांख्याचार्यका वचन है, कि–जिसका सब चेतन स्वरूप है ऐसा विश्वात्मा जगत्की स्थिति है, तात्पर्य यह है, कि–ब्रह्मसमुद्र में जगत्-जीव-ईश्वरात्मक करोड़ों तरंगें उठती रहती हैं। अतः शंका होती है, कि-फिर बंधमोक्ष आदिका व्यवहार कैसे चल सकता है, क्योंकि–ऐकात्म्य मानने पर एक (साथ) मुक्तिकी आपत्ति आजावेगी अतः कहा है, कि–वह जगत्की स्थिति है। जलचन्द्रकी समान औपाधिक भेदसे बंधमोक्षकी व्यवस्था हो जावेगी (अर्थात् जैसे दश जल भरे पात्रोंमें चन्द्रमाका प्रतिबिम्ब पड़ता हो तो एक पात्रका जल उलटनेसे एक पात्रका चन्द्रमा ही नहीं दीखता दूसरे पात्रोंका दीखता रहता है ऐसे बन्धमोक्ष की व्यवस्था होजावेगी) अर्थात् परमें भी निर्विशेष चिन्मात्ररूपोंके लक्षणमें भेद न होनेसे भेद है यह बात नहीं कही जासकती, अतः आत्मा एक है, यह कहना ही युक्त है। तथा बहुतसे अलुप्त दृष्टि वाले भूतोंमें जगत् किसीको दृश्य होता है और किसीको अदृश्य क्यों होता है, तब रज्जूरगकी समान यह भेद होसकता है अतः प्रकृतिका सत्यत्व अयुक्त है और स्वप्नकी समान असत्यसे भी सब व्यवहार होसकते हैं। अब योगाचार्य और सांख्याचार्य इन दोनोंका सम्मतवाक्य कहा जाता है, कि–वह सब लोकोंका ग्रामणी है इसमें मतभेद होने पर मुक्तिमें दोनोंके मतमें केवल निर्विशेष ही आता है, वही मुख्य तात्पर्य है, वही ब्रह्मवित् है, वही पर-

श्रुत्वा तिस्रो व्याहृतयो जपन् । त्रीनिमान् कृतवाँल्लोकान् यथाह ब्राह्मणी श्रुतिः ॥ ८ ॥ तत्र भूसंज्ञकं चैव सद्युत्पादितवान् प्रभुः । ततोऽग्रे तद्गतस्नेहो ब्रह्मा मानसमव्ययम् ॥ ९ ॥ सोऽत्पन्नस्तत्रग्रे

णीय है और बुद्धि आदि सब हेय हैं] ॥ ७ ॥ उन दोनोंके इस वचनको सुन कर ब्रह्माजीने तीन व्याहृतियोंका जप करके इन तीन लोकोंको रचा, ब्राह्मणी श्रुतिने भी इनका इस प्रकार वर्णन किया है [नीलकण्ठ-सब लोकोंका स्वरूप बतलाते हैं, कि-(भूः भुवः स्वः रूप तीन व्याहृतिका उच्चारण कर विश्व तैजस प्राज्ञ रूप तीन लोकोंको रचा (इसका प्रमाण देते हैं, कि-ब्राह्मणी श्रुतिमें जिस प्रकार कहा है उसी प्रकार ब्रह्माजीने कहा । ब्रह्म-प्रतिपादिका भू है ऐसी ऋग्वेदकी श्रुति है । इस वाक्यका आरंभ करके लिखा है, उन अभितप्त हुए भूआदिकोंसे अकार उकार और मकार ये तीन वर्ण उत्पन्न हुए । इस प्रकारकी श्रुतियोंसे व्याहृतियोंका सारभूत प्रणव विश्व तैजस और प्राज्ञ रूप है, इस लिए भू आदि शब्दोंसे विश्व आदिका ही ग्रहण करना चाहिये । यहाँ सांख्य शब्दसे उपनिषत्संबंधी सांख्यका ग्रहण करना चाहिये, निरीश्वर सांख्यका ग्रहण नहीं करना चाहिये । तदनन्तर योगाचार्यके इस कथनसे कि-"तस्य वाचकः प्रणवः-उसका वाचक प्रणव है" और "ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वम्-यह सब ओम् एक अक्षरस्वरूप है" इन दोनोंको प्रणवोत्थ ऐकात्म्य रूप अभिमत है । इस प्रकार दोनोंका अविरोध होजाता है] ॥ ८ ॥ तदनन्तर उन्होंने लोकोंमें पहिले ब्रह्माजीने भू संज्ञक मानस (पुत्र) को उत्पन्न किया, उस मानस और अव्यय पुत्र पर ब्रह्माजीका मन स्नेह करने लगा (मानस कह कर उस पुत्रको कल्पित बताया है अत एव वह रज्जु सर्पकी समान अनुत्पन्न होनेसे अव्यय अर्थात् अविनाशी है) ॥ ९ ॥ वह मानस पुत्र उत्पन्न होते ही ब्रह्माजी

ब्रह्माणमुवाच मनसः सुतः । करोमि किं ते साहाय्यं ब्रवीतु भगवानिति ॥ १० ॥ ब्रह्मोवाच । य एष कपिलो नाम ब्रह्मा नारायणस्तथा । वदते वरद त्वां तु तत्कुरुष्व महामते ॥ ११ ॥ वैशम्पायन उवाच । ब्रह्मणोक्तो तदा भूयः संशयं समुपस्थितः । शुश्रूषुरस्मि युवयोः किं कुर्वेति कृताञ्जलिः ॥ १२ ॥ परमेश्वरावूचतुः । यत्सत्यमक्षरं ब्रह्म ह्यष्टादशनिधं स्मृतम् । यत् सत्यममृतं

के आगे आकर कहने लगा, कि–बताइये मैं आपकी क्या सहायता करूँ ॥ १० ॥ ब्रह्माजीने कहा, कि हे वरद ! ये कपिल नामक ब्राह्मण और नारायण तुझसे जिस बातको कहें, हे महामते ! उस बातको तू कर ॥ ११ ॥ वैशम्पायनजीने कहा, कि–ब्रह्माजीके कहने पर (ब्रह्माजीके मानस पुत्र भूको, मेरे पितासे भी और कौन महान् है ऐसा) सन्देह होने लगा, फिर वह उनके पास जा हाथ जोड़ कर कहने लगा, मैं आप दोनोंकी सेवा करना चाहता हूँ,बताइये मैं क्या करूँ ॥१२॥ दोनों परमेश्वरोंने कहा, कि–जो ब्रह्म सत्य और अक्षर है और जो आठ दश बंधन वाला कहलाता है जो सत्य अमृत और परं है उसका चिंतन कर [नीलकण्ठ–जो (सत्य) त्रैकालिक बाधारहित (अक्षर) अपरिणामी (अष्टादशनिध) मत-भेदसे आठ दश निध (पाश) वाला है । श्रुतिमें लिखा है, कि–पाशा वै निधाः-पाश निध हैं" । सांख्य मतमें आठ निध (पाश) हैं, १कर्मेन्द्रियपञ्चक २ ज्ञानेन्द्रियपञ्चक,३ मन आदि चार,४प्राणपञ्चक,५विगदादिपञ्चक,६काम, ७कर्म औरट्पुर्यष्टक और यही योगमतमें अविद्यातिरिक्त प्रकृति और पुरुष अधिक ईश्वर सहित दश होते हैं यद्यपि इनका प्राणादिपञ्चक सामान्य करणवृत्ति हैं, तथापि सामान्य विशेष भेदसे उसका पृथक्त्व समझना चाहिये.ये दोनों अपने मतको कह कर परमार्थको कहने लगे कि–जो सत् (मूर्त) तत्(तेजोऽन्नरूप)

चैव परं तत् समनुस्मर ॥ १३ ॥ वैशम्पायन उवाच । एतद्वचो निशम्याथ स ययौ दिशमुत्तराम् । गत्वा च तत्र ब्रह्मत्वमगम-ज्ज्ञानचक्षुषा ॥१४॥ततो ब्रह्मा ध्रुवं नाम द्वितीयमसृजत् प्रभुः । तं कल्पयित्वा मनसा मनसैव महामनाः ॥१५॥ ततः सोप्यब्रवी-द्वाक्यं किं कुर्वेति पितामहम् । पितामहसमाज्ञप्तो ब्रह्माणं समु-पस्थितः ॥ १६ ॥ ब्रह्मभ्यां सहितः सोथ भूयो भागवतीं गतः । प्राप्तश्च परमं स्थानं स तयोः पार्श्वमागतः ॥ १७ ॥ तस्मिन्नपि

यत् (वायु आकाश आदि अव्याकृत) अमृत है और प्रविलापन करनेसे जो अमृतका अधिष्ठान पर वस्तु है अर्थात् सर्व विशेष शून्य चिदेक एक है उसका तू चिन्तवन कर, अर्थात् उसको "मैं ही वह हूँ" ऐसा जान] ॥ १३ ॥ वैशंम्पायनजीने कहा, कि-इस वचनको सुनकर वह उत्तर दिशामें [चिदेकरसरूप पराकाष्ठामें] जाने लगा और ज्ञानचक्षुसे तहाँ पहुँच कर ब्रह्मत्वको प्राप्त हो गया ॥ १४ ॥ तदनन्तर महामनस्वी प्रभु ब्रह्माजीने अपने मनसे दूसरे मानस पुत्र ध्रुवको रचा [नीलकण्ठ-तदनन्तर सबकी सृष्टि करनेमें समर्थ अवान्तरोपाधिभूत मनवाले महामनस्वी अविद्यो-पाधि ईश्वर ब्रह्माने अपने मनसे ध्रुव अर्थात् सूत्रात्माको रचा]१५ तदनन्तर वह भी पितामहसे यह वचन कहने लगा, कि-मैं क्या करूँ, तदनन्तर वह पितामहके आज्ञा देने पर उन दोनों ब्राह्मणों के पास पहुँच गया [नीलकण्ठ तदनन्तर वह मनका पुत्र मन के पिता महाजीव ब्रह्माजीके पास पहुँचा उन्होंने उसे योगाचार्य के पास भेज दिया] ॥ १६ ॥ उन दोनों ब्राह्मणोंके पास पहुँच कर वह फिर भागवती श्रुतिको प्राप्त होगया और परमस्थानको पाकर उनके पास आगया [नीलकण्ठ-वह ब्राह्मणोंके साथ पराकाष्ठाको प्राप्त होगया अर्थात् योग और विचारका भी परा-काष्ठामें लय होजाता है] ॥ १७ ॥ उस पुत्रके जाने पर भी प्रभु

गते पुत्रं तृतीयमसृजत् प्रभुः। मोक्षोपायेति कुशलं भूर्भुवं नाम तं विभुः ॥ १८ ॥ आससाद स तद्धर्मं तयोरेवागमद्गतिम्। एवं पुत्रास्त्रयोप्येते उक्ताः शम्भोर्महात्मनः ॥ १९ ॥ तान् गृहीत्वा सुतास्तस्य गयौ स्वां गतिं तथा। नारायणोथ भगवान् कपिलश्च यतीश्वरः ॥ २० ॥ यं कालं तौ गतौ मुक्तौ ब्रह्मा तत्कालमेव तु।

ब्रह्माजीने तीसरे पुत्रको रचा, उसको पुरुष मोक्षोपायमें कुशल भूर्भुवः कहते हैं [नीलकण्ठ-फिर उन्होंने मोक्षके उपायमें कुशल भूर्भुवः नाम वाले शुद्ध सत्त्वोपाधि ईश्वरको रचा] ॥ १८ ॥ वह भी उन दोनोंके धर्मको पाकर उनकी ही गतिको प्राप्त होगया, इस प्रकार महात्मा शंभुने ब्रह्माजीके तीनों पुत्रोंको उपदेश दिया था [नीलकण्ठ-वह ईश भी विराट् और सूत्रात्माके पराकाष्ठानुसारित्व धर्मको प्राप्त होगया अर्थात् "पुरुषान्न परं किञ्चित् सा काष्ठा सा परा गतिः-पुरुष से पर कोई नहीं है वह ही परा काष्ठा है और वही परा गति है" ऐसी श्रुतिप्रसिद्ध पराकाष्ठामें ईश भी लीन होगया, इस प्रकार महात्मा शंभुने ब्रह्माजीके भूः आदि तीन पुत्रोंको उपदेश दिया था "एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति-सांख्य और योगको जो एक समझता है, वही ठीक समझता है" इस प्रकार वस्तुतत्त्व एक होनेसे महात्मा शंभुने यह एक वचन दिया है] ॥ १९ ॥ भगवान् नारायण और यतीश्वर कपिल ब्रह्माजीके इन पुत्रोंको ग्रहण कर अपनी गतिको प्राप्त हो गए [नीलकण्ठ इससे क्या परिणाम निकला उसको कहते हैं, कि-अग्नि जिस प्रकार जलाने योग्य वस्तुओंको जला कर स्वयोनिमें ही शान्त होजाती है, इसी प्रकार सांख्यज्ञान भी भूः आदि प्रविलापन करने योग्य तीनोंका प्रविलापन करके स्वयं भी ब्रह्ममें लीन होजाता है] ॥ २० ॥ जिस समय वह दोनों मुक्त होगए उस समय संशितव्रत ब्रह्माजी फिर अतिघोर तप

तेपे घोरतरं भूयः स तपः संशितव्रतः ॥ २१ ॥ न रराम ततो ब्रह्मा प्रभुरेकस्तपश्चरन् । शरीरार्धमथो भार्यां समुत्पादितवाञ्छु-भाम् ॥ २२ ॥ तपसा तेजसा चैव वर्चसा नियमेन च । सदृशी-मात्मनो भार्यां समर्थां लोकसर्जने ॥ २३ ॥ तया सह ततस्तत्र रेमे ब्रह्मा तपोमयः । सृजत् प्रजापतीन् सर्वान् सागरान् सरि-तस्तथा ॥२४॥ ततोऽसृजद्वै त्रिपदां गायत्रीं वेदमातरम् । अक-रोच्चैव चत्वारो वेदान् गायत्रिसम्भवान् ॥ २५ ॥ आत्मार्थे चासृजत् पुत्राँल्लोककर्तॄन् पितामहः । विश्वे प्रजानां पतयो येभ्यो लोका विनिसृताः ॥ २६ ॥ विश्वेशं प्रथमं नाम महातपसमात्म-

---

करने लगे [नीलकण्ठ–वेधके लयसे निर्विकल्प समाधिरूप घोर तपको करने लगे] ॥२१॥ फिर प्रभु ब्रह्माजी अकेले तप करते करते प्रसन्न नहीं हुए अतः उन्होंने अपने आधे शरीरसे शुभ भार्याको उत्पन्न किया [नीलकण्ठ अर्थात् शुद्ध चिदात्मामें ही भोक्तृभोग्यरूप प्रपञ्चकी कल्पना करने लगा] ॥ २२ ॥ उनकी वह भार्या तप तेज और कान्ति तथा नियममें उनकी ही समान थी और लोककी सृष्टि करनेमें भी समर्थ थी [नीलकण्ठ अब योगैश्वर्यको दिखाया है, कि–स एकधा भवति प्रदीपवदावेशः–वह एक होजाता है प्रदीपकी समान उसमें आवेश होता है०अतः वह अनेक प्रकारका भी होजाता है" इस श्रुतिके अनुसार उन्होंने अपनी भार्या को भी अपनी समान बना लिया] ॥ २३ ॥ तदनन्तर तपोमय ब्रह्माजी प्रजापतियोंको समुद्रोंको और नदियोंको रचते हुए उसके साथ रमण करने लगे ॥ २४ ॥ तदनन्तर उन्होंने वेदमाता त्रिपदा गायत्रीको रचा और गायत्री से उत्पन्न होने वाले चारों वेदोंको रचा ॥ २५ ॥ तदनन्तर पितामहने अपने लिये भी लोककर्ता पुत्रोंको रचा, वे सब प्रजाओं के पति थे और उनसे ही लोक प्रकट हुए हैं ॥ २६ ॥ उन्होंने

जम् । सर्वाश्रमगतम पुरायं नाम्ना धर्मं स सृष्टवान् ॥ २७ ॥ दक्षं मरीचिं मित्रं च पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् । वसिष्ठं गौतमं चैव भृगुमङ्गिरसं मनुम् ॥ २८ ॥ अथर्वभूता इत्येते ख्याता ब्रह्ममहर्षयः । त्रयोदश सुतानां तु ये वंशा वै महर्षिणाम् २९ अदितिर्दितिर्दनुः काला ह्यनायुः सिंहिका मुनिः । प्रवोधा सुरसा क्रोधा विनता कद्रुरेव च ॥ ३० ॥ दक्षस्यैता दुहितरः कन्या द्वादश भारत । नक्षत्राणि च भद्रन्ते सप्तविंशतिरूर्जिताः ॥३१॥ मरीचेः कश्यपः पुत्रस्तपसा निर्मितः प्रभुः । तस्मै कन्या द्वादशेमा दक्षस्ता अन्वमन्यत ॥३२॥ नक्षत्राख्यानि सोमाय वसवे दत्तवानृषिः । रोहिण्यादीनि सर्वाणि पुरायानि जनमेजय ॥ ३३ ॥ लक्ष्मीः कीर्तिस्तथा साध्या विश्वा कामानुगा शुभा देवी मरुत्वती चैव ब्रह्मणा निर्मिता पुरा ॥ ३४ ॥एताः पञ्च वरिष्ठा वै सुरश्रेष्ठाय भारत ।

विश्वेश नामक प्रथम पुत्रको उत्पन्न किया, फिर उन्होंने सब आश्रमोंमें पुरायमय धर्मको रचा ॥ २७ ॥ तथा दक्ष मरीचि मित्र पुलस्त्य पुलह क्रतु वसिष्ठ गौतम भृगु अंगिरा मनुको भी रचा २८ ये बड़े २ ब्रह्मर्षि अथर्वभूत हैं अर्थात् इनका अथर्ववेदमें वर्णन मिलता है इन तेरह महर्षि पुत्रोंके जो वंश हैं(उनको तुम सुनो)२९ हे भारत ! दक्षके अदिति दिति दनु काला अनायु सिंहिका मुनि प्रवोधा सुरसा क्रोधा और विनता नाम वाली बारह पुत्रियें हैं और सत्ताईस वली नक्षत्र भी दक्षकी पुत्रियें हैं ॥ ३० ॥ ३१ ॥ मरीचि ऋषिके तपसे रचे हुए प्रभु कश्यप नामक पुत्र थे, उन कश्यपके लिए दक्षने बारह कन्या देदीं ३२ हे जनमेजय ! फिर दक्ष ऋषिने नक्षत्र नाम वाली रोहिणी आदि सब पुरायमयी कन्याएँ चन्द्रमाको देदीं ॥ ३३ ॥ ब्रह्माजीनें लक्ष्मी कीर्ति साध्या कामानुगा–शुभा–विश्वा और देवी मरुत्वतीको पहिले रचा था ३४ हे भारत ! धर्मको देखने वाले ब्रह्माजीने ये पाँच श्रेष्ठ कन्याएँ

दत्ता धर्माय भद्रन्ते ब्रह्मणा दृष्टधर्मणा ॥ ३५ ॥ या रूपार्द्धमयी पत्नी ब्रह्मणः कामरूपिणी । सुरभिः सा तु गौर्भूत्वा ब्रह्माणं समुपस्थिता ॥ ३६ ॥ ततस्तामगमद्ब्रह्मा मैथुने लोकपूजितः । लोकसर्जनहेतुज्ञो गवामर्थाय भारत ॥३७॥ जज्ञे चैकादश सुतान् विपुलान् धर्मसंहितान्,रक्तसन्ध्याभ्रसदृशान् दहनोपमतेजसः ३८ ते रुदन्तो द्रवन्तश्च भगवन्तं पितामहम् । रोदनाद्रावणाच्चैव ततो रुद्रा इति स्मृताः ॥३९॥ निर्ऋतिश्चैव सर्पश्च तृतीयो ह्यज एकपात् । मृगव्याधः पिनाकी च दहनोऽथेश्वरश्च वै ॥४०॥ अहिर्बुध्न्यश्च भगवान् कपाली चापराजितः । सेनानीश्च महातेजा रुद्रा एकादश स्मृताः ॥ ४१ ॥ तस्यामेव सुरभ्यां तु जज्ञे गोवृषभस्तथा । आकृष्टाश्च तथा माषाः सिकताः प्रश्रयोऽक्षताः ॥४२॥ अजाश्चैवेकवंशाश्च तथैवामृतमुत्तमम् । ओषध्यः प्रवरा याश्च सुरभ्यां ताः समुत्थिताः ॥४३॥ धर्माल्लक्ष्म्युद्भवः कामः साध्या

सुरश्रेष्ठ धर्मको देदीं ३५ और जो ब्रह्माजीकी आधे रूपसे बनी हुई पत्नी थी, वह सुरभि बन कर ब्रह्माजीके पास आई ॥ ३५ ॥ हे भारत ! तदनन्तर लोकपूजित लोकको रचनेके हेतुको जानने वाले ब्रह्माजी गौओंकी उत्पत्तिके लिए उससे मैथुन करने लगे ॥३७॥ और उन्होंने अग्निकी समान तेजस्वी, संध्याके रक्त बादलोंकी समान धर्मसंहित ग्यारह पुत्रोंको उत्पन्न किया ३८ वे रोते २ दौड़ कर पितामहके पास पहुँचे वे रोदन और रावण से रुद्र कहलाने लगे ॥३९॥ (उनके नाम इस प्रकार हैं निर्ऋति सर्प तीसरा-एकपात् मृगव्याध पिनाकी दहन ईश्वर ॥ ४० ॥ भगवान् अहिर्बुध्न्य अपराजित-कपाली, महातेजा-सेनानी यह ग्यारह रुद्र कहलाते हैं ॥ ४१ ॥ उसी सुरभिमें गौ और वृषभ भी उत्पन्न हुए और समीपमें बोये हुए उडद सिकत प्रश्रय और अक्षत उत्पन्न हुए ॥४२॥ बकरियें, एकवंश, और उत्तम अमृत,

साध्यान् व्यजायत । भवं च प्रभवं चैवमीशानं सुरभी तथा ४४
अरुन्धत्यारुणी चैव विश्वावसुबलध्रुवौ । महिषं च तनूजं च वि-
ज्ञानमनसावपि ॥४५॥ मत्सरं च विभूतिं च सर्वाः सुरभिसूनवः।
सुपर्वतं विषं नागं साध्या लोकनमस्कृता॥४६॥ वासवानुगता देवी
जनयामास वै सुतान् । धरं वै प्रथमं देवं द्वितीयं ध्रुवमव्ययम्४७
विश्वावसुं तृतीयं च चतुर्थं सोममीश्वरम् । पञ्चमं पर्वतं चैव
योगेन्द्रं तदनन्तरम् ॥ ४८ ॥ सप्तमं च ततो वायुमष्टमं निर्ऋतिं
वसुम् । धर्मस्यापत्यमित्येवं सुरभ्यां समजायत ॥ ४९ ॥ विश्वे
देवास्तु विश्वायां धर्माज्जाता इति श्रुतिः । दक्षयज्ञो महाबाहु-
र्वसुश्च सुत एव च । सुधर्मा च महाबाहुः शङ्खपाच्च महाबलः ५०
उक्तश्चैव महाबाहुर्वपुष्मांश्च तथैव च । चाक्षुषस्य मनोरेते तथा-

---

और श्रेष्ठ औषधियें सुरभीसे उत्पन्न हुईं ॥ ४३ ॥ धर्मसे लक्ष्मी
में काम उत्पन्न हुआ और धर्मसे साध्याने साध्योंको उत्पन्न
किया और सुरभीने भव प्रभव और ईशानको उत्पन्न किया ४४
अरुन्धती आरुणी विश्वावसु बल ध्रुव महिष विज्ञान और मनस
मत्सर और विभूति-ये सब सुरभिकी सन्तान हैं, लोकनमस्कृत
साध्याने सुपर्वत विष और नागको उत्पन्न किया ॥४५॥४६॥
इन्द्र-धर्मके पीछे चलने वाली देवीने जिन पुत्रोंको उत्पन्न किया
उनको सुनो, उसने प्रथम पुत्र धरको उत्पन्न किया और द्वितीय
पुत्र अव्यय ध्रुवको उत्पन्न किया॥ ४७ ॥ तीसरे विश्वावसुको,
चौथे ईश्वर सोमको और पाँचवें पर्वतको तदनन्तर योगेन्द्रको ४८
सातवें वायुको और आठवें निर्ऋति वसुको उत्पन्न किया, इस
प्रकार धर्मकी सुरभिमें सन्तान उत्पन्न हुई थी ॥ ४९ ॥ ऐसी
जनश्रुति है, कि-धर्मसे विश्वामें विश्वेदेवा उत्पन्न हुए थे, चाक्षुष
मनुके दक्षयज्ञ महाबाहु वसु सुत सुधर्मा महाबाहु शंखपाद महा-
बली उक्त महाभुज वपुष्मान् नामक पुत्र हुए और अनन्त मही-

न्तमहीरणौ ॥५१॥ विश्वावसुसुपर्वाणौ विष्टरश्च महायशाः। रुरुश्च ऋषिपुत्रो वै भास्करप्रतिमद्युतिः ॥ ५२ ॥ विश्वे देवान् देवमाता विश्वेशान् जनयत् सुतान् । मरुत्वती मरुत्वतो देवान-जनयच्छुभान् ॥ ५३ ॥ अग्निश्चक्षुर्हविर्ज्योतिः सावित्रं मित्र एव च । अमरं शरवृष्टिं च संत्तयं च महाभुजम् ॥ ५४ ॥ विरजं चैव शुक्रं च विश्वावसुविभावसू । अश्मन्तं चित्ररश्मिं च तथा नि-ष्कुपितं नृपम् ॥ ५५ ॥ नहुषं चाहुतिं चैव चारित्रं बहुपन्नगम्। बृहन्तं च बृहद्रूपं तथैव परतापनम् । मरुत्वत्यां पुरा धर्माज्जज्ञे पुत्रद्वयं शुभम् ॥ ५६ ॥ अदित्यां जज्ञिरे राजन्नादित्याः कश्य-पादथ । इन्द्रो विष्णुर्भगस्त्वष्टा वरुणोंशोर्यमा रविः ॥ ५७ ॥ पूषा मित्रश्च वरदो मनुः पर्जन्य एव च । इत्येते द्वादशादित्या वरिष्ठास्त्रिदिवौकसः ॥ ५८ ॥ आदित्यस्य सरस्वत्यां जज्ञे पुत्र-

---

हुए विश्वावसु सुपर्वा महायशस्वी–विष्टर, सूर्यकी समान कांति-मान् ऋषिपुत्र रुरु ये भी चाक्षुष मनुकी सन्तान हैं॥ ५०-५२ ॥ देवमाताने विश्वके स्वामी विश्वेदेवा नामक पुत्रोंको उत्पन्न किया; और मरुत्वतीने मरुत्वान्से शुभ देवताओंको उत्पन्न किया ५३ मित्रने अग्निश्चक्षुः, हविर्ज्योति, सावित्रको उत्पन्न किया और शरवृष्टि–अमरको तथा महाभुज–संत्तयको भी उत्पन्न किया ५४ तथा विरज शुक्र विश्वावसु विभावसु अश्मन्त चित्ररश्मि निष्कुपित राजा नहुष आहुति चारित्र बहुपन्नग बृहन्त बृहद्रूप और परतापनको भी उत्पन्न किया, मरुत्वतीमें धर्मसे दो शुभ पुत्र उत्पन्न हुए थे ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ हे राजन् ! कश्यपसे अदिति में आदित्य उत्पन्न हुए थे, इन्द्र विष्णु भग त्वष्टा वरुण अंश अर्यमा रवि पूषा मित्र वरद मनु और पर्जन्य ये बारह आदित्य देवताओंमें श्रेष्ठ हैं ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ आदित्यके सरस्वतीमें दो शुभ पुत्र हुए, उनका नाम रूपश्रेष्ठ और बलश्रेष्ठ था और स्वर्ग

द्रूपं शुभम् । रूपश्रेष्ठं बलश्रेष्ठं त्रिदिवे रूपिणां वरम् ॥ ५९ ॥ दनुस्तु दानवान् जज्ञे दितिर्दैत्यान् व्यजायत । कालानुकालके-यांश्च ह्यसुरान् राक्षसांस्तथा ॥ ६० ॥ अनायुषायास्तनयो व्याध-यश्चाधयस्तथा । सिंहिका ग्रहमाता च गन्धर्वजननी मुनिः ६१ प्रवोधाप्सरसः श्रेष्ठा सुरसायां सरीसृपाः । क्रोधायाः सर्वभूतानि पिशाचाश्चैव भारत ॥ ६२ ॥ तथा यक्षगणाश्चैव गुह्यकाश्च विशा-म्पते । चतुष्पदानि सर्वाणि ऋते गावस्तु सौरसाः ॥ ६३ ॥ अरुणो गरुडश्चैव विनतायां व्यजायत । महीधरान् सर्पनागान् देवी कद्रूर्व्यजायत ॥ ६४ ॥ एवं विवृद्धिमगमन्विश्वे लोकाः पर-स्परम् । तदा पौष्करके राजन् प्रादुर्भावे महात्मनः ॥ ६५ ॥ पुराणं पौष्करं चैव मया द्वैपायनाच्छ्रुतम् । कथितं तेन पूर्वन्तु संस्कृतं परमर्षिभिः ॥ ६६ ॥ यश्चेदमग्र्यं प्रथमं पुराणं सदाऽप्रमत्तः

के रूपवान् व्यक्तियोंमें वे श्रेष्ठ व्यक्ति थे ॥ ५९ ॥ दनुने दानवोंको उत्पन्न किया और दितिने दैत्योंको उत्पन्न किया, तदनन्तर कालाने कालकेयोंको उत्पन्न किया तथा असुर और राक्षसोंको भी उत्पन्न किया ॥ ६० ॥ अनायुषाके आधि और व्याधियें उत्पन्न हुईं, सिंहिका ग्रहोंकी माता हुई और मुनिने गंधर्वोंको उत्पन्न किया ॥ ६१ ॥ प्रवोधाने श्रेष्ठ अप्सराओंको उत्पन्न किया, सुरसामें सरीसृप (सर्प) उत्पन्न हुए और हे भारत ! क्रोधाके सब भूत और पिशाच उत्पन्न हुए ॥ ६२ ॥ हे राजन् ! यक्ष और गुह्यक भी सुरसासे उत्पन्न हुए, गौके अतिरिक्त सब चौपाये सुरसाकी सन्तान हैं ॥ ६३ ॥ विनतासे अरुण और गरुड़ उत्पन्न हुए, देवी कद्रूने सर्प और नागोंको उत्पन्न किया ॥ ६४ ॥ हे राजन् ! महात्माके पुष्कर प्रादुर्भावमें इस प्रकार सब लोक पर-स्पर बढ़ने लगे ॥ ६५ ॥ मैंने पुष्कर प्रादुर्भावके विषयमें द्वैपायन ऋषिसे यह प्राचीन बात सुनी थी, उन्होंने भी महर्षियोंकी कही

पठते महात्मा । अवाप्य कामानिह वीतशोकः परत्र स स्वर्गफलानि भुंक्ते ॥ ६७ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

जनमेजय उवाच । श्रुतं नः परमं ब्रह्मन् स्ववंशचरितं महत् । दिव्यमन्योन्यसंभूतं मानितं बहुभिर्गुणैः ॥ १ ॥ छन्दोभिर्वृत्तसञ्जातैः समासैश्च सविस्तरैः।लघुभिर्मधुराभाषैर्ग्रथितं पदविग्रहैः॥२ त्रिवर्गेणाभिसम्पन्नं धर्मेणार्थेन भोगिनाम् । कामेन बहुरूपेण शरीरान्तर्गतेन च ॥ ३ ॥ ब्राह्मणानां प्रभावैश्च योधानां च पराक्रमैः । वैरनिर्यातनैश्चैव प्रतिज्ञानां च पारगैः ॥ ४ ॥ रिपु-

---

हुई यह बात कही थी ॥ ६६ ॥ जो पुरुष अप्रमत्त होकर इस प्रथम और श्रेष्ठ पुराणको पढ़ता है, वह महात्मा पुरुष इस लोकमें कामनाओंको पाकर शोकरहित हो परलोकमें स्वर्गके फलोंको भोगता है ॥ ६७ ॥ चौदहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १४ ॥

[नीलकण्ठ-"पत्सूचितं प्राक् श्लोकाभ्यां रहस्यं सांख्ययोगयोः । तद्विस्तरार्थं नवमे नृपतेः प्रश्न ईर्यते-पहिले दो श्लोकोंमें सांख्य और योगका रहस्य कहा, उसको विस्तृत रूपसे समझानेके लिए नवम पुष्कराध्यायमें राजाका प्रश्न लिखा जाता है]

जनमेजयने कहा, कि-हे ब्रह्मन् ! मैंने अपने वंशका बड़ा भारी चरित्र सुना, यह दिव्य है और इसमें बहुतसे माननीय गुण हैं और यह चरित सूक्ष्म और मधुर भाषण वाले पद और विग्रहों से गुँथा हुआ है और वृत्त (छन्दःशास्त्र) के छन्दोंसे ग्रथित है और विस्तृत समासोंसे गुँथा हुआ है ॥ १ ॥ २ ॥ तथा शरीरधारियोंके अर्थ और त्रिवर्गसे संपन्न है और शरीरान्तर्गत अनेक प्रकारकी कामनाओंका इसमें वर्णन है ॥ ३ ॥ इसमें ब्राह्मणोंके प्रभावका, योधाओंके पराक्रमका वैरके बदला लेनेका प्रतिज्ञा

स्तवसुसम्पन्नैर्नानुबन्धः प्रचोदितः । वंशयोर्निर्विनाशाय नृपेण द्विजविग्रहात् ॥ ५ ॥ ये च तस्मिन् महारौद्रे संग्रामे निहता नृपाः। तेषां सर्वाणि राष्ट्राणि पुत्राः सर्वे प्रपेदिरे । कौरवः प्रथितो राजा भगवच्छासनानुगः ॥ ६ ॥ धर्मश्च बहुधा प्रोक्तस्त्रयाणां वर्ण-सम्पदाम् । शूराणामपि विख्यातः स्वर्गहेतुर्द्विजर्षभः ॥७॥ अनु-ग्रहार्थं भूतानां नोत्सेकाय कथञ्चन । चतुर्णां वर्णसंज्ञानां पृथक्-पृथगनेकधा ॥ ८ ॥ गर्भवासे च पतनं भूतानां संप्रबोधितः । पृच्छतां देवसञ्चारो क्षीणे पुण्ये च कर्मणि ॥ ९ ॥ दाने पश्चापि संयोगः स चापि बहुधा कृतः । द्वाभ्यां संयोगविहितो मधुवाग्-वचनं तयोः ॥१०॥न तच्छक्यं मया ख्यातुं भारताध्ययनं महत् ।

पूर्ण करनेका (वर्णन है) इसमें रिपुओंसे स्तुति पानेका वर्णन आया है और इसमें अनुबंध नहीं है, राजाने ब्राह्मण (द्रोणाचार्य) के द्वारा विग्रह करा कर दोनों वंशोको निर्वंश (सा) कर डाला था ॥५॥ इस महाभयंकर संग्राममें जो राजे मारे गए थे,उनके पुत्रोंने अपने २ राज्योंको पाया था और कौरव राजा (युधिष्ठिर) भगवान्के शासनमें चल कर प्रसिद्ध होगए थे ॥ ६ ॥ हे द्विजर्षभ ! इस चरित्रमें तीनों वर्णोंका चरित्र भी अनेक स्थानोंमें आया है और शूरोंको स्वर्गमें ले जानेके हेतु (युद्ध) का भी वर्णन आया है ॥ ७ ॥ इन सबका प्राणियों पर अनुग्रह करनेके लिए वर्णन किया है उनका उत्सेक करनेके लिए वर्णन नहीं किया है, इसमें चारों वर्णोंका पृथक् २ अनेक प्रकारसे वर्णन किया है ८और आपने हमारे बूझने पर पुण्य क्षीण होने पर प्राणियोंके गर्भवासमें गिरनेका भी वर्णन किया और देवताओंके (स्वर्ग लोकमेंसे भूलोकमें आनेका अर्थात्) संचारका भी वर्णन किया ॥ ९ ॥ और दानके संयोगका भी अनेक प्रकारसे वर्णन किया है, दो पुरुषोंका संयोग और उनकी

एकाहेन महान् ब्रह्मन्नपि दिव्येन चक्षुषा ११ ब्रह्मणोऽह्नस्तु विस्तारं संक्षेपं च सुसंग्रहम् । श्रोतुमिच्छामि भगवन् महत् कौतूहलं हि मे १२

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

वैशम्पायन उवाच । शृणुष्वेकमना राजन् पञ्चेन्द्रियसमाहितः। कथां कथयतो राजन्निर्विकारेण चेतसा १ ब्रह्मसम्बन्धसंबद्धमबद्धं कर्मभिर्नृप । पुरस्ताद्ब्रह्मसम्पन्नं ब्रह्मणो यददक्षिणम् ॥ २ ॥

मधुर वाणियोंका भी आपने इसमें वर्णन किया है ॥ १० ॥ हे ब्रह्मन् ! दिव्य नेत्र वाले आपने जिस आख्यानका वर्णन किया है, इस बड़े भारी भारताख्यानको मैं एक दिव्य दिनमें भी नहीं कह सकता ॥११॥ अब हे भगवन् ! मैं ब्रह्माजीके दिनके विस्तार को और संक्षेपको सुनना चाहता हूँ, इस बातका मुझे बड़ा कुतूहल होरहा है [नीलकण्ठ—यहाँ पर अहन् शब्द यज्ञवाची है, दिनवाचक नहीं है अर्थात् मैं ब्रह्मयज्ञ (ब्रह्मज्ञान) को संक्षेप और विस्तारसे सुनना चाहता हूँ]१२ पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त १५

[नीलकण्ठ "सांख्ययोगात्मको ब्रह्मयज्ञोथ दशमे मुनिः । सांख्यं ब्रह्मविचाराख्यं प्रस्तौति क्षिप्रसिद्धिदम्—सांख्ययोगात्मक विचार ब्रह्मयज्ञ है । दशम अध्यायमें मुनि शीघ्र ही सिद्धि देने वाले ब्रह्मविचार नामवाले सांख्यको कहते हैं] वैशम्पायनजीने कहा, कि—हे राजन् ! मैं कथा कहता हूँ उसको आप पाँचों इन्द्रियों को सावधान रख कर निर्विकार चित्तसे सुनिये ।१। हे राजन् ! ब्रह्माके सम्बन्धसे सम्बद्ध कर्मोंसे असंबद्ध ब्रह्मवेत्ता पुरुषका अदक्षिण जो ब्रह्म है, जो अव्यक्त कारण, नित्य और सदसद्रूप है तथा निष्कल पुरुष है उससे आत्मयोनि—पितामह उत्पन्न हुए [नीलकण्ठ-वेदमूलक होनेसे सम्बद्ध ऐसा होने पर भी कर्मव्यावर्तक अर्थात् ब्रह्मैकविषय है और जो प्रत्यकूरूप होनेसे ब्रह्म-

अव्यक्तं कारणं यत्तन्नित्यं सदसदात्मकम् । निष्कलः पुरुषस्तस्मात् सम्बभूवात्मयोनिजः ॥३॥ दिव्यो दिव्येन वपुषा सर्वभूतपतिर्विभुः । अचिंत्यश्चाव्ययश्चैव युगानां प्रभवोऽव्ययः ॥४॥ अभूतश्चाप्यजातश्च सर्वत्र समतां गतः । अव्यक्तात् परमं यत-

वेत्ताके लिए पहिलेसे ही सम्पन्न है और जो "न तत्र दक्षिणा यान्ति तहाँ पर सदक्षिण कर्मोंसे नहीं पहुँचा जासकता" इस श्रुतिके अनुसार अदक्षिण है अर्थात् जिसको कर्मोंसे नहीं पाया जा सकता, उसको आप सुनिये इसी बातको कहते हैं कि-जो अव्यक्त है और नाम और अर्थसे जगत्का हेतु-कारण है, सदसदात्मक है अर्थात् मूर्तामूर्त है, नित्य अर्थात् अविनाशी है, वह सांख्यप्रसिद्ध निष्कल पुरुष निर्विशेष चिन्मात्र आत्मासे अतिरिक्त नहीं है, अर्थात् उसमें ही अध्यस्त है उससे आत्मयोनिज हुआ अर्थात् आत्मयोनि जिसका ज्ञापक है अर्थात् "नाहं जानामि इत्यनुभूतिसिद्ध-मैं नहीं जानता हूँ ऐसा अनुभूतिसिद्ध अज्ञान उससे उत्पन्न होने वाला अहंकार अर्थात् 'मैं हूँ" ऐसा प्रथम अध्यास उत्पन्न हुआ।२।३।वह दिव्य थे,वह दिव्य शरीरके कारण सब भूतोंके स्वामी प्रतीत होते थे,अचिन्त्य थे अव्यय थे और युगोंकी उत्पत्तिस्थान तथा अव्यय थे[नीलकण्ठ-शुद्ध सत्त्व होनेसे वह दिव्य था वह वियदादि सब भूतोंका स्वामी है, जन्म और नाशमें स्वतन्त्र है, विभु-व्यापक है अचिंत्य है अर्थात् सत्त्व वा असत्त्वसे उसकी आलोचना नहीं की जासकती, अत एव वह अव्यय है। अर्थात् रज्जूरगकी समान उत्पन्न होनेसे उसका व्यय नहीं होता है और वह युगोंका प्रभाव है अर्थात् युग २ के शम काम दंभ और आचार आदि धर्मोंका प्रभव है तात्पर्य यह है, कि ये अहंकारसे ही उत्पन्न होते हैं तथा वह नित्यमूढ़ोंके लिए अव्यय है।] ॥ ४ ॥ वह अभूत हैं, अजात हैं, सर्वत्र सम हैं और वह

न्नारायणविदो विदुः ॥ ५ ॥ सर्वतः पाणिपादं तं सर्वतोऽक्षि शिरोमुखम् । सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥ ६ ॥ असतश्च सतश्चैव विज्ञेयं तत्र कारणम् । अव्यक्तो व्यक्त-

अव्यक्तसे पर हैं ऐसा नारायणको जानने वाले कहते हैं [नील-कण्ठ—अब अचिन्त्यत्व और विभुत्वको स्पष्ट करते हैं, कि-वह अभूत है अर्थात् त्रिकालमें भी सिद्ध नहीं है इसी लिए वह अजात अर्थात् अनुत्पन्न है ऐसा होने पर भी सर्वत्र सम है, वह सद्रूप है न असद्रूप है तो वह फिर किस प्रकारका है तो कहते हैं,कि-वह अव्यक्तसे पर है और उसको नारायणवेत्ता ही जान सकते हैं,वह वही है यह योजना समुद्रतरंगकी समान है अर्थात् अहंकार चिन्मात्र रूप ही है] ॥५॥ [नीलकण्ठ—अब इसके विश्वरूपका वर्णन करते हैं, कि-] सर्वत्र उसके हाथ पैर हैं और सब ओर, उसके ही शिर और मुख हैं, उसके सब ओर कान हैं और वह संसारमें सबको आवृत करके रहता है ॥ ६ ॥ तहाँ पर असत् और असत्का कारण रहता है वह अव्यक्त व्य-क्तरूपमें घूमते हुए भी नहीं दीखते हैं [नीलकण्ठ—समुद्रमें भी वायुके अभिघातके बिना तरंग उत्पन्न नहीं होती है तो फिर चिन्मात्र अद्वितीयमें दूसरा अज्ञान किस प्रकार सम्बंध पाता है जिससे कि-अहंकारकी उत्पत्ति होजाय ? इस प्रकार शंका करके उत्तर देते हैं कि-तहाँ अर्थात् अहंकारमें असत् का अर्थात् कारण का और सत्का अर्थात् कार्यका कारण अर्थात् कल्पक अविद्या है अहंकारमें स्थित होकर ही चिदात्मामें अविद्या कल्पित है, चिदात्मामें वह सम्बन्ध ठीक नहीं बैठता । इन्होंने कहा भी है; कि—"अस्याविद्येत्यविद्यामेवासित्वा प्रकल्प्यते—अविद्यामें बैठ कर ही यह इसकी अविद्या है, ऐसी कल्पना की जाती है" तात्पर्य यह है,कि—ब्रह्मके द्वारा तो अविद्या किसी प्रकार भी युक्त नहीं

रूपस्थश्चरन्नपि न दृश्यते ॥ ७ ॥ विकारपुरुषो व्यक्तो ह्यरूपी रूपमाश्रितः । चरत्यचिंत्यः सर्वेषु गूढोग्निरिव दारुषु ॥ ८ ॥ भूतभव्योद्भवो नाथः परमेष्ठी प्रजापतिः । प्रभुः सर्वस्य लोकस्य

होती, कहींसे अर्थात् कहीं पर भी चिदात्मामें अविद्याकी कल्पना नहीं होसकती, इस लिये कहा है कि-वह उसके निर्विकल्प होने से अव्यक्त है, तो शंका होती है, कि-फिर उसके होनेमें क्या प्रमाण है इसका उत्तर देते हैं, कि-"व्यक्तरूपस्थश्चरन्-इति-वह व्यक्तरूपमें स्थित होकर विचरता हुआ भी नहीं दीखता है" अर्थात् मातृमानप्रमेय आदि अचिदात्मत्वरूपसे दृश्योंमें अनुस्यूत होनेपर विचरण करता हुआ भी नहीं दीखता है, यह शंका नहीं करनी चाहिये, कि-अदृश्य होनेसे ही वह असिद्ध है, मात्रादि सब इतर-भाव अदृश्य हैं, सन्मतकी समान इस न्यायसे उसकी सिद्धि हो जाती है] ॥ ७ ॥ विकार पुरुष व्यक्त होजाता है, अरूपी रूप का आश्रय लेलेता है, वह अचिन्त्य पुरुष काष्ठोंमें अदृश्य रहने वाले अग्निकी समान सब प्राणियोंमें विचरण करता है [नील-कण्ठ-मातृ आदिसे व्यक्त होने वाला विकारपुरुष उस दृश्य वाले दृश्यका अरूपी चिदात्मा आश्रय लेकर दृश्यको प्रकाशित करता है, काष्ठोंमें अग्निकी समान पृथक् न दीखता हुआ भी, आत्मध्यानरूपी निर्मथनसे अर्थात् स्वाश्रयग्राससे प्रकट होता है] ॥ ८ ॥ प्रजापति परमेष्ठी भूत भव्य और उद्भवके नाथ हैं, सब लोकके प्रभु हैं और उनका नाम तत्त्वपूर्वक रक्खा हुआ है [नील-कण्ठ-प्रासंगिक आत्मतत्त्वनिरूपणको समाप्त करके "अध्या-रोपापवादाभ्यां निष्प्रपञ्चं प्रपञ्च्यते-अध्यारोप और अपवादसे निष्प्रपञ्च ब्रह्मका प्रपञ्चन किया जाता है" इस न्यायसे उसकी प्राप्तिके उपायभूत "तस्मात् संभूत्वात्मयोनिजः" इस प्रकार आरंभ हुआ अध्यारोपका अनुसरण करके भूत भव्य आदि बात कही

नाम चास्येति तत्त्वतः ॥ ९ ॥ अपदात्तु पद्मो जातस्तस्मान्नारायणोऽभवत् । अव्यक्तो व्यक्तिमापन्नो ब्रह्मयोगेन कागतः १०

है । उनका नाम "सोहमग्रे व्याहरत् ततोऽहं नामाऽभवदिति-उस ने पहिले "अहम्" यह कहा तो वह अहंकार नाम वाला होगया" इस प्रकार श्रुतिप्रसिद्ध और आगे कहा जाने वाला उनका नाम तात्त्विक ही है] ॥ ९ ॥ अपदसे पद हुआ, इससे वह नारायण होगए, ब्रह्मयोगसे अव्यक्त अव्यक्तित्वको प्राप्त होगया [नीलकण्ठ-अब तात्त्विक (ईदृग्रूप) को स्पष्ट करते हैं, कि-"अपद्यते प्रमाणतो न गम्यते इत्यपदमज्ञानं तस्मात् पदः पद्यते इति पदोऽहंकारो जातः न हि शुक्तौ रजतस्येव तत्कारणस्याज्ञानस्य ग्रहोऽस्ति नारायणे उद्भवो यस्य तस्माच्छुद्धेऽप्यनादिकालमारभ्याध्यस्तादित्यर्थः अन्यथा मुक्तानामपि पुनर्बाधापत्तिः स्यात्, ननु सतः पदस्य कथमसतोऽपदाज्जनिः कथमसतः सज्जायेतेति तदसम्भवश्रुतेरित्यत आह अहंकारोऽपि अपद एव सन् ब्रह्मयोगेन अधिष्ठानसत्तानुवेधेन व्यक्तिपदत्वं प्राप्तः, अत्र हेतुः अनादिरागादिवासनावशाद्भ्रमः तत्संस्कारद्वारानुवृत्तिरिति भावः-जो प्रमाणसे न जाना जाय उसको अपद अर्थात् अज्ञान कहते हैं, उससे जानने में आनेवाला अहंकार उत्पन्न हुआ, शुक्ति (सीपी) में चाँदी की समान उसके कारण अज्ञानका ग्रहण नहीं होसकता, किन्तु उसकी नारायणमेंसे उत्पत्ति होती है, अतः शुद्ध होने पर भी अनादिकालसे अध्यस्तसे उसकी उत्पत्ति होती है, अन्यथा मुक्तों की भी फिर बाधकी आपत्ति आजावेगी । अब यहाँ शंका होती है, कि-सत् पद (अहंकार) की असत् अपद (अज्ञान) से उत्पत्ति किस प्रकार होसकती है, क्योंकि-इसका श्रुति विरोध करती है, कि-असत्से सत्की उत्पत्ति नहीं होसकती, इसका उत्तर देते हैं कि-अहंकार भी अपद होने पर भी ब्रह्मयोगसे

ब्रह्मभावे च तं विद्धि सशब्दं लब्धवान् प्रभुः । प्रभुः सर्वस्य लोकस्य स्थावरस्येतरस्य च ॥ ११ ॥ अहं त्विति स होवाच प्रजाः स्रक्ष्यामि भारत । प्रभवः सर्वभूतानां यस्य तन्तुरिमाः प्रजाः ॥ १२ ॥ स्वभावाज्जायते सर्वं स्वभावाच्च तथाभवत् । अहंकारः स्वभावाच्च तथा सर्वमिदं जगत् ॥ १३ ॥ सर्वव्यापी

(अधिष्ठानसत्तानुवेधसे) व्यक्तिपद को प्राप्त होगया, उसका कारण अनादि रागादि वासनाके वशसे होने वाला भ्रम है, तात्पर्य यह है, कि-उसके संस्कारके द्वारा अनुवृत्ति होती है]॥१०॥ उनको तुम ब्रह्मभावमें स्थित जानो, वह सब लोकोंके स्थावर जङ्गमके प्रभु हैं, उन प्रभुने शब्द (ब्रह्मा नाम) पाया है [नीलकण्ठ-उस पद्माख्य अहं नामक पुरुषको तुम ब्रह्मभावमें स्थित जानो, स्मृतिमें लिखा है, कि-"ज्ञानमप्रतिघं तद्वैराग्यं च जगत्पतेः । ऐश्वर्यं चैव धर्मश्च सह सिद्धं चतुष्टयम्" इस स्मृतिके अनुसार उसको ब्रह्मिष्ठ जानना चाहिये, अत एव उसे ब्रह्मा शब्द(नाम) मिला है और वह जगत्का प्रभु है]११उन्होंने कहा, कि मेरा नाम अहम् है, हे भारत!फिर उन्होंने कहा, कि-मैं प्रजाओंको रचूँगा, सब भूतोंकी उत्पत्ति उन्हीं ब्रह्माजीसे हुई है, सब प्रजाएँ उनकी ही सन्तान हैं [नीलकंठ-उसने अपना नाम अहम् बताया, इससे अवशिष्ट कारण कह दिया अर्थात् वह श्रुति-प्रसिद्ध सोऽहम् नामवाला होगया, फिर उसने कहा, कि मैं प्रजाको रचूँगा।उसने आनन्द नहीं पाया इसी लिये एकाकी पुरुष भी आनन्द नहीं पाता है, इस श्रुतिके अनुसार वह आत्मज्ञ भी अधिकारपरतन्त्रतासृष्ट्यादिपर होगया]१२सब स्वभावसे ही होता है अतः सब स्वभावसे वैसा ही होगया, अहंकार और यह सब जगत् स्वभावसे ही हुआ है [नीलकण्ठ-इसी बात को कहते हैं, कि-" स्वस्मिन्नर्थे भवतीति स्वभावः-जो अपने अर्थमें होता है; वह स्वभाव है" पूर्ववासना अहमिति वासना भी

निरालम्बो ह्यग्राह्योथ जयो ध्रुवः । एवं ब्रह्ममयो ज्योतिर्ब्रह्मशब्देन शब्दितः ॥१४॥ अव्यक्तो व्यक्तिमापन्नः पञ्चभिः क्रतुलक्षणैः । धारयन् ब्रह्मणो व्यक्तं विविधं चिन्तितं त्वरन् ॥ १५ ॥ अथ मूर्तिं समाधाय स्वभावाद्ब्रह्मचोदितः । ससर्ज सलिलं ब्रह्मा येन सर्वमिदं ततम् ॥ १६ ॥ वायुं पूर्वमथो दृष्ट्वा यो धातुर्धातृसत्तमः। धारणाद्धातृशब्दं च लभते लोकसंज्ञितम् ॥ १७ ॥ तदेतद्वायुसं-

स्वभावसे ही होती है, यही बात कही है, कि—अहंकार भी स्वभावसे ही होता है] ॥ १३ ॥ सर्वव्यापी निरालम्ब अग्राह्य जय और ध्रुव ऐसी ब्रह्ममय ज्योति ब्रह्मशब्दसे कही जाती है [नीलकण्ठ वह (अहंकार) समष्टिका अभिमानी होनेसे सर्वव्यापी है, असंगत्वके ज्ञानसे निरालम्ब है; अत एव वह अग्राह्य है अर्थात् ज्ञानसे उसकी भावना नहीं की जासकती, वह जय अर्थात् जैयवान् है, ध्रुव है और ज्योतिकी समान अलिप्त है] ॥ १४ ॥ वह अव्यक्त पाँच ज्ञानलक्षणोंसे व्यक्तित्वको प्राप्त होगया है और वेदसे व्यक्त हुए विविध भावोंको त्वराके साथ धारण करने लगा [नीलकण्ठ—वह ब्रह्मशब्दित स्वरूपसे अव्यक्त भी पाँच भूतसूक्ष्म क्रतुलक्षण—संकल्पमात्रभाव उपाधियोंसे व्यक्ति) पुरुषाकृतिको प्राप्त होगया है और वह वेदोक्त सब भौतिकोंको संकल्पमात्रको त्वराके साथ धारण करने लगा "पोषयितुं मनसा वाचं मिथुनꣳ स भवदिति" इस प्रकार वेदोक्त प्रकारसे सबको रचनेके लिए उसने मूर्ति धारण कर जलको रचा (जलको रचनेका सम्बन्ध अगले श्लोकसे है] ॥ १५ ॥ जिसने सबको फैलाया है उस ब्रह्मके अर्थात् स्वभावके द्वारा प्रेरितने मूर्तिको धारण कर लिया, था उस मूर्तिधारी ब्रह्माने जलको रचा, ॥ १६ ॥ फिर उसने वायुको रचा, जलकी रचनासे पहले वह (धाता) ईश्वरके वशमें रहने वाले मरीचि आदि धाताओंसे श्रेष्ठ था और

भूतं कृत्स्नं जगद्भूत् पुरा। एतद्देवैरतिक्रान्तं पूर्वमेव सरस्वति १८
पृथक्त्वं गमितं तोयं पृथिवीशब्दमिच्छता। घनत्वाच्च द्रवत्वाच्च
निखिलेनोपलभ्यते ॥ १९ ॥ फलत्वात् सीदमाना च सलिले
सलिलोद्भवः। व्याजहार शुभां वाणीं समन्तात् पूरयन्निव २०
ऊर्ध्वोहं स्थातुमिच्छामि संसीदाम्युद्धरस्व माम्। गम्भीरे तोय-
विवरे मूर्तिविक्षोभितान्तरम् ॥ २१ ॥ ततो मूर्तिधरा देवी सर्व-

धारण करनेसे भी संसार इसको अर्थात् ब्रह्माजीको धाता भी कहने लगे ॥१७॥ यह सारा जगत् पहिले वायुसे उत्पन्न हुआ था देवता इसका अतिक्रमण कर सकते हैं, यह सब सरस्वती अर्थात् समुद्रके चारों ओर स्थित है [नीलकण्ठ—स्थूल वायु अग्नि आदिके क्रमसे यह जगत् पार्थिव और जलीय है, इसका शम दम वाले तैजस देवता अतिक्रमण कर जाते हैं, तात्पर्य यह है, कि—वे उत्तरोत्तर उत्कृष्ट पद पर ही चढते हैं मनुष्यत्वको प्राप्त नहीं होते हैं, यह सारा जगत् समुद्र (चिन्मय) में स्थित है]१८ पृथिवीशब्दको चाहने वाले ब्रह्माने जलको पृथक् कर दिया, इस पृथ्वी और जलके भेदको सारा संसार घन और द्रव होनेसे अलग२ जानता है [नीलकण्ठ—भूलोकको बसाना चाहने वाले ब्रह्माजी ने समुद्रके जलको घनत्व धर्मभेदसे अलग कर दिया, इसी लिए संसार घनभागको पृथिवी और द्रवभागको जल कहता है]१९ फल होनेसे अर्थात् कार्य होनेसे पृथिवी अपने कारण जलमें लीन होने लगी सलिलोद्भवने अर्थात् जलसे उत्पन्न हुए भूदेवता नामक पुरुषने चारों ओर गुंजारते हुए कहा, कि—॥ २० ॥ गम्भीर जलरूप विवरमें मूर्तिकी कठिनतासे मेरा भीतरी भाग विक्षुब्धसा होरहा है अर्थात् मैं मट्टीके ढलेकी समान विशीर्ण होरहा हूँ, इस लिये मैं ऊपर स्थित रहना चाहता हूँ, अतः कोई मेरा उद्धार करे ॥२१॥ तदनन्तर जिस पर सब प्राणी सवार रहते हैं ऐसी

भूतमरोहिणी । यथा योगेन सम्भूता सर्वत्र विषयैषिणी ॥२२॥ श्रुत्वा च गदितं तस्या गिरं तां च सुभाषिताम् । वराहरूपमास्थाय निपपात महार्णवे ॥ २३ ॥ उद्धृत्य सोऽवनिं तोयात् कृत्वा कर्म सुदुष्करम् । समाधौ मलयं गत्वा मलीनो न च दृश्यत ॥ २४ ॥ यच्चब्रह्ममयं ज्योतिराकाशमिति संज्ञितम् । तत्र ब्रह्मा समुद्भूतः सर्वभूतपितामहः ॥ २५ ॥ अद्यापि मनसा धात्रा धार्यते सर्वयोगिना । ज्ञानयोगेन सूक्ष्मेण प्रजानां हितकाम्यया ॥ २६ ॥ भित्त्वा तु पृथिवीं मध्यमुपयाति समुद्भवम् । तपनस्तूर्ध्वमातिष्ठन्-

मूर्तिमती पृथ्वी, सर्वत्र स्थान ढूँढने लगी और विशीर्ण होनेरूप हेतुसे सर्वत्र मेरा उद्धार करो २ इस प्रकार चिल्लाने लगी२२ उसके कथनको और उसकी सुभाषित वाणीको सुनकर हरि वराहका रूप धारण करके समुद्रमें कूद पड़े ॥ २३ ॥ तदनन्तर उन्होंने पृथिवीका उद्धार किया और इस प्रकार दुष्कर कर्म करके वह समाधिमें जाकर मलयको प्राप्त होगए और लीन होने के अनन्तर उनका दीखना बन्द होगया अर्थात् हरि अवतारका कार्य करके लीन होगए ॥२४॥ [नीलकण्ठ-जिसने पृथिवीका उद्धार किया था उसके रूपका वर्णन करते हैं, कि-] जो ब्रह्ममय ज्योति है और जो आकाश नाम वाला है,जिसमें सब भूतों के पितामह ब्रह्माजी उत्पन्न हुए हैं ॥ २५ ॥ [नीलकण्ठ-वह धाता अर्थात् ईश आज कलभी शेष कूर्म आदि रूपसे मनके द्वारा उस पृथ्वीको धारण कर रहा है] वह सर्वयोगी धाता प्रजाका हित चाहनेकी इच्छासे सूक्ष्म ज्ञानयोगके द्वारा अपने मनसे उस पृथिवीको धारण कर रहा है ॥ २६ ॥ सूर्य जलके मध्यभागको विदीर्ण करके उस पृथिवी पर आजाता है, फिर वह तपन(सूर्य) रश्मियोंसे हँसता हुआसा ऊपर स्थित रहता है [नीलकण्ठ- इस प्रकार धारण की हुई भी पृथिवी सूखे हुए तड़ागकी समान

शिराभिः स हसन्निव ॥२७॥ तस्य मण्डलमध्यात्तु निःसृतं सोम-
मण्डलम् । स सनातनजो ब्रह्मा सौम्यं सोमत्वमन्वगात् ॥२८॥
सोममण्डलपर्यन्तात् पवनः समजायत । तदक्षरमयं ज्योतिस्ते-
जोभिरभिवर्धयन् ॥२९॥ स तु योगमयाज्ज्ञानात् स्वभावाद्ब्रह्म-

विदीर्ण होगई उसमेंसे सूर्य उदय होगए, यह विवर ही मेरुमूल का प्रवेशस्थान है इस बातको आगे कहेंगे] ॥ २७ ॥ उसके मण्डलके बीचमेंसे सोममण्डल उत्पन्न हुआ वह सनातनज है और ब्राह्मण है और वह सौम्य सोमत्वको प्राप्त होगया है[नीलकण्ठ-इसप्रकार अतितापसे सूर्यमण्डलमेंसे जलमय सोम-मण्डल उत्पन्न होगया, वह सोमगण्डलका अभिमानी सनातन (अर्थात् परमात्मासे उत्पन्न है ब्रह्मा अर्थात् ब्राह्मण वर्णका है श्रुति में भी लिखा है,कि-ब्रह्म ब्राह्मण आत्मना-आत्मस्वरूसे ब्राह्मण ब्रह्मस्वरूप है' और वह आद्य होनेसे ब्राह्मणोंका राजा है और "सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानां राजा-सोम हम ब्राह्मणोंका राजा है उमा अर्थात् ब्रह्मविद्यासे संयुक्त होना सोम कहलाता है उसका भाव सौम्य कहलाता है अर्थात् वह उत्पन्न होते ही ब्रह्मवेत्ता बन गया]२८सोममण्डलके मुखसे पवन उत्पन्न हुआ वह अक्षरमय ज्योति है और वह तेजसे बढ़ता रहता है [नीलकण्ठ-उक्तरूप वाले सोमके मण्डलपर्यन्तसे अर्थात् मुखप्रदेशसे पवन अर्थात् निःश्वास उत्पन्न हुआ वह निःश्वास अक्षरमय ज्योति है अर्थात् वर्णात्मक वेद है,सब अर्थोंका प्रकाशक है श्रुतिमें भी लिखा है,कि'निःश्वसित-मेतद्य ऋग्वेदइत्यादि-ऋग्वेद आदि परमात्माका निःश्वासरूप है२९वह ब्रह्मसे उत्पन्न हुए स्वाभाविक योगमय ज्ञानसे ब्रह्मयोनि सनातन दिव्य पुरुषको रचना है, जो द्रवभाव है वह सलिल है और उसका घनभाग पृथिवी है, उसका छिद्र आकाश है और जो चक्षु है वह उसकी ज्योति है, वह वायुसे अर्थात् कारणसे

सम्भवत् । सृजते पुरुषं दिव्यं ब्रह्मयोनिं सनातनम् ॥ ३० ॥ द्रवं यत् सलिलं तस्य घनं यत् पृथिवीभवत् । छिद्रं यच्च तदाकाशं ज्योतिर्यच्चक्षुरेव तत् ॥ ३१ ॥ वायुना स्पन्दते चैनं संघातज्ज्योतिसम्भवः । पुरुषात् पुरुषो भावः पञ्चभूतमयो महान् ।

देहको चलायमान करता है और संघातसे इन्द्रियोंकी उत्पत्ति होती है इसप्रकार पुरुषसे पञ्चभूतमय पुरुषत्वभाव उत्पन्न होता है वह भूतात्मा सबमें रहता है और उसमें सनातन देह रहता है गुहामें ज्ञान छुपा रहता है और योगसे सनातन यज्ञ होता है [वह सूर्य मण्डल तकके आधिदैविक अर्थोंका स्रष्टा सोम नाम वाले ईश्वरसे वेदको प्राप्त करके जन्मान्तरीय योगके प्रभावसे प्रकट हुए प्रकाशसे अपने बुद्धिबलसे वेदको बढाता है और वेदके अर्थोंकी आलोचना करके वेदसे उत्पन्न हुए स्वभावके अनुसार वेदके आस्पदभूत पूर्वकल्पमें बनाए हुए शिर हाथ आदि वाले सनातन आध्यात्मिक पुरुषको रचता है,इस शरीरके पंचभूतमयत्वको "अथ यल्लोहितं श्लेष्मा रेतस्ता आपः-जो लोहित भाग है वह इसका श्लेष्मा है और रेत उसका जल है" श्रुतिमें दिखाए हुए इस भावको अगले दो श्लोकोंमें प्रकट करते हैं; पुरुष अर्थात् ईश्वरसे प्राप्त पुरुषभाव-चैतन्य कर्ता इस देहको वायु अर्थात् कारणके द्वारा संघातसे चलायमान करता है इस प्रकार पाँच भूतोंका सङ्घात होने पर अर्थात् सम्मेलन होने पर ज्योतियोंकी अर्थात् इन्द्रियोंकी और जठराग्निकी उत्पत्ति होती है श्रुतिमें लिखा है, कि-"अग्निर्वाग्भूत्वा मुखं प्राविशत् अग्नि वाणी होकर उसके मुखमें प्रवेश कर गई, इस प्रकार सारे ब्रह्मांडका प्रवेश होनेसे योगीके हृदयरूप दर्पणमें वह प्रकट होजाता है, भूतात्मा अर्थात् जीव ऊँचे नीचे कमती बढती आदिसे रहित होनेके कारण नहीं किन्तु पाञ्चभौतिक होनेसे उस सम देहमें

भूतात्मा वै समे तस्मिंस्तस्मिन् देहः सनातनः । गुहायां निहितं ज्ञानं योगाचज्ञः सनातनः ३३ तपनस्यैव तद्रूपं योऽग्निर्वसति देहिनाम् । शरीरे नित्यशो युक्ते धातुभिः सह सङ्गतः ॥ ३४ ॥ स्वभावात् त्रपमायाति स्वभावाद्भयमेति च । स्वभावाद्विन्दते शांति स्वभावाच्च न विन्दति ॥ ३५ ॥ इन्द्रियैरतिमूढात्मा मोहितो

रहता है वह सनातन अर्थात् अनादिकालका है" गुहामें अर्थात् बुद्धिमें "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म यो वेद निहितं गुहायां" ऐसा श्रुति प्रसिद्ध ज्ञान रहता है, वह ज्ञान क्या है इस बातको कहते हैं कि-उसका जानने वाला सनातन ईश्वर है अर्थात् उस ज्ञानको जानने वाला ईश्वर होजाता है । इस वाक्यसे "परमव्योमन् सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह-अर्थात् वह परमाकाशमें सब कामोंको भोगता है" इस श्रुतिका अर्थ दिखा दिया] ॥ ३०-३३ ॥ धातुओंके साथ मिले हुए शरीरमें प्रायः रहने वाला जो अग्नि (भोक्ता) रहता है वह देहाभिमानियोंकी दृष्टिमें प्रकाशका ही रूप है [जो सनातन पुरुष है वह जीव है इस बातको कहते हैं, कि—वह प्रकाशकका अग्नि है अर्थात् भोक्ता है ऐसा देहाभिमानी मूढ़ोंको प्रतीत होता है तत्त्वदृष्टिसे वह ईश्वर है, उसका अनैश्वर्य सर्वदा देहमें अध्यास रहनेके कारण होजाता है इसी बातको दिखाते हैं कि-पञ्चभूतोंके कारण देहाभिमान करनेसे परके भी ज्ञानका ऐश्वर्य तिरोहित होजाता है] ॥ ३४ ॥ वह स्वभावसे ही त्रप को प्राप्त होता है स्वभाव ही भयको पाता है स्वभावसे शान्ति को पाता है और स्वभावके कारण ही शान्तिको नहीं पाता है [नीलकण्ठ-जो पञ्चभूतोंके साथ मिला हुआ है वह पूर्व संस्कार से ऐश्वर्यको और अनैश्वर्यको पाता है और स्वभाव अर्थात् पूर्व संस्कारके अनुसार ही शान्ति और अशान्तिको पाता है] ३५ [इन्द्रिय किंकरको ही कर्म बंधनमें डालना है] इन्द्रियोंके द्वारा

ब्रह्मणः पदे । सम्भवं निधनं चैव कर्मभिः प्रतिपद्यते ॥ ३६ ॥ यावत्तद्ब्रह्मविषयं नोपयातीह तत्त्वतः । तावत् संसारमाप्नोति संभवांश्च पुनः ॥३७॥ इन्द्रियैर्व्यतिरिक्तो वै यदा भवति योगवित् । तदा ब्रह्मत्वमापन्नः प्रत्यगात्मे प्रतिष्ठति ॥ ३८ ॥ प्रतिषिद्धमिमं लोकं ब्रह्मवान् स भवत्युत । न च रागवशैर्याति न च सज्जति कर्हिचित् ॥ ३९ ॥ आगतिं च गतिं चैव निधनं संभवं तथा । भूतेभ्यो वेत्ति सर्वज्ञः परां सिद्धिमुपागतः ॥४०॥आत्मनो गतयश्चैव तथा विषयगोचरे । पुरस्तात् कर्म निर्वृत्तेः पदे ब्रह्म

जिसकी आत्मा मोहमें पड़ जाती है ऐसा पुरुष ब्रह्मकी खोज करनेमें असावधान रहता है और कर्मोंके द्वारा जन्म मरणको पाता रहता है ॥ ३६ ॥ जब तक वह ब्रह्मानन्दको तत्त्वतः नहीं पाता है तब तक संसारमें बारम्बार जन्म लेता रहता है ॥३७॥ (योगवेत्ता पुरुष)ब्रह्मा जब इन्द्रियोंसे व्यतिरिक्त(अलग)होजाता है, तब ब्रह्मत्वको प्राप्त होकर स्वरूपानन्दमें प्रतिष्ठाको पाता है ३८ इस सविकल्पानन्द नाम वाले लोकको प्रतिषिद्ध करके ब्रह्मवान् पुरुष निर्विकल्प पदका भागी होजाता है । और योगफल जब सर्वज्ञत्व आदिसे रागके वशमें होकर(ब्रह्मा)योगी न कहीं जाता है और न किसी विषयमें आसक्त होता है ॥३९॥ परम सिद्धिको प्राप्त हुआ सर्वज्ञ ब्रह्मा प्राणियोंकी आगतिको अर्थात् गर्भमें प्रवेश करनेको और गतिको अर्थात् गर्भमेंसे निकलनेको और मरणको जानते हैं (स्वयं गर्भवास आदिका अनुभव नहीं करते हैं)[नीलकण्ठ-यही दशा योगीकी समझनी चाहिये] ॥४०॥ ब्रह्माजी गतियोंको जानते हैं और भूत तथा वर्तमान विषयोंको भी जानते हैं, उनके (अशुभ) कर्मोंकी पहिले निवृत्ति होजाती है, अतः वह ब्रह्मपद पर प्रतिष्ठित रहते हैं [नीलकण्ठ-ब्रह्मवेत्ता पुरुष मुक्तिके उपायोंको जानता है और भूत भविष्यत् विषयोंको भी जानता

प्रतिष्ठितः ॥४१॥ चित्तग्रन्थींश्च मनसा रुन्ध्याद् पूर्वांश्च यातनाः। भिद्यमानाः प्रलोभेन वायुभिन्नमिवार्णवम् ॥४२॥ पश्यते हृदयं नीलं परेभ्यो ज्ञानचक्षुषा। ब्रह्मपोक्तमिवात्मा वै विमुक्तो देहबंधनात् ॥ ४३ ॥ सृजेदपि परं लोकं संहरेदपि विद्यया। तेजोमूर्ति-

है और कर्मफलोंकी निवृत्ति होनेसे ब्रह्मवेत्ता पुरुष ब्रह्ममें प्रतिष्ठित होजाता है] ॥ ४१ ॥ ब्रह्माजीने पूर्व यातनाओंको और चित्तग्रंथियोंको मनसे रोक लिया था और वायुसे हिलोड़े लेते हुए समुद्रकी समान, विशीर्ण होने वाले सुख दुःखोंको भी अपने मनसे वशमें कर लिया था [नीलकण्ठ—योगी पुरुष चित्तकी ग्रंथिरूप कामादिकोंको, सुख दुःखके साक्षात्कार रूप यातनाओंको और प्रबल लोभसे भिदती हुई अनेक शाखा वाली वासनावलीको मनसे वशमें करे, वह पुरुषको इस प्रकार हिलोड़ती रहती है, जिस प्रकार वायु समुद्रको हिलोड़ता रहता है] ४२ दूसरोंको देख कर ज्ञानचक्षुके द्वारा ब्रह्माजीका हृदय मलिन नहीं रहता है और उनका आत्मा देह बंधनसे मुक्त रहता है [नीलकण्ठ—इस प्रकार वासना आदिका निरोध करने वाले योगीकी कामादिकोंसे मलिन हुई बुद्धि शुद्ध होजाती है और इंगालकी समान उसकी सफेद राख ही बाकी रह जाती है, उसकी बुद्धि किससे शुद्ध होजाती है, इसका उत्तर देते हुए कहा है, कि— ज्ञानाग्निसे उसकी बुद्धि शुद्ध होजाती है। वह ज्ञान कौनसा है, इसको बताते हैं, कि—वह ज्ञान ब्रह्मपोक्त अर्थात् वेदप्रोक्त है उस ज्ञानसे जीव इस देहमें जीवित रहता हुआ भी सब बंधनोंसे विमुक्त होजाता है] ॥ ४३ ॥ वह ब्रह्माजी दूसरे लोकोंको भी रच सकते हैं और तेजोमूर्ति ब्रह्मा विद्याके द्वारा सारे संसारको पूर्णरीतिसे रच सकते हैं [नीलकण्ठ—योगी पुरुष परलोकको अर्थात् हार्दाकाशस्थ लोकको रच सकता है और सूक्ष्मभूतमय

रिवाविद्धमिह लोकं च संसृजेत् ॥ ४४ ॥ तिर्यग्योनौ गतांश्चैव कर्मभिर्निगपणोपमैः । तानपि प्रतिमुच्येत ब्रह्मयुक्तेन चेतसा ४५ अक्षरं च क्षरं चैव योगकर्णाभिविद्यते । न क्षरं विद्यते तत्र यद्भूतं कर्मभिध्रुवम् ॥ ४६ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

वैशम्पायन उवाच । पृथिव्यां यत् कृतं छिद्रं तपनेन विवर्धता।

शरीरवाला तेजो मूर्ति परिपक्व योगी तो स्वप्नाभिमानीकी समान व्यावहारिक लोकको भी विश्वामित्र आदिकी समान पूर्णरीतिसे रच सकता है । परन्तु शास्त्रान्तरके अनुसार जगद्व्यापारको छोड़ कर योगी पुरुषकी भौतिक सृष्टिको रचनेकी ही सामर्थ जाननी चाहिये] ॥४४॥ ब्रह्माजी अपने ब्रह्म युक्त तेजसे बेड़ीकी समान कर्मोंसे तिर्यक् योनिमें पड़े हुए जीवोंको भी छुड़ा सकते हैं [नील-कण्ठ--योगी पुरुष ब्रह्ममें लगे हुए चित्तके प्रभाववश बेड़ीकी समान कर्मोंके द्वारा तिर्यक् योनिमें पड़े हुए जीवोंका भी उद्धार कर सकता है] ॥ ४५ ॥ योग नाम वाला कर्म अक्षर-मोक्षको और क्षर-भोगको व्याप्त करके वर्तमान रहता है, तात्पर्य यह है, कि-योगमें ही सारा कर्मफल अन्तर्भूत है फिर शंका होती है, कि-क्या मोक्षमें भी क्षरका अन्वय है तब तो मुक्तिका निर्वि-शेषत्व जाता रहेगा, तो कहते हैं, कि-नहीं, जो ध्रुव ब्रह्म है, वह कर्मसे उपलक्षित क्षर नहीं है, तात्पर्य यह है कि-प्रारब्ध कर्मसे उपस्थित देहमें ही योगीका क्षरमें अन्वय रहता है, किन्तु कैवल्यावस्थामें नहीं रहता ४६ सोलहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १६॥

वैशम्पायनजीने कहा, कि-ऊपरको उठते हुए सूर्यने पृथिवी में जो छिद्र कर दिया था, उसमें स्वाभाविकरीतिसे मैनाकपर्वत को स्थापित कर दिया गया [नीलकण्ठ-एकादशे कर्मफलपरि-

तस्मिन्न्यस्तोऽथ मैनाकः स्वभावविहितोऽचलः ॥१॥ पर्वभिः पर्वतत्वं च लभते नाम संज्ञितम् । अचलादचलत्वं च स्वभावान्मेरुरेव सः ॥ २ ॥ तस्य पृष्ठे सुविस्तीर्णे नगस्य सुमहर्धिमान् । तस्मिंस्तु पुरुषो व्यक्तो वसति ज्योतिःसम्भवः ।विहितश्च स्वभावेन तेनैव परमात्मना ॥ ३ ॥ यत्तद्ब्रह्ममयं तेजो निहितं शिरसोंतरे । तस्य

च्छेदाय योगभूः । वर्णिताथान्तरप्राप्त्यै योगश्चोक्तो यथाविधि अब इस एकादश पुष्कराध्यायमें कर्मफलपरिच्छेदके लिये योगभूमिका वर्णन किया जाता है और उपरिवर्णित अन्तरकी प्राप्तिके लिये योगका भी वर्णन किया जाता है" योगकी उत्पत्तिमें प्रसंगवश अन्तराल योगको कह कर अब अध्यारोपका अनुसरण करके कहा है कि-पहिले जो पृथ्वीमें छिद्र होगया था,उसमें मेरुमूल रख दिया गया,'मीनं हिंसितं अकं दुःखं यैस्ते मीनाकाः नित्यसुखिनो देवास्तेषामयं मैनाकः-दुःखोंका नाश करने वाले मीनाक कहलाते हैं अर्थात् मीनाकों (नित्यसुखियों) की वस्तु मैनाक कहलाती है वह पर्वत मैनाक भी सलिल आदिकी समान अचल था,क्योंकि-चित्तवान् स्वभाव उसे परिवर्तित नहीं करसकता]१पर्वोंके कारण उसका पर्वत नाम पड़ गया है, अचल होनेसे उसका नाम अचल होगया है और वह स्वभावसे मेरु कहलाता है [नीलकण्ठ-इस प्रकार उसके निर्दुःखत्वको कह कर अब उसके सुखपदत्वको वर्णन करते हैं, कि-"पर्वाणि पूरयन्ति कामानीति चिन्तामणि-कामधेनुकल्पद्रुमादीनि विद्यन्तेऽस्मिन्निति पर्वतः चिन्तामणि काम-धेनु कल्पद्रुम आदि कामनाओंको पूर्ण करनेवाले पर्व उसमें हैं अतः वह पर्वत कहलाता है अर्थात् वह पङ्कज आदिकी समान योगरूढ़ है।और अचल होनेसे अचल कहलाता है,ऐसा होनेपर भी वह स्वभावसे अर्थात् कल्पनामात्र होनेसे मेरु ही है-फेंकने योग्य ही है]२उस पर्वतकी विस्तीर्णपृष्ठ पर ज्योतिः संभव व्यक्त पुरुष

ज्योतिर्मयं रूपं दीप्तं पुरुषविग्रहम् ॥ ४ ॥ वदनादभिनिष्क्रान्तं ज्वलन्तमिव तेजसा । चतुर्भिर्वदनैर्युक्तं चतुर्भिश्च द्विजोत्तमैः ॥५॥ वक्त्रं ब्रह्मसमुद्भूतं ब्रह्मा ब्राह्मणपुङ्गवः । तदेव तन्महाभूतं पुनर्भावत्वमागतम् ॥६॥ उद्धृता पृथिवी देवी पुरस्तात् सलिलाशयात् । ब्रह्मत्वं ब्रह्मणः स्थानाद्लोको लोककर्ता गतः ॥७॥ पदसन्धौ ब्रह्मलोकं शृङ्गं मेरोस्तदाभवत् । उच्छ्रितं योजनशतं सहस्रशतमेव च ॥८॥ एवमेव च विस्तारं चतुर्भिर्गुणितं गुणैः । अथवा नैव संख्यातुं शक्यं भूतेन केनचित् । समाः सहस्रं बहुभिरपि दिव्येन तेजसा ॥ ९ ॥ चतुर्भिः पार्श्वविस्तारैः शिलाभिरभि-

रहता है, परमात्मा स्वभावने ही उसको रचा है * शिरसोन्तरमें अर्थात् सहस्रारवेदान्तगर्भमें वा पुरुष सूक्तमें जिसका वर्णन किया है, वह ब्रह्ममय ज्योति है, उसका पुरुषविग्रह ज्योतिर्मय है और रूप प्रदीप्त है ॥४॥ उस ज्योतिर्मय पुरुषके मुखसे चार मुख वाले ब्रह्माजी चार द्विजोत्तमोंके साथ प्रकट हुए (उन चार ब्राह्मणोंका वर्णन मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च० इत्यादि श्रुतिमें है) ॥५॥ उसका मुख वेद है वह निःश्वासरूपमें प्रकट हुआ है ब्रह्मा उस वेदके धारक हैं, वह ब्रह्मसे उत्पन्न हुए अग्नि आदिमें मुख्य हैं, इस प्रकार वह महाभूत फिर भावत्वको प्राप्त होगया है ॥ ६ ॥ उस महाभूतने जलके आशयमेंसे पहिले पृथ्वी देवीका उद्धार किया था, वही ब्रह्माजीके स्थान मेरुपृष्ठ पर जाकर ब्रह्मत्वको अर्थात् चतुर्मुखत्वको प्राप्त होगया था, इस प्रकार देखनेमें न आने वाला भी पृथ्वीका उद्धारक व्यक्त होगया है ॥ ७ ॥ उस महाभूतकी पदसंधिमें मेरुका शृङ्ग ब्रह्मलोक हुआ (अर्थात् तहाँ पर ब्रह्मरूप पर वस्तुका साक्षात्कार किया जा सकता है) वह चार लाख चार सौ कोस ऊंचा है ॥८॥ और उसका विस्तार इस से चौगना है, अथवा कोई प्राणी सहस्रों वर्षोंमें भी उसको नाप

संवृतैः । नगस्य यस्य राजेन्द्र विस्तारैः शतयोजनैः॥१०॥ कोटि-कोटीशतस्पुत्रैर्युक्तं ब्रह्मवादिभिः । योगयुक्तैः सदा सिद्धैर्नित्यं ब्रह्मपरायणैः ॥११॥मरुद्भिः सह देवेन्द्रै रुद्रैर्वसुभिरेव च । आदित्यैर्विश्वसहितै रक्ष वसुधाधिपान् ॥ १२ ॥ रक्षा पृथिवीं चैव भगवान् विष्णुना सह । विवस्वद्वरुणाभ्यां च संघातं गमितां नृप ॥ १३ ॥ तेन ब्राह्मेण वपुषा ब्रह्मप्राप्तेन भारत । यत्तद्विष्णु-

नहीं सकता, वह पर्वत दिव्य तेजसे युक्त है ॥९॥ हे राजेन्द्र ! उस पर्वतकी सौ २ योजन विस्तृत चार शिलायें हैं तहाँ पर भगवान् विष्णुके साथ ब्रह्माजी पृथ्वीकी और राजाओंकी रक्षा करते रहते हैं । उनके साथमें अनेक सर्वदा ब्रह्ममें परायण रहते वाले योगयुक्त करोड़ों पुत्र रहते हैं और मरुत् देवता रुद्र वसु आदित्य और विश्वेदेवा भी रहते हैं विवस्वान् और वरुण भी रहते हैं, नीलकण्ठ वह पर्वत धर्म ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्य नामक चार शिलाओंसे घिरा हुआ है,मायाके अनन्त होनेसे ब्रह्मवेत्ता उसका परिमाण नहीं कर सकते । भगवान् विष्णुके साथ ब्रह्माजीके शरीरसे पृथिवी आदिकी रक्षा करते हैं अर्थात् शुद्धचिदात्मा मायोपाधिरूपसे और मेरुके स्वामी ब्रह्माजीके रूपसे भोगमोक्ष-प्रद कर्म और ज्ञानका उपदेश देकर शरीराभिमानी जीवोंकी और शरीरकी भी रक्षा करता है । वह कैसी पृथिवीकी रक्षा करते हैं, इसका उत्तर यह है,कि मरुत् आदि अवयवदेवताओंसे और विवस्वान् तथा वरुणसे अर्थात् उनके देवता तेज और जलसे सङ्घातको प्राप्त हुई पृथ्वीकी रक्षा करते हैं और योगपक्षमें लिङ्गा-त्मविष्ठा तेजोन्नात्मिका पृथिवी (शरीर) की रक्षा करते हैं, यह अर्थ करना चाहिये।वह निर्विशेषरूप हुए ब्रह्मशरीरसे इन सबकी रक्षा करता है] ॥ १०–१३ ॥ वह अपने ब्रह्मके द्वारा प्राप्त हुए अत एव ब्राह्मण शरीरसे इस सबकी रक्षा करते हैं, वह ब्रह्ममय

मयं तेजः सर्वत्र समतां गतम् ॥ १४ ॥ यत्तद्ब्रह्मेति वै प्रोक्तं ब्राह्मणैर्वेदपारगैः । नियमैर्बहुभिः प्राप्तैः सत्यव्रतपरायणैः ॥ १५ ॥ एवमेते त्रयो लोका ब्राह्मेऽहनि समाहिताः । अहनि ब्रह्म चाव्यक्तं व्यक्तं प्राणे प्रतिष्ठितम् ॥ १६ ॥ ब्रह्मणो नियतं कर्म प्रभावेन प्रचोदितम् । प्रवर्तमानं भावेन शश्वदुच्छलवादिनाम् ॥ १७ ॥ एतद्धितमिति प्रोक्तं ब्राह्मणैर्वेदपारगैः । यदेकं ब्रह्मणः पादं दिष्टत्वं

तेज (ब्राह्मण शरीर) सर्वत्र सम है ॥ १४ ॥ वेदके पारगामी ब्राह्मण जिसको ब्रह्म कहते हैं और सत्यव्रतमें परायण अनेक नियमोंके पालक ब्राह्मण जिसको ब्रह्म कहते हैं वह उनका ब्राह्मणशरीर है ॥ १५ ॥ इस प्रकार ये तीनों लोक ब्रह्मदिनमें रहते दिनमें अव्यक्त ब्रह्म रहता है और व्यक्त प्राणमें प्रतिष्ठित है [नीलकण्ठ इस प्रकार अन्योन्याश्रयसे ये तीनों दीखने वाले पृथ्वी आदि विष्णुशब्दसे कहे जानेवाले विराट् और सूत्रान्तर्यामी ब्राह्मदिनमें-ब्रह्मप्रापक योगयज्ञमें समाहित रहते हैं अर्थात् तहाँ रह कर ही इनका अनुभव किया जासकता है, उस दिनमें अर्थात् ज्ञानमें अव्यक्त ब्रह्म प्रतिष्ठित रहता है, वह योगियोंके अनुभवमें आता है, वही प्राण नामकी उपाधिमें भी अहम् ऐसे जीवरूपसे व्यक्त होरहा है, अर्थात् शुद्ध ब्रह्मही व्यक्तरूपसे विचरण कर रहा है] १६ अब इसके मुक्तिके उपायका उपदेश देते हुए शेष अध्यायमें इस के रक्षणको ही कहते हैं, कि-ब्रह्म (ईश्वर) के प्रभाव (रूप-निःश्वास) वेदसे प्रेरित नित्यकर्म ही जीवका रक्षक है, क्योंकि-वेदोक्त कर्मोंको न करनेसे प्रत्यवाय लगता है, शुद्ध चित्तवाले पुरुष भी इसको कहते हैं] ॥ १७ ॥ ब्रह्मका जो एक पाद दिष्टत्वको प्राप्त होगया है उसको वेद पारगामी ब्राह्मण हितकारक कहते हैं परन्तु वह ब्रह्मका एक पाद है [नीलकण्ठ-आसक्तिका निषेध करनेके लिए कर्मफलकी इयत्ताको कहते हैं, जो

गमितं पदम् ॥१८॥ बहुत्वाद्धि भावानां विश्वशब्दः प्रयुज्यते । ब्राह्मणैर्ब्रह्मभूतात्मा सत्यव्रतपरायणैः ॥ १९ ॥ विश्वरूपं मनोरूपं बुद्धिरूपं च मानवन् । एवं द्वन्द्वं स भगवान् प्रथमं मिथुनं सृजत् ॥ २० ॥ स एव भगवान् विश्वे. देव्या सह सनातनः । विधाय विपुलान् भोगान् ब्रह्मा चरति सानुगः ॥ २१ ॥ स एष

पद दिष्टत्वको प्राप्त हुआ है अर्थात् कर्मज सुकृतफलको प्राप्त हो गया है उसको "पादोऽस्य विश्व भूतानि" आदि श्रुति ब्रह्मका पाद (लेशमात्र) कहते हैं] ॥१८॥ वह भूतात्मा सत्यव्रतपरायण ब्राह्मणोंके द्वारा उनके भावोंके अनेक होनेके कारण विश्व शब्दसे कहा जाता है [नीलकण्ठ—विश्व जिसका पाद है वह ब्रह्म भूतात्मा नित्य सिद्ध आत्मा है, वह कर्मप्राप्य नहीं है, ऐसा होने पर भी वह ब्राह्मणोंकी चित्तवृत्तियोंके नानारूप होनेसे ब्राह्मणोंके द्वारा जिसमें इन्द्र मित्र वरुण आदि शब्द विश्वत्वसे प्रतिष्ठित हैं ऐसे विश्व शब्दसे कहा जाता है यही श्रुति में कहा है कि—' तद्यदिदमाहुरमुं यजेत्येतस्यैव सा विसृष्टिः एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' अतः फलके तुच्छ होनेसे मुमुक्षुओंको निष्काम कर्मसे ही परमात्माकी आराधना करनी चाहिये] १९ विश्वरूप मनोरूप बुद्धिरूपको जान कर भगवानने पहिले मिथुन द्वन्द्वको रचा [नीलकण्ठ—इस प्रकार यष्टव्य देवतारूप ब्रह्म ही है, इस बातको कह कर यजमानरूप भी वही है, इस बातका दो श्लोकोंमें वर्णन करते हैं, कि—(विश्वरूप) स्थूल और (मनोरूप) सूक्ष्म बुद्धिमात्ररूप है, इस प्रकार जान कर उन्होंने मिथुनको रचा] ॥ २० ॥ वह सनातन भगवान् ब्रह्मा अनेक प्रकारके भोगोंको रच कर देवीके साथ और अपने अनुगामियोंके साथ विचरण करते रहते हैं [नीलकण्ठ—जो मिथुन रचा है, वह भी नटकी समान उसका ही रूपान्तर है, यही बात कही है, कि—वह

भगवान् ब्रह्मा नित्यं ब्रह्मविदां वरः । निर्वाणपदगंतॄणामकिंचन- पथैषिणाम् ॥ २२ ॥ सोमात् सोमः समुत्पन्नो धारासलिलविग्रहात् । ययाभिषिक्तो भूतानामाधिपत्ये महेश्वरः ॥ २३ ॥ अभिषिच्य च भूतेशं कृत्वा कर्म स्वभावतः । नदति स्म तदा नादं तेन सा प्रोच्यते नदी ॥ २४ ॥ सा ब्रह्मलोकं संभाव्यमभिभूय सहस्रधा । गां गता गगनाद्देवी सप्तधा प्रससार च २५ सहस्रधा च राजेन्द्र बहुधा च पुनः पुनः । इमं लोकगमु चैव भावगन्

वेदसे भोगके लिये कर्मोंको प्रकाशित करके अपने अनुग कश्यप आदिके साथ विचरण करते हैं] ॥ २१ ॥ जो सर्वदा अकिञ्चन पदको चाहने वाले निर्वाणपदगामी ब्रह्मवेत्ताओंका श्रेष्ठ ब्रह्म है, वह भी यही है (अर्थात् हविः स्वरूप भी ब्रह्म ही है) ॥२२॥ स्वर्गसे गिरती हुई जलकी धाराके रूपमें सोम (ब्रह्मविद्यासंयुक्त सर्वदा अलुप्त ज्ञान शक्ति वाले परमेश्वर) से सोम (औषधियों का स्वामी चन्द्रमा) उत्पन्न हुआ उस जलधारासे महेश्वरका प्राणियोंके अधिपतिपन पर अभिषेक किया गया है ॥ २३ ॥ महादेवके स्वाभाविक कर्म भूताधिपत्यप्रधानरूपको करके अर्थात् महादेवजीका अभिषेक करके वह जलधारा वारंवार नदन करने लगी, इससे वह नदी कहलाती है ॥ २४ ॥ वह (ब्रह्मविद्यात्मिका जलधारा)ब्रह्मलोकको महत्व दिला कर (मार्गरोधक पर्वतोंको) भेदती हुई अर्थात् उनका तिरस्कार करती हुई (गां गता) पृथिवी पर आई है (अतः वह गङ्गा कहलाती है) और सात धारोंसे बह रही है (वह गोदावरीके रूपमें समुद्रसंगममें सातरूपमें है, यह प्रसिद्ध ही है) ॥ २५ ॥ हे राजेन्द्र ! सहस्रधारोंसे और अनेक प्रकारसे यहाँ पर प्रसिद्ध है (अर्थात् वह जान्हवीरूपसे सहस्र धारा वाली है, यह बात प्रसिद्ध ही है, बहुधा विभूतिभेदसे गङ्गा भगवती नदी आदि नाम तीर्थोंके महात्म्यके

त्तरसम्भवम् ॥ २६ ॥ ततो भूतानि रोहन्ति महाभूतफलानि च । ततः सर्वे क्रियारम्भाः प्रवर्तन्ते मनीषिणाम् ॥२७॥ चतुर्भिर्वेदनैस्तस्य मुखपद्माद्विनिःसृताः । तदान्तरमयी सिद्धिर्दिश त्वं समुपागता ॥२८॥ तस्य ज्ञानमयं पुण्यं चतुष्पादं सनातनम् । पतित्वेनाभवद्देवो ब्रह्मा चात्र पितामहः ॥२९॥ पादा धर्मस्य चत्वारो

प्रसंगसे सुननेमें आते हैं) (इस प्रकार ओषधियोंके स्वामी चंद्रमाकी उत्पत्तिके प्रसङ्गसे गङ्गाको, उसके कारण ईश्वरकी तादात्म्य बता कर चन्द्रमाकी उत्पत्तिके प्रयोजनको कहते हैं, कि परलोकको पुष्ट करके अविद्यासे उत्पन्न हुए इस) त्तरसम्भव अर्थात् अविद्यासे उत्पन्न हुए इस लोकको और "प्रथमां पिबते वह्निर्द्वितीयां पिबते रविः" इत्यादि शास्त्रोक्त रीतिसे, परलोकको बढ़ाता रहता है ॥२६॥ (इस लोकका सम्बर्धन होने पर उद्भूत हुए बीजोंके द्वारा जरायुज) प्राणी बढ़ते रहते हैं, ये सब महाभूतोंके फल हैं (पृथिवी जल और तेज ये सब महाभूत हैं उनके फल तेज और जलात्मक व्रीहि आदिक हैं, वे ही सबके आत्मा हैं) तदनन्तर कामको जीतने वाले कामजेताओंकी सब क्रियाएँ (व्रीहि आदि और मनुष्य आदिके द्वारा योग्यरीतिसे) चलती रहती हैं॥ २७॥ उसके चार मुखोंसे निकली हुई अन्तरगगी सिद्धि उपदेश बन गई है (अर्थात् मन्त्र भी ब्रह्म ही हैं) ॥ २८ ॥ (अब वह दिखाते हैं, कि ऋत्विक् और यजमान भी ब्रह्म ही हैं) ज्ञानमय (चिन्मय) पुण्य (पुण्यकारण यज्ञ) चतुष्पाद (चार पाद वाला) है (अर्थात् ऋत्विज ब्रह्मा उद्गाता होता और अध्वर्यु यह चार पाद यज्ञके हैं ऐसे) सनातन यज्ञका ब्रह्माजीको अधिपति बनाया गया है अर्थात् कर्मरूपका अधिष्ठाता बनाया गया है [नीलकण्ठ–यह सब पितामह अर्थात् शुद्ध ब्रह्म ही है] ॥ २९ ॥ (धर्मके पादरूप चारों आश्रम भी ब्रह्म ही हैं, इस

येनेदं धार्यते जगत् । ब्रह्मचर्येण व्यक्तेन गृहस्थेन च पावने ३० गुरुभावेन वाक्येन गुह्यगामिनगामिना । इत्येते धर्मपादाः स्युः स्वर्गहेतोः प्रचोदिताः ॥ ३१ ॥ न्यायाद्धर्मेण शुद्धेन सोमो वर्धति मण्डले । ब्रह्मणो ब्रह्मचरणाद्वेदा वर्तन्ति शाश्वताः ॥ ३२ ॥

बातको कहते हैं; कि–) धर्मके चार पाद हैं वे धर्मको धारण किये हुए हैं, एक स्वाध्यायरूप व्यक्त पाद है, और पावन घर में स्थित गृहस्थ पाद है ॥ ३० ॥ और गुरुभाव अर्थात् तपोभार-रूप गौरव वाला तीसरा पाद है और आत्मतत्त्वप्रतिपादक तत्त्वमस्यादि रूप(संन्यास)धर्मका चौथा पाद है, ये स्वर्गकी प्रेरणा करने वाले धर्मके पाद हैं मूलमें जो गुह्यगामिनगामिना है,उसका यह अर्थ भी होसकता है, कि–आत्मतत्त्वप्रतिपादक नग(अचल: कूटस्थ ब्रह्मके स्थान) अथवा साधनके स्थान मेरुपृष्ठ पर पहुँचना धर्मका चौथा पाद है] ॥ ३१ ॥ चन्द्रमा शुद्धधर्मसे न्यायपूर्वक अपने मण्डलमें बढ़ता रहता है और वेदोक्त ब्रह्मचरणसे शाश्वत वेद बढ़ते रहते हैं [नीलकण्ठ–इस प्रकार यष्टव्य देवतासे लेकर चारों आश्रमों तकको ब्रह्मत्व भावना करनेके लिए कही,अब इस चौथे आश्रमके योग्य योगकी स्तुति करनेकी इच्छासे चौथे आश्रम के धर्मकी ही दो श्लोकोंसे स्तुति करते हैं;कि-वेदान्त और न्यायसे समर्थित श्रवण मननात्मक शुद्ध योगधर्मकी प्राप्ति होती है, उससे (मण्डल अर्थात्) ब्रह्माण्डगोलकमें (सोम अर्थात्) चन्द्राधिष्ठेय मन बढ़ा करता है अर्थात् आध्यात्मिक परिच्छेदाभिमानको त्याग कर समष्ट्यभिमानको धारण करता है इसप्रकार प्रमाणभूत वेदसे ब्रह्मचरणरूप योगके द्वारा, शाश्वत वेद भी बाधित होजाते हैं "यत्र पिता पितेत्यादिलोका अलोका वेदा अवेदाः" इस श्रुतिके अनुसार वेदका बोध होनेसे पहिले ही उनका प्रामाण्य रहता है और बोध होने पर तो बाध होजाता है] ॥ ३२ ॥ पर्वतके

गृहस्थानभिवीक्ष्येन तृप्यन्ति पितरस्तथा । ऋषयोपि च धर्मेण नगस्य शिरसि स्थिताः॥ ३३॥ नगस्य तस्य संपश्य मेरोः शिखरमुत्तमम् । पद्भ्यां सम्पीड्य वृषणावृषिभिस्तैर्विचार्यते ३४ ग्रीवां

शिखर पर विराजमान ऋषि और पितर भी योग धर्मका पालन करने वाले गृहस्थको देख कर तृप्त होते हैं [नीलकण्ठ-इस बात से यह सूचित होता है, कि-गृहस्थ आदिका भी योगधर्ममें अधिकार है । स्मृतिमें भी लिखा है; कि-"न्यायागतधनस्तत्त्वज्ञाननिष्ठोऽतिथिप्रियः । श्राद्धकृत् सत्यवादी च गृहस्थोऽपि विमुच्यते" अर्थात् न्याय पूर्वक धनको उपार्जित करने वाला तत्त्वज्ञानरूप योगमें निष्ठा रखने वाला अतिथियोंको प्रिय समझने वाला श्राद्ध करने वाला और सत्यभाषण करने वाले गृहस्थ भी मुक्त होजाता है" इस प्रकार प्रतीत होता है, कि-सब आश्रमोंमें ब्रह्म की जिज्ञासा करनी चाहिये उसको देखना चाहिये सुनना चाहिये और मनन करना चाहिये] ॥ ३३ ॥ ऋषि मेरुपर्वतके उत्तम शिखरको देखकर अपने वृषणोंको पीड़ितकर सिद्धासनसे उसका विचार किया करते हैं [नीलकण्ठ-इस प्रकार अपने धर्मका अनुष्ठान करने वाले यतिके और गृहस्थके अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह नामक यम, तथा शौच सन्तोष तपः स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान नामवाले नियम स्वभावसिद्ध होते हैं, इस प्रकार उनको कहकर आसन आदिक योगके अङ्गों को कहना चाहने वाले व्यासजी कहते हैं, कि-पहले मेरु शिखर नाम वाले ब्रह्मलोकको ही जीतना चाहिये क्रममुक्तिका स्थान होनेसे वह उत्तम है क्योंकि-ब्रह्मचर्य आदि आश्रमधर्मसंपन्न ऋषि वृषणोंको पैरोंसे पीड़ित करके अर्थात् सिद्धासनसे उसका विचार किया करते हैं । सिद्धासनका लक्षण इस प्रकार है, कि-"मेढ्रादुपरि विन्यस्य सव्यं गुल्फं तथोपरि । गुल्फान्तरं च

निगृह्य पृष्ठं च विनाम्य प्रहसन्निव । नाभिदेशे करौ न्यस्य सर्वतोङ्गानि संक्षिपन् ॥ ३५॥ मूर्ध्नि ब्रह्म समुत्क्षिप्य मनसापि पितामहः । असृजन्मनसा विष्णुर्योगाद्योगेश्वरस्य च ॥ ३६ ॥ व्यक्तिरिक्तेन्द्रियो विष्णुर्विभाति ह्यमितोद्धृतः । तेजोमूर्तिपरो

विन्यस्य सिद्धासनमिदं भवेत्")] ३४ पितामहने अपनी ग्रीवाको निग्रह करके और पीठको अकड़ाकर नाभिके सामने दोनों हाथोंको रख कर और सब अङ्गोंको नियममें रखकर मस्तकमें ब्रह्मको स्थापित कर योगेश्वर योगसे मनसे विष्णुको रचा [नीलकण्ठ ग्रीवाका निग्रह करके अर्थात् हँसली पर ठोडीको लगा, पीठको अकड़ाकर अर्थात् वक्षःस्थल जिस प्रकार थोड़ा ऊँचा होजाए तैसा करके, और हँसकर अर्थात् दाँतोंसे दाँतोंका स्पर्श न हो इसप्रकार और नाभिके सामने दोनों हाथोंको रखकर, बाएँ हाथके ऊपर दाहिना हाथ (अञ्जलिमुद्रा) रखकर सब अङ्गोंको नियममें रखे । (आसनजय करनेवालेको परकृतिस्वरूपार्थवाद मुखसे सफल प्राणायामको कहते हैं, कि) योगेश्वर योगसे पितामहने मनके द्वारा विष्णुको रचा उन्होंने किस प्रकार विष्णुको रचा इस बातको दिखाते हैं कि—) उन्होंने मनके द्वारा मस्तकमें ब्रह्माको स्थापित करके विष्णुको रचा । मनका रोध ही योग है और वह प्राणोंके रोकनेके अधीन है प्राणरोध योगेश्वर है, उस योगके अभ्याससे अधिकारी (पितामह) ने मनःप्रधान प्राणके द्वारा ब्रह्मस्वरूप प्राणोंपाधि जीवको अपने मस्तकमें अर्थात् भौं और नाककी सन्धिके बीचमें लेजाकर मनसे विष्णुको रचा अर्थात् संकल्पके द्वारा विश्वरूपको रचा । इसप्रकार यह सूचित किया है, कि उक्त रीतिसे भौं और नेत्रकी संधिके बीचमें जब पहुँचता है तब ऐश्वर्य प्रकट होता है अतः प्राणायाम अवश्य करना चाहिये] ॥३५॥३६॥

देवो नभसींदुरिवोदितः ॥ ३७ ॥ रराज ब्रह्मयोगेन सहस्रांशु-
रिवापरः । विराजन्नभसो मध्ये प्रभाभिरतुलं प्रभुम् ॥ ३८ ॥

विषयोंसे निवृत्त इन्द्रियों वाले विष्णु बिम्बसे बिम्बकी समान प्रकट होगए वह तेजकी मूर्तिको धारण करने वाले देव आकाशमें उदित हुए चन्द्रमाकी समान प्रतीत होने लगे [नीलकण्ठ-प्रत्याहारके माहात्म्यका वर्णन करते हैं कि-जिसकी इन्द्रिये विषयोंसे निवृत्त होगई हैं ऐसा योगी अर्थात् प्रत्याहार करनेवाला योगी समीपके शब्दादिका ग्रहण न करता हुआ पूर्णरूपसे परिच्छेदाभिमानकी निवृत्ति होने पर विष्णु होजाता है अर्थात् व्यापक होजाता है, यहाँ यह क्रम समझना चाहिये कि-जिस प्रकार घटके भीतर रहने वाली दीपककी प्रभा घटमात्री होती है वही घटके छिद्रमेंसे बाहर निकलने पर महलके भीतर रहने वाले थोड़े से स्थानमें व्याप्त होजाती है, पूर्णरूपसे घटसे बाहर निकलने पर भवनके सारे भीतरी भागको व्याप्त कर लेती है, इसी प्रकार जीव चैतन्य देहके भीतर रहता हुआ उसको ही व्याप्त करता है और इन्द्रियके द्वारा बाहर आने पर उस २ विषयको व्याप्त करता है और सर्वात्मरूपसे देहसे बाहर निकलने पर दृश्यको व्याप्त करलेता है इसी लिये उस अवस्थामें योगी सर्वज्ञ होजाते हैं यह स्पष्ट ही है । वह तेजोमूर्ति चैतन्यज्योतिः मूषकसे खींचकर लाई हुई प्रतिमाकी समान तत्स्वरूपमें ही आविर्भूत होजाती है] ॥ ३७ ॥ आकाशके मध्यमें शोभा पाने वाले दूसरे सूर्यकी समान वह प्रभु ब्रह्मयोगके द्वारा हार्दाकाशमें विराजने लगे [नीलकण्ठ-अब उस तेजोमूर्ति चैतन्यज्योतिकी ही स्तुति करते हैं, कि-वह प्रकाशित होते हुए हार्दाकाशमें चैतन्यज्योति योगरूपी किरणोंसे प्रकाशित होने लगे अर्थात् निर्विशेष चिन्मात्र भी प्रत्याहारके बलसे ही जाननेमें आता है] ॥ ३८ ॥

नोपलभ्यति मूढानां प्रत्यक्षं ब्रह्म शाश्वतम् । ललाटमध्ये तिष्ठन्तं द्विधाभूतं क्रियां प्रति ॥ ३९ ॥ ज्योतिश्चक्षुषि सम्बद्धं बिम्बं भास्करसोमयोः बुद्ध्या पूर्वन्तु पश्यन्ति अध्यात्मविषये रताः ४० ब्राह्मणा वेदविद्वांसः सत्यव्रतपरायणाः । नेतरे जातु पश्यन्ति

ललाटके बीचमें विराजमान विष्णुकी नियमन क्रियाको लक्ष्य करके दो प्रकारका हुआ शाश्वत प्रत्यक्ष ब्रह्म मूढोंकी समझमें नहीं आता है [नीलकण्ठ-देशबन्धका नाम चित्तधारणा है उस धारणाको कहते हैं, कि-ललाटके मध्यमें अर्थात् भौं और नाक की सन्धिके बीचमें विराजमान विष्णुकी नियमन क्रियाको लक्ष्यमें रखकर नियम्य और नियामक रूपके कारण दो प्रकारसे हुए शाश्वत प्रत्यक्ष ब्रह्मको मूढ नहीं पाते हैं] ॥ ३९ ॥ वह चन्द्रमा और सूर्यका बिम्बरूप ज्योति नेत्रमें रहता है और अध्यात्म विषय में लीन रहने वाले उसको बुद्धिसे देखते हैं [नीलकण्ठ-धारणा के प्रदेशको कह कर अब विषयको कहते हैं कि-सूर्य और चन्द्रमा के अर्थात् उनके देवता इड़ा और पिंगलाके मध्यमें बिम्बरूप ज्योति धारणाका विषय है, वह बिम्ब नेत्रोंसे सम्बन्ध रखता है नेत्रोंमें रूपको प्रकाशित करनेमें समर्थ जो ज्योति रहती है भौं और नाकके बीचमें विराजमान ऐसी चिज्ज्योतिमें चित्तको स्थापित करना चाहिये । पहले अध्यात्म विषयमें प्रेम करने पर बुद्धिमान् पुरुष फिर बुद्धिके द्वारा उस विषयको अपने शरीरमें देखते हैं, और फिर तहाँ पर रत रह कर पुण्यवश उसका ही चिन्तवन करते हैं । इस प्रकार यहाँ पर "प्रत्ययैकतानता-ध्यानम् विश्वास्य वस्तुमें एकतान होजानेका नाम ध्यान है" इस प्रकार ध्यानका लक्षण कह दिया] ॥ ४० ॥ सत्यव्रतमें परायण रहने वाले वेदवेत्ता ब्राह्मण उसको देखते हैं दूसरे पुरुष तो अध्यात्मशास्त्रको भी नहीं जान सकते (स्वरूपका बोध होना तो दूरकी बात

अध्यात्म्यं नावबुध्यते ॥ ४१ ॥ हिंसायोगैरयोगात्मा सर्वेषाम्-
चरेन्नृप । भूतयो भुवि भूतेशो मोहमाप्तेन चेतसा ॥४२॥कर्मभिः
कुत्सितैरन्यैः सर्वप्राणिवधैषिणाम् । नराणां योगमाधाय स्वेषु
मात्रेषु भारत ॥ ४३ ॥ समाहितमना ब्रह्मन् मोक्षमाप्तेन हेतुना ।
चन्द्रमण्डलसंस्थानाज्ज्योतिश्चान्द्रं महत्तदा ॥ ४४ ॥ प्रविश्य
हृदयं क्षिप्रं गायत्र्या नयनान्तरे । गर्भस्य सम्भवो यश्च चतुर्थो

है) ॥ ४१ ॥ (दूसरे कौन पुरुष हैं उनका दो श्लोकोंमें वर्णन
करते हैं, कि—) जो पृथ्वीमें भूतेश होता है अर्थात् पृथिवीमें सब
प्राणियों पर निग्रह अनुग्रह करमें समर्थ होता है वह यदि ऐश्वर्य-
वश मोहको प्राप्त होकर अपने चित्तको योगमें नहीं लगाता है तो
स्वरूपानन्दसे च्युतमनवाले उस योगीको भूति अर्थात् ऐश्वर्य
सब प्राणियोंका भक्षण करने वाले हिंसायोगोंसे उसका तिरस्कार
करते हैं ॥४२ हे भारत ! विभूतियें सब प्राणियोंका वध चाहने
वाले मनुष्योंके कुत्सित कर्मोंके द्वारा विनष्ट होनेवाले भोग्य विषयों
में योगको लगा कर योगीका संहार कर डालती हैं [नीलकण्ठ-
विभूतियें योगीको नष्ट कर डालती हैं इसका वर्णन करते हैं, कि-
भोग्य विषयोंमें मनको लगा कर योगीको भ्रष्ट कर देती हैं
(आपस्तम्बने लिखा है, कि—"हृष्टो दृप्यति दृप्तो धर्ममतिक्रामति-
सिद्धियोंके द्वारा हर्षमें भरा हुआ पुरुष गर्व करने लगता है
और घमण्डी पुरुष योगधर्मका अतिक्रमण करने लगता है, अतः
योगकी विभूतियोंसे सन्तोष नहीं मानना चाहिये किन्तु, उनको
विघ्न समझ कर त्याग ही देना चाहिये] ॥ ४३ ॥ (योगमें
ऐसे २ विघ्न हैं इस लिये मोक्ष प्राप्त करनेके लिये प्रकाशित
तेजश्चैतन्यरूप हृदयस्थानमें प्रवेश करके मनःकल्पित ईशादिरूप
को त्याग कर मनको ब्रह्ममें लगावें ॥ ४४ ॥ जो गर्भका संभव
है अर्थात् अव्यक्तकी उत्पत्तिका स्थान है और जो अकार उकार

पुरुषात्मकः ॥ ४५ ॥ब्रह्मतेजोमयो शुक्रः शाश्वतोऽथ ध्रुवोऽव्ययः । न चेन्द्रियगुणैर्युक्तो युक्तस्तेजोगुणेन च ॥ ४६ ॥ चन्द्रांशुविमलप्रख्यो भ्राजिष्णुर्वर्णसंस्थितः।नेत्राभ्यां जनयद्देवो ऋग्वेदं यजुषा

मकार और अर्धमात्रारूप मकारका पुरुषात्मक जीव है वह शीघ्र ही हृदयके भीतर प्रवेश करके गायत्रीका चिन्तवन करे [नीलकण्ठ-शीघ्र ही विघ्न होजावेंगे ऐसी शंकासे ऐश्वर्यका स्वाद न लेता हुआ गायत्रीका उच्चारण करे अर्थात् "गायत्री वा इदं सर्वं भूतम्" इस प्रकार श्रुतिप्रसिद्ध गायत्री नाम वाले सगुण ब्रह्मको नयनकी समान प्रकाशित करने वाली शुद्ध ज्योति है उसके बीच में बैठे उसका आन्तरिक स्वरूप अव्यक्त सन्मय चतुर्थी पुरुषात्मक है] । ४५ ॥ वह ब्रह्म तेजोमय है शुक्र है शाश्वत है ध्रुव अव्यय है, वह इन्द्रियोंके गुणोंसे युक्त नहीं है किन्तु तेजके गुणों से युक्त है चद्रमाकी किरणोंकी समान वह दमकता है और वर्णों में स्थित रहता है उस देवने अपने नेत्रोंसे ऋग्वेद और यजुर्वेद को उत्पन्न किया है [नीलकण्ठ-अब चार प्रकारके बने हुये पुरुषकी स्तुति करते हैं कि-वह उत्कृष्ट चैतन्यमय रूप वाला है, अव्यक्त है अर्थात् इन्द्रिय आदिका अगोचर है; शाश्वत है अर्थात् नित्य है, ध्रुव अर्थात् कूटस्थ है अत एव अव्यय अर्थात् अपचय शून्य है,इन्द्रियोंसे ग्रहण किये जानेवाले रूप आदि गुणोंसे युक्त नहीं है, और तेजोगुणसे युक्त है अर्थात् मनके गुण सुख दुःख आदिसे युक्त है क्योंकि मनमें तादात्म्यका अध्यास होता है,चन्द्रमा की समान आह्लादक है, भ्राजिष्णु है, अर्थात् सद्रूपसे स्फुरता रहता है और लाल श्वेत और काले यह तेज जल और अन्न जब देहभावमें परिणत हो जाते हैं तब यह इन वर्णोंमें आविर्भूत होता है, अब इसकी चारमूर्तियोंका वर्णन करते हैं कि-देवने अपने नेत्रोंसे ऋग्वेद और यजुर्वेदको उत्पन्न किया अर्थात् त्रिपुटी

सह ॥ ४७ ॥ सामवेदं च जिह्वाग्रादथर्वाणं च मूर्धतः । जात-
मात्रास्तु ते वेदाः क्षेत्रं विंदन्ति तत्त्वतः ॥४८॥ तेन वेदत्वमापन्ना
यस्माद्विंदन्ति तत्पदम् । ते सृजन्ति तदा वेदा ब्रह्मपूर्वं सनात-
नम् ॥ ४९ ॥ पुरुषं दिव्यरूपाभं स्वैः स्वैर्भावैर्मनोभवैः । अथ-
र्वणस्तु यो योगः शीर्षं यज्ञस्य तत् स्मृतम् ॥ ५० ॥ ग्रीवा बाहु-

रूप दृश्य होनेके कारण विश्व और तैजस जिस प्रकार नेत्रोंसे उत्पन्न होते हैं तिस प्रकार उत्पन्न हुए] ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ देव ने सामवेदको अपने जिह्वाके अग्रभागसे उत्पन्न किया और अथर्व वेदको मस्तकसे उत्पन्न किया वे वेद उत्पन्न होते ही अपने क्षेत्र को पा जाते हैं [नीलकण्ठ–सामवेद अर्थात् प्राज्ञ शब्दमात्रसे ही जाननेमें आनेके कारण जिह्वासे उत्पन्न हुआ, इनसे विलक्षण चौथा अन्तर्यामी ईश्वर एकमात्र योगसे ही जाननेमें आनेके और सांसारिक दृष्टिवालोंका अगोचर होनेके कारण तथा शुद्ध सत्त्वमय होनेके कारण मस्तकसे उत्पन्न हुआ, यह प्रकट होते ही अपने अपने क्षेत्रको पाते हैं अर्थात् अपनी २ उपाधिको पाते हैं] ॥ ४८ ॥ यह तत्पद को पाते हैं इस लिये यह वेद कहलाते हैं वे वेद सनातनब्रह्मको रचते हैं ॥ ४९ वे अपने मनमें उत्पन्न हुए भावोंसे दिव्यरूप और आभा वाले पुरुषको रचते हैं. जो अथर्वका योग है वह यज्ञका शिर कहलाता है और यज्ञकी ग्रीवा और भुजाओंका भीतरी भाग ऋग्वेद है. और पार्श्व तथा हृदयभाग सामवेद है [नीलकण्ठ–यह चारों शुद्धकी उपाधिको प्राप्त होकर अपने २ गुणोंसे विशिष्ट विशिष्टरूपवाले विश्वादिरूप को रचते हैं, इस प्रकार चार प्रकारके भौंह और नाकके बीचमें स्थित धारणाविषयक ब्रह्मके रूपको कह कर देहके अवयवोंके तारतम्यसे धारणाके तारतम्यको आरंभ करके तुर्यधारणाके मुख्य होनेसे उसको शीर्षकी समान कहा, कि और विश्वधारणाके बाहु

तरं चैव स्वभावः स भवेत्ततः। हृदयं चैव पार्श्वे च सामभागेन तु निर्मितः ॥ ५१ ॥ वस्तिशीर्षं कटीदेशं जंघोरुचरणैः सह । एवमेव यजुर्भागः संघातो यज्ञकल्पितः । पुरुषो दिव्यरूपाभः संभूतोऽक्षरात् पदात् ॥ ५२ ॥ स हि वेदमयो यज्ञः सर्वभूतसुखावहः । उभयोर्लोकयोस्तात हिंसावर्ज्यः सनातनः ॥ ५३ ॥ योगारम्भ

होनेसे उसको ग्रीवा आदि कहा है प्राज्ञ धारणाके अन्तर्मुख होनेसे उसको हृदयकी समान कहा है] ॥ ५० ॥ ५१ ॥ वस्ति शीर्ष ऊपर जंघा घुटने और चरण यह यज्ञकल्पित यजुर्भाग हैं अक्षर पदसे दिव्यरूप और आभा वाला पुरुष उत्पन्न होता है [नीलकण्ठ तैजसधारणा संसार और मोक्ष उभयव्यापी है अत एव शीर्षादि चरणान्तरूपा है और जो इन दिव्यरूपोंसे प्रकाशित होता है वह पुरुष अक्षर अर्थात् अक्षर तुर्य पदसे एक ही भावरूपसे अभिगत होता है] ॥ ५२ ॥ वह वेदमय यज्ञ दोनों लोकोंके सब प्राणियोंको सुख देने वाला है हिंसारहित है और सनातन है [नीलकण्ठ -यहाँ सबीज निर्बीज नामक दो प्रकारके योगका वर्णन किया गया है । पहिला योग वितर्क विचार आनन्द और स्मृत भेदसे चार प्रकारका है । बाह्य प्रतिमा आदिमें चित्तको लगाया जाता है उस योगको वितर्क कहते हैं उसको यहाँपर ऋक् शब्दसे कहा है और जब इसकी समान अन्तः प्रज्ञ पुरुष प्रतिमा आदिकी मनमें कल्पना करते हैं उसका नाम विचार है उसको यहाँ पर यजुः शब्दसे कहा है और जब इसको त्याग कर चौथे पदमें प्रवेश करनेकी इच्छासे मध्यमें लीन होजाना है उसको यहाँ साम शब्दसे कहा है, यह लय रूप होनेसे अयोग है तुर्यको प्राप्त होकर जब सर्वैश्वर्य और सर्वज्ञता आदि श्रेष्ठता आजाती है, उसका नाम आनन्द है जिस समय उसको त्याग कर अस्मि इस अवस्था में ही रहता है उसको स्मृत योग कहते हैं सबीज और निर्बीज

कर्मसाध्यं ब्रह्मचर्यं सनातनम् । प्रभवः सर्वभूतानां यो विन्दति स वेदवित् ॥५४॥ स सिद्धः प्रोच्यते लोके सिद्धिरेव न संशयः । निर्मुक्तः सर्वकर्मभ्यो मुनिभिर्वेदपारगैः ॥५५॥ वैष्णवे यज्ञमित्येवं ब्रुवन्ते वेदपारगाः । ब्राह्मणा नियमश्रान्ता वेदोपनिषदे पदे ५६ जनमेजय उवाच। चेतसस्तूपलम्भं हि मनोग्राह्यस्य कामतः । कारणं

को यहाँ पर अथर्व शब्दसे कहा है, इन बातोंका अधिक विस्तार वेदस्तुतिकी टीकामें देखना चाहिये] ॥ ५३ ॥ ब्रह्मचर्यके द्वारा कर्मसाध्य योगका आरम्भ किया जा सकता है, यह सब प्राणियों का उत्पत्ति स्थान है जो इसको जानता है, वह वेदवेत्ता होजाता है [नीलकण्ठ-योगको कह कर अब योगको जानने वालेकी स्तुति करते हैं, कि-जो इस ब्रह्मचर्य (योग) को जानता है, वह वेदवेत्ता होजाता है, क्योंकि-वह सब प्राणियोंका प्रभव है और इस ब्रह्मको प्राप्त कराने वाला है, श्रुतिमें लिखा है, कि-"योगो हि प्रभवाप्ययौ-योग ही उत्पत्ति और प्रलय है" केवल शुष्कविचार के द्वारा उसके विचारका आरम्भ नहीं किया जासकता, किन्तु कर्म और मनके संयम योगके द्वारा (परमात्माका) विचार करना चाहिये]॥ ५४ ॥ जो ऐसा करता है, उसको सब कर्मोंसे मुक्त वेदपारगामी मुनि सिद्ध कहते हैं; और संसारमें (योगके द्वारा ब्रह्मप्राप्ति) यही सिद्धि है ॥ ५५ ॥ वेदके पारगामी, मनका निग्रह करते २ शान्त हुए वेदपारगामी ब्राह्मण इस वेदकी उपनिषत्‌रूप (ब्रह्मविद्या) से प्राप्त होनेवाले शुद्ध चैतन्यपदको प्राप्त कराने वाले (योग) यज्ञको (अतिदुष्कर) बतलाते हैं ॥ ५६ ॥ जनमेजयने कहा, कि-इच्छाके द्वारा मनसे ग्रहण किये जाने वाले चित्तकी फिर उपलब्धि कैसे होती है, इसके कारणको आप जिस प्रकार जानते हों उसको हे मुने ! मैं सुनना चाहता हूँ [नीलकण्ठ-अब प्रसंगवश इस बातको बूझते हैं, कि-समाधिमें लीन

श्रोतुमिच्छामि यथा त्वं मन्यसे मुने ॥ ५७ ॥ वैशम्पायन उवाच ।
न ह्यस्य कारणं किंचिद्बाह्यं भवति भारत । अन्तर्गतं कारणं तु
शारीरं मानसं नृप ॥५८॥ येन वेद्यं विदुर्मत्या ब्राह्मणा संशि-
तव्रताः । अवेद्यमपि वेद्यं च शक्यं वेत्तुं न कर्मणा ॥ ५९ ॥
ब्राह्मणेन विनीतेन सदा ब्रह्मनिषेविणा । सदा विदिततत्त्वेन
सिद्धिर्हेतोर्महीपते ॥ ६० ॥ सदा चैव शुचिर्भूत्वा नियतो ब्रह्म-

---

हुए मनकी फिर उपलब्धि किस कारणसे (कैसे) होती है, क्योंकि-वह तो इच्छाग्राह्य है और इच्छाओंके शान्त हो जाने पर जलती हुई ईंधनकी आगकी समान शान्त होजाता है; फिर उस की उपलब्धि किस प्रकार होती है ?] ५७वैशम्पायनजीने कहा, कि-हे राजन् ! इसका कोई बाहरी कारण नहीं होता, किन्तु भीतर रहने वाला शारीर मानस कारण होता है [नीलकण्ठ- अर्थात् शरीरसे किया हुआ धर्म अधर्म मनमें संस्काररूपसे स्थित रहता है, वही मनका उद्बोधक है] ॥ ५८ ॥ संशितव्रत ब्राह्मण जिस (चैतन्य अथवा मन) के द्वारा वेद्यको जानते हैं और (तदात्म होनेसे) अवेद्यको भी (शास्त्र और आचार्यके उपदेश से लक्षणाके द्वारा) वेद्य (अर्थात् जानने योग्य) करते हैं, उस को कर्मसे नहीं जाना जासकता (अतः कर्म ही बलवान् प्रति- बंधक है ॥ ५९ ॥ (अब चार श्लोकोंमें इस बातका वर्णन करते हैं, कि—उस कर्मकी निवृत्ति भी सत्कर्मके द्वाराही होती है) हे राजन् ! मोक्षके लिये विनीत हो कर सर्वदा ब्रह्मका सेवन करे और तत्त्वको जाने अर्थात् वेदका अध्ययन कर विद्याके मदसे हीन होकर, ब्रह्मयज्ञादिमें तत्पर रह कर और सर्वदा शास्त्र और आचार्य से आत्मा और अनात्माके तत्त्वको जानता रह कर मोक्षके लिये यत्न करे ॥ ६० ॥ ब्राह्मण सर्वदा पवित्र रहे, शम दम आदि साधन सम्पन्न रहे और हाथ जोड़ कर गुरुके समीपमें

कर्मणा । उपतिष्ठेत स गुरुं बद्धांजलिपरो द्विजः ॥ ६१ ॥ सायं प्रातश्च तत्त्वज्ञो मोक्षकर्माणि कारयेत् । विनीतो ब्रह्मभावेन समाःहितमतिर्मुनिः ॥ ६२ ॥ संप्रपद्येत मनसा वैष्णवं पदमुत्तमम् । ध्यायन्नेव प्रसीदेत समाहितमतिर्द्विजः ॥६३॥ गच्छते परमं ब्रह्म

जावे ६१ गुरुसे तत्त्वको जान कर सायंकाल और प्रातःकालके समय आसन धारणा आदि मोक्षके कर्म करे, योगप्राप्तिके गर्वसे हीन रहे अर्थात् विनीत रहे मुनि अर्थात् चुप रहे और ब्रह्मभावसे अपनी बुद्धिको समाहित रखे अर्थात् अपनेको ब्रह्म समझे अर्थात् सेव्यसेवक भाव न रखे क्योंकि-श्रुतिमें लिखा है; कि-"अथ योन्यां देवतामुपास्ते योसावन्योहमस्मीति न स वेद यथा पशुरेवं स देवानामिति-जो दूसरे देवताकी उपासना करता है अर्थात् अपनेको दूसरा समझता है वह तत्त्वको नहीं पासकता वह देवताओंके पशुओंकी समान है" ॥ ६२ ॥("दृश्यते त्वग्रया बुद्ध्या" इत्यादि श्रुतिके अनुसार मनसे ही ब्रह्मको प्राप्त करना चाहिये") मनके द्वारा उत्तम वैष्णव पदको पाना चाहिये अर्थात् शुद्ध ब्रह्म मनोवृत्तिसे ही ज्ञेय है समाहित बुद्धि वाला ब्राह्मण ध्यान करता हुआ प्रसन्न रहे केवल शुष्क विवेक न करे, पुरुष मनकी प्रसन्नतासे शुभ और अशुभ कर्मको नष्ट कर डालता है श्रुतिमें भी लिखा है कि-"प्रसन्नात्मात्मनि स्थित्वा सुखमक्षय्यमश्नुते-प्रसन्न चित्त वाला पुरुष आत्मामें स्थित होकर अक्षय सुखको भोगता है" इस श्रुतिके अनुसार मनको जीतना ही कर्म का निर्मूलन करने में कारण है ॥६३॥ पुनर्जन्म पानेकी बातोंके जानने वाला प्रेमके बन्धनमें ममताको छोड़ कर निर्विकार चित्तसे परब्रह्मको पाता है (तात्पर्य यह है, कि-जिस २ प्रकार यह ब्रह्म के अभिमुख होता है उसी प्रकार ब्रह्म भी इसके अभिमुख होता रहता है । वृद्धोंने भी कहा है कि-"यावद् यावन्निरस्यायं देहादीन्

निर्विकारेण चेतसा । अपुनर्भवभावज्ञो निर्ममो भावबन्धनात् ६४ तदेवाक्षरमित्याहुर्यच्चब्रह्मसनातनम् । तद्धि तत्कर्मयोगेन विद्या-योगेन दर्शितम् ॥ ६५ ॥ ब्राह्मणानां विनीतानां वैष्णवे पद-सञ्चये । सर्वद्रव्यातिरिक्तानां कामयोगविगर्हिणाम् ॥६६॥अपु-नर्भाविता लोकाः कर्मयोगप्रतिष्ठिताः । अनादानेन मनसा राजन् कर्मणि कर्मणि ॥ ६७ ॥ आदानाद्बध्यते जन्तुर्निरादानात् प्रमु-

प्रत्यगञ्चति ॥ तावत् तावत्तदर्थोऽपि त्वमर्थं प्रविवक्षति ॥-यह जीव देहादिकोंमें जितनी-२ आस्थाको त्यागकर प्रत्यगात्माकी जितनी २-उपासना करता है तदर्थ भी उतना २ ही त्वमर्थमें प्रवेश करता जाता है अर्थात् जीव भी उतनी २ ही ब्रह्मकी स्व-रूपताको पाता चला जाता है") ॥ ६४ ॥ जीवरूपसे सर्वदा वृद्धि और ह्रासका भागी होने पर भी ब्रह्म समान है उस सना-तन ब्रह्मको ही अक्षर अर्थात् ह्रास आदि रहित कहते हैं उसको कर्मयोगसे और विद्याके योगसे देखा जासकता है ॥ ६५ ॥(वह अक्षर पुरुष किनके जाननेमें आता है इस बातको कहते हैं, कि-) शुद्धब्रह्ममें पहुँचनेका निश्चय करने वाले विनीत ब्राह्मणोंको, सब द्रव्योंको त्यागनेवालों और कामयोगकी निन्दा करने वालोंको अर्थात् स्त्री आदिके सङ्गकी निन्दा करने वालेको अक्षरका प्रत्यक्ष होता है ॥ ६६ ॥ हे राजन् ! जो प्रत्येक कर्ममें मनसे फलकी इच्छा नहीं करते हैं उन कर्ममें प्रतिष्ठित पुरुषोंको पुन-र्जन्म न पानेके विचार उत्पन्न हुआ करते हैं (भगवान्ने भी कहा है, कि-"यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् । यत्त-पस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्-हे कौन्तेय ! तू जो करता है जो खाता है जो होम करता है जो देता है और जो तप करता है उन सबको मेरे अर्पण कर") ॥ ६७ ॥ आसक्तिके कारण प्राणी बन्धनमें पड़ता है और अनासक्तिसे कर्म करने पर मुक्त

च्यते । ब्राह्मणेभ्यः क्रियावाप्तिर्जन्तोः पूर्वाऽजनाधिप ॥ ६८ ॥ मुक्तश्चेन्द्रियबन्धेन प्राप्नुश्च परमं पदम् । न भूयः पुनरायाति मानुषं देहविग्रहम् ॥ ६९ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि
सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

जनमेजय उवाच । उपसर्गं च योगं च ध्यानवर्यं चैव यत्पदम् । न भूयः पुनरायाति मानुषं देहविग्रहम् ॥१॥ वैशम्पायन उवाच ।

होजाता है हे राजन् ! प्राणीके पूर्वजन्मके निष्काम कर्मोंसे क्रिया की प्राप्ति होती है अर्थात् पुनर्जन्म न पानेकी वासना उत्पन्न होती है ॥६८॥ जो पुरुष इन्द्रियोंके बन्धनसे मुक्त होजाता है वह परमपदको प्राप्त होजाता है वह फिर मनुष्य-देहको नहीं पाता है (तात्पर्य यह है कि—विविदिषा उत्पन्न करनेके कारण कर्म ही मोक्षका कारण है श्रुतिमें लिखा है कि—"तमेतं वेदानु वचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसा नाशकेनेति उसको ब्राह्मण वेदके अनुवचन यज्ञ दान और तपसे जानना चाहते हैं) ॥ ६९ ॥ सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १७ ॥

जनमेजयने कहा, कि-आप मुझसे योग उपसर्ग और जिस का ध्यान करनेसे फिर मनुष्य शरीरमें भी नहीं आना पड़ता उस ध्यातव्य पदका वर्णन करिये [नीलकण्ठ-योगोपसर्गा वर्ण्यन्तेऽथ त्रिभिः प्रश्नपूर्वकम् । तत्रापि द्वादशे योगमार्गे ये चिन्हिताः गताः—अर्थात् इस द्वादश पुष्कर प्रादुर्भावाध्यायमें तीन प्रश्न करके योगमार्गमें लक्षित होने वाले योगोपसर्गोंका वर्णन किया जाता है" पहिले हिंसायोगोंके द्वारा इत्यादि वाक्योंसे योगोपसर्गोंका आभास दिया था और आसनसे लेकर धारणा तकके सब योगांगोंका वर्णन किया था, अब अवशिष्ट योग-स्वरूप ध्येयब्रह्म और योगसिद्धि इन चारोंको जाननेकी इच्छा

शृणु विस्तरतः सर्वं यथा पृच्छसि मेधया । उपपन्नेन मनसा ब्रह्मादीनामनेकधा ॥२॥पञ्चसिद्धिगुणांस्त्यक्त्वा पश्यतो ब्रह्मणो नृप। योगयुक्तेन मनसा पञ्चेन्द्रियनिवासिनः ॥ ३ ॥ ब्रह्मण-श्चिन्तयतस्तस्य ब्रह्मयज्ञं सनातनम् । बहुरूपमनैश्वर्यात् प्रवर्तति निरोधनम् ॥४॥ पञ्चेन्द्रियस्य ग्रामस्य नवद्वारस्य भारत । काम-क्रोधस्य लोभस्य सन्निरुद्धस्य मेधया ॥ ५ ॥ तेजसा मूर्ध्नि चाधाय धूमो दोधूयते महान् । नीललोहितवर्णाभैः पीतैः श्वेतैश्च धातुभिः॥६॥मञ्जिष्ठरागवर्णाभैः कपोतसदृशैस्तथा शुद्धवैडूर्यवर्णाभैः

से जनमेजयने उपर्युक्त श्लोक कहा है] ॥ १ ॥ वैशम्पायनजी ने कहा, कि–ब्रह्मा आदिके अनेक प्रकारसे प्रगट होने वाले योगोपसर्गोंको तुमने जिस प्रकार बूझा है उनको बुद्धिसे चित्त को एकाग्र करके सुनो ॥ २॥ हे राजन् ! जब ब्रह्मदर्शी योगी पाँच इन्द्रियोंमें निवास करने वाले शब्द आदि गुणोंकी दूरश्रवण आदि सिद्धियोंकी उपेक्षा करके मनको योगमें लगा कर परब्रह्म को देखनेका प्रयास करता है ॥३॥ और जब वह सनातन यज्ञ-स्वरूप ब्रह्मका चिन्तवन करता है उस समय अनैश्वर्यसे अर्थात् परवैराग्यके बलके अभावसे उसके सामने निरोध आने लगते हैं (जिससे निरोध हो उसको निरोध कहते हैं ऐसे उपसर्ग उस समय सामने आने लगते हैं) ॥ ४ ॥ (अब इस बातको कहते हैं कि–) अपर वैराग्यके द्वारा इन्द्रिय आदिका निरोध होने पर भी पर वैराग्यके अभावसे योगका निरोध होने लगता है हे भारत ! जब योगी काम और क्रोधसहित देहइन्द्रियसंघातका निरोध कर लेता है ॥ ५ ॥ जिस समय योगी भौं और प्राणके मध्यमें चक्षुःप्रणिधान करके मनको एकाग्र करता है उस समय चित्तका प्रणिधान करने वाले योगीको (भौं और प्राणकी संधि-रूप) मस्तिष्कमें (वा गुरुकी बताई हुई युक्तिके अनुसार हार्दा-

पद्मवर्णदलप्रभैः ७ स्फाटिकैर्मणिवर्णाभैर्नागेन्द्रसदृशैस्तथा। इन्द्रगोपकवर्णाभैश्चन्द्रांशुसलिलप्रभैः ८ बहुवर्णैश्च धूमोघैरिन्द्रायुधसमप्रभैः। सम्पतद्भिश्च युगपन्मेघैरिव समागमैः निरुध्यन्त इवाकाशे पतद्भिरिवाद्रिभिः॥ ते धूमवर्णाः संघाता घनाः सलिलधारिणः

काश आदिमें ध्यान करने पर हृदय आदिमें) बड़ा भारी धुआ दीखने लगता है (निरोध करनेसे क्षुब्ध हुआ मनरूपी बन्दर उसको और आगे कहे जाने वाले नीलवर्ण मेघ आदिको नाड़ीमार्गरूपी शाखाओं पर घूम कर अनुमान करता है यह योगसिद्धिका चिन्ह है। श्रुतिमें भी लिखा है, कि-"तस्मिन् शुक्लमुत नीलमाहुः पिंगलं हरितं लोहितं च। एष पंथा ब्रह्मणानानुवित्तस्तेनेति ब्रह्मवित् तेजसश्च-नीहार धूमार्कनलानिलानां खद्योत विद्युत्स्फटिकशशीनाम्। एतानि रूपाणि पुरःसराणि ब्रह्मण्यभिव्यक्तिकराणि योगे" फिर वह हार्दाकाश अथवा मस्तकमें) नील रक्त पीली और श्वेत वर्णकी धातुओंकी समान आभा वाले और हस्तिराजकी समान आभा वाले, मजीठके रंगकी समान आभा वाले तथा कपोतकी समान तथा शुद्ध वैदूर्यमणि की समान आभा वाले और कमलोंके वर्णकी समान घनघटा की आभावाले तथा स्फटिक और मणियोंके वर्णकी समान आभा वाले और वीरबहूटीके वर्णके समान(लाल) आभा वाले, अनेक प्रकारके वर्ण वाले धूमसे भरे हुए और आकाशमें उड़ते हुए पर वाले पर्वतोंकी समान इधर उधर उड़ते हुए बादलोंसे छाजाता है, तदनन्तर वे धुएँकी समान वर्णवाले जलधारी घनघोर मेघ जलकी धाराओंको बरसाने लगते हैं और पृथ्वीतलमें ही लीन होजाते हैं(अर्थात् वे शरीरमें ही वर्षा करते हैं और शरीरके भीतरही लीन होजाते हैं यह मन इस प्रकार सत्त्व रज और तमःप्रधान नाड़ियों में घूम कर पार्थिव धूम आदिसे उपेत(युक्त)प्रतीत होता है, वही कुछ

निर्मथश्चैव तीव्रोग्रान्विविशुर्वसुधातले ॥१०॥ मूर्ध्नि चैव महानग्निर्मानसो धूयते प्रभुः । युक्तः परमयोगेन शतशोर्चिभिरावृतः ॥ ११ ॥ तस्यार्चेर्विस्फुलिंगानां सहस्राणि शतानि च । विनिसृत्य सर्वगात्रेभ्यो ज्वलन्निव युगान्तगः ॥ १२ ॥ यावन्त्यो वर्षधारास्तु तावन्त्योर्च्योऽनलस्य च । समेयुर्वारिधाराभिर्विपुले वसुधातले ॥ १३ ॥ वर्णाभ्यां युज्यमानस्य वायुर्दोधूयते महान् । दिव्यसिद्धिगुणोद्भूतः सूक्ष्मप्राणविवर्धनः ॥ १४॥ वेगवान् भीमनिर्घोषो बलवान् मार्गगोचरः । तैरेव चाग्निसंघातै-

सत्त्वाधिक नाड़ियोंको पाकर अभ्यन्तर शुक्ररूपसे गाढ़तर हो जाता है इसी बातको देवशाप आदिके रूपसे दिखाया है)९-१० (इसी लिये अग्निका मानसिक विशेषण दिया है, कि-)मस्तकमें ही बड़ा भारी मानसिक अग्नि जलने लगता है, वह अग्नि परमयोग से युक्त होता है और सैंकड़ों लपटोंसे व्याप्त होता है ।११। उस अग्निकी लपटोंसे जलती हुई प्रलयाग्निकी समान सैंकड़ों और सहस्रों चिनगारियें निकलती हैं ॥ १२ ॥ वर्षाकी जितनी धारें होती हैं अग्निकी भी उतनी ही लपटें होती हैं और वह बड़े भारी (शरीररूप) वसुधातलमें वारिधाराओंसे मिल जाती हैं (इसी प्रकार आगे भी तेज जल आदिका मिश्रीभाव संकीर्णगुणकी समान नाड़ीसंचारसे समझना चाहिये ॥ १३ ॥ और (जल और अग्निके श्वेत लोहित इन) दो रूपोंके इस प्रकार परिणत होने पर (सत्त्वोत्कर्ष होनेसे नीरूप) वायु (रूप आकाश) उत्पन्न होता है, वह वायु भित्ति आदि स्वप्रतिघातसे सिद्ध अनादि शब्दतन्मात्रा आदि गुणोंसे उत्पन्न हुआ होता है अर्थात् स्थूल नहीं होता है और वह वायु सूक्ष्मप्राण (सूत्रात्मा) का बढाने-वाला है ॥ १४ ॥ और वेगवान् है (क्योंकि-मनका भी जनक है) भयंकर शब्द करने वाला है, (क्योंकि-स्थूल

धातुभिः सह संगतः ॥ १५ ॥ सहस्रशोथ शतशो मूर्तिं कृत्वा पृथग्विधाम् । अग्निर्वायुर्जलं भूमिर्धातवो ब्रह्मचोदिताः ॥१६॥ समवायत्वमापन्ना बीजभूता महीपते । संघातं ब्रह्मवेगेन धातवो गमिता नृप ॥ १७ ॥यद्ब्रह्म चक्षुषोर्मध्ये स सूक्ष्मः पुरुषो विराट् । तयोरन्यान् वस्तून्सूक्ष्मान्ससृजे पुरुषोत्तमः ॥१८॥ स एव भगवान् विष्णुर्व्यक्ताव्यक्तः सनातनः । आधारः सर्वविद्यानां प्रलये प्रलयान्तकृत्॥१९॥तं मूर्ध्नि धातुभिर्नद्धं विशन्ति ब्रह्मचोदिताः । तेन्तरा पुरुषाः सर्वे ज्ञातारः सुखदुःखगो ॥ २० ॥ अथ चेष्टितु-

---

आकाशका जनक है) और (ब्रह्माण्डभेदनकी शक्ति रखनेके कारण) बलवान् है और अग्निके साथ जिनका दृढसंघात (संश्लेष) है उन भू जल आदि धातुओंसे मिल कर वह प्राण गोचर होता है अर्थात् प्राणशब्दवाच्य सूत्रात्मा होजाता है १५ तदनन्तर ब्रह्मचोदित अग्नि वायु जल और भूमि आदि धातुएँ भिन्न २ प्रकारकी सैंकडों और सहस्रों मूर्तियें बना लेती हैं१६ हे महीपते ! चिदनुप्रवेशके द्वारा संघातको प्राप्त हुई वे धातुएँ समवायत्वको प्राप्त होजाती हैं, अर्थात् एक कार्यकारणत्वको प्राप्त होजाती हैं ॥१७॥ जो चक्षुके मध्यमें धारणाविषयक ब्रह्म है, वही सूक्ष्म है, वही विराट हैं, ब्रह्मभूत हुआ योगी उन सूक्ष्म और विराटके अतिरिक्त वस्तु आदिको भी रचता है॥१८॥ वही (ब्रह्मीभूत योगी) भगवान् (होजाता) है (अत एव उसका सूत्रादिस्रष्टृत्व युक्त ही है) वही विष्णु व्यक्ताव्यक्त सनातन, सब विद्याओंका आधार और प्रलयमें प्रलय करनेवाला(होजाता) है ॥१९॥ मस्तकमें धातुओंके द्वारा छाये हुए उस योगी पुरुषमें सुख दुःखके ज्ञाता ईशके प्रेरणा करने पर प्रवेश करते हैं (तात्पर्य यह है कि—भ्रूघ्राणके मध्यमें सूत्रात्मत्वरूपसे स्थित हुए उस योगीमें ईशप्रेरित इतरादिसुख भोक्ता जीव प्रवेश करते

मारब्धा मूर्तयो ब्रह्मसंमिताः । मिश्वा च भरणीं देवीं प्राप्नुवन्त दिशो दिश ॥२१॥ इत्येते पार्थिवाः सर्वे क्षपयो ब्रह्मनिर्मिताः । तत्रैव प्रलयं याता भूमित्वमुपयान्ति च ॥ २२ ॥ कर्मक्षयाद्विमुच्यन्ते धातुभिः कर्मबन्धनैः । कर्मक्षयाद्विमुक्तत्वादिन्द्रियाणां च बन्धनात् ॥ २३ ॥ तामेव प्रकृतिं यान्ति अज्ञातां कर्मगोचरैः । क्षयाद्भूमक्षयं चैव अग्निगर्भास्तपोमयाः ॥२४॥ येन तन्तुरिवा-

---

हैं अर्थात् वही सर्वजीवसमष्टि होजाता है) ॥ २० ॥ तदनन्तर पृथ्वी (स्थूलदेह) को त्यागकर ब्रह्मसम्मित (ईशकी समानता को प्राप्त हुई सूत्रविभूतिएँ) मूर्तियें चेष्टा करने लगतीं हैं और दशों दिशाओंमें प्राप्त होजाती हैं तात्पर्य यह है, कि-इस अवस्था में सार्वात्म्यके कारण योगी सर्वविद् होजाता है)२१ब्रह्मनिर्मित यह सब पार्थिव क्षपि,तहाँ ही पर प्रलयको प्राप्त होकर भूमित्वको प्राप्त होजाते हैं तात्पर्य यह है, कि विद्वान् सर्वात्मा होता है,इस कारण ये पृथु-भूतोंसे उत्पन्न होनेके कारण ये पार्थिव-व्यावहारिकार्थ ब्रह्मा (योगी) के द्वारा निर्मित होते हैं और तिसमें ही व्युत्थान तथा सम्प्रज्ञातमें लीन होजाते हैं अर्थात् सुप्तिमें और समाधिमें भूमित्वको अर्थात् स्वोपादानत्वको प्राप्त होजाते हैं।जैसे पार्थिव घट नाशके समय पृथिवीत्वको प्राप्त होजाता है ऐसे ही वे भी योगीमें ही लीन होजाते हैं ॥ २२ ॥ प्राणी कर्मक्षय होने पर कर्मबन्धनसे छूट जाते हैं क्योंकि-कर्मक्षयके कारण वे विमुक्त होजाते हैं और इन्द्रियोंके बन्धनसे भी छूट जाते हैं (और कर्मक्षयके अभावमें फिर उद्भवित होजाते हैं) ॥२३॥ (वे कर्मोंसे मुक्त हुए व्यक्ति कहाँ जाते हैं, इस शंकाका समाधान करते हैं, कि-,कर्मगोचर व्यक्तियोंकी अज्ञात प्रकृतिमें वे व्यक्ति कर्मक्षयके कारण धूमादिमार्गके क्षयको प्राप्त होजाते हैं अर्थात् पुनरावृत्ति को प्राप्त होजाते हैं, परन्तु वे योगी भी यदि अग्निहोत्र आदि

च्छन्नो भावाभावः प्रवर्तते । धूमादभ्रास्तु सम्भूता अभ्रात्तोयं सुनिर्मलम् ॥ २५ ॥ जगतीतलात्तु सम्भूता जगत्येव च यत् फलम् । फलाद्रपस्तु संजज्ञे रसात् प्राणस्तु देहिनाम् २६ रसश्च तन्मयो यज्ञे यत्तद्ब्रह्म सनातनम् । प्रधानं ब्रह्म चोद्दिष्टं बहुभिः

धर्मोंको प्रधानतया करने वाले और कृच्छ्रचान्द्रायण आदि तपोमय होते हैं, तब ही ब्रह्मको प्राप्त होते हैं अन्यथा नहीं ।२४। कर्मके द्वारा भावाभावरूप अर्थात् सदसद्रूप संसार प्रवृत्त होता है और वह तन्तुकी समान अच्छिन्न रहता है और वह धूम (कर्म) के क्षय होने पर ही क्षीण होजाता है (जिनके कर्म अवशिष्ट रहते हैं वे व्यक्ति) धूमसे अभ्र (मेघ) बन जाते हैं, अभ्रसे निर्मल जल बन जाते हैं (तात्पर्य यह है कि— कि-धूमादिमार्गसे पितृलोकको प्राप्त होकर कर्मक्षय होने पर वहाँ से च्युत होकर आकाश आदि क्रमसे धूमत्वको प्राप्त होकर मेघ बन कर वर्षाकी धाराओंसे पृथ्वीमें अन्न होकर रेतस्त्व (वीर्यभाव) को प्राप्त होकर फिर उत्पन्न होजाते हैं) ॥ २५ ॥ जगती (पृथ्वी) तलसे जलके द्वारा उत्पन्न हुए (व्रीहि आदि) फल पृथ्वी ही हैं (इस प्रकार उनके चेतनत्वका खण्डन कर दिया) उस (व्रीहि आदि फलसे रस उत्पन्न होता है, और रससे देहधारियोंका प्राण उत्पन्न होता है २६ (फलसे उत्पन्न हुआ)रस सनातन ब्रह्म चैतन्यसे व्याप्त है (अर्थात् ब्रह्मके द्वारा ही देहादिका चेतन है,दूसरी चेतनासे उसका आस्तित्व नहीं है क्योंकि—"नान्योऽतोऽस्ति द्रष्टा-उसके अतिरिक्त और कोई द्रष्टा नहीं है" इस श्रुतिसे दूसरे चेतनका निषेध किया है । अत एव सत्यव्रतपरायण तपःश्रान्त ब्राह्मण दूसरी २ युक्तियों से भी ब्रह्मको प्रधान कारण कहते हैं (क्योंकि-यदि विशेष चेतन बहुतसे होंगे तो वैधर्म्यके अभावसे उनके भेदकी असिद्धि

कारणान्नरैः । ब्राह्मणैस्तपसि श्रान्तैः सत्यव्रतपरायणैः ॥२७॥ अव्यक्ताद्व्यक्तिमापन्नं स्वेन भावेन भारत । अन्तःस्थं सर्वभूतेषु चरन्तं विद्यया सह ॥२८॥ कर्मकर्तेति राजेन्द्र विषयस्थमनेकधा। नोपलभ्येत चक्षुर्भ्यां तपसा दग्धकिल्बिषैः ॥ २६ ॥ उपलभ्येत चक्षुर्भ्यां ज्ञानिभिर्ब्रह्मवादिभिः । निःसृतस्तु भ्रुवोर्मध्यान्मेघमुक्त इवांशुमान् ॥ ३० ॥ चरद्भिः पक्षिवल्लोके निर्द्वन्द्वैर्निष्परिग्रहैः । योगधर्मेण कौरव्य ध्रुवमासाद्यते फलम् ॥ ३१ ॥ प्रादुर्भावं जगं

होगी और यदि सविशेष होंगे तो स्वाश्रयनाशके विना ही विशेषका नाश न होनेसे मुक्तिसिद्धि होजावेगी अतः ब्रह्म ही प्रधान कारण है)॥ २७ ॥ (यहाँ शंका होती है, कि–निर्विशेषको संसारित्व किस प्रकार होजाता है, इसका उत्तर देते हैं, कि–) हे भारत ! वह मायासे अपने भाव अनादि संस्कारसे ब्रह्माकार चित्तवृत्तिके साथ सब प्राणियोंके हृदयमें प्रकाशित होरहा है ॥२८॥ (फिर भोक्ता और कर्ता कौन है,इस शंकाका समाधान करते हैं, कि–)कर्म अर्थात् दृश्य और कर्ता अर्थात् भासाहंकार ये दोनों विषयस्थ ही हैं अविषय चिदात्मामें स्थित नहीं है, क्योंकि–कर्ता भी आभासरूपसे दृश्य ही है और यह अनेक प्रकारसे भासमान भी मायानगरकी समान नेत्रोंसे देखने में नहीं आता । परन्तु तपके द्वारा जिनके पाप नष्ट होजाते हैं ब्रह्मवादी ज्ञानी उसको दोनों नेत्रोंसे देखते हैं । वृद्धोंने भी कहा है कि–"सकलवाङ्मनसा च गता चितिः । सकलवाङ्मनसः व्यवहारभागिति" अथवा दोनों नेत्रोंके मनमें नियुक्त करने पर प्रकट होने वाला ब्रह्म मेघमुक्त अंशुमाली सूर्यकी समान प्रतीत होता है ॥ ३० ॥ हे कौरव्य ! जो व्यक्ति पक्षीकी समान असङ्ग होकर संसारमें निर्द्वन्द्व और परिग्रहरहित होकर विचरण करते हैं, वे (ब्रह्मदर्शनरूप) फलको पाते हैं ॥ ३१ ॥ ब्रह्म

चैव भूतस्य निधनं तथा । विभक्ते शतशो ब्रह्मा संक्षये च भवे-
त्तदा ॥ ३२ ॥ कर्मणः कर्मयोगज्ञो भूतेभ्यो नात्र संशयः । द्यनि-
नाशाय लोकस्य धर्मस्याप्यागमेन च ॥ ३३ ॥ युगं द्वादशसाहस्रं
सहस्रयुगसंज्ञितम् । एतद्ब्रह्मयुगं नाम युगानां प्रथमं युगम् ॥ ३४ ॥
सहस्रयुगयोरन्ते संहारः प्रलयान्तकृत् । सूक्ष्मं भवति लोकानां

अर्थात् ब्रह्मवेत्ता योगी भूतसमूहकी उत्पत्तिको तथा ऐश्वर्य अर्थात् कुर्वद्रूपताको निधनको अर्थात् नाशको भी सृष्टि और प्रलय के समय करता है ॥ ३२ ॥ (जगज्जन्मादिके हेतुत्वसे योगीके ऐश्वर्यको कह कर उसके कर्मविभाजकपनको दिखाते हैं, कि–) योगज्ञ पुरुष भूतोंके सुखका विभाग करता है, इसीकी प्रीतिके लिए धर्म किया जाता है और इसीके प्रसन्न होने पर लोककी रक्षा होती है ३३ बारह सहस्र वर्षका आदि युग कहलाता है, यह ब्रह्मयुग नामक युग युगोंमें प्रथम युग है (युग आदि शब्द से कालमान विवक्षित है और हिंसाशून्य योगज धर्म ही चतुष्पाद ब्रह्मापक (युग) समय है तात्पर्य यह है, जिस समय ऐसे धर्म की ओर चित्त उन्मुख हो, तब ही कृतयुगको प्रवृत्त हुआ समझना चाहिये) ॥ ३४ ॥ सहस्र युगोंके अन्तमें प्रलयका भी अन्त करने वाला लोकोंका संहार होता है, वह सूक्ष्म होता है निर्विकार होता है और अचेतन होता है (तात्पर्य यह है कि–इस प्रकारके अनेक सत्ययुगोंसे कालका भी अन्तकर्ता मुक्ति नाम वाला महा-प्रलय होता है । कहा भी है, कि–"अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम् ।" इससे प्रतीत होता है, कि–उस समय लोकोंका स्वरूप सूक्ष्म होता है, सत्तामात्र ही अवशिष्ट रहता है, निर्विकार होजाता है, चेतनाके अभावसे अचेतन होजाता है "यत्र हि द्वैत-मिव भवति तदितर इतरं पश्यति–जहाँ पर द्वैत होता है, तहाँ ही दूसरा दूसरेको देखता है" इस प्रकार अविद्यावस्थामें चेतना

निर्विकारमचेतनम् ॥ ३५ ॥ तथा प्रलयमापन्नं जगत्सर्वं सनातनम् । ब्रह्म सम्पद्यते सूक्ष्मं निमित्तं कारणैर्गुणैः ॥ ३६ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

जनमेजय उवाच । प्राग्वंशं श्रोतुमिच्छामि विस्तरेण महामुने ।

को कह कर "यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत् तत् केन कं पश्येत् जब इस ज्ञानीका सब आत्मा ही होजाता है, तब कौन किसको देखे" इस प्रकार कैवल्यमें द्रष्टा और दृश्यका लोप होनेसे निर्विशेष चिन्मात्र ही अवशिष्ट रहता है, ऐसा श्रुतिमें कहा है) ॥ ३५ ॥ कारण गुणोंके निमित्त वाला जगत् सूक्ष्म होने पर सनातन ब्रह्म में लीन होजाता है ॥ ३६ ॥ अठारहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १८ ॥

जनमेजयने कहा; कि—हे महामुने ! हे ब्रह्मन् ! मैं ब्रह्म (दिन) के अनुसार प्राप्त हुए त्रेता और द्वापरके कार्यको पहिले सुनना चाहता हूँ (कृतयुगको पहिले कह दिया है और कलियुग चल रहा है अतः शेष दो युगोंके कार्यको जनमेजयने बूझा है [नीलकण्ठ—"युगधर्मा युगैर्ज्ञेया ब्राह्मे प्रोक्तं कृते कृतम् । कृतं त्रेता द्वापरं च मुनिर्वक्ति त्रयोदशे-युगोंके द्वारा युगोंके धर्मको जान लेना चाहिये, ब्राह्म दिन (ब्रह्मज्ञान) कृतके कारण कृतयुग कह दिया, अब इस त्रयोदश पुष्कराध्यायमें व्यास जी कृतयुग त्रेता और द्वापरके धर्मोंका वर्णन करेंगे" यद्यपि सब योगी सर्वोत्कर्ष से युक्त होते हैं, तथापि पहिले मधु कैटभकी आख्यायिका से यह सूचित किया है "रज और तमसे योगी दब जाते हैं" अतः योगमें "यया स्वप्नं भयं मोहं विषादं मदमेव च" इस प्रकार कहे हुए स्वप्न आदि और "लोभः प्रवृत्तिरारंभः कर्मणामशमः स्पृहा" इस प्रकार कहे हुए लोभ आदि रज और तमके कार्यों का होना भी योगमें सम्भव है । शुद्ध सत्त्वमय योगमें भी धूमादि

आद्ययोर्युगयोर्ब्रह्मन् ब्रह्मप्राप्तस्य सर्वशः ॥ १ ॥ वैशम्पायन उवाच । शृणु विस्तरशः सर्वं यन्मां पृच्छसि मेधया । उपपन्नेन मनसा दैवप्रत्ययसाधिना ॥२॥ ऋद्धिं प्राप्तस्तु भगवान् योगात्मा ब्रह्मसम्भवः । भूतानां वहुलत्वं च चकारेश्वरः प्रभुः ॥ ३ ॥ स्थितो ब्रह्मासने ब्रह्मा विक्षिप्तः सहसा प्रभुः । अचलेनैव भावेन स्थाणुभूतेन भारत ॥४॥ रक्तश्च मोक्षविषये स च ज्ञानमये पदे । यस्मात्पदसहस्राणि प्रभवन्ति भवन्ति च ॥५॥ ब्रह्मयज्ञं तु यजते योगाद्वेदात्मकं सदा । ब्रह्मणो विपुलं ज्ञानमैश्वर्यं च प्रवर्तते ॥६॥

विघ्न होनेका वर्णन मिलनेसे अन्यत्र भी कैमुतिकन्यायसे विघ्न होंगे । इसी लिये जनमेजयने "प्राग्वंश" इत्यादि श्लोकमें प्रश्न किया है, कृतयुगका वर्णन पहिले आचुका और कलि चल रहा है अतः सगुण ब्रह्मवेत्ताके त्रेता द्वापर (रज और तम) की पराभूत कार्यसन्ततिको मैं सुनना चाहता हूँ] ॥ १ ॥ वैशम्पायनने उत्तर दिया, कि–दिव्यज्ञानसाधनशील अपने मनको बुद्धिसे सावधान करके अपने बूझे हुए प्रश्नके उत्तरको विस्तारपूर्वक सुनो ॥ २ ॥ केवल योगमें ही चित्तको लगाने वाला और ब्रह्मरूपसे जिसका आविर्भाव हुआ है ऐसा ऋद्धिको प्राप्त हुआ भगवान् ईश्वर प्रभु प्राणियोंकी बहुलताको करता है ३ हे भारत ! वह प्रभु ब्रह्मा स्थाणुभूत ब्रह्मभावसे ब्रह्मस्वरूपमें स्थित होने पर भी रजोगुणसे सहसा चलायमान होजाते हैं अतः वह प्राणियोंके बहुलत्वको करते हैं ॥ ४ ॥ वह विक्षिप्त होकर मोक्षके विषय की समान प्रतिबन्धक मनोरथ स्वरूप (ज्ञानमय पद) में रक्त होजाते हैं तब उनसे सहस्रों मनोरथ उठते हैं और उनमें ही लीन होजाते हैं ॥ ५ ॥ (यह ऐश्वर्य प्रार्थना न करने पर भी अपने आप ही प्राप्त होजाता है इस बातको कहते हैं) वह वेदात्मक यज्ञस्वरूप ब्रह्मनाम वाले विष्णुका यजन करता है इस कारण

ततः प्रथममैश्वर्यं युञ्जानेन प्रवर्तितम् । ब्रह्मणा ब्रह्मभूतेन भूतानां हितमिच्छता ॥ ७ ॥ तदा त्वाकाशमैश्वर्यं युञ्जानस्य प्रवर्तते । ब्रह्मणो ब्रह्मभूतस्य निर्विकारेण कर्मणा ॥ ८ ॥ तदान्तरिक्षं समाप्तं निर्मलं ब्रह्म चाव्ययम् । संहारः सर्वभूतानां नराणां ब्रह्मवादिनाम् । ध्रुवमैश्वर्ययोगस्थां प्रतिपद्यन्ति देहिनः ॥ ९ ॥ आकाशैश्वर्यभूतेन संयुगे ब्रह्मवादिना । प्रवर्तमानमैश्वर्यं वायुभूतं करोति च । विकारैर्बहुभिः प्राप्तैः सम्पतद्भिर्महाबलैः ॥ १० ॥

ब्रह्मभावको प्राप्त हुए योगीमें विपुल ऐश्वर्य अपने आप प्रवृत्त होजाता है (इस लिये प्रवृत्त हुए ऐश्वर्यका मुमुक्षु निरोध करे और इस ऐश्वर्यका परोपकारमें उपयोग करना चाहिये स्वार्थमें इसका उपयोग नहीं करना चाहिये) ॥ ६ ॥ तदनन्तर प्राणियों का हित चाहनेवाला ब्रह्मभूत हुआ युञ्जान ब्रह्मा ऐश्वर्यका प्रयोग करे ॥ ७ ॥ उस समय निर्विकार कर्मसे अर्थात् रज तम विकार शून्य कर्मसे ब्रह्मभूत हुए युञ्जान ब्रह्मामें अर्थात् योगीमें(आकाश) अव्याकृत ऐश्वर्य उदित होता है और व्याकृत अर्थात् विक्षेपक ऐश्वर्य उदित नहीं होता है ॥ ८ ॥ (फिर क्या होता है इस जिज्ञासाका उत्तर देते हैं, कि-) सच्चित्‌रूप अन्तरिक्ष भी उस समय निरवद्य शुद्ध ब्रह्मको प्राप्त होजाता है(इसी बातको आगे दिखाते हैं, कि-जाननेवाले पुरुष वेदालोचनके द्वारा उस समय (जीवके) ब्रह्मवादीके सब ऐश्वर्योंके उसमें लीन होनेको जानते हैं ॥ ९ ॥ (अब इस बातको दिखाते हैं, कि-सकामयोगी वायु आदि रूपवाला होजाता है) संयुगमें अर्थात् योग यज्ञमें ब्रह्मकी स्तुति करने वाला जब अव्याकृत ऐश्वर्यभावको प्राप्त हो जाता है तब वह ब्रह्मकर्तृ वायु भूत ऐश्वर्यको करता है अर्थात् ब्रह्मैश्वर्यवाली ब्रह्मसंवित्‌से प्रवर्तमान योगी योगके समय प्राप्त हुए तेज आदि महाबली विकारोंसे अपनेको वायु आदिके रूप

एतैः विकारैः संवृत्तैर्निरुद्धैश्च समन्ततः । ध्रुवमैश्वर्यमापन्नः सिद्धो भवति ब्राह्मणः ॥ ११ ॥ शरीरादभिनिष्क्रम्य आकाशेन प्रधावति । निरालम्बो निरालम्बानालम्ब्य मनसा ततः १२ ऐश्वर्यभूतो भूतात्मा चरन् दिवि न दृश्यते । चक्षुर्भिर्बहुभिर्लोकैः पुरन्दरसमैरपि ॥ १३ ॥ ओंकारं ये त्वधीयन्ते मनसा ब्रह्मसत्तमाः । विमुक्ताः सर्वकर्मभ्यस्ते तं पश्यन्ति साधवः ॥१४॥ एतद्धि परमं ब्रह्म ब्राह्मणानां मनीषिणाम् । अन्तश्चरति भूतानां विद्धि चेतनया सह ॥१५॥ एष शब्दो महानादः पुराणो ब्रह्म-

---

वाला करलेता है ॥ १० ॥ जब योगी इन विकारोंको प्राप्त कर के इनका निरोध करता है तब वह ब्राह्मण ऐश्वर्यको अर्थात् निर्मल ब्रह्मको प्राप्त होकर सिद्ध होजाता है ॥ ११ ॥ (विकारों का निरोध करने पर वह कवचकी समान स्थूल शरीरके त्याग करनेके कारण आकाशगमन आदि कर सकता है इस बातको दो अगले श्लोकोंमें दिखलाते हैं कि-) शरीरसे निकल कर निरालम्ब हुआ योगी आकाशमें दौड़ता है और मनःकल्पित अत एव निरालम्ब व्याघ्र आदिके शरीरको भी धारण करलेता है ॥ १२ ॥ इन्द्रसरीखे भी बहुतसे नेत्रोंसे उस ऐश्वर्य भूत हुए अर्थात् निर्मल ब्रह्मस्वरूप हुए भूतात्माको आकाशमें घूमता हुआ नहीं देख सकते १३ सब कर्मोंसे असङ्ग हुए जो ब्रह्मसत्तम साधु पुरुष मनसे ओंकारका अध्ययन करते हैं वे उस योगीको देखते हैं (अर्थात् ॐकार वाचक व्यस्त समस्त स्वरूप अ, उ, म् ॐ इसप्रकार विराट् सूत्रान्तर्यामी और शुद्धस्वरूपमेंसे पूर्व २ का उत्तरोत्तरमें लय करनेसे जो उनको प्राप्त करते हैं वे उस योगीको देखते हैं)१४ यह प्रणव परब्रह्म है यह चिदाभासविशिष्ट वृत्तिके द्वारा विद्वान् ब्राह्मणोंके भीतर विचरता रहता है ॥ १५ ॥ (इस ओंकारकी ही दो श्लोकोंमें स्तुति करते हैं, कि-) यह ॐ शब्द (सब वर्णों

सम्भवः । वायुभूतोऽन्तरं प्राप्तो वदन्त्येवं द्विजातयः ॥१६॥ अरूपी रूपसम्पन्नो धातुभिः सह सङ्गतः । अन्तश्चरति भूतेषु कामकारकरो वशी ॥१७॥ एतत् पूर्वमनुध्याय मनसा पूरयन्निव । वेदात्मकं नद्रा यज्ञं चिंतयन्तो मनीषिणः ॥१८॥ ब्राह्मणा। शुच्यो

का अभिव्यञ्जक होनेके कारण) महानाद है, पुराण. अर्थात् नित्य है, और इसका अवलम्बन लेनेसे ब्रह्मके साथ एकी भाव होजाता है (श्रुतिमें कहा है कि–"एतद्वै सत्यकाम परं चापरं च यदोंकारस्तस्माद् विद्वानेतेनैवायतनेनैकतरमन्वेति-हे सत्यकाम! यह ओंकार ही पर और अपर ब्रह्म है इस आयतनके द्वारा ही विद्वान् पुरुष ब्रह्मसे एक होजाता है")यह ही(परापश्यन्तीसंज्ञक शुद्धशवल ब्रह्मात्मा होता हुआ) वायुभूत अर्थात् मध्यमारूप होजाता है और अन्तरको प्राप्त होजाता है अर्थात् मातृकामय वैखरी रूप होजाता है इस बातको ब्राह्मण कहते हैं ॥ १६ ॥ वह अरूपी रूपसम्पन्न है अर्थात् रूप रहित भी ओंकार वैखरी आदि रूपसे सम्पन्न है उसका कारण यह है कि–यह प्राणियोंके हृदयमें विचरण करता है इच्छाको करने वाला है और वशी अर्थात् असङ्ग है (श्रुतिमें लिखा है कि–"अन्नमयं हि सौम्य मनः आपो मयः प्राणः तेजोमयी वागिति–हे सौम्य!मन अन्नमय है प्राण जलमय है और वाणी तेजोमयी है" और शिक्षामें भी लिखा है, कि–"मनः कायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम्–मन कायाग्नि पर आघात करता है वह वायुको प्रेरित करता है इस प्रकार तेज जल और अन्नके योगसे शब्दकी उत्पत्ति होने का प्रमाण मिलता है) ॥ १७ ॥ इस प्रणवात्मक ब्रह्मपूर्व शास्त्र और आचार्यके उपदेशका चिन्तवन करके वेदात्मकश्रुतिसारभूत योग यज्ञकी भावना करते हुए अपनी उपाधिरूप मानसिक संकल्पसे व्याप्तसा करते हैं ॥ १८ ॥ यशस्वरूप ब्रह्मके साथ

दान्ता यशोयुक्तास्तदन्वयाः । ब्रह्मलोकं कान्तगाणा वैष्णवं पद-
मुत्तमम् ॥ १९ ॥ पदहेतोः क्रियाः सर्वाः कुर्वन्ति विगतज्वराः ।
न ह्येते प्रसवादाने भवमिच्छन्ति भारत ॥ २० ॥ त्रिभिर्माल्योप-
हारैश्च प्रतिभावैश्च वै द्विजः । यजन्ति परमात्मानं विष्णुं सत्व-
पराक्रमम् ॥२१॥ यजनं विक्रम चैव ब्रह्मपूर्वाः प्रचक्रिरे । ब्रह्मापि
वैष्णवं तेजो वेदोक्तैर्वचनैर्नृप ॥२२॥ ब्राह्मणैर्ब्रह्मविद्भिश्च ब्रह्मज्ञै-
र्ब्रह्मवादिभिः । शुचिभिः कर्मनिर्मुक्तैः सत्यव्रतपरायणैः ॥२३॥
धातुभिर्भोन्तकाले च महात्मा संप्रदृश्यते तदेव परमं ब्रह्म वैष्णवं
परमाद्भुतम् ॥ २४ ॥ रसात्मक तदैश्वर्यं विकारान्ते प्रदृश्यते ।

ऐश्वर्यको प्राप्त होने वाले चतुर और शुद्ध ब्राह्मण ब्रह्मसे ही उत्पन्न हुए हैं और शुद्ध ब्रह्म पदको चाहते हुए ब्रह्मलोकमें ही लीन होजाते हैं ॥ १९ ॥ हे भारत ! यह पदके कारण अर्थात् ब्रह्मपदको पानेके लिये सब क्रियाओंको करते हैं परन्तु हे भारत ! यह जन्म ग्रहण करनेके लिये जन्मको नहीं चाहते हैं (किन्तु ज्ञानके लिये जन्म ग्रहण करना चाहते हैं) यह प्रतिभासमात्र माल्यकी समान (विश्व तैजस प्राज्ञ) इन तीनका उपहार देकर अर्थात् इनका विलय करके सत्वपराक्रम परमात्मा और विष्णु का यजन करते हैं ॥ २१ ॥ वेदप्रमाणको ही मुख्य माननेवाले ब्राह्मण यजन अर्थात् योगको और विक्रम अर्थात् योगैश्वर्यको करते हैं क्योंकि—ब्रह्मवेत्ता ही वैष्णवतेज अर्थात् ब्रह्म होगया है और वेदोक्त प्रमाणोंसे भी (यह सिद्ध है, कि—ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति—ब्रह्म होता हुआ ही ब्रह्मको प्राप्त होजाता है) ।२२। ब्रह्मवेत्ता ब्रह्मज्ञ ब्रह्मवादी पवित्र कर्मोंसे छूटे हुए सत्यव्रतपरायण ब्राह्मण तेजोवन्नात्मक धातुओंसे दोनों शरीरोंके छोड़देने पर उस महात्मा परमात्माको देखते हैं वह ही परब्रह्म है वह ही परम अद्भुत है वह ही परमाद्भुत अर्थात् परमानन्दरूप है।२३।२४।

घोररूपा विकारास्ते व्यथयन्ति महात्मनः ॥२५॥ संच्छाद्यातीव तोयेन क्षुभ्यमाणो विचेतनः । ऊर्मिभिश्छाद्यते चैव शीतोष्णैर्विकारतः ॥ २६ ॥ महार्णवगतश्चैव दह्यते न च सज्जते । भग्नाश्चैव महानद्यः सलिलेनैव सीदति ॥ २७ ॥ सीदमानश्च सलिले स शीतात् पात्यते बलात् । आसनाच्छादनाच्चैव मुच्यमानो विचेतनः ॥२८॥ श्वभ्रे मपद्यमानश्च तोयेन परिपिच्यते । शुक्लवर्णेन बहुधा सूतसा मूर्ध्नि सर्वतः ॥ २९ ॥ ऊर्ध्वं ज्योति-

वह रसात्मक है (श्रुतिमें भी लिखा है, कि-"रसो वै सः" वह रसस्वरूप है) और वह परमानन्दात्मक ऐश्वर्यस्वरूप है (श्रुतिमें भी लिखा है, कि—वह ही इसकी परम सम्पत्ति है") और वह पूर्वोक्त (वायु आदि रूपके राजस) विकारोंके अन्तमें योगियोंकी दृष्टिमें आता है (इस प्रकार लोभप्रवृत्ति आदिके जनक राजस विचारोंका लय होने पर फिर सत्वोत्कर्ष होनेसे आत्म दर्शन होता है यह बात कही अब तामस भय आदि योगके विघ्नोंको घोर रूप आदि शब्दोंसे प्रकट करते हैं; कि-) वे भयंकररूप वाले विकार महात्माओंको पीड़ा देने लगते हैं२५ (अब व्यथाको पाँच श्लोकोंमें प्रकट करते हैं, कि-)वह जलसे आच्छादित होकर क्षुब्ध होकर अचेत होजाता है और शीतल और उष्ण लहरें उसको छाने लगती हैं और वह विकारवश महार्णवमें उतराता हुआ भस्मसा होता रहता है उस समय महानदियें अपनी मर्यादाको तोड देती हैं और वह जलके द्वारा कष्ट पाता है ॥ २६ ॥ २७ ॥ वह जलमें कष्ट पाकर शीतके कारण जोरसे गिर पड़ता है और वह आसन (बिछौने) और आच्छादन (ओढ़ने) से रहित हो अचेत होजाता है ॥ २८ ॥ और बहुधा शुक्लवर्ण वाले जलवर्षी बादलोंके नीचे पहुँच जाता है, उस समय उसका शिर गीला होजाता है ॥ २९ ॥ वह ऊपर

रवेन्नांश्च शुक्लैः पीतैश्च बाध्यते। वारिपूर्णैः सुगम्भीरैर्विद्युद्भिरिव भासितैः ॥ ३० ॥ एतैर्विकारैः संवृत्तैर्निरुद्धैश्चैव सर्वशः। ध्रुवमैश्वर्यमासाद्य सिद्धो भवति ब्राह्मणः ॥ ३१ ॥ रसात्मकं तदैश्वर्यं जिह्वाग्रादभिनिःसृतम्। सहस्रधारं विततं मेघत्वं समुपागतम् ॥३२। रसांश्च विविधान् योगान्त्संसिद्धः सृजते प्रभुः। धात्वर्थं सर्वभूतानां योगमात्रेन हेतुना ॥ ३३ ॥ तेजसो रूपमैश्वर्यं विकारैः सह वर्धते। आत्मनो विघ्नजननं स्वस्थो ब्राह्मणकारणे ॥ ३४ ॥ उग्ररूपैर्विरूपैश्च हन्यते दण्डपाणिभिः। घोररूपैः सगम्भीरैः पिंगाक्षैर्नरविग्रहैः ॥ ३५ ॥ नेत्रं समुद्धरन् भीमं जिह्वाग्रं चास्य विंदति। नदन्ति युगपन्नादं जृम्भमाणाः पुनः

ज्योतिको देखता है, उधर श्वेत पीले बिजलीकी समान भासमान जल भरे हुए गम्भीर मेघ उसे बाधा देने लगते हैं ॥३०॥ जब ये विघ्न पूर्णरूपसे होते हैं और योगी इनका निरोध कर लेता है, तब वह ब्राह्मण योगी अटल ऐश्वर्यको पाकर सिद्ध होजाता है ॥ ३१ ॥ तदनन्तर रसात्मक ऐश्वर्य मेघ बन कर उस की जिह्वाके अग्रभागमेंसे सहस्रों धारोंसे बरसता है ॥ ३२ ॥ वह सिद्ध हुआ प्रभु योगी योगसे प्राप्त हुए ऐश्वर्यसे सब प्राणियों के शरीरके भोगके लिए (ऐश्वर्य) भोगको रचता है ॥३३॥ ब्राह्मण (अर्थात् ब्रह्मवेत्ता) के कारण (मोक्षके साधन) योगमें स्वस्थ पुरुषके सामने आत्मदर्शनमें विघ्न डालने वाले तेजरूप ऐश्वर्य विघ्नोंसहित बढने लगते हैं ॥ ३४ ॥ उस समय उग्ररूप धारण करने वाले कुरूप, घोररूप, गम्भीर और पीली आँखों वाले मनुष्यशरीरधारी व्यक्ति हाथमें दण्ड लेकर योगी को पीडा देने लगते हैं ॥३५॥ एक पुरुष इसके नेत्रको उखाडता है और दूसरा इसकी जिह्वाको तोडने लगता है और बहुतसे पुरुष एक साथ जँभाई लेकर इसके पास एक साथ नाद करने

पुनः ॥३६॥ पुनरेव तदा भूत्वा बहुरूपास्तदाभवन् । नृत्यमानाः प्रगायन्ति तर्पयन्तो विशेषतः ॥ ३७ ॥ स्त्रीभूताश्च ततः सर्वे युञ्जानाश्चावलम्बिरे । कण्ठेषु बहुरूपत्वाद्विघ्नैश्चैव प्रलोभयन् ३८ मधुरैरभिशब्दैश्च व्याहरन्ति न भीतवत् । पतन्ति युगपत् सर्वे पादयोर्मूर्धभिर्युताः ॥ ३९ ॥ प्रसादं कांक्षमाणाश्च योगस्यान्तर-विघ्नतः । बहुप्रकारं कथयन्नृत्यन्ति च चरन्ति च ॥ ४० ॥ एतै-र्विकारैः संवृत्तैर्निरुद्धैश्चैव सर्वशः । ध्रुवमैश्वर्यमासाद्य सिद्धो भवति ब्राह्मणः ॥४१॥ तदर्चिष इवाग्नेया आदित्यस्येव रश्मयः। तेजोरूपकमैश्वर्यं जनितास्तेजबिन्दवः ॥ ४२ ॥ ज्योतींषि चैव संवृत्ता आकाशमुपसङ्गताः । चरन्ति लोके सततं सूर्याचन्द्रमसो-र्जितम् ॥ ४३ ॥ चन्द्रसूर्यात्मकं दिव्यं ज्योतिषाद्भुतमुत्तमम् । एत-

लगते हैं ॥ ३६ ॥ फिर वे पुरुष बहुतसे रूप धारण कर लेते हैं और योगीको तृप्त करनेके लिए गाते हैं और नाचते हैं ॥३७॥ तदनन्तर वे सब स्त्रियें बन जाते हैं और योगीके कण्ठमें लिपटने लगते हैं और भी अनेक प्रकारके विघ्न करके इसको लोभमें डालने लगते हैं ॥३८॥ निडर हो और मधुर नाम लेकर भाषण करते हैं,फिर वे सब एक साथ अपने मस्तकोंको योगीके चरणोंमें धर देते हैं ॥ ३९ ॥ वे योगमें विघ्न डालनेके लिए योगीको प्रसन्न करना चाहते हैं, इस लिये वे अनेक प्रकारकी बातें करते हैं और नाचते हैं, इस प्रकार वे योगीको जीत भी लेते हैं ।४०। इन विकारोंके पूरा जोर दिखाने पर भी जो इनको जीत लेता है वह ब्राह्मण ध्रुव ऐश्वर्यको पाकर सिद्ध होजाता है ॥ ४१ ॥ आदित्यकी किरणोंकी समान और अग्निकी लपटोंकी समान तेजोबिन्दुएँ भी उस समय जलबिन्दुएँ होजाती हैं ४२ सत्त्वादि गुणोंसे युक्त योगी ज्योतियोंमें संवृत्त होजाते हैं अर्थात् उनमें मिल जाते हैं, फिर वे सूर्य और चन्द्रमामें मिल कर लोकमें सर्वदा

द्विभ्राजते लोके कालचक्रं ध्रुवं वरम् ॥४४॥ अर्धमासाश्च मासाश्च ऋतुसंवत्सरास्तथा । क्षणा लवा मुहूर्ताश्च बलाः काष्ठास्तथैव च ॥४५॥ अहोरात्रं प्रमाणं च निमिषोन्मेषणं तथा । ताराणां गतयश्चैव ग्रहाणां च विशेषतः ॥ ४६ ॥ अथ पार्थिवमैश्वर्यं विकारग्रहसम्भवम् । योगयुक्तास्त्वभिग्रस्ता पात्यन्ते ह्यचलासनात् ॥ ४७ ॥ अलोभाच्छिद्यते सद्यो वेपमानोऽनुकीर्त्यते । सीदते वसुधामध्ये भिद्यमानः पुनः पुनः ॥ ४८ ॥ भूतानां बहुरूपैश्च अन्यैश्च तलवासिभिः । विपर्ययैर्युज्यते क्षिप्रं संक्षेपात् समवरुध्यते ॥४९॥ ततः पार्थिवमैश्वर्यं सेवमानश्च सर्वतः । मूर्तिमद्भिश्च बहुधा धातुभिः स च हन्यते ॥ ५० ॥ शक्तितोमरनिस्त्रिंशैर्गदाभिश्चाप्यनेकशः । असिभिः पात्यते चैव क्षुरधारैः सहस्रशः ५१

घूमते रहते हैं ॥ ४३ ॥ योगी सूर्यचन्द्रात्मक उत्तम ज्योति वाले शरीरको धारण कर लेता है, वही योगी श्रेष्ठ कालचक्रके रूपमें संसारमें विराजता है ॥ ४४ ॥ (यही योगी) अर्धमास (पक्ष) मास ऋतु सम्वत्सर क्षण लव मुहूर्त बल काष्ठा, दिन रातका प्रमाण, निमेष उन्मेष, तारोंकी गति और ग्रहोंकी गति (होजाता है) ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ रजस्तमोमय विकारोंके स्वीकार करनेसे होनेवाले पार्थिव ऐश्वर्यको पाकर योगयुक्त पुरुष जब ग्रस्त हो जाते हैं तब वे विकार उनको अचल आसनसे गिरा देते हैं ४७ लोभ न करनेसे (विघ्नस्वरूप) ऐश्वर्य छिन्नभिन्न होजाता है और जो विघ्नोंसे काँप कर डर जाता है वह निन्द्य होजाता है, वह वारम्वार पृथ्वीमें वारम्वार विशीर्ण होकर कष्ट पाता रहता है ॥ ४८ ॥ और तलवासी अनेक रूपधारी प्राणियोंके विपर्यों से युक्त होजाता है ॥ ४९ ॥ तदनन्तर पार्थिव ऐश्वर्यका सेवन करता हुआ योगी बहुतसी मूर्तिमती धातुओं (शरीर) से पिटता है ॥५०॥ उसको भौम विकार शक्ति तोमर तलवार और गदा

भिद्यते चैव बाणाग्रैः सुतीक्ष्णैर्मर्मभेदिभिः । एभिर्निकारैर्निवृत्तैर्निरुद्धैश्चैव सर्वशः ॥ ५२ ॥ ध्रुवमैश्वर्यमापन्नः सिद्धो भवति ब्राह्मणः । ततः पार्थिवमैश्वर्यं निर्मुक्तस्य विकारतः ॥ ५३ ॥ प्रादुर्भवति सञ्जाते समाधौ प्रलयं गते । दिव्यं गन्धं समाघ्राय दिव्यार्थांस्ताञ्छृणोति च ॥ ५४ ॥ दिव्यरूपैश्च पुरुषैश्छिद्यते न च भिद्यते । गच्छन्सुकृतिना चान्तः प्रधानात्मा त्वरन्निव ५५

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि
एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

वैशम्पायन उवाच । ततोऽन्यां धारणां गत्वा मनसा स पिता-

तथा तेज धार वाली तलवारोंसे गिराते हैं ॥ ५१ ॥ और मर्मभेदी तीक्ष्ण बाणोंकी अनियोंसे मरते हैं, जब यह विकार पूर्ण जोर दिखाते हैं उस समय जो इनके निरोध करने पर भी अचल रहता है वह ब्राह्मण ध्रुव ऐश्वर्यको पाकर सिद्ध होजाता है,तदनन्तर जब वह विकारसे मुक्त होजाता है, तब उसमें पार्थिव ऐश्वर्य प्रकट होता है ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ जब समाधि होजाती है और विकार लीन होजाते हैं; तब वह दिव्य गंधोंको सूँघ कर दिव्य वार्तोंको सुनता है और (जब तक उसका शरीरपात नहीं होता है तब तक) दिव्य पुरुषोंसे भिन्न रहता है, और देहपात होने पर फिर उनसे भिन्न नहीं रहता है और सुकृतियोंके अन्तः करणमें प्रवेश करता है, क्यों कि–यह प्रधानात्मा (प्रधानजयी) है अर्थात् यह प्रधानकी समान परिणत होता (बदलता) हुआ सर्वान्तः करणरूप होजाता है ५४-५५ उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त

वैशम्पायनजीने कहा, कि-निर्मुक्त आत्मा वाले पितामहने ब्रह्मकर्मका आरम्भ करनेके अनन्तर मनसे दूसरी धारणाकी

[नीलकण्ठ–"चतुर्दशे पृथग्भूतधारणा भीतिदा मतः। अतः सूत्रे मनो धार्यमभयायेति वर्ण्यते-क्योंकि–भेददर्शनमयी एक २ भूतों

महः । ब्रह्मकर्मसमारम्भं निर्मुक्तेनान्तरात्मना ॥ १९ ॥ सर्वाङ्ग-

की धारणा क्षुद्र फल देने वाली है और पूर्वोक्त रूपसे योगमें विघ्न करने वाली है, इस लिये अभय पानेके लिये सूत्रात्मामें मन को लगाना चाहिये, इस बातको मुनि चौदहवें पुष्करप्रादुर्भावाध्यायमें कहते हैं" कि इस कारण वह उससे विपरीत "अहमेवेदं सर्वोस्मीति मन्यते मैं ही यह सब हूँ ऐसा मानता है" अर्थात् "स एवास्य परमो लोकः-वही इसका परम लोक है" ऐसी श्रुतिप्रसिद्ध समष्टि धारणाको प्राप्त होकर वह व्यापक अर्थात् सर्वात्मा होजाता है। पितामह उक्तरीतिसे शुद्ध चिन्मात्ररूप भी होता हुआ मन अर्थात् उपाधिसे ही सार्वात्म्यको प्राप्त होजाता है किंतु स्वतः नहीं होता. कैसे मनसे वह धारणाको करता है, इसको कहते हैं, कि-ब्रह्मकर्म अर्थात् ब्रह्मप्रापक आसनादि धारणान्त तकके कर्मको भली प्रकार आरम्भ करके बाह्यादि रूपोंसे निवृत्त अत एव अन्तरात्मासे अर्थात् भीतर हार्दाकाश आदिमें ही इसका आत्मा स्वरूप है, बाहर चक्षु आदि द्वारा रूप आदिमें इसका स्वरूप नहीं है। तात्पर्य यह है कि-"इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः। मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः ॥-इन्द्रियों से अर्थ पर हैं मन अर्थोंसे पर है, बुद्धि मनसे पर (श्रेष्ठ) है, जो बुद्धिसे पर है वही आत्मा है" इत्यादि स्मृतियोंसे परमात्मा सबसे सूक्ष्मतम है। अर्थ यद्यपि इन्द्रियोंसे पर अर्थात् सूक्ष्म हैं तो भी उनके द्वारा ग्रहण करने पर लोचनोत्तेजनसे पुस्तकके अक्षरोंकी समान स्थूल ही अवभासित होते हैं, इसी प्रकार आत्मा अनतिरिक्त होने पर भी अतिरिक्त (भिन्न) भासता है, जिस प्रकार कि बालकका हाथ ही दर्पणमें बालकसे अतिरिक्त प्रतीत होता है, अन्यथा योगीका समाधिमें सर्वज्ञत्व नहीं होसकता। सबके स्वरूपसे अन्य होनेके कारण "कस्मिन्नु

धारणां कृत्वा मनसा प्रहसन्निव । ब्रह्मयोगेन च ब्रह्मा सृजते

भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवतीत्येकविज्ञानात् सर्वप्रतिज्ञा-श्रुतेरुपरोधश्च स्यात्–हे भगवन् ! किसके जानने पर सबका ज्ञान होजाता है, हे वत्स ! एकके जानने पर सबका ज्ञान होजाता है, इस श्रुतिका भी विरोध होजावेगा" और योगियोंका सार्वज्ञ सर्वसम्मत है अतः उसका अपलाप नहीं किया जासकता। इस लिये इन्द्रियोंका उपसंहार होने पर अर्थोंका स्थूलत्व और अनात्मत्व भी दूर होजाता है, अत एव कहा है, कि—वह दूसरी धारणाको प्राप्त होकर व्याप्त होजाता है। यहाँ सूक्ष्मत्वसे कालिक परिणामरहितत्वका ग्रहण करना चाहिये यथा सुवर्ण आदिका कुण्डलादि धर्मपरिणाम स्वरूपका अविनाश होने पर भी रूपान्तरप्राप्तिरूप होजाता है इसी प्रकार कुण्डल आदिकी उत्पत्तिसे पहिले और बादको अतीत और अनागत और वर्तमान स्वरूप उत्पन्न होते हैं इस प्रकार तीन प्रकारका लक्षणपरिणाम होता है, और स्वरूप-प्रच्यव (स्वरूपच्युति) और अप्रच्यव (अच्युति) सिद्धिरूप, तथा उत्पन्न हुएका नूतनत्व और पुराणत्व आदि अवस्थारूप परिणाम स्वरूपोपचयापचय-लक्षण है, ये दोनों भी कालाधीन ही हैं; अत एव उक्तरूप सूक्ष्ममें सब सर्वत्र सर्वदा स्थित है, तदवस्थ योगियोंको उसका अपरोक्ष (प्रत्यक्ष) प्रसिद्ध ही है अतः समष्टि-सूक्ष्ममें चित्तधारणा श्रेयस्करी है, क्योंकि–भेददृष्टिगर्भित दूसरी धारणाओंमें भय आदिका होना सम्भव है, और "यन्मदन्यन्नास्ति कस्मान्नु बिभेमीति, तत एवास्माकं भयं विहाय कस्माद्बिभेष्यन्ति द्वितीयाद्वै भयं भवति–अर्थात् जब मेरे अतिरिक्त और कोई नहीं है, तो मैं किससे डरूँ, अत एव हमारे (शिष्य) पुरुष फिर किससे डरेंगे, क्योंकि-दूसरेसे ही भय होता है"

मनसा प्रजाः ॥ २ ॥ चक्षुषा रूपसम्पन्ना ह्यप्सरा सृजते प्रभुः।
नासिकाग्राच्च गन्धर्वान्सुचित्राम्बरवाससः ॥३॥ तुम्बुरुप्रमुखा-
न्सर्वाङ्गनशोथ सहस्रशः । नृत्यवादित्रकुशलान् कुशलान् सम-
गीतिषु ॥ ४ ॥ब्रह्मयोगेन योगज्ञः स्वयम्भूर्भगवान् प्रभुः। चारु-
नेत्रां सुकेशान्तां सुभ्रूं चारुनिभाननाम् ॥ ५ ॥ पद्मेन शतपत्रेण
चारुणा सुविराजिताम् । स्वच्छां शुचिगिरं सेव्यां ब्राह्मीं मूर्तिमतीं

इस श्रुतिमें दिखाये हुए उपायसे भयका अन्त होजाता है] १
ब्रह्माजी ब्रह्मयोगसे सर्वाङ्गधारणाको करके मनमें प्रसन्न होकर
प्रजाको रचने हैं [नीलकण्ठ—इसके फलको कहते हैं, कि—सब
अङ्गोंमें इसका ही वर्तमानत्व है ऐसे सर्वाङ्ग सूत्रात्मा, मूढताके
माहात्म्यसे विस्मय पाकर हँसनेसे लगे,मनकी आवृत्तिसे सूत्रात्मता
और सृज्यत्वका कल्पितत्व सूचित किया है] ॥ २ ॥ उन प्रभुने
नेत्रसे रूपवती अप्सराओंको रचा और नासिकाके अग्रभागसे
सुन्दर और लहरियेदार वस्त्र पहिरने वाले गन्धर्वोंको उत्पन्न
किया [नीलकण्ठ—योगपक्षमें सब अङ्गोंके सर्वात्मत्व होनेसे
सर्वोत्पत्तिहेतुत्वके उचित होनेसे अङ्गविशेषकी विवक्षा नहीं है]३
तथा समान गानमें और नृत्य वादित्रमें चतुर तुम्बुरु आदि प्रधान
सैकड़ों और सहस्रों गन्धर्वोंको रचा ॥ ४ ॥ योगको जानने वाले
स्वयम्भू भगवान् प्रभु ब्रह्माने ब्रह्मयोग (सूत्रैक्य) से सुन्दर नेत्र
वाली, सुन्दर केशान्त वाली सुन्दर भौं वाली,सुन्दर मुख वाली
और शतपत्र (सैंकड़ों पत्ते) वाले सुन्दर पद्मसे विराजित मूर्ति-
मती श्रीकी समान स्वच्छ(दिव्यलोचनरूप) शुचिवाणी(निष्कलंक
वेदवाणी) को रचा (श्रुतिमें भी लिखा है, कि—"सा हि श्री
ब्रह्मविदां ऋचः सामानि यजूंषि सा हि श्रीरमृता सताम् वह
ब्रह्मवेत्ताओंकी श्री है, वही ऋक् यजु और सामस्वरूप है
और वह श्री ही सज्जनोंकी अमृत है") ॥ ५ ॥ ६ ॥

श्रियम् ॥६॥ ससृजे मनसा ब्रह्मा सम्यक् प्रोक्तेन चेतसा। भाव-
योगेन भूतात्मा सर्वप्राणभृतान् नृप ॥ ७ ॥ चक्षुषो रूपसंपन्नाः
सृजत् सोप्सरसः प्रभुः । नासिकाग्राच्च गन्धर्वान्स्सुवासः सुप्रवा-
दितान् ॥ ८ ॥ गानप्रभावं सृष्टके गन्धर्वाणामशेषतः । अन्येषां
चैव विप्राणां गानं ब्रह्मप्रभाषितम् ॥ ६ ॥ पद्भ्यां सृजति भूतानि
गतिमन्ति ध्रुवाणि चानरकिन्नरयक्षांश्च पिशाचोरगराक्षसान् १०
गजान् सिंहांश्च व्याघ्रांश्च मृगांश्चैव सहस्रशः । तृणजातींश्च
बहुधा भावहेतोश्चतुष्पदान् ॥ ११ ॥ ये तु हस्तान्निखादन्ति
कर्मपाशेन हेतुना । हस्तेभ्यः कर्म ससृजे मन्तव्यं मनसा तथा१२

हे राजन् ! भूतात्मा ब्रह्माने भावयोगसे सब प्राणधारियोंको धारण करने वाले सम्यक्प्रोक्त चित्तसे इस वेदवाणीको रचा था (यहाँ पर सृष्टि शब्दसे सम्प्रदायमात्रकी प्रवृत्ति समझनी चाहिये, अभिनव उत्पत्ति नहीं समझनी चहिये, क्योंकि—वेद नित्य सुना जाता है. इसी लिये यहाँ पर प्रोक्त (ईश्वरप्रोक्त) शब्द कहा है, और 'यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै-जो वेदों की ब्रह्माको प्रेरणा करता है' इस श्रुतिसे भी सिद्धप्रधानश्रवण है और यह सर्वेश्वर है अतः जीवोंके आशयके अनुरोधसे यह रचता है अपने भोगके लिये नहीं रचता है ॥७॥ प्रभु ब्रह्माजी ने चक्षुसे रूपसम्पन्न अप्सराओंको रचा और अग्रभागसे सुंदर वस्त्र वाले और सुन्दरतासे गान करने वाले गन्धर्वोंको रचा ८ और गन्धर्वोंके लिए गानप्रभास (गान्धर्वशास्त्र) को रचा और दूसरे ब्राह्मणोंके लिए ब्रह्मप्रभाषित (सामगान) को रचा ॥ ६ ॥ और उन्होंने पैरोंसे गति वाले ध्रुव प्राणियोंको रचा फिर उन्होंने सृष्टिके लिये मनुष्य किन्नर यक्ष पिशाच उरग राक्षस गज सिंह व्याघ्र चौपाये और बहुतसी तृणजातिको रचा ॥१०॥११॥ जो अदृष्टवश हाथमें लेकर भक्षण करते हैं,

वायुना स निसर्गं च भूतानां सुखमिच्छता । उपतस्थे तदानन्दं पञ्चेन्द्रियसमाधिना ॥ १३ ॥ हृदयादसृजद्गावो बाहुभ्यां पक्षिणस्तथा । अन्यानि चैव सत्त्वानि तैस्तैर्वर्णैः पृथग्विधैः ॥ १४ ॥ ऋषिं त्वङ्गिरसं चैव मुनिं ज्वलिततेजसम् । ब्रह्मवंशकरं दिव्यं व्यतिषिक्तषडिन्द्रियम् ॥ १५ ॥ भ्रुवोन्तरादजनयद्योगाद्योगेश्वरः

उनके लिये हाथोंसे कर्मको रचा और मनसे मन्तव्यको रचा १२ प्राणियोंके सुखको चाहनेवाले ब्रह्माने प्राणादिरूप वायुसे विसर्ग को अर्थात् विविध प्राणनादि कार्यको रचा (अब शंका होती है, कि-ऐसी राजसी सृष्टि करने पर मुक्ति कैसे मिल सकती है, तो इसका समाधान करते हैं, कि-) पाँच इन्द्रियोंके निरोधरूप समाधिसे वह आनन्द(परमात्मा) के पास स्थित रहते हैं(अर्थात् लीलासे सृष्टि करते हुए भी ब्रह्मकी समीपताको प्राप्त होनेसे मुक्त ही हैं १३ उन्होंने अपने हृदयसे गौओंका रचा और भुजाओंसे पक्षियोंको रचा तथा दूसरे सत्त्वोंको(परिणमित होकर नहीं किंतु नटकी समान)उनके ही रूपोंको धारण करके रचा और छः इन्द्रिय ने जिनका आश्रय लेलिया था ऐसे ब्रह्मवंशके प्रवर्तक प्रज्वलित तेज वाले अङ्गिरा मुनिको भी उन्होंने रचा हम सर्वसाधारण पुरुषोंके तो शब्द आदि विषय श्रोत्र आदिमें नियत हैं, परन्तु सार्वात्म्यकालमें तो सब इन्द्रियें सब विषयोंकी ग्राहक होजाती हैं, अत एव व्यतिषक्तषडिन्द्रिय-छः इन्द्रियोंने जिनका आश्रय लेलिया था ऐसे योगी अङ्गिराकी सृष्टि कही है । योगवासिष्ठ में कहा भी है, कि-"सर्वात्मनि तु यत्रैव छाया तत्रैव चातपः । न संभवति चेत् तत् स कथं सर्वात्मतामियात्-सर्वात्मामें ज्ञान छाया और आतप (धूप) एक स्थान पर न हो सकती हो तो वह व्यक्ति सर्वात्मताको ही क्या प्राप्त हुआ"] ॥ १४ ॥ १५ ॥ योगेश्वर प्रभु ब्रह्माजीने योगके द्वारा भौंहोंके मध्यमेंसे ब्रह्मवंशके

प्रभुः । ब्रह्मवंशकरं दिव्यं भृगुं परमधार्मिकम् ॥ १६ ॥ ललाट-
मध्यादसृजन्नारदं मित्रविग्रहम् । सनत्कुमारं मूर्ध्नश्च महायोगी
पितामहः ॥ १७ ॥ अभिषिक्तं तु सोमं च यौवराज्ये पितामहः ।
ब्राह्मणानां च राजानं शाश्वतं रजनीश्वरम् ॥ १८ ॥ तपसा
महता युक्तो ग्रहैश्च हपुरःसरः । चचार नभसो मध्ये प्रभाभिर्भास-
यन् जगत् ॥ १९ ॥ स गात्रैर्भगवान् योगान् मनसा सिद्धि-
मागतः । सृष्टवान्त्सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च ॥ २० ॥
तत्र स्थानानि भूतानां योगांश्चैव पृथग्विधान् । विधत्ते शतशो
ब्रह्मा सर्वभूतपितामहः॥२१॥एष ब्रह्ममयो यज्ञो योगः सांख्यश्च

प्रवर्तक परम धार्मिक भृगुको रचा ॥ १६ ॥ और महायोगी पिता-
महने कलहप्रिय नारदको ललाटके मध्यमेंसे उत्पन्न किया और
मस्तकसे सनत्कुमारको उत्पन्न किया ॥ १७ ॥ पितामहने रात्रि
के ईश्वर ब्राह्मणोंके शाश्वत राजा सोमको युवराजके पद पर
अभिषिक्त कर दिया ॥ १८ ॥ तब बड़ेभारी तपसे युक्त चंद्रमा
ग्रहोंको साथमें ले अपनी प्रभासे जगत्को प्रकाशित करता हुआ
आकाशमें घूमने लगा ॥ १९ ॥ उधर सिद्धिप्राप्त भगवान् ब्रह्मा
भी मनसे उन २ शरीरोंको धारण कर सब चर और अचर भूतों
को रचने लगे ॥२०॥सब भूतोंके पितामह ब्रह्मा जी (आदित्य
आदिके द्यु आदि) स्थानोंको और (अहोरात्रादि निवर्तक)
पृथक् २ सैंकड़ों योगोंको रचते हैं ॥ २१ ॥ यह (आत्मोपादा-
नक सृष्ट्यादि प्रपञ्चसे और आसन ध्यान आदि समाधिके प्रपञ्च
से प्रपञ्चित ब्रह्मप्रापक होनेसे) ब्रह्ममय (ज्ञानयज्ञ कह दिया,
यह) योग अर्थात् योगप्राप्य है और सांख्य (नामक वेदान्त-
जन्य ज्ञान भी यही) है (यहाँ यह शंका नहीं करनी चाहिये,
कि-एक पुरुषत्व और अनेकपुरुषत्व, तथा प्रकृतिमिथ्यात्व और
अमिथ्यात्वरूप उनका विरोध कहा था तो योगके वर्णनसे ही

तत्त्वतः । विज्ञानं च स्वभावश्च क्षेत्रं क्षेत्रज्ञ एव च ॥२२॥ एकत्वं

सांख्यका वर्णन भी कैसे होसकता है ? क्योंकि- योगोंसे भी गुणों का परमरूप दृष्टिपथमें नहीं आता, जो दृष्टिपथमें आता है वह तो माया ही है, तुच्छ ही है, क्योंकि-भेदप्रकृति आदि दृश्य तुच्छ हैं यह सिद्ध ही है, अत यह (दृश्य) अत्यल्प कहलाते हैं। वेदबाह्य विज्ञानवादी चार्वाक आदि भी इस सिद्धान्तके विपरीत नहीं जाते हैं ,अतः कहा है सबके मनमें मोक्षका रूप एक ही है, (ही विज्ञानवादियोंका सिद्धान्त)विज्ञान है और (स्वभाववादी चार्वाकोंका) स्वभाव भी यही है और (निरीश्वर साङ्ख्य-सिद्धान्त) क्षेत्र अर्थात् प्रकृति और क्षेत्रज्ञ अर्थात् पुरुष भी यही है ॥ २२ ॥ यही ज्ञान एकत्व और पृथक्त्व है अर्थात् ज्ञान और अज्ञानके समय भेदसे अथवा जगत् आपसमें भिन्न है और ईश्वर से अभिन्न है ऐसे कापालिक मतसे प्रतीत होने वाला पृथक्त्व-ज्ञान भी यही है। और यह योग ही सम्भव और निधन है, तात्पर्य यह है,कि-यह ब्रह्ममय यज्ञ अज्ञान होने पर जन्मप्रद होता है और ज्ञात होने पर जन्मनाशक होजाता है। क्योंकि-स्मृतिमें लिखा है, कि-"योगो हि प्रभवाप्ययौ-योग ही उत्पत्ति और प्रलय है" और कालका प्रकाशक होनेके कारण कालवादियोंका काल भी यही है, जिसके होने पर कालका क्षय होजाता है,ऐसा विशिष्ट अनुभव पर्यवसायिज्ञान भी यही है। और आत्मानुभव-रूप विज्ञान भी यही है। इस बातसे मुक्तिमें सर्वतन्त्रसिद्धान्तोंकी एकरूपता दिखा दी (और बृहद्वासिष्ठमें भी वीतहव्यकी समाधिको लक्ष्य करके दर्शाया है, कि-"यच्छून्यवादिनां शून्यं यद्ब्रह्म ब्रह्मवादिनाम्। विज्ञानमात्रं विज्ञानविदां यदमलं पदम् ॥ पुरुषः सांख्यदृष्टीनामीश्वरो योगवादिनाम् । शिवः शैवमतस्थानां कालः कालैकवादिनाम् ॥ आत्मात्मनस्तद्विदुषां नैरात्म्यं

च पृथक्त्वं च सम्भवो निधनं तथा । कालः कालविदां चैव ज्ञेयं

तादृशात्मनाम् । मध्यं माध्यमिकानां च सर्वं सुसमतेजसाम् ॥ यत् सर्वशास्त्रसिद्धान्तो यत्सर्वहृदयानुगम् । यत्सर्वं सर्वगं सर्वं यत्तत्सदसौ स्थितः ॥—जो शून्यवादियोंका शून्य है, जो ब्रह्मवादियोंका ब्रह्म है, जो विज्ञानवेत्ताओंका अमल पद विज्ञानमात्र है, सांख्यशास्त्रको मानने वालोंका पुरुष है; योगवादियोंका ईश्वर है, शैवमत वालोंका शिव है, एकमात्र कालको मानने वालोंका काल है, आत्मवेत्तओंका आत्मा है, निरात्मवादियोंका निरात्मा है,माध्यमिकोंका मध्य है,समचेताओं का सर्व है, जो सकल शास्त्रोंका सिद्धान्त है,जो सबके हृदयोंमें रहता है, जो सर्व है, सर्वग और जो सत् तथा तत् है [वह आत्मा है-]" पद्मपुराणके माघमाहात्म्यमें भी लिखा है, कि- "भूतयोगजचैतन्यं चार्वाकास्त्वामुपासते । सौगता ब्रुवते तर्कैस्त्वां बुद्धिं बोधलक्षणम् ॥ शरीरपरिणामं त्वां मन्यन्ते जिनदेवताः । ध्यायन्ति पुरुषं साङ्ख्यास्त्वामेव प्रकृतेः परम् ॥ जन्मादिरहितं पूर्णं सच्चिदानन्दलक्षणम् । त्वामौपनिषदा ब्रह्म चिन्तयन्त्यनिशं विभो इत्यादि-चार्वाक आपकी भूतयोगजचैतन्यरूपमें उपासना करते हैं, सौगत तर्कोंके द्वारा बोधलक्षण बुद्धिरूपमें उपासना करते हैं, जिनको देवता मानने वाले आपको शरीरपरिणामरूप मानते हैं,और साङ्ख्यवादी प्रकृतिसे पर पुरुषमें आपकी उपासना करते हैं और हे विभो ! औपनिषद्-उपनिषदको मानने वाले-पुरुष आपको जन्मादिरहित पूर्ण सच्चिदानन्दलक्षण ब्रह्म विचारा करते हैं" यहाँ तक ब्रह्मविद्या समाप्त होगई,अब आगे धर्मचर्चा का वर्णन होगा । "परैरदर्शितः पन्थाः पौर्वापर्यबलान्मया । यथा कथञ्चिदुन्नीतः पण्डिताः शोधयन्तु तम्-दूसरोंने मार्ग नहीं दिखाया था, मैंने पूर्वापरके बलसे मार्गका किसी प्रकारका उद्धार कर

विज्ञानमेव च ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

जनमेजय उवाच । श्रुतं ब्रह्मयुगं ब्रह्मन् युगानां प्रथमं युगम् । क्षत्रस्यापि युगं ब्रह्मञ्छ्रोतुमिच्छाम्यहं प्रभो ॥ १ ॥ ससंक्षेपं सविस्तारं नियमैर्बहुभिश्चितम् । उपायज्ञैश्च कथितं क्रतुभिश्चैव

दिया है, पण्डित पुरुष उसको (और) शोध लें" ॥ २३ ॥ बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २० ॥

जनमेजयने कहा, कि—हे ब्रह्मन् ! मैंने युगोंमें प्रथम युग ब्रह्मयुग सुन लिया, अब मैं उपाय जानने वाले पुरुषोंके द्वारा कहे हुए,यज्ञोंसे सुशोभित, बहुतसे नियमोंसे चित क्षत्रयुगको विस्तार और संक्षेपपूर्वक सुनना चाहता हूँ [नीलकण्ठ—"जीवन्मुक्त्यै ब्रह्मतत्त्वं चतुर्दशभिरीरितम् । अथ द्वादशभिर्धर्मं ब्रवीति क्रममुक्तये॥—चौदह अध्यायोंमें जीवन्मुक्तिके लिए ब्रह्मतत्त्व कहा, अब बारह अध्यायोंमें क्रममुक्तिके लिए धर्मका वर्णन किया जाता है' ब्रह्मप्राप्तिरूप हेतुके कारण प्रथमयुग कृतयुग अथवा ब्रह्मयुग कहदिया । क्योंकि—उसमें सब धर्मोंके फलका अन्तर्भाव होजाता है । श्रुतिमें लिखा है, कि—"कृताय विजितायाधनेयाः संयन्त्येवमेनं सर्वं तदभिसमैति, यत् किं च प्रजाः साधु कुर्वन्तीति-जिस प्रकार विजेता पुरुषके पास निर्धन पुरुष जाते हैं, इसी प्रकार साधु कर्म करने वाली प्रजा कृत (योगधर्मी अथवा पूर्ण धर्मात्मा) पुरुषके पास जाती है'इस प्रकार श्रुतिमें कृतयुगको ब्रह्मयुग कहा है । और 'क्षत्रं यद्धर्मः—जो क्षत्र है वह धर्म है' इस प्रकार क्षत्रशब्द धर्ममें रूढ है । 'युज्यते अनेनेति युगं स्वर्गादिफलप्रदत्वलक्षणमाहात्म्यम्—जिससे युक्त होता है उस स्वर्ग आदि फलको देने वाले माहात्म्यको सुनना चाहता

शोभितम् ॥ २ ॥ वैशम्पायन उवाच । एतत्ते कथयिष्यामि यज्ञ-कर्मभिरर्चितम् । दानधर्मैश्च विविधैः प्रजाभिरुपशोभितम् ॥३॥ तेऽङ्गुष्ठमात्रानुनय आदत्ताः सूर्यरश्मिभिः । मोक्षप्राप्तेन विधिना

हूँ' अर्थात् धर्मके स्वर्ग आदि फल देने वाले माहात्म्यको सुनना चाहता हूँ ॥' तत्र पञ्चादशे ब्रह्मज्ञानहीनाः महत्तमैः । कर्मभिर्ब्रह्मलोकादप्यावर्तन्त इतीर्यते- अब पन्द्रहवें पुष्करमादुर्भावाध्यायमें इस बातका वर्णन किया जाता है, ब्रह्म-ज्ञानसे हीन पुरुष बड़े २ कर्मोंको करके किसी प्रकार ब्रह्मलोकोंमें पहुँच भी जाते हैं, तब भी उनको फिर लौटना पड़ता है] ॥ १॥२ ॥ वैशम्पायनजीने कहा, कि-मैं तुझसे यज्ञ कर्मोंसे अर्चित, बहुत से दानधर्म और प्रजाओंसे सुशोभित इस क्षत्र युगको कहता हूँ [नीलकंठ-यह धर्ममाहात्म्य,जिनका कर्म यज्ञात्मक ही है उपासनादिक नहीं है ऐसे यज्ञकर्मियोंसे अर्थात् कर्मठोंसे पूजित है,दानधर्मोंसे शोभित है दक्षिणा देने वाले सज्जन पुरुष स्वर्गमें स्थित होते हैं, अश्वका दान करने वाले सूर्यके साथ स्थित होजाते हैं और सुवर्णका दान करने वाले अमृतत्वको पाते हैं और वस्त्रका दान करने वाले सोमके पास जाते हैं। इन अर्थोंको बताने वाली आगे कही हुई श्रुतियोंमें कहे हुए दानज प्रभावोंसे उपशोभित है। "उच्चा दिवि दक्षिणावन्तो अस्थुर्ये अश्वदाः सह ते सूर्येण हिरण्यदा अमृतत्वं भजन्ते वासोदाः सोमं प्रति" और प्रजाओंसे अर्थात् यस्मिन् जाते एतामिष्टिं निर्वपति पूत एव स तेजस्व्यन्नाद इन्द्रियावी पशुमान् भवति, पुत्रकामाप्याख्यापयेरन् लभन्ते ह पुत्रानिति-इस प्रकार शौनःशेपके आख्यान फलवाली प्रजाओं से सुशोभित है] ॥ ३ ॥ वे (वृत्तसम्पन्न ज्ञानसिद्ध ब्राह्मण सम्पन्न होजाते हैं जो) अंगुष्ठमात्र रूप अल्पप्रमाण में उत्क्रांति के योग्य होते हैं (आरण्यकमें लिखा है, कि—अंगुष्ठमात्रं पुरुषं

निराबाधेन कर्मणा ॥ ४ ॥ प्रवृत्ते चाप्रवृत्ते च नित्यं ब्रह्मपरायणाः । परायणस्य सङ्गम्य ब्राह्मणस्तु महीपते ॥५॥ श्रीवृताः पावनाश्चैव ब्राह्मणाश्च महीपते । चरितब्रह्मचर्याश्च ब्रह्मज्ञानावबोधिताः ॥६॥ पूर्णे युगसहस्रान्ते प्रभावे प्रलयं गताः । ब्राह्मणा वित्तसम्पन्ना ज्ञानसिद्धाः समाहिताः ॥ ७ ॥ व्यतिरिक्तेन्द्रियो

निश्चकर्ष यमो बलात् यमने अंगूठेकी समान प्रमाणवाले पुरुषको बलपूर्वक खेंचा, ऐसे कर्मज्ञानियोंका यहाँ ग्रहण किया गया है और य एवं वेदाहं ब्रह्मास्मीति स इदं सर्वं भवतीति—जो यह जानता है, कि-मैं ब्रह्मास्मि हूँ, और सर्व होजाता है ऐसे सार्वात्म्यभाजोंका यहाँ ग्रहण नहीं है,वे यज्ञकर्मी विशिष्ट श्रमसे सूर्यकी किरणोंके द्वारा ग्रहण किये जाकर(अर्थात्) मोक्षसमीपता प्राप्तिके लिये किये हुए शास्त्रोक्त कर्मोंको करनेसे(सूर्यमण्डलको भेद कर ब्रह्मलोकमें जाने पर भी,फिर लौट आते हैं क्योंकि—)४ (यज्ञ आदिके) प्रवृत्त करने पर भी (शम आदिके) अप्रवृत्त होनेके कारण सर्वदा ब्रह्म (वेद) में परायण रह कर भी परायण ब्रह्मके पास पहुँच कर हे राजन् ! (वे फिर लौट आते हैं) ॥ ५ ॥ हे राजन् ! श्री अर्थात् ऋचाओंसे संयुक्त पावन ब्राह्मण ब्रह्मचर्यको पाल कर परोक्ष ब्रह्मज्ञानसे अवबोधित हो (ब्रह्मलोकमें पहुँच कर फिर लौट आते हैं, वे कब लौटते हैं, इसका वर्णन अगले श्लोकमें किया गया है) ॥ ६ ॥ (पद्मासनकी आयुकी अवधि तक ब्रह्मलोकमें स्थित रह कर पूर्णकल्पमें जो लीन होजाते हैं अर्थात् जो सहस्र युगपूर्ण होने पर प्रलयको प्राप्त होजाते हैं वे अग्रिम कल्पमें) वित्तसम्पन्न समाहित ज्ञानसिद्ध ब्राह्मण बन कर उत्पन्न होते हैं ॥७॥ उन ब्राह्मणोंके मध्यमें जो योगात्मा होने पर) (स्वप्नकी समान) देह इन्द्रिय आदिसे असङ्ग अन्तःप्रज्ञ होकर चतुर्भुज आदि लक्षण

विष्णुर्योगात्मा ब्रह्मसम्भवः। दक्षः प्रजापतिर्भूत्वा सृजते विपुलाः प्रजाः ॥८॥ अक्षराद्ब्राह्मणाः सौम्याः क्षरात् क्षत्रियबान्धवाः। वैश्या विकारतश्चैव शूद्रा धूमविकारतः ॥ ९ ॥ श्वेतलोहितकैर्वर्णैः पीतैर्नीलैश्च ब्राह्मणाः। अभिनिर्वर्तिता वर्णाश्चिन्तयानेन विष्णुना ॥ १० ॥ ततो वर्णत्वमापन्नाः प्रजा लोके चतुर्विधाः। ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चैव महीपते ॥११॥ एकलिंगाः

वाले) विष्णु (के रूपमें अपनी भावना करता है वह भी समष्टि उपाधिसे रहित होनेके कारण भेददर्शी (निम्नलिखित श्लोकके अनन्तर क्रम मुक्तिके अनन्तर अधिकारसे इस कल्पमें) ब्रह्मा का पुत्र दक्ष प्रजापति बन कर बहुतसी प्रजाओंको रचता है (वह श्लोक इस प्रकार है, कि—ब्रह्मणा सह ते सर्वे सम्प्राप्ते प्रतिसञ्चरे। परस्यान्ते कृतात्मानः प्रविशन्ति परं पदम्—वे सब कृतात्मा प्रलयके समय ब्रह्माजीके साथ परम पदमें लीन होजाते हैं) ॥ ८ ॥ (दक्ष प्रजापति उस समय शुद्ध सत्त्वमय निष्काम-धर्म अर्थात् सुधाकी समान श्वेत धर्म) अक्षरसे ब्राह्मणोंको रचता है (और सत्त्वरजोमय उभयमिश्र होनेसे रक्त) क्षर धर्म से क्षत्रियोंको रचता है (और रजोमय होनेसे सकामोपनामक विकार धर्म हरिद्राकी समान पीत होता है ऐसे) विकारसे दक्ष वैश्योंको रचता है (और तमोमय होनेसे विधर्म धूमकी समान काला कहलाता है उस धूम विकारसे दक्ष शूद्रोंको रचता है ९ व्यापक दक्ष प्रजापति चिन्ता करके श्वेत रक्त पीत और नील वर्णोंसे ब्राह्मण (आदि)को रचता है १० हे राजन्! तबसे चार प्रकारकी प्रजा संसारमें ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र इन वर्णोंको प्राप्त होगई ॥११॥ तुल्य आकृति वाले यातनाके लिए अर्थात् सब कर्मोंमें कर्मफलभोगके लिए उन २ वर्णोंसे सम्पन्न हुए दो पैर वाले व्यक्ति पृथक् २ धर्म वाले होते हैं, वे परम

पृथग्धर्मा द्विपादाः परमाद्भुताः । यातनागाभिसम्पन्नाः गतिज्ञाः सर्वकर्मसु ॥ १२ ॥ त्रयाणां वर्णजातानां वेदप्रोक्ताः क्रियाः स्मृताः । तेन ब्राह्मणयोगेन वैष्णवेन महीपते ॥ १३ ॥ प्रज्ञया तेजसा योगात्तस्मात् प्राचेतसः प्रभुः । विष्णुरेव महायोगी कर्मणामन्तरं गतः ॥ ततो निर्माणसम्भूताः शूद्राः कर्मविवर्जिताः । तस्मान्नार्हन्ति संस्कारं न ह्यत्र ब्रह्म विद्यते ॥ १५ ॥ यथाग्नौ धूमसंघातो ह्यरण्या मथ्यमानया । प्रादुर्भूतो विसर्पन् वै नोपयुज्यति कर्मणि ॥ १६ ॥

अद्भुत होवे हैं (अर्थात् वे एकसी दो पैर आदि आकृति होने पर भी भिन्न २ धर्म वाले होते हैं, यह बड़ा आश्चर्य है) ॥ १२ ॥ (जिस कारणसे तीनों वर्णोंके लिये वेदोक्त क्रियाओंका विधान किया गया है, हे राजन् ! उस वैष्णव ब्राह्मणयोगसे तुम ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्योंका (त्रैवर्णिकत्व है, अर्थात् त्रैवर्णिकत्व विष्णुकी कृपासे ही प्राप्त होसकता है ॥ १३ ॥ कर्मोंके वशमें पड़े हुए महायोगी दक्ष प्रजापति प्रज्ञा और ज्ञानैश्वर्यरूप) तेजके कारण प्रभु विष्णु हैं (क्योंकि—पूर्वोक्त व्यतिरिक्तषडिन्द्रियतादिसे युक्त हैं, और "बहुप्रजा निर्ऋतिमाविवेशेति" इस श्रुतिके अनुसार बहुतसी प्रजा वाले होनेके कारण दक्ष हैं, केवल उनको संसारी ही नहीं समझना चाहिये, दक्ष अधिकारप्रद कर्मपाशसे अवगुण्ठित होनेके कारण सृष्टि आदि करते हैं, उन्हें कुछ बात अज्ञात नहीं है । इस प्रकार यह दिखाया है, कि-) जीवन्मुक्तोंको भी कर्मपाशकी अनुवृत्ति रहती है, ॥ १४ ॥ शूद्र निर्माणके लिये अर्थात् शिल्प और त्रैवर्णिकोंकी सेवा करनेके लिए उत्पन्न हुए हैं, इसी लिये वे (वैदिक) कर्मसे रहित हैं, और वे (उपनयन) संस्कारके योग्य नहीं है और उनमें ब्रह्म (वेद) नहीं रह सकता ॥ १५ ॥ जिस प्रकार अरणीके मथने पर अग्निमेंसे धूमका समूह निकलता है, वह प्रकट हुआ धूम

एवं शूद्रा विसर्पन्तो भुवि कात्स्न्येंन जन्मना। नासंस्कृतेन धर्मेण वेदप्रोक्तेन कर्मणा ॥ १७ ॥ ततोऽन्ये दक्षपुत्राश्च सम्भूता ब्रह्मयोनयः। बलवन्तो महोत्साहा महावीर्या महौजसः ॥१८॥ पित्रा प्रोक्ता महात्मानो दक्षिणा यज्ञकर्मणा । अन्तमिच्छाम्यहं श्रोतुं धात्र्याः पुत्राः बलो ह्यहम्॥ १९ ॥ ततो विज्ञास्ये तत्त्वज्ञः प्रजानां विपुलं बलम् । विपुलत्वाद्धि क्षेत्राणां ममापि विपुलाः प्रजाः २० न तेषां दर्शयन्देवी चक्षुषा रूपमात्मनः।प्रजापतिसुतानां वै विपुला-

---

समूह चलता तो है, परन्तु वह कर्मके उपयोगमें नहीं आता १६ इसीप्रकार जन्मसे एकसे होने पर भी सरकते हुए शूद्र वेदप्रोक्त असंस्कृत धर्म और कर्मके उपयोगमें नहीं आसकते ॥ १७ ॥ तदनन्तर वेदके स्थानभूत महावीर्य महाबलवान् और श्री दक्षके बहुतसे पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १८ ॥ उस समय यज्ञकर्म करने वाले पिता दक्षने कहा, कि-हे समर्थ पुत्रों ! मैं आपके मुखसे (तुम्हारे शरीरको उत्पन्न करने वाली) धात्रीके सिद्धान्तको सुनना चाहता हूँ (अतः मुझसे उत्पत्तिके सिद्धान्तको कहिये) क्योंकि-मैं बलवान् हूँ (अर्थात् उत्पत्तिके सिद्धान्तको समझने में समर्थ हूँ; अतः तुमको भी मुझ सरीखा बनना चाहिये) १९ (तुमसे उत्पत्तिके सिद्धान्तको सुन कर तुम्हारे बलाबलके) तत्त्व को जान कर (यदि तुम अबल होगे तो मैं तुममें) विपुलत्वको स्थापित करूँगा (यहाँ यह शंका न हो कि-दक्ष प्रजापतिमें ऐसा बल कहाँसे आया; तो इसका उत्तर देते हुए कहा है; कि-) क्षेत्र की विपुलतासे (बलकी विपुलता होती है, अन्यथा अल्पत्व होता है; यथा-मशक और गजमें, इसी प्रकार बहुतसी प्रजाओं को रचते हुए मुझमें भी) बल है (इस लिए धात्री उत्पादिका के स्वरूपको जान कर सृष्टिमें प्रवृत्त होना चाहिये, अन्यथा सृष्टि-संगसे दूषित होना संभव ही है) ॥२०॥ विपुला मायाके शार-

सारमिच्छताम् ॥ २१ ॥ आत्मनो भावनिर्वृत्ते भावे कृतयुगे तदा ।
जनित्री सर्वभूतानामण्डजानुद्भिजांस्तथा ॥ २२ ॥ संवेदजननी
धात्री चेति मात्रा प्रचोदिता । अणुतां तनुतां चैव जन्तूनां कर्म-
भोगिनाम् ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि
एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

जनमेजय उवाच । साध्वहं श्रोतुमिच्छामि त्रेतायां ब्राह्मणोत्तम ।

को जाननेकी इच्छा वाले दक्षके पुत्रोंको धात्री देवीने चक्षुःप्रमाण से रूप नहीं दिखाया (तात्पर्य यह है, कि-जैसे दीपकसे अन्धकारका प्रत्यक्ष नहीं होता, इसी प्रकार किसी प्रमाणसे मायाका भी प्रत्यक्ष नहीं हो सकता, अतः उनकी माया दृष्टिमें आये बिना ही बाधित होगई) ॥ २१ ॥ (जब वे प्रजापतिके पुत्र) (कृतयुगरूप विशुद्ध सत्त्वमय आत्मभावमें स्थिर होगए, तब मात्रा चेतनसे प्रेरित धात्री सब भूतोंकी जनित्री (उत्पादिका) होगई, तथा परिणामके द्वारा अण्डज और स्वेदजोंको उत्पन्न करने लगी, सम्यग्वेदनरूप घटादिवृत्तिकी भी जननी धात्री ही हुई, तथा कर्मफलभोग शील जन्तुओंकी अणुता (सूक्ष्मत्व) और तनुता (विस्तृतत्व) कोभी उसने उत्पन्न किया आत्मप्रतिचय स्वभाव के सम्पन्न होने पर कृतयुगरूप भाव होता है अर्थात् विद्वानोंके लिए कृतयुगधर्म स्वभावसिद्ध ही होता है । विष्णुधर्मोत्तरमें लिखा है कि-"ज्ञानवैराग्यमैश्वर्यं धर्मश्च मनुजेश्वर । आत्मनो ब्रह्मभूतस्य नित्यमेव चतुष्टयम् -ब्रह्मभूत आत्मा वालेमें ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्य और धर्म ये चारों सर्वदा रहते हैं ' इस लिये उत्कृष्ट ज्ञान रूपी कर्मसे मुक्ति अवश्य होजाती है, अवरोहकी सम्भावना भी नहीं रहती) ॥ २२ ॥ २३ ॥ इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २१ ॥

जनमेजयने कहा, कि-हे ब्राह्मणोत्तम ! जिसको जानकर मैं

यज्ज्ञात्वा सर्वविद्यानां परं पश्येयमव्ययम् ॥ १ ॥ वैशम्पायन उवाच । दत्तस्तु पुनरालम्ब्य स्त्रीभावं पुरुषोत्तमः । योगाद्योगेश्वरात्मानं निषण्णो गिरिमूर्धनि ॥ २ ॥ सुजानुः पीनजघना सुभ्रूः पद्मनिभानना । रक्तान्तनयना कान्ता सर्वभूतमनोरमा ३

त्रेतामें (अर्थात् प्रवृत्त्यात्मक यज्ञादिरूप धर्ममें) सब विद्याओंके अव्यय पर पारको देख सकूँ उसको भली प्रकार सुनना चाहता हूँ (नीलकण्ठ-सन्निवृत्तेः प्रवृत्त्याख्यधर्मस्य फलमीरितम् । प्रवृत्तिमात्रनिष्ठानां षोडशे स्थितिरीर्यते-जिसमें निवृत्ति भी हो सकती है, ऐसे प्रवृत्ति नामसे कहे जाने वाले धर्मका फल कह दिया, अब प्रवृत्तिमात्रमें निष्ठा रखने वाले पुरुषोंकी स्थितिका सोलहवें पुष्कर-प्रादुर्भावाध्यायमें वर्णन किया जाता है। जनमेजयने कहा, कि-"प्रवृत्ते च निवृत्ते च नित्यं ब्रह्मपरायणम्" इस उक्त लक्षण वाले धर्मका फल मैंने सुन लिया, अब मैं केवल प्रवृत्त्यात्मक यज्ञादि धर्मरूप त्रेतामें जो साधु अर्थात् समीचीन बात है, उसको सुनना चाहता हूँ, कि-जिससे मैं साधु आचरणके द्वारा सांख्य योग आदि विद्याओंके पर तात्पर्य प्रतिपाद्य अव्यय ब्रह्मको (विविदिषाकी व्युत्पत्तिके द्वारा) देख सकूँ ॥ १ ॥ वैशम्पायनजीने कहा, कि-पुरुषोत्तम दत्तने पर्वतके शिखर पर बैठ कर योगसे अपनी योगेश्वरात्माको स्त्रीभावमें बदल दिया, वह सुन्दर जानु वाली, मोटी जघना वाली सुन्दर भौं वाली, कमलके समान मुख वाली, आँखोंके लाल कोयों वाली सब भूतोंमें मनोहर स्त्री बन गए (श्रुतिमें भी लिखा है कि-"स इममात्मानं द्वेधापातयद्, यततः पतिश्च पत्नी चाभवताम् । तस्मादिदमर्धयुगलमिव स्वे-उसने अपनी आत्माको दो रूपमें गिराया, उनसे पति और पत्नी हुए इस लिये ये अपने ही अर्ध युगल हैं" वह स्त्रीभावमें योगेश्वर दत्तका ही आत्मभूत

दक्षः प्राचेतसस्तस्यां कन्यायां जनयत् प्रभुः । देहार्धयोगविधिना कन्याः पद्मनिभाननाः ॥ ४ ॥ दक्षः पुरुषरूपेण स्त्रीरूपमपहाय वै । दर्शने सर्वभूतानां कान्तः कान्ततरोऽभवत् ॥५॥ ताः कन्या प्रददौ दक्षः स्वयं प्राचेतसः प्रभुः । ब्रह्मदेयेन विधिना ब्राह्मणेन भारत ॥ ६ ॥ प्रददौ दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश । सप्तविंशति सोमाय पत्नीहेतोः समाहितः ॥ ७ ॥ दक्षो दत्वाथ ताः कन्या ब्रह्मक्षेत्रं प्रगम्य च । ब्रह्मणाध्युषितं पुण्यं समाहितमना मुनिः ॥ ८ ॥ तप्यमानो मृगैः सार्धं चचार वसुधां नृप । तृणमूलफलैर्वृद्धो वृद्धश्च तपसासकृत् ॥ ९ ॥ मृगास्तु तस्य

था ॥ २ ॥ ३ ॥ प्रचेताके पुत्र (बचे हुए) प्रभु दक्षने देहार्ध योगविधिसे कमलकी समान मुखवाली उस कन्यामें कन्याओंको उत्पन्न किया ॥४॥ तदनन्तर दक्ष प्रजापति स्त्रीरूपको छोड कर पुरुषरूपमें स्थित होगए; और देखनेमें सब प्राणियोंको मनोहर दीखने लगे, इस प्रकार परम मनोहर होगए ॥ ५ ॥ हे भारत! तदनन्तर प्रचेताके पुत्र प्रभु दक्षने ब्रह्मदेय ब्राह्मविधिसे उन कन्याओंको (अलंकृत करके) उनका संकल्प कर दिया ॥६॥ तदनन्तर समाहित दक्षने पत्नीके लिए दश कन्याएँ धर्मको दीं, तेरह कन्याएँ काश्यपको दीं, सत्ताईस कन्याएँ सोमको दीं ७ उन कन्याओंको देनेके बाद दक्ष ब्रह्मक्षेत्र (अध्यात्मिक प्रयाग)में गए फिर वह मुनि पुण्यमय ब्राह्मणोंके सेवित कर्ममें मनको लगाने लगे ॥ ८ ॥ हे राजन् ! वह तप करते हुए मृगोंके साथ पृथ्वी में विचरण करने लगे, वह तृण मूल और फल खानेसे वृद्ध हो गए थे और निरन्तर तप करनेसे भी वृद्ध होगए थे, (यहाँ पर दक्षकी आख्यायिका कह कर त्रेताधर्मका स्वरूप दिखाया है, कि-स्त्रीका संग्रह करना चाहिये, सन्तानकी उत्पत्ति करनी चाहिये, फिर सन्तानको विभक्त करके वनको जाना चाहिये इस

मोदन्ति फलं मोदन्ति ब्राह्मणाः । दीक्षिताः पुण्यकर्माणस्तपसा दग्धकिल्विषाः ॥१०॥ संग्रामकाले कालज्ञः शरीरादिपतिर्मुनिः । कर्मफलकृतां तत्र सिद्धिं पश्यति लक्षणाम् ॥ ११ ॥ दानमान-मनीराश्च निरुद्वेगा निरामिषाः।मृगैः सह जरां यान्ति सपत्नीकाः सुपुत्रिणः ॥ १२ ॥ ब्राह्मणाः स्तोत्रसंसिद्धा जनित्रे प्रथमे पदे । ब्रह्मणाभ्युषितत्वाच्च ब्रह्मक्षेत्रमिहोच्यते ॥ १३ ॥ यतिभिः कर्म-निर्मुक्तैर्जितक्रोधैर्जितेन्द्रियैः । चरद्भिर्वसुधां विप्रैरकिंचनपथै-

---

प्रकार केवल प्रवृत्तिधर्ममें रतका स्वरूप दिखा दिया) ॥ ९ ॥ उसके तप (के अहिंसाप्रधान होनेसे मृग उसके तप) से प्रसन्न होते हैं, और दीक्षित पुण्य कर्म करने वाले और तपसे जिनके पाप नष्ट होगाते हैं ऐसे ब्राह्मण) उसके तपके "अहिंसाप्रति-ष्ठायां तत् सन्निधौ वैरत्यागः" फल को देख कर प्रसन्न होते हैं १० (योगके द्वारा चित्तजयरूप) संग्राम (योग)के समय शरीर आदिका पति (अर्थात् चित्तजयके समय शरीर आदिका यथेष्ट प्रविलापन करनेमें समर्थ) कालज्ञ (अत एव सर्वज्ञ होनेसे) कर्मके फलसे प्राप्त होने वाली स्वर्गनरकगत्यागतिरूप लक्षणा को दक्ष देखते हैं ॥ ११ ॥ (इस प्रकार दक्षकी आख्यायिका के द्वारा, पत्नीको त्याग कर वनमें जाना चाहिये, इस बातको कहकर सपत्नीक पुरुषको वनमें जानेकी आज्ञा देते हैं कि–,दान-वीर मानवीर निरुद्वेग और निरामिषभोजी सुपुत्र वाले सत्पुरुष पत्नीको साथ लेकर भी मृगोंके साथ वृद्ध हो वनको जाया करते हैं१२स्तोत्रसंसिद्ध अर्थात्"यस्मै नूनमभिद्युते वाचा विरूपनित्यया वृष्णे चोदस्व सुष्टुं" इस मन्त्रके प्रतीकके अनुसार वेदाध्ययनसे शुद्ध सत्त्व हुए प्रथम पद जनित्र ब्रह्ममें प्रणवके द्वारा इसही जीव देहमें अधिवास निष्ठाको प्राप्त होजाते हैं इसीलिये यह देह वेदमें ब्रह्मोपलब्धिका स्थान होनेसे ब्रह्मक्षेत्र कहलाता है १३कर्मसे मुक्त

षिगिः ॥१४॥या प्रजा पूर्वमारूढा मानसी ब्रह्मचारिणी सैवैषा व्यक्तिमापन्ना स्वभावदुरतिक्रमा ॥ १५ ॥ अव्यक्ता व्यक्तमापन्ना स्वभावाद्ध दुरतिक्रमा । व्यक्ताव्यक्तगतिश्चैषा कालधर्मान्महीपते ॥ १६ ॥ स्थावरा जंगमाश्चैव स्थूलसूक्ष्माश्च भारत । कालयोगेन कालज्ञा भवन्ति न भवन्ति च ॥ १७ ॥ एताश्चैताः प्रजाः सर्वा दक्षकन्यासु जज्ञिरे । कश्यपेनाव्ययेनेह संयुक्ताः

क्रोधको जीतने वाले जितेन्द्रिय पृथ्वीमें फिरने वाले अकिंचन पथको चाहने वाले ब्राह्मण (इस देहको ब्रह्मक्षेत्र कहते हैं) १४ (इस प्रकार सपत्नीक पुरुषोंको भी वनमें जाने पर योगज सिद्धि प्राप्त होजाती है,इस बातको कह कर अब योगके फलका वर्णन करते हैं, कि) जो प्रजा (सबके सर्वात्मकत्व होनेसे हार्दाकाश नाम वाले ब्रह्म पर) आरूढ होजाती है (वह मनोमात्र कल्पित) मानसी प्रजा ब्रह्मरूपसे ही गम्यमान होती हुई समाधिकालमें (चढती हुई) देखी जाती है, वही यह लोक दृश्य बाहर स्थित है और स्वभावसे दुरतिक्रम है (तात्पर्य यह है,कि–समाधिमें ब्रह्मभावको प्राप्त हुआ पुरुष भी कर्मवश संसार में फिर भी अवश्य पडता है) ॥ १५ ॥ यह प्रजा समाधिमें स्वभावतः अव्यक्तरूपको प्राप्त होजाती है और व्युत्थानमें व्यक्त होजाती है उसका कारण यह है,कि–यह दुरतिक्रम व्यक्ताव्यक्त गति कालधर्मसे होती है ॥ १६ ॥ (अब इस बातको दिखाते हैं कि यह प्राणिसाधारण है) हे भारत ! स्थूल और सूक्ष्म स्थावर तथा जङ्गम कालयोगसे कालज्ञ होजाते हैं और नहीं भी होते हैं (जब स्थावर भी योगको जानने वाले होजाते है, तो उसके लिये यत्न करना चाहिये) ॥ १७ ॥ (इस प्रकार प्रसङ्गवश असपत्नीक और सपत्नीक योगाधिकारको कहकर साढे छः श्लोकोंमें प्रकृत सृष्टिका ही वर्णन करते हैं, कि—)

कालधर्मणा ॥ १८ ॥ आदित्या वसवो रुद्रा विश्वे च समरुद्-
गणाः । नागाश्चानेकशिरसः साध्या वै पन्नगास्तथा ॥ १९ ॥
गन्धर्वाः किन्नरा यक्षाः सुपर्णाश्च तथाऽपरे । गरुत्मान्त्सह यक्षैश्च
किन्नराश्च सुवाससः ॥ २० ॥ गावः पशुगणैः सार्धं नराश्च
वसुधाधिप । चराचराश्च वसुधा भर्तारश्च धराधराः ॥ २१ ॥
गजाः सिंहाश्च व्याघ्राश्च हयाः पक्षधरास्तथा।खड्गी विषाणि-
नश्चैव वृषभाश्च मृगास्तथा ॥२२॥चतुर्विषाणा नागेन्द्रा पद्माभा
वर्णतः शुभाः । सर्वलक्षणसम्पन्नाः प्राणिनः कामरूपिणः ॥२३॥
तेषां रूपैस्तथा गात्रैस्तैः शीलैस्तैः पराक्रमैः । मुनयः पुनरुद्-
भूता धर्मक्षेत्रे सनातने ॥ २४ ॥ क्षेत्रज्ञा मानसे लोके धर्मिणो
वेदगोचराः । यत्रोद्भूताः सुराः सर्वे दिवि लोके प्रतिष्ठिताः २५

भगवान् कश्यपसे संयुक्त होकर दक्षकी कन्याओंमें (आगे लिखी
हुई) कालधर्मसे संयुक्त सब प्रजा उत्पन्न हुई ॥१८॥ आदित्य,
वसु रुद्र विश्वेदेवा मरुद्गण, अनेक शिर वाले सर्प, साध्य पन्नग,
गन्धर्व, किन्नर, यक्ष सुपर्ण गरुड़, सुन्दर वस्त्रधारी यक्ष और
किन्नर, पशुओंके साथ गौए, चर अचर, और पृथ्वीको धारण
करने वाले पर्वत गज सिंह व्याघ्र घोडे, पक्षी, सींगरूपी खड्ग
वाले वृषभ और मृग, चार दाँत वाले नागेन्द्र, शुभ वर्ण वाले,
पद्मकी समान आभा वाले सर्वलक्षणों वाले, इच्छानुसार रूप
धारण करने वाले मनुष्य(भी दक्षपुत्रियोंमें उत्पन्न हुए)१९-२३
(धाता यथापूर्वमकल्पयत् धाता पूर्वकल्पकी समान सबको रचता
है, इसी बातको दिखाते हैं, कि-) इस धर्मकी प्रसवभूमि भारत
वर्षमें मुनि (पूर्वकल्पके) उन मुनियोंके अनुसार नाम रूप
शरीर और पराक्रमसे सम्पन्न होकर उत्पन्न होगए ॥ २४ ॥
वेदगोचर धर्मात्मा क्षेत्रज्ञ (आत्मनिष्ठ पुरुष) मनःकल्पित भीतर
वा बाहरी लोकमें सुर (देवता) बन कर उत्पन्न होते हैं और

ये चान्ये तपसा सिद्धा गृहस्था मनुजाधिप । ब्रह्मचर्येण संसिद्धाः परिचर्यां गता गुरोः ॥ २६ ॥ ये च योगगतिं प्राप्ताः सिद्धिहेतोर्महीपते । क्लेशाधिकैः कर्मजन्यैर्वृत्तिं लप्स्यन्ति ये द्विजाः ॥२७॥ शिलोञ्छवृत्तयः ख्याताः सपत्नीका दृढव्रताः । सर्वे त्वेते दिविचरा भवन्ति चरितव्रताः ॥ २८ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि द्वाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २२ ॥

वैशंपायन उवाच । पितामहं पुरस्कृत्य मेरुपृष्ठे समाहिताः ।

वे सब दिव्य लोकमें प्रतिष्ठित होजाते हैं ॥ २५ ॥ (अब तीन श्लोकोंमें इस बातका वर्णन करते हैं, कि–योगधर्मका अनुष्ठान करने वाले गृहस्थोंकी भी मुक्ति होजाती है) हे राजन् ! जो गृहस्थ तपसे सिद्ध होजाते हैं और जो गुरुकी परिचर्या करके ब्रह्मचर्यसे सिद्ध होजाते हैं, हे राजन् ! जो सिद्धिके लिए योग-गतिका आश्रय लेते हैं और अधिकतर क्लेश देने वाले कर्मोंसे (ब्रह्म)वृत्तिको पाना चाहते हैं, और जो मुनि अपनी पत्नीको साथले दृढव्रत धारण कर हार्दाकाशरूप स्वर्गमें विचरण करते हैं, ये सब चरितव्रत हैं (अत एव व्रतचर्या(ब्रह्मस्वरूप होनेकी वृत्ति) ही मुख्य है, आश्रमविशेष ही मोक्षका हेतु नहीं है। अत एव याज्ञवल्क्यने गृहस्थ पुरुषकी भी मोक्षका वर्णन किया है कि— "न्यायागतधनस्तत्त्वज्ञाननिष्ठोऽतिथिप्रियः । श्राद्धकृत् सत्यवादी च गृहस्थोऽपि विमुच्यते–अर्थात् न्यायसे धनको एकत्रित करने वाला, तत्त्वज्ञानमें निष्ठा रखने वाला, अतिथियोंको प्रिय समझने वाला सत्यवादी गृहस्थ भी मुक्त होजाता है) ॥ २५–२८ ॥ बाईसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २२ ॥

वैशम्पायनजीने कहा, कि–जटा और मृगचर्मको धारण करने वाले, क्रोधको जीतने वाले और जितेन्द्रिय ब्राह्मण पितामहके

जटाजिनधरा विप्रास्त्यक्तक्रोधा जितेन्द्रियाः ॥ १ ॥ पर्वतांतरसं-

सामने मेरुपर्वत पर बैठे थे [नीलकण्ठ—"मुनयोंब्रह्मचर्यो-त्येत्यूचे सप्तदशे व्रतम् । प्राणगं हविर्यज्ञसंज्ञं चित्तजयावहम्" पूर्व अध्यायके अन्तमें कहा है, कि "सर्वे ह्येते दिविचरा भवन्ति व्रतचारिणः—ये सब व्रतचारी दिविचर (हार्दाकाशमें विचरण करने वाले) होते हैं" इनमें उत्तम अधिकारियोंका जिसमें अधि-कार है, वह मनोजय नाम वाला व्रत ग्यारहवें पुष्करप्रादुर्भावा-ध्यायमें कह दिया अब मध्यम और अधम अधिकारियोंके चित्त-जयके लिए और आत्मविविदिषा (आत्म-जिज्ञासा) उत्पन्न करनेके लिए तृतीय अध्यायमें सूचित प्राणरोध और हविर्यज्ञ इन दोनोंका इस सत्रहवें पुष्करप्रादुर्भावाध्यायमें वर्णन किया जाता है । इन दोनोंमेंसे पहिलेको भी यज्ञरूपसे कहना चाहने वाले वैशम्पायनजीने पितामहं पुरस्कृत्य इत्यादि श्लोक कहे हैं इन श्लोकका और अगले दो श्लोकोंका योगसम्बन्धी अर्थ आगे लिखेंगे]१वहमेरु पर्वत और भी,बहुतसे पर्वतोंसे सटा हुआ था, और बहुतसे रत्नोंसे आच्छादित था, उसकी शिलाएँ धातुओंसे रँग रहीं थीं,सम था,तृण और कण्टकोंसे रहित था और तीनों वेदोंके पाँच स्वरोंसे विराजित था और वह ऋषि भी मंत्रयज्ञमें सर्वदा परायण रहते थे और सर्वदा व्रतहितमें रत रहते थे[नील-कण्ठ-योगचिन्तामणिमें सांख्ययोगके विषय में लिखा है,कि 'चक्र-मध्ये स्थिता नाड्यस्तिस्त्रस्तिस्त्रोऽथ देवताः।इडा च वैष्णवी नाडी पिङ्गला ब्रह्मदेवता॥ ऐश्वरी सा सुषुम्ना स्यान्मेरुमध्ये व्यवस्थिता। नाडीमध्यगता ग्रन्थित्रययुक्ता त्रिवेणिका॥उत्तरे वहते गङ्गा यमुना दक्षिणे स्मृता । सरस्वती पश्चिमायामासां संगः सदान्तरे॥-चक्रके मध्यमें तीन नाडियें हैं,वे तीनों तीन देवता वाली हैं,इडा वैष्णवी नाडी है अर्थात् इडा नाडीके देवता विष्णु है,पिंगला ब्रह्मदेवता

सिद्धे बहुपादपसंवृते । धातुसंरञ्जितशिले समे निस्तृणकण्टके २

नाड़ी है और सुषुम्ना ऐश्वरी नाडी है और वह मेरुके मध्यमें स्थित है" इस उक्तिसे प्रतीत होता है कि-यहाँ मेरु शब्दसे नासिकाका ग्रहण किया गया है और पृष्ठ शब्दसे भ्रूघ्राणमध्यका ग्रहण किया गया है, उसमें कार्यके पिता कारण, कारणके पिता शुद्ध ब्रह्मको लक्ष्य करके मुनियोंने समाधि लगाई थी, वह मेरुपृष्ठ (भ्रूघ्राणमध्य) पर्वतान्तरसंसिद्ध है अर्थात् पर्व (गांठ वाली) अस्थियोंके अर्थात् नासावंश और कपालास्थिके बीचमें संसिद्ध है अर्थात् उसके नाश होने पर भी अविनाशी है हार्दाकाशका आरम्भ करके कहा है, कि-"न वधेनास्य हन्यते-इसका वध होने पर वह नष्ट नहीं होता" इस श्रुतिके अनुसार देहका नाश होने पर भी आत्मोपलब्धिचक्रोंके अविनाशीपनेका पता चलता है । और वह बहुपादपसङ्कुल है अर्थात् "बहुपादो नानायोगिगमनसाधनं धर्माधर्मवानहङ्कारस्तं पातीति तदुपाधिः प्राणो वायुस्तेन संकुलम्-नानायोगिगमनसाधन धर्माधर्मवान् (स्वरूप) बहुपादकी अर्थात् अहंकारकी जो रक्षा करता है उस प्राणवायुसे भ्रूघ्राणसन्धि संकुल है । और वह धातुसंरञ्जित-शिल है अर्थात् वात पित्त कफ अथवा मनःशिल आदि धातु-रूप नाड़ीमार्ग शिलाकी समान उसमें अस्थिके रूपमें रहती हैं और वह सम अर्थात् सम ब्रह्मका उपलब्धिस्थान है और नि-स्तृणकण्टक है अर्थात् बाहर स्थित होनेसे जरा रोग आदि दुःख कण्टक तृण कहलाते हैं उनसे और अन्तःस्थ शोकादिसे रहित है इस प्रकारके देहके दोनों धर्मोंसे रहित है और तीनों ब्रह्मवेदोंके पञ्चस्वरसे विराजित है, अर्थात् 'त्रयो ये ब्रह्म वेदयन्ति तेषां त्रयाणां ब्रह्मवेदानां इडापिङ्गलसुषुम्नारूपाणां जीवोपाधिभूतप्राणमार्गाणां सम्बन्धिनः पञ्चस्वराः स्वर्यते गम्यते ब्रह्म यैस्ते स्वराः प्राणस्य

त्रयाणां ब्रह्मवेदानां पञ्चस्वरविराजिते। मन्त्रयज्ञपरा नित्यं नित्यं

वृत्तिभेदाः प्राणापानसमानव्यानोदानास्तैर्विराजितम्, पञ्चानाम् अपि वायूनामेकीभाव स्थानम्-जो तीन ब्रह्मको प्राप्त कराती हैं उन तीन इडा पिंगला सुषुम्नारूप जीवोपाधिभूत प्राणमार्गस्वरूप ब्रह्मवेद से सम्बन्ध रखने वाले पञ्चस्वरोंसे संयुक्त हैं। जिनसे ब्रह्मको पाया जासकता है वे प्राणके वृत्तिभेद प्राण, अपान, समान, उदान व्यान स्वर कहलाते हैं वह भ्रूघ्राणसन्धि उनसे विराजित है अर्थात् पाँचों वायुओंके एकत्रित होनेका स्थान है। और वे मुनि भी सर्वदा मन्त्रयज्ञपर रहते थे और व्रतहितमें सर्वदा परायण रहते थे अर्थात् प्राण आदिके रेफ आदि बीजस्वरूप मन्त्रोंके यज्ञ अर्थात् जपमें परायण रहते थे और नित्यव्रत (वायुजय) और हित (आनन्दरूप आत्मा से प्रेम करते थे। तात्पर्य यह है, कि इस भ्रूघ्राणमध्यमें नकुलीशयोगपारायण में कहे हुए पाँच प्राण आदिके स्थान वर्ण बीज आदि रहते हैं। नकुलीशयोगपारायणमें उनका वर्णन इसप्रकार किया है, कि-

प्राणो घ्राणाग्रहृन्नाभिपादाङ्गुष्ठान्तसंस्थितः। नीलः सोंकाररेफादिबीजेन विनियोजितः॥ कृष्णोऽपानः कृकाटिस्थः पृष्ठपृष्ठान्तपार्ष्णिगः। सतारकसकारान्तबीजेन विनियोजितः॥ शक्रचापनिभो व्यानस्त्वगिन्द्रियनिकेतनः। तारकोपेतपान्तश्च बीजेनेजोविराजितः॥ मूर्धस्थो मध्यताल्वग्रकण्ठहृद्घनलाश्रयः। उदानो तरुणच्छायस्तारकाकान्तपान्तयुक्॥ श्वेतः समानो हृन्नाभिः सर्वसंधिनिकेतनः। मणवाक्रान्तलान्तेन बीजेनात्यन्तमुज्ज्वलः॥-

प्राण नासिकाके अग्रभागसे लेकर हृदय नाभि और पैरके अँगूठे के अन्त तक स्थिर रहता है, उसका वर्ण नील है और वह ओंकारसहित रेफादि बीजसे संयुक्त है। और अपान काले रंगका है कृकाटि (कंधुग्रीवा,में स्थित है और पीठ पीठका अंतिम भाग और पर्ष्णिमें

व्रतहते रताः ॥ ३ ॥ एक एवाग्निमाधाय सर्वे ब्राह्मणपुङ्गवाः ।
विभिदुर्मन्त्रविपर्यैः सुसमाहितमानसाः ॥ ४ ॥ त्रिधा प्रणीतो

रहता है और वह तारकयुक्त सकारान्त बीजसे संयुक्त है। और व्यान इन्द्रके धनुषकी समान होता है और त्वगिन्द्रियमें रहता है, तारकसे युक्त होता है और उसके अन्तमें प होता है, वह ऐसे बीजतेजसे विराजित रहता है। और उदानवायु मस्तकमें स्थित रहता है और तालुके मध्य, कण्ठके अग्रभाग और जठराग्निका आश्रय करके रहता है, उसकी छाया अरुणकी समान है और वह यकारान्त तारकसे युक्त रहता है। समान वायु श्वेत है और हृदय नाभि तथा सब सन्धियोंमें रहता है और प्रणवयुक्त लान्त बीजसे अति उज्ज्वल प्रतीत होता है" निष्कर्ष यह है, कि-क्रोध आदिका विजय करने वाले निर्मम पुरुष निर्विशेष ब्रह्मको पानेके लिये मेरुपृष्ठ नाम वाले भ्रूप्राणमध्यसे उपलक्षित सर्वकारण नित्य सिद्ध, जीवोपाधि अनेकबीज वर्णवालेके द्वारा अनेक प्रकारके वर्णवाली नाडियोंके संचारसे संयुक्त बाह्याभ्यन्तर दुःखशून्य ब्रह्ममें प्राणजयके द्वारा चित्तवृत्तिको एकाग्र करते हैं]॥ २ ॥ ३ ॥ समाहित चित्त वाले वे सब ब्राह्मण एक अग्निका आश्रय लेकर उसको मन्त्रविपर्योंसे पृथक्२ करनेलगे [नीलकण्ठ-उन्होंने एक प्राणाग्निका ही अवलम्बन लेकर रेफादि मुख्य मन्त्रोंके प्राणनादि प्रतिपाद्य विषयोंका पाँच प्रकारके प्राण अपान आदि रूपमें विभाग कर दिया है कहा भी है, कि-'कोष्ठचो वायुः प्राणनादिकर्मभेदाद्व यथाक्रमम्।प्राणोपानसमानादि नामान्तरमुपागतः-कोष्ठमें रहने वाला वायु प्राणनादि कर्मभेदसे प्राण अपान समान आदि भिन्न भिन्न नामोंको पागया है]॥४॥वेदपारगामी मुनियोंने अग्नि अर्थात् प्राणाग्निको (पूरक कुम्भक और रेचक इसप्रकार) तीन प्रकार से नाडीमार्गके द्वारा

ज्वलनो मुनिभिर्वेदपारगैः। अतरते तत्त्वमापन्ना यदेकस्त्रिविधः

संचारित किया है इस नाडीमार्ग संचारणरूप प्राणके द्वारा उन्हें आत्मतत्त्वका ज्ञान हुआ था (तात्पर्य यह है कि-पूरक आदिका अभ्यास करनेसे आत्मतत्त्व प्रतीत होसकता है ॥४॥ हे मन्त्रज्ञ!बड़ा भारी एक ही अग्नि मंत्रोंकी सिद्धिके लिये स्वधाकार हविसे बढता है [नीलकण्ठ-एक ही प्राणाग्नि प्राणायामाभ्यासीके "आदेयानि च वक्ष्यामि क्षिप्रं योगस्य सिद्धये। क्षीरं घृतं च मिष्टान्नं मिताहारश्च शस्यते-योगमें शीघ्र ही सिद्धि पानेके लिये आदेयोंको कहता हूँ क्षीर घृत मिष्टान्न और मिताहार शीघ्र ही योगको सिद्ध करते हैं" इस दत्तात्रेयोक्त हविके सम्यक् सेवनसे महान् होकर योगीको विक्षेपमें न डालता हुआ आरोह और अवरोहके मार्गमें यथेष्ट रूपसे विचरता है। तात्पर्य यह है,कि-नासिकाके भीतर और बाहर बारह २ अंगुलोंके प्रमाण में घूमता हुआ, रूईके पिण्डकी समान घनीभूत हुआ कुम्भकके अभ्याससे शिथिलावयवसंयोगको करे, तदनन्तर परम प्राणकी गति ३६,३६,अंगुलकी होजाती है, वह उस समय सूक्ष्म भी पुरोडाशकी समान मथित होकर महान् कहलाता है.ऐसे प्राणाग्नि (वायु) का 'पार्ष्णिभागेन सम्पीड्य योनिमाकुञ्चयेद् दृढम्। अपानमूर्ध्वमाकृष्य मूलबन्धोऽयमुच्यते। पार्ष्णि (एड़ी) से योनि को दृढ़तासे दबावे और अपानको ऊपरको खेंचे तो मूलबन्ध कहलाता है" हठोक्त प्रकारसे आरोह (ऊपरको चढ़ना) प्रसिद्ध है। और शास्त्रमें यह भी कहा है, कि—भौंहोंके बीच में प्राणोंको स्थापित करे। योगी याज्ञवल्क्यने अवरोह (नीचे को उतरने) का भी इस प्रकार वर्णन किया है, कि— "सम्पूर्ण कुम्भवद् वायुमंगुष्ठान्मूर्ध्नि मध्यतः। धारयत्यनिलं बुद्ध्या प्राणायामः प्रचोदितः॥ व्योमरन्ध्रात् समाकृष्य ललाटे

कृतः ॥ ५ ॥ एक एव महानग्निर्हविषा संप्रवर्तते । स्वधाकारेण

धारयेत् पुनः । ललाटाद्वायुमाकृष्य भ्रुवोर्मध्ये निरोधयेत् । नेत्रात् प्राणं समाकृष्य नासामूले निरोधयेत् । नासामूलात्तु जिह्वाया मूले प्राणं निरोधयेत् ॥ कण्ठकूपात्तु हृन्मध्ये हृन्मध्यान्नाभिमध्यमे । नाभिमध्यात् पुनर्मेढ्रे मेढ्राद्वह्न्यालये ततः ॥ देहमध्याद् गुदे गार्गि गुदाद् वै ऊरुमूलके । ऊरुमूलात्तयोर्मध्ये तस्माज्जान्वोर्निरोधयेत् ॥ वस्तिमूले ततस्तस्माज्जंघयोर्मध्यमे तथा । जंघां ततः समाकृष्य वायुं गुल्फे निरोधयेत् ॥ स्थानात् स्थाने समाकृष्य यस्त्वेवं धारयेद्धिया । सर्वपापविशुद्धात्मा जीवेदाचन्द्रतारकम् ॥ एतत्तु योगसिद्ध्यर्थमगस्त्येनापि कीर्तितम् । शरीरको घड़ेकी समान अँगूठेसे मस्तकके मध्य तक वायुसे पूर्ण कर ले फिर वायुको बुद्धिपूर्वक धारण करे इसको प्राणायाम कहते हैं । फिर वायुको व्योमरंध्रसे खेंच कर ललाटमें धारण करे, फिर ललाटसे वायुको खेंच कर भौंहोंके मध्यमें धारण करे, और नेत्रसे प्राणोंको खेंच कर नासामूलमें धारण करे फिर नासामूलसे जिह्वामूलमें प्राणको धारण करे कण्ठकूपसे हृदयके मध्यमें धारण करे, हृदयके मध्यमेंसे नाभिके मध्यमें धारण करे, नाभिके मध्यसे मेढ्रके मध्यमें धारण करे; फिर वन्ह्यालय (जठराग्नि) में धारण करे, देहके मध्यसे गुदामें धारण करे, हे गार्गि ! फिर गुदाके मध्यमेंसे ऊरुमूलमें धारण करे, ऊरुमूलसे उनके मध्यमें धारण करे, तहाँसे जंघाके मध्यस्थलमें धारण करे, तहाँसे गुल्फोंमें (एडियोंमें) धारण करे जो स्थान २ से इस प्रकार खींच कर धारण करता है वह सर्व पापोंसे विशुद्ध होकर जब तक चन्द्रमा और तारे रहेंगे तब तक जीवित रह सकता है । योगसिद्धिके लिये अगस्त्यने भी इसका वर्णन किया है" (स्व) अपने शरीरमें (अग्नि) वायुका (धा) धारण करना स्वधा कहलाता है, इस (कार) कारणसे हे

मन्त्रज्ञ मन्त्राणां कार्यसिद्धये ॥ ६ ॥ स्वयं च दत्तसंप्राप्तो भग-

मन्त्रज्ञ राजन् ! पूर्वोक्त मन्त्रोंके (रेफ आदिके) प्रकाशत्व सम्बन्धि कार्य उस २ भूतकी जयसिद्धिके लिए वह अग्नि अर्थात् वायु बढता है। योगी याज्ञवल्क्यने धारणाकी सिद्धिएँ भी कही हैं,कि-"यमादिगुणयुक्तस्य मनसः स्थितिरात्मनि । धारणेत्युच्यते सद्भिः शास्त्रतात्पर्यवेदिभिः ॥ व्योमांशे मारुतांशे च धारणां कुर्वतः शुभाम् ।त्रिदोषजनिता रोगा विनश्यन्ति न संशयः सज्जनपुरुष यम आदि गुणोंसे युक्त मनको आत्मामें स्थिति करनेको धारणा कहते हैं व्योमांशमें और मारुतांशमें धारणा करनेवाले पुरुषके त्रिदोषसे उत्पन्न होनेवाले रोग नष्ट होजाते हैं" अब पैरसे लेकर जानु तक और जानुसे पैर तक, पैरसे हृदय तक, फिर भ्रूमध्यान्त तक, फिर मूर्धाके अन्त तक क्रमसे भूमि जल तेज वायु और आकाशके स्थान हैं और ये ब्रह्मा विष्णु रुद्र ईश्वर और सदाशिवसे अधिष्ठित रहते हैं, और ये य र ल व और ह, इन बीजोंसे संयुक्त रहते हैं इनमें पाँच २ घडी तक मनको धारण करनेसे उस २ भूतका जय होजाता है तथा नादांत परमात्माकी प्रणवमें धारणा करना ही मुख्य धारणा है तथा क्रम से तेज, जल और अन्नमें क्रमशः धारण करने पर क्रमशः वात पित्त और श्लेष्मसे उत्पन्न होने वाले रोग नष्ट होजाते हैं। अब हम अधिक विस्तारभयसे इस बातका और स्पष्टीकरण नहीं करते हैं॥६॥वह स्वयं भगवान् दत्तसंप्राप्त आये, प्राणी उनका सत्कार करते हैं, ब्रह्मा हैं वह ब्राह्मणनिर्माणकर्ता हैं, सब भूतोंके पितामह हैं, दण्डी चर्मधारी, खड्गधारी शिखाधारी और कमलकी समान मुखवाले हैं और वह सन्तापरहित हैं तथा क्रोधको जीतने वाले और जितेन्द्रिय है [नीलकण्ठ—इस प्रकार पूरक कुम्भक और रेचक इन तीनके अभ्याससे विपुल क्रिया

वान् भूतसत्कृतः । ब्रह्मा ब्राह्मणनिर्माता सर्वभूतपितामहः ।७।
दण्डी चर्मी शरी खड्गी शिखी पद्मनिभाननः । अभवन्नप्रस्त-

हुआ, और हविष्यके भक्षणके अभ्यासकी महिमासे वशमें किया हुआ यत्रकुत्रचित् धारण किया प्राणाग्नि उस २ धारणाके फल को उत्पन्न करता है। यह बात पहिले कहदी है, अब प्रणवके द्वारा परमात्मामें प्राणको धारण करनेका फल कहते हैं कि— दक्षते सर्वस्मिन् कार्ये संनह्यतीति दक्षः सूत्रात्मा सब कार्योंमें तयार होजाने वालेको दक्ष अर्थात् सूत्रात्मा कहते हैं ऐसा सूत्रात्मा उस रूपसे तब परिणत होजाताहै, वह भगवान् अर्थात् सर्वैश्वर्यसम्पन्न होता है और वह भूत(नित्यसिद्ध)सत्(कारण,से निर्मित होता है। स्मृतिमें कहा, कि-"आत्मानमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम्। ध्याननिर्मथनाभ्यासात्पाशं दहति पण्डितः-पण्डित पुरुष आत्मा को अरणि बना कर और प्रणवको उत्तरारणि बना कर ध्यान-निर्मथनरूपी अभ्याससे पाशको भस्म कर डालता है।" तात्पर्य यह है, कि-प्रणवके द्वारा आत्मामें चित्त लगाने वालेको पहिले उकारके-अर्थभूत सूत्रात्माका साक्षात्कार होता है, ऐसा बना हुआ दक्ष मुख्य ब्राह्मण होजाता है, और वह चतुर्मुख ब्रह्माका निर्माता होजाता है, अतः हम सबोंका पितामह होजाता है। यह दक्ष कौन है, ऐसी जिज्ञासा होने पर कहा है, कि-पूरक आदिसे आराधित वह प्राणाग्नि ही दक्ष है, क्योंकि-यह पहिले पूरक करते समय नासिकाकी नलीमें पुरा हुआ होनेसे दण्डाकार हो गया था, अतः दण्डी कहलाता है, और वह कुंभकावस्थामें चमड़े की समान फैल जाता है, अतः चर्मी है, वही फिर रेचकावस्था में दण्डरूप होनेसे सूक्ष्मरूपके कारण शराकारको पूर्ववत् प्राप्त होगया अतः शरी है, और वही खड्गकी समान तीक्ष्ण धार वाला संसारवृक्षके छेदनमें समर्थ होनेके कारण खड्गी कहलाता

सन्तापो जितक्रोधो जितेन्द्रियः ॥८॥ जयते पुष्करे ब्रह्मा मेधया सह संगतः । इन्द्रप्रोक्तानि सामानि गीयन्ते ब्रह्मवादिभिः ॥९॥ घृतं क्षीरं च वा व्रीहिः सर्वं परमकं हविः । वेदप्रोक्तं मखे न्यस्तं कल्पितं ब्रह्मणः पदे ॥ १० ॥ निर्मथ्यारणिमाग्नेयीं शमीगर्भ-

है, और शिखी प्राणाग्निरूप है, और वह पद्मकी समान मुख वाले हैं अर्थात् वह दक्षरूपसे प्रसन्नमुख होजाता है, और प्रसन्न भावके कारण ही वह स्वभावतः जितक्रोध, त्यक्तसन्ताप और जितक्रोध होजाता है, तात्पर्य यह है,कि-उसमें स्वभावतः वैराग्य आदिका आविर्भाव होजाता है, हठकृत वैराग्य नहीं होता । वृद्धों ने भी कहा है, कि-"उत्पन्नात्मप्रबोधस्य ह्यद्वेष्टृत्वादयो गुणाः । भवन्त्ययत्नतः सिद्धा न तु साधकरूपिणः ।-जिसको आत्मप्रबोध उत्पन्न होजाता है, उसमें अद्वेष्टापन आदि गुण विना प्रयत्नके स्वभावसे ही उत्पन्न होजाते हैं, और साधकरूपीमें इस प्रकार सरलतासे उनका उदय नहीं होता है] ॥ ७ ॥ ८ ॥ जब ब्रह्मा पुष्करमें बुद्धिपूर्वक यजन करते हैं, उस समय ब्रह्मवादी पुरुष इन्द्रके कहे हुए सामोंका गान किया करते हैं [नीलकण्ठ-जब कि-ब्रह्मवादी पुरुष आत्मदर्शन होने पर "अहमन्नमहमन्नम्" इत्यादि तैत्तिरीयप्रसिद्ध सामोंका गान करते हैं तब] सूत्रात्मा दक्ष (ब्रह्मा) पुष्करस्वरूप आत्मतीर्थमें शास्त्र और आचार्यके उपदेशसे प्राप्त हुई धीवृत्तिके साथ संगत होकर तन्निष्ठ होजाता है,-) ॥ ९ ॥ ब्रह्माके स्थानभूत यज्ञमें वेदोक्त घृत क्षीर यह ही परम हवि है यह कह कर उसको यज्ञमें धर दिया [अब इस बातको दिखाते हैं, कि-सुसमाहित योग पूर्वसंस्कारवश समाधिसे च्युत होनेसे पहिले समाधिमें भी यज्ञकी ही कल्पना करता है यथा वह सूत्रात्माके स्थान समाधिकी अवस्थामें बाह्य यज्ञमें देवताके उद्देश्य से त्यागे जाने वाले (कर्मसे नहीं) किन्तु मनःकल्पित अन्न एव

समुत्थिताम् । स ब्रह्मा प्रथमं तस्मिन्नग्निमन्यं प्रवर्तयत् ॥११॥ न ह्यल्पं विहितं द्रव्यं यथाग्निर्यज्ञकर्मणि । प्रवर्तयेद्विभागैर्वा हुत-

अभौतिक होनेसे श्रेष्ठ हविको ही यज्ञमें रखने लगा]१०तहाँ पर ब्रह्माजीने जण्डमेंसे उत्पन्न हुई अग्निकी उत्पादिका अरणीको मथ कर उसमेंसे अग्निको प्रकट किया [नीलकण्ठ ब्रह्मवेत्ता सूत्रात्मा जिससे सुख प्राप्त होता है (शं सुखं ईयते गम्यतेऽनेनेति शमी देहः)ऐसे शरीरके भीतर रहने वाले परमेश्वररूप अग्निके तिरोधान होनेकी स्थान, अविद्या रूप अरणिको मथ कर प्रथम कारण ब्रह्म अकल्पित अन्तर्यामीको प्रकट करता है, तात्पर्य यह है, कि-शरीरमें नित्य आविर्भूत और देहादिके अभिमानवश तिरोहित हुआ ऐश्वर्य, देहाभिमानके त्यागसे अपने ईश्वररूपमें प्रकट होगया] ॥ ११ ॥ [(यहाँ अब शंका उठती है, कि-जिस प्रकार सोमयज्ञमें अरणीमें अग्निमथन किया जाता है और जिस प्रकार चातुर्मास्य यज्ञोंमें किया जाता है, इसी प्रकार यहाँ भी यह काल्पनिक निर्मथ्य अग्नि मान लेनी चाहिये, फिर सूत्रसे अतिरिक्त दूसरी अग्निकी कल्पनासे क्या लाभ ? इसका उत्तर देते हुए कहा है, कि-) जिस प्रकार बाह्य यज्ञकर्ममें अग्नि का निर्मथन करके उसको होम्य बना कर कहा जाता है, कि-"यह अमृताहुति है, यह अग्न्याहुति है और जो अग्न्याहुति है वही स्वर्गाहुति है"इसीप्रकार यहाँ पर आज्य-घृत-नामक(बाहरी) अल्प द्रव्यका विधान नहीं है। योगीके लिये यद्यपि ऐसे यज्ञके चिन्तवन करनेका विधान नहीं है,परन्तु यज्ञके संस्कारकी दृढ़ताके कारण,योगमें भी वैसे ही संकल्प उठते हैं,इसी लिये श्रुतिमें कहा है,कि-'स यदि पितृलोककामो भवति संकल्पादेवास्य पितरः समुत्तिष्ठन्ति यदि यह पितरोंको देखनेकी इच्छा करता है तो इसके संकल्पसे ही पितर उठ खड़े होते हैं"इस प्रकार सम्प्रज्ञातावस्था में

द्रव्यमयं चलम् ॥ १२ ॥ फलानि तैः प्रयुक्तानि इवींषि वितते- ऽध्वरे । प्रयुंजन्ते प्रयोगज्ञा मुनयो ब्रह्मवादिनः ॥ १३ ॥ पयः

योगके द्वारा परिचित पिता आदिके उत्थानका वर्णन मिलता है और परिपक्व योगीका विषय तो न देखी हुई वस्तुका देखना और सुनना होता है । समाधिमें यहाँ अतिप्राकृतकर्मका अनभि- कार होनेसे दूसरे अग्निका अर्थात् प्रकृत सूत्रात्माके अतिरिक्त आन्तर ईश्वरका ही ग्रहण करना चाहिये । क्योंकि अल्प द्रव्य आज्यपय (घृतदुग्ध) आदि जब अग्निमें होमा जाता है तब उसका विकारभूत स्वर्गमें देहादि मिलता है, वह अन्न विभागके द्वारा यथोच्च नीच स्थानको प्राप्त करता है । परन्तु यहाँ ऐसा नहीं होता । तात्पर्य यह है, कि–अल्पद्रव्यसाध्य यज्ञोंमें वित्तव्ययस्वरूप श्रद्धाके कमती बढ़ती होनेसे फलमें भी तार- तम्य होता है,परन्तु आत्मयज्ञमें यह विभाग नहीं होता,क्योंकि– सबोंका कैवल्यरूप फल एक होता है]१२ प्रयोगको जाननेवाले ब्रह्मवादी मुनि हवियोंका प्रयोग करते हैं और वे हवि फलोंको देते हैं [नीलकण्ठ–अब शंका उठती है, कि–फिर सम्प्रज्ञात हवि आदिकी कल्पना क्यों की है, इसका समाधान यह है, कि–योग- यज्ञके चलाने पर जिन हवियोंका विधान किया है; वे हवि उप- योगमें लाने पर फल भी देते हैं । श्रुतिमें भी लिखा है, कि– "तं यथा यथोपासते तथा तथा प्रेत्य भवति–उसकी जिस २ प्रकारसे उपासना की जाती है प्राणी मर कर तैसा २ ही हो जाता है अर्थात् जैसे गुणविशिष्ट आत्माका चिन्तवन करता है, ब्रह्मलोकमें तैसे२ ही फलको पाता है । और जो ब्रह्मवादी होते हैं अर्थात् यहाँ ही ब्रह्मका साक्षात्कार कर लेते हैं वे उनके अणिमा आदि ऐश्वर्योंके प्रयोगोंको जान कर यहाँ ही उनका प्रकाश कर सकते हैं । इस लिए काम्य हवि आदिकी कल्पना

मासांश्चतुरो वेदान्त्संवभाषे बृहस्पतिः । ब्रह्मणो वितते यज्ञे परया ब्रह्मसम्पदा ॥ १४ ॥ शिक्षाक्षरसमेताया मधुरायाः समंततः । सानुस्वारितरामायाः सरस्वत्याः प्रभाषते ॥ १५ ॥ तेन ब्राह्मणशब्देन ब्रह्मप्रोक्तेन भारत । विभाति स मखो व्यक्तं ब्रह्मलोक इवापरः ॥ १६ ॥ मखो ब्रह्ममुखोत्तीर्णो ब्रह्मशब्दै-

तात्त्विकी ही है] ॥१३॥ जब उत्कृष्ट ब्रह्मसम्पत्तिके साथ ब्रह्मयज्ञको आरम्भ किया जाता है, तो छः मासमें चारों वेदोंको कहने लगता है, यह बात बृहस्पतिजीने अनुभव की है [नीलकण्ठ— देवाचार्य बृहस्पतिने कहा है, कि–छः मास तक अविच्छिन्नरूपसे निर्विशेष अवस्थामें स्थित होकर ब्रह्मसम्बन्धी [आत्मचिन्तवन] यज्ञको करने पर परमसम्पत्ति (ब्रह्मसम्पत्ति) प्राप्त हो जाती है, और चारों वेदोंको ज्ञान जाता है । तात्पर्य यह है, कि–छः महीनेमें योगसिद्धि होजाती है । मैत्रायणी श्रुतिमें भी कहा है, कि–षड्भिर्मासैस्तु युक्तस्य नित्ययुक्तस्य देहिनः । आनन्दः परमो गुह्यः सम्यग् योगः प्रवर्तते–जो प्राणी छः मास तक निरन्तर योगसाधन करता है, उसको परमगुह्य आनन्द नामक योगका भली प्रकार प्रत्यक्ष होजाता है"] ॥ १४ ॥ (अब इस बातका वर्णन करते हैं, कि–वेदज्ञान प्राप्त करने वाले बृहस्पतिने उसका अपने शिष्योंमें प्रचार किया) वह बृहस्पति वेदशिर उपनिषद्में प्रतिपादित स्वर्ग (ज्ञान) और स्वर्गके साधन कर्मसे रमणीय, शिक्षाके अक्षरोंसे संयुक्त मधुर (वेद) वाणीका उपदेश देने लगे ॥१५॥ हे भारत ! कर्मचोदना वाक्यों से शिक्षित ब्राह्मणशब्दके द्वारा अर्थात् प्रवृत्तिप्रधान वेदोदित मार्गसे रचा हुआ वह प्रसिद्ध याज्ञिकप्रसिद्ध यज्ञ दूसरे ब्रह्मलोक की समान(अर्थात् आध्यात्मिक योगयज्ञकी समान)भासने लगा है ॥ १६ ॥ अप्रामाण्य शंकाशून्य अनामय वेदशब्दमय प्रयोगों

रनामयैः । प्रयोगैः संप्रयुक्तस्य जल्पन्निव विवर्धते ॥ १७ ॥ समिद्भिः सोमकलशैः पात्रैश्चैव बहिःखलैः । यवैर्व्रीहिभिराज्यैश्च पूर्णैरन्नजलभाजनैः ॥ १८ ॥ कर्मप्राप्तैश्च पशुभिः कर्मभिश्च परान्वितैः । गोभिः पयस्विनीभिश्च परिवंशैश्च कोमलैः ।१६। ब्रह्मवृद्धो वयोवृद्धस्तपोवृद्धश्च भारत । ब्रह्मज्ञानमयो देवो विद्यया सह सङ्गतः ॥२०। मानसैश्च क्रियामूर्तिर्ये च भूताः स्वयं नृप । ब्रह्मा जुहोति तांस्तस्मान्मरुद्भिः सहितस्तदा ॥ २१ ॥ तेजोमूर्तिधरैरूपैर्न च तत्कर्मणा स्पृशत् । वेदप्रोक्तेन विधिना सर्वप्राणभृतां नृप ॥ २२ ॥ निर्मथ्यारणिमाग्नेयीं शमीगर्भसमुत्थिताम् । क्रतुना यजते पूर्णमग्निष्टोमेन स प्रभुः ॥ २३ ॥ सदस्यैस्तत्सदो

से चलता हुआ भक्तिमान् यजमानका यज्ञ बोलता हुआसा होने लगा ॥ १७ ॥ वह यज्ञ समिधाओंसे, सोमके कलशोंसे स्रुक् स्रुव आदि पात्रोंसे, बर्हिःखलोंसे, यवोंसे व्रीहियोंसे, जल भरे हुए पात्रों से, कर्मके लिये लाए हुए पशुओंसे परब्रह्मयुक्तकर्मोंसे, दुधेर गौओं से और कोमल परिवंशोंसे (युक्त होकर चलने लगा) ।१८।१९। वेदघोषरूपी ब्रह्मसे वृद्ध और (यज्ञ आयुष्मान् सदक्षिणाभिः- यज्ञ दक्षिणाओंसे आयुष्मान् होता है, इस श्रुतिके अनुसार) दक्षिणारूपी आयुसे वृद्ध अर्थात् वहुतसी दक्षिणा वाला, तपोवृद्ध अर्थात् ब्रह्मज्ञानमय और कर्माङ्गाववद्ध उद्गीथ उपासनासे युक्त यजमानका यज्ञ चलने लगा]॥२०॥हे राजन् ! उस यज्ञमें क्रियामूर्ति (यज्ञात्मा) यजमान ब्रह्मा जो कल्पनाके विना आत्मा में अध्यस्त होनेके कारण अपने आप उत्पन्न होगए थे, उन घृत आदिका होम करने लगे २१ वह वेदोक्त विधिसे प्रवर्तित चिन्मय द्रव्यदेवता आदिसे युक्त ब्रह्मयजन सब प्राणियोंके कर्म से अस्पृष्ट रहता है, अर्थात् वह यज्ञ सर्वाधिक है ॥ २२ ॥ प्रभु ब्रह्माजी शमीके गर्भमेंसे उत्पन्न हुए अश्वत्थसे उत्पन्न हुई

ध्यक्तं शुशुभे यज्ञकर्मणि । जल्पन्ति मधुरा वाचः सानुसाराः क्रियास्तथा ॥२४॥कर्मभिश्च तपोयुक्तैर्वेदवेदांगपारगैः । सूर्येन्दुसदृशै राजन् विरराज महाक्रतुः ॥ २५ ॥ ब्रह्मघोषेण महता ब्रह्मावास इवापरः । वसुधामिव संप्राप्तैः सर्वैरेव दिवौकसैः २६ वेदवेदांगविद्भिश्च विनीतैर्ब्रह्मवादिभिः । गतागतैस्तपःश्रान्तैः स्वर्गलोके महीगते ॥ २७ ॥ ज्वलद्भिरिव विप्रैस्तैस्त्रिभिरेवाध्वरेग्निभिः । ब्रह्मलोक इवाभाति ब्रह्मणः स महाक्रतुः ॥ २८ ॥ इन्द्रप्रोक्तानि सामानि गायन्ति ब्रह्मवादिनः । वचनानि प्रयुक्तानि यजूंषि विततेऽध्वरे ॥ २९ ॥ तपः शान्तब्रह्मपराः सत्यव्रतसमा-

---

आग्नेयी अरणिका मथन करके अग्निष्टोम यज्ञसे यजन करने लगे ॥ २३ ॥ यज्ञकर्ममें सदस्योंसे घिरी हुई वह सभा शोभा पाने लगी, उस समय सहायक (चमस अध्वर्यु आदि) और क्रियाएँ (होने लगीं) और मधुर वाणियोंका उच्चारण होने लगा ॥ २४ ॥ हे राजन् ! वह महायज्ञ सूर्य और चन्द्रमाकी समान प्रकाशवान् वेद वेदांगके पारगामी तपस्वी ब्राह्मणोंके कर्मसे शोभा पाने लगा ॥ २५ ॥ वह यज्ञस्थल बडे भारी ब्रह्मघोषके कारण दूसरे ब्रह्मलोककी समान शोभा देने लगा, वह यज्ञ वेद वेदाङ्गको जानने वाले विनीत ब्रह्मवादियोंके कारण ऐसा प्रतीत होता था, मानों सब देवता पृथ्वी पर आगए हों और तपःश्रान्त आने जाने वाले मुनियोंके कारण स्वर्गलोकमें भी वह यज्ञ दिप निकलता, अत एव पृथ्वीतलमें अत्यधिक दिप रहा था ॥२६।२७॥ यज्ञमें विराजमान तीन अग्नियोंकी समान प्रकाशवान् ब्राह्मणोंसे विराजमान वह ब्रह्माजीका महायज्ञ ब्रह्मलोककी समान दिपने लगा ॥ २८ ॥ यज्ञके प्रवृत्त होने पर ब्रह्मवादी पुरुष इन्द्रके कहे हुए सामोंका अर्थात् स्तोत्रोंका गान करने लगे और यजुःशास्त्रके मन्त्रोंका पाठ करने लगे २९

हितः । आययुर्मुनयः सर्वे मनोभिः श्रोत्रवादिभिः ॥ ३० ॥ होता चैवाभवद्राजन् ब्रह्मत्वे च बृहस्पतिः । सर्वधर्मविदां श्रेष्ठः पुराणो ब्रह्मसम्भवः ॥ ३१ ॥ यजमानश्च यज्ञान्ते विष्णोः पूजां प्रयुज्य च । अदित्याः पश्चिमे गर्भे तपसा संवृतो नृप ॥ ३२ ॥ पदं विष्णुरजो ब्रह्मा निर्द्वन्द्वं निष्परिग्रहम् । यतः पदसहस्राणि भविष्यन्त्युद्भवन्ति च ॥ ३३ ॥ अवन्ध्यं चाप्रमेयं च व्यतिरिक्तं च कर्मभिः । आत्मानि यस्य मुनयो भवन्ति निष्परिग्रहाः ॥ ३४ ॥

तहाँ पर तप और शान्तब्रह्ममें परायण रहने वाले सत्यव्रतमें परायण सब मुनि श्रुतमात्रानुसारि संकल्पोंसे तहाँ आने लगे ३० हे राजन् ! तहाँ पर होता बृहस्पति ही (मूर्तिभेदकी कल्पना करके) ब्रह्मा बने थे, वह सब धर्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ थे, प्राचीन थे और ब्रह्माजीसे उत्पन्न हुए थे ॥ ३१ और यज्ञ करनेवाले ब्रह्मा यज्ञके अन्तमें विष्णुकी पूजा करके अर्थात् यज्ञको ब्रह्मार्पण करके, अदितिके तपोसम्पन्न पिछले गर्भमें जाकर सम्मिलित होगए(तात्पर्य यह है कि-यज्ञोंसे देवत्व मिल सकता है) ३२ इस प्रकार अज ब्रह्मा विष्णुके निर्द्वन्द्व और निष्परिग्रह पदको प्राप्त होजाते हैं, इस पदसे (इन्द्र आदि) के सहस्रों पद उत्पन्न होते हैं [नीलकण्ठ-इस प्रकार कर्मके फल सुखबहुल देवताभावको कह कर, उसके दूसरे फल सुखदुःखके स्पर्शसे शून्य विष्णुपद की प्राप्तिका इस श्लोकमें वर्णन किया है । श्रुतिमें भी लिखा है, कि-"ते ह वै शरीरस्य सतः प्रियाप्रिययोरपहतिरस्त्य शरीरं वावसन्तं न प्रियाप्रिये स्पृशतः,इति शरीरतालक्षणं मोक्षम् विष्णुपदम्"] ॥ ३३ ॥ वह विष्णुपद अवन्ध्य है अर्थात् सब कर्मोंके फलसे गर्भित है अप्रमेय है, कर्मोंसे व्यतिरिक्त (असंग) है, और मुनि भी उनकी आत्मा होजाते हैं [इस प्रकार आत्मासे विष्णुका अभेद दिखाया है] ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! चारों ओर

परिग्रहाश्च विषया दोषप्राप्ता महीपते। दोषाश्च युगपत् सर्वे छादयन्ति मनो बलात् ॥३५॥ इन्द्रियग्रामविषये चरन्तो निष्परिग्रहाः। परिग्रहं शुभं धर्ममविद्यालक्षणं विदुः ॥ ३६ ॥ विद्यालक्षणसंयोगान्न मनश्छाद्यते नृप। यदि चेन्मुनिशब्देन गृह्यते ब्रह्मवादिभिः ॥ ३७ ॥ वेदविद्याव्रतस्नातैर्नियतैः कुरुसत्तम। दिवि लोकाः सतां स्थानं लोकानां लोक उच्यते ॥ ३८ ॥ यत्र देवा हव्यपुष्टा न स्वर्गं यान्ति भारत। यजमानश्च भोगैः स्वैः

से ग्रहण करने (बाँधने) वाले रूप आदि विषय (राग आदि) दोषोंसे कल्पित होते हैं, वे दोष मन पर पूर्वसंस्कारके वशमें होकर एक साथ आक्रमण करते हैं (गणादाचार्यरचित न्यायसूत्रमें भी लिखा है, कि-"दोषनिमित्तं रूपादयो विषयाः") ॥३५॥ वे इन्द्रियग्राममें विचरण करने पर भी निष्परिग्रह रहते हैं और शुभ धर्मको भी अविद्यालक्षण परिग्रह ही जानते हैं (यहाँ यह शंका उठती थी, कि-देहधारियोंके लिये रूप आदिका दर्शन तो अपरिहार्य बात है; फिर वे निष्परिग्रह कैसे होसकते हैं, इसका समाधान करते हुए कहा है, कि-अहं मम यह अविद्या ही परिग्रह है, केवल दर्शन परिग्रह नहीं होसकता, इसी लिये कहा हैं, कि-मुनि इन्द्रियोंके विषयोंमें विचरण करने पर भी निष्परिग्रह होते हैं। ऐन्द्रजालिक सम्पत्तिमें तत्त्ववेत्ता आसक्त नहीं होते हैं, और वेदबोधित शुभधर्मको भी अविद्यालक्षण और बन्धनमें डालने वाला ही समझते हैं, अतः निर्द्वन्द्व विष्णुपद ही श्रेयस्कर है) ॥ ३६ ॥ हे कुरुसत्तम राजन् ! जब वेदविद्या व्रतस्नात नियत ब्रह्मवादीके पुरुषोंके द्वारा मुनिशब्दप्रतिपादक (तत्त्वमसि आदि) वाक्योंसे अनुगृहीत होता है, तब मननके द्वारा तत्त्वको जानने वाला मन विद्यालक्षणसंयोगसे राग आदिसे आच्छन्न नहीं होता है(अब प्रसङ्गवश प्राप्त हुए विद्याफल आदिको समाप्त

कर्मणाशोदिते पदे । मोदते सह पत्नीभिर्विज्वरो वसुधाधिप ३९ यज्ञावसाने शैलेन्द्रं द्विजेभ्यः प्रददौ प्रभुः । दयया सर्वभूतानां निर्मलेनान्तरात्मना ॥ ४० ॥ तं शैलं सर्वगात्राणि परस्परविशेषिणः । न शेकुः प्रविभागार्थं भेत्तुं सर्वोद्यमैरपि ॥ ४१ ॥ ततस्ते ब्राह्मणगणा निषेदुर्वसुधातले । श्रमेणाभिहताः सर्वे विवर्णवदना नृप ॥४२॥ सुपार्श्वो गिरिमुख्यस्तु वाग्भिर्मधुरभाषितैः । अव-

करके प्रकृत कर्मफलका अनुसरण करते हैं, कि-सज्जन मनुष्यों के लिये जो स्थान नियत होता है, (कर्मठ) वृद्ध पुरुष उसको लोक कहते हैं ३७-३९ यज्ञके समाप्त होने पर निर्मल अंतरात्मा वाले प्रभुने दया करके वह पर्वत ब्राह्मणोंको दे दिया [नीलकण्ठ-यज्ञफलके दाता महाप्रभु विष्णु यज्ञके अन्तमें त्रैवर्णिक यजमानोंको पितृसम्बन्धी गंधर्वसम्बन्धी देवतासम्बन्धी प्रजापति सम्बन्धी वा ब्रह्मसम्बन्धी श्रुतिप्रसिद्ध शैलोपनामक शरीर देते हैं] ॥ ४० ॥ परस्पर विशेषता वाले वे सब सब प्रकारका उद्योग करके भी उस शैलके अङ्गोंको प्रविभक्त न कर सके [नीलकण्ठ-वे सब मोक्षके लिए सर्वगात्रात्मकक्षेत्ररूप उस देहाभिमानको भेददृष्टिसे ब्राह्मणत्व क्षत्रियत्व आदि जात्यभिमानसे विशेषित करके भी छिन्न न कर सके, तात्पर्य यह है, कि-(आत्मज्ञानके अतिरिक्त करोड़ों यज्ञोंसे भी मोक्ष नहीं होसकती] ॥ ४१ ॥ हे राजन् ! वे सब ब्राह्मण श्रमसे थक कर उदास मुख हो तब पृथिवी पर बैठ गए [नीलकण्ठ—देवताभावमें भी कुछ नीचभाव होता है, इसी बातको जान कर वे क्षोभके कारण श्रान्त होकर पृथ्वीमें बैठ गए, और उन्होंने संसारी बनने की इच्छा प्रकट नहीं की और स्वर्गमें भी परम दुःख होनेके कारण उनका मुख उतर गया] ॥४२॥ उस सबसे सुन्दर पार्श्व वाला वह पर्वत उन सब श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको शिर झुका प्रणाम करके

वीत् मरुतः सर्वाङ्गिरसा तान् द्विजोत्तमान् ॥४३॥ न हि शक्यो मल्लाद्रेस्तु युष्माभिरसुसंगिभिः । अपि वर्षशतैर्दिव्यैः परस्पर विरोधिभिः ॥ ४४ ॥ एकीभूता यदा सर्वे भविष्यथ समाहिताः । अविरोधेन युगपद्विभजिष्यथ निर्वृताः ॥ ४५ ॥ बलं हि रागद्वेषाभ्यां वर्धते ब्रह्मसत्तमाः । विमुक्तं रागद्वेषाभ्यां ब्रह्म वर्धति शाश्वतम् ॥४६॥ यदाहं भेदयिष्यामि स्वर्गभिन्नैः शिलाशितैः ।

मधुर वाणीमें कहने लगा [नीलकण्ठ- उस समय जिनके पासमें रहना कल्याण देता है ऐसे परमशान्त और "गिरति ह वै द्विषन्तं पाप्मानं" इस श्रुति वचनके अनुसार अविद्याको जड़से उखाड़ने वाले पापच्छेत्ताओंमें मुख्य गिरि उपनाम वाले गुरु उनको (शिरसे उपलक्षित) वेदान्त वाक्योंका उपदेश देने लगे, कि-"ओं आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम्-" इस प्रकार उन्होंने वायु आदिके ब्रह्मभाव प्रतिपादक वाक्यका उपदेश दिया] ॥ ४३ ॥ तुम असुसङ्गी परस्परमें विरोध रख कर सहस्रों दिव्य वर्षोंमें भी इसको नहीं तोड सकोगे [नीलकण्ठ- तुम असुसंगी हो अर्थात् देह इन्द्रिय आदिमें आत्म बुद्धि रखते हो अतः तुम इस देहाभिमानरूपपर्वतका युक्तिके विना सहस्रों दिव्य वर्षोंमें भी नाश न कर सकोगे] ४४ जब तुम सब आपस में विरोध छोड करके एक हो जावोगे, तब तुम इस पर्वतको सुखपूर्वक भेद सकोगे [नीलकण्ठ—अब देहाहंकारके भेदन के उपायको कहते हैं, कि-यदि तुम समाधिमें एकाग्रताको प्राप्त होजावोगे और सब प्राणियोंको अभयदान देकर शान्त हो जावोगे तो इस देहाभिमानको नष्ट कर सकोगे ॥४५॥ हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो ! राग और द्वेषसे (स्वभावजन्यसामर्थ्यरूप) बल छिन्न भिन्न होता रहता है और रागद्वेषसे विमुक्त होने पर ब्रह्मनिष्ठा बढती है ॥ ४६ ॥ जब मैं स्वर्गसे पृथग्भूत शिलाशित धातुओंसे,

धातुभिश्च विसर्पद्भिः शिखरैश्चानुपातिभिः॥ ४७ ॥ विशीर्णैः पार्श्वविवरैर्नागैश्च गलितैर्भुवि । बहुभिर्व्यालरूपैश्च चोद्यमानो गुहाशयैः ॥ ४८ ॥ प्रतिगृह्य तु तद्वाक्यं शैलेन्द्रस्य सुभाषितम् । तूष्णीं बभूवुस्ते सर्वे तदा ब्राह्मणसत्तमाः ॥ ४९ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ॥ २३ ॥

वैशम्पायन उवाच । वलिहोमाश्च वर्धन्ते अहन्यहनि भारत ।

सरकती हुई और गिरती हुई धातु वाले, विशीर्ण पार्श्वविवर वाले, पृथिवीमें गिरते हुए नाग वाले, बहुतसे व्यालरूप गुहाशयों से प्रेरित होकर तुमको भेदनेकी प्रेरणा करूँगा तब तुम इसको नष्ट करना [नीलकण्ठ–जब ऐहिक और पारलौकिक भोगोंसे विरक्त अत एव स्फटिक शिलाकी समान अतिस्वच्छ देहारम्भक तेज तेज जल और अन्नात्मक धातुओंके कार्य वाणी प्राण और मनकी प्रवृत्ति लिंगात्मक और जैसे कबूतर दाने पर गिरता है, तैसे जिनपर इन्द्रियें गिरती हैं ऐसे और समीपस्थित स्त्री आदि चित्तरूप सर्पके प्रवेशस्थानरूप बिलोंसे युक्त श्वेतसर्पकी समान शास्त्रादिव्यसनोंसे युक्त और कृष्णसर्पकी समान काम आदि व्यसनोंसे युक्त बुद्धिरूप गुहामें शयन करने वाले संस्कारोंसे प्रेरित होकर मैं गुरु जब प्रसन्न हो देहादिके अध्यासको दूर करना चाहूँगा, तब ही उसका नाश होगा]॥ ४७ ॥ ४८ ॥ शैलेन्द्रके इस सुभाषित वाक्यको सुन कर, वे ब्राह्मणसत्तम चुप होगए [नीलकण्ठ–वे ब्राह्मण वैराग्य आदिका अभाव होनेसे आत्माके देहसे पृथक् करनेके व्यापारसे निवृत्त होगए] ॥४९॥ तेईसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २३ ॥

वैशम्पायनजीने कहा, कि–हे भारत ! गृहस्थधर्मका आचरण करने वाले तपोधन ब्राह्मणोंके द्वारा दिन प्रति दिन होम और

द्विजानां तपसाढ्यानां गृहधर्मेषु तिष्ठताम् ॥ १ ॥ देवताच्चीश्च पूज्यन्ते तदा प्रभृति भारत। तेषां ब्रह्मविदां राजन् पृथिव्यां ब्रह्मवादिभिः ॥ २ ॥ तत्रैव ब्रह्मसदने समे निस्तृणकण्टके। प्राज्यैंधनतृणे देशे पुण्ये पर्वतरोधसि ॥ ३ ॥ वासं यत्र प्रकुर्वन्ति दृष्ट्वा भगवतः क्रियाम्। तपोर्थिनो महाभागा ब्रह्मचर्यव्रते स्थिताः ४ गृहस्थधर्मनिरता जितक्रोधाः समाहिताः। यतयश्चापि काङ्क्षन्ति धर्मेणेह निकाङ्क्षिणः ॥ ५ ॥ वन्यैः कर्मफलैश्चैव रता ब्राह्मणपुङ्गवाः। अग्निहोत्रव्रतस्नाता जितक्रोधाः समाहिताः ॥ ६ ॥

बलिकी वृद्धि होने लगी, और हे राजन्! पृथिवीमें (शैलभेदन करनेमें असमर्थ) वे ब्राह्मण अपनी समान ऋत्विजोंसे देवताओंकी पूजा करने लगे [नीलकण्ठ-अष्टादशे वपुर्भेत्तुमशक्तेः कर्मभूतले। कर्तव्यं ब्रह्मसदने चित्तशुद्ध्यर्थमीर्यते—अब इस अठारहवें पुष्करप्रादुर्भावाध्यायमें देहाभिमान त्यागनेकी शक्ति न रखने वालोंके लिये(काशीरूप)ब्रह्मसदनमें चित्तशुद्धिके लिये कर्तव्य कर्मका उपदेश दिया जाता है।" देहाभिमान त्यागनेमें असमर्थ पुरुष अपनी समान ऋत्विजोंसे होम और बलि आदिको करते हैं और अर्चनीय गुरु देवता आदिकी पूजा करते हैं]।१।२। वे तृण कण्टक आदि रहित; प्रभूत ईंधन और तृण वाले विंध्याचलके निकट रहने लगे ॥ ३ ॥ ब्रह्मचर्यव्रतमें स्थित महाभाग तपस्वी भगवान्की गति अगतिरूप क्रियाको देख कर विंध्याचलके निकट वाराणसी पुरीमें रहते हैं ॥४॥ गृहस्थधर्ममें निरत रहने वाले, क्रोधको जीतने वाले समाहित यति भी धर्मपूर्वक यहीं (काशीमें ही) रहना चाहते हैं ॥५॥ (अब इस बातका वर्णन करते हैं, कि—वानप्रस्थभी काशीमें रहना चाहते हैं) जो ब्राह्मणपुङ्गव वानप्रस्थके कर्म करते हैं और वनके फलोंका भक्षण करते हैं, वे अग्निहोत्र और व्रतकी दीक्षा लेने वाले क्रोधजित्

दैवयुक्तेन वा युक्ताः कर्मणा ब्रह्मसत्तमाः । चीरवल्कलसंवीता
नियता नियतेन्द्रियाः ॥ ७ ॥ चरन्तो ब्रह्मचर्यं च व्रतमास्थाय
दारुणम् । अनेन विधिना राजन् क्रमप्राप्तेन सर्वशः ॥८॥क्रमाद्ये
वेदसंस्कारं पुण्यं प्राप्ताः सनातनम् । पूर्वैराचरितं राजन् मुनि-
भिर्ब्रह्मवादिभिः ॥ ९ ॥ नावेदविद्वान्नागच्छेन्नापि रौद्रं व्रतं
चरेत् । न च त्यागेन गच्छेत गृहधर्मं न च त्यजेत् ॥ १० ॥ नैवं
गच्छेत दुःस्थानमप्राप्तो वेदसंचयम् । ऋचश्च संचयः पूर्वाः साम-

ब्राह्मणभी (काशीमें ही रहना चाहते हैं) ॥६॥ दैवयुक्त कर्मसे युक्त, चीर और वल्कल वस्त्रको धारण करने वाले, इन्द्रियोंको नियममें रखने वाले नियत ब्राह्मण (भी चित्तशुद्धिके लिये काशीमें रहते हैं) ॥ ७ ॥ इस आश्रमक्रमके द्वारा पुरुष दारुण व्रतका आश्रय लेकर ब्रह्मनिष्ठाको करते हुए (काशीमें रहते हैं) ॥८॥ हे राजन् ! ब्रह्मवादी पहिले मुनियोंसे सेवित वेदोक्त पुण्यमय संस्कारोंको प्राप्त करनेके बाद (द्विज काशीमें रहते हैं) ॥ ९ ॥ वेदको न जानने वाला पुरुष गृहस्थ धर्ममें प्रवेश न करे,तात्पर्य यह है,कि— सारे वेदको प्राप्त किये विना गृहस्थ प्रवेश न करे, त्यागको ग्रहण न करे,गृहधर्मको न त्यागे[मनुजी ने भी कहा है, कि-"अनधीत्य द्विजो वेदाननुत्पाद्य सुतानपि । अनिष्ट्वा शक्तितो यज्ञैर्मोक्षन् सन् वै व्रजत्यधः॥–ब्राह्मण वेदका अध्ययन करनेसे पहिले, पुत्रोंको उत्पन्न करनेसे पहिले, शक्ति पूर्वक यज्ञ करनेसे पहिले संन्यास लेनेसे नरकमें पडता है"परन्तु यह सब अविरक्त पुरुषके सम्बन्धमें लिखा है । क्योंकि–ज्ञानी के लिये श्रुतिमें लिखा है,कि-ब्रह्मचर्यादेव प्रव्रजेद् गृहाद्वा वनाद्वा यदहरेव विरजेत्तदहरेव प्रव्रजेत्॥-जिस दिन ज्ञान होजाय उस दिन चाहें ब्रह्मचर्यमें, हो गृहस्थमें हो वा वानप्रस्थमें हो संन्यास धारण कर लेय] ॥१०॥ हे भारत ! जब तक सामगान गाने वालोंकी

गानां च भारत ॥ ११ ॥ ये चापि पुत्रिणो न स्युः श्रुत्वापि
प्राप्नुयुः फलम् ब्राह्मणास्तपसा श्रान्ता गुरोश्च परिचर्यया ॥ १२
यस्य नैव श्रुतं ब्रह्मन्न गृहीत विशाम्पते । कामं तं धार्मिको राजा
शूद्रकर्माणि कारयेत् ॥ १३ ॥ अथवा नैव विद्येत ब्रह्म नाद्रियेत
द्विजः । द्वाभ्यां तु श्रोत्रविषये मनः पूर्वं समाहितम् ॥ १४ ॥ एवं
सर्वेन्द्रियारम्भान् वेदपूर्वान् समाचरेत् । ब्राह्मणो भूतसम्पन्नो य
इच्छेद्भूतिमात्मनः ॥ १५ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि
चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २४ ॥

वैशम्पायन उवाच । ते तु गोब्राह्मणा नागाश्चन्द्रादित्यपुर-

और यजुर्वेदकी ऋचाओंके संग्रहको न पढ़ ले तब तक कठिनसे
प्राप्त होने वाले स्थान (संन्यास) को धारण न करे ११ जो पुरुष
पुत्रवान् नहीं होते हैं, अर्थात् जो गृहस्थाश्रममें प्रवेश नहीं करते हैं,
वे (वेदान्तको) सुन कर उसके फल (ज्ञान) को पालेते हैं,
तपस्वी ब्राह्मण भी गुरुकी शुश्रूषा करके भी इस ज्ञानको पा
सकते हैं ॥ १२ ॥ हे राजन् ! जो न शास्त्रका श्रवण करता है
और न कर्मोंका अनुष्ठान करता है, धार्मिक राजा उससे शूद्रों
के कर्म करावे ॥ १३ ॥ अथवा जो वेदका आदर नहीं करता
है, वह ब्राह्मण ही नहीं है, तात्पर्य यह है, कि ब्रह्मचर्य और
गृहस्थ इन दोनोंमें ब्राह्मणको धर्ममें मन लगाना पड़ता है, अतः
ब्राह्मण वेदको न जानने वाला नहीं होसकता, अतः राजाको
ब्राह्मणकी अवहेलना करनी चाहिये ॥ १३ ॥ इस लिये
जो ब्राह्मण अपना कल्याण चाहता हो, वह वेद पूर्वक सब
(इन्द्रियसमारंभों, संस्कारोंको) करे १५ चौबीसवाँ अध्याय समाप्त

वैशम्पायनजीने कहा, कि-वे चन्द्रमा और आदित्योंसे पुरस्कृत
अपराध रहित गौ और ब्राह्मण वेदोक्त धनसे ब्राह्मण और

स्कृताः । ब्राह्मणान् पूजयन् देवान् वसुभिर्ब्रह्मसम्भवैः १ ॥ नारदप्रमुखाश्चैव गन्धर्वा ऋषयो नृप । कुर्वन्ति सततं यज्ञे क्रमप्राप्तं पितामहम् ॥२॥ वचोभिर्मधुराभाषैः पञ्चेन्द्रियनिवासिभिः। सर्वभूतप्रियकरैः सर्वभूतहितैषिभिः ॥ ३ ॥ स्तूयमानश्च यज्ञान्ते पंचेन्द्रियसमाहितैः । प्रोवाच भगवान् ब्रह्मा दिष्ट्या दिष्ट्येति भारत ॥४॥ ततः कश्यपमाभाष्य प्रोवाच भगवान् प्रभुः । भवा-

देवताओंकी पूजा करने लगे [नीलकण्ठ-"एकोनविंशे श्रौतोपि यज्ञः काम्यादिमान्धृतः । तेनेशभक्तिरेकैका तमोहन्त्री निगद्यते-वेदमें कहा हुआ यज्ञ भी वासनामय होता है इस लिये उन्नीसवें पुष्करप्रादुर्भावाध्यायमें इस बातका वर्णन किया जायगा कि-केवल ईश्वर भक्तिही अज्ञानका नाश करने वाली है" वे वेद-वाणीको प्रधान मानने वाले राजसी प्रकृति वाले नारद आदिक ब्राह्मण इस बातको जानते थे कि-वैदिककर्म करना श्रेयस्कर है उसको न करने पर राजदण्ड भोगना पड़ता है इस बातको जान कर दर्श और पूर्णमासयज्ञमें ब्रह्मणासे उत्पन्न देवता और ऋषियोंकी वेदोक्त हवि और दक्षिणाओंसे पूजा करने लगे१ हे राजन् ! नारद आदि ऋषि और गंधर्व भी यज्ञमें ब्राह्मण पूजाके क्रमसे प्राप्त हुई पितामहकी पूजाको भी करने लगे (अर्थात् पुत्रकी पूजासे पिताको भी आनन्द होता है इस प्रकार ब्राह्मणोंकी पूजा से ब्रह्माकी भी पूजा होनेलगी) ॥२॥ यज्ञके अन्तमें ब्रह्माजी पाँचों इन्द्रियोंको वशमें रखने वाले सब भूतोंका प्रिय करनेवाले और सब भूतोंका हित चाहने वाले ब्राह्मणोंके मधुरवचनोंसे स्तुति पाकर धन्य है२ कहने लगे (अर्थात् यज्ञको देखकर ब्रह्माजी कहने लगे तुम्हारी यज्ञमें ऐसी प्रवृत्ति है यह बात प्रशंसनीय है) ॥ ४ ॥ तदनन्तर ऐश्वर्यवान् प्रभु ब्रह्माजीने कश्यपजी से कहा, कि-आप भी अपने पुत्रोंके साथ पृथिवीतलमें इस

नपि सुतैः सार्धं यक्ष्यते वसुधातले ॥ ५ ॥ क्रतुभिः परमप्रातैः सम्पूर्णवरदक्षिणैः । यथा सुराश्च ते सर्वे यथामतिगुणैः प्रभो ६ वयं यज्ञामहे पूर्वं पूर्वं यज्ञामहे वयम् । एवमन्योन्यसंरम्भाद्विधंते बलदर्पिताः ॥ ७ ॥ देवेभाश्चाप्यदंतेषाः परस्परमयैषिणः । युद्धायैव प्रतिष्ठन्ति प्रगृह्य विपुलौ भुजौ ॥ ८ ॥ निवार्यमाणा ऋषिभिस्तपसा दग्धकिल्बिषैः । अन्यैश्च विविधैर्विप्रैर्वेदवेदाङ्ग-

प्रकार ही यज्ञ करिये ॥ ५ ॥ जब आप यज्ञ करेंगे तब यक्ष और देवता भी अपने २ राजसिक और तामसिक भावोंसे सम्पन्न होकर पूर्ण दक्षिणा वाले यज्ञोंको करेंगे ॥६॥ (जब इस प्रकार यज्ञकी प्रवृत्ति होगई तब बलमें भरे हुए देवता और राक्षस हम पहिले यज्ञ करेंगे हम पहिले यज्ञ करेंगे इस प्रकार कह कर क्रोध में भर गये और परस्परको जीतनेकी इच्छासे बड़ी२भुजाओंको उठा कर लड़नेको खड़े होगए [नीलकण्ठ इन दोनों श्लोकोंसे बृहदारण्यक उपनिषद्में वर्णित शमकामात्मक देवता और असुरों की परस्पर युद्ध होनेकी कथाका आरम्भ किया है अर्थात् हम इन्द्रियोंमें प्रवेश करके स्तोत्र आदि कर्मसे असुरोंको जीत लेंगे यह विचार कर शम आदिके रूपमें देवताओंने वाणी आदि इंद्रियों में प्रवेश किया और राक्षसोंने वाणीसे लेकर मन तक सब इंद्रियों को पापसे बींध डाला था इसी लिये इनका शुभाशुभ प्रकाशकत्व रूप अविशेष रूपसे दीखता है और प्राणाख्य सूत्रात्माका आश्रय लेनेसे देवता कामादि असुरोंको मारडालते हैं देवता और असुर यह दोनों प्रजापतिकी ही संतान हैं उनमें देवता छोटे हैं और असुर बड़े हैं उन्होंने परस्पर स्पर्धा की थी इस बृहदारण्यकमें कही हुई आख्यायिकाका ही वर्णन किया है) ॥ ७ ॥ ८ ॥ वेद और वेदाङ्गके पारगामी ब्राह्मण तथा तपसे जिनके पाप नष्ट हो चुके थे ऐसे ऋषि उन दोनोंको रोकने लगे परन्तु वे ओठोंमें लड़ने

पीरगैः ॥९॥ निवार्यमाणा युद्ध्यन्ते वृषभा इव गोकुले ।। प्रयुद्धा-स्त्वसंक्रान्ताः सर्वे प्राणजयेप्सवः ॥ १० ॥ पश्यतां सर्वभूतानां मृत्योर्विषयमागताः । ततः शब्देन महता परं कृत्वा महाबलाः ॥ ११ रुन्धन्ति बाहुभिः क्रुद्धाः सपक्षा इव पक्षिणः । चचाल वसुधा चैव पादाक्रान्ता च रोचिभिः ॥ १२ ॥ नौ यथा पुरुषाक्रान्ता निपीदति महाजले । पर्वताश्च विशीर्यन्ते नर्दमाना गजा इव ॥१३॥ चतुर्भुज महाभग्नताडिता मातरिश्वना । ततः समभवद्युद्धं मधो-

वाले बैलोंकी समान निवारण करने पर भी युद्ध करनेसे न रुके (अर्थात् ब्राह्मणोंसे भी इन दोनों प्रकारकी वृत्तियोंका निरोध होना अशक्य है) फिर वे सब प्राणोंको जीतनेकी इच्छासे युद्ध करने लगे ॥ ९ ॥ १० ॥ और सब प्राणियोंके देखते हुए मरण के पास पहुँच गए [नीलकण्ठ-इसका आध्यात्मिक अर्थ यह है कि शुभ अशुभ वृत्तिरूप देवता और असुर यज्ञको छोड़ कर प्राणोपासनामें प्रवृत्त होगए, फिर वे प्राण (सूत्रात्मा) को जीतना चाहने लगे, परन्तु जिस प्रकार पत्थर पर पड़ कर रेतेके ढेले नष्ट होजाते हैं, तिस प्रकार नष्ट होगए] तदनन्तर वे सब महा-बली बड़ा भारी शब्द करके पर वाले पर्वतोंकी समान भुजायुद्ध करने लगे [आध्यात्मिक अर्थ-तब शमकामात्मक देवासुर बाह्येन्द्रिय वृत्तिसमूहको छेद कर मनको शाब्दज्ञानजविवेकसे घेरने लगे] उनके पैरोंके भारसे झुकती हुई पृथ्वी, मनुष्योंकी भारसे समुद्रमें हिलने वाली नौकाकी समान हिलने लगी, और पर्वत भी चिंघाड़ते हुए हाथियोंकी समान शब्द करके फटने लगे [आध्यात्मिक अर्थ-तब पूर्वोक्त रजस्तमोरूप विघ्नके फिर उपस्थित होने पर सत्त्वापरनाम्नी योगभूमि विषयवासनाकी ज्वालाओं से फिर विचलित होगई और पर्वतकी समान आसनबंध आदि भी विचलित होने लगे] तदनन्तर वायुसे ताड़ना पाकर सब

विष्णोश्च भारत ॥ १४ ॥ युगान्तकरणं घोरं सर्वप्राणिभयंकरम् । प्रममाथ बलं विष्णुः समग्रं बलपौरुषम् ॥ १५ ॥ वह्नेरिव बलं दीप्तं शमयत्यम्बुना यथा । तथा प्रशमितं तेन भगवता ह्युपकारिणा ॥१६॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि पञ्चविंशतितमोऽध्यायः ॥ २५ ॥

वैशम्पायन उवाच । बलवान स तु दैतेयो मधुर्भीमपराक्रमः। बबन्ध पाशैर्निशितैर्महेन्द्रं पर्वतान्तरे ॥ १ ॥ तं वै प्रह्लादवचना-

महानदियें भी क्षुब्ध होने लगीं हे भारत ! उस समय सब प्राणियोंको भयमें डालने वाला, संसारका अन्त करने वाला मधु और विष्णुका घोर युद्ध होने लगा [आध्यात्मिक अर्थ—उस समय सूत्रात्मा प्राणवायुसे सब नाड़ियें ताड़ित होने लगीं, इस प्रकार विक्षिप्त हुआ चित्त उस समय मधुनामक लयको प्राप्त होने लगता है, उसको सत्त्व नाम वाले विष्णुसे नष्ट करना चाहिये] उस समय विष्णुने उसके सारे बलका नाश कर डाला [आध्यात्मिक अर्थ—तब सत्त्व निद्रा तन्द्रा जाड्य आदिका नाश कर देता है] ॥ ११–१५ ॥ जिस प्रकार जलसे अग्निका प्रचण्ड बल शान्त होजाता है, इसी प्रकार उपकारी भगवान विष्णुने उसके बलको शान्त कर दिया ॥ १६ ॥ पच्चीसवाँ अध्याय समाप्त २५

[नीलकण्ठ—"तमसा देहनिगडे क्षिप्तमात्मानमुत्तमः । उद्धरेत् सत्त्वसामर्थ्यादिति विंशे निरूप्यते-अब इस बीसवें पुष्करप्रादुर्भावाध्यायमें इस बातका वर्णन किया जाता है, कि-जब तमोगुणके द्वारा आत्मा शरीरांधकारमें डूबने लगे, तब उत्तम पुरुष सत्त्वगुणकी सामर्थ्यसे उसका उद्धार करे"] उधर भयंकर पराक्रम करने वाले दितिपुत्र बलवान मधुने एक दूसरे पर्वतमें इन्द्रको पाशोंसे बाँध लिया [आध्यात्मिक अर्थ असुरभावने वासना

लक्षणज्ञश्च भारत । ऐश्वर्यमैन्द्रमाकांक्षन् भविष्यं बुद्धिसंक्षयात् ॥२
बबन्धेन्द्रं सहसा मध्ये पाशैर्मर्मविवर्जितैः । आयसैर्बहुभिश्चित्रै-
र्बलवद्भिर्विदारणैः ॥३॥ विष्णुमेवाग्रणी रुद्रमाह्वयद्युद्धकोविदः ।
मृधे गणानां सर्वेषां कालस्य वशमागतः ॥४॥ द्वैधीभूताः काश्य-
पेया मधोर्वशमुपागताः । युद्धार्थमभ्यधावन्त प्रगृह्य विपुला गदाः ॥५
गन्धर्वाः किन्नराश्चैव वाद्ये गीते च कोविदाः । प्रनृत्यन्ति प्रगा-
यन्ति प्रहसन्ति च सर्वशः ॥ ६ ॥ तन्त्रीभिः स प्रयुक्ताभिर्मधु-
राभिः स्वभावतः । मनो मधोर्विधुन्वन्ति युध्यमानस्य रागिणः ॥७
मधोर्बलार्थं मधुनो नियोगात् पद्मयोनिनः । एतान् विकारान्

मय पाशोंसे देहके मध्यमें आत्माको बाँध लिया]॥१॥ हे भारत! लक्षणको जानने वाले भविष्यमें भी इन्द्रके ऐश्वर्यको चाहने वाले मधुने बुद्धिक्षय होनेसे, इन्द्रको मर्मरहित लोहेके दृढ़ पाशोंसे बाँध लिया [आध्यात्मिक अर्थ—विषाद नाम वाला लय (प्रह्लाद) महर्षिका अनुगामी है। पूर्णसत्त्वराहित्य योगीका लक्षण है, मोह इस बातको जानने वाला है, वह अद्वैतदर्शनरूप आत्माका ऐश्वर्य चाहने वाले आत्माको निर्विकल्पावस्थामें स्थित होनेके पूर्व मोहमें डालने लगता है] ॥२॥३॥ तदनन्तर कालके वशमें हुआ युद्धके सब सेनादलोंका अग्रणी युद्धचतुर मधुदानव भयंकर विष्णुको युद्ध करनेके लिये बुलाने लगा ॥ ४ ॥ जो कश्यपके पुत्र मधुके वशमें रहते थे वह दो भागोंमें विभक्त होकर बड़ी २ गदाओंको उठा कर युद्ध करनेके लिये दौड़ पड़े ॥५॥ उस समय गाने बजानेमें कुशल गन्धर्व और किन्नर नाचने लगे गाने लगे और हँसने लगे ॥ ६ ॥ वे राग गाने वाले पुरुष स्वभावसे मधुर तन्त्रियोंको बजाकर युद्ध करते हुए मधु दैत्यके मनको कँपाने लगे [अध्यात्मिक अर्थ—रजप्रधान गन्धर्व आदिक उस समय मोहके मनको विरक्त करने लगे] ॥७॥ सत्यवादी

कुर्वन्ति गन्धर्वाः सत्यवादिनः ॥ ८ ॥ तत्र शक्तो हि गान्धर्वे तस्मिञ्शब्दे मधुर्मनः । दानवाश्चासुराश्चैव प्रत्यक्षं यान्ति प्राणदन् ॥९॥ मधोश्च मन आक्षिप्य पश्यन् योगेन चक्षुषा । मन्दरं प्रगते विष्णुर्गूढोऽग्निरिव दारुषु ॥ १० ॥ ऋषयो दीप्तमनसं किंचिद्व्यथितमानसाः । पितामहं पुरस्कृत्य क्षणेनान्तरधीयत ११ विष्णुं सोऽभ्यहनत्क्रुद्धो मधुर्मधुनिभेक्षणः । भुजेन शङ्खदेशान्ते न चकम्पे पदात् पदम् ॥ १२ ॥ विष्णुश्चाभ्यहनद्दैत्यं कराग्रेण स्तनान्तरे । स पपात महीं तूर्णं जानुभ्यां रुधिरं वमन् ॥१३॥

गन्धर्व पञ्चगानि मधुकी आज्ञासे मधुदानवको बल देनेके लिये इन विकारोंको करने लगे [आध्यात्मिक अर्थ-तात्पर्य यह है कि-राजसी प्रकृति ही तमोमूलिका ही है] ॥ ८ ॥ उस समय गंधर्वोंके शब्दमें मधुका मन लग गया तब दानव और असुर नाद करके हुए प्रकट होने लगे ॥ ९ ॥ भगवान्ने जब देखा कि-मधुका मन गानमें आसक्त होगया है तब वह जिस प्रकार अग्नि काष्ठमें छिप जाता है तिसप्रकार मंदराचल पर जानेके लिये उद्यत होगए [अर्थात् मनके विषयोंमें संलग्न होने पर सत्त्व-अन्तर्धान होने लगता है] ॥१०॥ उस समय ऋषियोंका मन कुछ व्यथित होगया और वह पितामहको साथमें लेकर क्षण भरमें ही तहाँसे चले गये [उस समय ऋषिरूप मन्त्र और ज्ञान परमात्मामें लीन होजाते हैं] ॥ ११ ॥ तदनन्तर मधुकी समान नेत्रवाले मधुने क्रोधमें भर कर अपनी भुजासे विष्णुके शंख-प्रदेशमें प्रहार किया परन्तु इससे विष्णु एक पैर भी पीछेको न हटे [आध्यात्मिक अर्थ-अब यहाँसे ग्यारह श्लोक तक विष्णु और दैत्यके रूपमें विवेक और मोहका युद्ध दिखाया गया है]१२ तब विष्णुने भी दैत्यकी छातीमें एक थप्पड मारा उस समय वह दैत्य खून ओकता हुआ घुटनोंके बल पृथ्वी पर गिर पडा १३

न चैनं पतितं हन्ति विष्णुर्युद्धविशारदः । बाहुयुद्धे हि समयं मत्वाचिन्त्यपराक्रमः ॥ १४ ॥ इन्द्रध्वज इवोत्तिष्ठन् जानुभ्यां स महीतलात् । मधू रोषपरीतात्मा निर्दहन्निव चक्षुषा ॥१५॥ परुषाभिस्ततो वाग्भिरन्योन्यमभिगर्जतुः । समीयतुर्बाहुयुद्धे परस्परवधैषिणौ ॥ १६ ॥ उभौ तौ बाहुबलिनावुभौ युद्धविशारदौ । उभौ च तपसा शान्तावुभौ सत्यपराक्रमौ ॥ १७ ॥ दृढप्रहारिणौ वीरावन्योन्यं विचकर्षतुः । शैलेन्द्राविव युद्ध्यन्तौ पक्षैः पाषाणसन्निभैः ॥ १८ ॥ विकर्षन्तावनमन्तौ च अन्योन्यं वसुधातले । गजाविव विषाणाग्रैर्नखाग्रैश्च विचेरतुः ॥ १९ ॥ ततो व्रणमुखैश्चैव सुस्राव रुधिरं बहु । ग्रीष्मान्ते धातुसंसृष्टं शैलेभ्य इव वारि-

---

परन्तु युद्ध विशारद विष्णुने गिरे हुए मधु दैत्यके ऊपर प्रहार नहीं किया क्योंकि—वह अचिन्त्य पराक्रमी यह जानते थे, कि—यह बाहुयुद्धका समय है। ॥ १४ ॥ तदनन्तर रोषमें भरा हुआ मधु दैत्य अपने नेत्रोंसे भस्मसा करता हुआ इन्द्रध्वजकी समान पृथिवी परसे उठ खडा हुआ ॥ १५ ॥ तदनन्तर वे दोनों कठोर वाणियें कह कर गर्जने लगे फिर वे दोनों एक दूसरेका वध करना चाहकर बाहुयुद्ध करनेके लिये उतर पड़े ॥ १६ ॥ वे दोनों भुजाओंके बली थे, दोनों ही युद्धविशारद थे दोनों ही तपसे शान्त होरहे थे और दोनों सत्य पराक्रमी थे ॥ १७ ॥ वे दोनों दृढ़ प्रहार करने वाले थे, वे दोनों वीर एक दूसरेको आपसमें खींचने लगे, और वे दोनों बड़े बड़े पर्वतोंकी समान पाषाणरूपी अपनी भुजाओंसे युद्ध करने लगे ॥ १८ ॥ वे दोनों आपसमें एक दूसरेको खचेड़ते २ पृथ्वी की ओर झुक गए और जिस प्रकार हाथी अपने दाँतोंसे प्रहार करते हैं इसी प्रकार अपने नाखूनोंसे प्रहार करते हुए विचरने लगे ॥ १९ ॥ जिस प्रकार वर्षाऋतुमें धातुओंसे मिला हुआ

नम् ॥२०॥ संसिक्तौ रुधिरौघैश्च स्रवद्भिः समरञ्जितौ । अथोद्यतैः पदाग्रैश्च तौ व्यदारयतां महीम् ॥ २१ ॥ अभिहत्य तु तौ वीरौ परस्परमनेकधा । पतङ्गाविव युध्येतां पक्षाभ्यां मांसगृद्धिनौ। शुश्रुवुश्चान्तरिक्षेऽथ सर्वभूतानि पुष्करे । सिद्धानां वदनोन्मुक्ताः परमा वर्णसम्पदा ॥२३॥ स्तुतयो विष्णुसंयुक्ताः सत्याः सत्यपराक्रमे । शरीरं धातुसंयुक्तं संयुक्त चेतनेन च ॥ २४ ॥ तद्ब्रह्म इन्द्रियैर्युक्तं तेजोभूतं सनातनम् । ध्रुवं तिष्ठन्ति भूतास्ते सूक्ष्मे

कांचन टपका करता है इसी प्रकार उनके घावोंमेंसे बहुतसा रुधिर टपकने लगा ॥२० । टपकते हुए रुधिरसे सने हुए और लिहसे हुए वे दोनों अपने पैरोंको उठा २ कर पृथ्वीको दहलाने लगे ॥ २१ ॥ इसप्रकार वे दोनों वीर परस्परमें एक दूसरेको पीट कर इस प्रकार युद्ध करने लगे जिस प्रकार मांस चाहने वाले दो पक्षी अपने परोंसे युद्ध करते हैं ॥ २२ ॥ उस समय ब्रह्माण्डमें सब प्राणी अन्तरिक्षमेंसे सिद्धोंके मुखमेंसे निकली हुई अक्षरोंकी परम सम्पत्तिसे युक्त सत्यपराक्रमी विष्णुकी सच्ची स्तुतियोंको सुनने लगे, कि-शरीर धातुओंसे संयुक्त और चेतनसे भी संयुक्त है [आध्यात्मिक-अर्थ अनात्मा देह आदिकमें आत्माभिमान करना अविद्या नामक मोह है उसका नाश करनेके लिये अर्थात् आत्मा और अनात्माका विवेक करनेके लिये स्थूल रीतिसे इस बातको समझाते हैं, कि तेज जल और अन्न इनके संयोगका नाम शरीर है उस मलपिंडकी समान शरीरमें चैतन्यपन नहीं हो सकता अतः वह शरीर अपनेसे पृथक् चेतनसे युक्त है वह चेतन ब्रह्म ही है तेजोभूत चिन्मात्र है और इन्द्रियोंसे युक्त होनेके कारण जीव कहलाता है] २३।२४ वह ब्रह्म इन्द्रियोंसे युक्त है तेजोभूत है और सनातन है वे भूत भी प्रलय होने पर सूक्ष्म शरीरमें स्थित रहते हैं [आध्यात्मिक अर्थ-इस प्रकार जीवके ब्रह्मभावको कह कर

प्रलयतां गते ॥ १५ ॥ पुनश्चोद्भवते सूक्ष्मं बहुरूपमनेकधा । ग्रद्रोध्य भावं भूतानां त्रिषु लोकेषु कामदः॥ २६ ॥ सुरूपो बहुरूपांस्तांल्लोकान् संचरते वशी । मानसीं तनुमास्थाय बहुभिः कारणान्तरैः ॥२७॥ योगात्मा धारयन्नुर्वी नागात्मानं दिवंधरः।

देहके भी प्रलयभावको कहते हैं, कि जब वह प्रलयाधिष्ठानको प्राप्त होजाता है तब वे देहारम्भक सूक्ष्म कारणमें स्थित होजाते हैं]॥ २५ ॥ फिर वही सूक्ष्म अनेकरूपोंमें फिर प्रकट होजाता है, तीनों लोकोंमें प्राणियोंके भावोंको देखने वाला यही कामद सूक्ष्म फिर, बहुतसे रूपोंमें संसारमें विचरण करता है [नील-कण्ठ–आध्यात्मिक अर्थ - फिर वह सूक्ष्म ही अनेक प्रकारसे बहु-रूप होकर फिर प्रकट होजाता है, तात्पर्य यह है, कि-शुद्ध सत्त्वरूपात्र अनिर्वचनीय ही माया मन इन्द्रिय आदि सूक्ष्म स्थूल अव्यक्तकारणशरीररूपसे, शीशोंसे मुखकी समान तीन प्रकारका भासता है । तहाँ अन्तोपाधिके (स्थूलतर उपाधिके) पूर्वमें (स्थूलमें) लय होने पर लोचनोंचेजनान्तरन्यायसे स्थूलतर स्थूलरूपसे ही अवशिष्ट रहता है, इसी प्रकार स्थूल भी सूक्ष्मरूप से स्थित होजाता है अर्थात् वह भी मायाके दूर होने पर चिन्मात्र रूपसे स्थित होजाता है इस प्रकार सब ब्रह्म ही है, कारणसूक्ष्म-स्थूलरूप तीनों लोकोंमें प्राणियोंके स्वरूपको जानकर, उन लोकों को स्वरूप चैतन्यसे व्याप्त करके यह वशी (अर्थात्) असंग आत्मा विचरण करता है]यह स्वर्गधारक योगात्मा अपनी नागा-त्माको बहुतसे कारणवश मनुष्य आदि शरीरोंमें परिणत करलेता है, यह ईश्वर सूक्ष्म पञ्चभूतों (के रूप) को भी धारण कर लेते हैं [नीलकण्ठ–यह योगात्मा दुष्टनिग्रह साधुसंरक्षण आदि बहुतसे निमित्तोंसे शेष कूर्म राम आदि रूप बहुतसे शरीरोंको धारण कर लेता है यह द्युलोकधारक अपनी शेषनागरूप आत्माको इस

ब्रह्मभूतं परं चैव सूक्ष्मेणात्मानमीश्वरः ॥२८॥ ब्राह्मेण विप्रान् वसति युद्धेन च क्षत्रियान् । प्रदानकर्मणा वैश्याञ्छूद्रान् परिचरेण च ॥ २९ ॥ गावः क्षीरप्रदानेन अश्वान् यज्ञेषु मोक्षणैः । पितरश्चोष्मणा वेदहविर्भागेन देवताः ॥ ३० ॥ चतुर्भिर्व्यतिरिक्ताङ्गैस्त्रिभिरन्यैश्च धातुभिः । सप्तभिः पितृभिर्नित्यैस्त्रींल्लोकान् परिरक्षति ॥ ३१ ॥ चन्द्रसूर्यात्मकं नित्यं तद्रूपनिहतात्मकम् ।

प्रकार धारण करते हैं, अर्थात् यही आत्मा स्वर्ग और पृथ्वीको धारण करनेवाला है और पञ्चभूतोंका धारक भी यही है]२६-२८ यह वेदमय रूपसे ब्राह्मणोंमें रहते हैं और यह भगवान् क्षत्रियों में युद्ध रूपसे रहते हैं वैश्योंमें व्यापार कर्मरूपसे रहते हैं सेवक रूपसे शूद्रोंको अधिष्ठित करके रहते हैं ॥ २९ ॥ गौओंमें दुग्धप्रधानरूपसे स्थित रहते हैं अश्वोंमें यज्ञमें मोक्षणरूपमें स्थित होकर रहते हैं और बनाई जाती हुई हविके बाष्परूपसे पितरों पर अधिष्ठित होकर रहते है और हविर्भागसे देवताओं पर अधिष्ठित होकर रहते हैं ३० यह विष्णु दर्श पूर्णमास पिण्डपितृयज्ञ साधारण यज्ञ इसप्रकार चार अङ्गोंसे और मन वाणी तथा प्राणरूप तीन धातुओंसे इसप्रकार न करनेमें दोष देने वाले अत एव नित्य इन सात अन्नोंसे पितरोंके साथ तीनों लोकोंकी रक्षा करते हैं [श्रुतिमें लिखा है, कि–"यत्सप्तान्नानि मेधया तपसाजनयत् पिता एकमस्य साधारणम् द्वे देवानभाजयत् त्रीण्यात्मने-कुरुत पितृभ्य एकं प्रयच्छदिति सप्तान्नं–पिताने अपनी बुद्धि और तपसे सात अन्नोंको रचा एक इसका साधारण है दो उन्होंने देवताओंको देदिये तीन अपने लिये रक्खे और पितरोंको एक देदिया इस प्रकार सात अन्न हैं] ॥ ३१ ॥ यह चन्द्रसूर्यात्मक है नित्य है तद्रूपनिहतात्मक है प्रकाश और अप्रकाश है और अपने तेजसे छिपा हुआ है, [यह सप्तक चन्द्रसूर्यात्मक है यथा योग-

प्रकाशं चाप्रकाशं च निगूढं स्वेन तेजसा ॥३२॥ अपरस्तु पितरो नित्यं वर्धयन्ति दिवाकरम् । चतुर्भिः पितृभिश्चैव चन्द्रो वर्धति मण्डलं ॥३३॥ अतः पितृगणा नित्यं पिंडान् पश्चाद्दन्ति ते । चत्वारोन्ये पितृगणाः सिद्धाः पञ्चक आददे ॥ ३४ ॥ त्वमेव पञ्च तान् भर्त्तास्त्वमेवापञ्च तान् विभो । सनातनमयो दिव्यः शाश्वतो ब्रह्मसम्भवः ॥३५॥ तस्मात्तत्तेज आदत्ते अग्निर्वायुश्च सर्वशः । अतस्त्वं कर्मणा तेन आदित्यः समपद्यत ॥३६॥ यद्-

---

प्रकाशस्वरूप है अर्चिरादि मार्गरूप प्रकाश है धूमादि मार्गरूप अप्रकाश है और आत्माको संकटमें डालने वाला है और यह समस्त चित्प्रकाशसे व्याप्त है] ॥३२॥ (मन वाणी और प्राण-रूप) तीन पितर दिवाकरको बढ़ाते हैं और (दर्श, पूर्णमास, पिण्डपितृयज्ञ तथा साधारणयज्ञ) इन चार पितरोंसे चन्द्रमा अपने मण्डलमें बढ़ता रहता है [अर्थात् ये सब अर्चिमार्ग और धूम-मार्गको बढ़ाते रहते हैं] ॥ ३३ ॥ वे पूर्वोक्त तीन पितृगण फल भोगनेके अनन्तर स्थूल सूक्ष्म और कारणदेहरूप तीन पिण्डोंका (भक्षण) संहार करते हैं, श्रुतिमें भी लिखा है, कि-"मनो वाचं प्राणं तान्यात्मने कुरुते" तात्पर्य यह है, कि-अर्थात् मन वाणी और प्राण उपासना करने पर क्रमपूर्वक आत्माकी मुक्ति कर सकते हैं । और दूसरे पूर्वोक्त दर्श आदि पितृगण सिद्ध हो कर अर्थात् शरीराकारमें परिणत होकर पाँच विषय आदि हो जाते हैं, उनको (क) अर्थात् यजमान आत्मरूपसे स्वीकृत कर लेता है, तात्पर्य यह है, कि-दर्श आदिका फल देहान्तरकी प्राप्ति है ॥ ३४ ॥ हे विभो ! आप ही पञ्चीकृत और अपञ्चीकृत भूतों पर अधिष्ठित होकर रहते है; आप सनातनमय हैं, दिव्य हैं, शाश्वत हैं और वेदके उत्पत्तिस्थान हैं ॥ ३५ ॥ ऐसे आपसे अग्नि वायु आदि तेजको ग्रहण करते हैं, आप इस कर्मसे आदित्य

रनासि जगत् सर्वं रश्मिभिः प्रदहन्निव । युगान्तकाले संप्राप्ते परां सिद्धिमुपागतः ॥ ३७ ॥ पक्षसन्ध्यामावस्यां लोकं चरसि मानुषम् । ऋषिभिः सह गूढात्मा सूर्येन्दुवसुसम्भवैः ॥ ३८ ॥ सफलं कर्म कुर्वाणां यजतां पुष्टिवर्धनम् । हेतूनामधिकाराय मा भूत् कर्मविपर्ययः ॥३९॥ वनस्पत्योषधीश्चैव युगपत् प्रविपद्यसे । बालभावाय वसुधां पक्षे पक्षे जनिस्तव ॥ ४० ॥ भूतानां भुवि भूतेश भाव्यर्थं वसुधातले । वसु यद्भुवि किंचिच्च सर्वं तन्मयं विभो ॥ ४१ ॥ त्वमेव विविधं धर्मं शाश्वतं वसुधातले देवयज्ञं मन्त्रवाक्यमात्मयज्ञं सपानुषम् ॥४२॥ द्विविधः स्वर्गमार्गश्च

कहलाते हैं ("आदीयतेऽनेनरश्म्यादिभिः स्वमथनायेति") ३६आप युगान्तका समय आने पर परमसिद्धिको पाकर अपनी किरणों से सारे जगत्को भस्म करते हुए उसका भक्षण करजाते हैं, (इस लिये भी आप आदित्य कहलाते हैं) ॥३७॥ आप अपनी आत्माको गुप्त रख कर सूर्य चन्द्र और वसुओंसे उत्पन्न हुए ऋषियोंके साथ पूर्णिमा और अमावास्याके अवसर पर मनुष्य-लोकमें विचरण करते हैं ॥ ३८ ॥ आप यजन करने वालोंकी पुष्टिको बढ़ाने वाले,सफल (सकाम) कर्म करने वालेस्वर्गादि-साधन कर्मोंके अधिकारके लिये (मनुष्यलोकमें) विचरण करते हैं, अर्थात् कालके लोपसे कर्मविफलता न हो, इस लिये आप सूर्य चन्द्रमा दर्श पूर्णमास आदिरूपमें विचरण करते हैं॥ ३९ ॥ आपही (चन्द्ररूपमें दर्शके समय) ओषधि और वनस्पति तथा पृथ्वीमें बालभाव (उत्पत्ति) के लिए वारवार प्रवेश करते हैं; आपकी प्रत्येक पक्षमें उत्पत्ति होती है ॥४०॥ हे विभो ! पृथिवी में अतीत और भावी व्यक्तियों की पुष्टिके लिए जो कुछ धन है, वह सब त्वन्मय ही है ॥४१॥ पृथिवीतलके विविध धर्म, शाश्वत देवयज्ञ मंत्रवाक्य, आत्मयज्ञ और मनुष्य ये सब आप ही हैं ४२

सूर्यश्चन्द्रश्च निर्मलः।चन्द्रमाः पितृयानश्च देवयानश्च भास्करः॥४३
त्वमेव बहुधा युक्तो विश्वं चरसि मायया । एकीकृत्य गणान्
सर्वान्सन्निध्यायुत्र सम्भवः ॥४४॥ एकस्त्वमसि सम्भूतः पुराणः
पुरुषो विराट् । अव्ययश्चाप्रमेयश्च कामकारकरो वशी ॥४५॥
मूर्तस्तेजसि सम्भूतो वायुः पर्येति खेचरः । सप्तभी रूपसंस्थानै-
र्नित्यमाहृत्य तिष्ठति ॥४६॥ साधने चापि निर्वाणे संहारे प्रलये
तथा । धाता धारणकाले च दिशश्चक्षुषि धारिणि ॥ ४७ ॥
सेव्यमानो मुनिगणैर्नित्यं विगतकिल्बिषैः । कर्मभिः सत्यमापन्नैः
समरागैर्जितेन्द्रियैः ॥ ४८ ॥ स्तूयमानश्च विबुधैः सिद्धैर्मुनिवरै-

---

आप ही सूर्य और निर्मल चन्द्र ये दो प्रकारके स्वर्गके मार्ग हैं, चन्द्रमा पितृयान मार्ग है, और सूर्य देवयान मार्ग है ॥ ४३ ॥ आप ही इन्द्रिय आदिको देहरूपमें संश्लिष्ट करके पार्थिव प्राणिरूपसे पृथिवीमें विचरण कर विषयोंका सेवन करते हैं ॥४४॥ आप एक हैं, पुराणपुरुष हैं विराटपुरुष हैं, अव्यय हैं, अप्रमेय हैं, लीला करने वाले हैं, और वशी (असंग) हैं ॥ ४५ ॥ आप तेजमें रूपाकारसे प्रकट होजाते हैं (इसी लिये आप मूर्त अर्थात् चक्षुर्ग्राह्य होजाते हैं, और आप ही आकाशचारी वायु बन कर घूमते हैं; और आप ही महान, अहंकार और पञ्चतन्मात्रा इन सात रूपस्थानोंमें स्थानोंको अधिकृत करके रहते हैं ॥ ४६ ॥ शम आदि साधनमें जीवरूपसे, निर्वाणमें शुद्धरूपसे, दैनन्दिन (प्रतिदिन होने वाले) लयमें प्रलयमें और ब्राह्मलयमें भी आप ही रुद्ररूपमें रहते हैं और धारण कालमें अर्थात् पालनके समय धाता(पालयिता विष्णुरूप में भी आप ही रहते हैं, और वर्णाश्रम मर्यादारूप दिशाएँ आप ही हैं और पोषक इन्द्रियोंमें चिद्रूप प्रवर्तकत्वरूपसे आप ही रहते हैं ॥ ४७ ॥ शत्रु और मित्रमें तुल्य प्रीति रखने वाले अत एव नित्यतृप्त होनेसे जितेन्द्रिय, कर्मोंसे सत्यको

स्तथा । सस्मार विपुलं देहं हरिर्हयशिरो महान् ॥ ४९ ॥ कृत्वा वेदमयं रूपं सर्वदेवमयं वपुः । शिरोमध्ये महादेवो ब्रह्मा तु हृदये स्थितः ॥५०॥ आदित्या रश्मयो बाला चक्षुषी शशिभास्करौ । जंघे तु वसवः साध्याः सर्वसन्धिषु देवताः ॥५१॥ जिह्वा वैश्वानरो देवः सत्या देवी सरस्वती । मरुतो वरुणश्चैव जानुदेशे व्यवस्थिताः ॥ ५२ ॥ एवं कृत्वा तथा रूपं सुराणामद्भुतं महत्। असुरं पीडयामास क्रोधाद्रक्तांतलोचनः ॥५३॥ मधोर्मेदोवपूर्णा

प्राप्त हुए निर्दोष मुनि जब उनकी सेवा कर रहे थे ॥ ४८ ॥ तथा सिद्ध मुनि और देवता जब उनकी स्तुति कर रहे थे, तब हरिने अपने हयशिर नाम वाले बड़ेभारी शरीरका स्मरण किया [आध्यात्मिक अर्थ–जब इस प्रकार मधु और विष्णु नाम वाले मोह और विवेक युद्ध करने लगे, उस समय मधु मोह)से बाँधा हुआ महेन्द्र नामक जीव स्तुतिरूपजसे सिद्ध हुए सद्गुरुओंसे बोधित होकर अपने सर्वात्मक शरीरका स्मरण करने लगा] ४९ उस समय उन्होंने अपना वेदमय और सर्वदेवमय रूप बनाया, उसमें शिरके मध्यमें महादेव थे, ब्रह्माजी हृदयमें थे, सूर्यकी किरणें बाल थे, नेत्रोंके स्थान पर सूर्य चन्द्रमा लगे हुए थे, जंघाओंमें वसु और साध्य थे और सब सन्धियोंमें देवता थे ॥ ५० ॥ ५१ ॥ जिह्वामें वैश्वानर था, और वेदवाणी उनकी वाणी बनी, और मरुत् तथा वरुण उनके जानुदेशमें स्थित होगया ॥ ५२ ॥ इस प्रकार देवताओंके अद्भुत रूपको बना कर क्रोधसे लालरनेत्रों वाले हरि असुरको पीड़ा देने लगे (आध्यात्मिक अर्थ–इस प्रकार आत्मा विश्वरूपका आविर्भाव करके मोहको पीडित करने लगा] ॥ ५३ ॥ उस समय पृथ्वी शुक्लवस्त्रधारिणी उरोजोंके भारसे कठिन दीखने वाली स्त्रीकी समान मधुके मेदसे परिपूर्ण दीखने लगी [आध्यात्मिक अर्थ त्वचा

स पृथिवी समदृश्यत मगदेव धना चैव शुक्लांशुकनिवासिनी ५४
मेदनीत्येव शब्दश्च लब्धः पृथ्व्या नरोत्तम । नानासुरसहस्रेण
धरण्यां संप्रतिष्ठितम् ॥ ५५ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि
षड्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २६ ॥

वैशम्पायन उवाच । मधोर्निपतनं दृष्ट्वा सर्वभूतानि पुष्करे ।

रक्त मांस मज्जा अस्थि मेद तथा शुक्र नाम वाली धातुओंसे शरीर धना हुआ है, इसका निश्चय होने पर मेद (अज्ञानमात्र) ही अवशिष्ट रह जाता है तात्पर्य यह है, कि-जिस प्रकार प्रकृष्ट मद वाली युवती कुचोंके भारसे कठिन, शुक्लवस्त्रधारिणी मनोनन्दिनी होती है, इस प्रकार मधुमोहका शरीर अभिनव प्रतीत होता था। श्रुतिमें भी लिखा है,कि-ब्रह्मविद इव सोम्य ते मुखं भाति]॥५४॥ हे नरोत्तम! उस समय पृथ्वीने मेदिनी ऐसा नाम पाया, सहस्रों असुरोंने इस प्रकार पृथ्वीमें पृथ्वीका मेदिनी नाम रक्खा [आध्यात्मिक अर्थ-असुर मोहकी सम्बन्धितासे पूर्यमाण साथ ही स्रवता है तात्पर्य यह है कि-अज्ञानके लेश की अनुवृत्ति होनेसे विद्वानोंमें परोद्धारकी करुणा आजाती है अन्यथा ज्ञान होते ही उनका शरीर छूटजाता "असुरस्य मोहस्य सम्बन्धितया सदैव पूर्यमाणमेव स्रवतीति सहस्रं मुद्गलं शरीरं तेन त्रिमिदास्नेहने अस्य रूपं मेदिनीति स्निग्धेत्यर्थः]॥ ५५ ॥ छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २६ ॥

[सत्त्वेन निहते मोहे गुरुशास्त्रादिकं जगत् । हार्दं ब्रह्मणि पश्यन्तीत्येकविंशे समीर्यते-अब इस इक्कीसवें पुष्करप्रादुर्भावाध्यायमें इस बातका वर्णन किया जायगा, कि-सत्त्वके द्वारा मोह के नष्ट होने पर ज्ञानी पुरुष हार्दब्रह्ममें गुरु शास्त्र आदि जगत् को देखते हैं] वैशम्पायनजीने कहा, कि-सब प्राणी मधुके

महृष्टानि प्रगायन्ति प्रनृत्यन्ति च सर्वशः ॥१॥ सुपार्श्वो गिरि-मुख्यस्तु काञ्चनैः शिखरोत्तमैः । बहुधातुविचित्रैश्च खं लिखन्निव चाबभौ ॥२॥ गिरयश्चाभिशोभन्ते धातुभिः समरञ्जिताः । प्रांशुभिः शिखराग्रैश्च सविद्युत इवाम्बुदाः ॥ ३ ॥ पक्षवातो-द्धूतो रेणुश्चूर्णैः सांजनवालुकैः छादयन् पर्वताग्राणि महामेघ इवाबभौ ॥ ४ ॥ मेघसंश्लिष्टशिखराः पक्षविक्षिप्तपादपाः । काञ्च-नोद्भेदबहुलाः खे तिष्ठन्तीव पर्वताः ॥ ५ ॥ पक्षवन्तः सशिखरा हैमधातुविरञ्जिताः । पवनेन समुद्भूतास्त्रासयन्ति विहङ्गमान् ६ काञ्चनाः पर्वताः सर्वे स्फाटिकैर्मणिभिश्चिताः । सूर्यकान्तैश्च

निपातको देखकर पुष्करमें चारों ओर नाचने लगे, गाने लगे और हर्षित होने लगे [आध्यात्मिक अर्थ–"व्योम पुष्कर-मम्बरम्"–इस अमरकोशके श्लोकके अनुसार पुष्कर शब्द यहाँ पर (हृदयके) आकाशका वाची है । अर्थात् मोहके नष्ट होने पर सब प्राणी हार्दाकाश (परमव्योम नाम वाले कारणब्रह्म) में विचरण कर सकते हैं यहाँ पर सब भूतोंका नाम आनेसे प्रतीत होता है, हम सरीखे पुरुषोंका भी पुष्करप्रवेशमें अधिकार है]।१॥उस समय सुन्दर पार्श्व वाला गिरिमुख्य भी,धातुओंसे विचित्र अपने सुवर्णमय उत्तम शिखरोंसे आकाशको कुरेदता हुआसा शोभा पाने लगा२और उस समय धातुओंसे लिहसे हुए पर्वत भी ऊँचे२ शिखरोंसे बिजली वाले मेघोंकी समान भासने लगे ॥३॥ पक्षवातसे उडाई हुई धूल अञ्जनवालुकाओंके चूर्णसे पर्वतके अग्रभागोंको छाती हुई महामेघकी समान शोभा पाने लगी ॥ ४ ॥ मेघोंसे घिरे हुए शिखरों वाले, आँधीसे तोड़े हुए वृक्षों वाले और सुवर्णकी बहुतसी खानों वाले पर्वत आकाशमें अधरसे प्रतीत होते थे ॥ ५ ॥ पर वाले, शिखर वाले, सुवर्णकी धातुसे रञ्जित पर्वत पवनसे उड़ कर पक्षियोंको त्रास देने लगे ६

बहुभिश्चन्द्रकान्तैश्च निर्मलैः ॥ ७ ॥ हिमवांश्च महाशैलः श्वेतै-र्धातुभिराचितः । काञ्चनैः शिखराग्रैश्च सूर्यपादप्रकाशितैः ॥८॥ मणिभिश्च प्रकाशद्भिः पत्त्रांतरविनिःसृतैः । ताम्रपुष्पैश्च शिखरै-र्दीप्यमानैः स्वतेजसा ॥ ९ ॥ मन्दरश्चोग्रशिखरः स्फाटिकैर्मणि-भिश्चितः । वज्रगर्भो निरालम्बैः स्वर्गोपम इवाबभौ ॥ १० ॥ सहस्रशृङ्गः कैलासः शिलाधातुविभूषितः । तोरणैश्चैव विविधैः प्रांशुभिश्चैव पादपैः ॥ ११ ॥ प्रवादयद्भिर्गन्धर्वैः किन्नरैश्च प्रगा-यिभिः । देवकन्याङ्गरागैश्च प्रक्रीडद्भिरिवाबभौ ॥ १२ ॥ मधुरै-र्वाद्यगीतैश्च नृत्यैश्चाभिनयोद्धतैः । शृङ्गारैः सांगहारैश्च कैलासो मदनायते ॥ १३ ॥ आदित्यभासितैः शृङ्गैर्भिन्नाञ्जनचयोपमैः॥

सब कानन पर्वत पर स्फटिकमणियोंसे जड़े हुए थे, और सूर्य कान्त और चन्द्रकान्त मणियोंसे युक्त होगए ॥ ७ ॥ उस समय महापर्वत हिमालय श्वेत धातुओंसे सुशोभित दीखने लगा, और सूर्यकी किरणोंसे उसके सुवर्णमय शिखर दमकने लगे [योग-पक्षमें हार्दाकाशमें इन कल्पित पर्वतोंको समझना चाहिये] ८ प्रकाशवान् मणियों वाला, बीचमें निकले हुए नये २ दिपते हुए ताम्र पुष्पोंकी समान शिखरों वाला और निरालम्ब स्फटिक मणियोंवाला और जिसके भीतर रत्न भररहे थे ऐसा उग्र शिखरों वाला मन्दराचल पर्वत स्वर्गकी समान शोभा पाने लगा॥९।१०। धातुओंसे विभूषित, सहस्रों शिखरोंवाला तोरणकी समान ऊँचे२ वृक्षोंसे विभूषित और गाते हुए किन्नरोंसे तथा बजाते हुए गन्धर्वोंसे और देवकन्याओंके अंगरागसे सुशोभित पर्वत खेलता हुआसा शोभा पाने लगा ॥ ११ ॥ १२ ॥ मधुर वाद्यगीतोंसे, अभिनयमें दीखने वाले नृत्योंसे, शृङ्गारोंसे और अंगहारोंसे कैलास पर्वत मदनकी समान मदन रसका उद्दीपक होगया॥१३॥ सूर्यसे प्रकाशित होने वाले पिसे हुए अञ्जनकी समान शिखरों

विंध्यो नीलाम्बुदश्यामो विभिन्न इव तोयदः ॥ १४ ॥ धात्वर्थं सर्वभूतानां मेरुपृष्ठे महाबले । निर्ममुर्विमलं तोयं मेघजालैरिवोत्तमैः ॥ १५ ॥ शिलाभिर्बहुचित्राभिर्धातुभिर्बहुरूपिभिः । प्रसूवद्भिर्गुहाद्वारैः सलिलं स्फाटिकप्रभम् ॥ १६ ॥ ग्रीष्मान्ते वायुसंगूढा घना इव सविद्युतः । चित्रैः पुष्पैस्तरुगणाः शोभन्त इव भूषिताः ॥ १७ नागाः कनकसम्भूतैर्विचित्रैरिव भूषिताः । विहङ्गाभिर्लीनाश्च लतास्तरुसमाश्रिताः ॥ १८ ॥ विलम्बन्त्य सपुष्पाश्च नृत्यन्ते वायुघट्टिताः । पवनेन समुद्भूता महता माधवेऽहनि ॥ १९ ॥ मुमुचुः पुष्पसंघातं तोयं वेलेव वर्षति । बलवद्भिश्च विपुलैः शाखि-

---

से विन्ध्य पर्वत नील वर्ण वाले घनघोर मेघकी समान दीखता था ॥ १४ सब प्राणियोंकी आजीविकाके लिए ये सब पर्वत महाबलयुक्त मेरुपर्वतके शिखर पर मेघजलोंकी समान उत्तम, अनेक प्रकारकी धातु वाली शिला वाले टपकते हुए गुहाद्वारोंसे निर्मल जल बरसाने लगे [आध्यात्मिक अर्थ-जिस प्रकार नीले मेघकी समान श्याम विष्णु मेघोंके द्वारा पृथिवीमें जल बरसाते हैं, इसी प्रकार मेरुपृष्ठ नाम वाले ब्रह्माण्डमध्यमें सब पर्वत नीलांजनचयोपम सूर्यके द्वारा भासमान शिखरोंसे स्वप्रभाजलको उगलने लगे] ॥ १५ ॥ १६ ॥ वर्षा ऋतुमें जैसे वायुसे एकत्रित हुए बिजली वाले मेघ शोभा देते हैं, इसी प्रकार विचित्र पुष्पोंसे सुशोभित वृक्षघटा शोभा पाने लगी ॥ १७ ॥ जिस प्रकार सुवर्णके विचित्र गहनोंसे सजे हुए हस्ती शोभा पाते हैं, इसी प्रकार पक्षियोंसे घिरी हुई लताएँ और वृक्ष शोभा पाने लगे ॥ १८ ॥ जिस प्रकार माधव (वैशाख) मासमें पुष्पोंसे लदी हुई लता वायुसे हिलोडे लेने लगती हैं, इसी प्रकार वायुको झोका आने पर सपुष्प पर्वत नाचते हुएसे दीखते थे ॥ १९ ॥ जिसप्रकार किनारे पर लहरें आनेसे किनारा जलकी बूँदोंको उड़ाता है,

स्कन्धावरोहिभिः ॥ २० ॥ पादपैर्वर्णबहुलैर्भ्राजते च वसुन्धरा। मधुपिबा मधुकरा मधुमत्ता विहंगमाः । घोषयन्तीव गायन्तः कामस्यागमसम्भवम् ॥ २१ ॥ विष्णुर्मधोर्निहन्ता च चकार मधुवाहिनीम्। नदीं प्रस्रवनिर्भेदां सुतीर्थां बहुलोदकाम् ॥ २२ ॥ अङ्गारवर्णसिकतां मधुतीर्थां मनोरमाम् । निमलैरम्बुभिः पूर्णां पुष्पसंचयवाहिनीम् ॥२३॥ विवेश पुष्करं सा तु ब्रह्मणो वाक्यनोदिता । ऋषिभिश्चानुचरिता ब्रह्मतन्त्रनिषेविभिः ॥ २४ ॥ धात्री कपिलरूपेण गौर्भूत्वा क्षरते पयः।मधुरं वितते यज्ञे ब्रह्मणो

इसी प्रकार बलवान् और बड़ी २ शाखाओं वाले वृक्षोंसे पर्वत जलको उड़ाने लगे ॥ २० ॥ उस समय पृथ्वी अनेक वर्ण वाले वृक्षोंसे छा गई, तब भौंरें मधुको चाहने लगे और पक्षी मधु से मत्त होगए और पृथ्वीमें कामके आगमनका ढँढोरासा पीटते हुए गाने लगें ॥ २१ ॥ [अब इस बातका वर्णन करते हैं, कि-सत्त्वोत्कर्षके कारण योगीके सामने दिव्य विषय वाली मधुमती आदि योगभूमियें प्रकट होती हैं] तदनन्तर मधुके निहन्ता विष्णु ने मधुवाहिनी नदी बनाई, उसके झरने चल रहे थे, उसमें बहुत से तीर्थ थे, और बहुतसा जल था, उसकी रेती अंगारके वर्णकी समान थी, वह मधुतीर्थ थी, मनोहर थी, निर्मल जलसे पूर्ण थी और उसमें पुष्प बह रहे थे ॥ २२ ॥ २३ ॥ ब्रह्मतंत्रका सेवन करने वाले ऋषियोंसे सेवित वह नदी ब्रह्माजीके वाक्यसे पुष्कर में प्रवेश कर गई [नीलकण्ठ, आध्यात्मिक अर्थ-वह योगियों के द्वारा जान कर छोड़ी हुई स्वप्नसरीखी मधुमती (योगभूमि) भी "नेह नानास्ति किंचन-यहाँ अनेक कुछ नहीं है" इस श्रुति से प्रबोधित योगीके हृदयाकाशमें विलीन होजाती है] २४ तदनन्तर ब्रह्माजीके वाक्यसे प्रेरित वह नदी यज्ञके चलने पर चितकबरे रङ्ग वाली गौ बन कर मधुर दुग्धको देने लगी [नीलकंठ,

वाक्यनोदिता ॥ २५ ॥ शिरश्च पृथिवी भूतं स्वं धातुं प्राप्तवान् महीम् । शुद्धं च भजते लोकं शाश्वतं परमाद्भुतम्॥ २६ ॥ सरस्वत्याः समुद्भूतं ब्रह्मक्षेत्रे तमोनुदम् । मरुतीर्थमतिक्रम्य पुष्क-

आध्यात्मिक अर्थ-अब इस बातका वर्णन करते हैं, कि इस प्रकार योगोपसर्गोंके विलीन होने पर "ब्रह्मविद्या" नाम वाली, "अहं ब्रह्मास्मि" वाक्यसे उत्पन्न होने वाली चरमान्तःकरण-वृत्ति उदित होती है। मूलप्रकृति धात्री, त्रिगुणात्मक होनेसे मिश्र कपिलवर्ण वाली 'गच्छति अधिगच्छति आत्मतत्त्वम् इति गौः' जिससे आत्मतत्त्व प्राप्त होता है ऐसी गौ विद्यावृत्ति बन कर दुग्धस्वरूप ब्रह्मको प्रकाशित करती है, वह आनन्दमात्र होनेसे मधुर होता है। और यह विद्यावृत्त्यात्मिका गौ अहं ब्रह्मास्मि वाक्यकी प्रेरणासे प्रकट होती है] ॥ २५ ॥ उस समय (इन) शिर पृथ्वी रूप होकर अपनी धातुको प्राप्त हो जाता है और परम अद्भुत शुद्धलोक हो जाता है [नीलकण्ठ, आध्यात्मिक अर्थ अब इस बातका वर्णन करते हैं, कि-वृत्तिमें लीन होने वालोंका भी शुद्ध चिन्मात्र ही अवशिष्ट रहता है। "शीर्यते इति शिरः जो शीर्ण होता है, वह शिर" अर्थात् उत्तमांगकी समान श्रेष्ठ भी प्रतिक्षण परिणामिगुणकार्य होनेसे अक्षय वाली वृत्ति (पृथिवी) जड़ होने पर (भूत अर्थात्) कूटस्थ वस्तुका संधान करनेमें समर्थ होने पर भी मही अपने उपादानकारण जलको प्राप्त हो जाती है, तात्पर्य यह है कि—योगी निर्विकल्प समाधिसे शुद्ध-लोक (अर्थात् आत्मा) का सेवन करता है] ॥ २६ ॥ (वह शुद्ध लोक ब्रह्मक्षेत्रमें सरस्वतीके तट पर उत्पन्न हुआ है) अन्धकारका अर्थात् अज्ञानका नाशक है और मरुभूमि पुष्करमें उसका प्रत्यक्ष होता है [नीलकण्ठकृत आध्यात्मिक अर्थ-यदि वह आत्मा सर्वधर्मशून्य निर्विकल्पक है, तो

रेषु विसर्पति ॥२७॥ शुचारुरूपा धर्मज्ञा अजा रूपेण आनगन ।

वह शून्य ही होगा, ऐसी शंका होने पर कहते हैं, कि—"वह सरस्वती अर्थात् "अस्तीत्येवोपलब्धव्यः" इस वेदवाणीके सकाशसे सत्त्वके द्वारा प्रकट होता है, तब अर्थात् अज्ञानका विरोधी होनेसे ज्ञानमात्र है, ब्रह्मक्षेत्रमें अर्थात् भ्रूघ्राणसन्धिके बीचमें उसका प्रकाश होता है और वह पुष्करमें (हृदयाकाशमें) विचरता है और मरुतीर्थका अतिक्रमण करने पर उसका प्रत्यक्ष होता है अर्थात् मरुमरीचिकाकी समान भासने वाले ऐहिकामुष्मिक फलोंमें विरक्त होने पर उसका प्रत्यक्ष होता है। मूलमें पुरुषोंके भेदसे पुष्कर शब्द बहुवचनान्त दिया है।तीनोंके मिथुन होने पर भी उस समय एक २ के पृथक् होजानेके कारण शुद्ध ईश और जगत्के मध्यमें, ईश और जगत्के प्रति पुरुषमें पृथक्त्व दीखनेसे, पुष्करका अनेकत्व युक्त ही है अत एव यह मायाशबल परब्रह्ममें विसर्पण करता है। क्योंकि-"यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन्" इस श्रुतिके अनुसार व्योम उसका आश्रयत्व सिद्ध है] ॥ २७ ॥ शुचारु रूप वाली धर्मज्ञ अजा सुवर्णकी समान आभा वाले उस क्षेत्रको तपोयुक्त तेज वाले रूपसे छा रही है [नीलकण्ठकृत आध्यात्मिक अर्थ-ज्ञेयको मरुतीर्थकी उपमा किसप्रकार दी जा सकती है, इसके उत्तरमें कहते हैं,कि-यह अजा कहलाने वाली माया दिव्यरूप वाले आत्माको अहंकारादिकसे आच्छादित किये रहती है,। इस जवनिकाच्छादनको कोई सत्य न समझ लेय इस लिये कहते हैं, वह तपोयुक्त तेजसे उसको आच्छादित किये रहती है, अर्थात् आलोचन वाले चित्त से उसका साक्षात्कार हो सकता है जिस प्रकार कि-भुजंगसे आच्छादित रज्जुका आलोचनासे साक्षात्कार होता है। अत एव ज्ञानमात्रसे नष्ट होजाने वाली अजा (माया) रज्जूरगकी

रूपं कनकवर्णाभं तपोयुक्तेन तेजसा ॥२८॥ अजगन्धकृतोन्मुक्तः सम्भूतः पर्वतो महान्‌ गुरुद्वारः गुणप्राणः शाश्वतः सिद्धसेवितः२९ वेदिकाभिः सुचित्राभिः कांचनाभिर्विराजितः । पुष्कराणि परी-

समान मिथ्या ही है। यह माया सुचारुरूपा है अर्थात्‌ इसमें लोहित शुक्ल आदि तेज और जल आदिके वर्ण रहते हैं। अब शंका होती है, कि फिर वह किस प्रकार आच्छादित करती है, इसका उत्तर देते हैं, कि वह धर्मज्ञा है अदृष्टवश उसका अध्यास होता है] ॥ २८ ॥ तदनन्तर अजगन्धसे मुक्त एक बडा भारी पर्वत है, वह गुरुद्वारगुणप्राण है और सिद्धसेवित है [नीलकण्ठ-कृत आध्यात्मिक अर्थ—आलोचनासे ही मायाजवनिकाका किस प्रकार प्रत्यक्ष होजाता है, इस बातको दिखाते हैं, कि यह अहं महान्‌ पर्वतकी समान अभेद्य है, यह अहं—अहंकार आदि संसार सम्यक्‌ स्थूलरूपमें उद्भूत होनेके कारण दीखता है तो भी अजगन्धकृतोन्मुक्त है अर्थात्‌ सन्मात्रके लेशसे कल्पित है और फिर वह इसको त्याग देता है। अहंकार आदि जाग्रत्‌ आदिमें सत्‌सा दीखता है परन्तु सुषुप्ति आदिमें इस दुःखादिधर्मीका आत्मरूपत्व नहीं रहता, किंतु नित्यविभूत स्वाधिष्ठानमें ही कदाचित्‌ प्रतीतिका विषय होनेसे रज्जूरगकी समान इसका मिथ्यात्व ही होता है। यह अहंकार पर्वत गुरुद्वार है और गुणप्राण है अर्थात्‌ गुरुके उपदेशसे ही इसका तत्त्व प्रतीत होता है, और तीन गुणोंसे ही यह (अहंकार) जीवित रहता है, तात्पर्य यह है कि—गुरुकी आराधना कर गुणत्रयको त्याग देना चाहिये, यह शाश्वत है अर्थात्‌ अनादि है और सिद्ध भी इस अहंकारपर्वतका आश्रय लेते रहते हैं, फिर मूढ़ोंके विषयमें तो कहा ही क्या जाय ?] ॥ २९ ॥ हे विपुलदक्षिण ! वह पर्वत विश्वकर्माकी बनाई हुई सुवर्णकी विचित्र वेदियोंसे युक्त है और उसमें चारों ओर पुष्कर बने हुए

तानि त्वष्टा विपुलदर्शिता ॥ ३० ॥ महामेरोर्यथा रूपं पञ्चभि-र्धातुभिर्वृतम् । चेतनयाभिसम्पन्नो रूपेणाद्भुतदर्शनः ॥ ३१ ॥

हैं [नीलकण्ठकृत आध्यात्मिक अर्थ-सुषुप्ति आदिमें मनका संयोग न होनेके कारण अहमर्थमें प्रकाशित नहीं होता है, परन्तु इतनेसे ही उसका अनात्मत्व कैसे होसकता है, क्योंकि-वसूलेको त्यागने पर भी बढ़ई बढ़ई ही रहता है, बढ़ईके अतिरिक्त कोई दूसरा नहीं होजाता इस शंकाका उत्तर देते हैं, कि-वह तीन वेदिकाओंसे विराजित है अर्थात् "तस्य त्रयोवस्थास्त्रयः स्वप्ना इति" उसकी तीन अवस्था हैं" इसश्रुतिके अनुसार संसारीकी क्रीड़ास्थानभूत जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्ति नामवाली और परस्पर विलक्षण होनेसे विचित्र तीन अवस्थारूप वेदियोंसे वह विराजित दीखता है तथापि अवस्थाओंकी विचित्रतावश दूसरी अवस्थामें पहुँचे हुए को अवस्थान्तरमें दुःखादिका दर्शन न होनेसे योगियोंकी समान परशरीरसंचारी है, अत एव तत्तद्देहका अभिमान होनेसे तदा २ दुःख पाता है, इसलिये तत्तदवस्थाकृत ही इसका संसार होता है स्वाभाविक नहीं होता । अब यह शंका होती है, कि अभि-मन्तापन भी अनात्मक ही होगा, इसका उत्तर देते हैं कि-अहं-कार आदिके उत्थानकारण मूलाज्ञान (पुष्कर) विचित्र जगत् के निर्माणशिल्पी ईश्वरसे व्याप्त हैं, किसी दूसरेसे व्याप्त नहीं है । तात्पर्य यह है, कि-चित् प्रकाशको चित्स्वभावत्व भग नहीं सकता] ॥ ३० ॥ जिस प्रकार महामेरुका रूप पाँच धातुओंसे व्याप्त है, इसी प्रकार यह अद्भुत दीखने वाला चेतना से सम्पन्न है [नीलकण्ठकृत आध्यात्मिक अर्थ-शरीरके आकार में परिणत महाभूतोंसे व्याप्त अहंकार अद्भुत रूपवाला दीखता है, यह अनिर्वचनीय होने पर भी प्रसिद्ध चेतनासे सम्पन्न होजाता है, परन्तु यह चेतन नहीं है, जिससे कि-यह अभिमन्तृत्वादिस्व-

करिष्याम्यहमप्येतन्मनसा धर्मचारिणम् । रूपं बहुविधं लोके पार्थिवीं चेतनां तथा ॥ ३२ ॥ त्रींश्च लोकान् प्रपश्येयं पञ्चभिः धातुलक्षणैः । षष्ठेन च स सर्जेयं मनसा धर्मचारिणीम् ॥ ३३ ॥ संगेषु भावमोहाभ्यां पश्यन्ति च समृद्धयः । विमुक्ताः सर्वसंगेभ्यो

भाव आत्मा माना जाय] ॥३१॥ [अब शास्त्रोक्त ब्रह्म भावका अभिनिवेश न होनेसे "अहं मनुरभवं सूर्यश्चेति वामदेववत्—वामदेवकी समान मैं ही सूर्य हूँ मैं ही मनु हूँ" और "अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते मैं सबका उत्पत्तिस्थान हूँ, मुझसे ही सब प्रवृत्त होता है" भगवान्की समान अहंकारादेशसे इस तत्त्वका निरूपण करते हैं, कि मैं ही इस धर्मचारी देहको मन (अर्थात् संकल्पमात्र) से रचता हूँ केवल देहमात्रको मैं नहीं रचता हूँ किन्तु संसारमें अनेक प्रकारके रूपको अर्थात् दृश्यको भी मैं मन अर्थात् संकल्पसे रचता हूँ, तथा पार्थिवशरीरसंबन्धी चेतनाको भी बहुरूपा करता हूँ, तात्पर्य यह है, कि—स्वदेहादि चेतन और अचेतन मेरे संकल्पमात्रसे ही उठा हुआ है, मुझसे अतिरिक्त नहीं है । श्रुतिमें भी लिखा है, कि—इदं सर्वं यदयमात्मा"] ॥३२॥ [अब इसके सार्वात्म्यको कह कर सर्वज्ञता को भी कहते हैं, कि—"धातून् पृथिव्यादीन् लक्षयन्ति एतैस्तानि धातुलक्षणानि,इन्द्रियाणि" अर्थात् जिनसे पृथ्वी आदि धातुओं को लक्षित करते हैं उन धातुलक्षण इन्द्रिओंसे मैं तीनों लोकोंको जान सकता हूँ, इस प्रकार अनात्मभूत दृश्यज्ञानको कह कर अब आत्मज्ञत्वको भी कहते हैं, कि-मैं छठे मनसे धर्मचारिणी अर्थात् आत्मसदृशी असङ्गा चिदाकाश वृत्तिको भी रचता हूँ, अर्थात् विद्या और अविद्यारूप भी मैं ही हूँ] ॥ ३३ ॥ [अब विद्याके अधिकारियोंका वर्णन करते है, कि-बहुतसा ऐश्वर्य पाने पर भी जो पुरुष ऋद्धियोंके भाव और मोहके योग

धारयन्ति परिग्रहान् ॥ ३४ ॥ न च विंदेत मां कश्चिन्मनसा कामरूपिणम् । पञ्चधातुनिबद्धश्च नानाभाषितचोदनाः ॥ ३५ ॥ ये च विष्णुमधीयन्ते बहुधा कामविग्रहैः । ते मां पश्येयुरव्यक्तं

में ऋद्धियोंको संकल्प और भ्रमवश होने वाली समझते हैं (इस प्रकार विषयोंमें दोष देखने वाले अत एव) सब संगोंसे मुक्त (इस प्रकार वैराग्य वाले) और विषयोंको धारण करने वाले बुद्धि इन्द्रिय मन और प्राणोंका निग्रह करने वाले (इस प्रकार अभ्यासवाले) इन तीनोंका संग्रह रखनेवाले विद्याके अधिकारी होते हैं]॥ ३४ ॥ मैं पाँच धातुओंसे जकड़ा हुआ रहता, हूँ, अत एव अनेक प्रकार (के पक्षियों) की वाणियोंसे प्रेरित कोई भी मनुष्य मुझ मनसे इच्छानुसार रूप धारण करने वाले पर्वतको नहीं जानसकते [नीलकण्ठकृत आध्यात्मिक अर्थ—मैं पञ्चधातुमय देहमें बद्ध हूँ, संकल्पमात्रसे ही इच्छानुसार रूपको धारण कर लेता हूँ अतः "अपाम सोमममृता अभूम-हम सोमको पीलेंगे तो अमर होजावेंगे" ऐसे नानार्थवादी फलसे सब प्रेरित रहते हैं, अत एव मुझ अहंकारके वास्तविकरूपको कोई नहीं पहिचानता] ॥ ३५ ॥जो पुरुष इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले विष्णुका स्मरण करते हैं,वे तपके द्वारा अपने पापोंको नष्ट करने वाले पुरुष मुझ अव्यक्तको देखते हैं [इच्छासे ग्रहण किये हुए राम कृष्ण आदि शरीरोंसे उपलक्षित विष्णुका जो प्रणव आदि के द्वारा स्मरण करते हैं, वे पुरुष व्यक्तके द्वारा मुझ अव्यक्त को देख सकते हैं, तात्पर्य यह है, कि-पूर्वोक्त रीतिसे स्फटिकमें रक्तत्व और पद्मरागत्वकी समान चिन्मात्र ईशमें भी सूक्ष्म और स्थूल अध्यस्त हैं । इनमेंसे स्थूल श्रीगोपाल आदिकी प्रतिमामें प्रणिधीयमान नेत्र प्रथम मायासम्बन्धी जड़ताका तिरोधान होने पर इस प्रकार चेतनत्वको, ग्रहण करता है, जिस प्रकार रज्जू

तपसा दग्धकिल्बिषाः ॥ ३६ ॥ ये च मामभिरोहेयुर्नरा धर्मपथे स्थिताः । तेऽपि स्वर्गजितः स्वर्गे पश्येयुर्मां गतक्लमाः ॥ ३७ ॥ यश्चैव पर्वतः प्रांशुर्मेरुपृष्ठे व्यवस्थितः । एतमारुह्य युद्धेयुः प्राणत्यागेषु निर्मलाः ॥ ३८ ॥ अप्सरोभिः समागम्य विचरेयुर्मनोजवाः । नन्दनं वनमासाद्य काम्यकं च महद्वनम् ॥ ३९ ॥ इमां

रगमें निहित मन उरगका तिरोधान होने पर रज्जुको ग्रहण कर लेता है । अत एव भक्त अपने आराध्योंके साथ विचरण करते हैं । इस प्रकारके अनेक उपाख्यान मिलते हैं । अर्थात् चेतनमूर्तिमें भी प्रणिहित चक्षु उसके वास्तविक ईश्वररूपको ही ग्रहण करती हैं । इसको ही यशोदाने कृष्णके मुखमें और अर्जुनने श्रीकृष्णके शरीरमें देखा था । इस अवस्थामें योगी देहके असंगसे स्वयं ही कि–विश्वरूप होकर सर्वज्ञताको प्राप्त हो जाता है । इसी वितर्कित प्रत्यक्षको लक्षित करके भगवान् बादरायणने योगभाष्यमें कहा है, कि–"तदेतत् परं प्रत्यक्षं तच्च श्रुतानुमानयोर्बीजम्" विश्वरूपमें भी प्रणिधीयमान मन सन्मात्र को ग्रहण कर अस्मितामात्र ही अवशिष्ट रह जाता है,उसमें भी लीन होने पर योगी स्वरूपानन्दके प्रति युक्तमुक्तकाम शरीर वालेके द्वारा मुझ अव्यक्तको देख सकते हैं] ॥ ३६ ॥ धर्ममार्ग में स्थित जो पुरुष मुझ पर आरूढ होते हैं वे स्वर्गको जीतने वाले क्लमरहित पुरुष स्वर्गमें भी मुझको देख सकते हैं [जो मुझ पर निर्गुण सोपान क्रमसे इस प्रकार सवार होजाते हैं,वे मुझको स्वर्ग में भी देखते हैं] ॥ ३७ ॥ मेरुपृष्ठमें जो ऊँचा पर्वत खड़ा हुआ है, निर्मल पुरुष प्राणत्याग कर समय आने पर उस पर चढ़ कर युद्ध करते हैं [आध्यात्मिक अर्थ–भ्रूमध्यमें जो समष्टयहंकार है, इन्द्रिय आदिका लय करनेके अनन्तर निर्मल पुरुष उस समष्ट्यहंकारसे युद्ध करते हैं]॥ ३८ ॥ उस समय मनकी समान वेग

विद्यां समास्थाय मद्भक्ताः पुष्करेष्विह । शरीरं त्यपयिष्यन्ति व्रतैर्बहुविधैः कृतैः ॥ ४० ॥ सिद्धिं प्राप्य क्रमेयुस्ते कामैर्बहुविधै-र्नराः । इमं लोकममुं चैव सम्पतेयुर्यथा सुखम् ॥ ४१ ॥ गौरी सिद्धेति विख्याता त्रिषु लोकेषु विश्रगा । प्रभावं तपसो वृत्तं दर्श-यन्ति समाहिताः ॥ ४२ ॥ पएणां ज्ञानाभिसन्धीनामभिज्ञानात् ससंग्रहाः । भवेयुस्ते निरारम्भा धातुनिर्मुक्तबन्धनाः ॥ ४३ ॥

वाले पुरुष उस समय नन्दन और काम्यक नाम वाले बडे भारी बगीचेमें पहुँच कर अप्सराओंके साथ विचरण कर सकते हैं [नीलकण्ठ-परन्तु ये सब भोग होनेके कारण वन है अर्थात् त्याज्यविषय हैं] ॥ ३९ ॥ मेरे भक्त इस विद्याका आश्रय लेकर पुष्करमें विचरण कर अनेक प्रकारके कृत्य करते हुए अपने शरीर को त्यागा करेंगे [आध्यात्मिक-इस विद्याका आश्रय लेकर मेरे भक्त हार्दाकाशमें विचरण करके शरीराभिमानको त्याग दिया करेंगे] ॥ ४० ॥ वे मनुष्य सिद्धि पाकर इच्छानुसार अनेक प्रकारके विषयोंको पावेंगे और वे मनुष्य इस लोकमें तथा पर-लोकमें इच्छानुसार आ जा सकेंगे ॥ ४१ ॥ जब पुरुष आचरण में स्थित होकर तपके ऐसे प्रभावको दिखाते हैं, तब शास्त्र और आचार्यके उपदेशरूप विद्याके द्वारा तीनों लोकोंमें सिद्ध नामसे प्रसिद्ध गौरी नाम वाली देवी उनको दर्शन देती है [आध्यात्मिक अर्थ-जब योगी पुरुष सदाचरणमें स्थित होकर ऐसे प्रभाव दिखानेके योग्य हो जाते हैं तब गुरु और शास्त्रके उपदेशरूपी विद्याके प्रभाववश तीनों लोकमें गौरी नामसे प्रसिद्ध ब्रह्मविद्या प्रकट होती है] ॥ ४२ ॥ [ज्ञानात्मिका वृत्तिके पूर्ण अनुभव होनेके कारण अत एव कामना के अभावसे अक्षीण योगैश्वर्य वाले (ससंग्रह) अत एव निरारम्भ और धातुओंके बन्धनसे

सहस्रगुणमप्यत्र दत्त्वा दानफलादिव । अविमानेन विप्राणां मनः- शुद्धेन कर्मणा ॥ ४४ ॥ सर्वत्रैनाप्रमेयेण अत्यन्तं फलमाप्नुयुः । अमुष्मिंल्लोके धर्मज्ञाः सह सर्वकुलोद्भवैः ॥ ४५ ॥ तेषामिह च सान्निध्यं यज्ञे ब्राह्मणसंकुले । ते भूयो यजमानाद्या अभिषिच्य पुनः पुनः ॥४६॥ तथा तां मन्यसे गौरीं मनसा धर्मचारिणीम् । अनुग्रहाय भूतानां तन्ममाग्रे तपोधन ॥ ४७ ॥ सत्य एष परोऽ-

---

मुक्त होजाते हैं] ॥ ४३ ॥ जैसे लोकमें अपराधी पुरुष राजाको सहस्रगुणा कर देकर छूट जाता है इसी प्रकार पुरुष विप्रोंका सत्कार करनेसे और मनःशुद्ध कर्म (निष्कामकर्म) से मुक्त होजाता है ॥ ४४ ॥ धर्मज्ञ पुरुष असंकुचित कर्म करनेसे अपने पूर्वजोंके साथ परलोकमें अत्यन्तफल (आत्यन्तिक दुःखपरिहार) को पाते हैं । ४५ ॥ यजमान आदि ब्राह्मणोंसे घिरे हुए यज्ञमें बारम्बार अभिषेक करानेके अनन्तर यजमान ऋत्विजोंके पूर्वोक्त फलको पाते हैं ॥ ४६ ॥ जिस प्रकार तुम यज्ञ दानकी सम्पत्ति को समझते हो, तैसे ही तुम गौरीको तपोधनके समीपमें स्थित मत समझो, यह गौरी [ब्रह्मविद्या] भूतों पर अनुग्रह करने वाली है, मनसे धर्मचारिणी है, तात्पर्य यह है, कि-बाह्ययज्ञ दान आदिसे साध्य बाह्यसम्पत्ति तो परिमित होती है और यह तो मानस होनेसे अनन्त है ॥ ४७ ॥ [अब यह शंका होती है, कि-फिर दानादि कर्म करनेकी क्या आवश्यकता है, तो इसका उत्तर देते हैं, कि-] यह आत्मा गौरी नाम वाली ब्रह्मविद्यासे प्राप्त हो सकता है, सत्य अर्थात् अबाधित है, और अविद्य पुरुष से दूर रहता है, परन्तु तब भी धर्मचारीका किया हुआ धर्म निष्फल नहीं होता, अतः चित्तशुद्धिके द्वारा भी उसका आविर्भाव होजाता है, अतः दान आदि करना चाहिये । श्रुतिमें भी लिखा

विद्धे भविता नात्र संशयः । नाफलो विद्यते धर्मश्चरितो धर्म-
चारिणा ॥ ४८ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि
सप्तविंशतितमोऽध्यायः ॥ २७ ॥

वैशम्पायन उवाच । दिशं जिगमिषुर्दिव्यामुत्तरां सत्यसाधनः।
तथा स धातुनिचये पुण्ये पर्वतरोधसि ॥ १ ॥ विष्णुः परम-
धर्मात्मा एकपादेन तिष्ठति । दशवर्षसहस्राणि पुष्करे पुष्करे-
क्षणः ॥ २ ॥ आत्मन्यात्मानमाधाय तपसा ब्रह्मसम्भवः । घटते

है कि-विद्यार्थ धर्मोऽनुष्ठेय एव विविदिषन्ति यज्ञेत्यादि"] ४८
सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २७ ॥

[अब इस बाईसवें पुष्कर प्रादुर्भावाध्यायमें योगमें श्रद्धा बढानेके लिए इस बातका वर्णन किया जायगा, कि-योगके गोचर होने पर विष्णु (व्यापक) परमैश्वर्य प्रकट होजाता है] वैशम्पायनजीने कहा, कि-कमलकी समान नेत्र वाले सत्यसाधन विष्णु उत्तर दिशामें जानेकी इच्छासे धातुओंके सञ्चय वाले पर्वतकी पवित्र तलैटीमें पुष्कर पर एक पैरसे दश सहस्र वर्ष तक खड़े रहे [आध्यात्मिक अर्थ-मोक्ष नाम वाली पराकाष्ठाको प्राप्त होनेकी इच्छा वाले पुरुष शरीरमेंके नासामूलकी भ्रूसन्धिमें और हार्दाकाशमें तुर्यात्मक निर्विकल्प समाधिमें स्थित होजाते हैं । ब्रह्म विश्व तैजस प्राज्ञ और तुरीय इन चार पादोंसे संयुक्त है, इनमेंसे मोक्षाभिलाषीको निर्विकल्प चौथे पदका आश्रय लेना पडता है] ॥१॥२॥ ब्रह्माके उत्पत्तिस्थान तपोधन विष्णुने चित्तमें अपने आत्माका लय करके संसारका कल्याण करनेके लिए उग्र कर्म (तप) किया था [आध्यात्मिक अर्थ-विष्णु शुद्ध आत्मामें अपने मायोपाधिक शरीरका लोकशिक्षाके लिये प्रविलापन करके तप करते हैं । भगवद्गीतामें भी लिखा है, कि-

कर्मणोग्रेण लोकमुत्थानकारणात् ॥ ३ ॥ भास्वरो भस्मनाच्छाद्य गात्राणि स्वयमात्मनः । अष्टौ वर्षसहस्राणि सहस्रं च तपोधनः ४ तेजसा तेन ज्योतींषि विगाह्य ब्राह्मणर्षभः । तिष्ठते नभसो मध्ये योगात्मा भावयन् जगत् ॥ ५ ॥ सोमो विषयमाक्षिप्य मनसा धारयन्मनः । युक्तः परमधर्मात्मा ब्राह्मीं सिद्धिमुपागतः ॥ ६ ॥ समदृश्यत सर्वत्र दिवि भुव्यन्तरे तथा । ज्योतिष्णु कर्म कुर्वाणो बहुरूपः स सम्पदा ॥७॥ महेश्वरोऽतिगूढात्मा वृषरूपेण तिष्ठति। उद्धृत्य दक्षिणं पादं वायुभक्षः समाहितः ॥ ८ ॥ अष्टौ वर्षसहस्राणि सहस्रशतमेव च । महायोगी महादेवो नियमाद्ब्रह्मसंभवः ९

"उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम्"] ॥ ३ ॥ सिद्धिको प्राप्त हुए भास्वर सोमने भी अपने शरीरको भस्मसे आच्छादित कर आठ हजार वर्ष तक तप किया योगात्मा ब्राह्मणश्रेष्ठ चन्द्रमा उस तपके तेजसे नक्षत्रों पर ऊपर अभिभव करके स्थित रहते हैं। इस प्रकार सोम मनसे विषयोंको त्याग कर रहे थे, तब उन धर्मात्माको ब्राह्मी सिद्धि प्राप्ति हुई थी ४-६ वह स्वर्ग पृथिवी आदि सबमें दीखते हैं और वह प्रकाशन क्रियाको करते हैं और वह नानारस वाली औषधियोंमें प्रवेश करनेके कारण नाना रस वाले हैं। श्रुतिमें भी लिखा है, कि-"सोमो भूत्वा रसात्मकः- वह सोम रसात्मक है" इस श्रुतिमें भी सोमके रसात्मत्वका वर्णन है ॥ ७ ॥ ब्रह्मसम्भव महादेवने भी वृषका रूप बना दक्षिण पैरको उठा कर वायुका भक्षण करते हुए नौ हजार वर्ष तक तप किया था, वह महेश्वर अतिगूढात्मा हैं, महायोगी हैं [इस श्लोकमें बलीवर्दके रूपमें धर्मात्मा महेश्वरकी स्तुति की है। धर्मके अहिंसागर्भित जयादि रूप निष्काम सकाम दो दाहिने पैर हैं, और हिंसागर्भित निष्काम सकाम ये दो उत्तर पाद हैं इन चारों पादोंमेंसे उन्होंने निष्काम जयादिरूप पादको पुरस्कृत करके तप

अथ वायुर्घनीभूतो अन्ते चरति गोपतेः। फेनीभूतं समुद्गारैः पवनं निर्गिरन्मुखात् ॥ १० ॥ स निष्क्रान्तस्ततो वक्त्रात् मार्गेन परमात्मवान्। निर्यासभूतो पतितो नैवार्द्रो नैव पार्थिवः ॥ ११ ॥ स फेनो वारिणाविश्य चचार वसुधांतले। नैवार्द्रो नैव शुष्कांगो वायुसंघातमागतः॥१२॥तत्कालफेनमुत्क्षिप्य पवनः सह वारिणा। निरालम्बे निरालम्बस्त्वभ्राणि समपद्यत ॥ १३ ॥ ते क्षिपन्ति पयो भूमावात्मानं स्वेन घट्टिताः। नीलमेघारुणप्रख्या नैवार्द्रो नैव पार्थिवः ॥ १४ ॥ ब्राह्मीं मूर्तिं समाधाय वायुः सर्वत्रगो

किया था] ॥ ८ ॥ ९ ॥ गोपति शिवके पास वायु घनीभूत होकर विचरण करने लगा उसको फेन बना कर गोपति अपने मुखमेंसे निकालने लगे [आध्यात्मिक अर्थ–योगज धर्मसे ही विश्वहित होता है, इस बातको प्रकाशित करनेके लिए वृषरूप शंकरसे मेघकी उत्पत्तिका वर्णन किया है, कि वायु इन्द्रियोंका निग्रह करने वाले गोपतिके सामने दबाये हुए रुईके गोलेकी समान घनीभूत होजाता है,उस फेनीभूतको गोपति समुद्गारोंके रूप में अपने मुखमेंसे निकालते हैं] १० उस समय उनके मुखमेंसे मार्गके साथ परमात्मा वाला वृक्षपदसा बना हुआ(वायु)निकला, न तो वह गीला था और न वह पाषाण आदिसा शुष्क पार्थिव पदार्थ ही था ॥११॥ वह गीलेपन और सूखेपनसे रहित वायुसे टकराता हुआ फेन जलके साथ पृथ्वी जिसका अधोभाग (तल) है उस अन्तरिक्षमें विचरण करने लगा ॥ १२ ॥ पवन जलके साथ रहने वाले उस फेनको उड़ाकर निरालम्ब अर्थात् आश्रयशून्य होगया, वह निरालम्ब मेघोंके रूपका बन गया ॥१३॥ वे अपने जलरूपको घन करके ओलेकी समान घने हुए नील मेघ, अरुण सारथिवाले सूर्यके द्वारा द्रावित करने पर घनीभूत जलको बरसानेके कारण मेघ कहलाते हैं। इस प्रकार वह

वशी । समाः सहस्रं सम्पूर्णं चचार विपुलं तपः ॥१५॥ वह्नि-र्बहुजटी भूत्वा चीरवल्कलवासकृत् । तपस्तप्यदनाहारो मौन-मास्थाय पौष्करे ॥ १६ ॥ वर्षाणां च सहस्राणि त्रीणि चैकं च यत्नतः । तस्याग्नेस्तेजसंभूतो महानग्निः प्रवर्तते ॥ १७ ॥ स्वर्ग-प्रकाशं कृत्वा च स्वर्गवासी तमोनुदः।दिवि भूतप्रकाशाख्यस्तपसा ब्रह्मसम्भवः ॥ १८ ॥ तत्तमो भुवि राजेन्द्र मानुषेषु प्रतिष्ठितम् । भास्करस्तेजसंहारस्ततो भवति सत्तमः ॥ १९ ॥ मरयानां सर्व-भूतानां तेज आक्षिप्य वर्तते । न तु योगबले राजन् ब्राह्मणस्य विशेषतः ॥ २० ॥ तत्तमो नाशदेत्रात्री नाप्यहो भवितादृग्यम् ।

न गीला है न सूखा है ॥ १४ ॥ सर्वत्र जाने वाले वशी वायुने ब्राह्मणका शरीर धारण करके एक सहस्र वर्ष तक घोर तप किया था ॥ १५ ॥ अग्निने भी बहुतसी जटा और चीर वल्कल धारण कर निराहार रह मौनका अवलम्बन ले (हृदयाकाशमें) पुष्करमें चार सहस्र वर्ष तक तप किया था, तब उस अग्निके तेज से स्वर्गप्रकाशकृत् कर्मोपयोगी गार्हपत्य अग्नि उत्पन्न हुआ और चक्षु आदि पर अनुग्रह करने वाला सूर्य आदि स्वर्गवासी अंधकार नाशक तेज भी हुआ, वह ब्रह्मसंभव(सूर्यस्वरूप अग्नि,)तप के कारण स्वर्गमें भूतप्रकाश नामसे प्रसिद्ध है ॥ १६—१८ ॥ हे राजेन्द्र ! जो स्वर्गप्रकाशकृत् अग्नि कहा है उसका धूप अर्थात् धूमादिमार्ग वर्णाश्रमाभिमानी मनुष्योंमें प्रतिष्ठित हैं और अग्नि आदिके तेजको फीका करने वाला सूर्य तो पहिले वन्हिसे उत्कृष्ट होजाता है; तात्पर्य यह है, कि–गार्हपत्य आदिकी आराधना करने वाले फिर लौट आते हैं और सूर्यमण्डलके भीतर रहने वाले पुरुषकी आराधना करने वाले फिर नहीं लौटते हैं ॥१९॥ [अब डेढ श्लोकसे भास्करकी स्तुति करते हैं, कि–]वह योगबलके होने पर तेजको संक्षिप्त करके रहते हैं और दूसरे ब्राह्मणके

पुष्पमित्रो महातेजा यक्षः सर्वत्रगो वशी । तपश्चरति धर्मात्मा पुष्करेषु समाहितः ॥ २१ ॥ महेन्द्रशिखराद्धारा यावन्त्यो यान्ति मेदिनीम् । तावत् स्वरूपमास्थाय तिष्ठते निखिलाः समाः ॥२२॥ जानुभ्यां पतितो भूमौ ज्योतिर्नभसि पश्यति । समा सहस्रं निखिलं नेत्रैरनिमिषैर्जगत् ॥२३॥ नेत्राणि बहुधा तस्य नेत्रांतैरमिनिःसृताः । मध्यं दिनकरे प्राप्ते रश्मिवान् सपरिग्रहे ॥२४॥

तेजको तो वह अधिकतर ग्रहण नहीं करते हैं ॥२०॥ उक्त गुण वाले भास्कर आराधना करने पर पूर्वोक्त तमका नाश करके रात्रिमें मरे हुएकी भी धूमादिगतिको नष्ट करके सौरी गतिको ही देते हैं, तथा रात्रि (धूममार्ग) का अनुष्ठान करने वालेको दिनमें मरने पर भी अर्चिरादि मार्ग नहीं मिलता, वह अहः अर्थात् अर्चिरादि अह्न है अर्थात् अह्नपदका प्रापक है । तात्पर्य यह है; कि—ज्ञानीकी रात्रिमें मरने पर भी अर्चिरादि गति होती है और कर्मीकी दिनमें मरने पर भी धूमादि गति होती है । पुष्पमित्र नामक महातेजस्वी यक्ष जो सर्वत्रगामी और वशी हैं वे धर्मात्मा (भावी कुबेर) पुष्करमें (हार्दाकाशमें) समाहित होकर तप करते हैं ॥ २१ ॥ महेन्द्रके शिखरसे जितने धारें पृथ्वी पर गिरती हैं, उतने स्वरूप बना कर वह सम्पूर्ण वर्षों तक (कायव्यूहसे) प्रकाशित होते रहते हैं ॥ २२ ॥ वह पृथिवीमें घुटनोंको टेक कर आकाशमें ज्योतिकी उपासना करते हैं फिर सहस्रों वर्षों तक अनिमिष नेत्रोंसे जगत्को देखते हैं [पृथिवीमें घुटनोंको टेक कर आकाशीय ज्योतिको देखनेसे नमस्कारमिष सूर्यकी आराधना सूचित की है और । "तत्फलं च सूर्यसंयमाद्भुवनज्ञानम्" उसका सूर्यमें संयम होनेसे भुवनज्ञान बताया है" अर्थात् दर्पणरूपी सूर्यमें पड़ने वाले नेत्रोंसे जगत् भरको देखते हैं] २३ [अब इसी बातका दो श्लोकोंमें उपपादन करते हैं, कि-] दिन-

ते रश्मयः प्रभानेत्रैः शतशोथ सहस्रशः । रराज तेजःसंयोगाद्द्विद्भिरिव पावकः ॥ २५ ॥ सविस्फुलिंगै नेत्रान्तैरादित्यमनुवर्तते । कर्मणोंते युगान्ते वा जगतो बहुरूपिणः ॥ २६ ॥ बहुतापः पुनर्भूत्वा विषण्णो वसुधातले । समो रश्मिषु सम्पूर्णस्तपस्तेपे सुदारुणम् ॥२७॥ निगृहीतेन्द्रियो भूत्वा अप्सरोभिर्ललाम ह । मेरोः शिखरमासाद्य कामं कामेन निर्वमन् ॥ २८ ॥ तपःकामः स यक्षस्तु कुबेरो नरवाहनः । विष्णुरेव तपोध्यक्षस्तेजसोन्ते विजृम्भति ॥ २९ ॥ न हि कश्चित् पुमानस्ति य एवं तप

कर मण्डलमध्यमें परिवेषकी समान रश्मिवान् है और मध्यमें आदर्श (दर्पण) के तलकी समान है, तहाँ पर नेत्रकी किरणोंके पहुँचने पर वे सूर्यप्रभामिश्रित नेत्र सूर्यके मण्डलमेंसे निकल तेजःसंयोगके कारण पावककी समान विराजमान होने लगते हैं. २५ जब देहारम्भक कर्मोंका क्षय होजाता वा प्रलय होता है तब वह भाविकुवेर पुष्पमित्र विस्फुलिंगकी समान भासमान द्वारभूत नेत्रान्तोंके द्वारा आदित्यको प्राप्त होजाता है ॥ २६ ॥ वह युगांत में सूर्यको प्राप्त होजाता है और किरणोंमें भर कर नेत्रके द्वारा जलतैलन्यायकी समान आदित्यके सारे रश्मिमण्डलको व्याप्त करके स्थित होजाता है अत एव वह बहुताप अर्थात् विरुद्धतपःप्रभाव होजाता है और पृथिवीमें प्रवेशसा करता हुआ दारुण तप करता है ॥ २७ ॥ [अब इस तपस्याके फलको कहते हैं, कि–] वह अपनी इन्द्रियोंको वशमें करनेके अनन्तर मेरुके शिखर पर पहुँच अप्सराओंके साथ रमण कर कामसे कामको त्यागने लगा ॥ २८ ॥ इस प्रकार वह तप करने वाला यक्ष तपके अन्त में नरवाहन कुवेर होजाता है, ऐसा तप तो विष्णु ही कर सकते हैं ॥ २९ ॥ हे राजेन्द्र ! सनातन विष्णुके अतिरिक्त त्रिलोकीमें ऐसा और कोई पुरुष नहीं है, जो ऐसा तप कर सके (तात्पर्य

आचरेत् । त्रिषु लोकेषु राजेन्द्र ख्याते विष्णुं सनातनम् ॥३०॥ वासुकिर्बहुशीर्षस्तु नागेन्द्रो मौनमास्थितः । तप आचरते सम्यङ् निधाय मनसा मनः ॥ ३१ ॥ शेषः सत्यधृतिर्नागो बलवान् ब्रह्मसम्भवः । वृक्षमारुह्य धर्मात्मा अवाक्शीर्षोऽवलम्बते ॥३२॥ जिह्वाभिर्लेलिहानाभिर्गात्रजं विषमुत्सृजन् । समाः सहस्रं संपूर्णं निराहारस्तपोधनः ॥ ३३ ॥ कालकूटं विषं तद्धि सुमहत् समपद्यत । येन लोको ह्यभिग्रस्तो न सुखं विंदते नृप ॥३४॥ सर्वत्रानुगतं तीक्ष्णं भुजंगेषु महीपते । जङ्गमं स्थावरं चैव सर्वत्रानुगतं विषम् ॥ ३५ ॥ परस्परविरुद्धेन हिंसयुक्तेन भारत । नाशयत्यात्मनोऽङ्गानि तेन तीक्ष्णेन भारत ॥३६॥ अथ ब्रह्मा महा-

---

यह है, कि-कुवेर विष्णुके ही अंश हैं) ॥ ३० ॥ अनेक शीर्षों (फनों) वाले नागेन्द्र वासुकिने भी बहुत समय तक मौन रह कर अपने चित्तको आत्मामें लगा कर बहुत समय तक तप किया था ॥ ३१ ॥ और ब्रह्माजीसे उत्पन्न हुए धर्मात्मा सत्यधृति शेषने भी वृक्ष पर चढ़ नीचेको मुख करके तप किया था ।३२। उस समय उन्होंने अपनी लपलपाती हुई जिह्वाओंसे अपने शरीर का विष उगला था, और वह तपोधन एक सहस्र वर्ष तक निराहार रह कर तप करते रहे थे ॥ ३३ ॥ वह बड़ा भारी कालकूट विष बन गया, हे राजन् ! उसके वशमें पड़ने पर मनुष्योंको सुख नहीं मिलता है ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! वह तीक्ष्ण विष ही सर्वत्रके सर्पोंमें है और वही विष जंगम और स्थावर सब विषों में वर्तमान है ॥ ३५ ॥ हे भारत ! परस्पर बढ़े हुए उस हिंसायुक्त अतितीक्ष्ण विषसे वे अपने अंगोंको नष्ट करने लगे [तात्पर्य यह है; कि-ऐसा तामस तप संसारको उद्विग्न करने वाला होता है, और यह तामस तप प्राणनाशक क्रोधरूपमें परिणत होजाता है] ॥ ३६ ॥ [अब इस प्रकार हिंसक विषकी उत्पत्तिका वर्णन

भागो भूतानां हितकाम्यया । मन्त्रं विसृजते राजन् ब्रह्माक्षरम-
हिंसकम् ॥ ३७ ॥ गरुत्मान् विततैः पक्षैर्नखाग्रैः सलिलं महीम् ।
समाः सहस्रं सम्पूर्णं चूलाग्रेणावलम्बिना ॥ ३८ ॥ पर्णभारैश्च
विकचैर्विस्तीर्णैर्वसुधातलेऽरराज वसुधा चैव पर्णैर्बहुविचित्रितैः ३९

करनेके अनन्तर उसका प्रतीकार करनेके लिए ब्रह्माजीके अहिंसक ब्रह्माक्षर मंत्र–विषघ्न वेदवर्णमय मंत्र–के रचनेका वर्णन करते हैं, कि–]तदनन्तर महाभाग ब्रह्माजीने प्राणियोंका कल्याण करनेकी इच्छासे ब्रह्माक्षरमय अहिंसक मंत्रकी रचना की ।३७। [अब उसी मंत्रका दो श्लोकोंमें वर्णन करते हैं, कि–] गरुड़जी अपने फैले हुए पक्षोंसे और अवलम्बनशील शिखाके अग्रभाग से पृथ्वी और जलकी रक्षा करें [अथवा ब्रह्मप्रणव अहिंसक अक्षर अमृतबीज वं बीज दीर्घस्वरोंसे युक्त है उस वं बीज पञ्चांगसे गरुड़ मेरी रक्षा करे, उस समय वं बीज वाले मंत्रका प्रयोग इस प्रकार होगा, कि–"ओं वां गरुत्मान् हृदयाय नमः अंगुष्ठयोः, ओं वः गरुत्मान् अस्त्राय फट् करतलकरपृष्ठयोः । इस प्रकार हृदयादिमूलमंत्रको कहा है । मही लं बीजको और सलिल वं बीजको हकार सकार रेफके कूट वर्ण वाले और सम्मिलित चूलाके अग्रभाग वषट्का अवलंबन करने वाले मंत्रसे रक्षा करे । उसका प्रयोग इस प्रकार है । वषडिति पञ्चाक्षरः, अस्य ऋषिर्ब्रह्मा गायत्रीच्छन्दः गरुत्मान देवता वं बीजं हः शक्तिः लं कीलकं विषनाशने विनियोगः] ॥ ३८ ॥ जिसमें वसु(ब्रह्म) स्थापित किया जाता है ऐसा शरीर वसुधा कहलाता है, उसके तल अर्थात् भीतर फैली हुई परोंकी समान इन्द्रियोंके कार्य भार से (योगियोंकी दृष्टिमें) शोभायमान दीखते हुए और जिसकी बहुचित्रित इन्द्रियोंके विषयभेदसे वसुधा (शरीर) शोभा पा रहाहै (ऐसे मेरी गरुड रक्षा करें) तात्पर्य यह है, जो शरीरके

येन वृत्तेन जीवेयुः सर्वभूतानि भारत। इह लोके मनुष्येन्द्र देवलोके च भारत। द्यौरिवाचितनक्षत्रा महीतलविसर्पिभिः ॥४०॥ हिमवान् हिमसम्पाते भवत्येकचरो वशी। पुष्कराम्भसि धर्मात्मा मत्स्यो लिखितमूर्धजः ॥४१॥ अथ सुतलमाक्रम्य पृथिवीं पांशुदेहिनी। तपश्चरति धर्मात्मा बाहुमुद्यम्य दक्षिणम् ॥४२॥ सार्धं वर्षसहस्रं च शतमेकं च सुव्रत। तपश्चरति संयोगाद्वायुभक्षो समाहितः ॥४३॥ समाधियोगात् सद्बाह्य ब्रह्मयोगस्य भारत। येनेयं

भीतर सर्वात्मरूपसे विराज रहा है और शरीर भी जिससे प्रकाशित होता रहता है, ऐसे मेरी गरुड़जी रक्षा करें ॥ ३९ ॥ हे भारत! इस मन्त्रका जप करनेसे मनुष्य इस लोकमें और परलोकमें जीवित रह सकते हैं और पृथ्वी (शरीर) भीतर घूमने वाली इन्द्रियोंसे तारोंसे छाये हुए आकाशकी समान शोभा देने लगती है ॥ ४० ॥ पुष्करके जलमें अर्थात् मायाशबलके आश्रयभूत निर्विशेष चैतन्यमें मत्स्यकी समान जीव जो संसाररूपी नदीमें जाग्रत् स्वप्नरूप दोनों किनारों पर विचरता रहता है, वह सहस्रारका स्पर्श करने पर हिम सम्पात होने पर हिमवान् की समान अचल होजाता है अर्थात् जीवात्माको सहस्रारमें स्थापित करके चिन्मात्रको प्राप्त होजाता है ॥ ४१ ॥ (अब जो व्यक्ति) उन्नत शरीरधारिणी पृथ्वी (बना है उसके तपका वर्णन करते हैं; कि-) धर्मात्मा पुरुष सुतल मूलाधार) पर अधिष्ठित होकर दाहिनी भुजाको उठाकर तप करता है[यहाँ दाहिने हाथको उठानेसे दान करना सूचित करके सूचित किया है कि- दान आदि करनेसे चित्तकी शुद्धि होती है; इसके बिना चित्तशुद्धि न होनेसे योगमें प्रवृत्ति नहीं होसकती] ॥ ४२ ॥ हे सुव्रत! वह वायु भक्षण कर समाहित हो डेढ सहस्र वर्ष तक प्राचीन योग पद्धतिके अनुसार तप करता है ॥ ४३ ॥ हे भारत!

पृथिवी राजन् धार्यते ब्रह्मयोनिना ॥ ४४ ॥ अनाद्यन्तेन नित्येन सर्वत्र विषयैषिणा । योसौ विष्णुरगाधात्मा परमात्मा निराकृतिः ॥ ४५ ॥ दिने निषण्णो भवति रात्रौ भवति वै स्थिरः । सत्यसन्धः स धर्मात्मा कामकारकरो भवेत् ॥ ४६ ॥ तस्य यः सोद्यतः पाणिः पृथिव्यां पृथिवीसमः । रात्रौ तपनो भवति मंडलं विपुलं नभः ॥ ४७ ॥ स चन्द्रविषयं राजन्क्रमयामास रुन्धति । ग्रहाणां गतयश्चैव ताराणां च विशेषतः ॥४८॥ तां छायामाक्षिपत् सोमात् सूनद्भिर्मण्डलेन वै । पृथिव्यां दक्षिणो हस्तो महा-

---

जो ब्रह्मयोनि इस पृथ्वीको धारण किये रहता है उस प्रणवरूप ब्रह्मका जप करते हुए वे तप करते हैं ॥ ४४ ॥ वही अनादि अनन्तविष्णु अगाधात्मा हैं, परमात्मा हैं, आकृतिरहित हैं और (जीवरूप धारण कर) सर्वत्र विषयाभिलाषी रहते हैं ॥ ४५ ॥ भगवान् विष्णु दिनमें बैठे हुए होते हैं रात्रिमें स्थिर होते हैं सत्यसन्ध हैं धर्मात्मा हैं और लीला करने वाले हैं [आध्यात्मिक अर्थ—एक विद्यासे ही उनको जाना जासकता है और अविद्या में वह स्थिर रहते हैं अर्थात् उनका ज्ञान नहीं होता है और लोकवत्तु लीलाकैवल्यम् इस न्यायके अनुसार भगवान्की लीलाके कारण ही सृष्टिमें प्रवृत्ति होती है] ॥४६॥ उन विष्णुका भक्तों का उद्धार करनेके लिये जो हाथकी समान उठा हुआ धर्म है वह विधारक होनेसे पृथिवीकी समान है रात्रि अर्थात् अविद्यामें प्रकाशक है तात्पर्य यह है, कि—धर्म ही विवेकप्रद है और हार्द ब्रह्म भी वह ही है अर्थात् भोग और अपवर्ग अर्थात् मोक्ष धर्मसे ही प्राप्त होसकते हैं ॥ ४७ ॥ वह धर्म चन्द्रमाके विषयको अर्थात् मनके बन्धक राग आदि कषायोंको नष्ट कर डालता है और शुद्ध तारोंकी समान चक्षु आदिकी विषयोंमें गति को रोक देता है ॥ ४८ ॥ [प्रसंगवश धर्मके सुलभुपायको कह

योगी महामनाः ॥ ४९ ॥ सैषा छाया शशीभूता शशिमण्डल-
माविशत् । अलिंगा पृथिवी लिंगादद्भुतादत्तथा दिवि ॥ ५० ॥
अंगांगान्युपसंगृह्यैव तपश्चरति निश्चगात् । प्रोक्ष्य पादौ तु सतलौ
पृथिवी तपसि स्थिता ॥ ५१ ॥ सूर्यार्चिभिः पीयमानादाक्षिप्यत

कर प्रकृत पृथिवीकृत योगका अनुसरण करते हैं, कि–]वह पृथ्वी
में दाहिना हाथ धर्म अपना आश्रय लेनेसे महायोगी बना देता
है उसका आश्रय लेनेसे चित्त ज्ञानोत्पत्तिमें समर्थ होजाता है
अर्थात् वह योग और चित्त शुद्धि इन दोनोंको देने वाला हो
जाता है वह पूर्वोक्त सात, सहस्र और अनेक बनी हुई किरणों
के द्वारा बने हुए मण्डलसे निकलती हुई किरणोंसे छायाको
अर्थात् अविद्याको शिथिल करता हुआ योग और सिद्धिको देता
है ॥ ४९ ॥ यह अविद्या रात्रिरूपी छाया अनिर्वचनीय होनेके
कारण अलिंगा है अर्थात् तत्त्ववेदक प्रमाणसे शून्य है पृथिवीमें
ही इसका चिन्ह मिलता है अत एव यह भूमि शरीरको प्राप्त
होकर तत्त्वैकाग्रके द्वारा चन्द्रमा बनती हुई चन्द्रमण्डलमें प्रवेश
करजाती है वह पृथिवीलिंग अनिर्वचनीय है और वह छाया
अर्थात् माया भी मिथ्या होनेके कारण घटावसे शून्य मरीचिका-
सरोवरकी समान अन्नय है ॥५०॥ [अब पृथ्वीके चन्द्रमा बनने
के प्रकारको दिखाते हैं, कि–] पृथ्वी तलुओं सहित दोनों पादों
को धोकर सब अङ्गोंका उपसंहार करती हुई तप करती है[इससे
तीर्थदान आदिका वर्णन मिलता है] ॥५१॥ [इस प्रकार जल-
ध्वनीभावरूपचन्द्रीभूता पृथ्वी फिर सूर्यधारणाके अभ्याससे
गङ्गात्वको प्राप्त होगई है, इसका चार श्लोकमें वर्णन करते हैं,
कि–] सूर्यकी किरणोंके द्वारा पिये जाते हुए जलके साथ पृथ्वी
खिचती है[अर्थात् जिस प्रकार अग्निसे कर्पूरशिलाकी समान,
सूर्यकी किरणोंसे सुखाई जाती हुई पृथ्वी सूर्यके पास पहुँच कर

महीतले । महीमिवाम्बुवसनां युगान्ते विष्णुतेजसा ॥५२॥ रराज सूर्यरश्मिभिर्व्यतिषिक्ता महानदी । स्फाटिकेव शुभा सैषा काञ्चनैर्धातुभिर्वृता ॥५३॥ आदित्येन समादत्ता रश्मितेजोभिसंभवैः ॥ मण्डलान्तर्गता देवी चक्षुषा नोपलभ्यते ॥ ५४ ॥ रश्मिभिः पुनरुत्तीर्णा ततो वेगेन धावति । आकाशगङ्गा सा वृत्ता विपुलैरम्बुविग्रहैः ॥५५॥ शीतच्छायैश्च तरुभिर्लताभिश्च सुगन्धिभिः । पद्मखण्डैश्च विविधैः शुशुभे दिव्यगन्धिभिः ॥ ५६ ॥ काञ्चनापीडजघना स्फाटिकान्तरमेखला । पद्मरेणुसिता पीना चक्रवाकावतंसिका ॥५७॥ नीलगर्भसुकेशान्ता पुष्पसञ्चयसंकुला । शोभते

सूर्यभावको प्राप्त होजाती है, उसका दृष्टान्त इस प्रकार है कि-] प्रलय कालमें विष्णुके तेजसे जलवसना समला पृथ्वीको अपने वशमें की हुईसी जिस प्रकार पृथक् नहीं देखते ५२ वह महानदी सूर्यकी किरणोंसे मिल कर कांचनमयी धातुओंसे मिली हुई स्फटिककी वस्तुकी समान शोभा पाने लगती है (तात्पर्य यह है, कि-पृथ्वी सूर्यकी रश्मियोंसे मिलकर महानदी रूपमें परिणत होजाती है) ॥ ५३ ॥ किरणोंके तेजसे सूर्यके द्वारा ग्रहण की हुई मण्डलमें पहुँची हुई पृथिवी देवी नेत्रोंसे नहीं दीखती ५४ रश्मियोंसे उत्तीर्ण होनेके बाद वह आकाशगंगा बड़े भारी जलसमूहसे घिर वेगसे दौड़ती है [तात्पर्य यह है, कि-वह सूर्यकी किरणोंके मार्गसे उत्तीर्ण होकर आकाशमें जलरूपसे दौड़ती है] ॥ ५५ ॥ उस समय वह शीतल छाया वाले वृक्षोंसे, सुगंधित लताओंसे और दिव्यगंध वाले पद्मखण्डोंसे सुशोभित होने लगती है ॥५६॥ उस समय वह काञ्चनापीडजघना होजाती है, स्फटिककी मेखला वाली होजाती है, कमलकी रेणुसे श्वेत और पीली होजाती है और चक्रवाकरूपी अवतंसोंको धारण कर लेती है ५७ नीलकमलरूपी जूडा बाँध लेती है और पुष्पोंके संचयसे आकुल

विपसर्पन्ती प्रमदेव विभूषिता ॥ ५८ ॥ सैषा गङ्गा फलं लेभे पुष्करेण समाहिता। सुतपा चन्द्रविहिता लोकानां धारणे रता ५६ सरस्वतीस्वरैर्व्यक्तैरधीतेब्रह्मवादिनी । पृष्ठात् प्रयाता शैलेन्द्रं मन्दरे मन्दगामिनी ॥६०॥ ऋग्यजुःसामाथर्वांश्चतुरो वेदान् पादैश्चतुर्भि-

होजाती है और बहती हुई इस प्रकार प्रतीत होती है, जिस प्रकार विभूषित प्रमदा जारही हो ॥५८॥ वह लोकोंको धारण करने वाली पृथ्वी शोभन तप करके पहिले चन्द्ररूपसे निष्पन्न होगई थी, फिर गंगात्वको प्राप्त होगई थी, इस प्रकार (पुष्कर) परमात्माके साथ एक होनेसे उसने सार्वात्म्य और पावनत्व रूप तपका फल पाया है ॥ ५६ ॥ [अब इस बातको दिखाते हैं, कि-यह सार्वात्म्य होनेसे वाग्देवतादि भावको प्राप्त होगई है] वह लोकधात्री गंगात्वको प्राप्त होकर पुष्करके साथ सख्यत्वकाल में सरस्वती होकर अकार उकार मकार आदि व्यक्त स्वरोंसे ब्रह्मवदनशीला होकर (ब्रह्म विराट सूत्र ईश रूपको) प्राप्त हो जाती है, वह सरस्वती पहिले पृष्ठसे मन्दरमें चल कर भ्रूघ्राण-मध्यस्थ कारण ब्रह्मको प्राप्त होकर फिर मेरुपृष्ठ नाम वाले सर्वेन्द्रियदेवताओंके आवाससस्थलको पाकर मन्दर नाम वाले अर्वाचीन स्थूलप्रपञ्च-वैखरीभावको प्राप्त होजाती है। मन्त्रशास्त्र के योगपटलमें भी कहा है, कि-"हेमरूपो भ्रुवोर्मध्ये मेरुस्तिष्ठति पर्वतः। तस्याभितो मही पार्श्वे पञ्चाशच्छतयोजना। लवणेक्षु-सुरासर्पिं दधिक्षीरजलात्मभिः॥ सिंधुभिः सप्तभिर्द्वीपैस्तत्संख्यैर्द्वि गुणोत्तरैः। मन्दरः पारियात्रश्च ॥६०॥ वह अकार उकार मकार अर्धमात्रा नाम वाले चारों वेदोंको कि-जो प्रत्येक चारों पादों से घिरे हुए हैं अत एव ऋक्मय यजुर्वेद और सामवेदसे ग्रथित (स्वरस्वतीरूपको प्राप्त होजाती है) चौथा सबमें पुरा हुआ है. अतः उसकी अनुक्ति है [तात्पर्य यह है, कि-अकाराद्यर्थी विश्व

राख्तान् । यजुर्भिः सामभिश्चैव ग्रथिताञ्छिन्दसयां तथा ॥ ६१ ॥
ऋषिभिर्ज्वलनप्रख्यैस्तपसा दग्धकिल्बिषैः । सुपार्श्वस्य गिरेः
पादे परिदायैः सुपारणैः ॥ ६२ ॥ निःस्वप्नं सर्वभूतानि निय-
मैश्च न शृण्वते । मन्दराग्रे विसर्पन्तं जयत्कृच्छ्रपतीन्द्रियम् ॥६३॥
विरामनियमे प्राप्ते तूष्णीं भूता बभूव ह । न वाचमीरयेद्देवी निय-

---

तैजस प्राज्ञ तुरीय हैं,प्रत्येक विश्वादि चतुष्टयात्मक हैं । यह बातें तापनीयमें प्रसिद्ध है । उनमेंसे पहिला विश्वविश्व है और अंतिम तुरीय तुरीय है, इसको लेकर तहाँ ही कहा है, कि–ईश्वरग्रास तुरीय तुरीय है, इत्यादि बातोंका विस्तारभयसे यहाँ वर्णन नहीं किया जाता] ॥ ६१ ॥ तपसे अपने पापोंको भस्म करने वाले अग्निकी समान प्रतापवान् ऋषि सद्गुरुके चरणोंके समीप पीठ करके इस ब्रह्मवाणीका अध्ययन करते हैं [अथवा स्थूलशरीर के एक देश भ्रूप्राणमध्यमें उसका अध्ययन करते हैं] ॥ ६२ ॥ [अब इस बातका वर्णन करते हैं, कि–यह सरस्वतीका तत्त्व स्पष्टतर होने पर भी दुर्ग्राह्य है] सब प्राणी इस ब्रह्म नाम वाले निःस्वन नादको नियमोंसे भी नहीं सुन पाते, क्योंकि–यह अती-न्द्रिय है, अब इसकी सत्तामें प्रमाण देते हैं, कि-वैखर शब्द स्थूल-प्रपञ्चके आगे अतिस्थूल होनेसे सारे जगत्में विचरण करने पर भी सूक्ष्म होनेसे दुर्ग्राह्य रहता है [श्रुतिमें भी लिखा है, कि-चत्वारि वाक्परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणाये मनीषिणः । गुहात्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरियं वाचो मनुष्या वदन्ति] ६३ विरामनियमके प्राप्त होने पर सत्यवादिनी सरस्वती चुप होजाती हैं और वाणीका उच्चारण नहीं करती है [विरमत्यस्मिन्निति विरामः, जिसमें विरामको प्राप्त होजाते हैं, उसका भी नियमसे निग्रह करने पर तुरीय नाम वाले सोलहवेंके प्राप्त होने पर वाणी चुप होजाती है । श्रुतिमें भी लिखा है,कि-"यतो वाचो निवर्तंते"

मात् सत्यवादिनी ॥ ६४ ॥ अथ भूतानि सर्वाणि तूष्णीं भूतानि सर्वशः । न शेकुरभिधानार्थं व्याहर्तुं वदनैर्बलात् ॥६५॥ विभज्य योगं मनसा सर्वभूतेष्वनुग्रहम् । सरस्वतीतीरयुता व्याजहार महास्वनम् ॥६६॥ सरस्वत्या समायुक्तां शिक्षां गृह्णन्ति देहिनः । तस्मिन्नेवाथ ते सर्वे गानं गायन्ति शिक्षया ॥ ६७ ॥ आदित्या वसवो रुद्रा मरुतश्चाश्विभिः सह । जटिला चीरवसना मुञ्जमेखला-

---

इस प्रकार वह वाणीका अविषय है । इसका कारण यह है, कि-जो सत्यवादिनी ब्रह्मप्रतिपादिका है, वह नियमसे ही वाणीका उच्चारण नहीं करसकती "वाचोदितं तदनृतमिति स्मृतेः" तँ् हावचनेनैव प्रोवाचेति तँ् ह द्वितीये तृतीये वा वचनेन प्रोवाच ब्रूम खलु त्वं तु न विजानास्युपशान्तोऽयमात्मेति श्रुतेश्च"] ६४ (सुषुप्ति, समाधि अथवा तुर्यप्राप्तिके) अनन्तर सब भूत चुप होगए और अपने मुखसे कुछ कह न सके ॥ ६५ ॥ [अब अनिर्वचनीयकी प्रतिपत्ति किस प्रकार होती है, इस शंकाका समाधान करते हैं, कि-] ऐकात्म्य योगको मनकी उपाधिके साथ विभक्त करके अर्थात् बिम्ब प्रतिबिम्ब भेदसे दो प्रकारका करके अज्ञान ग्रस्त सब प्राणियों पर तत्त्वकथनपूर्वक अनुग्रह करनेके लिए तटस्थलक्षणासे "शाखाचन्द्रन्यायसे" अनेक प्रकारके प्रमाणोंसे गुम्फित शुद्धब्रह्मको प्रकट करती है । तात्पर्य यह है, कि-साक्षात् कहनेके लिए असमर्थ भी वाणी लक्षणासे ब्रह्मका प्रतिपादन करती है ॥ ६६ ॥ इस प्रकार प्राणी सरस्वतीयुक्त (वाणीमयी) शिक्षाको ग्रहण करते हैं, और उस शिक्षासे वे उस शब्दगम्य-ईश्वरत्वपद-में स्थित होकर आनन्दमय आत्माका उपक्रम करके अहमन्नमहमन्नं इत्यादि गान करते हैं ६७ [अब जो २ इसका गान करते हैं, उनका वर्णन करते हैं] मुंजमेखलाधारी, चीर वस्त्रधारी जटाधारी, आदित्य, वसु, रुद्र मरुत् और

धारिणः ॥६८॥ गन्धर्वाः किन्नराश्चैव सनागाः सह चांभसः । तपश्चरन्ति संहिताः पुष्करेषु मनीषिणः ॥ ६९ ॥ अपि कीट-पतङ्गैश्च सह सर्वैः सरीसृपैः । शोषयन्ति शरीराणि तपसोग्रेण यन्ततः ॥ ७० ॥ विष्णुर्विष्णुत्वमापन्नो देहान्तरविसृष्टवान् । संरक्षति महायोगी सर्वांस्तान् सहचारिणः ॥७१॥ पुष्करे रमते विष्णुर्विष्णुरेव द्विधा कृतः । दीप्यमानाः स्वतेजोभिर्विधूम इव

अश्विनीकुमार (इस गानको गाते हैं,६८गंधर्व किन्नर नाग और वरुण ये विद्वान् पुरुष हार्दाकाशमें तप करते (हुए उसका गान करते) हैं ॥ ६९ ॥ और ये कीट पतंग और सर्पोंके साथ उग्र तप करके अपने शरीरको सुखाते हैं ॥ ७० ॥ [इस प्रकार शरीररूपा पृथ्वी योगबलसे जलादिभावमें परिणत होकर शब्द आदिके आकारमें लोकहितके लिए प्रकट होकर सब लोकका हित करने वाली होजाती है, यह बात कहदी । तथा शरीराभिमानी भी शब्दका ही पर नामवाला चरमरूप है,यह बात भी कह दी।इस प्रकार वाच्य वाचकके अभेदसे सर्वाद्वैतको सिद्ध करनेके लिए व्यवहार औपाधिक है इसका भी निर्णय कर दिया । अब यहाँ पर यह शंका होती है, कि—जीवसे अतिरिक्त और ईश्वर नहीं है। उसका निषेध करनेके लिए कहते हैं, कि—ईशसे अतिरिक्त जीव नहीं हैं] विष्णु (परमात्मा) विष्णुत्व (व्यापकत्व) को प्राप्त होने पर भी (चतुर्भुजरूप दूसरे शरीरको रच लेते हैं,तात्पर्य यह है, कि—वह व्यापकरूपसे पालन करनेमें असमर्थ होनेके कारण चतुर्भुज विग्रह वाले, गज आदिके गोप्ता और सब भूतों के नियन्ता देहका आश्रय लेलेते हैं । वह महायोगी उस शरीर के द्वारा अपने सहचारी (आदित्य आदि) की रक्षा करते हैं [रज्जुवत् अधिष्ठानाधिकमध्यस्तं नास्ति अध्यस्तात्तु जीवा-द्यधिष्ठानभूत ईश्वरोऽस्तीति भावः] ॥ ७१ ॥ [अब इसी बात

पावकः ॥७२॥ सोऽग्निर्मनःसमुद्भूतः पृथिवीं तापयन्निव । प्रधावति समं तेन मण्डलं दशयोजनम् ॥७३॥ विराजार्चिर्भिर्दीप्तैः पृथुतश्चावलम्बिभिः । विशीर्णपार्थिवभवैर्मयूखैरिव दीपितः ७४ तस्याग्नेर्विस्फुलिंगानां न शेकुर्लंघनं रताः । विप्रकीर्णस्य वसुधामर्यादामिव भास्करम् ॥७५॥ सोग्निर्दीप्य विभज्यांशून् विधूम

को कहते हैं, कि-] पुष्करमें अर्थात् सर्वकार्यात्मक जगत्में विष्णु दो शरीर वाले बन कर अर्थात् नर नारायण आदि रूप वाले बन कर अपने तेजसे निर्धूप अग्निकी समान प्रदीप्त होकर लोकशिक्षाके लिए तप आदि करते हैं ॥ ७२ ॥ वह मनसे उत्पन्न हुआ अग्नि पृथ्वीको तपाता हुआ दश योजन वाले मण्डलको तपाता हुआ दौड़ता है [नीलकण्ठ-अब लीलाका वर्णन करते हैं, कि वह व्यापक मनः कल्पित गार्हपत्यादिरूप बन कर पृथ्वी (शरीर) के अभिमानीको सुवर्णकी समान निर्दोष करता हुआ अग्निहोत्र आदिका फल देनेके लिए उनके साथ पृथिवीकी समान दशमण्डल योजनमें दौड़ता है तात्पर्य यह है, कि-"प्राज्ञके साथ असंपरिष्वक्त उत्सर्ग करता हुआ जाता है" इस प्रकार जीवके लोकान्तरगमनमें तत्साहित्यकी श्रुतिके कारण, वह स्वयमेव कर्म तदंगरूप होकर जीवोंको उस लोककी गति देते हैं ॥ ७३ ॥ देहात्मवादीकी उत्पत्तिको नष्ट करने वाली चारों ओर फैली हुई किरणोंसे दीप्त वह अग्नि विराजता रहता है ॥ ७४ ॥ विषयासक्तपुरुष विष्णुरूप अग्निके ब्रह्मादिरूप विस्फुलिंगोंका इस प्रकार अतिक्रमण नहीं कर सकते जिस प्रकार पृथिवीके परिच्छेत्ता सूर्यका लोक उल्लंघन नहीं कर सकते, तात्पर्य यह है, कि-भूचर पृथिवीके परिच्छेत्ताका उल्लंघन नहीं कर सकते ॥७५॥ निर्धूप पावककी समान वह अग्नि रश्मियोंको द्रव्य देवता आदि अनेक रूपका करके स्थित होजाता है तब अग्निकी समान ऋत्विज

इव पावकः । ऋत्विग्भिर्ज्वलनमख्यैर्विक्रीयत इवाध्वरे ॥ ७६ ॥
सोग्निर्धूमागतस्तत्र तिष्ठते विपुलं तदा । यावद्विष्णुः क्रमप्राप्तो
नियमस्य समापनात् ॥ ७७ ॥ रक्षां कृत्वा स्थितं विद्याद्विष्णु-
र्विष्णुपराक्रमः । भूत्वा शतशरीरो वै नागो बालाहको भवत् ७८
तमग्निमात्मसंसृष्टं लेलिहानं महामतिम् । प्रतिप्रवृत्तं तेजोभि-
र्भूतानां हितकाम्यया ॥ ७९ ॥ वारिणा सुखशीतेन प्राणिनां
प्राणवर्धनः । न्यषिंचद्दहनं तत्र नागो बालाहकस्तदा ॥ ८० ॥
ततः सिद्धगणैर्जुष्टः पुष्करे तप्यते तपः । संहृत्य मनसात्मानं

उस सोमरूपको अध्वरमें खरीदते हैं ॥ ७६ ॥ वह अग्नि यज्ञमें द्रव्य देवतादिरूपसे प्रकाशित रहता है जब तक यज्ञ समाप्त होता है तब तक वह धूमागत निर्धूम अग्नि तहाँ रहता है । तात्पर्य यह है, कि-पृथिवी अन्तरिक्ष और सब लोकोंमें व्याप्त विष्णु ही लोकका हित करनेके लिए ऋतुरूप और फलरूप हैं ॥ ७७ ॥ रक्षा करके स्थित हुए विष्णुको जाने, वैसे तो उनको कोई नहीं जान सकता, क्योंकि-वह व्यापक हैं वही विष्णु (योगबलसे) सहस्रों शरीर धारण करके (उनमेंसे एक शरीरसे) बालाहक नाग होगए हैं अर्थात् वह मेघोंमें स्थित होकर मेघोंके भेजा ऐरावत होजाते हैं [तात्पर्य यह है, कि-यज्ञफल वृष्टिरूप भी यही हैं] ॥ ७८ ॥ वह विष्णु अर्थात् जठराग्नि आत्मसृष्ट (देहके भीतर स्थित) है (स्मृतिमें भी लिखा है; कि-"अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमास्थितः") लपलपाती रहती है, महामति है अर्थात् दिव्य ज्ञानको देने वाली है उस अग्निको प्राणियोंके प्राणोंको बढ़ाने वाले बालाहक नागने प्राणियोंके हितकी इच्छासे सुखदायक शीतल जलसे शान्त (तृप्त) करदिया [तात्पर्य यह है, कि-अन्न आदिके द्वारा फलको भोगने वाला जीव भी यही है] ॥ ७९ ॥ ८० ॥ तब वह सिद्धसेवित महायोगी वैराग्यवान्

महायोगी महाबलः ॥ ८१ ॥ पादगात्राणि संहृत्य मनो मूर्ध्नि विधारयन् । अचलं स्थानमासाद्य तूष्णीं भूतो बभूव ह ॥८२॥ एष धर्मो हि धर्माणां नोपधानविकल्पितः । हितः सर्वेषु भूतेषु इह चामुत्र चोभयोः॥८३॥ अथ दैत्या हतास्तत्र समागम्योद्यतायुधाः । मायाप्रासैर्बहुविधैर्नगरैरभिसंवृताः ॥८४॥ अग्निं दैत्याः पर्वताग्रैरभिघ्नन्ति परन्तप । ज्वलन्तं ज्वलनप्रख्या महाकाया महाबलाः ॥ ८५ ॥ मेघीभूताश्च मायाभिर्वर्षन्ति बलदर्पिताः ।

भोक्तापनके कारण कर्तृत्वका अधिकारी होता हुआ पुष्करमें अर्थात् समष्टिब्रह्ममें व्यष्ट्यभिमानी आत्माका लय करता हुआ तप करता है ॥ ८१ ॥ वह पाद आदि अंगोंका (पूर्वोक्तरीतिसे नीचे २ अंगोंका ऊँचे २ अंगोंमें) लय करता हुआ मनको सहस्रारमें लगा (परमशिव नाम वाले) अचल स्थानको पाकर चुप होजाता है ॥ ८२ ॥ यह धर्म सब धर्मोंमें उत्तम है, उपधानविकल्पित नहीं है अर्थात् निरुपाधि स्वभावसिद्ध है और इस लोकमें तथा परलोकमें सब प्राणियोंका हित करने वाला है ८३ इसी समय जिन दैत्योंको पहिले भगा दिया था, वे ही दैत्य फिर मायासे बनाए हुए बहुतसे नगरोंमें विराजमान हो हाथमें आयुध उठा कर वहाँ आगए [अब इस बातका वर्णन करते हैं कि— योगारम्भ करनेसे पहिले जिन काम आदि दैत्योंका शमन कर लिया था, वेही दैत्य समाधिकालमें फिर प्रकट होजाते हैं, और उनका शमन करना चाहिये] ॥ ८४ ॥ हे परन्तप ! उस समय अग्निकी समान कान्ति वाले महाशरीरधारी, महाबलवान् दैत्य उस प्रदीप्त अग्निको पर्वतके अग्रभागोंसे शान्त करने लगे [तात्पर्य यह है, कि—जाज्वल्यमान चिन्मात्र योगीको चिन्मात्र (मानसिक किन्तु भौतिक नहीं) दैत्य दिव्यस्त्री आदिके शरीरोंसे मोहमें डालने लगते हैं ॥ ८५ ॥ उस समय वे बलदर्पित दैत्य महाबल

तस्मिन्नेवाभिसंघाते ससंघातं महाबलम् ॥ ८६ ॥ ते शैलास्त्व-
र्चिषा दग्धाः शतशोऽथ सहस्रशः । युगान्ते प्रभुरादित्यः प्रजा
इव दिधक्षति ॥ ८७ ॥ न शेकुरग्निं दैत्यास्ते मायाभिस्त्वमुष्य-
तम् । आदित्य इव दीप्यन्ते नभः सूर्योदये यथा ॥८८॥ विहतै-
रुद्यमैः सर्वैः दैत्या भग्नपराक्रमाः । गन्धमादनमासाद्य निषण्णा
नगमूर्धनि ॥ ८९ ॥ स चाग्निर्वैष्णवैर्लोकैर्विद्युद्भिः सह सङ्गतः ।
अन्तरिक्षचरान् दैत्यान्निर्दहन् विचरन् दिवि ॥ ९० ॥ नागो
वालाहकश्चैव मेघसंघातमागतः । मुमोच सलिलं भूमौ पर्जन्य

अग्नि (योगी) को मायावश मेघ बन कर नष्ट करने लगते हैं ॥ ८६ ॥ उस समय वे सैंकड़ों और सहस्रों पर्वत उस अग्नि से भस्म होजाते हैं । जिस प्रकार प्रलयकालमें प्रभुआदित्य प्रजा को भस्म करने लगते हैं, इसी प्रकार वह अग्नि अर्थात् योगी उनको भस्म कर डालता है ॥८७॥ जिस समय वे दैत्य मायाओं से उस अग्नि (योगी) को शान्त नहीं कर सके तब वह योगी सूर्योदय होने पर दमकते हुए आकाशकी समान दमकने लगते हैं ॥ ८८ ॥ जब दैत्योंके सब पराक्रम निष्फल होगए, तब वे भग्नपराक्रम दैत्य गन्धमादनपर्वत पर जा उसके शिखर पर बैठ गए ॥ ८९ ॥ वह अग्नि भी वैष्णव पुरुषोंको और बिजलियोंको साथमें लेकर अन्तरिक्षचारी दैत्योंको भस्मसा करता हुआ स्वर्ग में विचरण करने लगा ॥ ९० ॥ उस समय मेघके समूहको प्राप्त हुआ मेघमें स्थित ऐरावत नाग बरसीले मेघकी समान पृथ्वीमें जल बरसाने लगा [तात्पर्य यह है, कि इस प्रकार योगोपसर्गों को जीत कर स्थित हुए योगीमें पूर्वोक्त यज्ञफलादिरूप धर्म वृष्टि आदिके द्वारा प्रवेश करता है] ॥ ९१ ॥ वृष्टिके अधिष्ठात्री देवता नागने ब्राह्मणोंके मुखमेंसे निकलते हुए वचनोंसे प्रेरित हो कर निःसन्तान नैष्ठिक ब्राह्मणका सत्कार करनेके लिये उस

इव वृष्टिमान् ॥ ६१ ॥ मन्त्रैः संचोदितो नागो द्विजेभ्यो वदनो-
द्गतैः । मुमोच तोयसंघातं मानयन् विप्रजं जनम् ॥ ६२ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि
अष्टाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २८ ॥

जनमेजय उवाच । संयुज्य तपसा देवाः किमकुर्वस्ततः परम् ।
न हि तद्विद्यते लोके तपसा यन्न लभ्यते ॥ १ ॥ वैशम्पायन
उवाच । अथ दीक्षां समास्थाय सर्वे विष्णुमया गणाः । पुष्करा-
दग्निमुद्धृत्य प्रणीय च यथाविधि ॥ २ ॥ जुहुवुर्मन्त्रविधिना

समय इस प्रकार जल बरसाया था ॥ ९२ ॥ अट्ठाईसवाँ
अध्याय समाप्त ॥ २८ ॥

[योगविघ्नविघातार्थ कर्माण्येवाचरेदिति। त्रयोविंशे पुरा कल्प-
मुखेनैतत् प्रसाध्यते—अब इस तेरहवें पुष्करप्रादुर्भावाध्यायमें
प्राचीनकल्प मुखसे इस बातका वर्णन किया जायगा कि—योग
के विघ्नोंका नाश करनेके लिए तपका ही आचरण करना चाहिये]
जनमेजयने कहा, कि—देवताओंने तपसे संयुक्त होनेके अनन्तर
क्या किया था, संसारमें ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जो तपसे न
मिल सके [आध्यात्मिक अर्थ—पहिले अध्यायमें प्राप्य वस्तुको
पालनेसे योगीका तूष्णींभाव कहा, इस दशामें जनमेजयको यह
विचार उठा, कि—प्रयोजनके अभाववश योगी सर्वप्रवृत्तिशून्य
होजाता होगा? अतएव उसने बूझा है, कि—तपसे संयुक्त देवताओं
ने फिर क्या किया] ॥ १ ॥ वैशम्पायनजीने कहा, कि—तद-
नन्तर सब विष्णुमय गणोंने दीक्षा धारण कर पुष्करसे अग्नि
को उठा कर उसका शास्त्रानुसार चयन किया, फिर वे मंत्रचोदित
ब्राह्मण वेदविधिके अनुसार मंत्रोंसे पवित्रकी हुई हविका मंत्रोंके
द्वारा शास्त्रोक्त रीतिसे होम करनेलगे [आध्यात्मिक अर्थ-प्रारब्ध-
कर्मवेगसे तूष्णींभाव होने पर भी योगी पूर्ववासनाकर्म यज्ञ आदि

ब्राह्मणा मन्त्रचोदिताः । हविषा मन्त्रपूतेन यथा वै विधिरेव च ३
स चाग्निर्विधिवत्तत्र वर्धते ब्रह्मतेजसा । तजोभिर्बहुलीभूतः प्रभुः
पुरुषविग्रहः ॥ ४ ॥ ब्रह्मदण्ड इति ख्यातो वपुषा निर्दहन्निव ।
दिव्यरूपप्रहरणो ह्यसिचर्मधनुर्धरः॥५॥सगदो लांगली चक्री शरी
चर्मी परश्वधी । शूली वज्री खङ्गपाणिः शक्तिमान् वरकार्मुकः ६
विष्णुश्चक्रधरः खङ्गी मुशली लांगलायुधः । नरो लांगलमालंब्य
मुसलं च महाबलः ॥७॥ वज्रमिन्द्रस्तपोयोगाच्छतपर्वाणमाक्षिपत्।
रुद्रः शूलं पिनाकं च मनसाधार यद्भुवि ॥ ८ ॥ मृत्युर्दण्डपाश-
मापः कालः शक्तिमगृह्णत । जग्राह परशुं त्वष्टा कुबेरश्च परश्व-

को ही करता है, इसको सरूपार्थवाद मुखसे दिखाते हुए वैशं-पायनजी ने कहा, कि-अपरिच्छेदलक्षणादीक्षाको ग्रहण करके ब्रह्ममय हुए योगी ब्रह्मार्पण कर्म करने लगे] ॥ २ ॥ ३ ॥ उस समय जो लपटोंसे बहुत होजाता है वह पुरुष शरीरधारी अग्नि ब्रह्मतेजसे बढ़ने लगा ॥ ४ ॥ वह (पुरुष शरीरधारी) अग्नि ब्रह्मदण्ड नामसे प्रसिद्ध है और उसका शरीर दमकता रहता है, वह दिव्यरूप वाले आयुध तलवार ढाल और धनुषको धारण किये रहता है ॥ ५ ॥ वह गदा लांगल चक्र शर ढाल, परश्वध, शूल, और वज्र धारण करने वाले, हाथमें खङ्ग धारण करने वाले, खड्ग मूसल और लांगलके आयुधोंको धारण करने वाले (षोडश भुजा वाले) विष्णुरूपमें (व्यापकरूपमें) परिणत होगया, उस समय उन महाबलीने हाथमें नरलांगल और मूसल उठा लिया ॥ ६ ॥ ७ ॥ [अब इस बातको दिखाते हैं, कि-इन्द्र आदिको योगके द्वारा मिले हुए वज्र आदि ही इन्द्र आदिके उत्कर्षके कारण हैं] इन्द्रने तपोयोगसे वज्रको पाकर उसका शतपर्वाके ऊपर प्रहार किया था, और रुद्रने पृथ्वीमें अपने मन से शूल और पिनाकको धारण कर लिया है ॥ ८ ॥ मृत्युने

थम् ॥ ९ ॥ निर्विकारैः सगायुक्ताः शतशोऽथ सहस्रशः । विश्व-
कर्मा च त्वष्टा च चक्राते ह्यायुधं बहु ॥१०॥ इन्द्रायाग्निरथं प्रादा-
त्सूर्याय च प्रतापिने परमात्मा ददौ कृष्णो रुद्राय च महात्मने ११
छंदोभिरेव त्वष्टा च स चकाराथ वाहिनीम् विश्वकर्मा विमानानि
चकार बहुभिः क्रमैः ॥ १२ ॥ शरीरांशं समुद्धृत्य विष्णुः सत्य-
पराक्रमः । पुष्करात् पर्वणि घनान् पृतनार्थं प्रवर्तयन् ॥ १३ ॥
द्यां चैव सर्वऋक्षाणां वाचा वै समकल्पयत् । यया स पूज्यः
संग्रामे शत्रून् निर्बिभिदे रणे ॥१४॥ स तं दण्डं समुचितं निर्वि-
कारं समाहितम् । ब्रह्मा जग्राह विधिना अन्तर्धानगतः प्रभुः१५

(योगके प्रभावसे) दण्ड पाया है, वरुणने पाश और कालने शक्तिको ग्रहण किया है कुबेरने परश्वध और त्वष्टाने फरसा पाया है ॥ ९ ॥ इस प्रकार सैंकड़ों और सहस्रों पुरुष निर्विकार योगोंसे सम्पन्न हो सिद्धिको प्राप्त हुए हैं, उस समय विश्वकर्मा और त्वष्टाने भी बहुतसे आयुध बनाए ॥१०॥ परमात्मा विष्णु ने इन्द्रको प्रतापी सूर्यको और महात्मा रुद्रको अग्निरथ दिया (यह सब योगके प्रभावसे हुआ है) ॥११॥ उस समय त्वष्टाने वेदमें प्रदर्शित रीतिसे रथसेनाका निर्माण किया और विश्वकर्मा ने विमानोंको रचा ॥ १२ ॥ तथा सत्यपराक्रमी विष्णुने उस समय अव्यय पुष्करसे शरीरांशका उद्धार करके सेनाके लिये रचा ॥ १३ ॥ और उन्होंने वेदवाणीके अनुसार सब नक्षत्र और सूर्यकी स्थितिके लिए स्वर्गकी कल्पना की, उस स्वर्गसे इन्द्र पूजनीय गिना जाता है, और वहाँसे ही इन्द्र संग्राममें शत्रुओं को छिन्न भिन्न करता रहता है ॥ १४ ॥ उन प्रसिद्ध ब्रह्मारूपी विष्णुने इन्द्रके द्वारा असुरोंको लक्ष्य करके गिराये हुए वज्रको अन्तर्धान रह कर निर्विकाररूपसे ग्रहण कर लिया ॥ १५ ॥

स्वैः प्रभावैश्च विधिना सोऽस्त्रग्रामं चतुर्विधम् । ऐन्द्रमाग्नेय-वायव्ये रौद्रं रौद्रेण वर्चसा ॥ १६ ॥ एभिर्विकारैः संयुक्ता दितेः पुत्रा महाबलाः । तपसा शिक्षया चैव स्वास्त्रैः प्रहरणैरपि ॥ १७ ॥ बलेन चतुरङ्गेण वीर्येण सुसमाहिताः अप्रधृष्या रणे सर्वे समपद्यन्त वै तदा ॥ १८ ॥ ते विहाय गुहामध्ये सभाण्डोपस्करे रथे । मन्दरस्य गिरेः पादे विचेरुर्वसुधातले ।१९। चतुरङ्गबलं सर्वं संहृत्य तमसः प्रभुः । विष्णुरेवः महायोगः चचार

उन्होंने अपने प्रभावसे भयंकरतेजको धारण करके ऐन्द्र आग्नेय और वायव्य तथा रौद्र इन चार प्रकारके अस्त्रोंके समूहको ग्रहण कर लिया ॥ १६ ॥ दितिके महाबली पुत्र भी तप और शिक्षा तथा अस्त्रोंसे संयुक्त थे, परन्तु वे काम आदि विकारोंसे भी युक्त थे ॥ १७ ॥ तथा वे चतुरंगिणी सेनासे भी संयुक्त थे, इस लिये वे सब रणमें अप्रधृष्य होगए थे ॥ १८ ॥ वे दैत्य गुहाओं को त्याग कर सामानसे भरे हुए रथोंमें बैठ कर मन्दराचलकी तलैटीकी पृथ्वीमें घूमने लगे [आध्यात्मिक अर्थ-वे दितिके पुत्र सूत्रात्मात्मक गुह्य रूपोंको त्यागकर भोग्य वस्तुओंमें लिप्त होगए अत एव स्थूलकार्यके एक देशमें विचरण करने लगे, तात्पर्य यह है, कि-उनको पृथ्वीलोकसे ऊपरके लोकोंकी गति नहीं मिली]१९ उस समय प्रभु महायोगी विष्णुने तमकी सारी चतुरंगिणी सेना का संहार कर डाला और पृथ्वीमें विचरण करने लगे[आध्यात्मिक अर्थ-तामसिक (आसुरी) कार्यकी अपेक्षा विष्णु सत्त्व) ही बलवान् है, तात्पर्य यह है, कि-आसुर कर्म नाशवान् होता है]॥ २० ॥ तदनन्तर उन असुरोंने धर्मचारी ब्राह्मण और देवताओंके साथ रह कर दूसरे प्रकारके तपका आश्रय लेलिया [वह भी तमका कार्य होनेसे नश्वर है, अत एव मुमुक्षुओंको

वसुधातले ॥ २० ॥ भूयोन्यत्तम आसेदुश्चरन्तो मामणैः सह।
तैश्च सर्वैः सुरगणैर्भर्मचीरनिवासिभिः ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि
एकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ २९ ॥

जनमेजय उवाच । ब्रह्मन् खिले वर्तमाने निर्मयादे महाग्रहे । अविनाशे च भूतानां कथमासन् प्रजास्तदा ॥ १ ॥ वैशम्पायन उवाच । अभ्यषिंचत् पृथुं वैन्यं पुरा राज्ये प्रजापतिः । राज्याय

सात्त्विक धर्मका ही आश्रय लेना चाहिये] ॥ २१ ॥ उन्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २९ ॥

[नीलकण्ठ-मायुर्योगफलं मोक्षं सात्त्विका न तु तामसाः । तुल्याश्रमा अपीत्येतच्चतुर्विंशेऽभिधीयते ॥ मनः सिंधुर्मतिः शैलः शमकामौ सुरासुरौ । अभ्यासो मन्थनं मुक्तिः सुधाद्या-श्च रूपकैः ॥ " अब इस चौबीसवें पुष्करप्रादुर्भावाध्यायमें इस बातका वर्णन किया जायगा, कि-आश्रमधर्मोंको एकसा पालने पर भी सात्त्विक पुरुषको ही मोक्ष मिल सकती है, तामसिक पुरुषोंको मोक्ष नहीं मिलती । इस अध्यायमें मन मति शम काम अभ्यास और मुक्तिको सिंधु पर्वत सुर असुर मंथन और सुधा नामसे वर्णन किया जायगा] जनमेजयने कहा, कि हे ब्रह्मन् ! जिस समय प्रलय नहीं होता है और संसारके एक देशमें गड़-बड़ी मच जाती है, उस समय प्रजा किस प्रकार रहती है [आध्यात्मिक अर्थ-इस प्रकार तामस जनोंकी वारम्वार संसार-प्राप्तिके वर्णनको सुन कर दयाके कारण उनकी गतिको जानने की इच्छासे जनमेजयने कहा, कि-हे ब्रह्मन् ! महान् अज्ञान लोहे की कीलकी समान हैं, जब हृदयमें काँटासा बन कर घुस जाता है, उस समय मोक्ष न होने पर दुःखपरम्परामें मग्न हुई प्रजाकी क्या दशा होती है]॥१॥ वैशम्पायनजीने कहा, कि-प्रजाधर्मपरा-

ऋषिभिः सार्धं प्रजाधर्मपरायणः ॥ २ ॥ एष नो परमो राजा सानुरागादजायत । त्रेतायां सम्प्रवृत्तायामन्योन्यमनुजल्पिरे ॥३॥ एष नो वृत्तिदाता च विगाणां च प्रवर्तिता । निर्माता सर्वभूतानां सत्यप्रासेन कर्मणा ॥४॥ एतस्मिन्नन्तरं देवा गन्धमादनसानुषु । बहुभिर्नियमैः श्रान्ता निषण्णा गिरिसानुषु ॥ ५ ॥ अथ गन्धं समासाद्य समन्ताद्देवमानवाः । माधवे समयं प्राप्ते तेन गन्धेन

यण प्रजापतिने पहिले राज्यमें पृथुका अभिषेक किया था [तात्पर्य- "राजाके द्वारा स्वधर्ममें स्थापित की हुई प्रजा क्रमसे चित्तशुद्धि को पाकर मुक्त होजाती है" इस बातको कहनेकी इच्छासे वैशंपायनजीने कहा, कि-प्रजासे धर्माचरण करानेमें ही परायण रहने वाले प्रजापतिने पृथुको राज्यमात्रमें राजकर्म करनेके लिए अभिषेक कर दिया] ॥ २ ॥ अनुरागके कारण प्रजा उसके विषयमें कहने लगीं, कि-यह हमारा श्रेष्ठ राजा है । त्रेतायुगकी प्रवृत्तिमें प्रजाएँ परस्पर बातें करने लगीं ३ यह हमें आजीविका देने वाला है और परमेश्वरने इसको अनुग्रह करके कर्मके द्वारा हम सब भूतोंके निर्माण करनेका काम देदिया है ॥ ४ ॥ [अब अमृतमंथनकी आख्यायिकाके द्वारा यह प्रकट करते हैं, कि— स्वधर्मस्थ प्रजामें भी जो पुरुष विष्णुभक्त होते हैं. वे ही मुक्त हो सकते हैं, दूसरे सैंकड़ों योगोंसे भी मुक्त नहीं होसकते] इसी समय बहुतसे नियमोंको करनेसे श्रान्त देवता गन्धमादन पर्वत के शिखरों पर आकर बैठ गए ॥ ५ ॥ कुछ समयके उपरान्त वसन्त ऋतुका समय आने पर (तहाँकी) गन्धको सूँघ कर उस गन्धसे प्रसन्न होगए [तात्पर्य यह है, कि-अनेक नियमोंका पालन करनेके उपरान्त पुरुषोंने धारणाएँ करनी आरम्भ कर दीं । उस समय वे गन्धके अर्थात् कण्ठकूपमें क्षुत्पिपासानिवृत्ति-रूप धारणाके क्षुद्र फलको देख कर ही आश्चर्यित होगए और

दर्पिताः ॥ ६ ॥ पुष्पमात्रस्य यद्वीर्यं मारुतेन विसर्पिनम् । मनो-ग्राहि सुखं सर्वं पार्थिवं गन्धमुत्तमम् ॥ ७ ॥ ते दैत्यास्तेन गंधेन किंचिद्विस्मयमागताः । प्रसन्नमनसो भूत्वा परं सौख्यमुपागताः॥८ ऊचुश्च सहिताः सर्वे तेन गन्धेन दर्पिताः । पुष्पमात्रस्य यद्वीर्यं किं तस्य फलतो भवेत् ॥ ९ ॥ अनुमानेन विज्ञेया विविधाः कर्मबुद्धयः । शुभाशुभ वाशुभोश्चैव बुद्धिप्राणेन देहिनाम् ॥ १० ॥ तस्माद्वयं पयो मध्ये औषध्यो निर्मथामहे । मन्दरेण विशालेन बलिना कामरूपिणा ॥११॥ समुद्रमभिसंरंभान् गम्भीरः सोमजं

कहने लगे, कि–] ॥६॥ वायुसे आते हुए इसके पुष्पोंकी सुगंधि कैसी अच्छी है, मनको प्रसन्न कर रही है और सब पार्थिव गन्धमें उत्तम है ॥ ७ ॥ उधर दैत्य भी उसकी गन्धसे विस्मित हो गए, उनके मन खिल गए और उन्हें परम सुख मिला, अर्थात् क्षुत्पिपासानिवृत्तिरूप बुद्धधारणाफलको देख दैत्य (कामभाव-सम्पन्न व्यक्ति) भी प्रसन्न होगए] ॥ ८ ॥ तदनन्तर सुगन्ध से मस्त हुए वे दैत्य एकत्रित होकर कहने लगे, कि–जिसके पुष्प की ऐसी शक्ति है, तो उसके फलमें न जाने कैसी अद्भुत शक्ति होगी ॥ ९ ॥ अनुमानसे नाना प्रकारके कर्मोंका तत्त्व समझमें आता है, और प्राणी विचारके द्वारा ही शुभ अशुभ कर्मोंको जान लेते हैं [तात्पर्य–दैत्य विचारने लगे, कि–विचार करने पर प्रतीत होता है, कि–कर्मबुद्धि अर्थात् धारणासे उत्पन्न हुआ ज्ञान मुक्ति देसकता है और भोग तो अशुभ परिणाम देने वाले हैं] ॥ १० ॥ इस लिये हम इच्छानुसार रूप धारण करने वाले विशाल मन्दराचल पर्वतसे जलके बीचमें औषधियोंका मथन करें [तात्पर्य–योगफल अतिश्रेष्ठ है यह अनुमानसे प्रतीत होता है, अतः हम अमृतके साधन ज्ञानका समुद्रकी समान देहके मध्यमें आश्रय लेकर औषधियोंके उत्पत्ति स्थान शरीराभिमानको त्याग

जलम् । पीत्वा च सहिताः सर्वे भविष्याः कामरूपिणः ॥ १२ ॥ विष्णुरेवाग्रणीस्तेषां भविष्यति महाबलः । दिवं च वसुधां चैव भोक्ष्यामः सह शत्रुभिः ॥ १३ ॥ समूलपत्रशाखाश्च सपुष्पाः फलशालिनः । सर्वग्रहांश्च गृह्णीमः सुधां च वसुधातले ॥१४॥ उद्धृत्य गिरिशादेभ्यो गन्धमादनसानुजान् । प्रभाष्य वचनं दैत्या

कर मंदररूप विवेकसे उस ज्ञानको साधें] ॥ ११ ॥ अब हमें उत्साहपूर्वक समुद्रके सोमज जलका मथन करना चाहियें, जिस से हम उसको पीकर इच्छानुसार रूप धारण करने वाले होजावें, यह विचार कर वे सब समुद्रमथन करनेके लिए उद्यत होगए [आध्यात्मिक अर्थ-हम सोमज जल अमृतको भली प्रकार पा कर इच्छानुसार रूप धारण करने वाले होजावेंगे, यह विचार कर वे अविद्याका नाश करनेके लिए उद्यत होगए] ॥ १२ ॥ विष्णु यद्यपि देवताओंके अग्रणी हैं, परन्तु आराधना करने पर वे हमारे भी अग्रणी होजावेंगे, तब हम अपने शत्रुओंके साथ पृथ्वी और स्वर्गको भोगसकेंगे [आध्यात्मिक अर्थ-विष्णुकी आराधना करने पर वह हमारे भी योगमार्गमें अग्रणी हो जावेंगे, ऐसा होने पर हम वसुधा और स्वर्गको भोग सकेंगे अर्थात् काम आदिके साथ स्थित होने पर भी सत्यसंकल्प और सत्यकाम होजावेंगे] ॥ १३ ॥ तब हम पृथिवीमें ही मूल (पिता आदि) पत्र (भार्या आदि) शाखा (भ्राता आदि) और फूल (पुत्र आदि) सब घर वालोंके साथ एक घरमें रहनेका सुख भोगेंगे और पृथ्वी (शरीर) में ही सुधा (अर्थात् मोक्ष) को भी पालेंगे (श्रुतिमें भी लिखा है कि न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति अत्रैव समवनीयन्ते ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति - ब्रह्मनिष्ठके प्राण उत्क्रमण नहीं करते हैं, उसमें यहाँ ही लीन होजाते हैं, वह ब्रह्मस्वरूप होता हुआ ब्रह्मको प्राप्त होजाता है] ॥ १४ ॥ इस प्रकार दैत्य

मन्दरस्य प्रकम्पने ॥ १५ ॥ समुद्धर्तुं मथावन्तः कम्पयन्ति स्म मेदिनीम् । निश्चयेन महावीर्या बाहुभिः परिणाहिभिः ॥१६॥ न शक्नुवन्ते समुद्धर्तुं शैलेन्द्रं दनुवंशजाः। निपेतुर्जानुभिर्धृष्टा विपुले पर्वतान्तरे ॥ १७ ॥ समाधायात्मनात्मानं तपसा दग्ध-किल्बिषाः । पितामहं प्रपद्यन्ते शिरोभिः कामरूपिभिः ॥ १८ ॥ तेषां मनोभिलषितं ब्रह्मा सर्वत्रगो वशी । ज्ञात्वा बहुविधैर्वाक्यै-र्व्याजहार सरस्वतीम् ॥ १९ ॥ अशरीरां शरीरस्थः परया

मन्दराचलके उठानेकी बातचीत करके गन्धमादनपर्वतके शिखरोंको तोड़ते फोड़ते अपनी विशाल भुजाओंसे पृथ्वीको कँपातेहुए मंदराचलको उखाड़नेके लिए आगेको बढ़े [तात्पर्य—दैत्य देहाभिमानके त्यागनेका निश्चय करके गुरु शिष्य संकेत पूर्वक देहके प्रविलापनविषयका उपदेश पाकर,ब्रह्माण्डान्तर्गत विषयोंमें निमग्न वासनाओंका उद्धार करके मन्दररूप देहाभिमानको त्यागनेके लिये विशालभुजारूप प्राणायाम आदिसे सारे ब्रह्माण्डको कँपाने लगे, और प्रविलापन करनेका भी यत्न करने लगे] १५-१६ परन्तु उस समय दनुके वंशज उस शैलेन्द्रको न उखाड़ सके और घुटनोंके बल पर्वतके ऊपर गिर पड़े [अर्थात् वे प्रथम प्रयोगमें हतोद्योग होगए] १७। तदनन्तर तपसे जिनके पाप नष्ट होगए थे, ऐसे दैत्योंने अपने मनको आत्मामें लगा कर अपने दिव्य शिरोंसे ब्रह्माजीको प्रणाम किया [उस समय दैत्योंने ईश्वरको प्रणाम किया । ईश्वरप्रणिधानके विषयमें लिखा है, कि—ततः प्रत्यक् चेतनाधिगमोऽन्तरायाभावश्च—तब प्रत्यक् चेतनकी प्राप्ति और विघ्नाभाव भी होजाता है] ॥ १८ ॥ सर्वत्र वर्तमान जितेन्द्रिय ब्रह्माने उनके मनकी इच्छाको समझ लिया, तदनन्तर सब लोकोंके पति ब्रह्मा सब लोकोंके हितकी इच्छासे पर (श्रेष्ठ) वर्णोंसे युक्त अशरीरा सरस्वतीका उपदेश देने लगे [तात्पर्य

दर्णसम्पदा । सर्वलोकपतिर्ब्रह्मा लोकानां हितकाम्यया २० आदित्यैर्वसुभिश्चैव रुद्रैश्च समरुद्गणैः । देवैर्यक्षैः सगन्धर्वैः किन्नरैश्च प्रगायिभिः ॥ २१ ॥ समेत्य सहितैः सर्वैः शक्य उद्धरितुं गिरिः । अमृतार्थे महातेजा धातुभिः समरञ्जितः ॥२२॥ सुरासुरगणाः सर्वे समुत्पाट्य महागिरिम् । हस्तारूढाः प्रपश्यन्ति वीरुधो हिमवद्रसम् ॥ २३ ॥ एतच्छ्रुत्वा च वचनं सर्वेषामन्तिके तदा । दैतेया बाहुबलिनो मनोभिर्वाग्भिरेव च ॥ २४ ॥

ईशने उनको अशरीरा सरस्वती प्रणवात्मिकाका उपदेश दिया, वह वैखरी आदि तीनसे पर है अर्थात् उन्होंने "ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वम्-यह सब एक ओम् अक्षरात्मक है इत्यादि आत्मप्रतिपादक वाक्योंका उपदेश दिया] ॥१९॥२०। तुम आदित्य वसु,मरुद्गणसहित,रुद्र,देवता यक्ष और गानेवाले किन्नरोंसहित गंधर्व तथा किन्नर इन सबको साथमें लेलोगे; तो तुम धातुओंसे रञ्जित महापर्वतको अमृतके लिए उखाड़ सकोगे [तात्पर्य— तुम प्राण आदिके अभिमानी आदित्य आदिसे मनमें एकीभाव को पाकर, वात आदि धातुओंसे सर्वत्र रञ्जित शरीराभिमानरूप पर्वतको उखेड सकोगे],॥ २१ ॥ २२ ॥ सब देवता दैत्य और मनुष्य भी इस महागिरिको उखाडकर हिमवान्‌की रसरूप लताओंको हाथ पर आई सी देखते हैं [तात्पर्य–सुर असुर और मनुष्य भी इस अभिमानको त्यागनेसे हार्दाकाशमें संसार रसको कि–जो प्राणियोंको भोग्य और श्रेयस्कर प्रतीत होता है उस वासनासन्ततिरूपको हस्तामलककी समान देखते हैं]२३ सबके सामने इस वचनको सुनकर भुजबलशाली दैत्य मन और वाणीसे इस कामको करनेमें प्रवृत्त होगए और जहाँ पर सारे कार्यकी समाप्ति होजाती है उस लवणसमुद्रमें जाकर देवताओंके साथ क्रीडा करने लगे [तात्पर्य–दैत्य भी इस बातको सुनकर

विक्रीडभूता बहुधा बभूवुर्लवणांभसः । यत्र पुष्करत्रिन्यस्तः सहितैर्देवदानवैः ॥ २५ ॥ सुरासुरगणाः सर्वे सहिता लवणाम्भसः । मन्दरं पुष्करं कृत्वा नेत्रं वासुकिमेव च ॥२६॥ समाः सहस्रं मथितं जलमौषधिभिः सह । क्षीरभूतं समायोगादमृतं समपद्यत ॥ २७ ॥ तज्जहुरसुराः पूर्वमाक्रान्ता लोभमन्युना ।

श्रुतार्थानुष्ठानमें प्रवृत्त होगए और फिर जिस भ्रूप्राणमध्य आदि चक्रमें सम्पूर्ण कार्यकी स्थिति रहती है उस लवणसमुद्रमें खेल करने लगे और वैराग्यके अभावसे पूर्वोक्त विघ्नोंसे दब गए और सलिलके द्वारा इधर उधर डोलने लगे] ॥ २४ ॥ २५ ॥ देवता और असुर ये सब समुद्रके जलके पास पहुँचे और मन्दराचलको रई और वासुकिको नेती बना औषधियोंको जलमें डाल कर जलको सहस्रों वर्ष तक मथते रहे, तब वह दुग्ध बना हुआ जल वारम्वार मथनेसे अमृत होगया [तात्पर्य–सुर और असुर नालसहित विराजमान कमलकी समान होनेसे मन्थनदण्ड पुष्कर के स्थानमें देहको रख कर आत्मसमुद्रमें वासनारूपी औषधियोंको लय कर उसमें मंदररूप देहको डाल वासुकिसर्पके समान आकार वाली कुण्डलिनीको योगमार्गमें देखनेकी शक्ति वाली बना कर अर्थात् कुण्डलिनीमूलको खोल कर सहस्र वर्ष तक योग करते रहे तब उनको अमृत मिला । यहाँ पर योगसाधन करके भी सहस्र वर्षका नाम देकर सूचित किया है, अनेक जन्म तक योगाभ्यास करने पर मुक्ति मिल सकती है और यह अर्थ भी होसकता है, कि–वासुकिकी समान श्वेत शुद्ध सत्त्वमय हुआ सत् मायाके ऐकात्म्यवृत्तिके योगसे अमृत अर्थात् शुद्ध चिन्मय होजाता है] ॥ २६ ॥ २७ ॥ लोभ और मोहसे छके हुए असुरों ने उसको पहिले हरण कर लिया, (मथन करनेके समय) धन्वतरि, मद्य, श्रीदेवी, कौस्तुभमणि और निर्मल चन्द्रमा निकले,

धन्वन्तरिस्तथा मद्यं श्रीर्देवी कौस्तुभो मणिः ॥२८॥ शशांको विमलश्चापि समुत्तस्थुः समन्ततः। उच्चैःश्रवा हयो रम्यः पीयूषं तदनन्तरम् ॥ २९ ॥ पश्चाद्देवास्तदादातुमुद्यता राहुमब्रुवन्। न तु केचित् पिबन्ति स्म दैत्या नैव च दानवाः ॥३०॥ चिच्छेदाथ

फिर रमणीय घोड़ा उच्चैः श्रवा और पीयूष निकला था[तात्पर्य-अब इस बातको दिखाते हैं, कि-विघ्नोंको जीतनेके अनन्तर योगीके लिए योगविघ्न ही योगसिद्धिएँ बन जाती हैं। यहाँ धन्वन्तरि शब्दसे स्मृतिप्रसिद्ध लघुत्व; आरोग्य, अलोलुपत्व; वर्णप्रसाद और स्वरसौष्ठवका ग्रहण करना चाहिये। और मद्य-शब्दसे योगशास्त्रमें प्रसिद्ध योगियोंके चित्तको उन्मथित करने वाली मधुमती आदि योगभूमियोंको समझना चाहिये। और श्रीदेवी शब्दसे ऋगादिरूपा वेदविद्याकी स्फूर्ति समझनी चाहिये और कौस्तुभ शब्दसे कौस्तुभमणिकी समान देहकी भास्वरता प्रकट होनेका वर्णन समझना चाहिये, और चन्द्र शब्दसे अद्वेष्टा-पन आदि गुणोंसे दूसरोंको प्रसन्न करनेका गुण समझना चाहिये और उच्चैः श्रवाः शब्दसे दूर श्रवणकी शक्ति और दूर-दर्शनकी शक्ति आदि लक्षित है.दूसरे २ पुराणोंमें वर्णित पारिजात आदिसे शुभगंधादिमत्त्वको समझ लेना चाहिये, इनके अनन्तर पीयूष अर्थात् निर्विशेष कैवल्य प्रकट होता है। इनमेंसे मद्य असुरोंकी ओर चला गया तथा दूसरी वस्तुएँ देवताओंकी ओर चली गईं, यह बात दूसरे पुराणोंमें देख लेनी चाहिये]२९ [अब राहुकी उपाख्यायिकाके द्वारा कपटविघ्नार्थीके विनाशका वर्णन करते हैं, कि-] तदनन्तर देवता अमृतको लेनेका विचार कर आपसमें कहने लगे. कि दैत्य और दानवोंमेंसे तो अमृतको कोई भी नहीं पीरहा है, परन्तु यह राहु ही अमृतको पिये जाता है॥ ३० ॥ तदनन्तर हरिने युद्धमें चक्रसे राहुके शिरको काट

हरिः संरुष्टो राहोश्चक्रेण कं तदा। अनिर्मुक्तं पितृगणैर्मुनिभिश्च सनातनैः॥ ३१॥ तदिन्द्रहस्तादमृतं जहार पृथिवी स्वयम्। जगामाङ्कगता देवी ब्रह्मवाक्यप्रचोदिता॥ ३२॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि त्रिंशोऽध्यायः॥ ३०॥

जनमेजय उवाच। निहते दैत्यसंघाते विष्णोश्चातिपराक्रमे।

डाला उस अमृतको अब पितरगण और सनातन मुनि सर्वदा सेवन करते हैं॥ ३१॥ उस परम्परावश प्राप्त हुए अमृतको ब्रह्माजीके वाक्यसे पृथिवीदेवीने ग्रहण कर लिया तात्पर्य-उस देवता मुनि पितर तथा गंधर्व आदि अधिकारियोंसे नित्यसेवित अमृत अर्थात् ज्ञानको इन्द्रके हाथसे प्रतर्दन आदि शिष्य परंपरासे पृथिवी अर्थात् पार्थिव मनुष्योंने ग्रहण किया, अर्थात् मनुष्य भी इसको ग्रहण करनेके अधिकारी हैं, पृथिवीने अंकगत होकर अर्थात् शिष्यत्वको पाकर वेदवाक्य तत्त्वमसि आदिसे प्रेरित होकर उसको पाया था]॥ ३२॥ तीसवाँ अध्याय समाप्त॥ ३०॥

[पंचत्रिंशे कूटशिष्योऽप्येति कालेन साधुता म्। इति तद्दर्शयन्नाह हिरण्यकशिपुं स्वयम्॥ लक्ष्मीवान् माद्यतीत्यस्य वित्तं हरति केशवः। दययैवेति वक्तुं च तद्धृ विभ्रंशोऽपि वर्ण्यते-अब इस पच्चीसवें पुष्कर प्रादुर्भावाध्यायमें इस बातका वर्णन किया जायगा, कि-कूट शिष्य भी समय आने पर साधुताको पाजाता है लक्ष्मीवान् पुरुष मदमें भर जाता है अत एव उसके धनको दयाके कारण केशव हर लेते हैं इसी बातको कहनेके लिये इसी अध्यायमें बलिके लक्ष्मीसे भ्रष्ट होनेका भी वर्णन किया जायगा]

जनमेजयने कहा, कि-दैत्योंके समूहका प्रयत्न निष्फल जाने पर और अतिपराक्रमी विष्णुके सफल होने पर फिर दानव और दैतेयोंने पराक्रम करके क्या पाना चाहा था [मोक्षसे निरस्त

दैतेया दानवेयाश्च किमिच्छन्ति पराक्रमात् ॥ १ ॥ वैशम्पायन उवाच । दानवा राज्यमिच्छन्ति पराक्रममहाबलाः । तप इच्छन्ति सहिता देवाः सत्यपराक्रमाः ॥ २ ॥ जनमेजय उवाच । कथं कालस्य महता हिरण्यकशिपुस्तदा । भजते ब्रह्मणः क्षेत्रे प्राप्तैश्वर्यः स कामदः ॥ ३ ॥ वैशम्पायन उवाच । यजेद्बहुसुवर्णेन राजसूयेन पार्थिवः । क्रतुना दानवश्रेष्ठो वसुधायां महाफलः ४ गङ्गायमुनयोर्मध्ये यदभूद्विपुलं तपः । समेयुस्तत्र सहिता यजमाने महासुरे ॥ ५ ॥ ब्राह्मणा वेदविद्वांसो महाव्रतपरायणाः । यतयश्चापरे सिद्धा योगधर्मेण भारत ॥ ६ ॥ मुनयो बालखिल्याश्च

होने पर दैत्योंने फिर क्या किया था इस प्रश्नका यह उत्तर हो गया, कि–वह राज्य करने लगे अब फिर शंका उठती है, कि फिर उनकी मोक्ष होगी या नहीं वे फिर भी ब्रह्मक्षेत्रमें अर्थात् भूप्राण सन्धिके वीचमें क्या योगके अधिकारी होसकते हैं?] १ वैशम्पायनजीने कहा, कि–उस समय महापराक्रमी दानव राज्य को चाहने लगे और सत्यपराक्रमी देवता तप करना चाहने लगे ॥ २ ॥ जनमेजयने कहा, कि–ऐश्वर्यवान् और कामनाओं को देने वाले हिरण्यकशिपुने बहुत समय वीतजाने पर ब्रह्माजी के क्षेत्रमें किस प्रकार यज्ञ किया था ॥ ३ ॥ वैशम्पायनजीने कहा, कि–दानवोंमें श्रेष्ठ पृथ्वीमें बड़ाभारी फल देने वाला राजा हिरण्यकशिपु जिसमें बहुतसा सुवर्ण दिया जाता है उस राजसूय यज्ञको करने लगा ॥ ४ ॥ गङ्गा यमुनाके वीचमें जहाँ पर बड़ा भारी तप किया जाता है उस स्थान पर जब महाअसुर यज्ञ करने लगा तब हे भारत ! तहाँ पर बहुतसे वेदके विद्वान् ब्राह्मण महाव्रतोंको पालने वाले ब्राह्मण और योगधर्मसे सिद्ध बने हुए बहुतसे यति भी तहाँ पर आये ॥ ५ ॥ ६ ॥ बालखिल्य मुनि और धर्मसे शोभित बहुतसे धन्यपुरुष तथा हृष्ट २ ब्राह्मण और

धन्या धर्मेण शोभिताः । बहवो हि द्विजा मुख्या नित्यं धर्मपरायणाः ॥ ॥ ७ ॥ ऋषयश्च महाभागा विप्रैः पूज्याः सहस्रशः । विपुलैरत्र वित्तैर्हियमाणैस्ततस्ततः ॥ ८ ॥ शुक्रस्तु सह पुत्रेण दैत्यं याजयते प्रभुः । हिरण्यकशिपुं मध्ये गणानां प्रभवः प्रभुः ९ हिरण्यकशिपुश्चैव व्याजहार सरस्वतीम् । कामाद्वरं ददानीति यद्वै संप्रतिपद्यताम् ॥ १० ॥ विष्णुर्वामनरूपेण भिक्षां तां प्रतिगृह्णति । हिरण्यकशिपोर्हस्ताद् द्वे पदे पदमेव च ॥ ११ ॥ ततः क्रमितुमारेभे विष्णुः सत्यपराक्रमः । त्रींल्लोकान्मुनिभिः क्रान्तैर्दिव्यं वपुरधारयन् ॥ १२ ॥ हृतराज्याश्च ते दैत्याः पाताल-

---

सर्वदा धर्ममें परायण रहने वाले व्यक्ति तहाँ पर आये ॥ ७ ॥ यहाँ पर बड़े २ ऋषि भी आये और सैकड़ों ब्राह्मण तहाँसे अपनी इच्छानुसार बहुतसा धन लेकर जाने लगे ॥८॥ उस समय शुक्राचार्य और उनके पुत्र राक्षसोंके टोलेके बीचमें बैठ कर हिरण्यकशिपुको यज्ञ करा रहे थे, उस समय प्रभु हिरण्यकशिपु ने कहा, कि-मैं इच्छानुसार वर दूँगा, लो ग्रहण करो [नीलकण्ठ-यहाँ हिरण्यकशिपुकी आख्यायिका अविवक्षित है, अतः हिरण्यकशिपु शब्दसे यहाँ बलि समझना चाहिये । भगवान्की प्रतिज्ञा है, कि-मैं जिस पर अनुग्रह करना चाहता हूँ उसके धन को हर लेता हूँ । इस प्रतिज्ञाके अनुसार उन्होंने बलिका ही ऐश्वर्य हरण किया था, वही प्रयोजन यहाँ पर विवक्षित है कि-तामस पुरुष भी यदि ईश्वरकी उपासना करते हैं तो समय आने पर ईश्वर उनके ऐश्वर्यपाशको काट डालते हैं । इस प्रकार यहाँ पर हरिभक्तिका उत्कर्ष दिखाया है] ॥ ९ ॥ १० ॥ उस समय विष्णुने वामनका रूप धारण करके हिरण्यकशिपुके हाथसे तीन पैर (पृथ्वी) का दान माँगा ॥ ११ ॥ तदनन्तर सत्यपराक्रमी विष्णुने दिव्य शरीर धारण कर पैरोंसे मुनियोंके अभिलषित

विवरं ययुः । ससैन्यगणसंवद्धाः समासाः सासितोमराः ॥१३॥ सयन्त्रलगुडाश्चैव सपताकारथध्वजाः । सचर्मवर्मकोशाश्च सायुधाः सपरश्वधाः ॥१४॥ तथेन्द्रविष्णुसहिताः सद्यस्तेभ्युत्थिता गणाः । अभ्यषिंचत् प्रमुदिता लोकानामधिपे सुराः ॥ १५ ॥ स तान् स्वधामृतेनाशु पितृत्वे समतर्पयत् । ब्रह्मा तदमृतं दिव्यं महेन्द्राय प्रयच्छति । अक्षयश्चाव्ययश्चैव संवृत्तस्तेन कर्मणा १६ ततः शंखमुपाध्मासीद्ध द्विषतां लोमहर्षणम् । पितामहकरोद्भूतं जनिद्रप्रथमे पदे ॥ १७ ॥ तं श्रुत्वा शंखशब्दं तु भयो लोकाः

तीनों लोकोंको नाप लिया ॥ १२ ॥ [इस प्रकार विष्णुके द्वारा ऐश्वर्यमदके नष्ट करने पर दरिद्रके दूसरे मद स्वयं ही नष्ट हो जाते हैं, तदनन्तर बलिका ऐन्द्र तुरीय मत्यगात्मामें देवताओंने अभिषेक किया था इस आख्यायिकाको ही अगले श्लोकोंमें दिखाया है] राज्य छिन जाने पर दैत्य अपनी सेना भास तलवार तोमर, यंत्र तोप, लठियें, पताका, रथ ध्वजा ढाल कवच म्यान आयुध और फरसोंको लेकर पातालके विवरमें घुस गए ॥ १३ ॥ १४ ॥ (कुछ समयके उपरान्त) इन्द्र और विष्णु को साथमें लेकर वह दैत्य उठे, उस समय देवताओंने उसको लोकके अधिपतिपद पर अभिषेक कर दिया ॥ १५ ॥ उस समय उस दैत्यने पितृस्वरूपमें स्थित होकर स्वधारूपी अमृतसे सुरोंको तृप्त किया, ब्रह्माजीने वह दिव्य अमृत महेन्द्रको दिया, उस कर्मसे अक्षय और अव्यय बना हुआ इन्द्र मुख्य पदमें स्थित होकर पितामहके हाथसे उत्पन्न हुए शत्रुओंके लोमहर्षक शंखको बजाने लगा [आध्यात्मिक अर्थ–बलिने तब देवताओंको वेदज्ञानरूपी अमृत दिया, सत्संकल्प ब्रह्मवेत्ता बलिकी ब्रह्मबुद्धिसे भावित देवता भी वैसे ही होजाते हैं, दोनों श्लोकोंका अर्थ यह है, कि–ब्रह्मवेत्ता सर्वोपकारी होजाता है] ॥ १६ ॥ १७ ॥ उस शंखके शब्द

निवृत्ति परमां प्राप्ता इन्द्रप्राप्यमवाप्य च ॥ १८ ॥
समाहिताः । निवृत्ति परमां प्राप्ता । मन्दराग्रेषु विहितैः-
मन्त्रैः प्रहरणैश्चैव संयुक्ता वन्हिसम्भवैः । मन्दराग्रेषु विहितैः-
ज्वलद्भिरिव पावकैः ॥ १९ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि
एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

वैशम्पायन उवाच । ततो महति वृत्तान्ते स्थिते राज्ये
महोदये । देवतानां मनुष्याणां सहवासोऽभवत्तदा ॥१॥ एकतः
समधीयन्ति सहिताः प्ररुदन्ति च । स्वयं च भागं गृह्णन्ति यज्ञ-

को सुन तीनों लोक सावधान होगए और विषयोंको प्रकृष्टतासे
हरण करने वाली चिन्मय देहशैलमें स्थित इन्द्रियोंसे संयुक्त होने
के अनन्तर इन्द्र प्राप्य वस्तुअमृतको पाकर तृप्त होजाते हैं ।१६।
इकतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३१ ॥

[षड्विंशे द्रोहिणं दत्तं भूदण्डेन च सत्पथे । न्यवेशयत् कियंतस्तु
बलौ भक्तेष्वनुग्रहः ॥ ईश्वरद्रोहिणाप्येषः कृतो धर्मो महाफलः ।
इति संदर्शयन्नाह षड्विंशे दक्षनिग्रहम् ॥—छब्बीसवें पुष्कर-
प्रादुर्भावाध्यायमें इस बातका वर्णन है, कि-द्रोही दक्षको भी
परमात्माने भूदण्डसे सत्पथमें स्थापित किया था इसी प्रकार भक्त
बलि पर भी उन्होंने अनुग्रह किया था। ईश्वरका द्रोही भी यदि
धर्मका पालन करता है तो उसको भी धर्म महाफल देता है ।
इस बातको दिखानेके लिए छब्बीसवें अध्यायमें दक्षके निग्रहका
वर्णन किया जायगा] इस प्रकार बड़ी भारी घटना होने पर
सुराज्य स्थापित होगया, तब देवता और मनुष्य एक साथ रहने
लगे [तात्पर्य यह है, कि-सबोंको निवृत्ति प्राप्त होने पर देवता
और मनुष्योंमें ब्रह्मवेत्तापनके कारण कोई भेद नहीं रहा, इस
लिए वे एक साथ रहने लगे] ॥ १ ॥ तब वह एक साथ आत्म-
चर्चा करने लगे प्रेमके कारण आपसमें रोने लगे और हे भारत!

कर्मणि भारत ॥ २ ॥ प्राचेतसं ततो दक्षं दीक्षित्वा वै बृह-
स्पतिः । वाजिमेधाय भगवानृषिभिः परिवारितः ॥३॥ तस्मिन्
मातामहे यज्ञे दक्षस्याविदितात्मनः । शामित्रमकरोद्रुद्रो भागार्थं
सह नन्दिना ॥४॥ रुद्रस्यैव हि तद्रूपं द्विधाभूतं तदीशया । जातः
परमधर्मात्मा नन्दी पुरुषविग्रहः ॥ ५ ॥ तेन योगेन राजेन्द्र यत्त-
द्ब्रह्म सनातनम् । विहितं सत्यवचनैस्तेनैव परमात्मना ॥ ६ ॥
स्वरूपैश्चाप्यरूपैश्च विरूपाक्षैर्घटोदरैः । ऊर्ध्वनेत्रैर्महाकायैर्विकटै-
र्वामनैस्तथा ॥७॥ शिखिभिर्जटिभिश्चैव त्र्यक्षैर्वै शंकुकर्णिभिः ।
चीरिभिश्चर्मिभिश्चैव कूटमुद्गरपाणिभिः ॥ ८ ॥ सघण्टाधारि-
भिश्चैव मुञ्जमेखलधारिभिः । सहस्तकटकैश्चैव स्वर्णकुण्डल-

यज्ञकर्ममें भी अपने आप ही भागको ग्रहण करने लगे ॥ २ ॥
[इस प्रकार जब सब विद्वान् होगए, उस समय प्रचेताके पुत्र
दक्ष पर बृहस्पतिने अनुग्रह किया था इसी बातको कहते हैं कि]
तदनन्तर ऋषियोंसे घिरे भगवान् बृहस्पतिने प्रचेताके पुत्र दक्ष
को अश्वमेध यज्ञकी दीक्षा दी ॥ ३ ॥ (सब लोक दक्षकी पुत्रियों
की ही सन्तान हैं ऐसे) मातामह यज्ञमें रुद्रने नन्दीको अपने
साथमें लेकर भाग पानेके लिये अविदितात्मा पशुरूप दक्षका
संहार किया था ॥ ४ ॥ नन्दी दूसरे टुकड़ेमें बँटा हुआ शिवका
ही दूसरा रूप था, परम धर्मात्मा नन्दी पुरुषका शरीर धारण
कर रहा था ॥ ५ ॥ हे राजेन्द्र ! सनातन ब्रह्मयोगसे परमात्मा
शिवने सत्यवाक्यसे उसको प्रकट किया था ॥ ६ ॥ भगवान्
शिवने सुरूप अरूप, बेडौल आँखों वाले, घड़ेकी समान पेट वाले,
ऊपरको चढ़े हुए नेत्र वाले, बड़े २ शरीर वाले बौने, विकट,
शिखाधारी, जटाजूटधारी, तीन नेत्र वाले, खूँटेकी समान कान
वाले, चीरधारी, ढालधारी, हाथमें कूट मुद्गर धारण करने वाले,
घूँघरू पड़ी हुई मूँजकी मेखलाको धारण करने वाले, हाथमें

धारिभिः ॥ ६ ॥ सडिंडिमैः सभेरीकैः समृदङ्गैः सवेणुभिः । एतैः परिवृतो देवो मखं तं समुपारुजत् ॥ १० ॥ सशंखमरुजैश्चापि सतालफलपाणिभिः । उग्रायुधधरो देवः सपिनाक इवांतकः ११ विरराजार्चिभिर्दीप्तैर्मखे मखवतां वरः । कालाग्निरिव दीप्तार्चिर्जगद्दग्धुमिवोद्यतः ॥ १२ ॥ नन्दी पिनाकपाणिश्च जघ्नतुर्मखमुत्तमम् । युगान्त इव कालाग्निः क्षिप्रं दग्धुमिवोद्यतः ॥ १३ ॥ यूपमुत्क्षिप्य धावन्ति निशाचरगणास्तथा । त्रासयन् मुखसंघांश्च चीरचर्मनिवासिनः ॥१४॥ हवींष्यन्ये पिबन्त्येव जिह्वाभिस्ताम्रलोचनाः । भक्षयन्ति पशूनन्ये रसनान्तावलम्बिनः ॥ १५ ॥ मुमुचुश्चापरे यूपान् पशवः प्रहरन्ति च । वन्हिमन्ये प्रसिंचन्ति

वलय धारण करने वाले, सुवर्णके कुण्डल पहिरने वाले और डिंडिम भेरी मृदंग और वेणुधारी गणोंको साथमें लेकर उस यज्ञ को नष्ट किया था ॥ ७-१० ॥ पिनाकधारी रुद्र शंख मरुज ताल और फलोंको हाथमें धारण करने पर उग्रायुधधारी यमराजकी समान विराजने लगे ॥ ११ ॥ यज्ञ करने वालोंमें श्रेष्ठ भगवान् रुद्र यज्ञमें अपने तेजकी किरणोंसे अपनी लपटोंसे संसारको भस्म करना चाहने वाले कालाग्निकी समान दमकने लगे ॥ १२ ॥ नन्दी और पिनाकपाणि उस उत्तम यज्ञको जब नष्ट कर रहे थे, उस समय वह विश्व भरको भस्म करना चाहने वाले प्रलयाग्नि की समान दीखने लगे ॥ १३ ॥ उस समय निशाचर यूपोंको उखाड़ कर दौड़ने लगे और चीरचर्मधारी यज्ञके कर्मचारियोंको डराने लगे ॥ १४ ॥ बहुतसे लाल २ नेत्र वाले निशाचर हवियों को जीभसे चाटने लगे, और बहुतसे हाथीकी सूँड़की समान खड़े हुए पशुओंको पकड़ २ कर खाने लगे ॥ १५ ॥ उस समय बहुतसे गण यज्ञके खम्भोंको उखाड़ कर फेंकने लगे और बहुतसे से गण पशुओंको उठा कर पटकने लगे और बहुतसे गण अग्नि

वारिभिः प्रशमाय च ॥ १६ ॥ सोममन्ये जहुः केचिन्नेत्रैस्तान् प्रचयोपमैः । दर्भान् केचिद्विलुंपन्ति हस्तैः पद्मदलप्रभैः ॥१७॥ बभञ्जिरे च यूपाग्रान् कलशांश्चापि चिक्षिपुः । चिच्छिदुः कांचनान् वृक्षाञ्छोभार्थमुपकल्पितान् ॥ १८ ॥ बिभिदुश्चैव बाणैस्ते मुमुचुश्च हिरण्मयान् । लुलुपुश्चैव पात्राणि ममंथुश्चारणीमपि १६ अरुजंश्चैव भाग्वंशं लुलुपुश्च समाहिताः । चखादिरे पुरोडाशान् नखाग्रैश्चाववर्तिरे ॥ २० ॥ एवं दिवा च रात्रौ च भिद्यमानो महामखः । चुक्रोश च महानादान् भिद्यमान इवार्णवः ॥ २१ ॥ धनुः सशरमादाय पूर्वदत्तं स्वयम्भुवा । कृतं कीचकवेणुभ्यां समरे सुमहारथः ॥ २२ ॥ प्रतिगृह्य महादेवः सशरैः समयोजयत् । धनुर्विगृह्य जानुभ्यां जघान स महाक्रतुम् ॥ २३ ॥ स

को बुझानेके लिए अग्नि पर जल डालने लगे ॥ १६ ॥ बहुतसे गण अपने डेलोंकी समान नेत्रोंको फाड़ २ कर सोमको उठा कर ले जाने लगे और बहुतसे शिवजीके गण अपने कमलकी समान हाथोंसे कुशाओंको बिगाड़ने लगे ॥ १७ ॥ यूपोंकी चकेलियोंको तोड़ने लगे, कलशोंको फैंकने लगे और शोभाके लिए बनाये हुए सुवर्णके वृक्षोंको तोड़ने लगे ॥ १८ ॥ वे बाणोंसे सुवर्णकी वस्तुओंको तोड़ने लगे, पात्रोंको तोड़ने लगे और अरणी को मथने लगे ॥ १९ ॥ भाग्वंशको तोड़ने लगे, सावधान होकर गड़बड़ मचाने लगे, पुरोडाशको खाने लगे और नाखूनोंसे बकोटने लगे ॥२०॥ इस प्रकार दिन रात पीड़ा पाने पर (मूर्तिमान्) महायज्ञ फटते हुए पहाड़की समान बड़ा भारी शब्द करने लगा ॥ २१ ॥ उस समय महारथी शिवने कीचक और वेणु जातिके बाँसोंसे बने हुए ब्रह्माजीके दिये हुए धनुषको संग्राममें उठा लिया ॥ २२ ॥ तदनन्तर महादेवने उस पर बाण रखा, फिर उसको अपने दोनों घुटनों पर रख कर महायज्ञके ऊपर

विद्धस्तेन बाणेन खं समुत्पतितः क्रतुः । मृगो भूत्वा नर्दमानो ब्रह्माणमुपधावति ॥ २४ ॥ शरेणाभिहतस्त्राणं न लेभे स सुखं भुवि । शरणार्थी मृगं प्राप्तः शरेणान्तर्गतेन च ॥२५॥ तमुवाच मृगं ब्रह्मा शुभं सानुनयं वचः । स्वरेणोत्तमवीर्येण गम्भीरेण शुभाषिणा । एवं रूपो नभसि त्वं भविष्यसि महामृगः ॥ २६ ॥ निर्जितश्च त्रिपर्वेण शरेणानतपर्वणा । तिष्ठन्नक्षत्रशिरसि सह रुद्रेण नित्यशः ॥२७॥ सोमेन सह संयुक्तो ह्यक्षयेणाव्ययेन च । दिवि संचारभूतो वै ताराभिः सह सङ्गतः ॥ २८ ॥ ज्योतिर्भूतो ज्योतिषां त्वं ध्रुवस्यैव महाध्रुवः । यच्चैतद्रुधिरं दिव्यं क्षतजा-दभिनिःसृतम् ॥ २९ ॥ नभस्युत्पतितं चैव भवेगेन प्रधावतः । क्षतजं बहुवर्णं च क्षेत्रं मण्डलसंज्ञितम् । निमित्तभूतं भूतानां वर्षे

प्रहार किया ॥ २३ ॥ उस बाणसे बिंधने पर यज्ञ मृगका रूप धारण करके चिल्लाता हुआ ब्रह्माजीके पास पहुँचा ॥ २४ ॥ बाणसे बिंध जानेके कारण जब उसको पृथ्वीमें शान्ति नहीं मिली, तब वह घुसे हुए बाणसे पीड़ा पाता हुआ मृग शरण चाहनेकी इच्छासे जब ब्रह्माजीके पास पहुँच गया ॥२५॥ तब उससे ब्रह्माजीने उत्तम वीर्य वाले गम्भीर स्वरमें अनुनयके साथ यह वचन कहा, कि–हे महामृग ! तू आकाशमें ऐसा ही हो जावेगा, नमी हुई गाँठ वाले तीन गाँठके बाणसे शिवके द्वारा बिंधा हुआ, तू नक्षत्रशिर पर ऐसा ही रहेगा [दोनों श्लोकोंका तात्पर्य यह है, कि–वह मृगरूपी यज्ञ मृगशीर्ष नामक सोमदैवत्य नक्षत्र होगया] ॥२६॥२७॥ तब वह अक्षय और अव्यय सोमके साथ संयुक्त होकर आकाशमें विचरण कर तारोंसे मिल गया २८ (ब्रह्माजीने उससे यह भी कहा, कि-) तू अपनी ज्योतिसे ज्योतिर्भूत होजायगा और तेरे आकाशमें उछलकर दौड़ने पर जो घावमेंसे रक्त निकला था, वह अनेक वर्ण वाला रक्त तेरा मण्डल

वर्षणदं तथा ॥ ३० ॥ सुखं दुःखं च भूतानां दर्शने संप्रवर्तते ।
इन्द्रियश्रवणाच्चैव नभसीन्द्रायुधोऽभवत् ॥ ३१ ॥ चक्षुषी मानुषे
राजन् विस्मयात् समवैक्षत। अद्भुतं बहुचित्रं च मनसा संप्रकल्पि-
तम् ॥३२॥ न तु रात्रौ प्रदृश्येत खे स ब्रह्मणि संज्ञितम् । दिन-
स्यैव सदा त्वग्रे महत्कार्यं प्रदृश्यते ॥ ३३ ॥ भूपावेन समुत्तिष्ठे-
दाकाशे तु विलीयते । शतशश्च समं सर्वे प्रभावन्ति प्रचेतसः ३४

कहलावेगा, वह प्राणियोंको वर्षा बतानेवाला वर्षाका चिन्ह होगा उसके देखने पर प्राणियोंको सुख दुःख हुआ करेगा, और वह इन्द्रियश्रवण होनेसे इन्द्रायुध (इन्द्रधनुष) कहलावेगा २९–३१ हे राजन् ! उसको मनुष्यके नेत्र विस्मयपूर्वक देखा करेंगे, वह अद्भुत और अनेक वर्णोंसे चित्रित होगा परन्तु यह सब मन (अविद्या) से कल्पित है ॥ ३२ ॥ यह सब रात्रिमें आकाशमें दीखता है और दिनमें तो वड़ा भारी कार्य दीखता है [तात्पर्य- यह सब स्वप्नके वृत्तान्तकी समान कहा हुआ प्रपञ्च रात्रि— अविद्या-में अर्थात् देहादिमें आत्माभिमानरूपा रात्रिके होने पर ही दीखता है और अविद्याकी निवृत्ति होने पर हार्दाकाशमें अर्थात् शुद्ध ब्रह्मके उपलब्धिस्थान ब्रह्ममें, बाधालम्बन होनेसे विद्यमान, दिनके अग्रभागमें अर्थात् अविद्यारात्रिके दूर होने पर ही सब घट आदि कार्य ब्रह्मस्वरूप ही प्रतीत होता है उस में भूत भविष्यत् बात भी नहीं होती, क्योंकि—ब्रह्ममें अतीतादि भाव सम्भव नहीं है। इस प्रकार हार्दाकाश रूपी आकाशमें कार्यका दर्शन होना अयुक्त है] ॥ ३३ ॥ [यह अविद्या रात्रि भूमि अर्थात् शरीरमें ही उठती है, और रज्जुके अभावमें सर्पके देहकी समान आकाश अर्थात् शून्यमें लीन होजाती है अर्थात् त्रिकालमें बाधित होजाती है यह बात है, इसीलिये प्रचेताके सम्बन्धी दक्ष सर्वात्मक देहात्मबुद्धिरूपा

भयाद्रुद्रस्य महतो धन्विनो बाणपाणयः । नन्दी रुद्रगणैः सार्धं पिनाकी समतिष्ठत । युगान्तकाले ज्वलितो ब्रह्मदण्ड इवोद्यतः ॥ ३५ ॥ विष्णुः संग्रामसम्भूतं प्रगृह्य विपुलं धनुः । प्रातिष्ठत महाबाहुः पाणिना चक्रमादधत् ॥ ३६ ॥ गदां सघण्टामन्येन खड्गमन्येन पाणिना । प्रगृह्य सोऽग्रतोऽतिष्ठद्रुद्रायोद्यतपाणये ॥ ३७ ॥ ततः शृङ्गाग्रसम्भूतं प्रगृह्य विपुलं धनुः । शङ्खं चाप्रतिमं लोके शरांश्चानतपर्वणः ॥ ३८ ॥ विष्णुरग्रस्थितो भाति सबलः संहताञ्जलिः । बद्धगोधाङ्गुलित्राणः सचन्द्र इव तोयदः ॥ ३९ ॥ आदित्या वसवश्चैव दिव्यैः प्रहरणैः सह । विष्णुमेवाभितः सर्वे

अविद्याके नाशमात्रसे उपलक्षितके प्रति दौड़ने लगे; तात्पर्य यह है, कि-शब्दसे अभिलप्य प्रपञ्च हार्दाकाशमें अनन्त गुणा दीख सकता है] ॥ ३४ ॥ [अब कथाभाग चलता है] उस समय रुद्रके बड़े भारी भयसे प्रचेताके सम्बन्धी भी हाथोंमें धनुषोंको ले भागने लगे, प्रलयके समय जिस प्रकार उठा हुआ प्रज्वलित कालदण्ड होता है, इसी प्रकार नन्दी और अपने गणोंके साथ पिनाकी शिव दीखने लगे ॥३५॥ उस समय विष्णुने संग्रामके लिए बनाए हुए बडे भारी धनुषको उठा लिया फिर वह महाभुज हाथमें चक्रको उठा कर शिवजीके पासको चल दिये ३६ भगवान् विष्णु उस समय दूसरे हाथमें गदा घण्टा और खड्ग लेकर हाथ उठाने वाले रुद्रके पास खड़े होगए ॥ ३७ ॥ उस समय शृङ्गके अग्रभागसे उत्पन्न हुए शार्ङ्ग नाम वाले बड़े भारी धनुषको, अप्रतिम शंखको और नमी हुई गाँठ वाले बाणोंको लेकर खड़े हुए मिली हुई-अंगुलियों वाले और गोहके दस्ताने पहिरने वाले विष्णु चन्द्रमा वाले मेघकी समान शोभा पाने लगे ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ उस समय अग्निकी समान कान्तिवाले आदित्य और वसु भी हाथमें आयुधोंको लेकर विष्णुके चारों

तिष्ठन्ति ज्वलनप्रभाः ॥ ४० ॥ मरुतश्चैव विश्वे च रुद्रमेशाभि-
पेदिरे । गन्धर्वाः किन्नराश्चैव नागा यक्षाः सपन्नगाः ॥ ४१ ॥
ऋषयो न्यस्तदण्डाश्च उभयोः पक्षयोर्हिताः । जपन्ति शान्तये
नित्यं लोकानां हितकाम्यया ॥४२॥ शरेण हतवान् रुद्रो विष्णु-
मेवाग्रणी रणे । हृदि सर्वाङ्गसन्धीषु तीक्ष्णाग्रेण सुयन्त्रिणा ४३
न चकम्पे तदा विष्णुः सर्वात्मा ब्रह्मसम्भवः । न च रोषप्रना*
नित्यं हृतः सर्वैः षडिन्द्रियैः ॥४४॥ विष्णुश्च धनुरानम्य शरेण
समयोजयत् । जत्रुदेशे मुमोचाशु ब्रह्मदण्डमिवोद्यतम् ॥ ४५ ॥
स विद्धस्तेन बाणेन महादेवो न कम्पते । वज्रेण च महासन्धि-

और खडे होगए [शार्ङ्गरूप धर्मके अधिष्ठात्री देवता विष्णु हैं और सदा शिव ज्ञानके अधिष्ठात्री देवता हैं इन दोनोंमें विरोध पड़ने पर विष्णु पक्षके आदित्य आदि ज्ञानात्मा रुद्रसे द्वेष करने लगते हैं, श्रुतिमें भी लिखा है, कि-"तस्मादेषां तन्न प्रियं यदे-तन्मनुष्या विदुः-मनुष्य ज्ञानको जाने यह बात देवताओंको प्रिय नहीं है] ॥ ४० ॥ मरुत् विश्वेदेवा गन्धर्व किन्नर नाग तथा पन्नगोंसहित यक्ष रुद्रके पास आकर डट गए ॥ ४१ ॥ और दोनों पक्षोंका हित चाहने वाले ऋषियोंने दण्डको छोड दिया और लोकोंका हित चाहनेकी इच्छासे शान्तिके लिये जप करने लगे ॥ ४२ ॥ उस समय अग्रणीय रुद्रने यन्त्र लगे हुए और तीखी नोकवाले बाणसे विष्णुके हृदयमें और उनके अङ्गकी सब सन्धियों पर प्रहार किया ॥ ४३ ॥ विष्णु ब्रह्माके उत्पत्ति स्थान हैं और सर्वात्मा हैं इस लिये वह नहीं काँपे और छह छहों इन्द्रियोंको वशमें रखते हैं इस कारण उनके चित्तमें रोष भी नहीं आया ४४ फिर विष्णुने धनुषको खेंच कर उसके ऊपर बाण चढाया और ब्रह्मदण्डकी समान उठे हुए उस बाणको शिवजीकी हसली पर मारा ४५ जिसप्रकार वज्रसे मन्दराचलका

मन्दरस्य न चाल्यते ॥ ४६ ॥ ततः प्रसभमाप्लुत्य रुद्रं विष्णुः सनातनम् । कण्ठे जग्राह भगवान्नीलकण्ठस्ततोऽभवत् ॥ ४७ ॥ अनादिनिधनो देवः क्षमतां हि भवान् मम । सर्वभूतागमाचार्यो मम कर्ता च कर्मणाम् ॥ ४८ ॥ कर्मणां चैव कर्ता च विकर्ता

शिखर नहीं हिलता है इसीप्रकार उस बाणसे बिंधने पर महादेव भी न काँपे [अर्थात् उस समय ज्ञान दूर नहीं हुआ] ॥४६॥ तब तो विष्णु बलपूर्वक कूद कर सनातनरुद्रके कण्ठको लिपट गए तब भगवान् शिव नीलकण्ठ होगए [रुद्र अप्रकम्प्य हैं यह जाननेके अनन्तर विष्णु कृष्णवर्ण थे इस लिये महेशके कण्ठमें इन्द्रनीलमय हसलीकी समान चिपट गए इस लिये वह नीलकंठ होगए।आख्यायिकाका तात्पर्य यह है, कि-यद्यपि अपनी उत्पत्ति के लिये ज्ञानको धर्मकी अपेक्षा है परन्तु उत्पन्न हुआ ज्ञान धर्मका समूलोच्छेद कर डालता है तब भी विद्वान्को ही धर्मका अधिकार है इस लिये ज्ञानके ही कण्ठमें शिशुकी समान धर्म चिपटा हुआ रहता है] ॥ ४७ ॥ (और कहने लगे, कि-) आप उत्पत्ति और मरणसे शून्य हैं इस लिये आप मेरे कृत्यको क्षमा करिये आप सब प्राणियोंके शास्त्रोंके आचार्य हैं और मेरे कर्मोंके भी कर्ता हैं [अप्रसंगवश विज्ञानकी ही स्तुति करते हैं, कि-"दीव्यति प्रकाशयत्यर्थजातमिति चिन्मात्ररूप आत्मा देवः-अर्थात् जो कार्योंको प्रकाशित करते हैं ऐसा चिन्मात्ररूप आत्मा देव है वह अनादिनिधन है क्योंकि-ज्ञानसे सर्वज्ञानका परिच्छेद नहीं किया जासकता फिर उसके आदि अन्तको तो वह प्रकाशित ही क्या कर सकेगा । और आप कर्मोत्पादित महत् आदिके भी अचल होनेसे कर्ता हैं, पर्वतकी समान जड़ होनेसे जड़के द्वारा अजड़ प्रकाशवस्तु प्रकाशित नहीं होसकती इसी लिये ज्ञानका आदि अन्त नहीं होसकता आप "ईशानः सर्वविद्यानां" इस श्रुतिके

चैव भारत । अशेषत्वाच्च भूतानां सर्वभूतेषु चोत्तमः ॥ ४६ ॥
सर्वमेव हि यत् कर्म विधत्ते कर्मयोनिषु । तयोः शुभतमो राजन्
स्वयमेव तथाकरोत् ॥ ५० ॥ अन्तरिक्षाच्छुभा वाचः श्रूयन्ते
परमाद्भुताः । सिद्धानां वदनोन्मुक्ताः सनातन नमोऽस्तु ते ५१
नन्दी पिनाकमुद्यम्य बलवान् रुद्रसम्भवः । मूर्धन्यभिजघानाजौ
विष्णुं क्रोधेन मूर्च्छितः ॥५२॥ ततः प्रहसितो विष्णुर्नन्दीं दृष्ट्वा

अनुसार सब प्राणियोंके और शास्त्रोंके गुरु अर्थात् ग्रहण करने वाले हैं इस लिये आप मेरे अपराधको क्षमा करिये] ॥ ४८ ॥ आप ही कर्मोंके कर्ता और विकर्ता हैं और अशेष होनेसे सब प्राणियोंमें उत्तम है [तात्पर्य-अहंकार आदिके सत्तापद होनेसे चिदात्मा ही कर्मोंका कर्ता और विषम कर्ता है और दृश्य भूतोंसे जो शेष रह जाता है, वह ज्ञानस्वरूप भी आप ही हैं, और आप सकल चराचर भूतोंमें जीव और ईशकी अपेक्षा निरुपाधि होनेसे उत्कृष्ट हैं] ॥ ४६ ॥ अपने आप ही कर्मयोनिमें कर्मसे लब्ध अनेक प्रकारके शरीरोंमें स्थित अन्तर्यामी रूपसे (प्रयोजकता-रूपमें) स्वयं ही कर्म करता है। इन कर्ता और कारयितासे अन्य शुभतम अर्थात् शुद्धरूप है, वह ही पूर्वोक्त नियमको करता है (ऐसे आप ही हैं) तात्पर्य यह है, कि-निर्विशेष चिन्मात्रमें ही जीव ईश आदि कल्पित हैं ॥ ५० ॥ [अब कथाका अनुसरण करके उक्त अर्थकी स्तुति करते है, कि-] उस समय आकाशमेंसे सिद्धोंके मुखमेंसे निकली हुई शुभ वाणियें सुनाई आने लगीं, कि-हे सनातन ! आपको प्रणाम है ॥ ५१ ॥ तदनन्तर रुद्रसे उत्पन्न हुए बलवान् नन्दीने क्रोधमें भर कर रणमें पिनाकको उठा कर विष्णुके मस्तक पर दे मारा ॥ ५२ ॥ उस समय देवताओंमें श्रेष्ठ विष्णु नन्दीको देख कर हँसने लगे और सब भूतोंके स्वामी हरिने उसको स्तंभित कर दिया [तात्पर्य-परम

सुरोत्तमः । स्तम्भयामास भगवान् सर्वभूतपतिर्हरिः ॥ ५३ ॥
विष्णुर्ब्रह्मसमो भूत्वा तेजसा प्रज्वलन्निव । क्षमया च समायुक्तः
स्थितः स्थाणुरिवाचलः ॥ ५४ ॥ अचिंत्यश्चाप्रमेयश्च ह्यजेय-
श्चाप्यरिन्दमः।युगान्ताग्निसमो भूत्वा शान्तात्मा हरिरव्ययः॥५५
प्रसन्नः कल्पयामास भागं रुद्राय धीमते । विष्णुर्धर्मपरो नित्यं

ज्ञानका प्रत्यासन्न महान् अध्यात्मज्ञान नन्दिके तुल्य है,वह धर्म-रूप विष्णुको दबा नहीं सकता, उस मिथ्यामय ज्ञानसे कर्मक्षय नहीं होसकता, प्रत्युत कर्मसे ही चित्तशुद्धि होती है] ॥ ५३ ॥ विष्णु उस समय ब्रह्मकी समान बन कर अपने तेजसे दमक रहे थे अत एव क्षमायुक्त होकर अचल स्थाणुकी समान डटे रहे,वह अचिन्त्य थे अप्रमेय थे अजेय थे तब भी वह अरिदमन प्रलयाग्नि की समान होने पर भी फिर शान्त आत्मा वाले हरि अव्यय होगए [तात्पर्य—विष्णु अर्थात् योग नाम वाला परम धर्म जब ज्ञानसे ब्रह्मकी समान होजाता है तो क्षुद्रज्ञान उसे चालित नहीं कर सकता । भगवान्ने भी लिखा है,कि—"एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति" अतः वह उस समय परमपुरुषार्थप्रद होकर तेज अर्थात् स्वरूपप्रकाश और क्षमा अर्थात् मोक्षमयी मोक्षाख्य शान्तिसे युक्त होकर स्थाणुकी समान अचिन्त्य अप्र-मेय और अजेय होजाता है । वह कार्यसहित अविद्याको भस्म करके स्वतः शान्तात्मा अव्यय और कर्मपाशको हरने वाला हरि बन कर ऐसा होजाता है] ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ तदनन्तर देवताओं में श्रेष्ठ कामनाओंको त्यागने वाले और सर्वदा धर्मपरायण रहने वाले विष्णुने प्रसन्न होकर बुद्धिमान् रुद्रके लिये भाग निकाला [तात्पर्य जब योगसे ही इस प्रकार इष्टसिद्धि होजाती है, तो ज्ञानकी क्या आवश्यकता है, इस शंकाको दूर करनेके लिए कहते हैं, कि—"रोदयतीति रुत् अज्ञानं, सर्वानर्थमूलं द्रावयतीति रुद्रः

स्त्यक्तकामः सुरोत्तमः ॥ ५६ ॥ विष्णुना चैव राजेन्द्र स यज्ञः सन्धितः पुनः । यथा पक्षं च ते सर्वे गणास्त्वासन्महीपते । तस्मिन्युद्धे महाघोरे विष्णो रुद्रस्य चैव ह ॥५७॥ यथापक्षं भव-युद्धं दक्षयज्ञविनाशने । विनाशश्चैव यज्ञस्य तदा लोके प्रतिष्ठितः ॥ ५८ ॥ सर्वभूतेषु राजेन्द्र हितो यज्ञः सनातनः । दक्षो यज्ञफलं चैव प्राप्तवान् स प्रजापतिः ॥५९॥इमां चोदोहनां दिव्यां

ऐकात्म्यबोधः, तस्य भागो द्वैतबोधः, योगेनात्मदर्शनज्ञानेनात्म-बोधश्चेति तयोर्विषयविभाग इति भावः-रुलाने वाले रुत्को अज्ञान कहते हैं उस सब अनर्थोंकी मूलको द्रावण (भगाने) वाले ऐकात्म्यबोधको रुद्र कहते हैं, द्वैतबोध उसका भाग कहलाता है। अर्थात् योगके द्वारा आत्मदर्शनज्ञानसे आत्मबोध होता है । यह इनका विषयभेद है] ॥ ५६ ॥ हे राजेन्द्र ! विष्णुने फिर उस यज्ञको ठीक कर दिया, हे महीपते ! इस प्रकार उस समय विष्णु और रुद्रके घोर युद्धमें सब देवताओंने विष्णु और रुद्रका पक्ष लिया था[वह रुद्रविद्रावित अनात्मज्ञ दक्षका यज्ञ सत्त्वमय विष्णु से ठीक होगया]॥ ५७ ॥ इस प्रकार दक्षयज्ञविनाशन युद्धमें पक्ष लेकर युद्ध हुआ था, उस दिनसे यह कथा लोकमें प्रतिष्ठित है हे राजेन्द्र ! सब भूतोंमें यज्ञ सनातन है, तदनन्तर प्रजापति दक्षने भी यज्ञका फल पाया था [तात्पर्य इस प्रकार सांख्य और योग श्रवण और आसन आदिकी विरुद्धता वाले हैं, तो भी ज्ञानका अभिमत यज्ञविनाश ही उत्कर्ष होगया । ऐसा होने पर भी ज्ञानकी अपेक्षा नित्य हितकारी होनेसे यज्ञ ही हित-प्रद है । अन्यथा द्वारलोप होनेसे ज्ञान भी नहीं लभ सकता; अत एव कहा है, कि—अनात्मज्ञ दक्षने भी विष्णुके अनुग्रहसे यज्ञफलकी परम्परासे तत्त्वज्ञान पाया था] ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ जो बुद्धिमान् पुरुष पवित्र हो अपने मनको नियममें रख कर

कथामिति स बुद्धिमान् । श्रावयेद्यस्तु विप्रेभ्यः शुचिः प्रयत-मानसः ॥ ६० ॥ अधीत्य सर्वमध्यात्मं देवलोके महीयते । एष पौष्करको नाम प्रादुर्भावो महात्मनः ॥ ६१ ॥ पुराणे पौष्करे चैव मया द्वैपायनेरितः । यथावदनुपूर्वेण संस्कृतः परमर्षिभिः ६२ यश्चैनमग्र्यं पुरुषं पुराणं सदाऽप्रमत्तः शृणुयाद्यथोक्तम् । अवाप्य कामानिह वीतशोकः परत्र च स्वर्गफलानि भुंक्ते ॥ ६३ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

जनमेजय उवाच । प्रादुर्भावः पुराणेषु विष्णोरमिततेजसः ।

इस कही हुई दिव्य कथाको ब्राह्मणोंको सुनाता है वह सब अध्यात्मको पढ कर देवलोकमें प्रतिष्ठा पाता है [तात्पर्य-इस कथा-छलसे कहे हुए वृथावाद नहीं किन्तु आत्माके अधिकारका लेकर प्रवृत्त हुए शास्त्रको अर्थपूर्वक और पाठपूर्वक पढ़कर पुरुष देवलोकमें अर्थात् आत्मस्वरूपमें भली प्रकार प्रतिष्ठित हो जाता है, कृतकृत्य होजाता है] यह द्वैपायन ऋषिका कहा हुआ महात्माका पौष्करक नाम वाला प्रादुर्भाव क्रमशः कह दिया, इसको परमर्षियोंने संस्कृत किया है ॥ ६०-६२ ॥ जो पुरुष अप्रमत्त होकर इस अग्र्य पुरुष पुराणका जिस प्रकार कहा है, तिस प्रकार सुनता है, वह इस संसारमें कामनाओंको पा शोक-रहित हो जाता है और परलोकमें स्वर्गके फलोंको भोगता है [परै-रदर्शितः पन्थाः पौर्वापर्येक्षया मया । यथाकथञ्चिदुन्नीतः सुधियः शोधयन्तु तम्-दूसरोंने इस मार्गको भलीप्रकार नहीं दिखाया था मैंने पूर्वापरका अवलोकन कर इस विषयको यथोमति ठीक कर दिया है, अब इसको बुद्धिमान् पुरुष और ठीक कर लें] ६३ बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३२ ॥

[अब अध्यात्मविद्याको समाप्त करके इस बातको कहते हैं,

सतां कथयतां विप्र वाराह इति नः श्रुतः ॥ १ ॥ न जाने तस्य चरितं न विधिं नैव विस्तरम् । न कर्मगुणसद्भावं न हेतुं न मनीषितम् ॥ २ ॥ किमात्मको वराहोऽसौ का मूर्तिः कास्य देवता । किमाचारः किंप्रभावः किं वा तेन पुरा कृतम् ॥ ३ ॥ एतन्मे संशयस्त्वेन वाराहं श्रुतिविस्तरम् । यज्ञार्थं च समेतानां द्विजातीनां महात्मनाम् ॥ ४ ॥ वैशम्पायन उवाच । एतत्ते कथयिष्यामि

कि—इसमें पड़ने वाले विघ्नोंकी शान्ति करनेके लिए ईश्वरकी शरण लेनी चाहिये इस बातको दिखानेके लिए व्यासजी रक्षोघ्नत्व होने पर भक्तानुग्राहकत्वको वराह आदि तीन प्रादुर्भावों (अवतारों) से दिखाते हैं अर्थात् व्यापक वन्हिका जिस प्रकार काष्ठोंमें प्रादुर्भाव होजाता है,इसी प्रकार भगवान्के तीन अवतारों का अब वर्णन किया जायगा, अब पहिले वराहवतारका वर्णन करते हैं, कि–] जनमेजयने कहा, कि–हे विप्र ! मैंने ब्राह्मणों से पुराणोंमें अमित तेजस्वी विष्णुके वराहावतारका वर्णन सुना है ॥ १ ॥ परन्तु मैं उनके चरितको विधिको विस्तर को कर्मगुणसद्भावको हेतुको तथा मनीषितको नहीं जानता (अर्थात् मैं उनकी कार्यविधिरूप चरितको, प्रवर्तकको अर्थात् उन्होंने किस कारणसे अवतार लिया था इस बातको और लीलाओंके लोकोपकारत्वको नहीं जानता) ॥ २ ॥ वह वराह कैसी आत्मा वाले थे उनकी मूर्ति कैसी थी और इनके देवता कौन हैं, इनका आचार कैसा है, प्रभाव कैसा है और इन्होंने पहिले क्या किया था (अर्थात् यह यज्ञमय हैं वा योगमय हैं,और इनका शरीर भौतिक था या मायिक था,और इस वराहके अधिष्ठात्री देवता हरि हैं वा हर हैं) ॥ ३ ॥ यज्ञके लिए एकत्रित हुए ब्राह्मणोंसे मैंने इस श्रुतियोंमें वर्णित वराहावतारका वर्णन सुना है (परन्तु उपरोक्त बातोंका तत्त्व मुझे मालूम नहीं है,

पुराणं ब्रह्मसम्मितम् । नानाश्रुतिसमायुक्तं कृष्णद्वैपायनेरितम् । महावराहचरितं कृष्णस्याद्भुतकर्मणः ॥ ५ ॥ यथा नारायणो राजन् वाराहं वपुरास्थितः । दंष्ट्रया गां समुद्रस्थामुज्जहारारिसूदनः ॥६॥छान्दसीभिरुदाराभिः श्रुतिभिः समलंकृतम् । शुचिः प्रयत्नवान् भूत्वा निबोध जनमेजय ॥७॥ इदं पुराणं परमं पुण्यं वेदैश्च सम्मितम् । नानाश्रुतिसमायुक्तं नास्तिकाय न कीर्तयेत् ८ पुराणमेतदखिलं सांख्यं योगं तथैव च । कात्स्न्येन विधिना प्रोक्तं योऽस्यार्थं ज्ञास्यते पुमान् ॥ ९ ॥ विश्वेदेवास्तथा साध्या

अतः आप उनका वर्णन करिये) ॥४॥ वैशम्पायनजीने कहा, कि-मैं तुमसे अद्भुत कर्म करने वाले श्रीकृष्णके वराहचरितको कहता हूँ,यह चरित्र अनेक प्रकारकी श्रुतियोंके अनुकूल है,कृष्ण-द्वैपायनका कहा हुआ है,इस ब्रह्मसम्मित पुराणका मैं तुमसे अब वर्णन करता हूँ ॥ ५ ॥ हे राजन् ! जिस प्रकार उदार श्रुतियों से अलंकृत अरिदमन नारायणने वराहका शरीर धारण कर दाँत पर पृथ्वीको रख जिस प्रकार पृथ्वीका उद्धार किया था, उसको हे जनमेजय ! तुम पवित्र और सावधान होकर सुनो (श्रुतियोंमें लिखा है, कि-यस्य रूपं बिभ्रदिमामविन्दद्गुहां प्रविष्टां शरीरस्य मध्ये-जिस वराहके रूपको धारण करने वाले ईश्वरने गूढस्थान जलके मध्यमें डूबी हुई पृथ्वीका उद्धार किया था) ॥ ६ ॥ ७ ॥ यह परमपुण्यमय वेदसम्मित अनेक श्रुतियों से युक्त पुराण नास्तिकोंको नहीं सुनाना चाहिये ॥ ८ ॥ यह सारा (हरिवंश) पुराण उक्त प्रकारसे और आगेके वर्णनके अनुसार) योग और सांख्यसे भरा हुआ है (तात्पर्य यह है, कि-इस पुराणको तो पण्डित ही समझ सकते हैं और कथाकलाप-मात्रसे ही आजीविका करने वाले इसके तत्त्वको न समझने वाले वक्ता और श्रोता तो केवल पशु हैं) जो पुरुष पूर्णविधिसे कहे

रुद्रादित्यास्तथाश्विनौ । प्रजानां पतयश्चैव सप्त चैव महर्षयः ॥१०॥ मनः संकल्पजाश्चैव पूर्वजाश्च महर्षयः । वसवोऽप्सरसश्चैव गन्धर्वा यक्षराक्षसाः ॥ ११ ॥ दैत्याः पिशाचा नागाश्च भूतानि विविधानि च । ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा म्लेच्छादयो भुवि ॥ १२ ॥ चतुष्पदानि सर्वाणि तिर्यग्योनिगतानि च । जङ्गमानि च सत्वानि यच्चान्यज्जीवसंज्ञितम् ॥ १३ ॥ पूर्णे युगसहस्रान्ते ब्राह्मेऽहनि तथागते । निर्वाणे सर्वभूतानां सर्वोत्पातसमुद्भवे ॥ १४ ॥ हिरण्यरेतास्त्रिशिखस्ततो भूत्वा वृषाकपिः । शिखाभिर्विविधांल्लोकान् संशोषयति देहिनः ॥ १५ ॥ दह्यमानास्तत

हुए इस पुराणके अर्थको जानता है (वह पण्डित है) ॥ ९ ॥ [अब उनके क्रियात्मक होनेका उत्तर देते हैं अर्थात् वह योगमय थे वा यज्ञमय थे इसका विश्वेदेवा आदि श्लोकोंसे उत्तर देते हैं] विश्वेदेवा साध्य रुद्र आदित्य अश्विनीकुमार प्रजापति सप्तर्षि, मनके संकल्पसे उत्पन्न होने वाले पूर्वज महर्षि, वसु अप्सरा गंधर्व यक्ष और राक्षस, दैत्य पिशाच नाग अनेक प्रकारके प्राणी तथा पृथ्वीके ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र म्लेच्छ आदि चौपाये और सब तिर्यक् योनिके प्राणी जंगम और अजंगम सत्त्व, अधिक क्या जो कुछ जीव नामसे कहा जाता है, वह सहस्र युग पूर्ण होने पर जब ब्रह्माजीका दिन बीतने लगता है तब नष्ट होने लगते हैं, उस समय वज्रपात नेत्रस्फुरण भूकम्प आदि उत्पात होने लगते हैं ॥ १०–१४ ॥ उस समय वृषाकपि तीन शिखा वाले अग्निका रूप धारण करके अपनी लपटोंसे नानाप्रकारके लोकोंको भस्म करने लगते हैं [उस समय हरिहरात्मा वृषाकपि अथवा "वर्षतीति—वृषा कं जलं पिबति कपिः" जलका शोषण और वर्षण करने वाले ईश्वर अग्नि वायु और सूर्यरूप तीन लपटोंको बना कर जगत्को भस्म करने लगते हैं] ॥ १५ ॥

स्तस्य तेजोराशिभिरग्रतः । विवर्णवक्त्रदग्धांगा हतार्चिष्मद्भिरा-
ननैः ॥ १६ ॥ सांगोपनिषदा वेदा इतिहासपुरोगमाः । सर्व-
विद्याश्रयाश्चैव सत्यधर्मपरायणाः ॥१७॥ ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा
छन्दतो विश्वतो मुखम् । सर्वे देवगणाश्चैव त्रयस्त्रिंशच्च कोटयः॥१८
तस्मिन्नहनि संप्राप्ते तं हंसं महदक्षरम् । प्रविशन्ति महायोगं हरिं
नारायणं प्रभुम् ॥१९॥ तेषां भूयः प्रविष्टानां निधनोत्पत्तिरुच्यते ।
यथा सूर्यस्य सततमुदयास्तमयाविह ॥ २० ॥ पूर्णे युगसहस्रांते
कल्पो निःशेष उच्यते । तस्मिन् जीवकृतं सर्वं निःशेषमवतिष्ठते २१
संहृत्य लोकान् सर्वान् स सदेवासुरपन्नगान् । कृत्वात्मगर्भे भग-
वानास्त एको जगद्गुरुः ॥ २२ ॥ यः स्रष्टा सर्वभूतानां कल्पा-

उस समय उसकी तेजोराशियोंसे तपने पर सबके मुखोंके रङ्ग फीके पड़ जाते हैं अंग भस्म होने लगते हैं ॥ १६ ॥ उस दिन के आने पर सब विद्याओंके आश्रय अंगों और उपनिषदों सहित वेद और इतिहास तथा तैंतीस करोड़ देवता ईश्वरेच्छासे उत्पन्न चारों ओर मुख वाले ब्रह्माजीको साथमें लेकर महायोगी नारायण प्रभु हरिमें प्रवेश कर जाते है ॥ १७-१९ ॥ जिस प्रकार संसारमें नित्य प्रति सूर्यका उदय और अस्त होता रहता है, इसी प्रकार नारायणमें प्रविष्ट हुआ अर्थात् नारायणमें लीन हुआ संसार बारम्बार उत्पन्न होता है और बारम्बार फिर उन में लीन होजाता है ॥ २० ॥ सहस्र चतुर्युगी पूर्ण होने पर कल्प पूरा होजाता है, उस समय जीवोंका किया हुआ सारा कर्म निःशेष होजाता है अर्थात् उस समय निःशेष प्रलयके हेतु वायु आदिके अभावसे कर्मफल भोग नहीं होता ॥ २१ ॥ देवता असुर और पन्नगोंसहित सब लोकोंका संहार करके उनको आत्मगर्भमें लीन करके जगद्गुरु भगवान अकेले ही रहते हैं २२ जो अव्यक्त शाश्वत बारम्बार प्रलय होने पर सब प्राणियोंको

न्तेषु पुनः पुनः । अव्यक्तः शाश्वतो देवस्तस्य सर्वमिदं जगत् २३
नष्टार्ककिरणे लोके चन्द्ररश्मिविवर्जिते । त्यक्तभूताग्निपवने क्षीण-
यज्ञवषट्क्रिये ॥ २४ ॥ अपक्षिगणसंघाते सर्वमाण्यचरे पथि ।
अमर्यादाकुले रौद्रे सर्वतस्तमसा वृते ॥ २५ ॥ अदृश्ये सर्वलोके-
ऽस्मिन्नभावे सर्वकर्मणाम् । प्रशान्ते सर्वसम्पाते नष्टे वैरपरिग्रहे २६
गते स्वभावसंस्थानं लोके नारायणात्मके । परमेष्ठी हृषीकेशः
शयनायोपचक्रमे ॥ २७ ॥ पीतवासा लोहिताक्षः कृष्णो जीमूत-
सन्निभः । शिखासहस्रविकचं जटाभारं समुद्वहन् ॥ २८ ॥ श्री-
वत्सकलिलं पुण्यं रक्तचन्दनभूषितम् । वक्षो बिभ्रन्महाबाहुः स-
विद्युदिव तोयदः ॥ २९ ॥ पुण्डरीकसहस्रस्य मालास्य शुशुभे

रचते हैं यह सब जगत् उनका ही रचा हुआ है ॥ २३ ॥ जब संसारमेंसे सूर्यकी किरण नष्ट होजाती हैं, और संसार चन्द्रमाकी किरणोंसे सूना होजाता है, अग्नि और पवनसे रहित होजाता है, यज्ञ और वषट्क्रियाओंसे शून्य होजाता है ॥२४॥ पक्षियों का समूह नहीं रहता है, मार्गमें सब प्राणियोंका चलना वन्द हो जाता है, मर्यादाहीन होजाता है, रौद्र होजाता है और चारों ओर अंधकारसे छा जाता है ॥ २५ ॥ सब लोक अदृश्य होजाता है, सब कर्मोंका अभाव होजाता है, सबका चलना फिरना वन्द होजाता है, वैर आदि नहीं रहते हैं ॥ २६ ॥ इस प्रकार जब नारायणात्मक सब लोक स्वभावसंस्थानको प्राप्त होजाता है अर्थात् नारायणमें लीन होजाता है, उस समय परमेष्ठी हृषीकेश शयन करना चाहते हैं ॥ २७ ॥ उस समय वह पीला वस्त्र धारण कर रहे थे, उनके नेत्र लाल २ होरहे थे, और वह मेघोंकी समान दीखते रहे थे और बालोंकी सहस्रों लटों वाली जटाओं को धारण कर रहे थे ॥ २८ ॥ वह महाभुज रक्तचन्दनसे विभू-षित श्रीवत्ससे चिन्हित वक्षःस्थलके कारण बिजली वाले मेघकी

तदा । पत्नी चैव स्वयं लक्ष्मीर्देहमावृत्य तिष्ठति ॥ ३० ॥ ततः स्वपिति धर्मात्मा सर्वलोकपितामहः । किमप्यमितविक्रांतो निद्रायोगमुपागतः ॥ ३१ ॥ ततो वर्षसहस्रे तु पूर्णे स पुरुषोत्तमः । स्वयमेव विभुर्भूत्वा बुध्यते विबुधाधिपः ॥ ३२ ॥ ततश्चिन्तयते भूयः सृष्टिं लोकस्य लोककृत् । पितृदेवासुरनरान् पारमेष्ठ्येन कर्मणा ॥३३॥ ततश्चिंतयंतः कार्यं देवेषु समितिञ्जयः । संभवं सर्वलोकस्य विदधाति स वाक्पतिः ॥ ३४ ॥ कर्ता चैव विकर्ता च संहर्ता च प्रजापतिः । धाता विधाता च तथा संयमो नियमो यमः ॥ ३५ ॥ नारायणपरा देवा नारायणपराः क्रियाः । नारा-

समान मालूम होते थे ॥ २६ ॥ उस समय उनके कण्ठमें सहस्र कमलोंकी माला पड़ी थी उस समय उनकी पत्नी लक्ष्मी उनके शरीरका आलिंगन करके खड़ी हुई थी ॥ ३० ॥ उस समय वह सब लोकोंके पितामह अमित विक्रमी धर्मात्मा किसी निद्रायोग का आश्रय लेकर सोगए (और ऐसे ही सर्वदा सोया करते हैं) ॥ ३१ ॥ तदनन्तर सहस्र वर्ष पूर्ण होने पर वह पुरुषोत्तम स्वयं विभु होकर जागा करते हैं ॥ ३२ ॥ तदनन्तर वह लोककर्ता संसारकी सृष्टि करनेका विचार करते हैं और पारमेष्ठ्यकर्म से पितर देवता असुर और मनुष्योंको रचनेका उपाय करते हैं ॥ ३३ ॥ वह समितिञ्जय वाक्पति देवताओंको यथा २ कार्य बाँटना चाहिये, इसका विचार करके सब लोककी उत्पत्ति करते हैं ॥ ३४ ॥ वह (भूतोंके) कर्ता हैं, और भौतिक वस्तुओंको विविधरूपमें बनाने वाले विकर्ता हैं, संहार करने वाले हैं, प्रजापति हैं, साधारण काल आदिके रचने वाले धाता हैं, विशेष कारण कर्मरूपके रचने वाले विधाता हैं, संयम नियम और यमात्मक हैं ॥ ३५ ॥ देवता नारायणके आश्रयसे रहते हैं, सब क्रियाएँ नारायणके निमित्त ही की जाती हैं, श्रुति भी नारायण

यणपरो यज्ञो नारायणपरा श्रुतिः ॥ ३६ ॥ नारायणपरो मोक्षो नारायणपरा गतिः । नारायणपरो धर्मो नारायणपरः क्रतुः ३७ नारायणपरं ज्ञानं नारायणपरं तपः । नारायणपरं सत्यं नारायणपरं पदम् । नारायणपरो देवो न भूतो न भविष्यति ॥३८॥ स्वयम्भूरिति विज्ञेयः स ब्रह्मा भुवनाधिपः । स वायुरिति विज्ञेय एष यज्ञः सनातनः ॥३९॥ सदसच्च स विज्ञेयः स यज्ञः स प्रजाकरः । यद्वेदितव्यं त्रिदशैस्तदेष परिविन्दति ॥ ४० ॥ यच्च वेद्यं भगवतो देवा अपि न तद्विदुः । प्रजानां पतयः सप्त ऋषयश्च सहामरैः ॥ ४१ ॥ नास्यांतमधिगच्छन्ति ततोऽनन्त इति श्रुतिः ।

का प्रतिपादन करती हैं और यज्ञ भी नारायणके लिए ही किया जाता है ॥ ३६ ॥ नारायणका आश्रय लेनेसे मोक्ष मिलता है, परमगति भी नारायणका आश्रय लेनेसे मिल जाती है धर्म भी नारायणके आश्रयसे रहता है, क्रतु भी नारायणपर है । ३७॥ ज्ञान नारायणका आश्रय लेनेसे मिलता है, तप नारायणपर है, सत्य नारायणपर है और नारायण परमपद (चैतन्यज्योतिः) हैं, नारायणसे श्रेष्ठ देवता न कोई हुआ है और न कोई होगा ३८ इन नारायणको ही भुवनोंके स्वामी स्वयंभू ब्रह्मा समझना चाहिये इनको ही वायु समझना चाहिये, और यह नारायण ही सनातन यज्ञस्वरूप हैं ॥ ३९ ॥ नारायणको सत् असत् यज्ञ और प्रजाकर समझना चाहिये, जिस बातको देवता जानते हैं, उस को यही बताते हैं, और जिस बातको भगवान् जानते हैं उसको देवता नहीं जान सकते [आध्यात्मिक अर्थ इन्द्रियोंसे जो प्रकाशित होता है वह इसके द्वारा ही प्रकाशित होता है और जो स्वरूप इस (आत्मा) से प्रकाश्य है उसको इन्द्रियें प्रकाशित नहीं कर सकतीं] प्रजाओंके स्वामी, सप्तर्षि, और देवता भी इनका अन्त नहीं पासकते अत एव श्रुति इनको अनन्त कहती है। इनका

यदस्य परमं रूपं तन्न पश्यन्ति देवताः ॥४२॥ प्रादुर्भावेषु संभूतं यत्तदर्चन्ति देवताः । यत्र दर्शितवान् देवः कस्तदन्वेष्टुमर्हति ४३ ग्रामणीः सर्वभूतानामग्निमारुतयोर्गतिः । तेजसस्तपसश्चैव निधानममृतस्य च ॥४४॥ चतुराश्रमवर्णेषु चातुर्होत्रफलाशनः । चतुः सागरपर्यन्तश्चतुर्युगनिवर्तकः ॥ ४५ ॥ तदेष संहृत्य जगत् कृत्वा गर्भस्थमात्मनः । मुमोचाण्डं महायोगी धृतं वर्षसहस्रिकम् ।४६। सुरासुरद्विजभुजगाप्सरोगणैर्महौषधिक्षितिधरयक्षगुह्यकैः । प्रजापतिः श्रुतिधरराक्षसां कुलं तदासृजज्जगदिदमात्मना प्रभुः ॥४७॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

वैशम्पायन उवाच । जगदण्डमिदं पूर्वमासीत् सर्वं हिरण्मयम्।

जो परम रूप है उसको देवता नहीं अर्थात् (अवतार आदिमें) देखते हैं ॥ ४०-४२ ॥ अवतारोंमें दीखने वाले इनके रूपकी देवता पूजा करते हैं, भगवान् जिस रूपको दिखाते हैं, उसका पूरा २ पता कौन खोज सकता है ॥४३॥ भगवान् सब प्राणियों के नेता हैं और अग्नि और पवनकी गति हैं, तेज तप और अमृत के निधान हैं ॥ ४४ ॥ चारों आश्रम और चारों वर्णोंमें चातुर्होत्र के फलका उपभोग करने वाले हैं चारों सागर तकके प्राणियोंमें व्याप्त हैं और चारों युगोंके निवर्तक हैं ॥ ४५ ॥ महायोगी नारायण इस प्रकार सारे जगत्का संहार करके उसको अपने भीतर लीन कर लेते हैं फिर वह महायोगी सहस्र वर्ष तक धारण किये हुए अण्डको छोड़ते हैं ॥ ४६ ॥ वह अण्ड सुर असुर द्विज सर्प अप्सरा महौषधि पर्वत यक्ष और गुह्यकोंसे युक्त होता है, प्रभु प्रजापति ईश्वर ब्राह्मण और राक्षससे आकुल उस अण्डको उस समय रचते हैं ॥ ४७ ॥ तैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३३ ॥

वैशम्पायनजीने कहा कि-वेदकी श्रुति है, कि-प्रजापतिका

प्रजापतेर्मूर्तिमयमित्येनं,वैदिकी श्रुतिः ॥ १ ॥ ततो वर्षसहस्रान्ते विभेदोर्ध्वमुखं विभुः । लोकसञ्जननार्थाय विभेदाधोमुखं पुनः २ भूयोऽष्टधा विभेदाण्डं प्रभुर्वै लोकयोनिकृत् । चकार जगतश्चात्र विभागं सर्वभागवित् ॥ ३ ॥ यच्छिद्रमूर्ध्वमाकाशं परा सुकृतिनां गतिः । विहितं विश्वयोगेन यदधस्तद्रसातलम् ॥ ४ ॥ यदण्डमकरोत्पूर्वं देवलोकसिसृक्षया । समन्तादष्टधा यानि च्छिद्राणि कृतवांस्तु सः ॥ ५ ॥ विदिशस्ता दिशः सर्वा मनसैवाकरोद्द्विधा । नानारागनिरागाणि यान्यण्डशकलानि वै ॥ ६ ॥ बहु-

अर्थात् समष्टिजीवका मूर्तिमय शरीररूप जगदण्ड पहिले सुवर्णमय था ॥ १ ॥ सहस्र वर्ष बीतने पर प्रभुने उसको ऊपरसे फोड़ दिया और लोकोंको रचनेके लिए उसमें एक नीचेको मुख और किया [अर्थात् उस अण्डका ब्रह्मरन्ध्रके द्वारा भेदन किया]२ लोककर्ता प्रभुने उस अण्डको फिर आठ स्थानोंमें फोड़ा सर्व विभागको जानने वाले प्रभुने फिर उसमें जगत्का विभाग किया [आध्यात्मिक अर्थ-शरीराण्डमें भी वाणी पाणि पाद आदि तीन छिद्र हैं और श्रोत्र त्वचा चक्षु जिह्वा और नाक नामक भी पाँच छिद्र हैं] ॥ ३ । जो इसमें ऊपरका आकाश नामक छिद्र है, वह पुण्यात्माओंकी श्रेष्ठ गति है और विश्वयोगसे जो नीचेको छिद्र बनाया है, वह रसातल है [आध्यात्मिक अर्थ-अब विभागका ही वर्णन करते हैं; कि-ब्रह्मरन्ध्र परागति है अर्थात् ब्रह्मलोकप्रापिका है और जो अधोद्वार है वह भूमिके तल नरकको देने वाला है देवलोकको रचनेकी इच्छासे उन्होंने अण्डको रच कर उसमें जो] आठ छिद्र बनाए थे वे दिशा और विदिशा हैं,इन सबको उन्होंने अपने मनसे दो रूपका बना दिया[आध्यात्मिक अर्थ-उन्होंने अव्याकृत कारणसे अण्डको रच कर जो आठ छिद्र किये थे, वे "दिशन्ति स्वं विषयं ग्राहयन्ति दिशः-

वर्णधराश्चित्रा बभूवुस्ते बलाहकाः । यदण्डमध्ये स्कन्नं तद्द्रवमासीत् समाहितम् ॥७॥ जातरूपं तदभवत्तत्सर्वं पृथिवीतले । तस्य क्लेशार्णवौघेन प्राच्छाद्यत समन्ततः ॥ ८ ॥ पृथिवी निखिला राजन् युगान्ते सागरैरिव ॥ ९ ॥ यच्चाण्डमकरोत् पूर्वं देवलोकचिकीर्षया। तत्र तत्सलिलं स्कन्नं सोऽभवत् काञ्चनो गिरिः१० तेनाम्भसा प्लुताः सर्वा दिशश्चोपदिशस्तथा । अन्तरिक्षं च नाकं च यच्चान्यत् किंचिदन्तरम् ॥ ११ ॥ यत्र यत्र जलं स्कन्नं तत्र तत्र स्थितो गिरिः । शैलैः समस्तैर्गहना विषमा मेदिनी भवत्१२ तैः सपर्वनजालौघैर्बहुयोजनविस्तृतैः । पीडिता गुरुभिर्देवी पृथिवी व्यथिताभवत् ॥ १३ ॥ महीतले भूरिजलं दिव्यं नारायणात्मकम् । हिरण्मयं समुद्दिष्टं तेजोविमलरूपितम् ॥ १४ ॥ अशक्ता

अर्थात् वे विषयोंको ग्रहण कराने वाली इन्द्रियें हैं, उनको उसने मनकी उपाधिसे करा अर्थात् रूप आदिको देखनेकी इच्छासे रचा और उनको स्थूल सूक्ष्म दो प्रकारका बना दिया] उस अण्डके जो अनेक वर्ण वाले टुकड़े थे वे अनेक वर्णों वाले मेघ होगए, और उस अण्डके बीचमें जो द्रव भाग था वह पृथ्वीमें सुवर्ण होगया; जिस प्रकार प्रलयके समय पृथ्वी समुद्रजलसे छा जाती है, इसी प्रकार उस द्रवभागसे छागई ॥ ५—९ ॥ उन्होंने पहले देवलोकको रचनेकी इच्छासे जिस अण्डको बनाया उसमें जो जल था वह काञ्चनगिरि बन गया ॥१० । उस जलसे दिशा उपदिशा अन्तरिक्ष और स्वर्ग तथा जो कुछ भी उनके भीतर था वह सब भीग गया ॥११॥जहाँ २ पर वह जल गिरा तहाँ २ पर पर्वत होगया उन सारे पर्वतोंसे गहरी हुई पृथ्वी विषम होगई ॥१२॥ उन अनेक योजनोंमें फैले हुए बड़े भारी पर्वतोंसे दबकर पृथ्वी व्यथित होगई ॥ १३ ॥ पृथ्वीतलमें निर्मल तेजकी समान नारायणात्मक बहुतसा सुवर्णजल फैल गया उसको धारण

वै धारयितुमभो सा प्रविवेश ह । पीड्यमाना भगवतस्तेजसा तेन सा क्षितिः ॥ १५ ॥ पृथिवीं विशतीं दृष्ट्वा तामधो मधुसूदनः । उद्धारार्थं मनश्चक्रे लोकानां हितकाम्यया ॥ १६ ॥ श्रीभगवानुवाच । मत्तेज एव बलवत् समासाद्य तपस्विनी । रसातलं विशेद्देवी पंके गौरिव दुर्बला ॥ १७ ॥ धरण्युवाच । त्रिविक्रमायामितविक्रमाय महानृसिंहाय चतुर्भुजाय । श्रीशार्ङ्गचक्रासिगदाधराय नमोस्तु तस्मै पुरुषोत्तमाय ॥ १८ ॥ त्वयात्मना धार्यते वै त्वया संह्रियते जगत् । त्वं धारयसि भूतानि भुवनं त्वं बिभर्षि च ॥ १९ ॥ यत्त्वया धार्यते किञ्चित्तेजसा च बलेन च । ततस्तव प्रसादेन मया पश्चात्तु धार्यते ॥ २० ॥ त्वया धृतं धारयामि नाधृतं धारयाम्यहम् । न हि तद्विद्यते रूपं यत्त्वया न तु धार्यते २१

करनेमें असमर्थ होकर पृथ्वी नीचेको घुसने लगी इस प्रकार भगवान्के तेजसे दबकर जब पृथ्वी नीचेको घुसने लगी तब।१४।१५ मधुसूदन पृथिवीको नीचे घुसती देखकर संसारका हित करनेके लिये उसका उद्धार करनेका मनमें विचार करने लगे ॥१६॥ श्रीभगवान्ने कहा, कि-यह तपस्विनी पृथ्वी मेरे बलवान् तेजके पड़नेसे अँदनमें फँसने वाली दुर्बल गौकी समान रसातलमेंको डूबी जारही है ॥ १७ ॥ पृथ्वीने कहा कि-त्रिविक्रम अमितपराक्रमी महानृसिंह चतुर्भुजी और शार्ङ्ग चक्र तलवार और गदाको धारण करने वाले पुरुषोत्तमके लिये प्रणाम है ॥ १८ ॥ तुम अपने आप ही इस संसारको धारण करते हो और तुम अपने आप ही इस जगत्का संहार करते हो। आप प्राणियोंको धारण किये रहते हैं और आप संसारका पोषण करते हैं ॥१९॥ आप अपने बल अथवा तेजसे जिस वस्तुको धारण कर लेते हैं उसको ही पीछेसे आपकी कृपा पाकर मैं धारण करती हूँ ॥२०॥ आपकी धारण की हुई वस्तुको मैं धारण करती हूँ जिस वस्तुको आप

त्वमेव पुरुषो वीर नारायण युगे युगे । मम भारावतरणं जगतो हितकाम्यया ॥ २२ ॥ तवैव तेजसा क्रान्तां रसातलतलं गताम् । त्रायस्व मां सुरश्रेष्ठ त्वामेव शरणं गताम् ॥२३॥ दानवैः पीड्यमानाहं राक्षसैश्च दुरात्मभिः । त्वामेव शरणं नित्यमुपयामि सनातनम् ॥२४॥ तावन्मेऽस्ति भयं भूयो यावन्न त्वां ककुद्मिनम् । शरणं यामि मनसा शतशोऽप्युपलक्षये ॥ २५ ॥ श्रीभगवानुवाच। मा भैर्धरणि कल्याणि शान्तिं व्रज समाहिता । एष त्वामुचितं स्थानमानयामि मनीषितम् ॥ २६ ॥ वैशम्पायन उवाच । ततो महात्मा मनसा दिव्यं रूपमचिन्तयत् । किन्नु रूपमहं कृत्वा उद्धरामि वसुन्धराम् ॥ २७ ॥ जले निमग्नां धरणीं येनाहं वै समुद्धरे । इत्येवं चिन्तयित्वा तु देवो नारायणः प्रभुः ॥ २८ ॥

धारण नहीं करते उस वस्तुको धारण नहीं कर सकती ऐसा कोई रूप नहीं है जिसको आप धारण न कर रहे हों ॥ २१ ॥ हे नारायण ! आप पुरुष हैं हे वीर ! आप ही प्रत्येक युगमें जगत्का हित करनेकी इच्छासे मेरा भार उतारा करते हैं ॥२२॥ हे सुरश्रेष्ठ ! आपके तेजसे दबती हुई तथा रसातलमें डूबती हुई अपनी शरण लेने वालीकी आप रक्षा करिये ॥ २३ ॥ दुरात्मा दानव और राक्षसोंसे पीडा पाकर मैं सर्वदा आप सनातन पुरुष की ही शरण लिया करती हूँ ॥२४॥ जब तक मैं मनमें आपकी शरण नहीं लेती हूँ तब तक ही मुझे भय रहता है इस बातको मैंने सैंकड़ों बार देखा है ॥ २५ ॥ श्रीभगवान्ने कहा, कि—हे कल्याणि पृथ्वी तू डर मत ! और सावधान हो शान्ति पा, मैं अब तुझे तेरे अभीष्टयोग्यस्थान पर पहुँचाए देता हूँ ॥ २६ ॥ वैशम्पायनजीने कहा, कि-तदनन्तर वह महात्मा अपने मनमें दिव्यविचार करने लगे, कि- मैं कैसा रूप बना कर इस पृथिवी का उद्धार करूँ ॥ २७ ॥ कि- जिससे मैं जलमें डूबती हुई पृथ्वी

जलक्रीडारुचिस्तस्माद्वाराहं रूपमस्मरन् । हरिरुद्धरणे युक्तस्तदाभूदस्य भूमिभृत् ॥२९॥ अधृष्यं सर्वभूतानां वाङ्मयं ब्रह्मसंमितम् । दशयोजनविस्तारमुच्छ्रितं शतयोजनम् ॥ ३० ॥ नीलमेघप्रतीकाशं मेघस्तनितनिःस्वनम् । महागिरेः संहननं श्वेतदीप्तोग्रदंष्ट्रिणम् ॥३१॥ विद्युदग्निप्रतीकाशमादित्यसमतेजसम् । पीनवृत्तायतस्कन्धं क्रुद्धशार्दूलगामिनम् ॥ ३२ ॥ पीनोन्नतकटीदेशं वृषलक्षणपूजितम् । रूपमास्थाय विपुलं वाराहममितं हरिः ३३ पृथिव्युद्धरणार्थाय प्रविवेश रसातलम् । वेदपादो यूपदंष्ट्रः क्रतुदन्तश्चितीमुखः ॥ ३४ ॥ अग्निजिह्वो दर्भरोमा ब्रह्मशीर्षो महातपाः । अहोरात्रे क्षणधरो वेदाङ्गश्रुतिभूषणः ॥ ३५ ॥ आज्य-

---

का उद्धार कर सकूँ इस प्रकार विचार करनेके उपरान्त प्रभु-नारायण देवने जलमें क्रीड़ा करनेकी इच्छासे वराहके रूपका स्मरण किया तब भूमिको धारण करने वाले हरि उसका उद्धार करनेके लिये उद्यत होगए ॥ २८ ॥ २९ ॥ उस समय उन्होंने सब प्राणियोंसे अधृष्य वाणीमय वेदसंमित दश योजन लम्बा और सौ योजन ऊँचा नीले मेघकी समान और मेघके गड़गड़ाने की समान शब्द करने वाला बड़े भारी पर्वतकी समान शरीर वाला श्वेत और दमकती हुई उग्र डाढ़वाला बिजली और अग्नि की समान तथा आदित्यकी समान तेजवाला मोटे और गोल कन्धे वाला और सिंहकी समान गतिवाला मोटी और उठी हुई कमर वाला वृषभके लक्षणोंसे चिन्हित वराहका बड़ा भारी शरीर हरिने धारण कर लिया ॥ ३०-३३ ॥ जिस समय वह पृथिवी उद्धार करनेके लिये रसातलमें घुसे उस समय वेद उनके पाद थे यज्ञस्तम्भ डाढ़ थी यज्ञ दाँत थे वेदी मुख था ॥ ३४ ॥ अग्नि जिह्वा थी कुशायें रोम थे प्रणव शिर था और वह महातपस्वी दिन रातरूपी अर्थात् सूर्य और चन्द्ररूपी नेत्रोंको धारण कर रहे

नासाः स्रुवस्तुण्डः सामघोषस्वरो महान् । सत्यधर्ममयः श्रीमान् क्रमविक्रमसत्कृतः ॥ ३६ ॥ क्रियासत्त्रमहाघोणः पशुजानुर्मखाकृतिः । उद्गात्रन्तो महालिंगो बीजौषधिमहाफलः ॥३७॥ वाय्वंतरात्मा मन्त्रस्पृक् विक्रमः सोमशोणितः । वेदीस्कन्धो हविर्गंधो हव्यकव्यातिवेगवान् ॥३८॥प्राग्वंशकायो द्युतिमान्नानादीक्षाभिरर्चितः । दक्षिणा हृदयो योगी महासत्रमयो महान् ॥३९॥ उपाकर्मोष्ठरुचकः प्रवर्ग्यावर्तभूषणः । नानाछन्दोगतिपथो गुह्योपनिषदासनः ॥ ४० ॥ छायापत्नीसहायो वै मणिशृङ्ग इवोच्छ्रितः । भूत्वा यज्ञवराहोऽसौ युगपत् माविशद्गुरुः ॥४१॥ अद्भिः संच्छा-

थे और षडङ्गरूपी कुण्डल पहर रहे थे ॥ ३५ ॥ घृत उनकी नासिका थी स्रुव उनकी थूथड़ी थी और वह सामघोषरूपी बड़े भारी स्वरको कर रहे थे सत्य धर्ममय थे और वह श्रीमान् अर्थात् श्रीवाले क्रम और विक्रमोंसे अलंकृत थे ॥ ३६ ॥ और गवामयं आदि क्रियायज्ञरूपी बड़ी भारी नासिकाको धारण कर रहे थे पशु उनकी जंघा थी यज्ञ उनकी आकृति थी उद्गाता उनकी अँतड़ियें थीं वह महालिंग थे बीर्य और औषधिरूप महाफल वाले थे ॥ ३७ ॥ वायुरूपी अन्तरात्मावाले मन्त्ररूपी त्वचा वाले सोमरूपी रक्त वाले वेदीरूपी स्कन्ध वाले हविरूपी गन्ध वाले हव्य.कव्यरूपी बड़े भारी वेग वाले ॥ ३८ ॥ प्राग्वंशरूपी शरीर वाले कांतिमान् और अनेक प्रकारकी दीक्षाओंसे पूजित थे दक्षिणारूपी हृदय वाले थे और महायज्ञमय थे ॥ ३९ ॥ और उपाकर्मरूपी श्रेष्ठ भूषण वाले थे और प्रवर्ग्यरूपी नाभिसे विभूषित थे अनेक प्रकारके छन्दोगतिरूप मार्ग पर चलते थे और गुह्य उपनिषद्रूपी आसन वाले थे ॥ ४० ॥ छायारूपी पत्नी उनकी सहायता कर रही थी वह ऊँचे मणियोंके शिखरकी समान प्रतीत होरहे थे ऐसे महत्त्वमय ईश्वर यज्ञवराह बनकर जलमें घुस गए४१

क्षितागुर्वीं स तामाच्छ्रैत् प्रजापतिः । रसातलतले मग्नां पातालांतरसंश्रयाम् ॥ ४२ ॥ प्रभुर्लोकहितार्थाय दंष्ट्राग्रेणोज्जहार गाम् । ततः संस्थानमानीय पृथिवीं पृथिवीधरः ॥ ४३ ॥ मुमोच पूर्वं सहसा धारयित्वा धराधरः । ततो जगाम निर्वाणं मेदिनी तस्य धारणात् ॥ ४४ ॥ चकार च नमस्कारं तस्मै देवाय शम्भवे । एवं यज्ञवराहेण भूत्वा भूतहितार्थिना ॥ ४५ ॥ उद्धृता पृथिवी देवी लोकानां हितकाम्यया । अथोद्धृत्य क्षितिं देवो जगतः स्थापनेच्छया ॥ ४६ ॥ पृथिवीप्रविभागाय मनश्चक्रेंबुजेक्षणः । रसातलगतामेवं विचिन्त्य स सुरोत्तमः ॥ ४७ ॥ ततो विभुः प्र-

---

और वह प्रजापति रसातलके भी तलमें डूबी हुई पातालमें पड़ी हुई जलसे ढकी हुई पृथ्वीके पास पहुँच गए ॥ ४२ ॥ फिर वह प्रभु संसारका हित करनेके लिये अपनी डाढ़के द्वारा पृथ्वीको ऊपरको लाने लगे फिर वह पृथ्वीधर पृथ्वीको उसके स्थान पर लेआए ॥ ४३ ॥ फिर उन पृथ्वीधारीने उस पृथिवीको अपने ऊपर धारण करके एक साथ छोड़ दिया तब पृथ्वी उनके धारण करनेसे परम सुखी हुई ॥ ४४ ॥ उसने कल्याण करने वाले उन देवको प्रणाम किया प्राणियोंका हित चाहने वाले यज्ञवराह ने लोकोंका हित करनेकी इच्छासे पृथ्वीदेवका उद्धार किया था कमलकी समान नेत्रवाले देव पृथिवीका उद्धार करके जगत्को स्थापन करनेकी इच्छासे पृथिवीके विभाग करनेका मनमें विचार करने लगे उन देवताओंमें श्रेष्ठ भगवान्ने जब पृथिवी रसातलमें डूब रही थी तब ही ऐसा विचार कर लिया था ॥ ४५-४७ ॥ इस प्रकार श्रेष्ठ वराहका रूप धारण करने वाले विष्णु वृषाकपि अनुपम पराक्रमी महायशस्वी अच्युतने संसारका हित करनेके लिये अपनी एक डाढ़ पर रख कर पृथिवीका बलपूर्वक उद्धार

वरवराहरूपधृक् वृषाकपिः प्रसभमथैकदंष्ट्रया । समुद्धरद्धरणिमथै-
कविक्रमो महायशा लोकहितार्थमच्युतः ॥ ४८ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि
चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

तस्योपरि जलौघस्य महती नौरिव स्थिता। विततत्वात्तु देहस्य
न ययौ संसवं मही ॥१॥ ततः सञ्चिन्तयामास प्रविभागं क्षिते-
र्विभुः । समुच्छ्रयं च सर्वेषां पर्वताना नदीषु च ॥२॥ विलेखनं
प्रमाणं च गतिं प्रसूवमेव च । माहात्म्यं च विशेषं च नदीनाम-
न्वचिन्तयत् ॥ ३ ॥ चतुरन्तां धरां कृत्वा तथा चैव महार्णवम् ।
मध्ये पृथिव्याः सौवर्णमकरोन्मेरुपर्वतम् ॥ ४ ॥ प्राचीं दिशमथो
गत्वा चकारोदयपर्वतम् । शतयोजनविस्तारं सहस्रं च समुच्छ्र-

किया था ॥ ४८ ॥ चौंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३४ ॥

पृथिवी जलके समूहके ऊपर बड़ी भारी नौकाकी समान खड़ी होगई वराहके शरीरके लम्बे चौड़े होनेसे पृथिवी डूबी नहीं ॥१॥ तदनन्तर वह प्रभु पृथिवीके विभाग करनेका विचार करने लगे उन्होंने पर्वतोंके ऊँचे खड़े करनेका नदियोंके मार्गको बताने वाली रेखारूपसे वहनेका वह कितने कोसमें बहें इसका उनके उत्तर अथवा पूर्वकी ओर बहनेकी गतिका और उनके माहात्म्यका विचार किया ॥ २ ॥ ३ ॥ उन्होंने पृथिवीको चतुर्दल पद्मके आकार वाली बनाया (और २ पुराणोंमें भी लिखा है; कि- "भरताः केतुमालाश्च भद्राश्वाः कुरवस्तथा । पत्राणि भूमिपद्मस्य मर्यादा शैलवाह्यतः"-भूमिरूप कमलके भरत केतुमाल भद्राश्व और कुरु नामक चार पत्र हैं यह पर्वतके बाहरकी मर्यादा है) और समुद्रको भी बनाया तथा पृथिवीके बीचमें सुवर्णका मेरु-पर्वत बनाया ॥ ४ ॥ फिर उन्होंने पूर्व दिशामें जाकर चारसौ कोस चौड़ा चार हजार कोस ऊँचा तरुण आदित्यकी समान

यम् ॥ ५ ॥ जातरूपमयैः शृङ्गैस्तरुणादित्यसन्निभैः । आत्म-
तेजोगुणमयैर्वेदिकाभोगकल्पितम् ॥ ६ ॥ विनिर्याश्च महास्कन्धान्
काञ्चनान् पुष्करेक्षणः । नित्यपुष्पफलान् वृक्षान् कृतवांस्तत्र
पर्वते ॥ ७ ॥ शतयोजनविस्तारं ततस्त्रिगुणमायतम् । चकार स
महादेवः पुनः सौमनसं गिरिम् ॥ ८ ॥ नानारत्नसहस्राणां कृत्वा
तत्र सुसञ्चयम् । वेदिकां बहुवर्णाञ्च सन्ध्याभ्राभामकल्पयत् ९
सहस्रशृङ्गं च गिरिं नानामणिशिलातलम् । कृतवान् वृक्षगहनं
षष्टियोजनमुच्छ्रितम् ॥ १० ॥ आसनं तत्र परमं सर्वभूतनम-
स्कृतम् । कृतवानात्मनः स्थानं विश्वकर्मा प्रजापतिः ११ शिशिरं
च महाशैलं तुषारचयसन्निभम् । चकार दुर्गगहनं कन्दरान्तर-
मण्डितम् ॥ १२ ॥ शिशिरप्रभवां चैव नदीं द्विजगणायुताम् ।

अपने तेजसे युक्त सुवर्णके शिखरों वाला और जिसमें यज्ञ करने
से भोग भोगनेको मिलते हैं ऐसा उदयाचल पर्वत बनाया ५-६
कमलकी समान नेत्र वाले भगवान्ने सुवर्णके अनेक प्रकारके
शिखर बनाए और उस पर्वतमें सर्वदा पुष्प और फल देने वाले
वृक्ष बनाए ॥ ७ ॥ तदनन्तर उन महत्वमय देवने चारसौ कोस
लम्बा और बारहसौ कोस चौड़ा सौमनस नामका पर्वत बनाया ८
तहाँ पर अनेक प्रकारके सहस्रों रत्नोंकी खानें बनाईं और संध्या
समयके बादलोंकी आभाकी समान फीके रङ्ग वाली तलैटी
बनाई ॥ ९ ॥ फिर उन्होंने बहुतसी मणियोंके शिलातल वाला
चौबीस सौ कोस ऊँचा वृक्षोंसे गठा हुआ सहस्रशृङ्ग नामक पर्वत
बनाया ॥ १० ॥ प्रजापति विश्वकर्मा ईश्वरने तहाँ पर अपना
परम श्रेष्ठ मठ बनाया उसको सब प्राणी नमस्कार करते हैं ११
और पालेके ढेरकी समान शिशिर नामक महापर्वत बनाया उस
में चलना बड़ा कठिन है तथा उसमें गुफाओंके भीतर गुफाएँ
बनी हुई हैं ॥ १२ ॥ उन्होंने शिशिरपर्वतमेंसे एक नदी निकाली

चकार पुलिनोपेतां वसुधारामिति श्रुतिः ॥ १३ ॥ सा दिशं निखिलां प्राचीं पुण्यां सुखशतैश्चिताम् । शोभयत्यमृतप्रख्यैर्मुक्ताशङ्खविभूषितैः ॥ १४ ॥ नित्यपुष्पफलोपेतैश्छादयद्भिः सुसंहतैः । भूषिताभ्यधिकं कान्तैः सा नदी तीरजैर्द्रुमैः॥ १५ ॥ कृत्वा प्राचीविभागं च दक्षिणायामथो दिशि । चकार पर्वतं दिव्यं सर्वकाञ्चनराजतम् ॥ १६ ॥ एकतः सूर्यसंकाशं एकतः शशिसन्निभम् । स बिभ्रच्छुशुभेतीव द्वौ वर्णौ पर्वतोत्तमः ॥ १७ ॥ तेजसा युगपद्व्याप्तं सूर्याचन्द्रमसोरिव । वपुष्मन्तमथो तत्र भानुमन्तं महागिरिम् ॥१८॥ सर्वकामफलैर्हृद्यैर्वृतं रम्यैर्मनोरमैः । चकार कुञ्जरं चैव कुञ्जरप्रतिमाकृतिम् ॥ १९ ॥ सर्वतः काञ्चनगुहं बहुयोजनविस्तृतम् । ऋषभं प्रतिमं चैव ऋषभं नाम पर्वतम् ॥२०॥ हेम-

---

उस पर बहुतसे पक्षी रहते हैं वह रेतीली है और वसुधारा नामसे प्रसिद्ध है वह नदी मोती और शंखोंसे विभूषित अमृतकी समान सैकड़ों सरोवरोंवाली सारी पूर्व दिशाको सुशोभित कर रही है ॥ १४ ॥ वह नदी सर्वदा पुष्प फल देने वाले अपने तट पर उत्पन्न हुए सुन्दर छायावाले मनोहर वृक्षोंसे परम शोभा पाती है ॥१५॥ इस प्रकार पूर्व दिशाका विभाग करके उन्होंने दक्षिण दिशामें सुवर्ण और चाँदीका एक दिव्य पर्वत बनाया १६ वह एक ओरसे सूर्यकी समान है और दूसरी ओरसे चन्द्रमाकी समान है इन दोनों वर्णोंको धारण करनेके कारण वह श्रेष्ठ पर्वत परम शोभा पारहा है १७ वह सूर्य और चंद्रमाके तेजसे व्याप्त है, तदनन्तर उन्होंने भानुमान् नामक बड़े भारी पर्वतको बनाया १८ वह सब प्रकारके स्वादवाले मनोहर रमणीय वृक्षोंसे घिरा हुआ है फिर उन्होंने हाथीकी समान आकृति वाले कुञ्जर नामक पर्वत को रचा ॥ १९ ॥ उसमें चारों ओर सुवर्णकी गुहाएँ थीं और वह अनेक योजनोंमें फैला हुआ था फिर उन्होंने ऋषभकी

काञ्चनद्रुमसंछन्नं पुष्पहासं स दृष्टवान् । महेन्द्रमथ शैलेन्द्रं शत-
योजनमुच्छ्रितम् ॥२१॥ जातरूपमयैः शृङ्गैः सपुष्पितमहाद्रुमम् ।
मेदिन्यां कृतवान् देवः मतिक्षोभमिवाचलम् ॥ २२ ॥ नानारत्न-
समाकीर्णं सूर्येन्दुसदृशप्रभम् । चकार मलयं चाद्रिं चित्रपुष्पित-
पादपम् ॥२३॥ मैनाकं च महाशैलं शिलाजालसमावृतम् । दक्षि-
णस्यां दिशि शुभं चकाराचलमायतम् ॥ २४ ॥ सहस्रशिरसं
विन्ध्यं नानाद्रुमलताकुलम् । नदीं च विपुलावर्तां पुलिनश्रोणि-
भूषिताम् ॥ २५ ॥ क्षीरसंकाशसलिलां पयोधारामिति श्रुतिः ।
सुरम्यां तोयकलिलां विहितां दक्षिणां दिशम् ॥ २६ ॥ दिव्यां
तीर्थशतोपेतां प्लावयन्तीं शुभाम्भसा । दिशं याम्यां प्रतिष्ठाप्य
प्रतीचीं दिशमागताम् ॥ २७ ॥ अकरोत्तत्र शैलेन्द्रं शतयोजन-

समान ऋषभ नाम वाले पर्वतको रचा ॥२०॥ तदनन्तर सुवर्णके वृक्षोंसे गछे हुए पुष्पोंसे हँसते हुए चारसौ कोस ऊँचे पर्वतराज महेन्द्रको बनाया ॥ २१ ॥ उसके शिखर सोनेके हैं और तहाँके वृक्ष फूलोंसे भरे हुए रहते हैं तदनन्तर परमेश्वरने पृथ्वीमें जिस प्रकार क्षोभ होरहा हो इस प्रकार खड़े हुए विविध रत्नोंसे परिपूर्ण सूर्य और चन्द्रमाकी समान प्रभावाले चितकबरे पुष्पोंसे युक्त वृक्षोंवाले मलय नामक पर्वतको रचा।२२।२३। फिर उन्होंने दक्षिण दिशामें बहुतसी शिलाओंसे भरपूर मैनाक नाम वाले लम्बे चौड़े पर्वतको बनाया ॥ २४ ॥ फिर अनेक प्रकारके वृक्ष और लताओंसे व्याप्त सहस्र शिखर वाले विंध्याचलको बनाया, तहाँसे उन्होंने गम्भीर भ्रमर वाली पुलिनकी श्रोणीसे विभूषित क्षीरकी समान जल वाली एक नदी बनाई, वह पयोधारा नामसे प्रसिद्ध है, रमणीय है, और दक्षिण दिशामें बहती है ॥ २५ ॥ २६ ॥ उसमें सैंकड़ों दिव्य तीर्थ हैं और वह अपने शुभ जलसे दक्षिण दिशाको प्लावित करती हुई

मुच्छ्रितम् । शोभितं शिखरैश्चित्रैः सुगन्धैर्हिरण्मयैः ॥ २८ ॥ कांचनीभिः शिलाभिश्च गुहाभिश्च विभूषितम् । समाकुलं सूर्यनिभैः शालैस्तालैश्च भास्वरैः ॥२९॥शुशुभे जातरूपैश्च श्रीमद्भिश्चित्रवेदिकैः । षष्टिं गिरिसहस्राणि तत्रासौ संन्यवेशयत् ॥३०॥ मेरुप्रतिमरूपाणि वपुषा प्रभया सह । सहस्रजलधारं च पर्वतं मेरुसन्निभम् ॥ ३१ ॥ पुण्यतीर्थगुणोपेतं भगवान् संन्यवेशयत् । षष्टियोजनविस्तारं तावदेव समुच्छ्रितम् ॥ ३२ ॥ आत्मरूपोपमं तत्र वाराहं नाम नामतः । निवेशयामास गिरिं दिव्यं वैडूर्यपर्वतम् ॥ ३३ ॥ राजताः कांचनाश्चैव यत्र दिव्याः शिलोच्चयाः । तत्रैव चक्रसदृशं चक्रवन्तं महाबलम् ॥ ३४ ॥ सहस्रकूटं विपुलं

पश्चिम दिशामें आजाती है ॥ २७ ॥ इसके अतिरिक्त तहाँ पर प्रभुने एक सौ योजन ऊँचा पर्वतराज बनाया, वह सुवर्णके बडे २ विचित्र शिखरोंसे सुशोभित है ॥ २८ ॥ और सुवर्णकी शिला वाली गुहाओंसे विभूषित है और सूर्यकी समान (दमकते हुए) शाल ताल और तमालके वृक्षोंसे सुशोभित है ॥ २९ ॥ और सुवर्णकी विचित्र तलैटियोंसे सुशोभित है, तहाँ पर परमात्माने और भी साठ हजार पर्वत बनाए हैं ॥ ३० ॥ वे अपने शरीरकी कान्तिसे मेरुपर्वतकी समान प्रतीत होते हैं, तहाँ ही पर भगवान्ने पुण्यमय तीर्थके गुणोंसे युक्त जलकी सहस्रों धारोंको बहाने वाले मेरु पर्वतकी समान एक पर्वतको बनाया, वह चौबीस सौ कोसमें फैला हुआ है और इतना ही ऊँचा है ३२ फिर तहाँ पर उन्होंने अपने रूपकी समान अपने नामसे एक वाराह नामक पर्वत बसाया, वह पर्वत दिव्य है और वैडूर्यमणिका पर्वत है ॥ ३३ ॥ जहाँ पर चाँदी और सोनेके दिव्य पर्वत हैं तहाँ पर भगवान्ने चक्रकी समान चक्रवान् नाम वाले महाबलवान् पर्वतको स्थापित किया ॥ ३४ ॥ तदनन्तर भग-

भगवान् संन्यवेशयत् । शंखप्रतिमरूपं च राजतं पर्वतोत्तमम् ३५ सितद्रुमसमाकीर्णं शङ्खं नाम न्यवेशयत् । सुवर्णरत्नसम्भूतं पारिजातं महाद्रुमम् ॥ ३६ ॥ महतः पर्वतस्याग्रे पुष्पहासं न्यवेशयत् । शुभागतिरसां चैव घृतधारामिति श्रुतिः । वराहः सरितं पुण्यां प्रतीच्यामकरोत् प्रभुः । प्रतीच्यां संविधिं कृत्वा पर्वतान् काञ्चनोज्ज्वलान् ॥ ३८ ॥ गुणोत्तरांनुत्तरस्यां संन्यवेशयदग्रतः। ततः सौम्यगिरिं सौम्यमन्तरिक्षप्रमाणतः ॥ ३९ ॥ रुक्मधातुप्रतिच्छन्नमकरोद्भास्करोपमम् । स तु देशो विसूर्योपि तस्य भासा प्रकाशते ॥ ४० ॥ तस्य लक्ष्म्याधिकं भाति तपता रविणा यथा। सूक्ष्मलक्षणविज्ञेयस्तपतीव दिवाकरः ॥ ४१ ॥ सहस्रशिखरं चैव

वान्‌ने शंखकी समान रूपवाले सहस्र शिखर वाले पर्वत श्रेष्ठ चांदीके पर्वतको स्थापित किया ॥ ३५ ॥ उस पर श्वेत वृक्ष हैं उसका नाम शंख रखा फिर सुवर्ण और रत्नोंको उत्पन्न करने वाले पारिजात नाम वाले महावृक्षको स्थापित किया ३६ फिर उन्होंने बड़े भारी पर्वतके आगे पुष्पहासको स्थापित किया तदनन्तर प्रभुवराहने पश्चिम दिशामें रससे परिपूर्ण कल्याणस्वरूपा घृतधारा नामवाली नदीको बहाया इस प्रकार पश्चिम दिशामें सुवर्णकी समान उज्वल पर्वतोंको स्थापित करके ३७–३८ उत्तर दिशामें श्रेष्ठ गुण वाले पर्वतोंको स्थापित किया था पहले उन्होंने सुवर्णकी धातुसे ढके हुए अन्तरिक्षकी बराबर प्रमाण वाले सूर्य की समान सौम्यगिरि नाम वाले पर्वतको स्थापित किया वह सूर्यरहित देश भी उस पर्वतकी दमकसे दमकता रहता है ३९-४० जिस प्रकार तपने वाले सूर्यसे चन्द्रमा भासता है इसी प्रकार तहाँ पर तपने वाले दिवाकरको सूक्ष्म लक्षण वाला जानना चाहिये अर्थात् जिस प्रकार मध्यान्हके समय सूर्यके समीपमें वर्तमान चन्द्रमाकी कान्ति फीकी पड़जाती है इसी प्रकार उस पर्वत

नानातीर्थसमाकुलम् । चकार रत्नसंकीर्णं भूयोऽस्तं नाम पर्व-
तम्४२मनोहरगुणोपेतं मन्दरं चाचलोत्तमम् । उद्दामपुष्पगन्धं च
पर्वतं गन्धमादनम् ॥४३॥ चकार तस्य शृङ्गेषु सुवर्णरससम्भवम्।
जाम्बूं जाम्बूनदमयीमनन्ताद्भुतदर्शनाम् ॥४४॥ गिरिं च शिखरं
चैव तथा पुष्करपर्वतम् । शुभ्रं पाण्डुरमेघाभं कैलासं च नगोत्त-
मम् ॥ ४५ ॥ हिमवन्तं च शैलेन्द्रं दिव्यधातुविभूषितम् । निवे-
शयामास हरिर्वाराहीं तनुमास्थितः ॥४६॥ नदीं सर्वगुणोपेता-
मुत्तरस्यां दिशि प्रभुः । मधुधारां स कृतवान् दिव्यांमृषिशता-
कुलाम् ॥ ४७ ॥ एवं चैव क्षितिधराः सपक्षाः कामरूपिणः ।
तदा कृता भगवता विचित्राः परमेष्ठिना ॥४८॥ स कृत्वा प्रवि-

के सामने जाने पर सूर्य भी फीका पड़जाता है ४१ तदनन्तर उन्होंने सहस्र शिखर वाले विविध तीर्थोंवाले रत्नोंसे गढ़े हुए अस्ताचल नामक पर्वतको रचा४२तदनन्तर मनोहर गुणोंसे युक्त पर्वतोंमें श्रेष्ठ मन्दराचल नाम वाले पर्वतको रचा फिर उत्कट पुष्पगन्धिवाले गन्धमादन पर्वतको रचा ४३ उसके शिखरों पर सुवर्णका रस वहाने वाले सोते बना दिये और देखनेमें अद्भुत सुवर्णमयी जाम्बू नामकी अगाध नदी बना दी ॥ ४४ ॥ फिर शिखरों सहित पुष्कर नामक पर्वत बनाया श्वेत बादलोंकी आभाकी समान आभावाले पर्वतोंमें श्रेष्ठ शुभ्र कैलास पर्वतको बनाया ॥ ४५ ॥ फिर वराहका शरीर धारण करने वाले हरिने दिव्य धातुओंसे विभूषित पर्वतराज हिमाचलको स्थापित किया४६ तदनन्तर प्रभुने उत्तर दिशामें सब गुणोंसे युक्त और सैंकड़ों ऋषियोंसे भरी हुई मधुधारा नामवाली नदी बनाई ॥ ४७ ॥ इसप्रकार परमेष्ठी भगवान्ने उस समय इच्छानुसार रूप धारण करने वाले परवाले विचित्र पर्वतोंको बनाया था ॥४८॥ संसार का कल्याण चाहनेवाले भगवान् इस प्रकार पृथ्वीका विभाग

भागं तु पृथिव्या लोकभावनः । देवासुराणामुत्पत्तौ कृतवान् बुद्धिमत्तमाम् ॥४९॥ सर्वासु दिक्षु चाजगापगाश्चकार शैलान् विविधाभिधानान् । हिताय लोकस्य स लोकनाथः पुण्याश्च नद्यः सलिलोपगूढाः ॥ ५० ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

वैशम्पायन उवाच । जगत्स्रष्टुमना देवश्चिन्तयामास पूर्वजः ॥ तस्य चिंतयतो वक्त्रान्निसृतः पुरुषः किल ॥ १ ॥ ततः स पुरुषो देवं किं करोमीत्युपस्थितः । प्रत्युवाच स्मितं कृत्वा देवदेवो जगत्पतिः ॥ २ ॥ विभजात्मानमित्युक्त्वा गतोऽन्तर्धानमीश्वरः । अन्तर्हितस्य देवस्य सशरीरस्य भारत ॥३॥ प्रशान्तस्येव दीपस्य गतिस्तस्य न विद्यते । ततस्तेनेरितां वाणीं सोऽन्वचिंतयत प्रभुः ४ हिरण्यगर्भो भगवान् य एव च्छन्दसि श्रुतः । एष प्रजापतिः पूर्व-

करके देवता और असुरोंकी उत्पत्तिके लिये बड़ा भारी विचार करने लगे ॥४९॥ इस प्रकार लोकके नाथ भगवान्ने संसारका हित करनेके लिये सब दिशाओंमें घावकी समान जल बहानेवाले विविध नाम भारी पर्वतोंको और जलवाली पवित्र नदियोंको रचा था ॥ ५० ॥ पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३५ ॥

वैशम्पायनजीने कहा, कि—तदनन्तर पूर्वज देव मनमें जगत्को रचनेका विचार करने लगे, विचार करते २ उनके मुखमेंसे एक पुरुष निकला ॥ १ ॥ और वह पुरुष "मैं क्या करूँ" यह कहता हुआ उनके सामने खड़ा होगया, तब देवदेव जगत्पति मुस्करा कर उससे कहने लगे ॥ २ ॥ कि—'तू अपने आपेका विभाग कर' यह कह कर ईश्वर अन्तर्धान होगए, हे भारत ! सशरीर अन्तर्धान हुए देवकी गति शान्त हुए दीपककी समान नहीं मालूम हुई, तदनन्तर वेदमें जिनको हिरण्यगर्भ कहा है,

मपश्चभुवनाधिपः ॥ ५ ॥ तदा प्रभृति तस्याग्र्यो यज्ञः सांगो वि-
धीयते । प्रजापतिरुवाच । विभजात्मानमित्युक्तस्तेनास्मि सुमहा-
त्मना ॥ ६ ॥ कथमात्मा विभज्यः स्यात् संशयो ह्यत्र मे महान् ।
इति चिन्तयतस्तस्य ओमित्येवोत्थितः स्वरः ॥७॥ स भूमावन्त-
रिक्षे च नाके च कृतवांस्ततः । न चैवाभ्यसतस्तस्य मनसा रमयः
पुनः ॥ ८ ॥ हृदयाद्देवदेवस्य वषट्कारः समुत्थितः । भूम्यन्त-
रिक्षनाकानां परं भूयः स्वरात्मिकाः ॥९॥ महास्मृतिमयाः पुण्या
महाव्याहृतयोऽभवन् । छन्दसां प्रवरा देवी चतुर्विंशाक्षराऽभवत् ।
तत् पदं संस्मरन् दिव्यं सावित्रीमकरोत् प्रभुः ॥ १० ॥ ऋक्सा-
माथर्वयजुश्चत्वारो भगवान् प्रभुः । चकार निखिलान् वेदान्
ब्रह्मयुक्तेन कर्मणा ॥ ११ ॥ ततस्तस्यैव मनसः सनः सनक एव

और जो पहिले भुवनके अधिपति प्रजापति हुए थे, और जिन
का पहिला सांग यज्ञ किया जाता है, वह प्रभु परमात्माकी कही
हुई वाणीका विचार करने लगे,प्रजापतिने कहा,कि-उन महात्मा
ने मुझसे कहा था, कि-"तू अपने आपेका विभाग कर" ३-६
परन्तु मुझे यह बडा भारी संशय है कि-मैं अपने आपेका किस
प्रकार विभाग करूँ,जब वह इस प्रकार विचार रहे थे,उसी समय
ओम् ऐसा स्वर हुआ ॥ ७ ॥ उसको उसने फिर भूमि और
अन्तरिक्ष तथा स्वर्गमें किया, परन्तु अभ्यास करने पर उन
(प्रजापति) का मन उसमें नहीं लगा । ८ । तदनन्तर देवदेवके
हृदयसे वषट्कारकी ध्वनि उठी, तदनन्तर भूमि अन्तरिक्ष और
स्वर्गकी महास्मृतिमय पुण्य (भूः भुवः स्वः) महाव्याहृतियें हुईं,
तदनन्तर छन्दोंमें श्रेष्ठ चौबीस अक्षरों वाली देवी प्रकट हुई,
प्रभुने तब तत्पदका स्मरण करके सावित्रीको रचा ॥ ९ ॥ १० ॥
तदनन्तर उन प्रभुने ब्रह्मयुक्तकर्मसे सारे वेदके, ऋग्वेद, यजुर्वेद
सामवेद और अथर्ववेद नामक चार वेद बताये ॥ ११ ॥ तद-

च । सनातनश्च भगवान् वरदश्च सनन्दनः ॥ १२ ॥ सनत्कुमा-
रश्च विभुस्तत्र जज्ञे सनातनः । मानसाश्चैव पूर्वोद्या इत्येते षण्
महर्षयः ॥ १३ ॥ ब्रह्मार्णं कपिलं चैव षडेतांश्चैव योगिनः ।
यतयो योगतन्त्रेषु यान् स्तुवन्ति द्विजातयः ॥ १४ ॥ ततो मरीचि-
मत्रिं च पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् । भृगुमङ्गिरसं चैव मनुं चैव प्रजा-
पतिम् ॥ १५ ॥ पितॄंश्च सर्वभूतानां देवतासुररक्षसाम् । महर्षी-
नसृजच्छम्भुरष्टावेतांश्च मानसान् ॥ १६ ॥ एते युगसहस्रान्ते
याश्चैषामभवन् प्रजाः । कल्पे निःशेषशुक्ते तु ततो गच्छन्ति नि-
र्वृतिम् ॥ १७ ॥ भूयो वर्षसहस्रान्ते उत्पत्तिस्तु विधीयते । एते-
षामेव देवानां प्रजाकर्तृषु वै तदा ॥ १८ ॥ किं तु कर्मविशेषेण
देवतानां युगे युगे । नामजन्मविशेषाश्च त एव युगपर्यये ॥ १९ ॥
अंगुष्ठाद्दक्षिणाद्दक्ष उत्पन्नो भगवान् ऋषिः । तस्यैव तु पुनर्भार्या

नन्तर उनके मनसे सन सनक सनातन और वर देने वाले विभु
सनन्दन सनत्कुमार और भगवान सनातन प्रकट हुए, ये पहिले
छः मानस महर्षि हैं ॥ १२ ॥ १३ ॥ द्विजाति और संन्यासी
योगतन्त्रमें इन छः महर्षियोंकी और कपिलकी तथा ब्रह्माकी
स्तुति करते हैं १४ तदनन्तर उन शम्भुने मरीचि अत्रि पुलस्त्य
पुलह क्रतु भृगु अङ्गिरा और प्रजापति मनु इन आठ मानस
महर्षियोंको और सब देवता असुर तथा राक्षस और सब भूतोंके
पितरोंको उत्पन्न किया ॥ १५ ॥ १६ ॥ ये और इनकी जो प्रजा
उत्पन्न होती है, वह कल्प पूर्ण होने पर निर्वृति (निर्वाण) को
प्राप्त होजाती है ॥ १७ ॥ फिर सहस्र वर्षके अन्तमें इन देवताओं
को प्रजाकर्तारूपसे फिर उत्पत्ति की जाती है ॥ १८ ॥ किन्तु
कर्मविशेषसे प्रत्येक युगमें युगपर्यय होने पर इनके वैसे ही नाम
और जन्म होते हैं ॥ १९ ॥ उनके दाहिने अँगूठेसे ऐश्वर्यवान्
दक्ष ऋषि उत्पन्न हुए फिर उनकी भार्या बाएँ अँगूठेसे उत्पन्न

वाणांगुष्ठादजायत ॥ २० ॥ तस्य तत्रापवन् कन्या विश्रुता लोकमातरः । याभिर्व्याप्तास्त्रयो लोकाः प्रजाभिर्मनुजाधिप ॥ २१ ॥ अदितिं च दितिं कालामनायुं सिंहिकां मुनीम् । प्राधां क्रोधां च सुरभिं विनतां सुरसां तथा ॥ २२ ॥ दनुं कद्रुं च दुहितॄः प्रददौ कश्यपाय तु । प्रजां सञ्चिन्त्य मनसा गतिज्ञेनान्तरात्मना ॥२३॥ अरुन्धतीं वसुं यामीं लम्बां भानुं मरुत्वतीम् । संकल्पां च मुहूर्तां च साध्यां विश्वां च भारत ॥ २४ ॥ मनवे ब्रह्मपुत्राय कन्या दक्षो ददौ दश । ततः सर्वानवद्याङ्गीः कन्याः कमललोचनाः २५ पूर्णचन्द्रानना दिव्या गन्धवत्यो मनोरमाः । कीर्तिं लक्ष्मीं धृतिं पुष्टिं बुद्धिं मेधां क्षमां तथा ॥ २६ ॥ मतिं लज्जां वसुं चैव दक्षो धर्माय वै ददौ । अत्रेस्तु तनयो जातस्तस्य तोयात्मकः शशी २७ पुत्रो ग्रहाणामधिपः सहस्रांशुस्तमिस्रहा । तस्मै नक्षत्रयोगिन्यः

हुई ॥२०॥ हे मनुजाधिप ! दक्षसे दक्षकी स्त्रीमें लोककी माताएँ प्रसिद्ध कन्याएँ उत्पन्न हुई, उनकी प्रजाओंसे तीनों लोक व्याप्त हैं ॥ २१ ॥ मनमें संसारकी गतिका विचार करने वाले दक्षने अदिति दिति काला अनायु सिंहिका मुनि क्रोधा प्राधा सुरभि विनता सुरसा दनु और कद्रू नामकी अपनी पुत्रियें कश्यप जीके अर्पण कर दीं ॥ २२ ॥ २३ ॥ हे भारत ! और दक्षने अपनी अरुन्धती वसु यामी लम्बा भानु मरुत्वती संकल्पा मुहूर्ता साध्या और विश्वा इस प्रकार दश कन्याएँ ब्रह्माजीके पुत्र मनुको देदीं, ये सब कन्याएँ सर्वाङ्ग सुन्दरी, कमलकी समान नेत्र वाली, पूर्ण चन्द्रकी समान मुख वाली, दिव्य गन्धवाली और मनोरम थीं, इनके अतिरिक्त कीर्ति लक्ष्मी धृति पुष्टि बुद्धि मेधा क्षमा मति लज्जा और वसु नामक दश कन्याएँ दक्षने धर्मके अर्पण कर दीं, अत्रि ऋषिके तोयात्मक चन्द्रमा नामक पुत्र हुआ ॥ २४-२७ ॥ यह पुत्र ग्रहोंका स्वामी है, सहस्र किरणों

सप्तविंशतिरुत्तमाः ॥२८॥ रोहिणीप्रमुखाः कन्या दक्षः प्राचेतसो ददौ । एतासां पुत्रपौत्रं च मोच्यमानं मया शृणु ॥ २९ ॥ कश्यपस्य मनोश्चैव धर्मस्य शशिनस्तथा । अर्यमा वरुणो मित्रः पूषा धाता पुरन्दरः ३० त्वष्टा भगोंशुः सविता पर्जन्यश्चेति विश्रुताः । अदित्यां जज्ञिरे देवाः कश्यपस्य महात्मनः ॥३१॥ दित्याः पुत्रद्वयं जज्ञे कश्यपादिति नः श्रुतम् । हिरण्यकशिपुश्चैव हिरण्याक्षश्च वीर्यवान् । द्वावप्यमितविक्रान्तौ तपसा कश्यपोपमौ ॥३२॥ हिरण्यकशिपोः पुत्राः पंचैव सुमहाबलाः । प्रह्लादश्चैव संह्लादस्तथानुह्लाद एव च ॥३३॥ ह्रदश्चैव तु विक्रान्तः पंचमोऽनुह्रदस्तथा । प्रह्लादः पूर्वजस्तेषामनुह्लादस्तथापरः ॥३४॥ प्रह्लादस्य त्रयः पुत्रा विक्रान्ताः सुमहाबलाः । विरोचनश्च जम्भश्च सुजम्भश्चेति विश्रुताः ॥ ३५ ॥ बलिर्विरोचनसुतो बाण एको

वाला है, अन्धकारनाशक है, उसको प्रचेताके पुत्र दक्षने नक्षत्रयोगिनी रोहिणी आदि अपनी सत्ताईस कन्याएँ देदीं, अब इनके पुत्र पौत्रोंको तुम मुझसे सुनो ॥ २८ ॥ २९ ॥ तथा कश्यपके मनुके धर्मके और चन्द्रमाके पुत्र पौत्रोंको सुनो, अर्यमा वरुण मित्र पूषा धाता पुरन्दर त्वष्टा भग अंशु सविता और पर्जन्य ये प्रसिद्ध देवता महात्मा कश्यपसे अदितिमें उत्पन्न हुए।३०।३१। हमने सुना है, कि–कश्यपसे दितिके दो पुत्र हुए उनमें एक हिरण्यकशिपु था और दूसरा वीर्यवान् हिरण्याक्ष था वे दोनों अमित पराक्रमी थे और तपमें कश्यपकी समान थे ॥ ३२ ॥ हिरण्यकशिपुके पाँच महाबली पुत्र थे, (उनके नाम इस प्रकार हैं) प्रह्लाद संह्लाद अनुह्लाद ह्रद और पाँचवाँ महाबली अनुह्रद, प्रह्लाद इन सबमें बड़ा था और उनसे छोटा अनुह्लाद था । ३३ । ३४ । प्रह्लादके तीन महाबली पुत्र थे, वे विरोचन जम्भ और सुजम्भ नामसे प्रसिद्ध थे ॥ ३५ ॥ विरोचनके बलि नामक पुत्र हुआ

बलेः सुतः । बाणस्य चेन्द्रदमनः पुत्रः परपुरञ्जयः ॥ ३६ ॥दनोः पुत्रास्तु बहवो वंशे ख्याता महासुराः । विप्रचित्तिः प्रथमजस्तेषां राजा महामनाः ॥ ३७ ॥ गणः प्रजज्ञे क्रोधायाः पुत्रपौत्रमनन्तकम् । रौद्राः क्रोधवशा नाम क्रूरकर्माण एव च ॥३८॥ सिंहिका सुषुवे राहुं चन्द्रार्कग्रहमर्दनम् । ग्रस्तारं चैव चन्द्रस्य सूर्यस्य च महाप्रभम् ॥ ३९ ॥ कालायाः कालकल्पस्तु गणः परमदारुणः । अभवद्दीप्तसूर्याक्षो नीलमेघसमप्रभः ॥ ४० ॥ सहस्रशीर्षाः शेषश्च वासुकिस्तक्षकस्तथा । बहूनां कद्रुपुत्राणामेते प्राधान्यमागताः॥४१ धर्मात्मानो वेदविदः सदा प्राणिहिते रताः । लोकतन्त्रधराश्चैव वरदाः कामरूपिणः ॥४२॥ तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च गरुडश्च महा-

और बलिके एक बाण नामक पुत्र हुआ फिर बाणके इन्द्रदमन नामक पुत्र हुआ, वह शत्रुओंके नगरोंको जीतने वाला था ३६ और दनुके तो बहुतसे महासुर हुए थे, वे अपने वंशमें प्रसिद्ध थे, इनमें उनका राजा विप्रचित्ति बड़ा था और परम उदार मन वाला था ॥ ३७ ॥ और क्रोधाके बहुतसे पुत्र हुए, उसके पुत्र पौत्र अनन्त हैं, वे क्रोधवश नामक गण कहलाते हैं, रौद्र हैं तथा क्रूर कर्म करते रहते हैं ॥ ३८ ॥ सिंहिकाने चन्द्रमा और सूर्य नामक ग्रहोंका मर्दन करनेवाले राहु नामक पुत्रको उत्पन्न किया, वह महाकान्तिवान् राहु सूर्य और चन्द्रमाको ग्रस भी लेता है ३९ कालाके कालकी समान परम दारुण गण उत्पन्न हुआ, उसमेंके सब मनुष्य जलते हुए सूर्यकी समान नेत्र वाले थे और नीले मेघकी समान प्रभा वाले थे ॥ ४० ॥ कद्रूके पुत्रोंमें सहस्र फन वाले शेष वासुकि और तक्षक ये प्रधानताको पागए हैं ॥४१॥ ये धर्मात्मा हैं वेदवेत्ता हैं,लोकतन्त्रको धारण करने वाले हैं,वर देने वाले हैं और इच्छानुसार रूप धारण करने वाले हैं ॥४२॥ तार्क्ष्य अरिष्टनेमि महाबली गरुड अरुण और आरुणि ये विनता

थलः। अरुणिश्चारुणिश्चैव विनतायाः सुताः स्मृताः। इमाश्चाप्सरसः पुण्या विविधाः पुण्यलक्षणाः॥ ४३॥ सुषुवेऽष्टौ महाभागाः प्रधा देवर्षिपूजिताः। अनवद्यामनूकां च अनूनामरुणप्रियाम्। अनुगां सुभगां भासीं स्त्रियः प्राधा व्यजायत ॥४४॥ अलम्बुषा मिश्रकेशी पुण्डरीका तिलोत्तमा। सुरूपा लक्षणा क्षेमा तथा रम्भा मनोरमा ॥४५॥ असिता च सुबाहुश्च सुवृत्ता सुमुखी तथा। सुप्रिया च सुगन्धा च सुरसा च प्रमाथिनी॥४६॥ काम्या शारद्वती चैव मौनेयाप्सरसः स्मृताः। विश्वावसुर्भरण्यश्च गन्धर्वाश्चैव विश्रुताः॥ ४७॥ मेनका सहजन्या च पर्णिनी पुञ्जिकस्थला। घृतस्थला घृताची च विश्वाची चोर्वशी तथा ॥४८॥ अनुम्लोचेत्यभिख्याता प्रम्लोचेति च ता दश। मनोवती वापि तथा दिव्योऽप्सरसस्तथा ॥४९॥ प्रजापतेस्तु संकल्पात् संभूता भुवनप्रियाः। अमृतं ब्राह्मणा गावो रुद्राश्चेति चतुष्टयम् ॥५०॥ सुरभ्यपत्यमित्येतत् पुराणे निश्चयो महान्। एतद्वै कश्यपापत्यं

के पुत्र कहलाते हैं, प्राधाने देवता और ऋषियोंसे पूजित अनवद्या अनूका अनूना अरुणप्रिया, अनुगा, सुभगा भासी और स्त्री इन आठ पुण्य लक्षण अप्सराओंको उत्पन्न किया ॥ ४३ ॥ ४४ ॥अलम्बुषा मिश्रकेशी पुण्डरीका तिलोत्तमा सुरूपा लक्षणा क्षेमा रम्भा मनोरमा असिता सुबाहु सुवृत्ता सुमुखी सुप्रिया सुगन्धा सुरसा प्रमाथिनी काम्या और शारद्वती ये मुनिकी अप्सरा सन्तान प्रसिद्ध हैं, और विश्वावसु भरणी, प्रसिद्ध गन्धर्व, मेनका सहजन्या पर्णिनी पुञ्जिकस्थला घृताची घृतस्थला विश्वाची और उर्वशी अनुम्लोचा प्रम्लोचा ये दश अप्सराएँ और मनोवती तथा और भी दिव्य अप्सरायें ये सब भुवनप्रिय अप्सराएँ प्रजापतिके संकल्पसे उत्पन्न हुई हैं अमृत गौ रुद्र और ब्राह्मण ये चारों सुरभिकी सन्तान हैं, इस बातका

मनोर्वंशं निबोध मे ॥ ५१ ॥ संक्षेपेणैव तत्सर्वं कीर्तयिष्यामि
तेऽनघ । विश्वेदेवास्तु विश्वायाः साध्याः साध्यान् व्यजायत५२
मरुत्वत्यां मरुत्वन्तो वसोस्तु वसवः स्मृताः । भानोस्तु भानव-
स्तात मुहूर्ताश्च मुहूर्तजाः ॥५३॥ लम्बा घोषं विजज्ञेथ नागवीथी
च जामिजा । पृथिव्या विषमं सर्वं मरुत्वत्यामजायत ॥ ५४ ॥
*संकल्पायास्तु कौरव्य जज्ञे संकल्प एव च।धर्मस्य पुत्रो लक्ष्म्यास्तु
कामो जज्ञे जगत्प्रभुः ॥ ५५ ॥ यशो हर्षश्च कामश्च रत्यां पुत्रद्वयं
स्मृतम् । सोमस्य पुत्रो रोहिण्यां जज्ञे वर्चो महाप्रभः ॥ ५६ ॥
उदयन्नेव भगवान् वर्चस्वी येन जायते । पुरूरवाश्च भगवानु-
र्वशी येन युज्यते ॥ ५७ ॥ एवं पुत्रसहस्राणि स्त्रीणां चैव पर-

पुराणोंमें निश्चय है यह कश्यपकी सन्तान है,अब आप मनुके वंशको सुनिये ॥ ४५–५१ ॥ हे निष्पाप ! संक्षेपसे ही मैं इस वंशका तुमसे वर्णन करता हूँ; विश्वाके विश्वेदेवा उत्पन्न हुए और साध्याने साध्योंको उत्पन्न किया ॥५२॥ मरुत्वतीसे मरुत्वान् हुए और वसुकी सन्तान वसु कहलाते हैं, हे तात ! भानु की सन्तान भानु और मुहूर्ताकी सन्तान मुहूर्त कहलाते हैं ५३ लम्बाने घोषको उत्पन्न किया, नागवीथी और जामिजा तथा पृथ्वीमें जितने विषम पदार्थ हैं, वे सब मरुत्वतीमेंसे उत्पन्न हुए हैं ॥ ५४ ॥ हे कौरव्य ! संकल्पाके संकल्प उत्पन्न हुआ धर्म और लक्ष्मीसे जगत्प्रभु काम उत्पन्न हुआ ॥ ५५ ॥ रति में यशोहर्ष और काम नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए हैं,सोमके रोहिणी में वर्चा नामक महाप्रभा वाला पुत्र हुआ ॥ ५६ ॥ उसके कारण सोम भगवान उदय होते ही वर्चस्वी होजाते हैं और चन्द्रमाके पुरूरवा नामक पुत्र भी उत्पन्न हुआ उससे उर्वशीका संयोग हुआ था ॥ ५७ ॥ इस प्रकार दक्षकी कन्याओंकी सहस्रों पुत्र और स्त्रीसन्तान उत्पन्न हुई हैं;यह जगत्की मूल हैं, इनमें तीनों

स्थम् । एनापस्तु जगन्मूलं यत्र लोकाः प्रतिष्ठिताः ॥५८॥ प्रजापतिस्तु भगवान् गुणतः प्रेक्ष्य देहिनः । आधिपत्येषु युक्तेषु नियोजयति योगवित् ॥ ५९ ॥ दिशो दश क्षितिमृषयोर्णवान्नगान् द्रुपोषधीरुरगसरित्सुरासुरान् । प्रजापतीन् भुवनसृजो नभोभुवः क्रियामखानथ कृतवान् गिरीश्च सः ॥ ६० ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि
षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

वैशम्पायन उवाच । त्रयाणामपि लोकानामादित्यानां च भारत । चकार शक्रं राजानमादित्यसमतेजसम् ॥ १ ॥ स वज्री कवची विष्णुरदित्यामभिजज्ञिवान् । स्मृतेः सहायो द्युतिमान् यथा सोध्वर्युभिः स्तुतः ॥२॥ जातमात्रोऽथ भगवान् सकुशैर्ब्राह्मणैः धृतः । तदा प्रभृति देवेश कौशिकत्वमुपागतः ॥ ३ ॥ अभि-

---

लोक प्रतिष्ठित हैं ॥ ५८ ॥ तदनन्तर योगवित् प्रजापति भगवान् देहधारियोंके गुणोंको देख कर उनको उनके उचित स्थानों पर प्रतिष्ठित करते हैं ॥ ५९ ॥ फिर वह दशों दिशाएँ पृथ्वी ऋषि समुद्र वृक्ष पर्वत औषधि सर्प नदी देवता राक्षस भुवनोंके रचयिता प्रजापति स्वर्ग पृथ्वी यज्ञ और क्रिया आदिको रचते हैं ६० छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३६ ॥

वैशम्पायनजीने कहा, कि-हे भारत ! उन्होंने आदित्यकी समान तेज वाले इन्द्रको आदित्योंका और तीनों लोकोंका राजा बना दिया ॥ १ ॥ यह इन्द्र वज्र और कवचको धारण करने वाला है व्यापक है और अदितिमें उत्पन्न हुआ है, स्मृति उसकी सहायता करती है और कान्तिमान् है तथा अध्वर्यु उसकी स्तुति करते हैं ॥ २ ॥ भगवान् इन्द्र जिस समय उत्पन्न हुए थे उस समय ही कुशाधारी ब्राह्मणोंने उनका आश्रय ले लिया था, तबसे वह देव कौशिकपनको प्राप्त होगए हैं (इसी लिये

दिग्गाधिराज्ये तु सहस्राक्षं पुरन्दरम् । ब्रह्मा क्रमेण राज्यानि व्यादेष्टुमुपचक्रमे ॥ ४ ॥ यज्ञानां तपसां चैव ग्रहनक्षत्रयोस्तथा । द्विजानामोषधीनां तु सोमं राज्येऽभ्यषेचयत् ॥ ५ ॥ दक्षं प्रजापतीनां तु अम्भसां वरुणं पतिम् । पितॄणां सर्वनिधनं कालं वैश्वानरं प्रभुम् ॥६॥ गन्धानां चैव सर्वेषां भूतानां च शरीरिणाम् । शब्दाकाशबलानां च वायुरीशस्तदा कृतः ॥ ७ ॥ सर्वभूतपिशाचानां मृत्यूनां च गवां तथा । उत्पातग्रहरोगाणां व्याधीनां तु तथैव च॥८॥ व्रतानां चैव सर्वेषां महादेवः कृतः प्रभुः । यक्षाणां राक्षसानां च गुह्यकानां धनस्य च ९ रत्नानां चैव सर्वेषां कृतो विश्रवणः प्रभुः । सर्वेषां दंष्ट्रिणां शेषो नागानामथ वासुकिः १० सरीसृपाणां सर्वेषां प्रभुर्वै तक्षकः कृतः । सागराणां नदीनां च मेघानां वर्षणस्य च।आदित्यानामवरजः पर्जन्योऽधिपतिः कृतः ११

कोशमें लिखा है, कि–महेन्द्रगुग्गुलूकव्यालग्राहेषु कौशिकः) हे सहस्र नेत्र वाले पुरन्दरका राज्य पर अभिषेक करनेके अनन्तर ब्रह्माजी क्रमसे राज्य बाँटने लगे ॥ ४ ॥ उन्होंने यज्ञ तप ग्रह नक्षत्र द्विज और ओषधियोंके राज्य पर सोमका अभिषेक किया५ दक्षको प्रजापतियोंका राज्य देदिया और वरुणको जलका पति बना दिया, पितरोंके ऊपर सर्वनिधन वैश्वानर प्रभु कालका अभिषेक किया ॥ ६ ॥ और गन्ध,सब शरीरधारी प्राणी तथा शब्द आकाश और बलका वायुको स्वामी बना दिया ॥ ७ ॥ सकल भूत पिशाच मृत्यु गौ उत्पातग्रह रोग व्याधि और सब व्रतोंका महादेवको प्रभु बना दिया तथा यक्ष राक्षस गुह्यक धन और सब रत्नोंके ऊपर विश्रवाके पुत्र प्रभु कुबेरको राजा बना दिया, सब डाढ़ वाले सर्पों पर शेषको और नागजातिके सर्पों पर वासुकिको राजा बना दिया ॥८-१०॥सब सरीसृप जातिके सर्पों पर तक्षकको प्रभु बना दिया, सागर नदी मेघ और वर्षा

गन्धर्वाणामधिपतिस्तथा चित्ररथः कृतः। सर्वाप्सरोगणानां च कामदेवः प्रभुः कृतः ॥ १२ ॥ चतुष्पदानां सर्वेषां वाहनानां च सर्वशः। महेश्वरध्वजः श्रीमान् गोवृषोऽधिपतिः कृतः ॥ १३ ॥ दैत्यानां च महातेजा हिरण्याक्षः प्रभुः कृतः। हिरण्यकशिपुश्चैव यौवराज्येऽभिषेचितः ॥ १४ ॥ गणानां कालकेयानां महाकालः प्रभुः कृतः। अनायुषायाः पुत्राणां वृत्रो राजा तदा कृतः ॥ १५ ॥ सिंहिकातनयो यस्तु राहुर्नाम महासुरः। उत्पातानामनेकानामशुभानां प्रभुः कृतः ॥ १६ ॥ ऋतूनामथ सर्वेषां युगानां चैव भारत। पक्षाणां चैव मासानां तथैव तिथिपर्वणाम् ॥ १७ ॥ कलाकाष्ठामुहूर्तानां गतेरयनयोस्तथा। कृतः सम्वत्सरो राजा योगस्य गणितस्य च ॥ १८ ॥ पक्षिणां चैव सर्वेषां चक्षुषां च

तथा आदित्यों पर अवरज पर्जन्यको अधिपति बना दिया ११ चित्ररथको गन्धर्वोंका अधिपति बना दिया, कामदेवको सब अप्सराओंका प्रभु बना दिया ॥ १२ ॥ महेश्वरकी ध्वजामें रहने वाले श्रीमान् गोवृष (नन्दी) को सब चौपायोंका और(सवारी देने वाले) वाहनोंका स्वामी बना दिया ॥ १३ ॥ महातेजस्वी हिरण्याक्षको दैत्योंका प्रभु बना दिया और हिरण्यकशिपुका (दैत्योंके) युवराज पद पर अभिषेक कर दिया ॥१४॥ महाकालको कालकेय (नाम वाले राक्षसोंके) गणोंका प्रभु बना दिया, और (त्वष्टाकी भार्या) अनायुषाके पुत्रों पर वृत्रको राजा बना दिया ॥ १५ ॥ सिंहिकाका पुत्र राहु नामक एक बड़ा भारी असुर है, उसको अनेक अशुभ उत्पातोंका प्रभु बना दिया १६ हे भारत ! ब्रह्माजीने सम्वत्सरको सब ऋतुओंका युगोंका पक्षों का मासोंका तिथियोंका पर्वोंका कलाओंका काष्ठाओंका मुहूर्तों का गतिका अयनका योगका और गणितका राजा बना दिया१८ महाबली गरुडको पक्षियोंका दूर तक देखने वाले प्राणियोंका

महाबलः । सुपर्णो योगिनां चैव गरुडोऽधिपतिः कृतः ॥ १६ ॥ अरुणो गरुडभ्राता जपापुष्पचयप्रभः । योगानां चैव सर्वेषां साध्यानामधिपः कृतः ॥ २० ॥ पुत्रोस्य विरथो नाम कश्यपस्य प्रजापतेः । राजा प्राच्यां दिशि तथा वासवेनाधिपः कृतः २१ आदित्यस्य विभोः पुत्रो धर्मराजो महायशाः । दक्षिणस्यां दिशि यमो महेन्द्रेणैव सत्कृतः ॥ २२ ॥ कश्यपस्यौरसः पुत्रः सलिलान्तर्गतः सदा।अम्बुराज इति ख्यातः प्रतीच्यां दिशि पार्थिवः२३ पुलस्त्यपुत्रो द्युतिमान् महेन्द्रप्रतिमः प्रभुः । एकाक्षः पिंगलो नाम सौम्यायां दिशि पार्थिवः ॥२४॥ एवं विभज्य राज्यानि स्वयम्भूर्लोकभावनः । लोकांश्च त्रिदिवे दिव्यानददत् स पृथक् पृथक् ॥ २५ ॥ कस्यचित् सूर्यसंकाशान् कस्यचिद्वह्निसन्निभान्। कस्यचित् सुष्ठुविद्योतान् कस्यचिच्चन्द्रनिर्मलान् ॥ २६ ॥ नाना-

और भोगियों (सर्पों) का स्वामी बना दिया ॥१६॥ गुडहल के पुष्पकी समान आभा वाले गरुडजीके भ्राता अरुणको योगों का और सब साध्योंका स्वामी बना दिया ॥ २० ॥ इन्द्रने कश्यप प्रजापतिके विरथ नामक पुत्रको पूर्वदिशामें राजा बना दिया ॥ २१ ॥ विभु सूर्यके धर्मराज नामक महायशस्वी पुत्र यमको महेन्द्रने दक्षिण दिशामें सत्कार करके रक्खा ॥ २२ ॥ अम्बुराज (वरुण) नामसे प्रसिद्ध कश्यपके औरस पुत्र सर्वदा जलके भीतर रहते हैं ये पश्चिम दिशाके राजा हैं॥२३॥ महेंद्रकी समान कान्तिमान् पुलस्त्यके पिंगल नाम वाले एकाक्ष पुत्र उत्तर दिशामें राजा हैं ॥२४॥ इस प्रकार राज्योंको बाँटनेके अनन्तर संसारका कल्याण चाहने वाले स्वयम्भू स्वर्गमें दिव्य२लोकोंको अलग २ देने लगे ॥ २५ ॥ उन्होंने किसीको सूर्यकी समान, किसीको अग्निकी समान,किसीको खूब चमकीले और किसीको चन्द्रमाकी समान निर्मल (लोक दिये) ॥२६॥ ये लोक अनेक

वर्णान् कामगमाननेकशतयोजनान् । सतान् सुकृतिनां लोकान् पापदुष्कृतदुर्लभान् ॥ २७ ॥ येषां भासो निभान्त्यग्रो सौम्या-स्तारागणा इव । एते सुकृतिनां लोका ये जाताः पुण्यकर्मिणः॥२८ ये यजन्ति मखैः पुण्यैः समाप्तवरदक्षिणैः । स्वदारनिरता क्षान्ता ऋजवः सत्यवादिनः ॥ २९ ॥ दीनानुग्रहकर्तारो ब्रह्मण्या लोभ-वर्जिताः । सन्त्यक्तरजसः सन्तो यान्ति तत्र तपोमलाः ॥ ३० ॥ एवं नियुज्य तनयान् स्वयं लोकपितामहः । पुष्करं ब्रह्मसदन-मारुरोह प्रजापतिः ॥ ३१ ॥ सर्वे स्वयम्भुदत्तेषु पालनेषु दिवौ-कसः । रेमिरे स्वेषु लोकेषु महेन्द्रेणाभिपालिताः॥३२॥स्वयंभुवा शक्रपुरःसराः सुराः कृता यथार्हं प्रतिपालनेषु ते । यशो दिवं

वर्ण वाले इच्छानुसार चलने वाले सैंकड़ों योजनोंके हैं और पुण्यात्मा सज्जन पुरुषोंके लोक हैं और पाप तथा दुष्कर्म करने वालोंको इन लोकोंका मिलना दुर्लभ है ॥२७॥ जिनकी कान्ति दमकती रहती है और जो सौम्य तारगणसे दीखते हैं, ये उन पुण्यात्माओंके लोक हैं जो पुण्यकर्मी होगए हैं ॥ २८ ॥ जो पुरुष श्रेष्ठ २ दक्षिणा देकर पुण्यमय यज्ञोंको करते हैं, अपनी स्त्रीमें निरत रहते हैं, क्षमापालनमें तत्पर रहते हैं, सरल और सत्यवादी रहते हैं ॥ २९ ॥ दीनों पर अनुग्रह करते रहते हैं, ब्रह्मण्य और लोभ रहित रहते हैं वे रजोगुणको त्यागने वाले तपसे मल रहित हुए पुरुष इन लोकोंमें जाते हैं ॥ ३० ॥ लोक-पितामह प्रजापति इस प्रकार अपने पुत्रोंको नियुक्त करके फिर ब्रह्मसदन पुष्कर पर आरूढ हो गए ॥ ३१ ॥ और सब देवता भी महेन्द्रसे पालित हो ब्रह्माजीके दिए हुए अपने लोकोंमें रमण करने लगे ॥ ३२ ॥ इस प्रकार स्वयम्भूने इन्द्रपुरस्सर देवताओं को उनके उचित पालनीय विषयों पर नियुक्त कर दिया तब उन्होंने स्वर्ग पाया तथा उन यज्ञके भागका भोजन करने वालोंने

च प्रतिपेदिरे शुभं मुदं च जग्मुर्मखभागभोजिनः ॥ ३३ ॥
इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि
सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

वैशम्पायन उवाच। कदाचित्तु सपक्षास्ते पर्वता धरणीधराः॥ प्रस्थिता धरणीं त्यक्त्वा नूनं तस्यैव मायया ॥१॥ तदासुराणां निलयं हिरण्याक्षेण पालितम्। दिशं प्रतीचीमागम्य हृदे मज्जन् यथा गजाः ॥ २ ॥ तत्रासुरेभ्यः शंसन्त आधिपत्यं सुराश्रयम्। तच्छ्रुत्वाथ सुराः सर्वे चक्रुरुद्योगमुत्तमम् ॥३॥ क्रूरां च बुद्धिमतुलां पृथिवीहरणे रताः। आयुधानि च सर्वाणि जगृहुर्भीमविक्रमाः ४ चक्राशनीस्तथा खड्गान् भुशुण्डीश्च धनूंषि च। प्रासान् पाशांश्च शक्तीश्च मुसलानि गदास्तथा ॥ ५ ॥ केचित् कवचिनः सज्जा

यश और सुख पाया ॥ ३३ ॥ सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ३७

वैशम्पायनजीने कहा, कि—एक समय ईश्वरकी मायासे वे पक्षवाले पृथ्वीधारी पर्वत पृथ्वीको छोड कर चल दिये ॥ १ ॥ और पश्चिम दिशामें आकर हिरण्याक्षसे पालित असुरोंके स्थान पर पहुँच कर सरोवरमें जलक्रीडा करने वाले हाथियोंकी समान खड़े होगए ॥ २ ॥ तहाँ पर उन्होंने असुरोंसे देवताओंकी अधिपतिपनेकी बात कही अर्थात् यह कहा, कि—तुम्हारे कनिष्ठ भाई तो राज्य करते हैं और तुम बड़े होने पर भी अनीश्वर हो, इस बातको सुनकर (हिरण्याक्ष आदि) सब असुर बड़ा भारी उद्योग करने लगे ॥३॥ अतुल क्रूर बुद्धि धारण करके पृथिवी-हरणके काममें संलग्न होगए उन भयंकर पराक्रम करने वालोंने चक्र अशनि खड्ग भुशुण्डी धनुष प्रास पाश शक्ति मूसल गदा आदि सब आयुध संग्रह करलिये॥ ४ ॥ ५ ॥ कुछ असुर कवच को धारण करके तयार होगए और बहुतसे मत्त हस्ती पर और और बहुतसे घोडों वाले रथों पर और कुछ बड़े २ राक्षस घोडों

मत्तनागास्तथापरे । केचिदश्वरथान् युक्ता अपरेऽश्वान् महासुराः ॥ केचिदुष्ट्रांस्तथा खड्गान् महिषान् गर्दभानपि । स्वबाहुबलमा-स्थाय केचिच्चापि पदातयः ॥७॥ परिवार्य हिरण्याक्षं तलबद्धाः कलापिनः । इतश्चेतश्च निश्चेरुहृष्टाः सर्वे युयुत्सवः ॥८॥ ततो देवगणाः पश्चात् पुरन्दरपुरोगमाः । दैत्यानां विदितोद्योगाश्चक्रु-रुद्योगमुत्तमम् ॥९॥ महता चतुरंगेण बलेन सुसमाहिताः । बद्ध-गोधांगुलित्राणास्तूणवन्तः समार्गणाः ॥ १० ॥ उग्रायुधधराः देवाः स्वेष्वनीकेष्ववस्थिताः । ऐरावतगतं शक्रमन्वगच्छन्त पृष्ठतः ॥ ११ ॥ ततस्तूर्यनिनादेन भेरीणां च महास्वनैः । अभ्य-द्रवद्धिरण्याक्षो देवराजं पुरन्दरम् ॥१२॥तीक्ष्णैः परशुनिस्त्रिंशै-र्गदातोमरशक्तिभिः । मुशलैः पट्टिशैश्चैव छादयामास वास-वम् ॥ १३ ॥ ततोऽस्त्रबलवेगेन सार्चिष्मत्यः सुदारुणाः । घोर-

---

पर और कुछ असुर उष्ट्रों पर कुछ गैंडों पर और कुछ भैंसों पर और गधों पर सवार होगए और बहुतसे भुजबलका आश्रय लेकर पैदल ही तयार होगए ॥ ६ ॥७॥ और हाथोंमें दस्ताने पहिन धनुषोंको तान इधर उधरसे निकल हिरण्याक्षको घेर युद्ध को करनेकी इच्छासे चल पड़े ॥ ८ ॥ जब इन्द्र आदि देवताओं को दैत्योंके उद्योगका पता चला तब वे भी बड़ा भारी उद्योग करने लगे ॥ ९ ॥ उन्होंने चतुरङ्गिणी सेनाको तयार किया, हाथमें गोहके चमड़ेके दस्ताने बाँध लिये तरकस और तीर ले लिये । १० । इस प्रकार उग्र आयुधोंको धारण करके देवता अपनी २ सेनाकी टोलियोंमें खड़े होकर ऐरावत पर चढ़ कर चलते हुए इन्द्रके पीछे चलने लगे ११ तदनन्तर हिरण्याक्षने नगाड़े बजवा कर देवराज इन्द्र पर धावा किया १२ और तेज फरसे तलवार गदा तोमर शक्ति मूसल पटेकी वर्षा कर इन्द्रको छा दिया १३ तदनन्तर अस्त्रबलके वेगके कारण चिनगारियों

रूपा महावेगा निपेतुर्बाणवृष्टयः ॥ १४ ॥ शिष्टाश्च दैत्या बलिनः सितधारैः परश्वधैः । परिघैरायसैः खड्गैः क्षेपणीयैश्च मुद्गरैः १५ गण्डशैलैश्च विविधै रश्मिभिश्चाद्रिसन्निभैः । घातनीभिश्च गुर्वीभिः शतघ्नीभिस्तथैव च ॥१६॥ युगैर्यन्त्रैश्च निर्मुक्तैरर्गलैश्च विदारणैः । सर्वान् देवगणान् दैत्याः सन्निजघ्नुः सवासवान् १७ धूम्रकेशं हरिश्मश्रुं नानाप्रहरणायुधम् । रक्तसन्ध्याभ्रसंकाशं किरीटोत्तमधारिणम् ॥ १८ ॥ नीलपीताम्बरधरं शितदंष्ट्रोर्ध्वधारिणम् । आजानबाहुं हर्यक्षं वैडूर्याभरणोज्ज्वलम् ॥ १९ ॥ समुद्यतायुधं दृष्ट्वा सर्वे देवगणास्तदा । ते हिरण्याक्षमसुरं दैत्यानामग्रतः स्थितम् ॥ २० ॥ युगान्तसमये भीमं स्थितं मृत्युमिवाग्रतः । प्रविव्यथुः सुराः सर्वे तदा शक्रपुरोगमाः ॥२१॥ दृष्ट्वायातं हिरण्याक्षं महाद्रिमिव जङ्गमम् देवाः संविग्नमनसः प्रगृहीत-

वाली दारुण बाणवृष्टियें पड़ने लगीं ॥१४॥ शेष बलवान् दैत्य तीखी धारवाले फरसे परिघ खड्ग गोफनी और लोहेके मुद्गर गण्डशैल और तेजोयुक्त पर्वतकी समान बड़ी भारी तोपोंसे युगोंसे यन्त्रोंसे और कुल्हियोंसे इन्द्रको और देवताओंको मारने लगे ॥ १५ ॥ १७ ॥ धुमैले केश वाले हरी मूँछों वाले अनेक प्रकारके आयुधोंको धारण करने वाले सन्ध्याके लाल बादलों की समान उत्तम किरीटको धारण करने वाले नीले और पीले वस्त्र धारण करने वाले ऊपरको उठी हुई श्वेत डाढ़वाले घुटनों तक भुजावाले सिंहकी समान नेत्र वाले वैदूर्य मणिके गहनोंसे उज्वल हाथमें आयुध उठाकर दैत्योंके आगे खड़े हुए हिरण्याक्ष को प्रलयके समय सामने खड़े हुए भयंकर मृत्युकी समान देख कर इन्द्र आदि सब देवता खिन्न होने लगे ॥१८-२१॥ चलते फिरते बड़े भारी पर्वतकी समान हिरण्याक्षको आता हुआ देख कर देवताओंके मन घबड़ा उठे और वे संग्रामके मुहाने पर

शरासनाः ॥ २२ ॥ सहस्राक्षं पुरस्कृत्य तस्थुः संग्राममूर्धनि । सा च दैत्यचमू रेजे हिरण्यकवचोज्ज्वला ॥ २३ ॥ मद्दृद्धनक्षत्र-गणा शारदी द्यौरिवामला । तेऽन्योऽन्यमपि संपेतुः पातयन्तः पर-स्परम् ॥ २४ ॥ बभञ्जुर्बाहुभिर्बाहून् द्वन्द्वमन्ये युयुत्सवः । गदा-निपातैर्भग्नांगा बाणैश्च व्यथितोरसः ॥ २५ ॥ विनिपेतुः पृथक् केचित्तथान्येऽपि विजघ्निरे । बभञ्जिरे रथान् केचित् केचित् संम-र्दिता रथैः ॥२६॥ सम्बाधमन्ये संप्राप्ता न शेकुश्चलितुं रथात् । दानवेन्द्रबलं तत्र देवानां च महद्बलम् ॥ २७ ॥ अन्योन्यबाण-वर्षेण युद्धदुर्दिनमाबभौ । हिरण्याक्षस्तु बलवान् क्रुद्धः स दिति-नन्दनः ॥ २८ ॥ व्यवर्धत महातेजाः समुद्र इव पर्वणि । तस्य क्रुद्धस्य सहसा मुखान्निश्चेरुरर्चिषः ॥ २९ ॥ शस्त्रजालैर्बहु-

इन्द्रको आगे कर धनुषोंको लेकर खड़े होगए, सुवर्णके कवचों से उज्ज्वल वह दैत्यसेना जिसमें बहुतसे नक्षत्र निकले हुए होते हैं ऐसे शरद्ऋतुके आकाशकी समान निर्मल दीखने लगी तद-नन्तर वे सब एक दूसरेको गिराते हुए लड़ने लगे ॥२२-२४॥ वे भुजाओंसे भुजाओंको उखाड़ने लगे और बहुतसे युद्ध करना चाहने वाले पुरुष द्वन्द्वयुद्ध करने लगे गदाकी मारसे उनके अङ्गोंका चूरा होगया और बाणोंसे उनकी छातियें फट गईं२५ उस समय कुछ गिर रहे थे कुछ मार रहे थे कुछ रथको तोड़ रहे थे और कुछ रथोंसे मसले जारहे थे ॥ २६ ॥ बहुतसे पुरुष आपत्ति आजानेके कारण रथसे हट भी नहीं सकते थे उस समय दानवेन्द्रकी सेनाने और देवताओंकी बड़ी भारी सेनाने परस्पर बाण बरसाकर युद्ध दुर्दिन बना दिया,जिस प्रकार पर्वके समय समुद्र बढ़ने लगता है इसी प्रकार क्रोधमें भरा हुआ महातेजस्वी बलवान् दितिनन्दन हिरण्याक्ष बढ़ने लगा उस समय क्रोधमें भरे हुए हिरण्याक्षके मुखमेंसे सहस्रों लपटें निकलने लगीं२७-२९

विविधैस्तुभिः परिघैरपि । सर्वमाकाशमावव्रे पर्वतैरुत्थितैरिव ३०
बहुभिः शस्त्रनिस्त्रिंशैश्छिन्नभिन्नशिरोरसः । न शेकुश्चलितुं
देवा हिरण्याक्षार्दिता युधि ॥ ३१ ॥ सर्वे वित्रासिता देवा हिर-
ण्याक्षेण संयुगे । न शेकुर्यत्नवन्तोऽपि यत्नं कर्तुं विचेतसः ३२
तेन शक्रः सहस्राक्षः स्तम्भितोऽस्त्रेण धीमता । ऐरावतगतः संख्ये
नाशक्रच्चलितुं भयात् ॥ ३३ ॥ सर्वांश्च देवानखिलान् स परा-
जित्य दानवः । स्तम्भयित्वा च देवेशमात्मस्थं मन्यते जगत् ३४
स तोयमेघप्रतिमोऽग्निःस्वनं प्रभिन्नमातङ्गविलासविग्रहम् । धनु-
र्विधुन्वन्तमुदारवर्चसं तदाऽसुरेन्द्रं ददृशुः सुराः स्थिताः ॥ ३५ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि
वाराहे अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

उसने उठे हुए पर्वतोंकी समान अनेक प्रकारके शस्त्रजालोंसे
धनुषोंसे तथा परिघोंसे सारे आकाशको छादिया॥३०॥बहुतसी
तलवार और शस्त्रोंसे छिन्न भिन्न शिर और छातीवाले हिर-
ण्याक्षसे पीडित देवताओंमें युद्धमें टससे मस होनेकी भी शक्ति
न रही ॥३१॥ इस प्रकार जब हिरण्याक्षने युद्धमें देवताओंको
त्रस्त किया तब बेभान हुए देवता यत्न करना चाहने पर भी
यत्न न करसके ॥ ३२ ॥ बुद्धिमान् हिरण्याक्षने जब सहस्र
नेत्र वाले इन्द्रको अस्त्रसे स्तम्भित कर दिया तब ऐरावत पर पड़ा
हुआ इन्द्र भयके मारे युद्धमें घूम भी न सका ॥३३॥ वह दानव
सब देवताओंका पराजय करके और देवताओंके स्वामी इन्द्रको
स्तम्भित करके सब जगत्को अपने वशमें आया हुआ समझने
लगा ॥ ३४ ॥ तहाँ पर खड़े हुए देवताओंने जल वाले मेघकी
समान भयंकर गर्जना करने वाले मद झरते हुए हाथीके शरीर
की समान शरीरवाले महातेजस्वी असुरेन्द्रको उस समय धनुष
घुमाते हुए देखा ॥ ३५ ॥ अड़तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३८ ॥

वैशम्पायन उवाच । निष्प्रयत्ने सुरपतौ धर्षितेषु सुरेषु च । हिरण्याक्षवधे बुद्धिं चक्रे चक्रगदाधरः ॥ १ ॥ वाराहः पर्वतो नाम यः पूर्वं समुदाहृतः । स एष भूत्वा भगवानाजगामासुरान्तकृत् २ ततश्चन्द्रमतीकाशमगृह्णाच्छङ्खमुत्तमम् । सहस्रारं च तच्चक्रं चक्रपर्वतसन्निभम् ॥ ३ ॥ महादेवो महाबुद्धिर्महायोगी महेश्वरः । पठ्यते योऽमरैः सर्वैर्गुह्यैर्नामभिरव्ययः ॥४॥ सदसच्चात्मनि श्रेष्ठः सद्भिर्यः सेव्यते सदा । इज्यते यः पुराणैश्च त्रिलोके लोकभावनः ॥ ५ ॥ यो वैकुण्ठः सुरेन्द्राणामनन्तो भोगिनामपि । विष्णुर्यो योगविदुषां यो यज्ञो यज्ञकर्मणाम् ॥ ६ ॥ मखे यस्य प्रसादेन भुवनस्था दिवौकसः । आज्यं महर्षिभिर्दत्तमश्नुवन्ति

वैशम्पायनजीने कहा, कि-जब इन्द्र निष्प्रयत्न होगया और देवता दब गये तब चक्र और गदाको धारण करने वाले भगवान् हिरण्याक्षको मारनेका विचार करने लगे ॥ १ ॥ पहले वाराह नाम वाले जिस पर्वतका वर्णन किया है अर्थात् जिनमें दर्श पूर्णमास आदि पर्व अवयव रूपसे रहते हैं ऐसे यज्ञतनु नामक जिस पर्वतका पहले वर्णन किया है वह असुरोंका नाश करने वाले भगवान फिर वहाँ पर आये ॥ २ ॥ उन्होंने चन्द्रमा की समान उत्तम शंखको लेलिया और चक्र-पर्वतकी समान सहस्र अरे वाले चक्रको भी लेलिया ३ सब देवता जिन महादेव महाबुद्धि महायोगी महेश्वर और अव्ययका गुह्य नामोंसे पाठ करते हैं ॥४॥ जो सत् और असत् हैं और सज्जन पुरुष मनमें जिन श्रेष्ठ पुरुषका सेवन करते हैं और जिन तीनों लोकोंका कल्याण चाहनेवालेका त्रिलोकीके प्राचीन पुरुष यजन करते हैं ५ जो सुरेन्द्रोंके लिये वैकुण्ठ हैं सर्पोंमें अनन्तरूप हैं योगवेत्ताओं में विष्णु हैं और यज्ञकर्मोंमें यज्ञस्वरूप हैं ॥६॥ जिनके प्रसादसे अपने २ लोकोंमें बैठे हुए ही देवता हुत हूयमान और प्रहुत इन

त्रिधा हुतम् ॥ ७ ॥ यो गतिर्देवदैत्यानां यः सुराणां परा गतिः॥ यः पवित्रं पवित्राणां स्वयम्भूरव्ययो विभुः ॥ ८ ॥ यस्य चक्रप्रविष्टानि दानवानां युगे युगे।कुलान्याकुलतां यान्ति यानि दृष्टानि वीर्यतः ॥९॥ततो दैत्यद्रवकरं पौराणं शंखमुत्तमम् । धमन् वक्त्रेण बलवानाक्षिपद्दैत्यजीवितम् ॥ १० ॥ श्रुत्वा शंखस्वनं घोरमसुराणां भयावहम् । क्षुभिता दानवाः सर्वे दिशो दश व्यलोकयन् । ततः संरक्तनयनो हिरण्याक्षो महासुरः । कोऽयमित्यब्रवीद्रोषान्नारायणमुदैक्षत ॥ १२ ॥ वाराहरूपिणं देवं संस्थितं पुरुषोत्तमम् । शंखचक्रोद्यतकरं देवानामार्तिनाशनम् ॥१३॥ रराज शंखचक्राभ्यां ताभ्यामसुरसूदनः । सूर्याचन्द्रमसोर्मध्ये यथा नीलपयोधरः ॥१४॥ ततोऽसुरगणाः सर्वे हिरण्याक्षपुरोगमाः । उद्यता-

तीन प्रकारसे यज्ञमें महर्षियोंके द्वारा होमे हुए घृतका भक्षण करते हैं ॥ ७ ॥ जो देवता और दैत्योंकी गति हैं, देवताओंकी परमगति हैं और जो पवित्र वस्तुओंमें भी पवित्र हैं और स्वयंभू अव्यय तथा विभु हैं ॥ ८ ॥ जिनका वीर्य प्रसिद्ध होता है ऐसे दानवोंके कुल प्रत्येक युगोंमें जिनके चक्रके चक्करमें पड़कर आकुल होजाते हैं (ऐसे भगवान् तहाँ पर आगए) ॥९॥ तदनन्तर वह बलवान् दैत्योंमें भागड़ डालने वाले प्राचीन उत्तम शंखको मुखसे बजाकर दैत्योंके जीवनको धकेलासा देने लगे १० असुरोंको भयभीत करने वाली भयंकर शङ्खध्वनिको सुनकर दानव क्षुभित होकर दशों दिशाओंकी ओर देखने लगे ११ तदनन्तर रोषके कारण लाल नेत्रोंवाले मुख्यराक्षस हिरण्याक्ष ने यह कौन है यह कर देवताओंके दुःखको दूर करने वाले हाथोंमें शंख और चक्रको उठाने वाले वराहरूपधारी पुरुषोत्तम नारायणको देखा ॥ १२ ॥ १३ ॥ असुरोंका नाश करने वाले भगवान् उन शंख और चक्रोंसे सूर्य और चन्द्रमाके बीचमें

युधनिस्त्रिंशा हन्ता देवमुपाद्रवन् ॥ १५ ॥ पीड्यमानोऽतिबलिभि-
र्दैत्यैः सर्वायुधोद्यतैः । न चचाल हरिर्युद्धे कंप्यमान इवाचलः॥१६
ततः प्रज्वलितां शक्तिं वाराहोरसि दानवः । हिरण्याक्षो महा-
तेजाः पातयामास वीर्यवान् ॥ १७ ॥ तस्याः शक्त्याः प्रभावेण
ब्रह्मा विस्मयमागतः । समीपमागतां दृष्ट्वा महाशक्तिं महाबलः॥१८
हुंकारेणैव निर्भर्त्स्य पातयामास भूतले । तस्यां प्रतिहतायान्तु
ब्रह्मा साध्विति चाब्रवीत् ॥ १९ ॥ यः प्रभुः सर्वभूतानां वरा-
हस्तेन ताडितः । ततो भगवता चक्रमाविध्यादित्यसन्निभम् २०
ततः स्थितस्यैव शिरस्तस्य भूमौ पपात ह । हिरण्मयं वज्रहतं
मेरुशृङ्गमिवोत्तमम् ॥ २१ ॥ हिरण्याक्षे हते दैत्ये शेषा ये तत्र

विराजमान नीलमेघकी समान शोभा पारहे थे ॥ १४ ॥ तद-
नन्तर हिरण्याक्ष आदि सब राक्षस तलवार और आयुधोंको
उठा घमण्डमें भर कर भगवानके ऊपर चढगये ॥१५॥आयुध-
धारी अतिबली दैत्योंसे पीड़ा पाकर भी हरि युद्धमें कँपाये जाते
हुए पर्वतकी समान नहीं काँपे ॥ १६ ॥ तदनन्तर महातेजस्वी
बीर्यवान् हिरण्याक्षने एक दमकती हुई शक्ति बराह भगवान्के
वक्षःस्थलको लक्ष्य करके फैंकी ॥१७॥ उस शक्तिके प्रकाशको
देखकर ब्रह्माजी तो उस समय विस्मयमें पड़ गए, परन्तु महा-
बली बराह भगवान्ने उस शक्तिको पासमें आई हुई देख कर
हुं शब्दसे उसका तिरस्कार करके उसको पृथ्वीमें गिरा दिया
उस शक्तिके नष्ट होने पर ब्रह्माजीने बहुत अच्छा २ कहा १९
जो सब भूतोंके प्रभु हैं उन बराहको जब हिरण्याक्षने ताड़ित
किया, तब तो भगवान्ने अपने सूर्यकी समान चक्रको घुमा कर
(हिरण्याक्ष पर फैंका) ॥ २० ॥ तब तो जिस प्रकार मेरुका
सुवर्णमय शिखर वज्रसे कटने पर गिर पड़ता है, तैसे ही उस
हिरण्याक्षका शिर भूमिमें गिर पड़ा ॥ २१ ॥ हिरण्याक्षके मारे

दानवाः । सर्वे तस्य भयत्रस्ता जग्मुराशु दिशो दश ॥ २२ ॥स सर्वलोकाप्रतिचक्रचक्रो महाहवेष्वप्रतिमोग्रचक्रः । बभौ वराहो युधि चक्रपाणिः कालो युगान्तेष्विव दण्डपाणिः ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि

एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

वैशम्पायन उवाच । विद्राव्य तु रणे सर्वानसुरान् पुरुषोत्तमः । मुमोच तत्र बद्धांस्तान्पुरन्दरमुखान् सुरान् ॥ १ ॥ ततः प्रकृतिमापन्नाः सर्वे देवगणास्तथा । पुरन्दरं पुरस्कृत्य नारायणमुपस्थिताः ॥ २ ॥ देवा ऊचुः । त्वत्प्रसादेन भगवन् तव बाहुबलेन च । जीवामोऽद्य महाबाहो निष्क्रान्ताश्चान्तकाननात् ३ त्वच्छासनाद्धि भगवन् किं कुर्वन्त्वदितेः सुताः । इच्छामः पादशुश्रूषां तव कर्तुं सनातन ॥ ४ ॥ वैशम्पायन उवाच । तच्छ्रुत्वा

आने पर जो दानव वहाँ पर बचे हुए रह गए वे सब भगवान् के डरसे दशों दिशाओंमेंको भाग गए ॥ २२ ॥ उस समय सब लोकोंमें जिनकी आज्ञा बेरोकटोक चलती है और महायुद्धोंमें जिनका चक्र अद्वितीय रहता है ऐसे वराह भगवान् युद्धमें चक्र धारण करते हुए ऐसे प्रतीत होते थे, मानों युगान्तके समय हाथ में दण्डा लिये हुए काल खडे हों २३ उन्तालीसवाँ अध्याय समाप्त

वैशम्पायनजीने कहा, कि उन पुरुषोत्तमने रणमें सब असुरों को भगानेके अनन्तर बन्धनमें पड़े हुए इन्द्र आदि सब देवताओं को बन्धनसे मुक्त कर दिया ॥१॥ तब सब देवता स्वस्थ होकर इन्द्रको साथमें लेकर नारायणके पास गये ॥ २ ॥ देवताओंने कहा, कि-हे महाभुज भगवन् ! आपके प्रसादसे और आपके भुजबलसे हम इस समय जीवित दीख रहे हैं और कालके मुखमें से निकल आए हैं ॥ ३ ॥ हे भगवन् ! आपकी आज्ञासे अदितिके पुत्र अब क्या करें, हे सनातन ! अब हम आपकी

वचनं तेषां पुण्डरीकनिभेक्षणः । उवाच वचनं देवान् मुदायुक्तो हतद्विषः ॥ ५ ॥ श्रीभगवानुवाच । यो यस्य भवतो लोको मयैव विहितः पुरा । पाल्यतां स तु यत्नेन नियोगश्च क्वचित् क्वचित् ६ ऐश्वर्यं प्रतिपन्नाः स्थ क्रतुभागपुरस्कृताः । मयैव पूर्वं निर्दिष्टो नियोगः प्रतिपाल्यताम् ॥ ७ ॥ शक्रं चोवाच भगवान् वचनं दुन्दुभिस्वनः । इदं यथावत्कर्तव्यं सत्सु चासत्सु च त्वया ॥८॥ गच्छन्तु तपसा स्वर्गं मुनयः शंसितव्रताः । तव लोकं सुरश्रेष्ठ सर्वकामदुघं सदा ॥ ९ ॥ यायजूकाश्च ये केचिद्ब्राह्मणाः क्षत्रिया विशः । तेषां कामदुघा लोकाः स्वर्गमादिमनोहराः । यज्ञैरिष्ट्वा यायजूकाः फलं ते प्राप्नुवन्तु च ॥१०॥ भावः सद्धर्मशीलाना-

चरणसेवा करना चाहते हैं ॥ ४ ॥ वैशम्पायनजीने कहा, कि-उनके वचनको सुनकर कमलकी समान नेत्र वाले भगवान्ने प्रसन्न होकर जिनके शत्रु मारे गए थे उन देवताओंसे कहा ५ श्रीभगवान्ने कहा, कि-पहले जिसका जो लोक मैंने नियत कर दिया था उसका ही यत्नपूर्वक पालन करो और वेदरूपी आज्ञाका पालन करो अब तुम ऐश्वर्यसम्पन्न होगए हो अतः यज्ञका भाग पाओ और मेरी पहली आज्ञाका पालन करो ॥७॥ फिर दुन्दुभिकी समान शब्द करने वाले भगवान्ने इन्द्रसे कहा, कि-तुम सज्जन और असज्जन पुरुषोंके विषयमें इस बातको उचित रीतिसे करना, कि-॥ ८ ॥ जो मुनि प्रशंसनीय व्रतोंका पालन करें हे सुरश्रेष्ठ ! वे अपने तपसे सब कामनाओंको देनेवाले तुम्हारे लोक स्वर्गमें आवें ॥ ९ ॥ जो ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य नित्यप्रति यज्ञ करते रहते हैं स्वर्ग आदि मनोहर लोक उनकी कामनाको पूर्ण करनेके लिये बनाए गये हैं यज्ञोंसे यजन करने के अनन्तर वे यायजूक उसके फलको पाते रहें ॥ १० ॥ सद्धर्म पालन करने वालोंका अभ्युदय होता रहे और पापकर्म करने

मभवः पापकर्मणाम्।सन्तः स्वर्गजितः सन्तु सर्वाश्रमनिवासिनः११ सत्यशूरा रणेशूरा दानशूराश्च ये नराः। ते नरा स्वर्गमश्नन्तु सदा ये ज्ञानसूयवः ॥ १२ ॥ अश्रद्दधानाः पुरुषाः कामिनोऽर्थपराः शठाः। अब्रह्मण्या नास्तिकाश्च नरकं यान्तु मानवाः १३ एतावत् क्रियतां वाक्यं मयोक्तं त्रिदशेश्वराः। ततो मयि स्थिते सर्वान् बाधिष्यन्ते न चारयः ॥१४॥ इत्युक्त्वांतर्हितो देवः शंखचक्रगदाधरः। देवतानां च सर्वेषामभवद्विस्मयो महान् ॥ १५ ॥ एतदत्यद्भुतं दृष्ट्वा वाराहचरितं सुराः। नमस्कृत्वा वराहाय नाकपृष्ठमितो गताः ॥ १६ ॥ ततः स्वान्याधिपत्यानि प्रतिपन्नानि दैवतैः। सर्वलोकाधिपत्ये च प्रतिष्ठां वासवो गतः॥१७॥विमुक्ता दानवगणैः प्रकृतिं धरणी गता। स्थैर्यहेतोर्धरण्यास्तु ज्ञात्वा चागस्कृतान् गिरीन्। १८ ॥ स्वेषु स्थानेषु संस्थाप्य पर्वतानां पुर-

कर्मों का नाश होता रहे और आश्रम धर्ममें स्थित रहने वाले सब सन्त पुरुष स्वर्गको जीतते रहें ॥ ११ ॥ जो सत्यशूर हों रणशूर हों दानशूर हों और जो पुरुष असूया न करते हों वे पुरुष स्वर्गको भोगें ॥ १२ ॥ श्रद्धा न करनेवाले कामी अर्थपरायण धूर्त ब्राह्मणोंका सत्कार न करने वाले और नास्तिक पुरुष नरकमें पडा करें ॥ १३ ॥ हे देवताओं ! तुम मेरी इतनी बात मानना तब मेरे सामने शत्रु तुमको पीड़ा नहीं पहुँचा सकेंगे १४ इस प्रकार कह कर शंख चक्र और गदाको धारण करने वाले देव अन्तर्धान होगए, तब सब देवताओंको बड़ा भारी विस्मय हुआ ॥ १५ ॥ देवता वराहके इस अति अद्भुत चरित्रको देख कर वराहको प्रणाम करते हुए स्वर्गको चले गए ॥१६॥ और सब देवताओंने अपने २ अधिकारको पा लिया तथा इन्द्र भी सब लोकोंके अधिपति पद पर प्रतिष्ठित होगया ॥ १७ ॥ पृथ्वी भी दानवोंसे मुक्त होकर प्रकृतिस्थ होगई, तदनन्तर भगवान्

न्द्रः । चिच्छेद भगवान् पक्षान् वज्रेण शतपर्वणा ॥१९॥ सर्वेषामेव पक्षास्ते छिन्नाः शक्रेण धीमता । एकः सपक्षो मैनाकः सुरैस्तदभयः कृतः ॥ २० ॥ एष नारायणस्यागं प्रादुर्भावो महात्मनः । वाराह इति निर्दिष्टः पुराणे परिकीर्तितः ॥ २१ ॥ कृष्णद्वैपायनमतं नानाश्रुतिसमाहितम् । नाशुचेर्न कृतघ्नाय न नृशंसाय कीर्तयेत् ॥२२॥ न क्षुद्राय न नीचाय न गुरुद्वेषकारिणे। नाशिष्याय तथा राजन् कृतघ्नाय चैव हि ॥२३॥ आयुष्कामैर्यशःकामैर्महीकामैश्च मानवैः । जयैषिभिश्च श्रोतव्यो देवानामेष वै जयः ॥ २४ ॥ पुराणो वेदसंबद्धः शिवः स्वस्त्ययनो महान् । पावनः सर्वसत्त्वानां तत्कालविजयप्रदः ॥ २५ ॥ एष कौरव्य तत्त्वेन कथितस्तवनुपूर्वशः । वाराहस्य नृपश्रेष्ठ प्रादुर्भावो महा-

---

इन्द्रने पृथ्वीको स्थिर करनेके विचारसे और पर्वतोंको अपराधी जान कर भी पर्वतोंको उनके स्थानों पर खड़ा करके उनके परोंको अपने शतपर्व वज्रसे काटना आरम्भ कर दिया॥१८॥१९। बुद्धिमान् इन्द्रने सब पर्वतोंके पंख काट डाले, उस समय एक मैनाक पर्वत ही पक्ष वाला रहगया सो देवताओंने उससे प्रतिज्ञा करा ली थी कि-(तू समुद्रमें रहेगा तो तेरे पर न काटे जावेंगे२० विप्रेन्द्र पुराणोंमें महात्मा नारायणके इस अवतारको वराहावतार नामसे कीर्तन करते हैं ॥२१॥ हे राजन् ! अनेक श्रुतियों से भरे हुए कृष्णद्वैपायनके मतको अशुचि, कृतघ्न, नृशंस क्षुद्र नीच गुरुद्वेषी तथा अशिष्य पुरुषोंसे नहीं कहना चाहिये२२-२३ जो पुरुष आयु चाहते हों, यश चाहते हों, पृथ्वीको चाहते हों और जय चाहते हों उनको यह देवताओंका विजयवृत्तान्त सुनना चाहिये ॥ २४ ॥ यह प्राचीन वृत्तान्त वेदसम्मत है, कल्याणप्रद है, महान स्वस्त्ययन है, सब प्राणियोंको पवित्र करने वाला है और तत्काल विजय देने वाला है ॥ २५ ॥ हे नृपश्रेष्ठ कौरव्य!

स्मनः ॥ २६ ॥ ये यजन्ति मखैः पुण्यैः देवतानि पितॄनपि ।
आत्मानमात्मना नित्यं विष्णुमेव यजन्ति ते ॥२७॥ लोकायनाय
त्रिदशायनाय ब्रह्मायनात्मभवायनाय । नारायणायात्महिताय-
नाय महावराहाय नमस्कुरुध्व ॥ २८ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि
वाराहप्रादुर्भावे चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः॥४०॥

वैशम्पायन उवाच । वाराह एष कथितो नारसिंहमतः शृणु।
यत्र भूत्वा मृगेन्द्रेण हिरण्यकशिपुर्हतः ॥१॥ पुरा कृतयुगे राजन्
हिरण्यकशिपुः प्रभुः । दैत्यानामादिपुरुषश्चकार सुमहत्तपः॥२॥
दशवर्षसहस्राणि शतानि दश पञ्च च । जलवासी समभवत्
स्थानमौनव्रतस्थितः ॥३॥ ततः शमदमाभ्यां च ब्रह्मचर्येण चैव
हि । ब्रह्मा प्रीतोऽभवत्तस्य तपसा नियमेन च ॥४॥ ततः स्वयम्भू-

मैंने तुमसे यह महात्माके वराहावतारका वर्णन तत्त्वतः क्रमपूर्वक कह दिया ॥ २६ ॥ जो पुरुष पवित्र यज्ञोंसे देवता और पितरों की पूजा करते हैं और अपने आप (ब्रह्मस्वरूपसे) अपनी पूजा करते हैं, वे विष्णुकी ही पूजा करते हैं ॥ २७ ॥ सब लोकोंके अधिष्ठान, देवताओंके अधिष्ठान, ब्रह्माके अयन, आत्मभवायन, आत्महितके अधिष्ठान नारायण वराहको तुम प्रणाम करो ॥ २८ चालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४० ॥

वैशम्पायनजीने कहा कि मैंने तुमसे यह वराहावतारका वर्णन कर दिया, अब तुम नरसिंहावतारकी कथाको सुनो, इस अवतारमें भगवान्ने नृसिंहरूपसे प्रकट होकर हिरण्यकशिपुको मारा था ॥ १ ॥ हे राजन् ! पहिले कृतयुगके समय दैत्योंका आदिपुरुष प्रभु हिरण्यकशिपु बड़ा भारी तप करने लगा ॥२॥ उसने स्थावर पदार्थकी समान मौन धारण करके जलमें रह सोलह सहस्र वर्ष तक तप किया ॥ ३ ॥ उस समय ब्रह्माजी

भगवान् स्वयमागम्य तत्र ह । विमानेनार्कवर्णेन हंसयुक्तेन भास्वता ॥५॥ आदित्यैर्वसुभिः साध्यैर्मरुद्भिः दैवतैः सह । रुद्रैर्विश्वसहायैश्च यक्षराक्षसकिन्नरैः ॥६॥ दिग्भिश्चाथ विदिग्भिश्च नदीभिः सागरैस्तथा । नक्षत्रैश्च मुहूर्तैश्च खचरैश्च महाग्रहैः ७ देवैर्ब्रह्मर्षिभिः सार्धं सिद्धैः सप्तर्षिभिस्तथा । राजर्षिभिः पुण्यकृद्भिर्गन्धर्वैरप्सरोगणैः ॥ ८ ॥ चराचरगुरुः श्रीमान् वृतो देवगणैः सह । ब्रह्मा ब्रह्मविदां श्रेष्ठो दैत्यं वचनमब्रवीत् ॥ ९ ॥ ब्रह्मोवाच । प्रीतोऽस्मि तव भक्तस्य तपसानेन सुव्रत । वरं वरय भद्रन्ते यथेष्टं काममाप्नुहि ॥१०॥ ततो हिरण्यकशिपुः प्रीतात्मा दानवोत्तमः । कृताञ्जलिपुटः श्रीमान् वचनं चेदमब्रवीत् ॥११॥ हिरण्यकशिपुरुवाच । न देवासुरगन्धर्वा न यक्षोरगराक्षसाः । न मानुषाः पिशाचाश्च निहन्युर्मां कथञ्चन ॥ ॥ १२ ॥ ऋषयो

उसके शम दम ब्रह्मचर्य तप और नियमसे प्रसन्न होगए ॥४॥ तदनन्तर स्वयम्भू भगवान् ब्रह्मा सूर्यकी समान वर्ण वाले हंसों से जुते हुए प्रकाशवान् विमानमें बैठ कर स्वयं ही तहाँ पहुँच गए ॥ ५ ॥ और आदित्य वसु साध्य मरुत् देवता रुद्र विश्वेदेवा यक्ष राक्षस किन्नर दिशा विदिशा नदी सागर मुहूर्त आकाशचारी महाग्रह देवता ब्रह्मर्षि सिद्ध सप्तर्षि पुण्यात्मा राजर्षि गन्धर्व तथा अप्सरा और देवताओंसे घिरे हुए चराचर के गुरु ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ श्रीमान् ब्रह्माजी दैत्यसे यह वचन कहने लगे ॥ ६-९ ॥ ब्रह्माजीने कहा, कि-हे सुव्रत ! मैं तुझ भक्तके इस तपसे प्रसन्न होगया हूँ, तेरा कल्याण हो, अब तू वरको माँग ले और अपनी यथेष्ट कामनाको प्राप्त कर ॥१०॥ तब दानवोंमें श्रेष्ठ श्रीमान् हिरण्यकशिपु मनमें प्रसन्न हो हाथ जोड़ कर यह कहने लगा ॥ ११ ॥ हिरण्यकशिपुने कहा, कि-देवता असुर गन्धर्व यक्ष उरग राक्षस तथा पिशाच भी मुझे

नैव मां क्रुद्धाः सर्वलोकपितामह । शपेयुस्तपसा युक्ता वर एष वृतो मया ॥ १३ ॥ न शस्त्रेण न चास्त्रेण गिरिणा पादपेन वा न शुष्केण न चार्द्रेण स्यान्न चान्येन मे वधः ॥१४॥ न स्वर्गे-ऽथ पाताले नाकाशे नावनिस्थले । न चाभ्यन्तरात्र्यह्नोर्न चाप्य-न्येन मे वधः ॥१५॥ पाणिप्रहारेणैकेन सभृत्यबलवाहनम् । यो मां नाशयितुं शक्तः स मे मृत्युर्भविष्यति ॥ १६ ॥ भवेयमहमे-वार्कः सोमो वायुर्हुताशनः । सलिलं चान्तरिक्षं च नक्षत्राणि दिशो दश । अहं क्रोधश्च कामश्च वरुणो वासवो यमः ॥१७॥ धनदश्च धनाध्यक्षो यक्षः किंपुरुषाधिपः । मूर्तिमन्ति च दिव्यानि ममास्त्राणि महाहवे । उपतिष्ठन्तु देवेश सर्वलोकपितामहम् १८ पितामह उवाच । एते दिव्या वरास्तात मया दत्तास्तवाद्भुताः ।

किसी प्रकार न मार सके ॥ १२ ॥ और हे सब लोकोंके पिता-मह ! तपोयुक्त ऋषि क्रोधमें भरने पर भी मुझे शाप न दे सकें, यह वर मैं माँगता हूँ ॥ १३ ॥ मेरा वध न शस्त्रसे हो, न अस्त्र से हो, न पर्वतसे हो न वृक्षसे हो न सूखी वस्तुसे हो, न गीली वस्तुसे हो तथा और किसी वस्तुसे भी मेरा वध न हो ॥१४॥ मेरा वध स्वर्गमें भी न हो, पातालमें भी न हो, आकाशमें भी न हो, भूतल पर भी न हो, रात्रि और दिनके बीचमें भी मेरा वध न हो तथा और किसी पदार्थसे मेरा वध न हो ॥ १५ ॥ जो केवल एक थपेड़ेके प्रहारमात्रसे मुझे और मेरे भृत्य तथा वाहनोंको मार सके, उससे मेरी मृत्यु हो ॥ १६ ॥ मैं ही सूर्य चन्द्रमा वायु अग्नि जल अन्तरिक्ष और दशों दिशाएँ क्रोध काम वरुण इन्द्र और यम बन जाऊँ ॥१७॥ और मैं ही धनाध्यक्ष-कुबेर और किंपुरुषाधिप यक्ष बन जाऊँ, और हे देवेश ! मुझ सब लोकोंके पितामहके सामने युद्धके समय सब दिव्य अस्त्र मूर्ति धारण करके उपस्थित होजाया करें ॥ १८ ॥ पितामहने

सर्वान् कामानल्पभावात् प्राप्स्यसि त्वं न संशयः ॥ १९ ॥ वैश-म्पायन उवाच । एवमुक्त्वा स भगवान् जगामाकाशमेव च । वैराज्यं ब्रह्मसदनं ब्रह्मर्षिगणसेवितम् ॥ २० ॥ ततो देवाश्च नागाश्च गन्धर्वा मुनिभिः सह । वरप्रदानं श्रुत्वैव पितामहमुप-स्थिताः ॥ २१ ॥ देवा ऊचुः । वरेणानेन भगवन् वधिष्यति स नोऽसुरः । तत् प्रसीदस्व भगवन् वधोऽप्यस्य विचिन्त्यताम् २२ वैशम्पायन उवाच । भगवान् सर्वभूतानामादिकर्ता स्वयं प्रभुः । स्रष्टा च हव्यकव्यानामव्यक्तः प्रकृतिर्ध्रुवः ॥ २३ ॥ सर्वलोक-हितं वाक्यं श्रुत्वा देवः प्रजापतिः । आश्वासयामास सुरान् सु-शीतैर्वचनाम्बुभिः ॥ २४ ॥ अवश्यं त्रिदशास्तेन प्राप्तव्यं तपसः फलम् । तपसोऽन्ते स भगवान् वधं विष्णुः करिष्यति ॥ २५ ॥

कहा, कि-हे तात ! मैंने तुझे यह अद्भुत दिव्य वर देदिये, तू अल्पभावसे इन सब कामनाओंको पाजावेगा, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ १९ ॥ वैशम्पायनजीने कहा, कि-इस प्रकार कह कर वह भगवान् आकाशमेंको होकर अपने ब्रह्मर्षियोंसे सेवित वैराज ब्रह्मसदनको चले गए ॥ २० ॥ तदनन्तर इस वरदान की बातको सुन कर देवता और गन्धर्व मुनियोंको साथमें लेकर ब्रह्मांजीके पास पहुँच गए ॥ २१ ॥ फिर देवता कहने लगे, कि हे भगवन् ! इस वरसे तो वह असुर हमें पीड़ित करने लगेगा, इस लिये हे भगवन् ! आप कृपा करके इसके वधका भी उपाय विचारिये ॥ २२ ॥ वैशम्पायनजीने कहा, कि-भगवान् सब प्राणियोंके आदिकर्ता, स्वयम्प्रभु, हव्य कव्योंके रचयिता, अव्यक्त, प्रकृति ध्रुव प्रजापति ब्रह्मा सब लोकका हित करने वाले वाक्यको सुन कर शीतल वचनरूपी जलसे देवताओंको ढाढस देने लगे ॥ २३ ॥ २४ ॥ कि-हे देवताओ ! उसको तपका फल तो अवश्य मिलना चाहिये, जब उसका तप समाप्त

एतच्छ्रुत्वा सुराः सर्वे वाक्यं पंकजजन्मनः । स्वानि स्थानानि दिव्यानि प्रतिजग्मुर्मुदान्विताः ॥ २६ ॥ वैशम्पायन उवाच । लब्धमात्रे वरे तस्मिन् सर्वाः सोऽबाधत प्रजाः । हिरण्यकशिपुर्दैत्यो वरदानेन दर्पितः ॥२७॥ आश्रमेषु मुनीन् सर्वान् ब्राह्मणान् संशितव्रतान् । सत्यधर्मरतान् दान्तान् धर्षयामास वीर्यवान् ॥ २८॥ देवांस्त्रिभुवनस्थांश्च पराजित्य महासुरः । त्रैलोक्यं वशमानीय स्वर्गे वसति दानवः ॥२९॥ यदा वरमदोन्मत्तश्चोदितः कालधर्मणा । यज्ञियानकरोद्दैत्यान् दैवतान्यप्ययज्ञियान् ॥ ३० ॥ तदादित्याश्च साध्याश्च विश्वे च वसवस्तथा । रुद्रा देवगणा यक्षा देवद्विजमहर्षयः ॥३१॥ शरण्यं शरणं विष्णुमुपतस्थुर्महाबलम् । देवं देवगणं यज्ञं ब्रह्मदेवं सनातनम् ॥ ३२ ॥ भूतभव्य

हो जायगा तो भगवान् विष्णु उसका वध करेंगे ॥ २५ ॥ कमलोद्भव ब्रह्माजीके इस वचनको सुन कर देवता प्रसन्न होते हुए अपने २ दिव्य स्थानको चले गए ॥ २६ ॥ वैशम्पायनजीने कहा, कि–वरदानके मिलते ही वह सब प्रजाओंको पीडित करने लगा, क्योंकि–वह हिरण्यकशिपु राक्षस वरदानसे घमण्डमें भर गया था ॥ २७ ॥ उस बलवान्ने प्रशंसनीय व्रत वाले सत्यधर्मपरायण चतुर ऋषियोंको आश्रमोंमें जाकर पीड़ित करना आरम्भ कर दिया ॥ २८ ॥ कुछ समयके उपरान्त वह महाराक्षस त्रिभुवनमें रहने वाले देवताओंका पराजय करके त्रिलोकीको वशमें करके स्वर्गमें रहने लगा ॥ २९ ॥ जब वह कालधर्मसे प्रेरित हो वरके मदसे उन्मत्त होकर दानवोंको यज्ञभागभोगी करने लगा और देवताओंको अयज्ञिय करने लगा ॥ ३० ॥ तब आदित्य साध्य विश्वेदेवा वसुदेवता रुद्र देवगण यक्ष देव द्विज और महर्षियोंने देवगण यज्ञ ब्रह्मदेव सनातन शरण्य भूत-भविष्य और वर्तमानरूप तथा प्रजाओंके मनुष्योंसे नमस्कृत

भविष्यं च मजालोकनमस्कृतम् । देवा ऊचुः । नारायण महाभाग देव त्वां शरणं गताः ॥ ३३ ॥ त्वं हि नः परमो धाता त्वं हि नः परमो गुरुः । त्वं हि नः परमो देवो ब्रह्मादीनां सुरोत्तमः ३४ त्वं पद्मामलपत्राक्ष शत्रुपक्षभयावह । क्षयाय दितिवंशस्य क्षयाय भव नः प्रभो ॥ ३५ ॥ त्रायस्व जहि दैत्येन्द्रं हिरण्यकशिपुं प्रभो । विष्णुरुवाच भयं त्यजध्वममरा अभयं वो ददाम्यहम् ३६ तथैव त्रिदिवं देवा मतिपत्स्यथ मा चिरम् । एष तं सगणं दैत्यं वरदानेन दर्पितम् ॥ ३७ ॥ अवध्यममरेन्द्राणां दानवेन्द्रं निहन्म्यहम् । वैशम्पायन उवाच । एवमुक्त्वा स भगवान् विसृज्य त्रिदिवौकसः ॥ ३८ ॥ वधं संकल्पयित्वा तु हिरण्यकशिपोः प्रभुः ॥ ३९ ॥ सोऽचिरेणैव कालेन हिमवत्पार्श्वमागतः । किन्तु

महाबली विष्णुकी शरण ली, देवताओंने कहा, कि हे महाभाग नारायण देव ! हम आपकी शरणमें आये हैं ॥ ३१—३३ ॥ आप ही हमारे परम धाता हैं, आप ही हमारे परम गुरु हैं और हम ब्रह्मा आदिके आप ही परम देव हैं ॥ ३४ ॥ हे कमलके निर्मल पत्रकी समान नेत्र वाले ! हे शत्रुपक्षको भय देने वाले प्रभो ! आप दितिके वंशका क्षय करनेके लिए और हमें अक्षय रखनेके लिए प्रकट हूजिये ॥ ३५ ॥ हे प्रभो ! आप हमारी रक्षा करिये और दैत्येन्द्र हिरण्यकशिपुका वध करिये, विष्णुने कहा, कि हे देवताओं ! तुम भयको त्याग दो ! मैं तुम्हें अभय देता हूँ ॥ ३६ ॥ हे देवताओं ! तुम थोड़े समयमें ही पहिलेकी समान स्वर्गको पा जाओगे, अब मैं वरदानसे दर्पमें भरे हुए देवेन्द्रोंसे अवध्य दानवेन्द्रको और उसके गणोंको मारता हूँ, वैशम्पायन जीने कहा, कि इस प्रकार कह कर उन भगवान्ने देवताओंको विदा कर दिया ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ वह प्रभु हिरण्यकशिपुके वधका विचार करके थोड़े समयमें हिमाचलकी तलैटीमें पहुँच गए

रूपं समास्थाय निहन्म्येनं महासुरम् ॥ ४० ॥ यत्सिद्धिकरमाशु स्यात्‌वधाय विबुधद्विषः । अनुत्पन्नं ततश्चक्रे साऽत्यन्तं रूपमास्थितः ॥ ४१ ॥ नारसिंहमनाधृष्यं दैत्यदानवरक्षसाम् । सहायं तु महाबाहुर्जग्राहोंकारमेव च ॥ ४२ ॥ अथोंकारसहायोऽसौ भगवान् विष्णुरव्ययः । हिरण्यकशिपोः स्थानं जगाम प्रभुरीश्वरः ॥ ४३ ॥ तेजसा भास्कराकारः कान्त्या चन्द्र इवापरः । नररूप कृत्वार्धतनुं सिंहस्यार्धतनुं विभुः ॥ ४४ ॥ नारसिंहेन वपुषा पाणिं संस्पृश्य पाणिना । ततोऽपश्यत विस्तीर्णां दिव्यां रम्यां मनोरमाम् ॥ ४५ ॥ सर्वकामयुतां शुभ्रां हिरण्यकशिपोः सभाम् । विस्तीर्णां योजनशतं शतमध्यर्धमुच्छ्रिताम् ॥ ४६ ॥ विहायसीं कामगमां पंचयोजनमुच्छ्रिताम् । जराशोकक्लमत्यक्तां

मैं कौनसे रूपको धारण करके इस नारी असुरका वध करूँ ४० और इस देवद्वेषीका वध करनेके लिए शीघ्र ही सिद्धि देनेवाला हो, उन्होंने बहुत विचार करनेके अनन्तर पहिले कभी न उत्पन्न हुए दैत्य दानव और राक्षसोंसे अधृष्य नरसिंहके रूपको धारण कर लिया फिर उन महाभुजनें सहायताके लिए ओंकार को ग्रहण कर लिया ॥ ४१-४२ ॥ तदनन्तर ओंकारकी सहायता वाले अव्यय भगवान् ईश्वर प्रभु विष्णु हिरण्यकशिपुके स्थानको चले ॥ ४३ ॥ उस समय वह तेजमें सूर्यकी समान दीखते थे और कान्तिमें दूसरे चन्द्रमाकी समान प्रतीत होते थे, और उन्होंने आधा शरीर मनुष्यका और आधा शरीर सिंहका बना लिया था ॥ ४४ ॥ ऐसे नरसिंह वेशमें उन्होंने अपने हाथ से अपने (दूसरे) हाथको पकडा और हिरण्यकशिपुकी सब कामनाओंसे युक्त दिव्य मनोरम सभाको देखने लगे, वह सभा चारसौ कोसमें फैलीहुई थी और छःसौ कोस ऊँची थी ४५-४६ आकाशीय थी इच्छानुसार चलने वाली थी और जरा शोक

निष्प्रकंपां शिवां शुभाम् ॥ ४७ ॥ शुभासनवतीं रम्यां ज्वलंतीमिव तेजसा । अन्तःसलिलसंयुक्तां विहितां विश्वकर्मणा । दिव्यैः रत्नमयैः वृक्षैः फलपुष्पप्रदैर्युताम् ॥ ४८ ॥ नीलपीतासितश्यामैः सितैर्लोहितकैरपि । अवतानैस्तथा गुल्मैर्मञ्जरीशतधारिभिः ४९ सिताभ्रघनसंकाशा प्लवन्तीं वाप्सु दृश्यते । धन्यासनवती रम्या ज्वलन्तीमिव तेजसा ॥५०॥ प्रभावती भास्वरा च दिव्यगन्धमनोरमा। नासुखा न च दुःखा सा न शीता न च घर्मदा ५१ न क्षुत्पिपासे न ग्लानिं प्राप्य तां प्राप्नुवन्ति हि । नानारूपैर्विरचिता विचित्रैरतिभास्वरैः ॥ ५२ ॥ स्तम्भैर्मणिमयैर्दिव्यैः शाश्वती चाक्षता च सा । अतिचन्द्रं च सूर्यं च पावकं च स्वयं-

तथा कंप रहित, अपकम्प्य और कल्याणकारिणी थी ॥४७॥ उसमें शुभ आसन बिछ रहे थे, और वह रमणीय सभा अपने तेजसे दमक रही थी, उसके भीतर जल था, विश्वकर्माकी बनाई हुई थी और फल पुष्प देने वाले दिव्य रत्नमय वृक्ष उसमें लग रहेथे ॥ ४८ ॥ वहाँ पर नीली पीली काली श्वेत और लाल झालरें लटक रहीं थीं और सैंकड़ों मञ्जरियोंको धारण करने वाली बेलें लग रही थीं ॥ ४९ ॥ वह श्वेतमेघकी समान जलमें तैरती हुई सी दीखती थी, उसमें धन खर्च करके बनाए हुए आसन बिछ रहे थे और वह अपने तेजसे दमक रही थी ॥५०॥ प्रभा वाली थी, भास्वर थी, दिव्य गंध वाली मनोरम थी, उस में सुख भी नहीं होता था और दुःख भी नहीं होता था और उसमें न जाड़ा लगता था और न गर्मी लगती थी ॥५१॥ उस में प्रवेश करने पर प्राणियोंको भूख और प्यास नहीं लगतीथी तथा थकावट भी नहीं मालूम होती थी, अनेक प्रकारके चमकीले वर्ण वाले मणिमय दिव्य स्तंभोंसे उसको सजाया गया था, तथा उसके स्तंभ सर्वदा अक्षत रहते थे, वह स्वयंप्रभा सभा

यथा ॥ ५३ ॥ दीप्यते नाकपृष्ठस्था भर्त्सयन्तीव भास्करम् । सर्वे च कामाः प्रचुरा ये दिव्या ये च मानुषाः ॥ ५४ ॥ रसवन्तः प्रभूताश्च भक्ष्यं भोज्यं तथाव्ययम् । पुण्यगन्धाः स्रजस्तत्र नित्यपुष्पफलद्रुमाः ॥ ५५ ॥ उष्णे शीतानि तोयानि शीते चोष्णानि सन्ति वै । पुष्पिताग्रान् महाशाखान् प्रवालांकुरधारिणः ॥ ५६ ॥ लतावितानसंछन्नान्सरित्सु च सरःसु च । मनोहरांश्च विविधान् ददर्श स तदा प्रभुः ॥ ५७ ॥ द्रुमान् बहुविधांस्तत्र मृगेन्द्रो ददृशे द्रुमम् । गन्धवन्ति च पुष्पाणि रसवन्ति फलानि च ॥ ५८ ॥ तानि शीतानि तोयानि तत्र तत्र सरांसि च । अपश्यत् सर्वतीर्थानि सभायां शतशो विभुः ॥ ५९ ॥ नलिनैः पुण्डरीकैश्च शतपत्रैः सुगन्धिभिः । रक्तैः कुवलयैर्नीलैः कुमुदैः संयुतानि च ६० सकान्तैर्धार्तराष्ट्रैश्च राजहंसैः सुरप्रियैः । कादम्बैश्चक्रवाकैश्च

हुई और चन्द्रमाकी कान्तिको फीकी करती हुई स्वर्गमें खड़ीहो सूर्यको धमकाती हुईसी दीखती थी और उसमें सब दिव्य और मानुषी भोग प्रचुरतासे मिलते थे ॥ ५३-५४ ॥ तहाँ पर बहुत से भक्ष्य और भोज्य पदार्थ थे रसवाले पवित्र गन्धवाले सर्वदा पुष्प और फल देनेवाले वृक्ष थे और सुगन्धित मालाएँ थीं ५५ उस सभामें गर्मीके समय जल शीतल रहता था और शीतकाल में गरम जल रहता था, प्रभुने तहाँ पर फूलोंसे लदे हुए अग्र भागवाले बड़ी २ शाखाओंवाले मूँगोंकी समान लालवर्णके अंकुरवाले लतामण्डपसे ढके हुए सरोवर और नदियों पर खड़े हुए अनेक प्रकारके मनोहर वृक्षोंको देखा, विभु मृगेन्द्रने तहाँपर गन्धवाले पुष्प रसवाले फल शीतल जलवाले सरोवरोंको और तीर्थोंको जहाँ तहाँ देखा ॥ ५६-५९ ॥ नलिन पुण्डरीक सुगन्धित शतपत्र लाल कुवलय नीले कुमुद नामक कमलोंसे युक्त और देवताओंको प्रिय लगनेवाले राजहंस धार्तराष्ट्र कादम्ब

सारसैः कुररैरपि ॥ ६१ ॥ विमलस्फाटिकाभानि पाण्डुराष्टदलानि च । कलहंसोपगीतानि सारकाभिरुतानि च ॥६२॥ गन्धवत्यः शुभास्तत्र पुष्पमञ्जरिधारिणीः । दृष्टवान् पादपाग्रेषु नानापुष्पधरा लताः ॥ ६३ ॥ केतकाशोकसरलाः पुन्नागतिलकार्जुनाः । चूता नीपा नागपुष्पाः कदम्बबकुला धवाः ॥ ६४ ॥ प्रियंगुपाटलीवृक्षाः शाल्मल्यः सहरिद्रकाः । शालास्तालाः प्रियालाश्च चम्पकाश्च मनोरमाः ॥ ६५ ॥ तथा चान्ये व्यराजन्त सभायां पुष्पिता द्रुमाः । सैद्रुमाश्च द्रुमानीका दावाग्निज्वलितप्रभाः ॥ ६६ ॥ स्कन्धवन्तः सुशाखाश्च बहुतालसमुच्छ्रयाः । अञ्जनाशोकवर्णाभा भान्ति वंजुलका द्रुमाः ॥६७॥ वरणा वत्सनाभाश्च पनसाश्चन्दनैः सह । नीलाः सुमनसश्चैव पीताम्लाश्च-श्चतिन्दुकाः ॥६८॥ प्राचीनामलका लोध्रा मल्लिका भद्रदारवः॥

चक्रवाक सारस और कुरर नामवाले पक्षियोंसे युक्त सरोवरको देखा ॥६०-६१॥ वे सरोवर निर्मल स्फटिककी समान श्वेत आभावाले और अठकोने थे तहाँ पर कलहंस और मैनाएँ मनोहर ध्वनि कर रहीं थीं ॥६२॥ तथा वृक्षोंके अग्रभागमें पुष्पों की मञ्जरीको धारण करनेवाले और अनेक प्रकारके पुष्पोंको धारण करने वाली गन्धवाली शुभलताओंको देखा ॥६३॥ उस सभामें केवड़ेके अशोकके रालके वायविडङ्गके अर्जुनके आमके नीपके नागकेसरके कदम्बके कचनारके धवके राईके पाडरके सेमरके हल्दीके शालके तालके चिरोंजीके चम्पकके मूँगोंके दावाग्निकी समान उज्जल प्रभावाले और भी बहुतसे प्रभावाले वृक्ष सभामें शोभा देरहे थे ॥ ६४-६६ ॥ गुद्दोंवाले शाखाओंवाले तालकी समान ऊँचे अञ्जन और अशोकके वर्णकी समान आभावाले वेंतके पेड तहाँ शोभा पारहे थे ॥ ६७ ॥ वरुणके पेड वत्सनाभके पेड कटहलके वृक्ष चन्दनके पेड नीले फूलवाले वृक्ष हल्दीके

आम्रातकास्तथा जम्बू लकुचाः शैलवालुकाः॥६९॥ सर्जार्जुनाः कन्दुरवाः पतंगाः कुटजास्तथा। रक्ताः कुरवकाश्चैव नीपाश्चागरुभिः सह॥७०॥ कदम्बाश्चैव भव्याश्च दाडिमीबीजपूरकाः। कालीयका दुकूलाश्च हिंगवस्तैलपर्णिकाः॥७१॥ खर्जूरा नालिकेराश्च पूगास्त्था हरीतकाः। मधूकाः सप्तपर्णाश्च बिल्वाः पारावतास्तथा॥७२॥ पनसाश्च तमालाश्च नानागुल्मलतावृताः। लताश्च विविधाकाराः पत्रपुष्पफलोपगाः॥७३॥ एते चान्ये च बहवस्तत्र काननजा द्रुमाः। नानापुष्पफलोपेता व्यराजन्त समन्ततः॥७४॥ चकोराः शतपत्राश्च मत्तकोकिलसारिकाः। पुष्पितान् फलितांश्चैव संपतन्ति महाद्रुमान्॥७५॥ रक्त-

पीले फलके वृक्ष और आमन्नूसके पेड़ (तहाँपर शोभा पा रहे थे) ... भमराके लोधके मालतीके भद्रदारुके तिदिये आमके जामन के बड़हरके शैलवालुकके रालके अर्जुनके कन्दुरवके धान्यविशेष के कुरयेके लाल कुरवकके और नीप तथा अगरके पेड़ (तहाँ शोभा दे रहे थे)॥६८-७०॥ कदम्ब भव्य दाडिमी अनार बिजौरे नीबू पीले चन्दन दुकूल हींग हरिचन्दन खजूर नारियल सुपारी हड महुआ सप्तपर्ण बेल पारावत कटहल तमाल आदि वृक्ष बहुतसी लता और गुल्मोंसे छाये हुए (तहाँ पर शोभा दे रहे थे) पत्र पुष्प और फल धारण करनेवाली अनेक प्रकारकी लताएँ और वनमें उत्पन्न होनेवाले दूसरे प्रकारके भी बहुतसे वृक्ष अनेक प्रकारके पुष्प और फलोंसे लदकर तहाँ चारों ओर शोभा दे रहे थे॥७१-७४॥ चकोर शतपत्र मत्त-कोयल और मैनाएं शाखाओंमें लटकते हुए फलोंवाले फूलदार वृक्षोंपर आ-आ, कर बैठ रहे थे॥७५॥ और वृक्षोंकी डालियों पर बैठे हुए लाल पीले और अरुण रङ्गके तथा लंकपाचकी

पीतारुणास्तत्र पादपाग्रगता द्विजाः । परस्परमवैक्षन्त महृष्टा जीव-
जीवकाः ॥ ७६ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि
एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

वैशम्पायन उवाच । तस्यां सभायां दैत्येन्द्रो हिरण्यकशिपुः
प्रभुः । आसीन आसने दिव्ये नल्वमात्रे प्रमाणतः ॥१॥ दिवा-
करनिभे रम्ये दिव्यास्तरणसंवृते । रराज सुचिरं राजन् ज्वलत्-
काञ्चनकुण्डलः ॥ २ ॥ तस्य दैत्यपतेर्मन्दं विरजस्कं समन्ततः ।
दिव्यगन्धवहस्तत्र मारुतः सुसुखो ववौ ॥ ३ ॥ तत्र देवाः सगं-
धर्वाः गणैरप्सरसां वृताः । दिव्यतालेन दिव्यानि जगुर्गीतानि
गायनाः ॥ ४ ॥ विश्वाची सहजन्या च प्रम्लोचेत्यभिविश्रुता ।
दिव्या च सौरभेयी च समीची पुंजिकस्थला ॥ ५ ॥ मिश्रकेशी
च रम्भा च चित्रसेना शुचिस्मिता । चारुनेत्रा घृताची च मेनका

हर्षमें भरकर एक दूसरेको देख रहे थे ॥ ७६ ॥ इकतालीसवाँ
अध्याय समाप्त ॥ ४१ ॥

वैशम्पायनजीने कहा, कि—उस सभामें दैत्येन्द्र प्रभु हिरण्य
कशिपु नल्वमात्र प्रमाणवाले दिव्य आसन पर बैठा हुआ था ॥ १ ॥
हे राजन् ! सुवर्णके दमकते हुए कुंडलोंको पहरने वाला हिर-
ण्यकशिपु दिव्य फर्शसे ढके हुए सूर्यकी समान कान्तिमान्
रमणीय सिंहासन पर बैठा हुआ दिप रहा था ॥ २ ॥
उस दैत्यपतिके सामने दिव्य और पवित्र गन्धको बहानेवाला
धूलरहित वायु प्राणियोंके सुखोंको प्रसन्न करता हुआ चल
रहा था ॥३॥ और देवता गानेवाले बनकर गन्धर्व और अप्स-
राओंको साथमें ले दिव्य तालसे दिव्य गीतोंको गा रहे थे ॥४॥
विश्वाची सहजन्या प्रसिद्ध प्रम्लोचा दिव्या सौरभेयी समीची
पुञ्जिकस्थला मिश्रकेशी रम्भा पवित्र हास्यवाली—चित्रसेना

चोर्वशी तथा ॥ ६ ॥ एताः सहस्रशश्चान्या नृत्यगीतविशारदाः । उपतिष्ठन्ति राजानं हिरण्यकशिपुं तदा ॥ ७ ॥ हिरण्यकशिपुस्तत्र विचित्राभरणाम्बरः । स्त्रीसहस्रैः परिवृतस्तस्थौ ज्वलितकुण्डलः ॥ ८ ॥ तत्रासीनं महाबाहुं हिरण्यकशिपुं प्रभुम् । उपासन्ति दितेः पुत्राः सर्वे लब्धवराः पुरा ॥ ९ ॥ बलिर्वैरोचनस्तत्र नरकः पृथिवीञ्जयः । प्रह्लादो विप्रचित्तिश्च गविष्ठश्च महासुरः ॥ १० ॥ अहन्ता क्रोधहन्ता च सुमना सुमतिः स्वरः । घटोदरो महापार्श्वः क्रथनः पिठरस्तथा ॥ ११ ॥ विश्वरूपश्च रूपश्च विरूपश्च महाद्युतिः । दशग्रीवश्च वाली च मेघवासा महारवः ॥ १२ ॥ घटाभो विकटाभश्च संह्रादश्चेन्द्रतापनः । दैत्यदानवसंघाश्च सर्वे ज्वलितकुण्डलाः ॥ १३ ॥ स्रग्विणो वाग्मिनः सर्वे सर्वे सुचरितव्रताः । सर्वे लब्धवराः शूराः सर्वे विगतमृत्यवः ॥ १४ ॥ एते चान्ये च

सुन्दर नेत्रवाली घृताची मेनका और उर्वशी नृत्य और गीतमें चतुर थे तथा दूसरी सहस्रों अप्सराएँ राजा हिरण्यकशिपुकी सेवा कर रही थीं ५-७ तहाँ पर विचित्र आभूषण और वस्त्रों को धारण करनेवाला और दमकते हुए कुण्डलोंवाला हिरण्यकशिपु सहस्रों स्त्रियोंके बीचमें बैठा हुआ था ८ तहाँ पर बैठे हुए महाभुज प्रभु हिरण्यकशिपुकी वरदानप्राप्त दितिके (निम्नलिखित) पुत्र उपासना कर रहे थे ९ विरोचनका पुत्र बलि पृथिवीको जीतनेवाला नरक प्रह्लाद विप्रचित्ति भयंकर असुर गविष्ठ अहन्ता क्रोधहन्ता सुमना सुमति स्वर घटोदर महापार्श्व क्रथन पिठर विश्वरूप रूप महाद्युति विरूप दशग्रीव वाली मेघवासा महारव घटाभ विकटाभ संह्राद ये तथा और भी दैत्य दानवोंके टोले दमकते हुए कुण्डलोंको पहिर कर मालाएँ डाल कर महात्मा प्रभु हिरण्यकशिपुकी उपासना कर रहे थे ये सब

यहदो हिरण्यकशिपुं प्रभुम् । उपासन्ते महात्मानं सर्वे दिव्यपरिच्छदाः ॥ १५ ॥ विमानैर्विविधैरग्र्यैर्भ्राजमानैरिवाग्निभिः ॥ स्रग्विणो भूषणधरा यान्ति चायान्ति हेलया ॥ १६ ॥ विचित्राभरणोपेता विचित्रवसनास्तथा । विचित्रशस्त्रकवचा विचित्रध्वजवाहनाः ॥ १७ ॥ महेन्द्रचापसंकाशैर्विचित्रैरंगदैर्वरैः । भूषितांगा दितेः पुत्रास्तमुपासन्ति नित्यशः १८ तस्यां सभायां दिव्यायामसुराः पर्वतोपमाः । हिरण्यमुकुटाः सर्वे दिवाकरसमप्रभाः १९ कनकमणिविचित्रवेदिकायामुपहितरत्नसहस्रवीथिकायाम् । स ददर्श मृगाधिपः सभायां सुरुचिरदन्तगवाक्षसंवृतायाम् ॥ २० ॥ कनकविमलहारभूषितांगं दितितनयं स मृगाधिपो ददर्श । दिवसकरकरप्रभं ज्वलन्तमसुरसहस्रगणैर्निषेव्यमाणम् ॥ २१ ॥ ४२

दैत्य बोलनेवाले थे सबने व्रतोंका अच्छेप्रकार पालन किया था सब वर पाये हुए शूर थे सब मृत्युके भयसे रहित थे और दिव्य वस्त्र धारण कररहे थे १०-१५ ये सब माला और भूषणोंको धारण करनेवाले दैत्य अग्निकी लपटोंकी समान देदीप्यमान नानाभाँतिके विमानोंमें बैठकर आनन्दसे जहाँ तहाँ आजा सकते थे १६ विचित्र गहनोंसे युक्त विचित्र वस्त्रोंवाले विचित्र शस्त्र कवचोंवाले विचित्र ध्वजा और वाहनवाले महेन्द्रके चापकी समान विचित्र और श्रेष्ठ बाजूबन्दोंसे विभूषित अंगोंवाले दितिपुत्र हिरण्यकशिपुकी सर्वदा उपासना करते रहते थे १७-१८ उस दिव्यसभामें पर्वतकी समान असुर सुवर्णके मुकटोंको धारण कर रहे थे और सबके सब सूर्यकी समान कान्तिवाले थे १९ नरसिंहने सुवर्ण और मणियोंकी विचित्र भूमिवाली रत्न जड़ी हुई हजारों गलियों वाली मनोहर झरोकोंवाली सभामें सुवर्णके निर्मल हारोंसे विभूषित अंगवाले सूर्यके किरणोंकी समान प्रभा वाले अप्सराओंके सहस्रों टोलोंसे सेव्यमान दिपते हुए दितिपुत्र हिरण्यकशिपुको देखा २०-२१ बयालीसवाँ अध्याय समाप्त ४२

वैशम्पायन उवाच । ततो दृष्ट्वा महाबाहुं कालचक्रमिवागतम् । नरसिंहवपुश्छन्नं भस्मच्छन्नमिवानलम् ॥ १ ॥ विकुंचितसटं तस्य नारसिंहस्य भारत । रूपौदार्यं बभौ तत्र सहस्रशशिसन्निभम् ॥ २ ॥ अहो रूपमिदं चित्रं शंखकुन्देन्दुसन्निभम् । अब्रुवन् दानवाः सर्वे हिरण्यकशिपुश्च सः ॥ ३ ॥ एवं हि ब्रुवतां तेषां निर्दग्धानां महात्मनाम् । नारसिंहेन चक्षुर्भ्यां चोदिताः कालधर्मणा ॥ ४ ॥ हिरण्यकशिपोः पुत्रः प्रल्हादो नाम वीर्यवान् । दिव्येन चक्षुषा सिंहमपश्यद्देवमागतम् ॥५॥ तं दृष्ट्वा रुक्मशैलाभमपूर्वां तनुमास्थितम् । विस्मिता दानवाः सर्वे हिरण्यकशिपुश्च सः ॥ ६ ॥ प्रल्हाद उवाच । महाराज महाबाहो दैत्यानामादिसंभव । न श्रुतं नैव दृष्टं च नारसिंहमिदं वपुः ॥ ७ ॥ अव्यक्तप्रभवं दिव्यं किमिदं रूपमद्भुतम् । दैत्यान्तकरणं घोरं शंसतीव मनांसि नः ॥ ८ ॥ अस्य देवाः शरीरस्थाः सागराः सरित-

वैशम्पायनजीने कहा, कि-तदनन्तर भस्ममें ढके हुए अग्निकी समान नरसिंहके शरीरमें छिपे हुए और कालचक्रकी समान आए हुए महाभुजको आया हुआ देखकर (दैत्य विस्मित होगए) विखरे हुए बालवाले नरसिंहके सहस्रों चन्द्रमाओंकी समान रूपके महत्वको देखकर सब दानव और हिरण्यकशिपु कहने लगे, कि-शंख चमेलीके फूल और चन्द्रमाकी समान यह रूप बड़ा विचित्र दीखता है ॥ १-३ ॥ कालधर्मसे प्रेरित हो नरसिंहके नेत्रोंसे भस्म हुए वे महात्मा जब इसप्रकार कह रहे थे ॥ ४ ॥ उस समय हिरण्यकशिपुके प्रल्हाद नामक वीर्यवान् पुत्रने दिव्य नेत्रसे नरसिंह देवको आया हुआ देखा ॥ ५ ॥ प्रल्हादने कहा कि-हे महाभुज महाराज! हे दैत्योंके आदिसंभव! यह मनुष्यका और सिंहका शरीर हमने पहिले न देखा है और न कहीं सुना है ॥ ७ ॥ यह अव्यक्तप्रभव कौनसा अद्भुत रूप है हमारे मन

स्तथा । हिमवान् पारियात्रश्च ये चान्ये कुलपर्वताः ॥९॥ चंद्रमाः सह नक्षत्रैरादित्याश्चाश्विनौ तथा । धनदो वरुणश्चैव यमः शक्रः शचीपतिः ॥१०॥ मरुतो देवगन्धर्वा मुनयश्च तपोधनाः । नागा यक्षाः पिशाचाश्च राक्षसा भीमविक्रमाः ॥ ११ ॥ ब्रह्मदेवः पशुपतिर्ललाटस्था विभान्ति वै । स्थावराणि च भूतानि जंगमानि तथैव च ॥ १२ ॥ भवांश्च सहितोऽस्माभिः सर्वैर्दैत्यगणैर्वृतः । विमानशतसंकीर्णा तथाभ्यन्तरजा सभा ॥ १३ ॥ सर्वं त्रिभुवनं राजन् लोकधर्मश्च शाश्वतः । दृश्यते नारसिंहेऽस्मिन् यथेन्दौ विमलं जगत् ॥ १४ ॥ प्रजापतिश्चात्र मनुर्महात्मा ग्रहाश्च योगाश्च मही नभश्च । उत्पातकालश्च धृतिः स्मृतिश्च रजश्च सत्वं च तमो मदश्च ॥ १५ ॥ सनत्कुमारश्च महानुभावो विश्वे च देवाप्सरसश्च सर्वाः । क्रोधश्च कामश्च तथैव हर्षो दर्पश्च मोहः पितरश्च सर्वे ॥ १६ ॥ इत्येवमुक्त्वा

कहते हैं, कि-यह दैत्योंका अन्त करने वाला घोर रूप है ॥८॥ देवता सागर नदी हिमवान् पारियात्र तथा दूसरे भी कुलपर्वत इनके शरीरमें स्थित हैं ॥ ९ ॥ और चन्द्रमा नक्षत्र आदित्य अश्विनीकुमार कुवेर वरुण यम शचीपति-इन्द्र मरुत् देवता गंधर्व तपोधन-मुनि नाग यक्ष पिशाच भयंकरपराक्रमी-राक्षस ब्रह्मदेव और पशुपति तथा स्थावर और जंगम प्राणी इनके ललाट में स्थित दीख रहे हैं ॥१०-१२॥ और सब दानवगणोंसे आवृत आप भी और सैकडों विमानोंसे घिरी हुई सभा, सकल त्रिभुवन और शाश्वत लोकधर्म, चन्द्रमामें दीखने वाले निर्मल जगत् की समान, इन नरसिंहके शरीरमें दीख रहे हैं ॥ १३-१४ ॥ और इनके शरीरमें प्रजापति महात्मा मनु ग्रह योग पृथ्वी आकाश उत्पातकाल धृति स्मृति रज सत्व तम मद, महानुभाव सनत्कुमार विश्वेदेवा, सब अप्सराएँ क्रोध काम हर्ष दर्प मोह

स च दैत्यराजं हिरण्यनामानमविस्मयेन । दध्यौ च दैत्येश्वरपुत्र उग्रो महामतिः किंचिदधोमुखः प्राक् ॥ १७ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि नारसिंहे त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

वैशम्पायन उवाच । प्रल्हादस्य च तच्छ्रुत्वा हिरण्यकशिपुर्वचः । उवाच दानवान् सर्वान् सगणांश्च गणाधिपः ॥ १ ॥ मृगेन्द्रो गृह्यतां शीघ्रमपूर्वां तनुमास्थितः । यदि वा संशयः कश्चिद्वध्यतां वनगोचरः ॥ २ ॥ तच्छ्रुत्वा दानवाः सर्वे मृगेन्द्रं भीमविक्रमम् । परिक्षिपन्तो मुदितास्त्रासयामासुरोजसा ॥ ३ ॥ सिंहनादन्नदित्वा तु पुनः सिंहो महाबलः । बभञ्ज तां सभां रम्यां व्यादितास्य इवान्तकः ॥ ४ ॥ सभायां भज्यमानायां हिरण्यकशिपुः स्वयम् । चिक्षेपास्त्राणि सिंहस्य रोषव्याकुललोचनः ५ सर्वास्त्राणामथ श्रेष्ठं दण्डमस्त्रं सुभैरवम् । कालचक्रं तथात्युग्रं

और सकल पितर भी दीख रहे हैं ॥ १५-१६ ॥ दानवेश्वरका पुत्र महामति प्रल्हाद विस्मित हो उग्र दानवराजसे इस प्रकार कहकर नीचेको मुख करके कुछ ध्यान करने लगा ॥ १७ ॥ तैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४३ ॥

वैशम्पायनजीने कहा, कि प्रल्हादके इस वचनको सुनकर गणाधिप हिरण्यकशिपु सब दानवोंसे कहने लगा, कि-॥१॥ इस अपूर्व शरीरधारी मृगेन्द्रको पकड़ लेना चाहिये और कोई खटकेकी बात हो तो इस जंगली जीवको मार डालो ॥२॥ इस बातको सुनकर वे दानव बलपूर्वक उस भयंकर पराक्रमी मृगेन्द्रको दिक्क करने लगे ॥ ३ ॥ तब उस महाबली सिंहने दहाड करके उस रमणीय सभामें भगगी डालदी और मुख फाड़े हुए कालकी समान दीखने लगे ॥४॥ सभामें भगगी पड़ने पर हिरण्यकशिपुके नेत्र रोषके कारण लाल लाल होगए और वह अपने

विष्णुचक्रं तथैव च ॥६॥ धर्मचक्रं महच्चक्रमजितं नाम नामतः ।
चक्रमैन्द्रं तथा घोरमृषिचक्रं तथैव च ॥ ७ ॥ पैतामहं तथा चक्रं
त्रैलोक्यमहितस्वनम् विचित्रामशनीं चैव शुष्कार्द्रं चाशनिद्वयम् ॥८॥
रौद्रं तदुग्रं शूलं च कंकालं मुशलं तथा । अस्त्रं ब्रह्मशिरश्चैव
ब्राह्ममस्त्रं तथैव च ॥ ९ ॥ ऐषीकमस्त्रमैन्द्रं च आग्नेयं शैशिरं
तथा । वायव्यं मथनं नाम कापालमथ किंकरम् ॥ १० ॥ तथा
चाप्रतिमां शक्तिं क्रौंचमस्त्रं तथैव च । अस्त्रं हयशिरश्चैव सौम्य-
मस्त्रं तथैव च ॥ ११ ॥ पैशाचमस्त्रममितं सत्यमस्त्रं तथाद्भुतम् ।
मोहनं शोषणं चैव सन्तापनविलापनम् ॥१२॥ जृम्भणं मापणं
चैव त्वाष्ट्रं चैव सुदारुणम् । कालमुद्गरमक्षोभ्यं क्षोभणं तु महा-
बलम् ॥ १३ ॥ संवर्तनं मोहनं च तथा मायाधरं परम् । गांधर्व-
मस्त्रं दयितमसिरत्नं च नन्दकम् ॥ १४ ॥ प्रस्वापनं प्रमथनं
वारुणं चास्त्रमुत्तमम् । अस्त्रं पाशुपतं चैव यस्याप्रतिहता गतिः ॥१५॥

आप ही सिंहके ऊपर अस्त्र फेंकने लगा ॥५॥ उस समय हिर-
ण्यकशिपुने सकल अस्त्रोंमें श्रेष्ठ भयंकर दण्डास्त्र कालचक्र अति
भयंकर विष्णुचक्र अजित नामक महान् धर्मचक्र इन्द्रचक्र भयंकर
ऋषिचक्र पैतामहचक्र आहितस्वन-त्रैलोक्यचक्र, विचित्राशनि
और शुष्कार्द्र नाम वाली दो अशनि, भयंकर रौद्रशूल कंकाल
नामक मूसल, ब्रह्मशिर और ब्रह्म नामक अस्त्र ऐषीकास्त्र
ऐन्द्रास्त्र आग्नेयास्त्र शैशिरास्त्र वायव्यास्त्र मथनकापाल,
किंकरास्त्र अप्रतिमा-शक्ति क्रौञ्चास्त्र हयशिरास्त्र सौम्यास्त्र
अमित-पैशाचास्त्र, अद्भुत-सत्यास्त्र, मोहन शोषण सन्तापन
और विलापनास्त्र, जृम्भण मापण और भयंकर त्वाष्ट्रास्त्र
अक्षोभ्य-कालमुद्गर महाबल-क्षोभण सम्वर्तन मोहन माया-
धर पर और गान्धर्वास्त्र तलवारोंमें श्रेष्ठ नन्दक नामक तलवार,
प्रस्वापनास्त्र प्रमथनास्त्र उत्तम वारुणास्त्र और अप्रतिहत गति

एतान्यस्त्राणि सर्वाणि हिरण्यकशिपुस्तदा । चिक्षेप नरसिंहस्य दीप्तस्याग्नेर्यथाहुतिः ॥ १६ ॥ अस्त्रैः प्रज्वलितैः सिंहमावृणोद् सुराधिपः । विवस्वान् घर्मसमये हिमवन्तमिवांशुभिः ॥ १७ ॥ स ह्यमर्षानिलोद्धूतो दैत्यानां सैन्यसागरः । क्षणेन प्लावयन् सिंहं मैनाकमिव सागरः ॥ १८ ॥ प्रासैः पाशैस्तथा शूलैर्गदाभिर्मुशलैस्तदा । वज्रैरशनिकल्पैश्च शिलाभिश्च महाद्रुमैः ॥ १९ ॥ मुद्गरैः कूटपाशैश्च शूलोलूखलपर्वतैः । शतघ्नीभिश्च दीप्ताभिर्दण्डैरपि सुदारुणैः ॥ २० ॥ परिवार्य समन्तात्तु निघ्नन्नरसिंहं हरिं तदा । स्वल्पमप्यस्य न क्षुण्णमूर्जितस्य महात्मनः ॥ २१ ॥ ते दानवाः पाशगृहीतहस्ता महेन्द्रवज्राशनितुल्यवेगाः । समन्ततोऽभ्युद्यतबाहुशस्त्राः स्थितास्त्रिशीर्षा इव पन्नगेन्द्राः ॥ २२ ॥ सुवर्णमालाकुलभूषितांगा नानांगदाभोगपिनद्धगात्राः । मुक्तावलीदाम

वाले। पाशुपतास्त्र इन सब अस्त्रोंका प्रदीप्त अग्निमें आहुति होमनेकी समान नरसिंहके ऊपर प्रहार किया ॥ ६-१६ ॥ और ग्रीष्म ऋतुके समय सूर्य जिसप्रकार किरणोंसे हिमाचल पर्वतको ढक देता है, तिस प्रकार असुरराजने प्रदीप्त अस्त्रोंसे सिंहको ढक दिया ॥ १७ ॥ तदनन्तर जिस प्रकार समुद्र मैनाक पर्वतको भिगोता है, इसी प्रकार अमर्षरूपी वायुसे उद्धूत दानवसागरने सिंहको क्षणभरमें (अस्त्रोंसे) प्लावित कर दिया ॥ १८ ॥ तदनन्तर वे सब एकत्रित होकर प्रास पाश शूल गदा मूसल वज्र अशनितुल्य-शिला बड़े२ वृक्ष मुद्गर कूटपाश शूल उलूखल पर्वत प्रदीप्त—तोप सुदारुण दण्ड आदिका नरसिंह पर प्रहार करने लगे परन्तु तब भी उन बलवान् महात्माका कुछ भी नहीं बिगड़ा ॥ १९-२१ ॥ वे हाथमें पाशको ग्रहण करने वाले, इन्द्र के वज्रकी समान भयंकर वेग वाले, हाथोंमें आयुध लिए हुए दानव तीन फन वाले सर्पोंकी समान खड़े थे ॥ २२ ॥ और

विभूषितांगा हंसा इवाभान्ति विशालपक्षाः ॥ २३ ॥ तेषां तु वायुप्रतिमौजसां वै केयूरमालावलयोत्कटानि । तान्युत्तमांगान्यभितो विभान्ति प्रभातसूर्यांशुसमप्रभाणि ॥ २४ ॥ तैः प्रक्षिप्तद्भिः ज्वलनानलोपमैर्महास्त्रपूगैः स समावृतो बभौ । गिरिर्यथा सन्ततवर्षिभिर्घनैः कृतान्धकारोद्भुतकन्दरद्रुमः ॥ २५ ॥ तैर्हन्यमानोऽपि महास्त्रजालैः सर्वैस्तदा दैत्यगणैः समेतैः । नाकंपताजौ भगवान् प्रतापवान् स्थितः प्रकृत्या हिमवानिवाचलः ॥ २६ ॥ संतापितास्ते नरसिंहरूपिणा दितेः सुताः पावकदीप्ततेजसा । भयाद्विचेलुः पवनोद्धता यथा महोर्मयः सागरवारिसम्भवाः ॥ २७ ॥

सुवर्णकी मालासे विभूषित अङ्ग वाले, अनेक प्रकारके बाजूबन्दोंसे आच्छादित शरीर वाले, मोतियोंकी लड़ी वाले हारसे विभूषित अङ्ग वाले दानव विशाल पक्ष वाले हंसोंकी समान शोभा देरहे थे ॥ २३ ॥ वायुकी समान ओज वाले राक्षसोंके केयूर माला और उत्कट वलय वाले सूर्यकी किरणोंकी समान प्रभा वाले उत्तमांग (शिर) चारों ओर दमक रहे थे ॥ २४ ॥ उन फैंके जाते हुए प्रदीप्त अग्निकी समान बड़े २ अस्त्रजालोंसे घिरे हुए नरसिंह, सर्वदा वर्षा करने वाले बादलोंसे अंधकारमय हुए अद्भुत कन्दरा और वृक्षों वाले पर्वतकी समान शोभा पाने लगे ॥ २५ ॥ एकत्रित हुए दानवगणोंके महाजालोंसे पीड़ा पाने पर भी प्रतापवान् भगवान् युद्धमें न काँपे, क्यों कि—उनकी प्रकृति हिमवान्की समान अचल थी ॥ २६ ॥ प्रदीप्त अग्निकी समान तेज वाले नरसिंहरूपी भगवान्के द्वारा तापित दितिपुत्र भयके कारण, पवनसे डोलायमान समुद्रके जलमें उत्पन्न होने वाली बड़ी २ लहरोंकी समान, विचलित होनेलगे ॥ २७ ॥ क्रोधसे तमतमाते हुए शरीर वाले महावेगवान् महाराक्षस एक स्थान

शतैर्धनुर्भिः सुमहातिवेगा युगान्तकालप्रतिमाञ्छरौघान् । एकायनस्था मुमुचुर्नृसिंहे महासुराः क्रोधविदीपिताङ्गाः ॥ ३८ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि नारसिंहे चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

वैशम्पायन उवाच । खराः खरमुखाश्चैव मकराशीविषाननाः । ईहामृगमुखाश्चान्ये वराहसदृशाननाः ॥ १ ॥ बालसूर्यमुखाश्चैव धूमकेतुमुखास्तथा । चन्द्रार्धचन्द्रवक्त्राश्च प्रदीप्ताग्निमुखास्तथा २ हंसकुक्कुटवक्त्राश्च व्यादितास्या भयावहाः । पञ्चास्या लेलिहानाश्च काकगृध्रमुखास्तथा ॥ ३ ॥ विद्युज्जिह्वास्त्रिशीर्षाश्च तथोल्कासन्निभाननाः । महाग्राहनिभाश्चान्ये दानवा बलदर्पिताः ॥ ४ ॥ कैलासवपुषस्तस्य शरीरे शरवृष्टयः । अवध्यस्य मृगेन्द्रस्य न व्यथां चक्रुराहवे ॥ ५ ॥ एवं भूयोऽपरान् घोरानसृजन् दानवाः शरान् । मृगेन्द्रस्योरसि क्रुद्धा निःश्वसन्त इवोरगाः ॥ ६ ॥ ते दानवशरा घोरा मृगेन्द्राय समीरिताः । विलयं

पर खड़े हो सैंकड़ों धनुषोंसे प्रलय और कालकी समान बाणों को नरसिंह पर फेंकने लगे ।३८। चौवालीसवाँ अध्याय समाप्त

वैशम्पायनजीने कहा, कि-खर खरमुख मकरमुख सर्पमुख ईहामृगमुख वराहमुख बालसूर्यमुख धूमकेतुमुख चन्द्रार्धमुख चन्द्रमुख प्रदीप्ताग्निमुख हंसमुख कुक्कुटमुख मुख फाड़े हुए भयानक राक्षस सिंहमुख लालपीली जिह्वा वाले काकमुख गृध्रमुख राक्षस और भी बलदर्पित महाग्राहकी समान दानव जो बिजलीकी समान जिह्वा वाले थे, तीन शिर वाले थे तथा उल्काकी समान मुख वाले थे वे कैलासकी समान शरीर वाले अवध्य मृगेन्द्रके शरीरको बाणवर्षा करके भी कुछ पीडा न पहुँचा सके ॥१-५॥ तदनन्तर दानवोंने क्रोधमें भरे हुए सर्पोंकी समान फुँकार भर कर नरसिंहकी छातीमें भयंकर बाणोंका प्रहार किया ॥ ६ ॥

जग्मुराकाशे खद्योता इव पर्वते ॥ ७ ॥ ततश्चक्राणि दिव्यानि दैत्याः क्रोधसमन्विताः। मृगेन्द्रायासृजंस्त्वाशु प्रज्वलंतीव सर्वशः॥ ८ तेनासीद्गगनं चक्रैः संपतद्भिः समावृतम्। युगान्ते संप्रकाशद्भिः चन्द्रसूर्यग्रहैरिव ॥ ९ ॥ तानि चक्राणि वदनं प्रविशन्ति विभांति वै। मेघोदरदरीं घोरां चन्द्रसूर्यग्रहा इव ॥१०॥ तानि चक्राणि सर्वाणि मृगेन्द्रेण महात्मना। निगीर्णानि प्रदीप्तानि पावकार्चिःसमानि वै ॥११॥ हिरण्यकशिपुर्दैत्यो भूयः प्रास्तजदूर्जिताम्। शक्तिं प्रज्वलितां घोरां हुताशनसमप्रभाम् ॥ १२ ॥ तामापतन्तीं संप्रेक्ष्य मृगेन्द्रः शक्तिमुत्तमाम्। हुंकारेणैव रौद्रेण बभंज भगवांस्तदा ॥१३॥ रराज भग्ना सा शक्तिर्मृगेन्द्रेण महीतले। सविस्फुलिंगा ज्वलिता महोल्केव नभश्च्युता ॥ १४ ॥ नाराच-

परन्तु नरसिंहके ऊपर छोड़े हुए दानवोंके घोर बाण, पर्वतसे टकराने वाले पटबीजनोंकी समान, आकाशमें ही लीन होगए॥७॥ तब तो दानव क्रोधमें भरकर दिव्य चक्रोंको नरसिंह पर बरसाने लगे, उस समय वे चारों ओरसे जलते हुए दीखते थे ।८। इधर उधरसे पडते हुए चक्रोंसे घिरा हुआ आकाश भी, प्रलयकालमें दमकते हुए चन्द्र सूर्य और ग्रहोंसे घिरे हुए आकाशकी समान, दमकने लगा ॥ ९ ॥ उनके शरीरमें घुसते हुए वे चक्र मेघोंकी उदररूपी भयंकर गुफामें घुसने वाले चन्द्र सूर्य और ग्रहोंकी समान प्रतीत होते थे ॥ १० ॥ प्रदीप्त अग्निकी लपटकी समान सब चक्रोंको महात्मा नरसिंहने ग्रस लिया ॥११॥ तब तो हिरण्यकशिपु राक्षसने अग्निकी समान कान्तिवाली जलती प्रज्वलित भयंकर शक्ति फिर छोड़ी ॥ १२ ॥ उस उत्तम शक्तिको आती हुई देखकर भगवान् नरसिंहने उसको हुंकारके ही तोड़ डाला ॥ १३ ॥ मृगेन्द्रके तोड़ने पर पृथ्वीमें पड़ी हुई वह शक्ति, आकाशसे गिरी हुई चिनगारियों वाली प्रज्वलित उल्का

पंक्तिः सिंहस्य सृष्टा रेजे विदूरतः। नीलोत्पलपलाशानां मालेवो-
ज्ज्वलदर्शना ॥ १५ ॥ गर्जित्वा तु यथाकामं विक्रम्य च यथा-
सुखम्। तत्सैन्यमुत्सारितवान् तृणाग्राणीव मारुतः ॥ १६ ॥
ततोऽश्मवर्षं दैत्येन्द्राः व्यसृजन्त नभोगताः। नगमात्रैः शिला-
खंडैर्गिरिकूटैर्महाप्रभैः ॥ १७ ॥ तदश्मवर्षं सिंहस्य गात्रे निपतितं
महत्। दिशो दश प्रकीर्णं हि खद्योतप्रकरो यथा ॥ १८ ॥ तद-
श्मौघैर्दितिसुतास्तदा सिंहमरिन्दम। प्रच्छादयन् यथा मेघा धारा-
भिरिव पर्वतम् ॥ १९ ॥ न च तं चालयामासुर्दैत्यौघा दिव-
मास्थितम्। भीमवेगा बलश्रेष्ठं समुद्रा इव पर्वतम् ॥२०॥ ततो-
ऽश्मवर्षे निहते जलवर्षमनन्तरम्। धाराभिरक्षमात्राभिः प्रादुरा-
सीत् समन्ततः ॥ २१ ॥ नभसः प्रच्युता धारास्तिग्मवेगाः सह-

की समान दीखती थी ॥ १४ ॥ सिंहके समीपमें दूर तक लगी हुई बाणपंक्ति नील उत्पल और पलाशोंकी उज्ज्वल प्रतीत होने वाली मालाकी समान दीखने लगी ॥ १५ ॥ तदनन्तर नरसिंह इच्छानुसार गर्जना करके और सुखपूर्वक टहलकर उस सेनाको इस प्रकार उडाने लगे, जिस प्रकार तिनकोंको वायु उड़ाता है तदनन्तर वे दैत्येन्द्र आकाशमें चढ़कर महा प्रभावान् पर्वतकी समान पर्वतके शिखरों परसे पत्थरोंको उखाड कर पत्थरोंकी वर्षा करने लगे ॥ १७ ॥ नरसिंहके शरीर पर पडती हुई वह बाणवर्षा दशों दिशाओंमें फैलेहुए पटबीजनोंके झुण्डकी समान प्रतीत होती थी ॥१८॥ हे अरिन्दम ! इस प्रकार वे दितिपुत्र पत्थरोंकी रोडियोंसे वर्षासे, धारासे पर्वतकी समान, नरसिंहको छाने लगे ॥ १९ ॥ परन्तु जिस प्रकार समुद्र पर्वतको विचलित नहीं कर सकते, इसी प्रकार भयंकर वेगवाले दैत्योंकी टोलियें स्वर्गमें विराजमान नरसिंहको विचलित न कर सकीं ॥ २० ॥ इस प्रकार पत्थरोंकी वर्षाके असफल होने पर चारों ओरसे रथ

सशः । आद्रुवन् सर्वतो व्योम दिशश्चोपदिशस्तथा ॥ २२ ॥
धाराणां सन्निपातेन वायोविस्फूर्जितेन च । वर्धता चैव वर्षेण
न प्राज्ञायत किंचन ॥ २३ ॥ धारा दिवि च संसक्ता वसुधायां
च सर्वशः । न स्पृशन्ति स्म तं तत्र निपन्तत्योऽनिशं भुवि २४
वासतो ववृषे वर्ष नोपरिष्टात्तु तोयदः । मृगेन्द्ररूपिणस्य स्थित-
स्य युधि मायया ॥ २५ ॥ हतेऽश्मवर्षे तुमुले जलवर्षे च शोषिते ।
ससृजुर्दानवा मायामग्निं वायुं च सर्वशः ॥ २६ ॥ नभसः मध्यु-
तश्चैव तिग्मवेगः समन्ततः । ज्वालामाली महारौद्रो दीप्ततेजाः
समन्ततः ॥ २७ ॥ स सृष्टः पावकस्तेन दैत्येन्द्रेण महात्मना ।
न शशाक महातेजा दग्धुमप्रतिमौजसम् ॥ २८ ॥ तमिन्द्रस्तोयदैः
सार्धं सहस्राक्षोऽमितद्युतिः । महता तोयवर्षेण शमयामास पाव-

के अक्षकी समान मोटी जलधारा चारों ओरसे पड़ने लगीं २१
आकाशसे पड़ती हुई बड़ी वेग वाली धाराओंने आकाश दिशा
और विदिशाओंको भर दिया ॥२२॥ धाराओंके गिरनेसे वायु
के चलनेसे और बढ़ती हुई वर्षाके कारण कुछ भी प्रतीत नहीं
होता था ॥ २३ ॥ आकाश और पृथिवीमें भरी हुई और भूमि
में निरन्तर पड़ती हुई जलधाराओंने नरसिंहका स्पर्श भी नहीं
किया ॥ २४ ॥ मृगेन्द्रका रूप बना कर युद्धमें माया करके खड़े
हुए नरसिंहके बाहर वर्षा होरही थी और मेघ उनके ऊपर
वर्षा नहीं करता था ॥२५॥ पत्थरोंकी वर्षाके नष्ट होने पर और
तुमुल जलवर्षाके सोख लेनेपर दानव अग्नि और वायुकी माया
को चारों ओर रचने लगे ॥ २६॥ उस समय आकाशसे तिरछे
वेग वाला ज्वालामाली दमकते हुए तेज वाला महा भयंकर
अग्नि गिरने लगा ॥ २७ ॥ परन्तु महात्मा दानवके द्वारा रची
हुई तेजोमयी अग्नि भी अप्रतिम तेज वाले नरसिंहको न जला
सकी ॥ २८ ॥ उस समय सहस्र नेत्र वाले अमित कान्ति वाले

कम् ॥ २९ ॥ तस्यां प्रतिहतायां तु मायायां युधि दानवाः । ससृजुर्घोरसंकाशं तमस्तीव्रं समन्ततः ॥ ३० ॥ तमसा संवृते लोके दैत्येष्वात्तायुधेषु वै । स्वतेजसा परिवृतो दिवाकर इवा-बभौ ॥ ३१ ॥ त्रिशिखां भ्रुकुटीं चास्य ददृशुर्दानवा रणे । ललाटस्थां त्रिकूटस्थां गंगां त्रिपथगामिव ॥ ३२ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि नारसिंहे पंचचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४५॥

वैशम्पायन उवाच। ततः सर्वासु मायासु हतासु दितिनंदनाः । हिरण्यकशिपुं सर्वे विषण्णाः शरणं गताः ॥ १ ॥ ततः प्रज्व-लितः क्रोधात् प्रदहन्निव तेजसा । हिरण्यकशिपुर्दैत्यश्चालयामास मेदिनीम् ॥ २ ॥ ततः प्रक्षुभिताः सर्वे सागराः सलिला-कराः । चालिता गिरयः सर्वे सकाननवनद्रुमाः ॥ ३ ॥ तस्मिन्

इन्द्रने मेघोंको साथमें लेकर बड़ा भारी जल बरसा कर उस अग्निको शान्त कर दिया ॥ २९ ॥ उस मायाके नष्ट होने पर दानवोंने युद्धमें डरावनेसे तीव्र अन्धकारको चारों ओर प्रकट कर दिया ॥ ३० ॥ लोकोंके अन्धकारसे भर जानेपर आयुध-धारी दानवोंके बीचमें विराजमान नरसिंह भगवान् अपने तेजसे आवृत होकर सूर्यकी समान दिपने लगे ॥ ३१ ॥ और उस समय दानवोंने रणमें नरसिंहके मस्तकमें स्थित तीन बल वाली भ्रुकुटीको त्रिकूटपर स्थित त्रिपथगा गंगाकी समान देखा ॥ ३२ ॥ पैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४५ ॥

वैशम्पायनजीने कहा, कि—सब मायाओंके असफल होनेके अनन्तर सब दितिनन्दन खिन्न होकर हिरण्यकशिपुकी शरण में पहुँचे ॥ १ ॥ तब तो क्रोधसे प्रज्वलित और तेजसे पृथिवीको भस्मसा करता हुआ हिरण्यकशिपु राक्षस पृथिवीको चला-यमान करने लगा ॥ २ ॥ तब तो जलकी खान सब समुद्र क्षुब्ध

क्रुद्धे तु दैत्येन्द्रे तमोभूतमभूज्जगत्। तमसा समभूच्छन्नं न प्राज्ञायत किंचन ॥४॥ आवहः प्रवहश्चैव विवहश्च समन्ततः। परावहः संवहश्चैव उद्वहश्च महाबलः ॥ ५ ॥ तथा परिवहः श्रीमान् मारुता भयशंसिनः। इत्येते क्षुभिताः सप्त मारुता गगनेचराः ६ ये ग्रहा सर्वलोकस्य क्षये प्रादुर्भवन्ति च। ते ग्रहा गगने हृष्टा विचरन्ति यथा सुखम् ॥ ७ ॥ अधोगतश्च ताराभिः सर्वर्क्षेषु संगताः। संग्रहं सहनक्षत्रं प्रजज्वाल नभो नृप ॥ ८ ॥ विवर्णरश्मिः भगवान् गतो दिवि दिवाकरः। कृष्णः कबन्धश्च महाँल्लक्ष्यते च नभस्तले ॥९॥ अमुञ्चच्चासितां सूर्यो धूमवर्तिं भयावहाम्। गगनस्थश्च भगवानभीक्ष्णं परितप्यते ॥ १० ॥ सप्त धूमनिभा घोराः सूर्या दिवि समुत्थिताः। सोमस्य गगनस्थस्य ग्रहास्तिष्ठन्ति

होगए और जंगल बाग और वनोंसहित सब पर्वत कांपने लगे उस दानवेन्द्रके क्रुद्ध होने पर जगत् अन्धकारमय होगया, अन्धकारसे ढकजाने पर कुछ भी प्रतीत नहीं होता था ॥ ४ ॥ उस समय आवह प्रवह विवह परावह सम्वह और महाबली उद्वह तथा श्रीमान् परिवह ये भयसूचक आकाशचारी सात वायु क्षुब्ध होगए॥५-६॥सब लोकका क्षय होनेके समय जो ग्रह प्रकट होते हैं वे ग्रह आकाशमें सुखपूर्वक प्रसन्न होकर विचरण करने लगे ७ हे राजन् ! उस समय संग्रह और नक्षत्र सहित आकाश सब नक्षत्र और तारोंके साथ अधोगत होगया अर्थात् यथोक्त वृद्धि और ह्रासका सम्बन्ध न होनेपर भी अतीव वृद्धि और ह्रासके कारण,नियतिगति आकाश अनियत होगया८आकाशमें भगवान् दिवाकर सूर्य निष्प्रभ होगए और आकाशतलमें बड़ा भारी काला राहु दीखने लगा९ सूर्य भयदायक काली धूमवर्तीको छोड़ने लगे और आकाशमें स्थित होनेपर भी वारम्वार परिताप पाने लगे आकाशमें अन्धकारकी समान सात धूममय सूर्य प्रकट होगए

शृङ्गाः ॥ ११ ॥ वामे च दक्षिणे चैव स्थितौ शुक्रबृहस्पती । शनैश्चरो लोहिताङ्गो लोहितार्कसमद्युतिः ॥ १२ ॥ समं समभिरोहन्ति दुर्गाणि गगनेचराः । शृङ्गाणि कनकैर्घोरा युगान्तावर्तका ग्रहाः ॥ १३ ॥ चन्द्रमाः सह नक्षत्रैर्ग्रहैः सप्तभिरावृतः । चराचरविनाशार्थं रोहिणीं नाभ्यनन्दत ॥ १४ ॥ गृहीतो राहुणा चन्द्र उल्काभिरभिहन्यते । उल्काः प्रज्वलिताश्चन्द्रे प्रचेलुर्घोरदर्शनाः ॥ १५ ॥ देवानामपि यो देवः सोऽभ्यवर्षत शोणितम् । अपतन् गगनादुल्का विद्युद्रूपाः सनिःस्वनाः ॥ १६ ॥ अकाले पादपाः सर्वे पुष्पन्ति च फलन्ति च । लताश्च सफलाः सर्वा याः प्राहुर्दैत्यनाशनम् ॥ १७ ॥ फले फलान्यजायन्त पुष्पे पुष्पं तथैव च । उन्मीलन्ति निमीलन्ति हसन्ति च रुदन्ति च ॥ १८ ॥

और वे आकाशमें स्थित सोमके समीपमें खड़े हुए दिखाई देने लगे १०-११ बाईं ओर शुक्र और दाईं ओर बृहस्पति स्थित होगए और रक्त सूर्यकी समान रक्त अङ्गों वाला शनैश्चर भी (उदित होगया) १२ आकाशचारी प्रलयकाल उपस्थित करनेवाले घोर ग्रह मेरुपर्वतके शिखरों पर एक साथ चढने लगे १३ चन्द्रमा और नक्षत्र सात ग्रहोंसे घिरकर चर और अचर जगत्के नाशकी सूचना देने लगे और उन्होंने रोहिणीका अभिनन्दन करना बंद कर दिया १४ राहुका ग्रसा हुआ चन्द्रमा उल्काओंसे पीडित होने लगा और भयंकर दिखाव वाली दहकती हुई उल्काएँ चन्द्रमाके मण्डलमें विचरण करने लगीं १५ देवताओंके भी देवता (इन्द्र) ने रक्त बरसाना आरम्भ कर दिया, आकाशसे गड़गड़ाती हुई बिजलीकी समान उल्काएँ गिरने लगीं ॥ १६ ॥ अकालमें ही सब वृक्ष पुष्प और फल वाले होगए, और दानवों के नाशको सूचित करने वाली सब लताएँ भी फल वाली हो गईं १७ फलमें फल उत्पन्न होने लगे और पुष्पोंमें पुष्प होगए

विक्रोशन्ति च गम्भीरं धूमयन्ति ज्वलन्ति च । प्रतिमाः सर्वदेवानां कथयन्ति युगक्षयम् ॥१६॥ आरण्यैः सह संसृष्टा ग्राम्याश्च मृगपक्षिणः । चुक्रुशुर्भैरवं तत्र मृगेन्द्रे समुपस्थिते ॥ २० ॥ नद्यश्च प्रतिलोमा हि वहन्ति कलुषोदकाः । अपराह्णगते सूर्ये लोकानां क्षयकारके ॥ २१ ॥ न प्रकाशन्ति च दिशो रक्तरेणुसमाकुलाः । वानस्पत्या न पूज्यन्ते पूजनार्हाः कथञ्चन ॥ २२ ॥ वायुवेगेन हन्यन्ते भिद्यन्ते प्रणुदन्ति च । तदा च सर्वभूतानां छाया न परिवर्तते ॥ २३ ॥ अपराह्णगते सूर्ये लोकानां च युगक्षये । तदा हिरण्यकशिपोर्दैत्यस्योपरि वेश्मनः ॥ २४ ॥ भांडागारायुधागारे निविष्टमभवन्मधु । तथैव चायुधागारे धूमराजिरदृश्यत ॥ २५ ॥ स च दृष्ट्वा महोत्पातान् हिरण्यकशिपुस्तदा ।

और देवताओंकी सब प्रतिमाएँ युगक्षयको सूचित करनेके लिए नेत्रोंके पलकोंको खोलने लगीं, मीचने लगीं हँसने लगीं रोने लगीं चिल्लाने लगीं गम्भीर धूम छोडने लगीं और प्रज्वलित होने लगीं १८–१६ तहाँ पर नरसिंहके आनेपर जङ्गली जानवर और पक्षी ग्रामके जानवर और पक्षियोंसे मिलकर भयंकररीतिसे रोने लगे २० नदियोंका जल कलुषित होगया और वे उलटी बहने लगीं, लोकोंके नाशकी सूचना देने वाले होनेके कारण सूर्यके मध्यदिनमें पहुँचने पर भी रक्तरेणुसे घिरी हुई दिशाएं न खिलीं और पूजनीय वृक्षोंका पूजन होना बन्द होगया २१-२२ और वे आँधीके कारण टूटनेलगे तथा दूसरोंको तोडनेलगे; उस समय सूर्यके अपराह्नमें पहुँचने पर भी सब प्राणियोंकी छाया पडनी भी बन्द होगई उस समय हिरण्यकशिपु दानवके भवनके ऊपर, वर्तनोंके भवनके ऊपर और आयुधागारके ऊपर शहद की मक्खियोंका झुंड बैठ गया तथा आयुधागारमें धूमराशि भी दीखने लगी २३–२५ हिरण्यकशिपुने इन बड़े २ उत्पातों

पुरोहितं तदा शुक्रं वचनं चेदमब्रवीत् ॥२६॥ किमर्थं भगवन्नेते महोत्पाताः समुत्थिताः। श्रोतुमिच्छामि तत्त्वेन परं कौतूहलं हि मे ॥२७॥ शुक्र उवाच। शृणु राजन्नवहितो वचनं मे महासुर। यदर्थमिह दृश्यन्ते महोत्पाता महाभयाः॥ २८ ॥ यस्यैते संप्रदृश्यन्ते राज्ञो राष्ट्रे महासुर। देशो वा ह्रियते तस्य राजा वा वधमर्हति ॥२९॥ अतो बुद्ध्या समीक्षस्व यथा सर्वं प्रणश्यति। सुमहद्भयं हि न चिराद्भविष्यति न संशयः ॥ ३० ॥ एतावदुक्त्वा शुक्रस्तु हिरण्यकशिपुं तदा। स्वस्तीत्युक्त्वा तु दैत्येन्द्रं जगाम स्वं निवेशनम् ॥ ३१ ॥ तस्मिन्गते स दैत्येन्द्रो ध्यातवान्सुचिरं तदा। आसीच्च सुदीनात्मा ब्रह्मवाक्यमनुस्मरन् । असुराणां विनाशाय सुराणां विजयाय च ॥ ३२ ॥ दृश्यन्ते विविधोत्पाता घोरा घोरनिदर्शनाः। एते चान्ये च बहवो घोरा दुरुत्पातदर्शनाः ३३

को देखकर अपने पुरोहित शुक्राचार्यसे यह बात कही, कि-२६ हे भगवन्! ये बड़े २ उत्पात किस लिए उठ रहे हैं इनके तत्त्व को मैं जानना चाहता हूँ, इसका मुझे बडा भारी कुतूहल है २७ शुक्राचार्यने कहा कि- हे महासुर राजन्! तुम सावधान होकर मेरी बातको सुनो, कि-जिस लिए ये महाभयदायक बडे२ उत्पात होरहे हैं २८ हे महासुर! जिस राजाके राष्ट्रोंमें ये दीखते हैं, उस राजाका देश छिन जाता है अथवा वह राजा मारा जाता है २९ अतः ये सब (क्यों) नष्ट होने वाला है इस बातका विचार करो, क्यों कि-अल्पकालमें ही बड़ा भारी भय पड़ेगा ३० इतनी बात कह कर शुक्राचार्य दानवेन्द्र हिरण्यकशिपुसे स्वस्ति हो कर कर अपने घरको चले गए ३१ उनके चले जाने पर दानवेन्द्र बहुत समय तक विचार करता रहा और ब्रह्माजीके वाक्यका स्मरण कर परम दीन होगया (और विचारने लगा कि-) भयंकर दिखाव वाले कालनिर्मित अनेक प्रकारके भया-

दैत्येन्द्राणां विनाशाय दृश्यन्ते कालनिर्मिताः । ततो हिरण्य-कशिपुर्गदामादाय सत्वरम् ॥ ३४ ॥ अभ्यद्रवत्तु वेगेन धरणी-मनुकम्पयन् । हिरण्यकशिपुर्दैत्यो यदा संस्पृष्टवान् महीम् ॥३५॥ संदष्टोष्ठपुटः क्रोधाद्वाराह इव पूर्वजः । मेदिन्यां कम्पमानायां दैत्येन्द्रेण महात्मना ॥ ३६ ॥ महीधरेभ्यो नागेन्द्रा निपेतुर्भय-विक्लवाः । विषज्वालाकुलैर्वक्त्रैर्विमुञ्चन्तो हुताशनम् ॥ ३७ ॥ चतुःशीर्षाः पंचशीर्षाः सप्तशीर्षाश्च पन्नगाः। वासुकिस्तक्षकश्चैव कर्कोटकधनञ्जयौ ॥ ३८॥ एलापत्रश्च कालीयो महापद्मश्च वीर्यवान् । सहस्रशीर्षधृङ् नागो हेमतालध्वजः प्रभुः ॥ ३९ ॥ शेषोऽनन्तो महीपालो दुष्प्रकम्पः प्रकम्पितः । दीप्तान्यन्तर्जलस्थानि पृथिवी-धरणानि च ॥ ४० ॥ तदा क्रुद्धेन दैत्येन कम्पितानि समन्ततः । पातालतलचारिण्यो नागतेजोधराः शिलाः ॥ ४१ ॥ आपश्च

नक उत्पात असुरोंके विनाशके लिए और देवताओंकी विजयके लिए दीख रहे हैं, तथा और भी बहुतसे कालनिर्मित घोर उत्पात दैत्येन्द्रोंका विनाश करनेके लिए दीख रहे हैं, तदनन्तर हिरण्य-कशिपु शीघ्रतासे गदाको ले वेगसे पृथिवीको कँपाता हुआ दौड़ा, क्रोधसे ओठोंको काटते हुए हिरण्यकशिपु दानवने जिस समय पृथिवीका स्पर्श किया, उस समय वह पूर्वकालमें उत्पन्न हुए वराहकी समान दीखने लगा, महात्मा दैत्येन्द्रके पृथिवीको कँपाने पर मुखमेंसे विषकी ज्वालाको निकालते हुए सर्प पर्वतों मेंसे निकलने लगे ॥ ३२-३७ ॥ इन सर्पोंमें कोई सर्प चार फन वाले थे, कोई पाँच फन वाले थे और उस समय वासुकि तक्षक, कर्कोटक, धनञ्जय, एलापत्र, कालीय, महापद्म, वीर्यवान् सहस्र फनवाले सुवर्णके तालकी ध्वजा वाले शेष, अनन्त और दुष्प्रकम्प भी काँप गए, इसके अतिरिक्त क्रोधमें भरे हुए उस दैत्यने जलके भीतर स्थिर प्रदीप्त पर्वतोंको भी (अपने चलने

सहसा क्षुब्धा दुष्पकम्प्यरसाः शुभाः। नदी भागीरथी चैव सरयूः कौशिकी तथा ॥ ४२॥ यमुना चैव कावेरी कृष्णा वेणा तथैव च। सुवेणा च महाभागा नदी गोदावरी तथा ॥ ४३ ॥ चर्मण्वती च सिन्धुश्च तथा नदनदीपतिः । मेकलप्रभवश्चैव शोणो मणिनिभोदकः ॥ ४४ ॥ सुश्रोणा नर्मदा चैव तथा वेत्रवती नदी । गोमती गोकुलाकीर्णा तथा पूर्णा सरस्वती ॥४५॥ मही कालनदी चैव तमसा पुण्यवाहिनी । सीता चेक्षुमती चैव देविका च महानदी ॥ ४६ ॥ जम्बुद्वीपं रत्नवन्तं सर्वरत्नोपशोभितम् । सुवर्णकूटकं चैव सुवर्णाकरमंडितम् ॥ ४७ ॥ महानदश्च लोहित्यः शैलकाननशोभितः । पत्तनं कौशिकारण्यं द्रुमं च रजताकरम् ॥ ४८ ॥ मागधांश्च महाग्रामानंगान् वंगांस्तथैव

की धमकसे) कँपा दिया, पातालतलमें विचरण करने वाले अमोंके तेजको धारण करने वाले दुष्पकम्प्य रस भी उस समय सहसा क्षुब्ध होगये, भागीरथी सरयू कौशिकी यमुना कावेरी कृष्णा वेणा सुवेणा महाभागा गोदावरी चर्मण्वती नदनदीपति सिन्धु, मेकलमें उत्पन्न हुआ मणिकी समान जल वाला शोण, सुश्रोणा-नर्मदा वेत्रवती नदी गौओंसे व्याप्त गोमती नदी पूर्णा सरस्वती मही कालनदी पुण्यवाहिनी तमसा सीता इक्षुमती और महानदी देविका (इन नदियोंको उस दैत्यने चलायमान करदिया) ॥ ३८-४६ ॥ (उसने पैरके धमाकेसे) रत्नों वाले जम्बू द्वीपको और सुवर्ण की खानोंसे मण्डित तथा सब रत्नोंसे सुशोभित सुवर्णकूटकको (कम्पायमान कर दिया) ॥ ४७ ॥ पर्वत और जंगलोंसे सुशोभित महानद लौहित्य, कौशिकारण्य नामक शहर और चाँदीकी खान वृक्ष (ये सब उस दानवके चलनेसे काँपने लगे) ॥ ४८ ॥ मगध देशोंको महाग्रामोंको अङ्गोंको वङ्गोंको सुम्होंको मल्लोंको विदेहोंको मालवोंको और

च । सुह्मान् मल्लान् विदेहांश्च मालवान् काशिकोसलान् ४९
भुवनं वैनतेयस्य सुवर्णस्य च कम्पितम् । कैलासशिखराकारं
यत् कृतं विश्वकर्मणा ॥ ५० ॥ रक्ततोयो भीमवेगो लौहित्यो
नाम सागरः । शुभः पाण्डुरमेघाभः क्षीरोदश्चैव सागरः ५१
उदयश्चैव राजेन्द्र उच्छ्रितः शतयोजनम् । सुपर्णवेदिकः श्रीमान्
नागपक्षिनिषेवितः ॥ ५२ ॥ आजगामार्कसदृशैर्जातरूपमयैर्द्रुमैः
शालैस्तालैस्तमालैश्च कर्णिकाभिश्च पुष्पितैः ॥ ५३ ॥ अयो-
मुखश्च विपुलः पर्वतो धातुमण्डितः । तमालवनगन्धश्च पर्वतो
मलयः शुभः ॥ ५४ ॥ सुराष्ट्राश्च सुवाल्हीकाः शूराभीरास्तथैव
च । भोजाः पाण्ड्याश्च वंगाश्च कलिंगास्ताम्रलिप्तकाः ॥५५॥
तथैवान्ध्राश्च पुण्ड्राश्च वामचूडाः सकेरलाः । क्षोभितास्तेन
दैत्येन सदेवाः साप्सरसोगणाः ॥ ५६ ॥ अगस्तिभुवनं चैव

काशिकोसल देशोंको गरुड़जीके विश्वकर्माके बनाहुए कैलासकी शिखरकी समान आभा वाले सुवर्णके भवनको भी कँपा दिया ॥ ४९ ॥ ५० ॥ भयंकर वेगवाला और लाल जलवाला लौहित्य नामक समुद्र और श्वेतवर्णकी समान शुभ आभावाला क्षीरोद नामक समुद्र तथा सौ योजन ऊपरको उठा हुआ सर्प और पक्षियोंसे सेवित गरुड़जीके बैठनेका स्थान शोभायमान उदयाचल पर्वत, सुवर्णके सूर्यकी समान कान्तिवाले तथा शाल ताल तमाल और पुष्पित कनेरोंसे शोभा पाता हुआ धातु मण्डन अयोमुख विपुलपर्वत और तमाल वनकी गन्ध रखने-वाला शुभ मलय पर्वत सुराष्ट्र सुवाल्हीक शूर आभीर भोज पाण्ड्य वंग कलिंग ताम्रलिप्तक अन्ध्र, पुण्ड्र, वामचूड़ और केरल आदि देशोंको और अप्सरा तथा देवताओंको उस दानवने क्षुब्ध करदिया ॥ ५१-५६ । सिद्ध और चारणोंके टोलोंसे सेवित परम मनोहर विचित्र हस्ती और पक्षीवाला पुष्पित लता

यदगम्यं पुरा कृतम् । सिद्धचारणसंघैश्च सेवितं सुमनोहरम् ५७
विचित्रनागविहगं सुपुष्पितलताद्रुमम् । जातरूपमयैः शृङ्गैरप्सरो-
गणसेवितम् ॥ ५८ ॥ गिरिः पुष्पितकश्चैव लक्ष्मीवान् प्रिय-
दर्शनः । उत्थितः सागरं भित्वा वयस्यश्चन्द्रसूर्ययोः ॥ ५९ ॥
रराज सुमहाशृङ्गैर्गगनं विलिखन्निव । सूर्यचन्द्रांशुसंकाशैः सा-
गराम्बुसमावृतः ॥ ६० ॥ विद्युद्वान् पर्वतः श्रीमानायतः शतयो-
जनम् । विद्युतां यत्र सम्पाता निपात्यन्ते नगोत्तमे ॥ ६१ ॥
ऋषभः पर्वतश्चैव श्रीमानृषभसंस्थितः । कुञ्जरः पर्वतश्चैव यत्रा-
गस्त्यगृहं महत् ॥ ६२ ॥ वैशालरथ्या दुर्धर्षा सर्पाणामालया
पुरी । तथा भोगवती चापि दैत्येन्द्रेणाभिकम्पिता ॥६३॥ महा-
मेघगिरिश्चैव पारियात्रश्च पर्वतः । चक्रवांश्च गिरिः श्रेष्ठो वाराह-
श्चैव पर्वतः ॥ ६४ ॥ प्राग्ज्योतिषपुरं चैव जातरूपमयं शुभम् ।

लतावाला सुवर्णके शृङ्गोंवाला अप्सराओंसे सेवित, पहले अगम्य बनाया हुआ अगस्ति भवन चन्द्रमा और सूर्यकी बराबर अवस्था वाला मनोहर दीखनेवाला और समुद्रको भेदकर ऊपरको खड़ा हुआ शोभायमान पुष्पितक गिरि (उस दैत्यके धमाकेसे काँप गया) ॥ ५७–५९ ॥ सूर्य और चन्द्रमाकी किरणोंकी समान बड़े शिखरोंसे जो आकाशको कुरेदतासा रहता है तथा समुद्रके जलसे ढककर शोभा पाता रहता है और जिस पर्वतश्रेष्ठ पर निरन्तर बिजलियें गिरती हैं वह सौ योजन लम्बा विद्युत्वान पर्वत ऋषभ पर स्थित ऋषभ पर्वत जहाँ पर अगस्त्यजीका घर है वह बडा भारी कुञ्जर पर्वत और जिसमें बड़ी चौड़ी गलियें हैं वह सर्पोंकी निवास स्थान भोगवती नामवाली नगरी भी दैत्येन्द्रसे काँप गई ॥ ६०–६३ ॥ महामेघगिरी पारियात्र पर्वत चक्रवान् पर्वत, श्रेष्ठ वाराह पर्वत जिसमें दुष्टात्मा नरक नामक दानव रहता था वह सुवर्णसम्पन्न प्राग्ज्योतिष नामक

यस्मिन् वसति दुष्टात्मा नरको नाम दानवः ॥ ६५ ॥ मेरुश्च पर्वतश्रेष्ठो मेघगम्भीरनिःस्वनः । षष्टिं तत्र सहस्राणि पर्वतानां विशाम्पते ॥ ६६ ॥ तरुणादित्यसंकाशो महेन्द्रश्च महागिरिः । देवावासः शुभः पुण्यो गिरिराजो हिरण्मयः ॥ ६७ ॥ हेमशृङ्गो महाशैलस्तथा मेघसखो गिरिः । कैलासश्चापि दुष्कम्पो दानवेन्द्रेण कम्पितः ॥ ६८ ॥ यक्षराक्षसगन्धर्वैर्नित्यं सेवितकन्दरः । श्रीमन्मनोहरश्चैव नित्यं पुष्पितपादपः ॥६९॥ हेमपुष्करसंछन्नं तेन वैखानसं सरः । कम्पितं मानसं चैव राजहंसैर्निषेवितम् ७० त्रिशृङ्गः पर्वतश्चैव कुमारी च सरिद्वरा । तुषारचयसंकाशो मन्दरश्चैव पर्वतः ॥७१॥ उशीरबीजश्च गिरीरुद्रोपस्थस्तथाद्रिराट् । प्रजापतेश्च निलयस्तथा पुष्करपर्वतः ॥ ७२ ॥ देवाह्वत् पर्वतश्चैव तथा वै वालुको गिरिः । क्रौंचः सप्तर्षिशैलश्च धूम्रवर्णश्च

शुभ नगर है राजन् ! जहाँ पर साठ हजार पर्वत हैं और जो मेघकी समान गम्भीर गर्जना करता है वह पर्वतश्रेष्ठ मेरु पर्वत देवताओंका निवास—स्थान तरुण आदित्यकी समान पर्वतराज महेन्द्र महापर्वत बड़े २ पत्थरों वाला हेमशृङ्ग नामक पर्वत और मेघोंका मित्र दुष्पकम्प्य कैलास नामक पर्वत भी दानवराजसे काँप गया ॥ ६४—६८ ॥ यक्ष राक्षस और गन्धर्व उसकी कन्दराओंका सदा सेवन करते रहते हैं उसके वृक्षों पर सर्वदा पुष्प आया करते हैं और वह मनको खेंचा करता है ॥ ६९ ॥ हिरण्यकशिपुने सुवर्णके कमलोंसे आच्छादित वैखानस नामक सरोवरको और राजहंसोंसे सेवित मानसरोवरको भी कँपा दिया ॥ ७० ॥ त्रिशृंग पर्वत कुमारी नामकी श्रेष्ठ नदी पालेके ढेरकी समान मन्दराचल पर्वत उशीरबीज गिरि गिरिराज रुद्रोपस्थ और प्रजापतिका निवासस्थान पुष्कर गिरि देवाह्वत पर्वत वालुक पर्वत क्रौंच सप्तर्षि और

पर्वतः ॥७३॥ एते चान्ये च गिरयो देशा जनपदास्तथा । नद्यश्च सागराश्चैव दानवेन्द्रेण कम्पिताः ॥ ७४ ॥ कपिलश्च महीपुत्रो व्याघ्राक्षश्चैव कम्पितः । खेचराश्च निशापुत्राः पातालतलवासिनः ॥ ७५ ॥ गणास्तथापरे रौद्रा मेघनादांकुशायुधाः । ऊर्ध्वगो भीमवेगश्च सर्व एवाभिकम्पिताः ॥ ७६ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि नारसिंहे षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

वैशम्पायन उवाच । तत्रादित्याश्च साध्याश्च विश्वे च मरुतस्तथा । रुद्रा देवा महात्मानो वसवश्च महाबलाः ॥ १ ॥ आगम्यते मृगेन्द्रस्य सकाशं सूर्यवर्चसः । ऊचुः संत्रस्तमनसो देवा लोकभयार्दिताः ॥ २ ॥ जहि देव दितेः पुत्रं दानवं लोकनाशनम् । दुर्वृत्तमसदाचारं सह सर्वैर्महासुरैः ॥ ३ ॥ त्वं ह्येषामन्तकृन्नान्यो दैत्यानां दैत्यनाशन । तन्नाशय हितार्थाय लोकानां

धूम्रवर्ण नामक पर्वत इन पर्वतोंको देशोंको, शहरोंको नदियोंको और समुद्रोंको दानवेन्द्रने कँपा डाला ॥७१-७४॥ कपिल महीपुत्र व्याघ्राक्ष आकाशचारी पातालतलवासी निशापुत्र तथा मेघनादरूपी अंकुशके आयुधोंको धारण करने वाले और भी बहुतसे भयंकर वेगवाले ऊर्ध्वगामी सब रौद्रव्यक्तियोंके टोले काँप उठे ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ छियालीसवाँ अध्याय समाप्त॥४६॥

वैशम्पायनजीने कहा, कि-तहाँ पर आदित्य साध्य विश्वेदेवा मरुद्गण रुद्रदेव महात्मा और महाबली वसु ये सूर्यकी समान कान्तिवाले देवता संसारकी पीड़ासे पीडित होकर नरसिंहके पास पहुँचे और भयभीत मनसे कहने लगे, कि-॥ १ ॥ २ ॥ हे देव ! आप संसारका अशुभ करने वाले दुर्वृत्त असदाचारी इस दितिपुत्र दानवका और सब बड़े २ राक्षसोंका वध करिए ॥ हे दैत्यनाशन ! आपके अतिरिक्त और कोई दानवोंको नहीं

स्वस्ति नौ कुरु ॥४॥ त्वं गुरुः सर्वलोकानां त्वमिन्द्रस्त्वं पितामहः। न ह्ये त्वदन्यच्छरणं न भूतं न भविष्यति ॥५॥ तच्छ्रुत्वा वचनं देवो देवानामादिसंभवः। ननाद सुमहानादमतिगम्भीरनिःस्वनम् ॥ ६ ॥ पातितान्यसुरेन्द्राणां मृगेन्द्रेण महात्मना। सिंहनादेन महता हृदयानि मनांसि च ॥ ७ ॥ गणः क्रोधवशो नाम कालकेयस्तथापरः। वेगश्च शैंगलेयश्च सैंहिकेयश्च वीर्यवान् ॥ ८ ॥ संह्रदीयो महानादी महावेगस्तथापरः। कपिलश्च महीपुत्रो व्याघ्राक्षः क्षितिकम्पनः ॥ ९ ॥ खेचराश्च निशापुत्राः पातालतलचारिणः। गणास्तथापरौ रौद्रो मेघनादोंऽकुशायुधः १० ऊर्ध्वगो भीमवेगश्च भीमकर्मार्कलोचनः। वज्री शूली करालश्च हिरण्यकशिपुस्ततः ॥ ११ ॥ जीमूतघनसंकाशो जीमूत इव वेग-

मार सकता आप ही इनका नाश करसकते हैं इसलिए प्राणियों का हित करनेके लिए इसको मार कर संसारका कल्याण करिए ॥ ४ ॥ आप सब लोकोंके गुरु हैं और आप ही इन्द्र और पितामह हैं आपके अतिरिक्त और कोई शरण देने वाला न हुआ है और न होगा ॥५॥ इस वचनको सुनकर देवताओं में प्रथम उत्पन्न हुए देव अति गम्भीर गर्जनावाले भयंकर नाद को करने लगे ॥६॥ महात्मा मृगेन्द्रने बड़ाभारी सिंहनाद करके बड़े २ असुरोंके हृदय और मनको विदीर्ण कर दिया ॥ ७ ॥ तब क्रोधवश नामक गण, कालकेय नामक गण वेग शैंगलेय वीर्यवान्-सिंहिकेय महानादी-संह्रदीय महावेग कपिल महीपुत्र व्याघ्राक्ष क्षितिकम्पन, पातालके तलमें विचरण करने वाले आकाशचारी निशापुत्र और हाथमें अंकुशको धारण करनेवाला भयंकर मेघनाद नामक गण (नरसिंहके ऊपर) दौड़ा और उस समय आकाशमें चलने वाला भीमवेग भीमकर्मा और सूर्य की समान नेत्र वाला हिरण्यकशिपु वज्र और शूलको धारण

वान् । जीमूतघनसन्नादो जीमूतघनवद्द्युतिः ॥१२॥ देवारिर्दितिजो हप्तो नृसिंहं समुपाद्रवत् । समुत्पत्य ततस्तीक्ष्णैर्मृगेन्द्रेण महानखैः ॥ १३ ॥ तत्रोंकारसहायेन विदार्य निहतो युधि॥१४॥ मही च लोकश्च शशी नभश्च ग्रहाश्च सूर्यश्च दिशश्च सर्वाः । नद्यश्च शैलाश्च महार्णवाश्च गताः प्रकाशं दितिपुत्रनाशात्॥१५ ततः प्रमुदिता देवा ऋषयश्च तपोधनाः । तुष्टुवुर्विविधैः स्तोत्रैरादिदेवं सनातनम् ॥ १६ ॥ देवा ऊचुः । यत्त्वया विहितं देव नारसिंहमिदं वपुः । एतदेवार्चयिष्यन्ति परावरविदो जनाः । मृगेन्द्रत्वं च लोकेषु सर्वसत्त्वेषु वा विभो ॥ १७ ॥ गायन्ति त्वां च मुनयो मृगेन्द्र इति नित्यशः । त्वत्प्रसादात् स्वकं स्थानं प्रतिपन्नाः स्म वै विभो ॥ १८ ॥ एवमुक्तो देवसंघैर्नरसिंहो महा-

कर घमण्डमें भर नृसिंहके ऊपर दौड़ा, उस समय वह मेघकी समान दीखरहा था और मेघकी समान वेगसे दौडरहा था,मेघकी समान गड़गड़ा रहा था और उसकी कान्ति भी जल भरे मेघकी समान दीख रही थी,उस समय ॐकारकी सहायतावाले नरसिंहने कूद कर (उसको पकड लिया) और अपने बड़े २ नाखूनोंसे उसको फाड करके मार डाला ॥ ८-१४ ॥ तब दितिके पुत्रके नष्ट होने पर पृथ्वी लोक चन्द्रमा आकाश ग्रह सूर्य सब दिशा नदियें पर्वत और समुद्र प्रसन्न होगये ॥ १५ ॥ तब तपोधन ऋषि और देवता प्रसन्नतामें भरकर सनातन आदिदेवकी अनेक प्रकारके स्तोत्रोंसे स्तुति करने लगे ॥ १६ ॥ देवता कहने लगे, कि-हे देव ! आपने जो ये नरसिंहका शरीर धारण किया है,पर और अवरको जाननेवाले पुरुष इस नरसिंह शरीरकी पूजा करेंगे और हे विभो ! सब लोकोंके सब प्राणियोंमें यह नृसिंहावतार (प्रसिद्ध होजायगा) ॥१७॥ मुनि आपके नृसिंह नामका गान करेंगे हे विभो ! आपकी प्रसन्नतासे हमने अपना

मनाः । ब्रह्मा च परमप्रीतो विष्णोःस्तोत्रमुदीरयत् ॥१९॥ ब्रह्मोवाच । भवानक्षरमव्यक्तमचिन्त्यं गुह्यमुत्तमम् । कूटस्थमकृतं कर्तृ सनातनमनामयम् ॥ २० ॥ सांख्ययोगे च या बुद्धिस्तत्त्वार्थपरिनिष्ठिता । तां भवान् वेद विश्वात्मा पुरुषः शाश्वतो ध्रुवः ॥२१॥ त्वं व्यक्तश्च तथाऽव्यक्तस्त्वत्तः सर्वमिदं जगत् । भवन्मया वयं देव भवानात्मा भवान् प्रभुः ॥ २२ ॥ चतुर्विभक्तमूर्तिस्त्वं सर्वलोकविभुर्गुरुः । चतुर्युगसहस्रेण सर्वलोकान्तकान्तकः ॥२३ प्रतिष्ठा सर्वभूतानां अनन्तबलपौरुषः । कपिलप्रभृतीनां च यतीनां परमा गतिः ॥ २४ ॥ अनादिमध्यनिधनः सर्वात्मा पुरुषोत्तमः । स्रष्टा त्वं त्वं च संहर्ता त्वमेको लोकभावनः ॥ २५ ॥ भवान्

स्थान पाया है ॥ १८ ॥ जब देवताओंके टोले महामनस्वी नरसिंहसे इस प्रकार कह चुके तब ब्रह्माजी परम-प्रसन्न होकर विष्णुका स्तोत्र कहने लगे ॥ १९ ॥ ब्रह्माजीने कहा, कि-आप अक्षर अव्यक्त अचिन्त्य परमगुह्य कूटस्थ अकृत कर्ता सनातन और अनामय हैं ॥ २० ॥ सांख्ययोगका जो तात्विक सिद्धांत है उसको विश्वात्मा शाश्वत ध्रुव पुरुष आप ही जानते हैं ॥२१॥ आप व्यक्त और अव्यक्त हैं सब जगत् आपसे ही प्रकट हुआ है हे देव ! हम भवन्मय हैं आप आत्मा हैं और आप ही प्रभु हैं ॥२२॥ आप चतुर्विभक्त मूर्ति हैं अर्थात् नृसिंहतापनी उपनिषद्में प्रसिद्ध विश्व तैजस प्राज्ञ और तुरीय इन चार मूर्तियोंमें विभक्त हैं सब लोकोंके विभु हैं गुरु हैं और सहस्र चतुर्युगी पूर्ण होने पर सब लोकोंके यमराजके भी यमराज बन जाते हैं ॥ २३ ॥ सब भूतों की प्रतिष्ठा हैं अनन्त बल और पुरुषार्थ वाले हैं और कपिल आदि यतियोंकी परमगति हैं २४ अनादि और अनन्त हैं तथा मध्यरहित हैं सर्वात्मा पुरुषोत्तम हैं आप ही रचनेवाले हैं आप ही संहार करनेवाले हैं और एक आप ही

ब्रह्मा च रुद्रश्च महेन्द्रो वरुणो यमः । भवान् कर्ता विकर्ता च लोकानां प्रभुरव्ययः ॥२६॥ परां च सिद्धिं परमं च देवं परं च मन्त्रं परमं मनश्च । परं च धर्मं परमं यशश्च त्वामाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम् ॥ २७ ॥ परं च सत्यं च परमं हविश्च परं पवित्रं परमं च मार्गम् । परं च यज्ञं परमं च होत्रं त्वामाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम् ॥ २८ ॥ परं शरीरं परमं च धाम परं च योगं परमां च वाणीम्। परं रहस्यं परमां गतिं च त्वामाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम्२९ परं परस्यापि परं च यत्परं परं परस्यापि परं च देवम् । परं परस्यापि परं प्रभुं च त्वामाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम् ॥ ३० ॥ परम्परस्यापि परम्प्रधानं परं परस्यापि परञ्च तत्वम् । परं परस्यापि परञ्च धाता त्वामाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम् ॥ ३१ ॥ परं परस्यापि परं रहस्यं परं परस्यापि परम्परं यत्। परं परस्यापि

संसारका कल्याण चाहने वाले हैं ॥२५॥ आप ब्रह्मा रुद्र इन्द्र वरुण यम कर्ता विकर्ता और लोकोंके अव्यय प्रभु हैं २६ आप पुराणपुरुषको परसिद्धि परमदेव परमतत्त्व परम मन पर धर्म और परम यश कहते हैं ॥ २७ ॥ परसत्य परम हवि परमपवित्र परममार्ग परमयज्ञ और परहोत्र कहते हैं ॥ २८ ॥ तुम पुराण पुरुषको शरीरसे पर धामसे पर योगसे पर वाणीसे पर रहस्य से पर और गतिसे पर (उत्कृष्ट) कहते हैं ॥ २९ ॥ आपको परम उत्कृष्टसे भी उत्कृष्ट परमोत्कृष्टके भी देवता और परमोत्कृष्टके परमप्रभु पुराणपुरुष कहते हैं ॥ ३० ॥ आप परमपरसे भी श्रेष्ठ हैं प्रधानसे भी श्रेष्ठ और श्रेष्ठ वस्तुके भी श्रेष्ठ तत्व हैं और परमश्रेष्ठके भी श्रेष्ठ धाता हैं आपको अग्रय पुराण पुरुष कहते हैं ॥ ३१ ॥ आप उत्कृष्टसे उत्कृष्ट वस्तुके भी उत्कृष्ट रहस्य हैं और परमश्रेष्ठ वस्तुके भी परमश्रेष्ठ पदार्थ हैं और परम श्रेष्ठ वस्तुसे भी जो श्रेष्ठ तप है वह आप हैं और आपको श्रेष्ठ

परन्तपो यत्त्वामाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम् ॥ ३२ ॥ परम्परस्यापि परम्परायणं परञ्च गुह्यं च,परञ्च धाम । परञ्च योगं परमं मश्रुत्वं त्वामाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम् ॥ ३३ ॥ वैशम्पायन उवाच । सुव-

पुराण पुरुष कहते हैं ॥ ३२ ॥ आप परमपरके भी परमपरायण हैं गुह्यसे भी श्रेष्ठ हैं तेजसे भी पर हैं योगसे भी श्रेष्ठ हैं आप परम पुरुषको उत्तम पुराणपुरुष कहते हैं (नीलकण्ठ-परमसिद्धि आदि ऊपरके सात श्लोक बारम्बार उसी अर्थको प्रकाशित करते हैं यह तो प्राचीन पुरुषोंका सिद्धांत है परन्तु नरसिंहतापनी उप-निषद्में विश्व आदि चारोंके विश्व आदि चारोंसे गर्भित होने के कारण सोलह भेदोंको दिखलाकर ईश्वरग्रास चौथा है इस प्रकार चतुर्थका भी चतुर्थ सोलहवाँ नृसिंह है, यह बात कही है इसी प्रकार यहाँ पर भी तीन श्लोक इस बातका वर्णन करते हैं कि—विश्व आदि तीनोंमें अन्तर्भूतजो पररूप है वही प्रकाशित होता है फिर चार श्लोकोंमें तुर्यके चित् अनुज्ञातृ अनुज्ञा और विकल्परूप चार भेदोंका वर्णन किया है इस प्रकार पुनरुक्ति दोष नहीं है। अखण्डैकरस सारा जगत् चिन्मात्र है खाँडकी चूराकी समान शर्करामय है इस प्रकार दृष्टिके आकारसत्वको प्राप्त होजाने पर उसका चिन्मात्रत्व कहा है, अनुज्ञातृ दृष्टिमें तो स्वप्नके हाथी आदिकी समान आकारको मिथ्या समझ कर चिन्मात्रत्व कहा है,अनुज्ञा दृष्टिमें तो खरगोशके सींग आदिकी समान आकारके विकल्पमात्रत्वको जानकर उसका अति तुच्छपना कहा है और अविकल्पमें तो तुच्छत्वका भान भी नहीं है। इस प्रकार सातों श्लोकोंकी योजना है यहाँ पर और परमशब्द पूर्व-पूर्वकी अपेक्षा करनेवाले हैं अर्थात् "इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्थाः" इत्यादि श्लोकोंमें वर्णित उत्कृष्टवाची पर शब्दकी समान उत्कृष्ट वाचक हैं) ॥ ३३ ॥ वैशम्पायनजीने कहा, कि सब लोकोंके

मुक्त्वा स भगवान् सर्वलोकपितामहः । स्तुत्वा नारायणं देवं ब्रह्मलोकं गतः प्रभुः ॥ ३४ ॥ ततो नदत्सु तूर्येषु नृत्यंतीष्वप्सरःसु च । क्षीरोदस्योत्तरं कूलं जगाम प्रभुरीश्वरः ॥ ३५ ॥ नारसिंहीं तनुं त्यक्त्वा स्थापयित्वा च तद्वपुः । पौराणं रूपमास्थाय ययौ स गरुडध्वजः ॥३६॥ अष्टचक्रेण यानेन भूतयुक्तेन शोभिना । अव्यक्तः प्रकृतिर्देवः संस्थानमगमत् प्रभुः ॥ ३७ ॥ एवं महात्मना तेन नृसिंहवपुषा तदा । देवेन निहतः पूर्वं हिरण्यकशिपुश्च सः ॥ ३८ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि नारसिंह-
प्रादुर्भावे हिरण्यकशिपुवधकथनं नाम
सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४७॥

पितामह भगवान् ब्रह्माजी नारायणसे इस प्रकार कहकर ब्रह्मलोकको चले गए ॥ ३४ ॥ तदनन्तर अप्सराएँ नाच रहीं थीं और तूर्य बज रहेथे उस समय ईश्वर प्रभु क्षीरोद समुद्रके उत्तर तट श्वेतद्वीपको चले गए ॥३५॥ गरुडध्वज नरसिंहको अदृश्य करके और चतुर्भुज आदि लक्षणवाली प्राचीन मूर्तिको धारण करके चलेगए ॥ ३६ ॥ अव्यक्त प्रकृति प्रभु देव आठ चक्रवाले भूतोंसे युक्त शोभायमान यान पर बैठकर अपने स्थानको चले गए (उनका रथ भूतयुक्त था अर्थात् पंचमहाभूतसे बना हुआ था और आठ चक्रवाला था अर्थात् "अष्टौ ग्रहा अष्टावतिग्रहा" इत्यादि श्रुतिप्रसिद्ध श्रोत्रादिग्रह अतिग्रह रूपोंसे निरन्तर चक्रकी समान चाल्यमान देहरूपी साधनसे अव्यक्त प्रकृति निकृष्ट अहंकारसे नृसिंहरूपी आत्मा स्वस्थान निर्विशेष चिन्मात्रस्वरूपको प्राप्त होगया) ॥ ३७ ॥ इस प्रकार नृसिंह शरीरवाले उन महात्मा देवने हिरण्यकशिपुको मारडाला था ॥ ३८ ॥ सैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४७ ॥

वैशम्पायन उवाच । नृसिंह एष कथितो भूयोयं वामनो परः। यत्र वामनमास्थाय रूपं रूपविदां वरः ॥ १ ॥ बलेर्बलवतो यज्ञे बलिना विष्णुना पुरा । विक्रमैस्त्रिभिराक्रम्य त्रैलोक्यमखिलं हृतम् ॥२॥ समुद्रवसना चोर्वी नानानगविभूषिता । हृत्वा दत्वा सुरेन्द्राय शक्राय प्रभविष्णुना ॥ ३ ॥ जनमेजय उवाच । अत्र मे संशयो ब्रह्मन्नत्र कौतूहलं महत् । कथं नारायणो देवो वामनत्वमुपागतः ॥४॥ यः पुराणे पुराणात्मा भूत्वा नारायणः प्रभुः। पद्मनाभो महाबाहुर्लोकानां प्रकृतिर्ध्रुवः ॥ ५ ॥ अनादिमध्यनिधनस्त्रैलोक्यादिः सनातनः । देवदेवः सुराध्यक्षः कृष्णो लोकनमस्कृतः ॥६॥ हव्यकव्यवहः श्रीमान् हव्यकव्यभुगव्ययः।

वैशम्पायनजीने कहा, कि-तुमसे यह नृसिंहावतारका वर्णन कर दिया इसके बाद फिर वामनावतार हुआ था रूपवेत्ताओंमें श्रेष्ठ भगवान्‌ने उस अवतारमें वामन रूपको धारण किया था १ बलवान् विष्णुने बलवान् बलिके यज्ञमें तीन पैरोंसे नापकर सारी त्रिलोकी छीनली थी ॥ २ ॥ प्रभाववान् विष्णुने समुद्रके वस्त्र को धारण करनेवाली बहुतसे पर्वतोंसे विभूषित पृथिवी छीन करके देवराज इन्द्रको देदी थी ॥ ३ ॥ जनमेजयने कहा, कि-हे ब्रह्मन् ! मुझे इस विषयमें बड़ाभारी सन्देह और कौतूहल है, कि-नारायणदेव वामन किस प्रकार बनगए थे (तात्पर्य यह है कि-प्रसिद्ध रीतिसे सारे ब्रह्माण्डके लयस्थानभूत नारायण देवासुर विभागको बनाकर देवताओंके पक्षपातसे असुरोंको नष्ट कर डालते हैं यह बात कहदी अब यह शंका होती है,कि सर्वात्माकी अपने अवयवोंकी समान उनमें विषमबुद्धि नहीं होसकती) ॥ ४ ॥ जो पुराणमें पुराणात्मा नारायण प्रभु पद्मनाभ महाभुज लोकोंकी प्रकृति ध्रुव आदि अन्त और मध्यरहित त्रिलोकीके आदि सनातन देवदेव सुराध्यक्ष कृष्ण संसारपूजित हव्य

आदित्या देवमातुश्च कथं गर्भेऽभवत्प्रभुः । स्रष्टा यो वासवस्यापि स कथं वासवानुजः ॥ ७ ॥ प्रसूतो देवदेवेशो विष्णुत्वं प्राप्तवान् कथम् । एतदाचक्ष्व मे विप्र प्रादुर्भावं महात्मनः ॥ ८ ॥ वैशम्पायन उवाच । शृणु राजन् कथां दिव्यामर्चितामृषिपुङ्गवैः । पुराणैः कविभिः प्रोक्तां ब्रह्मोक्तां ब्राह्मणेरिताम् ॥ ९ ॥ मारीचस्य

कव्यको धारण करनेवाले हव्यका भक्षण करनेवाले और अव्यय श्रीमान् हैं वह प्रभु देवमाता अदितिके गर्भमें किस प्रकार आए थे, जो इन्द्रके भी स्रष्टा हैं वह इन्द्रके छोटे भाई किस प्रकार बनगए थे ॥ ५-७ ॥ वह देवदेव उत्पन्न होकर विष्णुत्वको किसप्रकार प्राप्त होगए थे हे ब्राह्मण! महात्माके इस अवतारका मुझसे वर्णन करिये (अर्थात् वह वामन होनेपर भी विष्णुत्व को अर्थात् त्रैलोक्यव्यापकत्वको किस किस प्रकार प्राप्त हो गये थे) ॥ ८ ॥ वैशम्पायनजीने कहा कि-हे राजन्! आप प्राचीन ऋषिपुङ्गव कवियोंसे अर्चित ब्रह्माजीकी कही हुई और ब्राह्मणोंके द्वारा प्रचारित इस दिव्य कथा को सुनिये (यह कथा दिव्य है अर्थात् लौकिक दृष्टान्तसे अगम्य है तथापि मन्त्रद्रष्टा ऋषियोंसे पूजित है ब्रह्मनिष्ठ पुरुषों के द्वारा अपने अनुभवप्रामाण्यके प्रकर्षसे कहीहुई है मन्त्र अर्थात् वेदमें कही हुई है और मन्त्रविवरणरूप ब्राह्मणमें भी कही हुई है तात्पर्य यह है, कि-"इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते" इत्यादि श्रुतिमें एक मायामें असमवेत बहुवचन पाशन्यायसे उसके अवयव सत्त्व रज और तममें पर्यवसित होता है, इनमें देवता आदि सत्त्वःप्रधान हैं यक्ष राक्षस आदि रजःप्रधान हैं भूतप्रेत आदि तमःप्रधान है इस प्रकार इन्द्रके तीन प्रकारके रूप हैं इनमें सत्त्व कार्य कदाचित् उपकार करता है और कभी दोनोंका अभिभव करता है और दोनोंसे तिरस्कृत भी होजाता है इस प्रकार मूल

सुरेशस्य कश्यपस्य प्रजापतेः । अदितिर्दितिश्च द्वे भार्ये भगिन्यौ जनमेजय ॥ १० ॥ अदित्यां जज्ञिरे देवाः कश्यपस्य महात्मनः । धातार्यमा च मित्रश्च वरुणोंऽशो भगस्तथा ॥ ११ ॥ इन्द्रो विवस्वान् पूषा च पर्जन्यो दशमस्तथा । तथैकादशमस्त्वष्टा द्वादशो

गुणोंका जिसप्रकार विरोध है उसी प्रकार उन२ गुणोंकी प्रधानतावाले देवता आदिका भी विरोध है । यथा-जलकी मधुरता गन्ने और मुनक्के आदिमें बीजके गुणसे अतिशय रूपमें प्रकट होती है, और नीबू मिर्च आदिके रसमें पूर्णरूपसे ढकीहुई होती है औपाधिक अम्लत्व कटुत्व आदि अतीव प्रकाशित होता है, इसी प्रकार इन्द्र (आत्मा) का स्वरूप भूत ज्ञान सात्विक देवताओंमें प्रकट होता है और दूसरोंमें उसका तिरोभाव होजाता है औपाधिक काम क्रोध आदिका अतिशय करके आविर्भाव होता है सावशेष रूप वाले इन्द्रके भी स्वरूपप्रकाशका हेतु होनेके कारण देवताओंमें पक्षपात और तिरोधानके कारण दूसरोंमें द्रोह होना युक्त ही है । पृथिवी बीज अंकुर वृक्ष और फलकी समान इन्द्रके भी शुद्ध शवल सूत्र विराट और विष्णु नामवाले पाँचरूप हैं इनमें शुद्ध निर्विशेष है और विष्णु सब विशेषोंसे युक्त है वह राजाकी समान शिष्ट पुरुषोंपर अनुग्रह और दुष्ट पुरुषों पर द्रोह करते हैं यह युक्त ही है जिसप्रकार अपने अंगके विषय मेंभी समझना चाहिये, कि-त्याज्यो दुष्टः प्रियोप्यासीद् दष्टोंगुष्ठ इवाहिना-साँपसे डसीहुई अङ्गुलीकी समान दुष्ट प्रिय पुरुषको भी त्याग देना चाहिये इस श्रुतिके अनुसार यह ठीक ही है। मायावी होनेसे विष्णुका वामनत्व और व्यापकत्व युक्तही है इसप्रकार सब निर्दोषहै९हे जनमेजय ! मरीचिके पुत्र कश्यप प्रजापतिके अदिति और दिति नामवाली दो भार्यायें थीं और यह आपसमें बहिन थीं१०महात्मा कश्यपके अदिति स्त्रीसे देवता उत्पन्न हुएथे धाता

विष्णुरुच्यते ॥ १२ ॥ दित्यां जातो हि बलवान् हिरण्यकशिपुः प्रभुः । तस्यानुजश्च दैत्येन्द्रो हिरण्याक्षः प्रतापवान् ॥ १३ ॥ हिरण्यकशिपोः पुत्राः पंच घोरपराक्रमाः । प्रन्हादश्चानुन्हादश्च जम्भः संन्हाद एव च ॥ १४ ॥ विरोचनश्च प्रान्हादिस्तस्य पुत्रो बलिः स्मृतः । पुत्रपौत्रं च बलवत्तेषामक्षयमव्ययम् १५ तेजस्विनां सुरारीणां दैत्येन्द्राणां मनस्विनाम् । गणाः सुबहुशो राजन् देशे देशे सहस्रशः ॥ १६ ॥ ते दृष्ट्वा नारसिंहेन हिरण्यकशिपुं हतम् । दैत्या देववधार्थाय बलिमिन्द्रं प्रचक्रिरे ॥ १७ ॥ दृष्ट्वा धर्मपरं नित्यं सत्यवाक्यं जितेन्द्रियम् । शौर्याध्ययनसंपन्नं सर्वज्ञानविशारदम् ॥१८॥ परावरगृहीतार्थं तत्त्वदर्शिनमव्ययम् ।

अर्यमा मित्र वरुण अंश भग इन्द्र विवस्वान् पूषा दशवाँ पर्जन्य ग्यारहवाँ त्वष्टा और बारहवें विष्णु (देवता) कहलाते हैं ११।१२ दितिमें बलवान् हिरण्यकशिपु प्रभु उत्पन्न हुआ और उसका छोटा भाई दानवेन्द्र प्रतापवान् हिरण्याक्ष भी उत्पन्न हुआ (दूसरे पुराणोंमें कल्पान्तरके अभिप्रायसे हिरण्याक्षको ज्येष्ठ कहा है) ॥ १३ ॥ हिरण्यकशिपुके प्रन्हाद अनुन्हाद जम्भ संन्हाद और विरोचन नामक पाँच भयंकर पराक्रमी सुत उत्पन्न हुए प्रन्हादके विरोचन नामक सुत उत्पन्न हुआ उसका सुत बलि कहलाता है इनके अक्षय और अव्यय बहुत सुत उत्पन्न हुए ॥ १४ ॥ १५ ॥ देवताओंके शत्रु तेजस्वी और मनस्वी दानवेन्द्रोंके हजारों झुण्ड प्रत्येक देशमें फैले हुए थे ॥ १६ ॥ दानवोंने नरसिंहके द्वारा हिरण्यकशिपुको मरा हुआ देख कर देवताओंका वध करनेके लिए बलिको इन्द्र बनाया ॥१७॥ देवताओंके शत्रु तेजस्वी हिरण्यकशिपुकी समान विरोचन सुत बलिको धर्मपरायण सत्यवादी जितेन्द्रिय शूरता और अध्ययनसे युक्त सर्वज्ञानविशारद पर और अवरके तत्त्वको ग्रहण करनेवाल

तेजस्विनं सुररिपुं हिरण्यकशिपुं यथा ॥ १९ ॥ अभिषेकेण दिव्येन बलिं वैरोचनिं तथा । दैत्याधिपत्ये दितिजास्तदा सर्वेऽभ्यपूजयन् ॥२०॥ अभिषिक्तस्तदा दैत्यैर्बलिर्बलवतां वरः । ब्रह्मणा चैव तुष्टेन हिरण्यकशिपोः पदे ॥ २१ ॥ अभिषिक्तो सुरगणैर्बलिर्वैरोचनिस्तदा । काञ्चनैः कलशैः स्फीतैः सर्वतीर्थाम्बुसंभृतैः ॥२२॥ जयशब्दं ततश्चक्रुरभिषिक्तस्य दानवाः । बलेरतुलवीर्यस्य सिंहासनगतस्य वै ॥ २३ ॥ कृत्वेन्द्रं दानवाः सर्वे बलिं बलवतां वरम् । ततो विज्ञापयामासुः शिरोभिः पतिताः क्षितौ ॥ २४ ॥ दैत्या ऊचुः । विदितं तव दैत्येन्द्र हिरण्यकशिपोर्यथा । त्रैलोक्यमासीदखिलं जगत् स्थावरजंगमम् २५ पितामहं तु हत्वा ते सुरेश्वरनिषूदन । हृतं तदेव त्रैलोक्यं शक्रश्चैवाभिषेचितः ॥ २६ ॥ तत् पितामहराज्यं त्वं मत्याहर्तुमिहार्हसि ।

तत्त्वदर्शी और अव्यय देखकर दितिके सुतोंने दैत्योंके आधिपत्य पर उसका दिव्य अभिषेक करके उसकी पूजा की १८—२० जब बलवानोंमें श्रेष्ठ बलिका दानवोंने अभिषेक कर दिया तब ब्रह्माजीने भी प्रसन्न होकर हिरण्यकशिपुके स्थानमें उस का अभिषेक कर दिया ॥ २१ ॥ इस प्रकार असुरोंके टोलोंने विरोचनके सुत बलिका सब तीर्थोंके जलसे भरे हुए सुवर्णके कलशोंसे अभिषेक किया था ॥ २२ ॥ फिर दानव सिंहासन पर बैठे हुए अभिषिक्त अतुलबली बलिकी जयजयकार करने लगे ॥ २३ ॥ बलवानोंमें श्रेष्ठ बलिको अपना राजा बनाकर सब दानव शिरसे प्रणाम करके कहने लगे ॥ २४ ॥ दानवोंने कहा कि—हे दानवेन्द्र ! स्थावर जंगमात्मक सारी त्रिलोकी जिसप्रकार हिरण्यकशिपुके वशमें थी यह बात आपको विदित ही है॥२५॥ हे सुरेश्वरनिषूदन ! तुम्हारे पितामहको मारकर त्रिलोकीका राज्य छीन लिया गया है और उस पर इन्द्रका अभिषेक कर

अस्माभिः सहितो नाथ त्रैलोक्यमिदमव्ययम् ॥ २७ ॥ मत्प्रशान्यस्व भद्रं ते राज्यं पैतामहं प्रभो ॥ २८॥ असुरगणसहस्रसंवृतस्त्वं जय दिवि देवगणान् महानुभावान्. अमितबलपराक्रमोऽसि राजन्नतिशयसे स्वगुणैः पितामहं स्वम् ॥ २९ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि बलेरभिषेको नाम अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

वैशम्पायन उवाच । निशम्य तेषां वचनं महामतिर्बलिस्तदा प्रीतमना महाबलः । आज्ञापयामास स दैत्यकोटिं त्रैलोक्यमद्यैव जयाम सर्वम् ॥ १ ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा बलेर्वैरोचनस्य तु । उद्योगं परमं चक्रुर्दानवा युद्धदुर्मदाः ॥ २ ॥ महापद्मो निकुंभश्च पूर्णकुम्भश्च वीर्यवान् । कांचनाक्षः कपिस्कन्धो मैनाकः क्षितिकम्पनः ॥ ३ ॥ शितकेशोर्ध्ववक्त्रश्च वज्रनाभः शिखी जटी ।

दिया गया है ॥ २६ ॥सो अपने पितामहके राज्यको लौटाना आपको उचित है, हे प्रभो ! आप हमको साथमें लेकर अपने पितामहके त्रिलोकीकी अव्ययराजको लौटा लीजिये आपका कल्याण होगा ॥ २७ ॥ २८ ॥ आप सहस्रों असुरोंसे घिर कर स्वर्गमें महानुभाव देवताओंको जीतिये आप अमित बल और अमित पराक्रम वाले हैं हे राजेन्द्र ! आप अपने गुणोंसे अपने पितामहसे भी बढ़ गए हैं ॥ २९ ॥ ४८वाँ अध्याय समाप्त ४८

वैशम्पायनजीने कहा, कि-उनके वचनको सुनकर महाबुद्धि और महाबलवान् बलिने मनमें प्रसन्न होकर करोड़ों दैत्योंको आज्ञा दी कि-हम आज ही सारी त्रिलोकीको जीत लेंगे ॥१॥ विरोचनके पुत्र बलिके इस वचनको सुनकर युद्धदुर्मद दानव बडी भारी तयारी करने लगे ॥ २ ॥ महापद्म निकुम्भ वीर्यवान् पूर्णकुम्भ कांचनाक्ष कपिस्कन्ध मैनाक क्षितिकम्पन शितकेश ऊर्ध्ववक्त्र वज्रनाभ शिखी जटी सहस्रबाहु विकट प्रियदर्शन

सहस्रबाहुर्विकटो व्याघ्राक्षः प्रियदर्शनः॥४॥ एकाक्ष एकपान्मुंडो विद्युदक्षश्चतुर्भुजः । गजोदरो गजशिरा गजस्कन्धो गजेक्षणः॥५॥ अष्टदंष्ट्रश्चतुर्वक्त्रो मेघनादी जलन्धरः । करालो ज्वालजिह्वास्यः शतांगः शतलोचनः ॥ ६ ॥ सहस्रपादः सुमुखः कृष्णश्चैव महासुरः । रणोत्कटो दानपतिः शैलकम्पी कुलाकुलिः ॥७॥ समुद्रो रभसश्चण्डो धूम्रश्चैव महासुरः । गोत्रजो गोक्षुरो रौद्रो गोदंतः स्वस्तिको ध्रुवः ॥ ८ ॥ मांसपो मांसभक्षश्च वेगवान् केतुमाञ्छिविः । पंकदग्धशरीरश्च बृहत्कीर्तिर्महाहनुः ॥९॥ सप्तप्रभो विकुम्भाण्डो विरूपाक्षो महोदरः । श्वेतशीर्षश्चन्द्रहनुश्चन्द्रहा चन्द्रतापनः ॥ १० ॥ विक्षरो दीर्घबाहुश्च मद्यपो मारुताशनः । तालजंघो महाभागः सरभः शलभः क्रथः ॥ ११ ॥ समुद्रमथनो नादी विततश्च महाबलः । प्रलम्बो नरको व्याली धेनुकः काललोचनः ॥ १२ ॥ वरिष्ठश्च गरिष्ठश्च भूतलोमा तथा विधुः । दुष्प्रसादः किरीटी च सूचीवक्त्रो महासुरः ॥ १३ ॥ सुबाहुः

व्याघ्राक्ष एकाक्ष एकपाद मुण्ड विद्युदक्ष चतुर्भुज गजोदर गजशिरा गजस्कन्ध गजेक्षण अष्टदंष्ट्र चतुर्वक्त्र मेघनादी जलन्धर कराल ज्वालजिह्वास्य शतांग शतलोचन सहस्रपाद सुमुख महासुर कृष्ण रणोत्कट दानपति शैलकम्पी कुलाकुलि समुद्र रभस चण्ड महासुर धूम्र गोत्रज गोक्षुर रौद्र गोदन्त स्वस्तिक ध्रुव मांसप मांसभक्ष वेगवान् केतुमान् शिवि कीचडसे सने हुए शरीरवाला और बड़ी ठोंढी वाला बृहत्कीर्ति सप्तप्रभ विकुम्भाण्ड विरूपाक्ष महोदर श्वेतशीर्ष चन्द्रहनुः चन्द्रहा चन्द्रतापन विक्षर दीर्घबाहु मद्यप मारुताशन महाभाग तालजंघ सरभ शलभ क्रथ समुद्रमथन नादी महाबली वितत प्रलम्ब नरक व्याली धेनुक काललोचन वरिष्ठ गरिष्ठ भूतलोमा विधु दुष्प्रसाद किरीटि सूचीवक्त्र महासुर सुबाहु कुञ्जबाहु करण कलशोदर सोमप देवयाजी मयर

कञ्जवाहुश्च कारणः कलशोदरः । सोमपो देवयाजी च मयरो वीरमर्दनः ॥ १४ ॥ सुपथः खण्डमुक्तिश्च शिखिनेत्रः शिखिध्वजः । यथास्मृति मया प्रोक्ता मरीचेः कीर्तिवर्धनाः ॥१५॥ एते चान्ये च बहवो नानायुधविभूषिताः । रथौघैर्बहुसाहस्रैर्युयुधोद्भमरिन्दमाः ॥ १६ ॥ दिव्याम्बरधरा दैत्या दिव्यमाल्यानुलेपनाः । दिव्यैश्च कवचैर्नद्धा दिव्यैश्चैवोच्छ्रितैर्ध्वजैः ॥ १७ ॥ दिव्यायुधधरा दैत्या गर्जमाना यथाम्बुदाः क्ष्मण्डली रथघोषैश्च चालयन्तो वसुन्धराम् ॥ १८ ॥ महाबला दिव्यबलास्त्रधारिणो भुजंगभोगप्रतिमैर्महाभुजैः । सुदुर्जया दैत्यवृषाः सुरारयो दितिप्रिया लोहितलोहितेक्षणाः ॥ १९ ॥ ते जग्मुरर्कज्वलनेन्द्रवीर्या महेन्द्रवज्राशनितुल्यवेगाः । विवृद्धदंष्ट्रा हरिधूम्रकेशा विवर्धमानाः शारदीव मेघाः ॥ २० ॥ सहस्रबाहुर्बाणश्च बलेः पुत्रो महाबलः ।

वीरमर्दन सुपथ खण्डमुक्ति शिखिनेत्र शिखिध्वज (यह दानव युद्धकी तयारी करने लगे) मैंने अपनी स्मृतिके अनुसार मरीचि की कीर्तिको बढ़ाने वाले इन दानवोंका वर्णन किया ॥३-१५॥ ये तथा और भी बहुतसे अनेक प्रकारके आयुधोंसे विभूषित अरिदमन राक्षस हजारों रथोंकी टोलियोंमें बैठकर युद्ध करनेके लिए चल पड़े ॥ १६ ॥ दिव्य वस्त्रधारी, दिव्य चन्दनका लेप लगाने वाले दानव दिव्य कवच और ऊँची२ दिव्य ध्वजाओंसे अलंकृत होकर (चल दिए) १७ ॥ बड़े भारी रथघोषसे पृथ्वी कँपाते हुए दिव्य आयुधधारी दानव गर्जते हुए मेघोंकी समान दीखते थे ॥१८॥ महाबली दिव्य बल और अस्त्रधारी सुदुर्जय सुरारि दैत्यवृष दितिप्रिय रक्तनेत्र दैत्योंकी बड़ी२ भुजायें अजगरोंके शरीरकी समान प्रतीत होती थीं ॥ १९ ॥ सूर्य अग्नि और इन्द्रकी समान वीर्यवान् इन्द्रके वज्र और अशनिकी समान वेगवाले, बड़ी २ डाढ़ वाले काले और धुमैले केशवाले दानव

रथातिरथकोटचा वै सन्नह्यत महाबलः ॥ २१ ॥ सर्वे मायाधरा दैत्याः सर्वे दिव्यास्त्रयोधिनः । सर्वे मदबलोत्सिक्ताः सर्वे लब्धवराः पुरा ॥ २२ ॥ सर्वे काञ्चनशैलाभाः पीतकौशेयवाससः । किरीटोष्णीषमुकुटा दिव्यभूषणभूषिताः ॥ २३ ॥ हिरण्मयकवचाः सर्वे हिरण्मयध्वजकेतवः । स्यन्दनस्था व्यराजन्त शारदा इव खे ग्रहाः ॥ २४ ॥ तापनीयैर्वरैर्निष्कैरनलज्वलितप्रभैः । हेमपर्वत शृङ्गस्थाः पुष्पिता इव किंशुकाः ॥ २५ ॥ तेषां मध्यगतो बाणः प्रावृषीवोत्थितो घनः । स्थितः शक्तिगदापाणिस्त्रिनल्वप्रतिमे रथे ॥ २६ ॥ विचित्राश्वध्वजयुगे चित्रभक्तिविराजिते । गदा-

---

उठते हुए शरदृऋतुके मेघोंकी समान दीखते थे ॥ २० ॥ सहस्र भुजावाला बलिका महाबली पुत्र बाणासुर भी करोड़ों रथ और अतिरथी योधाओंको लेकर तयार होगया ॥२१॥ वे सब दानव मायाधारी थे, सब दिव्य अस्त्रोंसे लड़ने वाले थे, सब मदबलसे छक रहे थे और सबने पहिले वर पाया था ॥ २२ ॥ वे सब सुवर्णके पर्वतकी समान दमक रहे थे, पीला रेशमी वस्त्र पहिर रहे थे, किरीट मुकुट पगड़ी और दिव्य आभूषणोंसे विभूषित होरहे थे२३ वे सुवर्णके कवच और सुवर्णकी ध्वजा पताका वाले रथमें बैठे हुए सब दानव शरद् ऋतुमें आकाशमें विराजमान ग्रहोंकी समान शोभा देने लगे ॥ २४ ॥ प्रदीप्त अग्निकी समान प्रभावाले सुवर्णके श्रेष्ठ निष्कोंके कारण दानव सुवर्णके पर्वतके शिखर पर स्थित खिले हुए फूल वाले ढाकके वृक्षोंकी समान प्रतीत होते थे२५ उनके बीचमें बाणासुर वर्षाकालमें उठते हुए मेघकी समान तीन नल्वके रथमें शक्ति और गदाको हाथमें लिए हुए बैठा था ॥ २६ ॥ उस रथमें विचित्र घोड़े और विचित्र ध्वजा लग रही थी, चित्रकारीसे वह रथ शोभा देरहा था, गदा और परिघोंसे भर रहा था और सुवर्णकी

परिघसंपूर्णो हेमजालविभूषिते ॥ २७ ॥ अन्वीयमानो दितिजै- र्नानाविधैर्निशितायुधान्। नानामहरणैर्घोरैस्तीक्ष्णदंष्ट्रैरिवोरगैः॥२८ पंच तस्य महावीर्या दानवा युद्धदुर्मदाः । ररक्षू रथमव्यग्रा व्या- दितास्या भयावहाः ॥ २९ ॥ सुबाहुर्मेघनादश्च भीमगर्भश्च वीर्य- वान् । तथा कनकमूर्धा च वेगवान् केतुमानिति ॥ ३० ॥ कनक- रजतभक्तिचित्रपार्श्वे पतगपतिपतिमे रथे स्थितोऽभूत् । जलद- निनदतुल्यनेमिघोषे सुरगणसैन्यवधाय दानवेन्द्रः ॥३१॥ अना- युषायाः पुत्रस्तु बलो नाम महासुरः । वृतः शतसहस्रेण रथानां भीमवर्चसाम् ॥ ३२ ॥ ऋक्षमृक्षसहस्रेण रथमारुह्य वीर्यवान् । नीलायसमयं घोरं वायसाङ्कं सुदुर्जयम् ॥ ३३ ॥ नीलांबरधरः श्रीमान् वैडूर्यचलसन्निभः । महता रथवेगेन प्रययौ दानवः

जालियोंसे विभूषित था ॥२७॥ तीखी डाढवाले सर्पोंकी समान अनेक प्रकारके आयुध धारण करने वाले दानव उसके पीछे चल रहे थे उस समय वह ऐसा प्रतीत होता था, मानों सूर्यके पीछे वालखिल्य जारहे हों ॥ २८ ॥ उसके पाँच महावीर्यवान् युद्धदुर्मद मुख फाड़ने वाले भयावह-सुबाहु-मेघनाद वीर्यवान- भीमगर्भ, कनकमूर्धा वेगवान् और केतुमान् नामक पुत्र सावधानीके साथ उसके रथकी रक्षा कर रहे थे ॥ २९ ॥ ३० ॥ इस प्रकार वह दानवेन्द्र देवताओंकी सेनाका वध करनेके लिए सुवर्ण और चाँदीकी चित्रित पत्तरसे विभूषित करवट वाले मेघ के गर्जनेकी समान नेमिघोष करनेवाले गरुड़की समान रथ पर बैठ गया ॥ ३१ ॥ अनायुषाका पुत्र बल नामक पुत्र बड़ा भारी राक्षस था, भयंकर तेजवाले सैंकड़ों और सहस्रों रथी उसके पास रहते थे ॥ ३२ ॥ वह वीर्यवान् कौएके चिन्हसे चिन्हित सुदुर्जय घोर काले लोहेके बने हुए हजार रीछोंसे जुते हुए रथ पर सवार होगया ॥ ३३ ॥ नीले वस्त्रको धारण करने वाला

स्तदा ॥ ३४ ॥ तत्रैकार्णवसंकाशे सैन्यमध्ये व्यराजत । प्रभात-
समये श्रीमान् समुद्रस्थ इवांशुमान् ॥ ३५ ॥ सुतप्तजाम्बूनदतुल्य-
वर्चसा निशाकराकारतडिद्गणाकरः । किरीटमुख्येन विभाति
शोभिना यथा गिरिः शृङ्गवरेण भास्वता ॥ ३६ ॥ षष्टी रथ-
सहस्राणि नमुचेरसुरस्य वै । खरयुक्तानि सर्वाणि मेघ-
तुल्यस्वराणि च ॥ ३७ ॥ नानाप्रहरणाः सर्वे सर्वे ते चित्र-
योधिनः । महाभ्रघनसंकाशा वेगवन्तो महाबलाः ॥ ३८ ॥
रथो व्याघ्रसहस्रेण युक्तः परमवेगवान् । नमुचेरसुरेन्द्रस्य सर्व-
रत्नविभूषितः॥ ३९॥शार्दूलचिह्नः शुशुभे तस्य केतुर्हिरण्मयः ।
रथमध्ये सुरेशस्य मध्यंदिनरविर्यथा ॥ ४० ॥ स भीमवेगश्च
महाबलश्च प्रगृह्य चापं हिमवानिव स्थितः । नीलाम्बरः कांचन-

वैडूर्य पर्वतकी समान वह श्रीमान् दानव तब रथको बड़े वेगसे चला कर चल दिया ॥ ३४ ॥ और उस समुद्रकी समान दैत्य-सागरके बीचमें पहुँचकर प्रभातके समय समुद्रमें स्थित सूर्यकी समान दमकने लगा ॥ ३५ ॥ चन्द्रमाकी समान आकार वाले प्रकाशकी खानरूप वह दानव भली प्रकार तपाये हुए सोनेकी समान कान्तिमान शोभायमान श्रेष्ठ किरीटसे श्रेष्ठ शिखरसे भासनेवाले पर्वतकी समान दमकने लगा ॥ ३६ ॥ नमुचि असुर के पास साठ हजार रथ थे, उन सबमें गधे जुत रहे थे, और वे सब मेघकी समान झनकार करते थे ॥ ३७ ॥ उनमें बैठनेवाले दानव अनेक प्रकारके आयुध धारण करते थे, सब चित्रयुद्ध करना जानते थे और वे महाबली दानव दौडते हुए मेघोंकी समान दीखते थे ॥ ३८ ॥ असुरेन्द्र नमुचिके सब रत्नोंसे विभूषित रथमें सहस्र व्याघ्र जुत रहे थे और वह बड़े वेगसे चलता था ॥ ३९ ॥ उस असुरेशके रथके बीचमें शार्दूलके चिन्हवाली सुवर्णकी ध्वजा दुपहरियाके सूर्यकी समान दमक रही थी ४०

पद्मनद्धो दिशांगजो यद्वदुपेतकक्षः ॥ ४१ ॥ किंकणीजालनिर्घोषं तपनीयविभूषितम् । सपताकाध्वजोपेतं ससंध्यमिव तोयदम् ४२ चक्रैश्चतुर्भिः संयुक्तमष्टनल्वायतांतरम् । हेमजालाकुलं दीप्तं कालचक्रमिवोदितम् ॥ ४३ ॥ नानायुधधरं घोरं व्याघ्रचर्मपरिष्कृतम् । ईहामृगगणाकीर्णं चित्रभक्तिविराजितम् ॥४४॥तूणीरशरसंपूर्णं शक्तितोमरसंकुलम् । गदामुद्गरसंबाधं चापरत्नविभूषितम् ॥ ४५ ॥ युक्तमृक्षसहस्रेण लंबकेसरवर्चसा । राजतेन विकीर्णेन शोभितं सिंहकेतुना ॥ ४६ ॥ स तेन शुशुभे दैत्यो मयो मायाविसर्पिणा।रथरत्ने स्थितः श्रीमानुदयस्थ इवांशुमान्४७

वह भयंकर वेगवाला महावली असुर चापको पकड़ कर हिमवानकी समान डट गया, उस समय वह ऐसा प्रतीत होता था कि—सुवर्णकी चित्रकारी वाली नीली झूलको ओढने वाला दिग्गज घासके ढेरके पास खड़ा हो ॥ ४१ ॥ किंकिणियों (घुँघुरु) की मालाके झनकार वाले, सुवर्णसे विभूषित संध्या के बादलकी समान झण्डे झण्डी वाले चार पहिये वाले भीतर आठ नल्व चौड़े सुवर्णकी जालियोंसे गछे हुए, उदित हुए कालचक्रकी समान दमकते हुए व्याघ्रके चमड़ेसे मढ़े हुए, सर्प आदि के चित्रोंसे चित्रित, भाथे और वाणोंसे भरे हुए, शक्ति और तोमरसे डटे हुए, गदा और मुँगरोंसे गछे हुए, श्रेष्ठ धनुषोंसे विभूषित, लम्बे केशवाले सहस्र रीछोंसे जुते हुए, चाँदीकी फहराती हुई माया फैलाने-वाली सिंहध्वजासे सुशोभित रथरत्न उस दानवके पास था उस रथमें बैठा हुआ वह मय दानव उदयाचल पर विराजमान सूर्यकी समान दमक रहा था ४२-४७ उस मय दानवके पीछे विमल चाँदीकी फुल्लियोंसे शोभित अंग वाले सुवर्णकी उज्ज्वल चित्रकारी वाले (कवचोंसे विभूषित)

विगलद्रजतबिन्दुशोभितांगं मणिकनकोज्ज्वलचारुभक्तिचित्रम् ।
अयुतशतसहस्रमूर्जितानां प्रययनुयाति तदा महारथानाम् ॥ ४८ ॥
इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे
मत्स्य युद्धाभिगमनं नामैकोनपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

वैशम्पायन उवाच । पुलोमा तु महादैत्यस्तिमिराकारगह्वरम् ।
आरुरोहायसं घोरं रथं पररथारुजम् ॥ १ ॥ उत्कीर्णपर्वताकारं
लोहजालान्तरान्तरम् । नेमिघोषेण महता क्षुभ्यन्तमिव सागरम् ॥
गदापरिघनिस्त्रिंशैः सतोमरपरश्वधैः । शक्तिमुद्गरसंकीर्णं सतोय-
मिवं तोयदम्॥३॥ रथमुष्ट्रसहस्रेण संयुक्तं वायुवेगिना । पुलोमा-
रुह युद्धाय प्रस्थितो युद्धदुर्मदः ॥ ४ ॥ षष्टिं रथसहस्राणि पुलो-
मानं महारथम् । अन्वयुः सूर्यवर्णानि प्रदीप्तानीव तेजसा ॥५॥
शार्ङ्गध्वजेन महता तप्तकाञ्चनवर्चसा । भ्राजते रथमध्यस्थः
पर्वतस्थ इवांशुमान् ॥ ६ ॥ सुचारुचामीकरपटनद्धां महागदां

लाखों और करोड़ों महारथी दानव चल रहे थे ॥ ४८ ॥ उन-
चासवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४९ ॥

वैशम्पायनजीने कहा, कि—महादैत्य पुलोमा अन्धकारके
आकारकी समान गह्वर, दूसरोंके रथोंको तोड़ने वाले भयंकर
रथ पर सवार होगया ॥ १ ॥ युद्धदुर्मद पुलोमा बिखरे
हुए पर्वतकी समान आकार वाले, लोहेकी जालियों वाले, बड़े
भारी नेमिघोषसे क्षुब्ध समुद्रकी समान प्रतीत होनेवाले, गदा
परिघ तलवार तोमर फरसे शक्ति और मुद्गरोंसे जलवाले मेघ
की समान, सहस्र ऊँटोंसे जुड़ेहुए वायुवेगी रथ पर सवार होगया ॥ २-४ ॥ महारथी पुलोमाके पीछे सूर्यकी समान वर्णवाले
प्रदीप्त तेजवाले साठ हजार रथ चल रहे थे ॥ ५ ॥ तपे हुए
सुवर्णकी समान कान्तिवाले बड़े भारी शार्ङ्गध्वजसे रथके बीचमें
बैठा हुआ वह दानव पर्वत पर विराजमान अंशुमान् सूर्यकी

कालनिभां महाबलः। प्रगृह्य बभ्राज स शत्रुमध्ये काष्र्णायसीं केतुरिवास्थितोऽर्व्याम् ॥ ७ ॥ हयग्रीवस्तु बलवान् हयग्रीवैर्महासुरैः। वृतः शतसहस्रेण रथानां रथसत्तमः ॥ ८ ॥ धराधरनिभाकारं सपत्नानीकमर्दनम्। स्यन्दनं भीममास्थाय युद्धायाभिमुखः स्थितः ॥ ९ ॥ श्वेतशैलप्रतीकाशः श्वेतकुण्डलभूषणः। शुशुभे रथमध्यस्थः श्वेतशृङ्ग इवाचलः ॥ १० ॥ महता सप्तशीर्षेण शोभितो नागकेतुना। वैदूर्यमणिचित्रेण प्रवालांकुरशोभिना ॥ ११ ॥ अमितबलपराक्रमाकृतीनां वररथिनामनुजग्मुरूर्जितानाम्। असुरगणशताभिगच्छमानं त्रिदशगणा इव वासवं प्रयान्तम् ॥ १२ ॥ प्रह्लादस्तु महाप्राज्ञः सर्वशास्त्रविशारदः। सर्वमायाधरः श्रीमान् यष्टा क्रतुशतैरपि ॥ १३ ॥ समनह्यत

समान प्रतीत होता था ॥ ६ ॥ पृथ्वीमें स्थित केतुकी समान काले लोहेकी बनीहुई सुन्दर चमरोंसे बँधे हुए पटेवाली बड़ी भारी गदाको उठाकर वह शत्रुओंके बीचमें घुमाया करता था ॥ ७ ॥ रथियोंमें श्रेष्ठ बलवान् हयग्रीवके पास हयग्रीव संज्ञक सैंकड़ों और सहस्रों रथी रहते थे ॥ ८ ॥ वह पर्वतकी समान आकार वाले, शत्रुओंकी सेनाका कचरा करने वाले भयंकर रथ पर चढ़कर युद्धकी ओर मुख करके खड़ा होगया ॥ ९ ॥ श्वेतपर्वतकी समान आकार वाला, श्वेत कुण्डलोंके आभूषणको धारण करने वाला रथके बीचमें विराजमान वह दैत्य श्वेतशृंग वाले पर्वतकी समान दीखता था ॥ १० ॥ उसका रथ वैदूर्यमणिसे चित्रित मूंगोंसे शोभित सात फन वाले साँपसे शोभा पारहा था ॥ ११ ॥ जिस प्रकार इन्द्रके पीछे देवता जाते हैं इसी प्रकार अमित बल और पराक्रमवाले बलवान् और श्रेष्ठ रथियोंके पीछे सैकड़ों असुर चल रहे थे ॥ १२ ॥ सर्वशास्त्रविशारद महाबुद्धिमान् प्रल्हादने सैंकड़ों यज्ञ किये थे और वह सब मायाओंको कर सकता था ॥ १३ ॥

तेजस्वी पावकार्चिसमप्रभः । रथानीकेन महता दुर्दिनाम्बोदना-
दिना ॥ १४ ॥ शूरेणामितवीर्येण हेमकुण्डलधारिणा । वृतो
दैत्यसहस्रेण दैवैरिव पितामहः ॥ १५ ॥ स्ववीर्योद्ग्रशौण्डीर्यो
मत्तवारणविक्रमः । सुरसैन्यस्य सर्वस्य प्रतिक्षोभ इव स्थितः १६
स्ववीर्येणोदधेस्तुल्यः प्रदीप्ताग्निरिव ज्वलन् । तेजसा भास्करा-
कारः क्षमया पृथिवीसमः ॥ १७ ॥ तालध्वजेन दीप्तेन रथेनाति-
विराजता । तं यान्तमनुयान्ति स्म दानवाः शतसंघशः ॥१८॥
सर्वे हिरण्यकवचाः सर्वे रत्नविभूषिताः । दिव्यांगरागाभरणाः
समरेष्वनिवर्तिनः ॥ १९ ॥ जाम्बूनदविचित्रांगा वैडूर्यविकृतां-
गदाः । दिव्यस्यन्दनमध्यस्थाः खस्था इव महाग्रहाः ॥ २० ॥

वह अग्निकी समान प्रभा वाला तेजस्वी प्रल्हाद भी दुर्दिन के मेघकी समान शब्द करने वाली सुवर्णके कुण्डलोंको धारण करने वाली अमित वीर्य वाली शूरवीर रथसेनासे और सहस्रों दैत्योंसे इस प्रकार घिरा रहता था, जिस प्रकार पितामह देवताओंसे घिरे रहते हैं ॥ १४ ॥ १५ ॥ मदमत्त हाथीकी समान पराक्रम करनेवाला अपने वीर्यसे इस प्रल्हाद सब सुरसेनाके सामने मूर्तिमान् क्षोभकी समान खड़ा रहता था ॥ १६ ॥ वह अपने वीर्यमें समुद्रकी समान था और प्रदीप्त अग्निकी समान दमकता रहता था, तेजमें सूर्यकी समान था और क्षमामें पृथ्वीकी समान था ॥१७॥ वह तालकी ध्वजा वाले विराजमान अतिदीप्त रथमें बैठ कर चलदिया, उसके पीछे दानवोंकी सैंकड़ों टोलियें चलने लगीं ॥ १८ ॥ वे सब सुवर्णके कवच पहिर रहे थे, सब रत्नोंसे विभूषित थे, सबके अङ्गों पर दिव्य राग लगा हुआ था और सब युद्धमें पीछेको हटने वाले नहीं थे ॥ १९ ॥ सुवर्णसे उनके अङ्ग विचित्र दीखते थे और वैदूर्यमणिसे उनके अङ्ग विकृत दीखते थे दिव्य रथोंमें बैठे हुए

आचारवांश्चैव जितेन्द्रियश्च धर्मे रतः सत्यपरोऽनसूयः। स्थितः सतोयाम्बुदवायुकल्पो रूपी यथा सर्वहरः कृतान्तः ॥ २१ ॥ शंबरस्तु महामायो रथयूथपयूथपः। आरुरोह रथं दिव्यं सर्वयुद्धविशारदः॥ २२ ॥ लोहिताक्षो महाबाहुः तप्तोत्तमकुण्डलः। जीमूतघनसंकाशो दिव्यस्रगनुलेपनः ॥ २३ ॥ विद्युज्ज्योतिर्निकाशेन मुकुटेनार्कवर्चसा। मणिरत्नविचित्रेण वैडूर्यवरशोभिना २४ तपनीयेन महता कवचेन विराजता। संध्याभ्रेणेव संछन्नः श्रीमानस्तशिलोच्चयः ॥ २५ ॥ त्रिंशच्छतसहस्राणि दैत्यानां चित्रयोधिनाम्। बलिनां कालकल्पानामन्वयुः शंबरं तदा ।२६। युक्तं हयसहस्रेण शुक्लवर्णेन राजता। क्रौंचध्वजेन दीप्तेन रथे-

---

वे आकाशमें विराजमान ग्रहोंकी समान प्रतीत होते थे ॥ २० ॥ आचारवान् जितेन्द्रिय, धर्मप्रेमी सत्यपरायण अनसूयु जलवाले मेघयुक्त वायुकी समान मन्हाद सर्वहर यमराजकी समान दिखाई देता था ॥ २१ ॥ रथके झुण्डोंकी रक्षाकरने वालोंके भी झुण्डों की रक्षा करने वाला सर्वयुद्धविशारद महामायावी शम्बर भी दिव्य रथ पर चढ़ गया ॥ २२ ॥ तपे हुए उत्तम कुण्डलोंको पहिरनेवाला, महाभुज लोहिताक्ष, बरसीले मेघकी समान, दिव्य चन्दन और मालाओंको धारण करने वाला श्रीमान् शम्बर बिजलीकी ज्योतिकी समान और सूर्यकी कान्तिकी समान मणि और रत्नोंसे विचित्र, वैडूर्य मणिसे शोभायमान मुकुटके कारण और सुवर्णके दमकते हुए बडे भारी कवचके कारण सन्ध्याके बादलोंसे ढके हुए अस्ताचलकी समान प्रतीत होरहा था२३-२५ उस समय शम्बरके पीछे कालकी समान बली तीस हजार विचित्र युद्ध करने वाले दैत्य चलने लगे ॥ २६ ॥ वह दैत्यराज उस समय शुक्लवर्णके विराजमान हजार घोड़ोंसे जुते हुए, युद्ध को सुशोभित करने वाली क्रौंचकी ध्वजा वाले वैडूर्य और

नाहवशोभिना ॥२७॥ व्यासक्तवैडूर्यसुवर्णजालं नानाविहङ्गैरपि भक्तिचित्रम्। विद्युत्प्रभं भीमरवं सुवेगं रथं समारुह्य रराज दैत्यः॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे शंबरादिदैत्यसन्नहनं नाम पंचाशत्तमोऽध्यायः॥५०॥

वैशम्पायन उवाच। अनुल्हादश्च तत्रैव दैत्यः परमदुर्जयः। हिरण्यकशिपोः पुत्रं प्रययौ युद्धलालसः॥ १ ॥ चतुश्चक्रेण यानेन त्रिणल्वप्रतिमेन तु। युक्तेनाश्वैर्महावीर्यैः सिंहवक्त्रैरजिह्मगैः॥ २ ॥ भीमगम्भीरनादेन नेमिघोषेण वीर्यवान्। चालयन् वसुधां सर्वां सशैलवनकाननाम् ॥३॥ विमर्दमाना दैत्यौघा अनुल्हादं ययुः शुभाः। शतं शतसहस्राणां रथानां हेममालिनाम् ॥ ४ ॥ परिघैर्भिन्दिपालैश्च भल्लैः पाशैः परश्वधैः। विविधायुधहस्तास्ते शूलमुद्गरपाणयः ॥ ५ ॥ सुवर्णजालनिर्मुक्तै-

सुवर्णकी जालोंसे शोभायमान और अनेक पक्षियोंकी चित्रोंसे चित्रित बिजलीकी समान प्रभा वाले, भयंकर शब्द करने वाले वेगवान् रथ पर चढ़ कर शोभा पाने लगा ॥ २७ ॥ २८ ॥ पचासवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५० ॥ छ छ छ

वैशम्पायनजीने कहा, कि-उस समय हिरण्यकशिपुका पुत्र युद्धकी लालसा वाला परम दुर्जय दानव अनुहाद चार पहिए वाले, बारहसौ हाथ ऊँचे, और सिंहकी समान मुखवाले सरलता से चलने वाले महावीर्यवान घोड़ोंसे जुते हुए रथमें बैठ कर चल दिया ॥ १ ॥ २ ॥ वह भयंकर और गम्भीर नाद करने वाले नेमिघोषसे पर्वत और वन तथा बगीचों वाली पृथिवीको कँपाता हुआ चल रहा था ॥ ३ ॥ उस समय सुवर्णकी माला पहिरने वाले एक करोड शुभ दैत्योंका झुण्ड गर्जना करता हुआ, उसके पीछे चलरहा था ॥४॥ वे दानव परिघ भिन्दिपाल भल्ल पाश परश्वध शूल मुद्गर आदि अनेक आयुधोंको अपने

ध्वजैश्च समलंकृताः। रथैश्चित्रैश्च कवचैः सज्जमाना महासुराः६
तदा विशालोच्छ्रितशैलरूपे बभौ रथे कांचनचित्रिताङ्गे दैत्याधिपः सत्त्वबलानुरूपे समास्थितस्त्वप्रतिमे स्वरूपे ॥ ७ ॥ विरोचनश्च बलवान् वैश्वानरसमद्युतिः । महता रथवंशेन सर्वास्त्रकुशलः शुचिः ॥ ८ ॥ व्यूहानां विनियोगज्ञो ज्ञानविज्ञानतत्त्ववित् । बलेः पिताऽसुरवरः सुराणामिव वासवः ॥ ९ ॥ सर्वायुधसमापेतं किंकणीजालभूषितम् । युक्तानां वाजिमुख्यानां सहस्रेणाशुगामिनाम् ॥ १० ॥ रथमारुह्य दैत्येन्द्रो बभौ मेरुरिवापरः । किंकिणीजालपर्यन्तं गजेन्द्रध्वजशोभितम् । सन्ध्याभ्रसमवर्णाभिः पताकाभिरलंकृतम् ॥ ११ ॥ प्रवालजाम्बूनदभक्तिचित्रं व्यालं विकारान्तरनेमिघोषम् । रथं समारुह्य किरीटमाली ययौ

हाथमें धारण कर रहे थे ॥ ५ ॥ और वे दानव सुवर्णकी जाली पड़े हुए बज्र रथ और कवचोंसे सज रहे थे उस समय विशाल पर्वतकी समान उठेहुए, सुवर्णसे चित्रित अङ्ग वाले सत्त्व और बलके योग्य अप्रतिम रूप वाले रथमें बैठकर दैत्यराज शोभा पानेलगा ॥७॥ एक विरोचन नामक बलवान् दानव था, उसकी कान्ति वैश्वानरकी समान थी, उस सर्वास्त्रकुशल पवित्र राक्षस के पास बड़ी भारी रथसेना रहती थी ॥८॥ वह व्यूहोंके गोठने की रीतिको जानता था, ज्ञान विज्ञानके तत्त्वको जानता था, बलिका पिता था और देवताओंमें जिसप्रकार इन्द्र श्रेष्ठ है, तिस प्रकार असुरोंमें श्रेष्ठ था ॥ ९ ॥ सर्व आयुधोंसे भरे हुए, घुँघरुओंसे विभूषित और शीघ्र चलने वाले सहस्र मुख्य घोड़ोंसे जुते हुए रथ पर बैठ कर, वह दैत्येन्द्र दूसरे मेरुपर्वतकी समान शोभा पाने लगा, वह किरीटमाली बड़े २ असुरोंका राजा घुँघरुओंकी लंगारसे सुशोभित, सन्ध्यासमयके बादलोंकी समान रंग वाली पताकाओंसे अलंकृत, मूँगे और सुवर्णसे बने हुए

स युद्धाय महासुरेन्द्रः ॥ १२ ॥ विरोचनानुजश्चैव कुजम्भो
नाम दानवः । स्यन्दनैर्बहुसाहस्रैर्मणिकाञ्चनभूषितैः ॥ १३ ॥
वृतो मदबलोत्सिक्तैर्वारिभिररिन्दमः॥ प्रासपाशगदाहस्तैर्दानवै-
र्युद्धकाङ्क्षिभिः ॥ १४ ॥ स पर्वतनिभाकारो भिन्नाञ्जनचयप्रभः।
महता भ्राजमानेन किरीटेन सुवर्चसा ॥१५॥ सर्वरत्नविचित्रेण
कवचेन च संवृतः । महता दीप्तवपुषा रथेनेन्दुरिवांशुमान् ।१६।
शातकौम्भेन महता तालवृक्षेण केतुना । रराज रथमध्यस्थो मेरु-
स्थ इव भास्करः ॥ १७ ॥ रणचतुरतिवीर्यसत्त्वबुद्धिः सुरसमरा-
भिमुखः प्रयाति तूर्णम् । असुरगणसमावृतः कुजम्भस्त्रिदशगणै-
रिव वृत्रहाऽमरेन्द्रः ॥ १८॥ असिलोमा च तत्रैव दानवः पर्वता-

सर्पके द्वारा मेघघोष करने वाले रथपर चढ़ कर चलदिया १०-१२
विरोचनका छोटा भाई कुजंभ नामक दानव था उसके पास मणि
और सुवर्णसे विभूषित कई हजार रथ थे ॥ १३ ॥
और मद तथा बलसे उद्धत प्रास पाश और गदा को
हाथमें धारण करने वाले युद्धाभिलाषी बहुतसे दानव भी उस
अरिंदमनके पास थे ॥१४॥ वह पर्वतकी समान आकार वाला,
घिसे हुए अञ्जनकी समान प्रभा वाला, सुन्दर कान्ति वाले
दमकतेहुए किरीटको पहिर कर और सब रत्नोंसे विचित्र दीखते
हुए कवचको पहिर कर, दीप्त आकार वाले रथमें बैठकर अंशु-
मान् सूर्यकी समान दमकने लगा ॥ १५ ॥ १६ ॥ सुवर्णके बने
हुए तालवृक्षकी ध्वजावाली पताका वाले रथके बीचमें बैठाहुआ
कुजंभ मेरु पर्वतपर बैठे हुए सूर्यकी समान दीखता था ॥१७॥
रणचतुर, अतिवीर्य और सत्व तथा बुद्धिसंपन्न कुजंभ असुरों
को साथमें लेकर, देवताओंको साथमें लेकर प्रयाण करने वाले
इन्द्रकी समान, देवताओंके सामने समर करनेको शीघ्रतासे
दौड़ा ॥ १८ ॥ तहाँ पर असिलोमा नामका भी एक दानव था,

युधः। दारुणं वपुरास्थाय दारुणो दारुणाननः ॥ १६ ॥ रौद्रः शकटचक्राक्षो महाकायो महाबलः । कृष्णवासा महादंष्ट्रः किरीटी लोहिताननः ॥ २० ॥ वृतो दैत्यसहस्रौघैर्गिरिपादपयोधिभिः। नानारूपधरैर्घोरैस्त्रिदशशत्रुभिः ॥ २१ ॥ ते शूलहस्ता गगने चरन्त इतस्ततस्तोयदवृन्दतुल्याः । खं छादयन्तस्तपनीयनिष्का यथोन्नताः प्रावृषि कालमेघाः ॥ २२ ॥ अनायुपायाः पुत्रस्तु वृत्रो नाम महासुरः । देवशत्रुर्महाकायस्ताम्रास्यो निर्णतोदरः ॥ २३ ॥ दीप्तजिह्वो हरिश्मश्रुरूर्ध्वरोमा महाहनुः । नीलांगो लोहितमुखः किरीटी लोहितां वरः ॥ २४ ॥ आजानु-

---

वह पत्थरके आयुध रखता था, उसका मुख दारुण था, वह दारुण शरीरको धारण कर लेता था और स्वयं भी दारुण था ॥ १६ ॥ रौद्र था, गाड़ीके पहियेके अक्षकी समान उसके नेत्र थे, वह बड़े भारी शरीर वाला और महाबली था, काले वस्त्र पहिरता था, उसकी डाढ़ें बड़ी २ थीं, वह मुकुट धारण करता था और उसके नेत्र लाल २ थे ॥२०॥ वृक्ष और पत्थरों से लड़ने वाले अनेक रूपोंको धारण कर सकने वाले देवताओं के शत्रु भयंकर दानवोंके उसके पास बहुतसे टोले थे ॥ २१ ॥ वे हाथमें शूलको धारण करते थे और आकाशमें घूमने पर मेघों की घटाकी समान प्रतीत होते थे, वे सुवर्णके ऊँचे २ पदकोंको धारण करनेवाले राक्षस वर्षा ऋतुके मेघोंकी समान दीखते थे २२ अनायुपाका वृत्र नामक पुत्र बड़ा भारी असुर था, वह देवताओं का शत्रु था महाशरीर था, ताँबेकी समान मुख वाला था और निर्णतोदर था ॥ २३ ॥ उसकी जिह्वा दीप्त थी, हरिश्मश्रु था, उसके रोम ऊपरको खड़ेहुए थे, ठोड़ी बड़ी थी, अङ्ग नीले थे, मुख लाल २ था, किरीट और रक्त वस्त्रोंको वह महान् असुर धारण कर रहा था ॥ २४ ॥ उसकी भुजाएँ घुटनों तक थीं, विकृत था,

बाहुर्विकृतः श्वेतदंष्ट्रो बिभीषणः । महामायाधरो भीमो हेमकेयूर-भूषणः ॥ २५ ॥ महता मणिचित्रेण कवचेन तु संवृतः । हेममालाधरो रौद्रश्चक्रकेतुरमर्षणः ॥ २६ ॥ किङ्किणीशतसंघुष्टं तपनीयविभूषितम् । युक्तं हयसहस्रेण रक्तध्वजपताकिनम् ॥ २७ रथानीकेन महता युद्धायाभिमुखो ययौ । दिव्यं स्यन्दनमास्थाय दैत्यानां नन्दिवर्धनः ॥ २८॥ तप्तकनकबिन्दुपिंगलाक्षो दितितनयो सुरसैन्ययुद्धनेता । विकसितकमलाभचारुचक्षुः सितदशनः शुशुभे रथासनस्थः ॥ २९ ॥ एकचक्रस्तु तत्रैव सूर्यचक्र इवोदितः । कालचक्रसमो रौद्रश्चक्रायुध इवोद्यतः । सर्वायसमयं दिव्यं रथमास्थाय भास्वरम् ॥३०॥ ततो दैत्यगणैर्दृप्तैः काला-

उसकी दाढ़ें श्वेत थीं, वह भयभीत करने वाला, महामायाधारी भयंकर था और सुवर्णके केयूरभूषण पहर रहा था २५ उसके पास मणियोंसे जड़ा हुआ बड़ाभारी कवच था, और सुवर्णकी माला पड़ाहुआ रौद्र और अमर्षण चक्रकेतु उसके रथ पर लग रहा था ॥२६॥ उस सैंकड़ों घूँघुरुओंसे गुञ्जाराते हुए, सुवर्णसे विभूषित लाल ध्वजा और पताका वाले तथा सहस्र घोड़ोंसे जुते हुए रथमें (वह बैठ गया) २७ वह दानवोंके आनन्दको बढ़ाने वाला दिव्य दानव रथमें बैठ बड़ी भारी रथसेनाको अपने साथ में लेकर चल दिया ॥ २८ ॥ तपे हुए सुवर्णकी बिन्दुकी समान पीले नेत्र वाला, खिले हुए कमलकी आभाकी समान सुन्दर नेत्र वाला, सफेद दाँत वाला असुरसेनाके युद्धका नेता, रथके आसन पर बैठ कर शोभा पाने लगा ॥ २९ ॥ तहाँ पर एकचक्र नामक दानव भी रहता था, वह सूर्यके चक्रकी समान उदित रहता था कालचक्रकी समान भयंकर था और चक्रायुधकी समान उद्यत रहता था, वह निरे लोहेके बने हुए प्रकाशवान् दिव्य रथमें बैठ कर चल दिया ३० उसके पास लोहे और पत्थरके आयुधोंको

गसशिलायुधैः । तस्याशीतिसहस्राणि रथिनां चित्रयोधिनाम् ३१
सर्वे कालान्तकप्रख्या रुधिराक्षा महाबलाः । आयसैः कांचनै-
श्चैव सन्नद्धा वरवर्णिनः ॥ ३२ ॥ विराजन्तान्तरिक्षस्था नीला
इव पयोधराः । सर्वे कालान्तकप्रख्या धीराः समरदुर्जयाः ३३
सागरोदरगम्भीरा नीलवक्त्रा दुरासदाः । रेजुर्यान्तोऽसुरवरा
वेलानीता इवार्णवाः ॥ ३४ ॥ ते भीममायाः सुसमृद्धकायाः
किरीटिनः कांचनभूषिताङ्गाः । ययुस्तदा स्वायुधदीप्तहस्ता नभः
सपक्षा इव पर्वतेन्द्राः ॥ ३५ ॥ संदिष्टो बलिपुत्रेण वृत्रभ्राता
महासुरः । वधाय सुरसैन्यस्य संनह्यस्वेति वीर्यवान् ॥ ३६ ॥
हेममाली महादंष्ट्रः स्रग्वी रुचिरकुण्डलः । रक्तमाल्याम्बरधरश्चंड:

धारण करनेवाले घमण्डी दानव रहा करते थे, उस समय उसके पीछे अस्सी हजार विचित्र युद्ध करने वाले योधाओंके रथ चल रहे थे ॥ ३१ ॥ वे सब काल और यमराजकी बराबर थे और उन महाबलवानोंके नेत्र लाल २ थे और वे श्रेष्ठ वर्णवाले राक्षस सोने और लोहेके कवचोंसे सजेहुए थे ॥ ३२ ॥ वे सब काल और अन्तककी समान समरदुर्जय धीर राक्षस अन्तरिक्षमें स्थित नील मेघोंकी समान दीखते थे ३३ समुद्रके भीतरी भागकी समान गम्भीर, काले मुख वाले चलते हुए दुरसद असुरवर किनारे को लाँघ कर उफनते हुए समुद्रोंकी समान दीख रहे थे ॥ ३४ ॥ भयंकर माया वाले, हृष्ट पुष्ट शरीर वाले, किरीटधारी, सुवर्णसे विभूषित अङ्गवाले और अपने आयुधोंसे प्रदीप्त हाथवाले दानव आकाशमें घूमते हुए पर वाले पर्वतेन्द्रोंकी समान प्रतीत होते थे ॥ ३५ ॥ वलिके पुत्रने वृत्रासुरके भाई बड़े भारी दानवसे कहा, कि–हे वीर्यवान ! आप सुरसेनाका वध करनेके लिए तयार होजाइये ॥ ३६ ॥ तब वह सुवर्णकी मालो वाला, बड़ी २ डाढों वाला, मालाधारी रुचिर कुण्डलों वाला, लाल चन्दन

समरदुर्जयः ॥३७॥ सुमहाद्रक्तनयनः सकिरीटी धनुर्धरः। प्रभिन्न इव मातंगः शार्दूलसमविक्रमः ॥ ३८ ॥ महातालनिभं चापं तथा रुचिरसायकम्। विस्फारयन् महावेगं वज्रनिष्पेषनिःस्वनम् ॥ ३९ ॥ रथेन खरयुक्तेन ध्वजेन भुजगेन ह। शुशुभे स्यन्दनस्थः स सन्ध्यागत इवांशुमान् ४० रथैस्तु बहुसाहस्त्रैर्हेमपट्टविभूषितैः। कूटमुद्गरसंपूर्णैर्जलपूर्णैरिवाम्बुदैः। स दैत्येन्द्रोभिचक्राम तस्मिन् युद्ध उपस्थिते ॥ ४१ ॥ पवनसमगतिर्विशालवक्षा विकसितपंकजचारुगर्भगौरः। प्रवररथगतो ययौ स तूर्णं त्रिदशगणैरभिलक्षितप्रभावः ॥ ४२ ॥ सिंहिकातनयश्चैव राहुर्नाम महासुरः। विकटः पर्वताकारः शतशीर्षः शतोदरः ॥४३॥ पीतमाल्याम्बरधरो जाम्बूनदविभूषितः। स्निग्धवैदूर्यसंकाशः

और वस्त्र धारण करने वाला समरदुर्जय, बडे बड़े नेत्रों वाला किरीटधारी धनुर्धर और मदमत्त हाथीकी समान (मत्त) तथा सिंह की समान पराक्रम करने वाला और महातालकी समान चापको तथा महावेगवान् वज्र के कड़कनेकी समान शब्द करने वाले मनोहर बाणको घुमाता हुआ तथा सर्पकी ध्वजावाले गधे जुतेहुए रथमें बैठाहुआ वह राक्षस संध्याके समयके सूर्यकी समान शोभा पाने लगा ॥ ३७-४० ॥ उस युद्धके आने पर वह सुवर्णकी पत्तरसे विभूषित जलसे भरे हुए बादलोंकी समान कूट मुद्गरोंसे भरेहुए कई हजार रथोंको लेकर चल दिया ॥ ४१ ॥ पवनकी समान गति वाला, विशाल वक्षःस्थल वाला, खिले हुए कमलके सुन्दर गर्भकी समान गौर वर्ण वाला और जिसका देवताओंने प्रभाव देखा था वह दैत्येन्द्र इस प्रकार श्रेष्ठ रथमें बैठकर चलदिया ४२ सिंहिका पुत्र राहु भी बड़ा भारी दानव था, वह विकट था, उसका आकार पर्वतकी समान था, उसके सौ मुख और सौ पेट थे ॥ ४३ ॥ वह पीला चन्दन लगाता था और पीले वस्त्र

पद्मपत्रनिभेक्षणः ॥४४॥ सर्वकांचनसंयुक्तं मणिजालपरिष्कृतम्। पताकाशतसंकीर्णं युक्तं परमवाजिभिः ॥ ४५ ॥ आरुरोह रथं दिव्यं दैत्यः परमवीर्यवान् । ननाद च महानादं कम्पयन् वसुधातलम् ॥ ४६ ॥ मयेन विहितो दिव्यस्तस्य केतुर्हिरण्मयः । मयूरपत्रसंकाशं कवचं चायसं महत् ॥ ४७ ॥ भीमवेगरवैश्चान्ये रथैर्दिव्यैः सुभासुरैः । नानाप्रहरणाकीर्णैः सेव्यमानो महाबलः ४८ असुरगणपतिर्गजेन्द्रगामी अतिरभसगतिर्महासुराणाम् । अरिगणमभितो विभुः प्रयातो गिरिवरमस्तगिरांशुमान् प्रदीप्तः ४९ विप्रचित्तिस्तु तत्रैव दनोर्वंशविवर्धनः । कश्यपस्यात्मजः श्रीमान् ब्रह्मणस्तेजसा समः ॥ ५० ॥ यष्टा क्रतुसहस्राणां वेदवित्तप-

पहरता था तथा सुवर्णसे विभूषित था, चिकने वैदूर्यकी समान था और उसके नेत्र कमलपत्रकी समान थे ॥ ४४ ॥ वह परमवीर्यवान् दानव सुवर्णके बनेहुए मणियोंकी झालरों वाले, सैंकड़ों पताकाओंसे व्याप्त और श्रेष्ठ घोड़ोंसे जुते हुए दिव्य रथमें बैठ गया और बड़ीभारी गर्जना करके पृथ्वीतलको कँपानेलगा ४५।४६ मय दानवने उसकी सुवर्णकी दिव्य ध्वजा बनाई थी और मयूरपक्षकी समान लोहेका बड़ा भारी कवच भी बनाया था ॥४७॥ भयंकर वेग और झनकार वाले, अनेक आयुधोंसे भरे हुए प्रकाशवान् दिव्य रथ उस महाबलके पास थे ॥ ४८ ॥ असुरों के टोलोंका स्वामी, गजेन्द्रकी समान चलने वाला, अतिशीघ्रगति वाला वह विभु बड़े २ राक्षसोंके शत्रुओंके झुण्डकी ओर इस प्रकार चला, जिस प्रकार प्रदीप्त सूर्य अस्ताचलकी ओरको पयान करता है ॥ ४९ ॥ तहाँ पर दनुके वंशको बढ़ाने वाला विप्रचित्ति नामक दानव भी रहता था, वह कश्यपका पुत्र था और वह श्रीमान् दानव तेजमें ब्रह्माजीकी समान था ॥ ५० ॥ उसने सहस्रों यज्ञ किये थे, वह वेदवेत्ता था और तपस्वी था,

सान्विनः। स्वयम्भुवा दत्तवरो वरदश्च स्वयम्भुवः। ईशित्वं च वशित्वं च प्रकाश्यं च महाद्युतेः ॥ ५१ ॥ ऐश्वर्यगुणसम्पन्नो ब्रह्मेव स्वयमूर्जितः। सार्धं पुत्रैश्च पौत्रैश्च संनद्धस्तु महाबलः॥५२॥ सर्वे मायाधराः शूराः कृतास्त्रा रणदुर्जयाः। सर्वे कमलवर्णाभा हेमकूटोच्छ्रयोच्छ्रयाः ॥५३॥ सर्वे रजतसंकाशाः कैलासशिखरोपमाः। मयेन निर्मितास्तेषां सर्वे मायामया रथाः ॥ ५४ ॥ विचरन्तो व्यराजन्त शारदा इव तोयदाः। सर्वे हंसध्वजाः श्वेताः श्वेतदण्डसमुच्छ्रयाः ॥ ५५ ॥ श्वेताम्बरधरा दैत्याः श्वेतमाल्यविभूषिताः। श्वेतातपत्राः सर्वे ते श्वेतकुण्डलमण्डिताः ॥५६॥ मुक्ताहारवृतोरस्का भान्ति नाकेश्वरा इव। महाग्रहनिभाकाराः शत्रूणां लोमहर्षणाः ॥ ५७ ॥ रक्तचित्राम्बरधराश्चित्राभरण-

ब्रह्माजीने उसको वरदान दिया था, और उसने भी ब्रह्माजीको वरदान दिया था (अर्थात् ब्रह्माजीने उससे कहा था, कि-मेरे संसारका नाश न करना तब उसने तथास्तु कहकर ब्रह्माजीको वरदान दिया था) ॥ ५१ ॥ वह ऐश्वर्यगुणसे सम्पन्न था और ब्रह्माजीकी समान बलवान् था. वह महाबली अपने पुत्र पौत्रोंको लेकर तयार होगया॥५२॥ उसके वे पुत्र पौत्र, रणदुर्जय मायावी शूर और अस्त्रकुशल थे, सबका वर्ण कमलके वर्णकी समान आभा वाला था और वे सब सुमेरुपर्वतके शृंगोंकी समान ऊँचे थे ॥ ५३ ॥ उन सबके लिए मय दानवने कैलासके शिखरकी समान चाँदीकेसे दीखते हुए मायामय रथ बनाए थे५४ हंसोंकी ध्वजा वाले श्वेतदण्डकी समान ऊँचे वे श्वेत रथ शरद ऋतुमें विचरण करनेवाले मेघोंकी समान दमकने लगे ॥५५॥ वे दानव श्वेत वस्त्रोंको धारण करते थे; श्वेत माल्यसे विभूषित रहते थे, श्वेत छत्री लगाते थे और श्वेत कुण्डलोंसे मण्डित रहते थे ५६ उनका वक्षःस्थल मोतियोंके हारसे छाया रहता था अतः वे

भूषिताः । त्रैलोक्यविजयं नाम रथमास्थाय वीर्यवान् ॥ ५८ ॥ कैलासशिखराकारमष्टनल्वायतान्तरम्। युक्तं वाजिसहस्रेण शितेन शिववर्चसा । पताकाशतसंच्छन्नं नानायुधविकल्पितम् ॥ ५९ ॥ हिमांशुकुन्दप्रतिमं विशालं सितातपत्रं दनुजेश्वरस्य । विभाति तस्योपरि धार्यमाणं श्वेताद्रिमूर्धोपगतः शशांकः ॥६०॥ केशी दानवमुख्यस्तु जिह्मस्ताम्राक्षदर्शनः । नीलमेघचयप्रख्यः कालः पुरुषविग्रहः ॥ ६१ ॥ महाग्रहनिभाकारः शत्रूणां लोमहर्षणः । चित्रमाल्याम्बरधरो रक्ताभरणभूषितः ॥ ६२ ॥ शताक्षः शतबाहुश्च हरिश्मश्रुर्महाबलः । शंकुकर्णो महानादो वपुषा घोर-

स्वर्गके स्वामीकी समान प्रतीत होते थे और वे महाग्रहोंकी समान आकारवाले व्यक्ति शत्रुओंके रोंगटोंको खड़ा करदेते थे५७लाल और चितरंगे वस्त्रोंको धारण करने वाले, विचित्र आभूषणोंसे विभूषित थे, फिर वीर्यवान् विप्रचित्ति त्रैलोक्य विजय नामवाले रथ पर सवार होगया ॥ ५८ ॥ उसका रथ कैलासके शिखरकी समान आकार वाला था और भीतरसे आठ नल्व चौड़ा था और कल्याणमय वर्च वाले हजार घोड़े उसमें जुत रहे थे सैंकड़ों पताकाएँ उसमें लग रही थीं और अनेक प्रकारके आयुध उसमें भर रहे थे ॥ ५९ ॥ बड़ा भारी दनुजेश्वरका श्वेत छत्र किरण और कुन्दकी समान था, जब वह उसके ऊपर लगाया जाता था, उस समय श्वेताचल पर विराजमान चन्द्रमाकी समान दीखता था६०एक केशीनामक प्रधान दानव था वह बड़ा कुटिल था, उसके नेत्र ताँबेकी समान लाल २ थे, वह नीलमेघके पुञ्ज की समान था और पुरुषशरीरधारी काल प्रतीत होता था६१वह महाग्रहकी समान आकारवाला पुरुष शत्रुओंके रोंगटे खड़े कर देता था, चित्र माल्य और वस्त्रको धारण करता था और लाल लाल गहनोंसे विभूषित रहता था ॥ ६२ ॥ उसके सौ नेत्र थे,

दर्शनः ॥ ६३ ॥ युक्तं महिषकैर्दिव्यैर्घण्टाकोटिकृतस्वनम् । महा-
वारिधराकारमास्थाय रथमुत्तमम् ॥ ६४ ॥ ध्वजेनोष्ट्रेण महता
नीलकेसरवर्चसा । नानारागविचित्राभिः पताकाभिर्विभूषितम् ६५
द्विपंचाशत्सहस्राणि रथानामुग्रवर्चसाम् । ययुस्तस्यासुरेन्द्रस्य
प्रयातस्य सुरान् प्रति ॥६६॥ भांति भिन्नाञ्जननिभाः प्रयातस्य
महात्मनः । दंष्ट्रार्द्धचन्द्रवदनाः सबलाका इवांबुदाः ॥ ६७ ॥
ततस्य वैडूर्यसुवर्णचित्रं विद्युत्प्रभं भास्कररश्मितुल्यम् । किरीट-
माभात्यसुरोत्तमस्य दावाग्निदीप्तं शिखरं यथाद्रेः ॥ ६८ ॥
वृषपर्वाऽसुरश्चैव श्रीमांश्च सुरसूदनः । आरुरोह रथं दिव्यं मेरु-

सी भुजाएँ थीं और उस महाबलवान्की डाढी गृद्ध शेरकी समान थीं, कान खूँटेकी समान थे, वह बड़ा भारी नाद करता था और उसके शरीरका दृश्य भयावना था ॥ ६३ ॥ उसके रथमें दिव्य भैंसे जुत रहे थे, और करोडों घुँघुरू उस रथमें बज रहे थे, उसका आकार बड़े भारी मेघकी समान था, उस पर नीलकेसरके तेज वाली उष्ट्रध्वजा लग रही थी और वह रथ अनेक रंगवाली विचित्र पताकाओंसे विभूषित था ऐसे रथपर वह दैत्येन्द्र बैठ गया ॥ ६४ ॥ देवताओं पर चढ़ाई करने वाले असुरेन्द्रके पीछे बावन हजार उग्र रथ चल दिये ॥ ६६ ॥ उस चलने वाले महात्माके पीछे पिसे हुए अञ्जनकी समान आभा वाले, डाढ़ोंके कारण अर्धचन्द्रकी समान मुख वाले दानव बलाका वाले मेघोंकी समान दीखते थे ॥ ६७ ॥ उस असुरोत्तमका वैडूर्यमणि और सुवर्णसे विचित्र, बिजलीकी समान कान्ति वाला और सूर्यकी किरणकी समान किरणों वाला किरीट अग्निसे जलते हुए पर्वतकी समान दीखता था ॥ ६८ ॥ देवताओंको पीड़ा देने वाला असुरोंमें श्रेष्ठ श्रीमान् वृषपर्वा भी अपने दिव्य रथ पर इस प्रकार चढ़ गया, जिस प्रकार सुमेरुके

शृङ्गमिवांशुमान् ॥६६॥ प्रवालजाम्बूनदचित्रकूवरं महारथं भारसहं महार्हम् । स्वलंकृतं राजतहेमकुण्डलं गभस्तिनक्षत्रतडिन्निकाशम् ॥ ७० ॥ केयूरयुक्ताङ्गदनद्धबाहुः सहस्रतारेण च चर्मणा सः । सांग्रामिकैराभरणैश्च चित्रैः मध्यान्हसूर्यप्रतिमो बभूव ७१ महाबलो बद्धतलांगुलित्रो बलोत्कटः किंशुकलोहिताक्षः । प्रगृह्य चामीकरचारुचित्रं चापं स्थितो वृत्तविशालनेत्रः ॥ ७२ ॥ महासुरेन्द्रश्च महाऽसुरैर्वृतो बलिस्तदा स्यन्दनमारुरोह । वैडूर्यहेमोपचितं विशालं विद्युत्प्रभं षोडशनल्वमात्रम् ॥ ७३ ॥ युक्तं सहस्रेण दितेः सुतानां गजाननानां विकृताकृतीनाम् । चामीकरोरःस्थलभूषितानां प्रनर्दतां प्रावृषि चाम्बुदानाम् ॥ ७४ ॥ महारथं देवरथप्रकाशं सहस्रमायेन मयेन सृष्टम् । ईहामृगाक्रीडितभक्ति-

शिखर पर सूर्य चढ़ते हैं ॥ ६६ ॥ उस रथका कूबर मूंगा और सुवर्णसे चित्रित होरहा था, उसमें सुवर्ण और चाँदीके छल्ले पड़ रहे थे, वह किरण और बिजलीकी समान दीख रहे थे ७० जिसके हाथमें केयूर और बाजूबन्द बँध रहा था वह दानव सहस्र फुल्लियों वाली ढालके कारण और संग्रामके विचित्र गहनोंके कारण मध्यान्हके सूर्यकी समान प्रतीत होने लगा ।७१। दस्ताने पहरने वाला, किंशुककी समान रक्त नेत्र वाला और विशाल नेत्र वाला वह दानव चमरके चित्रसे चित्रित सुन्दर चापको लेकर खड़ा होगया ॥७२॥ उस समय असुरेन्द्र बलि भी वैडूर्य और सुवर्ण जड़े, बिजलीकी समान प्रभा वाले सोलह नल्ववाले रथ पर दानवोंके सामने चढ़ गया ॥ ७३ ॥ उस रथके समीप हाथीकी समान मुख वाले, विकट आकृतिवाले चमरसे विभूषित वक्षःस्थल वाले और वर्षाकालमें गर्जने वाले मेघोंकी समान एक हजार दानव खड़े थे ॥ ७४ ॥ बलिकी सवारीका रथ देवरथ की समान प्रकाश वाला था हजारों माया करने वाले मय दानव

चित्रं दिव्यं रथं दिव्यरथानुयातम् ॥ ७५ ॥ सकिंकिणीकं विमलं सुनिस्तृतं हिरण्मयैः पञ्चशतैरलंकृतम् । अभ्याददे जैजयिकीं जयाय स्रजं बलिर्हेमविचित्रपुष्पाम् ॥ ७६ ॥ अवध्यमालां प्रभया विचित्रां बलिस्तदा भाति भुजैर्विशालैः । रराज तैः सर्वसमृद्धियुक्तैर्महाम्बरो सूर्य इवाम्बरस्थः ॥ ७७ ॥ स्रजं सदा बध्नति चास्य दुर्गा सर्वासुराणामिव हारभूताम् । वैरोचनिः सर्वश्रियाभिजुष्टो विभ्राजतेऽसौ शरदीव चन्द्रः ॥ ७८ ॥ मेरोरुत्तरैर्वा ज्वलनप्रकाशैरादित्यसंयुक्तमिवाभ्रजालम् । प्रासाश्च पाशाश्च हिरण्यबद्धा वर्माणि खड्गाश्च परश्वधाश्च ॥ ७९ ॥ धनूंषि वज्राः सुपसप्रभाणि दिव्या गदा वज्रमुखाश्च शक्तयः । दिव्याश्च खड्गा विशिखाश्च दीप्ता नाराचपूर्णा विविधाश्च तूर्णाः ॥ ८० ॥ धृता रथे दैत्यवृषस्य तस्य चकाशिरे प्रज्वलिता यथोल्काः । ते चाम-

---

ने उसको बनाया था, उसकी पत्तरोंपर ईहामृग बन रहे थे और दिव्य रथ उसके पीछे चलते थे ॥ ७५ ॥ उसमें घुँघरू लगे हुए थे, वह विमल था और सुवर्णकी सौ फुल्लियोंसे अलंकृत था, फिर बलिने सुवर्णके पुष्पों वाली विचित्र जैजयिकी माला पहर ली ॥७६॥ वह माला अवध्य थी, उसकी प्रभा विचित्र थी, उस समय अपनी सर्वसमृद्धिसम्पन्न विशाल भुजाओंसे बलि आकाश में विराजमान सूर्यकी समान दमकता था ॥ ७७ ॥ दुर्गा देवी भी सब असुरोंकी हारस्वरूप माला इसको पहिराया करती थी, उस समय सर्वसंपत्तियुक्त विरोचनपुत्र बलि शरद् ऋतुके चन्द्रमाकी समान दमकता था ॥ ७८ ॥ अग्निकी समान मेरुके शिखरोंसे अथवा आदित्यसे जैसा सूर्य प्रतीत होता है,तैसे दानव के रथमें रक्खेहुए प्रज्वलित उल्काकी समान प्राश पाश सुवर्ण-जड़े-कवच, खड्ग परश्वध धनुष वज्र दिव्य गदा मुख्य शक्ति दिव्य खड्ग, बाणोंसे पूर्ण भाथे विराज रहे थे, चमरमुकुटधारी

रापीडधराः सुदंष्ट्राः सुवर्णमुक्तामणिहेम चित्राः ॥८१॥ वीज्यंति वालव्यजनैर्विनीताः महासुराः स्यन्दनवेदिकास्थाः । अयः शिरा अश्वशिरा दुरापः शिविमतं गोविशिराः शताक्षः ॥८२॥ अयो-निकुम्भः क्रथनश्च दानवा ररक्षिरे ते दश दानवाधिपम् । पुर-स्सराश्चैव सहस्रशोसुराः पदातयो दानवराजरक्षिणः ॥ ८३ ॥ शतघ्निचक्राशनिशक्तिपाणयः प्रजग्मुरग्रेऽनिलतुल्यवेगिनः । घंटाः सुशब्दास्तपनीयवद्धा आडम्बरा गर्गरडिण्डिमाश्च ॥ ८४ ॥ महारवा दुन्दुभयश्च नेदू रथप्रयाणे दितिजेश्वरस्य। तस्योत्थितः कांचनवेदिकाश्रो हिरण्मयो दिव्यमहापताकः॥ ८५ ॥ महाध्वजो मे तपनीयनद्धो रराज वीरस्य यथा विवस्वान् । समुच्छ्रितं कां-चनमातपत्रं सूक्कांचनींवक्षसि चास्य भाति ॥ ८६ ॥ समन्तत-श्चाप्यसुराश्चरन्ति दैत्यर्षयः प्राञ्जलयो जयन्ति । पुरोहिताः

सुन्दर डाढ़वाले, सुवर्णमुक्ता मणि और सुवर्णसे विचित्र दीखने वाले रथरूपी वेदीमें बैठे हुए बड़े २ राक्षसों पर चँवर डुलाया जारहा था और अयःशिरा अश्वशिरा दुराप शिवि मतंग त्रिशिरा शताक्ष अयोनिकुम्भ और क्रथन नाम वाले दश दानव दानवा-धिपकी रक्षा कर रहे थे और दानवराजके आगे भी दानवराज की रक्षा करनेवाले बहुतसे पैदल चल रहे थे ॥ ७९-८३ ॥ उनके हाथमें तोप चक्र और अशनि थी वे वायुकी समान वेग से आगेको चलने लगे, दितिजेश्वरके प्रयाणके समय सुवर्णमें बँधे हुए सुन्दर शब्द करनेवाले घण्टे, आडम्बर गर्गर डिंडिम और दुन्दुभियें बजने लगीं, काञ्चनकी वेदिका वाला उसका सुवर्णका दिव्य झण्डा फहरा रहा था ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ उस वीरका सुवर्ण लगा हुआ महाध्वज भी सूर्यकी समान दमक रहा था, उसका ऊपरको उठा हुआ सुवर्णका छाता और छाती में सुवर्णकी माला विराज रही थी ॥ ८६ ॥ उसके चारों ओर

शत्रुवधे समाहितास्तथैव चान्ये श्रुतशीलवृद्धाः ॥ ८७ ॥ जपैश्च मन्त्रैश्च तथौषधीभिर्महात्मनः स्वस्त्ययनं प्रचक्रुः। स तत्र वस्त्राणि शुभाश्च गावः फलानि पुष्पाणि तथैव निष्कान् ॥८८॥ बलि-र्द्विजेभ्यः प्रयतः प्रयच्छन् विराजतेऽतीवयथा धनेशः। सहस्रसूर्यो बहुकिङ्किणीकः परार्घ्यजाम्बूनदहेमचित्रः ॥ ८९ ॥ सहस्रचन्द्रा-युततारकश्च रथो बलेरग्निरिवावभाति। तमास्थितो दानवसंगृ-हीतं महाबलः कार्मुकधृक् स बाणः ॥ ९० ॥ उद्वर्तयिष्यन् त्रिद-शेन्द्रसेनामभीवरौद्रं स बिभर्ति रूपम्। स वेगवान् वीररथौघ-संकुलः प्रयाति देवान् प्रति दैत्यसागरः ॥९१॥ महार्णवो वीचि-तरंगसंकुलो यथा जलौघैर्युगसंक्षये तथा। त्रैलोक्यवित्रासकरैः-

---

असुर घूम रहे थे दैत्यर्षि हाथ जोड़ कर जय २ कर रहे थे और शत्रुवधमें समाहित रहनेवाले पुरोहित और वेद तथा शील में बड़े दूसरे महात्मा भी जप मन्त्र तथा औषधियोंसे उसका स्वस्तिवाचन करने लगे, उस समय वन. ब्राह्मणोंको वस्त्र शुभ गौ फल निष्क आदि बाँटता हुआ बलि धनेश-वरुणकी समान शोभा पाने लगा, हजारों सूर्योंवाला, बहुतसे घुँघुरुओं वाला बहुमूल्य सुवर्णसे चित्रित, हजार चन्द्र और लाख तारोंसे चिता हुआ बलिका रथ अग्निकी समान दमकरहा था दानवसे थामेहुए उस रथ पर धनुष और बाणको धारण करनेवाला बलि विरा-जमान होगया ॥ ८७-९० ॥ उसने देवराजकी सेनाको डराने के लिए अति विकराल रूप धारण कर लिया तब प्रलयकाल के समय लहरोंसे आकुल समुद्र जिस प्रकार जलके अहलोंको बढ़ाता है,इसीप्रकार वीररथोंके झुण्डोंसे आकुल वेगवान् दैत्य-सागर देवताओंकी ओर चल दिया, हे राजन्! त्रिलोकीको त्रस्त करने वाले शरीरधारी, धनुषको ताननेवाले सेनादल बलि

वपुर्भिस्तान्यग्रतो यान्ति वले रथस्य । महावलान्युच्छ्रितकार्मुकाणि सपर्वतानीव वनानि राजन् ॥ ६२ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वलेयुद्धोद्योगो नामैकपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

वैशम्पायन उवाच । श्रुतस्ते दैत्यसैन्यस्य विस्तरो जनमेजय । भूयस्त्रिदशसैन्यस्य शृणु विस्तरमादितः ॥ १ ॥ सुराधिपस्तु भगवानाज्ञापयत वै सुरान् । मरुद्गणांस्तथा दिव्यान् विश्वान् देवांश्च वासवः ॥२॥ वसूनष्टौ भृशं सर्वान् यक्षरक्षोमहोरगान् । विद्याधरगणान् सर्वान् गन्धर्वांश्च महाबलान् ॥ ३ ॥ महार्णवांश्च शैलांश्च तथा रुद्रान् महौजसः । यमवैश्रवणौ चोभौ वरुणं च जनाधिपम् ॥ ४ ॥ ये तु सिद्धा महात्मानः पितरश्च मनस्विनः । राजर्षयश्च शतशो योगसिद्धास्तथैव च ॥ ५ ॥ त्रिदशाज्ञापकः शक्र आज्ञापयति वीर्यवान् । भवन्तो दैत्यनाशाय सन्नह्यन्तामिति प्रभुः ॥ ६ ॥ शक्रस्य वचनं श्रुत्वा ततः सर्व-

---

के रथके आगे पर्वतवाले वनोंकी समान चल दिए ॥६१॥६२॥ इक्यावनवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५१ ॥

वैशम्पायनजीने कहा कि-हे जनमेजय ! तुमने दानवों की सेनाका विस्तार सुन लिया अब आप देवताओंकी सेनाके विस्तृत वर्णनको सुनिए ॥ १ ॥ देवताओंके स्वामी भगवान् इन्द्र देवताओंको, मरुद्गणोंको दिव्य विश्वदेवाओंको आठ वसुओं को यक्ष-राक्षस और महासर्पोंको सब विद्याधरोंको महाबली-गन्धर्वोंको समुद्रोंको पर्वतोंको महौजा-रुद्रोंको, यम और कुबेरको जलाधिप वरुणको आज्ञा देने लगे ॥ २-४ ॥ जो सिद्ध महात्मा हैं मनस्वी पितर हैं राजर्षि हैं और सैंकड़ों योगसिद्ध महर्षि हैं उनको वीर्यवान् देवताज्ञापक इन्द्र आज्ञा देने लगे, कि आप दानवोंका नाश करनेके लिये तयार होजाइये ॥ ५-६ ॥ इन्द्रके

दिवौकसः । सन्नह्यन्त महात्मानः शक्रस्य समविक्रमाः ॥ ७ ॥
नानाकवचिनः सर्वे विचित्रकवचध्वजाः । नानायुधोद्यतकरा
मत्ता इव महागजाः ॥ ८ ॥ केचिदारुरुहुर्व्याघ्रान् केचिदारुरुहु-
र्गजान् । केचिदारुरुहुर्नागान् केचिदारुरुहुर्वृषान् ॥ ९ ॥ हरि-
नेत्रो हरिश्मश्रुर्द्विरदैरावृतध्वजम् । रथं हरिहयैर्युक्तं स भायात्
समरं प्रति ॥ १० ॥ आदित्यवर्णं विरजं सुधौतं त्वष्ट्रा स्वयं
निर्मितमीश्वरार्थम् । जाम्बूनदभक्तिचित्रैरलंकृतं काञ्चन-
दामभिश्च ॥ ११ ॥ स कूबरोपस्करबन्धुरेषं विद्युत्प्रभाभिः कृत-
माभिताम्रम् । कैलासशृङ्गोपमिन्द्रयानं सुचारु चापप्रतिचक्र-
चक्रम् ॥ १२ ॥ तारासहस्रैः खचितं ज्वलद्भिर्देवाहंगान्याचित

वचनको सुनकर इन्द्रकी समान पराक्रम करने वाले सब महात्मा देवता तयार होने लगे ॥ ७ ॥ उन सबके पास अनेक प्रकारके कवच थे और उनके कवच तथा ध्वजायें विचित्र थीं, अनेक प्रकारके शस्त्रोंको हाथमें उठाने वाले वे देवता मदमत्त महागजों की समान प्रतीत होते थे ८ कोई व्याघ्रों पर चढ़गए, कोई हाथियों पर चढ़गए कोई सर्पोंपर चढगए और कोई बैलोंपर चढ गए ९ हरिनेत्र हरिश्मश्रु, हाथियोंसे चिन्हित ध्वजा वाले हरि हयोंसे युक्त रथ पर बैठकर समरकी ओरको चल दिया ॥ १० ॥ वह रथ सूर्यकी समान वर्ण वाला था, मैलरहित था, त्वष्टाने उसको अपने आप ही इन्द्रके लिये बनाया था, उसमें सुवर्णका काम बन रहा था और सुवर्णकी जंजीरे लग रहीं थीं ॥ ११ ॥ उसमें कूबर उपस्कर बन्धुर और ईषा लग रही थी और बिजलियों की प्रभासे वह कुछ २ ताम्रवर्णका होरहा था और कैलासके शिखरकी समान दीख रहा था, ऐसा वह इन्द्रयान शत्रुओंके समूहों पर भी (पातालको चले जाओ आदि) आज्ञा चलाता था ॥ १२ ॥ उसमें हजारों तारे खिच रहे थे और देवताओंके

सर्वदेहम् । समुच्छ्रितं श्रीध्वजगत्नयाक्तं प्रज्वाल्यमानं पुरुषोत्तमेन ॥ १३ ॥ आस्थाय तं भास्करमाशुवेगं शचीपतिर्लोकपतिः सुरेशः । वज्रस्य धर्ता भुवनस्य गोप्ता ययौ महात्मा भगवान् महेन्द्रः ॥ १४ ॥ आमुच्य वर्माथ सहस्रतारं हुताशनादित्यसमप्रभावम् । सूर्यप्रभं चामुमुचे किरीटं मालां च जाम्बूनदवैजयन्तीम् ॥ १५ ॥ त्वष्ट्राकृतं भास्कररश्मिदीप्तं सुतीक्ष्णघोरामलतीव्रधारम् । महासुराणां रुधिरार्द्रमुग्रं प्रगृह्य वज्रं शतपर्वभीमम् ॥१६॥ महाशनी द्वे च महाग्रहाभे दीप्तममोघां च स शक्तिमुग्राम् । चक्रं तथैन्द्रं सुमहत्प्रतापं प्रगृह्य शक्रः प्रययौ रणाय१७ सहस्रदृग्भूतपतिः सनातनः सनातनानामपि यः सनातनः । खड्गं

योग्य माल्यसे उसका सारा प्रदेश अर्चित होरहा था, वह ऊँचा था, उस पर लक्ष्मीकी पताका लग रही थी, उसके धुरे अक्षय थे और वह पुरुषोत्तम इन्द्रके बैठनेसे दमक रहा था ॥ १३ ॥ उस प्रकाशवान् शीघ्रगामी रथ पर चढ कर इन्द्राणीपति लोकपति सुरेश वज्रधारी भुवनगोप्ता महात्मा भगवान् महेन्द्र चल दिए ॥ १४ ॥ उस समय उन्होंने हजार बुन्दकियोंवाला, अग्नि और आदित्यकी समान प्रभावाला कवच पहर रक्खा था, सूर्यकी समान प्रभा वाला किरीट पहर रक्खा था और सुवर्णकी वैजयन्ती माला पहर रक्खी थी ॥ १५ ॥ तथा इन्द्रने त्वष्टाका बनाया हुआ, सुवर्णकी किरणोंसे दमकने वाला सुतीक्ष्ण घोर और अमल तीव्र धार वाला, बड़े २ राक्षसोंके रुधिरसे गीला सौ पर्व वाला भयंकर वज्र भी लेलिया ॥ १६ ॥ महाग्रहकी समान दो बडी अशनि, अमोघ उग्र शक्ति और महान प्रतापशाली उग्र चक्रको लेकर इन्द्र रण करनेके लिये चल दिए १७ जिनके हजार नेत्र हैं, जो भूतपति हैं जो सनातन हैं जो महात्मा हैं उन देवाधिपतिने खड्ग और व्याघ्रके चमड़ेकी ढालको भी

च देवाधिपतिर्महात्मा वैयाघ्रमादाय च चर्मचित्रम् ॥१८॥ क्षीरो-
दधिक्षोभसमुच्छ्रितानि पुरामृतादुत्तमभूषणानि। देवासुराणां सम-
र्जितानि सोमार्कनक्षत्रतडित्प्रभाणि ॥ १९ ॥ दत्तान्यदित्या
मणिकुण्डलानि युद्धं प्रयातस्य सुरेश्वरस्य । तैर्भूषितो भाति
सहस्रचक्षुरुद्योतयद्वै विदिशो दिशश्च ॥ २० ॥ हरिः प्रभुर्नेत्र-
सहस्रचित्रो विभाति युद्धाभिमुखः सुरेन्द्रः । यथा सितं शारद-
मभ्रकल्पं नभस्तलं ऋक्षसहस्रचित्रम् ॥ २१ ॥ स्तुवन्ति यांतं
विपुलैर्वचोभिर्जयाशिषा चोर्जितसत्ववीर्यम् । अत्रिर्वसिष्ठो जमदग्नि-
रूर्वो बृहस्पतिर्नारदपर्वतौ च ॥ २२ ॥ समन्वयुर्देवगणा महेन्द्रं
प्रयान्तमादित्यसमानवर्चसम्। विश्वे च देवा मरुतस्तथैव साध्या-
स्तथा दित्यगणाश्च सर्वे ॥ २३ ॥ ते देवराजस्य पुरन्दरस्य
हयाश्च ये मातलिसंप्रहीताः । प्रयान्ति देवेश्वरमुद्वहन्तो नभ-

लेलिया था ॥ १८ ॥ क्षीर समुद्रके मथते समय पहिले अमृतसे
प्रकट हुए देवता और असुरों द्वारा समान बार जीते हुए सोम
सूर्य नक्षत्र और बिजलीके समान प्रभावाले उत्तम आभूषणरूप
कुण्डलोंको अदितिने युद्धके लिए जाते समय इन्द्रको देदिया
था, उनसे विभूषित हजार नेत्रवाला दिशा और विदिशाओंको
दमकाता हुआ शोभा पारहा था ॥ १९ ॥ २० ॥ हजार नेत्रोंसे
विचित्र युद्धाभिमुख प्रभु सुरेन्द्र शरद्ऋतुके श्वेत बादलकी और
हजारों नक्षत्रोंसे विचित्र दीखने वाले आकाशकी समान शोभा
पाने लगा ॥ २१ ॥ प्रयाण करते हुए दृढ वीर्य और सत्ववाले
इन्द्रकी अत्रि वसिष्ठ जमदग्नि ऊर्व बृहस्पति तथा नारद और
पर्वत जय २ के बडे भारी घोषसे स्तुति करने लगे ॥ २२ ॥
आदित्यकी समान तेज वाले प्रयाण करते हुए इन्द्रके पीछे
देवता विश्वेदेवा मरुत् साध्य और आदित्यगण चल दिए २३
मातलिके पकड़े हुए देवराज पुरन्दरके घोड़े देवेश्वरको धारण

रतलं पद्भिरिवाक्षिपन्तः ॥ २४ ॥ ब्रह्मर्षयश्चैव महर्षयश्च राजर्षयश्चाक्षयपुण्यलोकाः । सर्वेऽनुजग्मुः सहसा ज्वलन्तं तेजोन्वितं शक्रममित्रसाहम् ॥ २५ ॥ प्रगृह्य शूलांश्च परश्वधांश्च दीप्तानि चापान्यशनीर्विचित्राः । वर्माणि चामुच्य हिरण्मयानि प्रयान्ति सूर्यांशुसमप्रभाणि ॥ २६ ॥ तथा कुबेरोऽश्वसहस्रयुक्तं श्रेष्ठं रथं सर्वसहं महार्हम् । दिव्यं समारुह्य रणाय यातो धनेश्वरो दीप्तगदाग्रहस्तः ॥ २७ ॥ निशाचराः पावकधूमकाया रक्षो वृषा रुद्रसखस्य तस्य । विशालनानायुधदीप्तहस्ता यान्त्यग्रतो वैश्रवणस्य राज्ञः ॥ २८ ॥ ते लोहिताक्षाः परिवार्य देवं व्रजन्ति भिन्नांजनचूर्णवर्णाः । यक्षोत्तमा यक्षपतिं धनेशं रक्षन्ति वै पाशगदासिहस्ताः ॥ २९ ॥ पुराणः प्रभुः प्राणपतिर्जितात्मा वैवस्वतो

कर आकाशतलको पैरोंसे निगलते हुए चलने लगे ॥ २४ ॥ शत्रुओंको सहने वाले तेजोयुक्त सहसा प्रज्वलित हुए इन्द्रके पीछे ब्रह्मर्षि महर्षि और अक्षय पुण्यलोकों वाले राजर्षि चल दिये २५ इन्द्रके साथ चलने वाले व्यक्तियोंने दमकने वाले शूल फरसे और विचित्र अशनियोंको ले रक्खा था और सूर्यकी किरणकी समान प्रभावाले सुवर्णके कवच भी पहर लिए थे ॥ २६ ॥ इसी प्रकार धनेश्वर कुबेर भी दमकती हुई गदाके अग्रभागको अपने हाथमें पकड़कर सहस्र घोड़ोंसे जुते हुए सबको सहने वाले बहुमूल्य दिव्य रथ पर चढ़ कर युद्ध करनेके लिए चल दिए ॥ २७ ॥ रुद्रके मित्र विश्रवाके पुत्र राजा कुबेरके आगे आगे अग्निके धुएँकी समान शरीर वाले राक्षस और निशाचर अनेक प्रकारके विशाल आयुधोंको हाथोंमें लेकर चल रहे थे ॥ २८ ॥ वे रक्त नेत्र वाले और पिसे हुए अञ्जनकी समान वर्ण वाले राक्षस उन देवको घेर कर चल रहे थे और हाथमें पाश गदा और तलवार को धारण करने वाले श्रेष्ठ २ यक्ष भी यक्षपति धनेशकी रक्षा

धर्मवृत्तां वरिष्ठः। तडिद्वर्णाभं शतवाजियुक्तं रथं समारोहत सूर्यकल्पम् ॥ ३० ॥ तं लोकपालं पितरोऽनुजग्मुर्विमुक्तपापा ज्वलितास्तपोभिः । सर्वे च भूता भुवनप्रधाना नानायुधव्यग्रकराः सुभीमाः ॥ ३१ ॥ दण्डं महास्त्रं परिगृह्य देवो लोकाङ्कुशं निग्रहनिश्चितार्थम् हिरण्मयानां कमलोत्पलानां मालां मनोज्ञामव सज्य कण्ठे ॥ ३२ ॥ स्थितोऽस्थिमेदामिषलोहितार्द्रं सर्वासुराणां निधनं विरूपम् । तेजोमयं मुद्गरमुग्ररूपं विकर्षमाणोऽरुणधूम्रनेत्रः ॥ ३३ ॥ समन्वितो व्याधिशतैरनेकैर्ययौ हरिश्मश्रुरुदारसत्वः । महासुराणां निधनाय बुद्धिं चक्रे तदा व्याधिपतिः कृतान्तः ॥ ३४ ॥ ततस्त्रिशीर्षैर्भुजगैर्महद्भिर्युक्तं रथं हेमचितं महात्मा । आस्थाय कुर्द-

करते थे ॥ २९ ॥ पुण्यमय प्रभु प्राणोंके स्वामी मनको वशमें रखने वाले धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ वैवस्वत-यमराज भी सौ घोड़ोंसे जुते हुए, बिजलीके समूहकी समान आभा वाले सूर्यकी समान रथ पर चढ़ गए ॥ ३० ॥ उन लोकपालके पीछे तपसे दमकते हुए पापरहित पितर चलने लगे और भुवनोंमें प्रधान अनेक प्रकारके आयुधोंसे व्यग्र हाथ वाले भयंकर प्राणी भी उनके पीछे चलने लगे ॥ ३१ ॥ उस समय यमराजने निग्रह करनेका निश्चय रखने वाले, लोकोंको अंकुशमें रखने वाले बड़ेभारी अस्त्र दण्ड को ग्रहण कर रक्खा था और उनके कण्ठमें सुवर्णके कमलोंकी मनोहर माला पड़ी हुई थी ॥ ३२ ॥ और वह अरुण और धुएँ की समान नेत्र वाले यमराज मेद मांस और रक्तसे गीले सब असुरोंकी मृत्युरूप उग्र आकार वाले तेजोमय-भयंकर मुद्गरको पकड़कर चल रहे थे ॥ ३३ ॥ काली मूछों वाले महासत्त्व यमराज सैंकड़ों व्याधियोंको साथमें लेकर चल रहे थे, इस प्रकार व्याधियोंके स्वामी कृतांत-यमराज-ने बड़े २ असुरोंके विनाश का विचार किया था ॥ ३४ ॥ तदनन्तर असुरोंके दर्पका शमन

दुनिभं जलेशो ययौ रणायासुरदर्पहंता॥ ३५ ॥ वैडूर्यमुक्तामणि-भूषितांगस्तेजोमयः पाशगृहीतहस्तः । महासुराणां निधनाय देवः प्रयाति रूप्यांगदबद्धबाहुः ॥ ३६ ॥ कैलासशृंगप्रतिमोऽप्रमेयः समुद्रनाथोऽमृतपो महात्मा । महोरगैः स्वैस्तनयैस्सुगुप्तो ययौ रथेनार्कसमप्रभेण ॥ ३७ ॥ युद्धाय तं यान्तमदीनसत्वं नभस्तले चन्द्रमिवातिकान्तम् । पश्यन्ति भूतानि महानुभावं संहृष्टरोमाणि कृताञ्जलीनि ॥ ३८ ॥ धातार्यमांशोऽथ भगो विवस्वान् पर्जन्य-मित्रौ च शशी च देवः । त्वष्टा तथैवोर्जितविश्वकर्मा पूषा च साक्षाद्दिवि देवराजः ॥ ३९ ॥ सौरच्छदैः सध्वजकिंकिणीकै-र्वैडूर्यनिष्कैश्चितहैमकण्ठैः । हयैर्वरैः शक्ररथप्रकाशैर्युक्तान्

करने वाले महात्मा वरुण तीन फन वाले बड़े २ सर्प जिसमें जुत रहे थे उस सुवर्णसे बने हुए चमेलीके फूल और चन्द्रमाकी समान वर्ण वाले रथ पर बैठ गए ॥ ३५ ॥ वैदूर्य मोती और मणियों से विभूषित अंग वाले, तेजस्वी और हाथमें पाशको धारण करने वाले देव हाथोंमें चाँदीके बाजूबन्दोंको पहर कर बड़े बडे असुरोंका संहार करनेके लिए चल दिये ॥ ३६ ॥ वह कैलासके शिखरकी समान अप्रमेय महात्मा वरुण अमृतका पान करने वाले थे, समुद्रके स्वामी थे वह अपने पुत्र बड़े २ सर्पोंसे रक्षित सूर्यकी समान प्रभा वाले रथमें बैठकर चल रहे थे ॥३७॥ प्राणी आकाशके चन्द्रमाकी समान अतिमनोहर अदीन सत्त्व वाले युद्ध को जाते हुए उन महानुभावको पुलकित शरीरसे हाथ जोड़ कर देखने लगे ॥३८॥ और धाता अर्यमा अंश भग विवस्वान पर्जन्य मित्र चन्द्रदेव त्वष्टा बलवान् विश्वकर्मा और देवराज पूषा ये देवता कण्ठमें सुवर्ण पहरने वाले और वैदूर्यमणिके निष्क पह-रने वाले घोड़ोंसे जुते सूर्यकी धूपको बचाने वाले, ध्वजा घूँघ-रुओं वाले और इन्द्रथकी समान प्रकाश वाले रथों पर सवार

रथानानारुरुहुः सुरास्ते ॥ ४० ॥ दिवाकराकारनिभानि केचि-
द्धुताशनार्चिः प्रतिमानि केचित् । निशाकरांशुप्रतिमानि केचित्त-
डिद्गणोद्योतनिभानि केचित् ॥ ४१ ॥ नीलांशुमेघप्रतिमानि
केचित् कार्ष्णायसाकारनिभानि केचित् । वर्माणि दिव्यानि महा-
प्रभाणि त्वष्टाकृतान्युत्तमभानुमन्ति ॥ ४२ ॥ आमुच्य मालाश्च
सुवर्णपुष्पाः प्रयान्ति तोयानिलतुल्यवेगाः । द्वावश्विनौ चैव महा-
नुभावौ रूपोत्तमौ धर्मभृतां वरिष्ठौ ४३ रथं समारुह्य सुवर्णचित्रं
रणं गतौ कांचनतुल्यवर्णौ । भानोः सुता वै वसवश्च सर्वे बलो-
त्कटा दैत्यवधाय देवाः ॥ ४४ ॥ रथांश्च नागांश्च महाप्रमाणा-
नास्थाय जग्मुः सुशुभास्त्रहस्ताः । रुद्राश्च सर्वेऽरुणधूम्रवर्णाः
श्वेतैर्वृषैर्गोपतिभिर्बृहद्भिः ॥ ४५ ॥ महौजसः सर्वगुणोपपन्ना

होगए ॥ ३९ ॥ ४० ॥ देवताओंके कवचोंमेंसे कुछ कवच सूर्य
की समान आकार वाले थे, कुछ अग्निकी लपटकी समान आकार
वाले थे, कुछ चन्द्रमाकी किरणकी समान आकार वाले थे और
कुछ बिजलीकी चमककी समान थे ॥ ४१ ॥ कुछ नीलमेघ (में
निकलने वाली सूर्यकी) किरणोंकी समान थे और कुछ लोहे
की समान थे, त्वष्टाके बनाए हुए उत्तम किरणों वाले ये रथ
महाप्रभावान् थे ४२ पवनकी समान वेग वाले उपरोक्त देवता
सुन्दर वर्णवाले पुष्पोंकी मालाको पहर कर चल रहे थे सुवर्णकी
समान रंग वाले धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ उत्तम रूप वाले दोनों महा-
नुभाव अश्विनीकुमार भी सुवर्णसे विचित्र दीखने वाले रथ पर
बैठ कर रणको चल दिये, सुन्दर अस्त्रोंको हाथमें धारण करने
वाले सूर्यके पुत्र बलोत्कट सब वसु भी दैत्योंका वध करनेके
लिए रथ और बड़े २ शरीरवाले हाथियों पर सवार होकर चल
दिये, अरुण और धूम्रकी समान वर्ण वाले सर्वगुणसम्पन्न,
अपनी कान्तिसे दमकते हुए महाबलवान् सब रुद्र भी श्वेत बैलों

दीप्तात्मनो भानुरिव ज्वलन्तः। नानायुधव्यग्रकरैर्भुजैस्तैर्लोकान् समस्तानिव निर्दहन्तः ॥ ४६ ॥ ययुः ससैन्यास्तपनीयनद्धाः सविद्युतस्तोयधरा यथैव । विश्वे च देवास्तपसा ज्वलन्तो वीर्योत्तमाः सूर्यमरीचिवर्णाः ॥४७॥ ययुः स ससैन्या युधि दुर्निवार्या बलोत्कटाः पद्मसहस्रमालाः । रथैः सयुक्तैस्तपनीयवर्णैर्वैडूर्यमुक्तामणिदामचित्रैः ॥ ४८ ॥ नानाविधाकारसमाकुलास्ते पारिप्लवैश्चैव सितातपत्रैः। तेजोमयैः काञ्चनचारुचित्रैः सुनिर्मलैः पावकसन्निभास्ते ॥ ४९ ॥ उरच्छदैः सध्वजकिंकिणीकैर्हयैश्च वायोः समवेगवद्भिः। दिशां गजैश्चैव महाबलैस्तैः कैलासशृङ्गप्रतिमैर्महद्भिः ॥ ५० ॥ प्रजग्मुरुग्रायुधचापहस्ताश्चतुर्युगान्ते ज्वलिता इवोल्काः। साध्याश्च देवाः सुमहाप्रभावाः स्वाधीनचक्राः

पर चढ़ कर चल दिये, उनकी सब भुजायें आयुधोंसे व्यग्र होरहीं थीं और वे समस्त लोकोंको भस्म करते हुएसे प्रतीत होते थे ॥ ४३-४६ ॥ सुवर्णविभूषित रुद्र अपनी सेनाओंको लेकर बिजली वाले मेघोंकी समान चल रहे थे, सूर्यकी किरणोंकी समान वर्ण वाले, तपसे प्रज्वलित, पद्मोंकी सहस्रों मालाओंको धारण करने वाले बलोत्कट युद्धमें दुर्निवार्य विश्वेदेवा भी सेना को लेकर चल दिए। वैदूर्य मुक्ता और मणियोंकी जंजीरोंसे विचित्र सुन्दर वर्ण वाले रथोंसे पारिप्लवोंसे तेजोमय सुवर्णके सुन्दर चित्र वाले छत्रोंसे वे विश्वेदेवा अग्निकी समान प्रतीत होते थे ॥ ४७ ॥४८॥ वायुकी समान वेग वाले अति ऊँची कँधरा वाले होनेके कारण मनुष्योंके वक्षःस्थलको ढकने वाले ध्वजा और घुँघुरुओं वाले घोड़ों पर और चढ़कर कैलासके शिखरकी समान ऊँचे महाबली दिग्गजों पर वे चतुर्युगीका अन्त होने पर जलनेसे प्रदीप्त उल्काकी समान दमकते हुए व्यक्ति हाथमें उग्रआयुध और चापको लेकर चल रहे थे, और अपने आधीन सेनाको

प्रतिदीप्तवक्त्राः ।। प्रयान्ति जाम्बूनदभूषिताङ्गा गाङ्गैर्यथौघैः गगनैर्बलौघैः ॥५१॥ विद्योतयन्तो विदिशो दिशश्च महाबलास्ते जयतां वरिष्ठाः । वरिष्ठपुष्टोष्ठभुजाः सुदृप्ता वैश्वानरार्कप्रतिमप्रभावाः ॥ ५२ ॥ ते ब्रह्मविद्भिश्च समर्च्यमानाः संपूज्यमानाश्च सुरैः सशक्रैः । गन्धर्वसंघैरनुगम्यमाना वधाय तेषामसुराधिपानाम् ॥ ५३ ॥ वैडूर्यवज्रस्फटिकाग्रचित्रैः ध्वजैः सुवर्णैश्च परिष्कृतानाम् । रूपं बभौ चोत्कटभूषणानां दैत्येन्द्रनाशाय विभूषितानाम् ॥ ५४ ॥ आत्मप्रभाभिश्च रणोत्कटाभिर्वर्मप्रभाभिश्च तमोनुदाभिः । ध्वजोत्तमाभिः स्वशरीरभाभिर्महाप्रभाभिश्च महोज्ज्वलाभिः ॥ ५५ ॥ विभान्ति ते देववराः ससाध्याः प्रध्मातशंखस्वनसिंहनादाः । महारथस्थास्त्रिदिवौकसस्ते महाबलाः

रखने वाले प्रदीप्त मुख वाले तथा सुवर्णसे विभूषित अङ्ग वाले महाप्रभावान् साध्य देवता भी गंगाके प्रवाहकी समान और गगनकी समान अनन्त सेनाओंको लेकर चल दिये ॥५०॥५१॥ जीतने वालोंमें श्रेष्ठ, श्रेष्ठ ओष्ठ और भुजा वाले, वैश्वानर और सूर्यकी समान प्रभाववाले वे दशों दिशाओंको दमकाते हुए चल दिये५२वे ब्रह्मवेत्ताओंसे सत्कार पातेहुए इन्द्र आदि देवताओंसे पूजा पातेहुए और गंधर्वोंके टोलोंसे अनुगम्यमान होकर (अर्थात् उनके पीछे गन्धर्व चल रहे थे) असुराधीशोंका वध करनेके लिए चल दिये ॥५३॥ वैडूर्य रत्न और स्फटिक मणिसे चित्रित अग्रभाग वाली ध्वजाओं वाले, दैत्येन्द्रोंका नाश करनेके लिए विभूषित, सुवर्णसे विभूषित उत्कट भूषण वाले साध्य देवताओं का रूप शोभा पाने लगा ॥५४॥ रणमें उत्कट अपनी प्रभाओं से और अन्धकारको नष्ट करने वाली कवचोंकी प्रभासे, उत्तम ध्वजाओंसे और अपने शरीरकी उज्ज्वल प्रभाओंसे वे शंखको बजाने वाले और सिंहनाद करने वाले साध्यसहित महारथी

शत्रुबलं प्रयान्ति ॥५६॥ महास्त्रहस्ता वपुरुग्रकाया महासुराणां निधनाय देवाः । तथैव सर्वे महतोऽतिवीर्या बलोत्कटास्ते समरे प्रतीताः ॥ ५७ ॥ वपुर्महामेघसमानवर्णाश्चक्रायुधास्तोयदनाद-नादाः। महेन्द्रकेतुप्रतिमा महाबलाः प्रगृह्य सर्वासुरसूदनीं गदाम् ५८ रणोत्कटा लोहितचन्दनाक्ताः सहेममाल्याम्बरभूषितांगाः । ते युद्धशौंडाः सुभुजास्त्रवीर्या बलोत्कटाः क्रोधविलोडिताक्षाः ५९ ययुः स जाम्बूनदपद्ममाला यथेष्टनानाविधकामरूपाः । खड्ग-प्रभाश्यामलिता स पीठाः पुरंदरं तौ परिवार्य देवाः ॥ ६० ॥ वैडूर्यचामीकरचारुरूपाण्यथाबध्य गात्रेषु महाप्रभाणि । वर्माणि दैत्यास्त्रनिवारणानि प्रयान्ति युद्धाय सपत्नसाहाः ॥ ६१ ॥

महाबली देवता शत्रुओंकी सेनाकी ओर प्रयाण करने लगे।५५।५६। उग्र शरीर वाले देवताओंने बड़े २ राक्षसोंका संहार करनेके लिये हाथमें बड़े २ अस्त्रों को लेकर पयान किया था, वे सब देवता अतिबलवान् थे, बलोत्कट थे और समरसे परिचित थे ॥ ५७ ॥ महामेघकी समान वर्ण वाले थे, उनके हाथमें चक्र था और वह मेघकी समान गम्भीर नाद करते थे इन्द्रकी ध्वजाकी समान (ऊँचे) थे और वे महाबली देवता असुरसूदना गदाओंको लेकर चल रहे थे ॥ ५८ ॥ रणमें उत्कट रहने वाले, चन्दन लगे हुए अङ्ग वाले, सुवर्णमाल्य और वस्त्रोंसे विभूषित अङ्ग वाले सुन्दर भुजा और अस्त्रवीर्य वाले और क्रोधसे नेत्रोंको तरेरते हुए वे देवता (युद्ध करनेके लिए) चल दिये ॥ ५९ ॥ सुवर्ण-सहित पद्मोंकी माला पहरने वाले, अनेक प्रकारके रूपोंको यथेष्ट-रीतिसे धारण करने वाले, खड्गकी प्रभासे श्याम दीखते हुए वे देवता अपनी २ सवारियोंको लेकर इन्द्रको घेर कर चल दिए६० शत्रुओंको सहनेवाले देवता वैदूर्य और चमरके सुन्दर चित्रवाले, दैत्योंके अस्त्रोंको झेलनेवाले महाप्रभावान् कवचोंको शरीर पर

तैरुत्थितैः काञ्चनवेदिकाद्यैर्वरध्वजैर्भास्कररश्मिवर्णैः । यथौ सुराणां पृतनोग्रभासा समुन्नदन्ती युधि सिंहनादान् ॥ ६२ ॥ इत्येवमुक्तं त्रिदिवेश्वरस्य सैन्यं तदासीत् सुमहत्प्रभावम् । युद्धं प्रयातस्य जयावहस्य वधाय तेषामसुराधिपानाम् ॥ ६३ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे द्विपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

वैशम्पायन उवाच । ततः प्रवृत्तोऽसुरदेवविग्रहस्तदद्भुतो भाति सुरासुराकुलः । वेलामतिक्रम्य युगान्तकाले महार्णवान्योन्यमिवाश्रयन्तः ॥ १ ॥ नानायुधोद्योतविदीपितांगा महाबला व्यायतकार्मुकास्ते । रणोत्सुका वारणहस्तहस्ताः सुदुर्जयास्तोयदनादनादाः ॥ २ ॥ निस्फारयन्तः सहसा धनूंषि चक्राणि चादित्य-

धारणकर युद्ध करनेके लिए चलरहे थे॥६१॥सूर्यकी किरणोंकी समान वर्णवाली सुवर्णकी वेदी वाली उठी हुई ध्वजावाली उग्रकान्ति वाली देवताओंकी सेना युद्धमें सिंहनाद करतीहुई चलने लगी ॥ ६२ ॥ असुरोंके राजाओंका नाश करनेके लिए प्रयाण करनेवाली जयावह महाप्रभावशालिनी त्रिदिवेश्वरकी बड़ी भारी सेनाका यह आपसे वर्णन कर दिया ॥६३॥ बावनवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५२ ॥ ❀ ❀ ❀

वैशम्पायनजीने कहा, कि-तदनन्तर देवता और असुरोंका संग्राम आरम्भ होगया, वह देवता और असुरोंसे घिरा हुआ संग्राम बड़ी शोभा देरहा था, देवता और असुर, प्रलयके समय अपने २ किनारोंको लाँघ कर परस्पर मिलतेहुए दो समुद्रोंकी समान शोभा पाने लगे ॥१॥ अनेक प्रकारके आयुधोंसे दमकते हुए अङ्ग वाले देवता और असुर महाबली थे, वे धनुषोंको तान रहे थे, उन रण करनेके लिये उत्सुक व्यक्तियोंके हाथ हाथीकी सूँडकी समान प्रतीत होते थे, और वे मेघके गरजनेकी समान

-समप्रभाणि । समुत्क्षिपन्तो ह्यशनीश्च घोरान् खड्गांश्च ते वज्र-मुखाश्च शक्तीः ॥ ३ ॥ महागदाः काञ्चनपट्टनद्धास्तथायसान् कार्मुकमुद्गरांश्च । शूलांश्च वृक्षांश्च विगृह्य दीप्तान्नदन्ति शूराः शतशो रणस्थाः ॥ ४ ॥ वैशम्पायन उवाच । एतस्मिन्नन्तरे तेषामन्योन्यमभिनिघ्नताम् । द्वन्द्वयुद्धान्यवर्तन्त देवानां दानवैः सह ॥ ५ ॥ मरुतां पञ्चमो यस्तु स बाणेनाभ्ययुध्यत । महा-बलः सुरवरः सावित्र इति यं विदुः ॥ ६ ॥ अनायुषायाः पुत्रस्तु बलो नाम महासुरः । सोऽयुद्ध्यत रणेऽत्युग्रो ध्रुवेण वसुना सह ॥७ नमुचिश्चासुरश्रेष्ठो धरेण सह युध्यत । प्रवरौ विश्वकर्माणौ ख्यातौ देवासुरेश्वरौ ॥ ८ ॥ पुलोमा तु महादैत्यो वायुना सह युध्यत । ससैन्यः पर्वताकारो रणेऽयुध्यत दंशितः ॥ ९ ॥ हय-ग्रीवस्तु दितिजः सह पूष्णा त्वयुध्यत। शूरेणामितवीर्येण भास्क-

गरज रहे थे ॥२॥ रणमें खड़े हुए सैंकड़ों शूर धनुषोंको तान कर, आदित्यकी प्रभाकी समान प्रभा वाले चक्रोंको घुमाकर, भयंकर तलवार वज्रमुख शक्ति और अशनियोंको फेंक कर और सुवर्णकी पत्तरसे मढ़ीहुई महागदाओंको तथा लोहेके धनुष, मुद्गर, शूल और वृक्षोंको पकड़ कर गरजने लगे ॥ ३ ॥ ४ ॥ वैशम्पायनजीने कहा, कि-इस प्रकार प्रहार करनेके अनन्तर देवताओंका दानवोंके साथ द्वन्द्वयुद्ध परस्पर होने लगा५ जिसको महाबली देवश्रेष्ठ सावित्र कहते हैं वह पाँचवाँ मरुत् बाणासुरसे युद्ध करने लगा ॥६॥ अनायुषाका बल नामकपुत्र बड़ा राक्षस था, वह उग्रदानव ध्रुव नामक वसुके साथ लड़ने लगा ॥७॥ और असुरश्रेष्ठ नमुचि धरके साथ लड़ने लगा, और दोनों विश्वकर्मा तो देवता और असुरोंके ईश्वर प्रसिद्ध हैं ॥ ८ ॥ पर्वतकी समान आकारवाला पुलोमा नामक महादैत्य अपनी सेनाको साथमें ले तयार होकर वायुके साथ युद्ध करने लगा ॥ ९ ॥ दितिका

राकारवर्चसा१०शंवरस्तु महादैत्यो महामायो महासुरः। भगेनायुध्यत तदा सहितो युद्धदुर्मदः ॥ ११ ॥ शरभः शलभश्चैव दैत्यानां चान्द्रभास्करौ । प्रयुद्धौ सह सोमेन शैशिरास्त्रेण धीमता ॥ १२ ॥ विरोचनस्तु बलवान् बलेर्बलवतः पिता । विष्वक्सेनेन साध्येन देवेन च स युध्यत ॥ १३ ॥ कुजम्भस्तु महातेजा हिरण्यकशिपोः सुतः । अंशेनायुध्यत तदा प्रासप्रहरणेन वै ॥ १४ ॥ असिलोमा तु बलिना मारुतेन समं विभो । तदायुध्यत दीप्तास्यो विकृतः पर्वतायुधः ॥ १५ ॥ अनायुषायाः पुत्रस्तु वृत्रो नाम महासुरः । अश्विभ्यां देववैद्याभ्यां सहायुध्यत संयुगे ॥ १६ ॥ एकचित्रस्तु दितिजश्चक्रहस्तो दुरासदः । सहायुध्यता देवेन साध्येन दितिजारिणा ॥१७॥ वलस्तु मधुपिंगाक्षो

पुत्र हयग्रीव, सूर्यके आकारकी समान तेज वाले अमितवीर्य पूषा के साथ युद्ध करने लगा ॥ १० ॥ महादैत्य महामायावी महासुर युद्धदुर्मद शम्बर भगके साथ युद्ध करने लगा ॥ ११ ॥ शरभ और शलभ ये दोनों दानवोंके चन्द्रमा तथा सूर्य थे वह शिशिर (पाले) का आयुध धारण करने वाले बुद्धिमान् चन्द्रमा के साथ युद्ध करने लगे ॥ १२ ॥ बलवान् बलिका पिता पराक्रमी विरोचन विश्वक्सेन नामक साध्यदेवतासे युद्ध करने लगा ॥१३॥ हिरण्यकशिपुका पुत्र महातेजस्वी पुत्र कुजंभ प्रास से प्रहार करने वाले अंश देवताके साथ युद्ध करने लगा ।१४। और हे विभो ! पर्वतोंके आयुधको धारण करने वाला और प्रदीप्त मुख वाला डरावना असिलोमा बलवान् मारुतके साथ युद्ध करनेलगा ॥ १५ ॥ अनायुषाका वृत्र नामक महान् असुर पुत्र देववैद्य अश्विनीकुमारोंके साथ रणमें लड़ने लगा ॥१६॥ हाथमें चक्रको धारण करने वाला दितिका दुरासद पुत्र दिति पुत्रोंके शत्रु देव नामक साध्य देवताके साथ युद्ध करने लगा१७

वृत्रभ्राता महासुरः । मृगव्याधेन रुद्रेण सहायुध्यत वीर्यवान् १८ राहुस्तु विकृताकारः शतशीर्षाः सहोदरः । अजैकपादेन रणे सहायुध्यत दंशितः ॥ १९ ॥ केशी तु दानवश्रेष्ठः प्रावृट्कालांबुदप्रभः । धनेश्वरेण भीमेन सहायुध्यत संयुगे ॥ २० ॥ वृषपर्वा तु बलिना निकुम्भेन महारणे । विश्वेदेवेन विश्वेशः सहायुध्यत वीर्यवान् ॥ २१ ॥ प्रल्हादस्तु महावीर्यो वीरैः स्वैस्तनयैर्वृतः । युयुधे सह कालेन रणे काल इवापरः ॥ २२ ॥ अनुल्हादः कुबेरेण धनदेन महारणे । गदाहस्तेन युयुधे शोभयन् रिपुवाहिनीम् ॥ २३ ॥ विप्रचित्तिस्तु दैतेयो वरुणेन महात्मना । प्रवृत्तो वै रणं कर्तुं दैत्यानां नन्दिवर्धनः ॥ २४ ॥ बलिस्तु सह शक्रेण सुरेशेन महात्मना । युयुधे देवराजेन बलिना बलवान्रणे ॥२५॥ शेषा देवाश्च दैत्याश्च जघ्नुरन्योन्यमाहवे । विनर्दन्तो महाना-

मधु की समान पीले नेत्र वाला वृत्रका भाई महाराक्षस वीर्यवान् बल मृगव्याध रुद्रके साथ युद्ध करने लगा ।१८। विकृत आकार वाला सौ सिर वाला एक पेट वाला राहु कवच पहर कर अजैकपादके साथ रणमें युद्ध करने लगा१९वर्षाकालके मेघकी प्रभा की समान प्रभा वाला दानवश्रेष्ठ केशी धनेश्वर भीमके साथ रण करने लगा ॥ २० ॥ विश्वका स्वामी वीर्यवान् वृषपर्वा निकुंभ नामक बलवान् विश्वेदेवाके साथ रण करने लगा ।२१। महावीर्यवान् प्रल्हाद अपने वीर पुत्रोंको साथमें लेकर रणमें कालके साथ लड़ने लगा, उस समय वह दूसरा कालसा दीखता था ॥ २२ ॥ अनुह्राद नामक दानव महारणमें हाथमें गदा पकड़ने वाले धनद कुबेरके साथ रण करके शत्रुकी सेनाको सुशोभित करने लगा ॥ २३ ॥ दानवोंके आनन्दको बढ़ाने वाला विप्रचित्ति नामक दानव महात्मा वरुणके साथ रण करने पर पिल पड़ा ।२४।और बलवान् बलि रणमें देवराज महात्मा इन्द्रके साथ

दान् प्रासासिशरशक्तिभिः ॥ २६ ॥ अदृश्यन्त महोत्पाता ये प्रोक्ता जगतः क्षये। मारुता सप्त ते क्षुब्धा व्यशीर्यन्त महीधराः२७ सप्त चैवोत्थिताः सूर्याः शोषयन्तो महार्णवान् । बहुनाभिद्यत धरा वायुना मथिना यथा ॥ २८॥ व्युत्थिताश्च महामेघाः शक्रचापाङ्कितोदराः । नणेदुः सर्वभूतानि सर्वाः सतिमिरा दिशः२९ देवानामजयो घोरो दृश्यते कालनिर्मितः । घोरोत्पातः समुद्भूतो युगान्तसमये यथा ॥ ३० ॥ न ह्यन्तरिक्षं न दिशो न भूमिर्न भास्करोऽदृश्यत रेणुजालैः । ववुश्च वातास्तुमुलाः सुधूमा दिशश्च सर्वास्तिमिरोपगूढाः ॥ ३१ ॥ एते चान्ये च बहवो दृश्यन्ते दैवनिर्मिताः । भूमौ तथान्तरिक्षे च महोत्पाताः समन्ततः ।३२। तद्युद्धं देवदैत्यानां भीमानां भीमदर्शनम् । अपश्यत गुरुर्ब्रह्मा सर्वैरेव सुरैः सह ॥ ३३ ॥ वेदैश्चतुर्भिः साङ्गैश्च विद्याभिश्च

रणकरने लगा २५ शेष दानव और देवता बड़ी२ गर्जना करके प्रास तलवार बाण और शक्तियोंसे परस्पर प्रहार करने लगे२६ इसीसमय जगत्‌के क्षयके निमित्त कहे हुए बड़े बड़े उत्पात प्रकट होने लगे, सातों वायु क्षुब्ध होगए, पर्वत फटने लगे ।२७। सात सूर्य प्रकट होकर महासमुद्रों को सोखने लगे,पृथ्वी वायुसे मथी हुईकी समान प्रायः फट गई २८ इन्द्रचापवाले महामेघ प्रकटहोने लगे,सब प्राणी डकराने लगे और सब दिशाओंमें अन्धकार भर गया २९ कालका रचा हुआ देवताओंका पराजय होता हुआ दीखनेलगा,उस समय प्रलयकालकी समान भयंकर उत्पात प्रकट होनेलगे ॥३०॥ धूल उड़नेसे आकाश दिशा भूमि और सूर्यका दीखना बन्द होगया, भयंकर आँधियें चलने लगीं और सब दिशाएँ अन्धकारसे ढकगईं ॥३१॥ भूमि और अन्तरिक्षमें चारों ओर दैवरचित बहुतसे उत्पात दिखाई देने लगे ॥ ३२ ॥ भयंकर देव दानवोंके उस भयंकर युद्धको गुरु ब्रह्माजी और सब

सनातनः । पद्मयोनिर्वृतः श्रीमान् सिद्धैश्च परमर्षिभिः ॥३४॥ नानामणिस्तम्भसहस्रचित्रमारुह्य यानं ददृशे स्वयम्भूः । सुगा-स्वरं भूतसहस्रयुक्तं प्रदीप्यमानं वपुषा वरेण ॥ ३५ ॥ सुतप्त-जाम्बूनदभक्तिचित्रमानन्दभेरीशतसंप्रणादम् । नक्षत्रचण्डांशुभिरं-शुमन्तं वैडूर्यसोमार्कविभूषितांगम् ॥ ३६ ॥ तमात्मजो वै पुलहः पुलस्त्यस्तथा मरीचिर्भृगुरंगिराश्च । ऋक्सामभिः सम्यगभिष्टुवंतः सेवन्ति देवं वरदं विमाने ॥ ३७ ॥ तं पावका लोकगुरुं स्वयं-भुवं सांगाश्च वेदा मखदेवताश्च सेवन्ति देवं भुवनेश्वरेशं भूतानि चान्यानि महानुभावम् ॥ ३८ ॥ एते बभूवुश्च महर्षिसंघा वैश्वा-नराः पावकयोनयश्च । सर्वे ययुर्देवपुरोहिताश्च युद्धोत्सुकाः सर्वसुरासुराणाम् ॥ ३९ ॥ योगेश्वराः पद् च दिवाकराभा

भी देवता देखने लगे ॥ ३३ ॥ उस समय पद्मसे उत्पन्न हुए श्रीमान् सनातन ब्रह्माजी अङ्गों सहित चारों वेदोंसे विद्याओं सिद्धोंसे तथा परमर्षियोंसे घिर रहे थे ॥३४॥ उस समय मणियों के बहुतसे खंभोंसे चित्रित विमान पर चढ कर ब्रह्माजीने दर्शन दिया, उनका विमान दमक रहा था, उसमें सहस्रों प्राणी थे और उसका आकार दमक रहा था ३५ उसमें तपे हुए सुवर्णकी पत्तर पर चित्र कढ़ रहे थे और आनन्ददायक सैंकड़ों भेरियें बज रहीं थीं। उसके (कल्पित) नक्षत्र और चन्द्रमासे किरणें निकल रहीं थी और वैडूर्यमणिके बने हुए चन्द्रमा और सूर्यसे विभूषित होरहा था। ३६ । उन वर देने वाले देवता की उनके पुत्र पुलह पुलस्त्य मरीचि भृगु अंगिरा ऋग्वेद और सामवेदकी ऋचाओंसे स्तुति कर रहे थे। ३७ उन स्वयम्भू लोक-गुरु महानुभाव भुवनेश्वरेशका अग्निए अङ्गोंसहित वेद और मख-देवता सेवन कर रहे थे ३८ ये महर्षि और पावकयोनि वैश्वा-नर और देवपुरोहित सब देवता और असुरोंके रणको देखनेकी

विभूषणैर्भूषितसर्वदेहाः । अन्तर्हिता नौ ददृशुर्नभस्था नारायणश्चैव नरश्च देवाः ॥ ४० ॥ वक्त्रैश्चतुर्वेदधरैश्चतुर्भिः संपूर्णचन्द्रप्रतिमैः सुकान्तैः । सर्वा दिशो निस्तिमिराश्चकार नवोदितोऽसौ शरदीव चन्द्रः ॥ ४१ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि देवासुरयुद्धे सनकादिकागमनं नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

वैशम्पायन उवाच । उभयोः सेनयो राजन् भूयो युद्धमवर्तत । नादेन संचालयती त्रैलोक्यमिदमव्ययम् ॥ १ ॥ गोमुखाडंबराणां च भेरीणां मुरजैः सह । झल्लरीडिण्डिमानां च व्यश्रूयन्त महास्वनाः ॥ २ ॥ प्रवृत्तो युद्धयज्ञस्तु तुमुलो लोमहर्षणः । रणमध्ये महानादः स्वर्गीय शूरसम्मतः ॥ ३ ॥ युद्धयज्ञस्य नेताऽभूत् प्रल्हादो दैत्यसत्तमः । विरोचनस्तथाध्वर्युर्युद्धयज्ञमव-

---

इच्छासे तहाँ आए थे ३६ (सनक, सनन्दन, सनातन सनत्कुमार कपिल और जैगीषव्यय छः योगेश्वर) और नरनारायण दिवाकरकी समान आभा धारण करके और विभूषणोंसे अपने शरीरको विभूषित करके अन्तर्हित हो आकाशमें खड़े होकर उस युद्धको देखने लगे ॥४०॥ पूर्ण चन्द्रमाकी समान मनोहर, चारों वेदोंको धारण करने वाले अपने चार मुखोंसे सब दिशाओंको अन्धकाररहित करके शरद् ऋतुके चन्द्रमाकी समान प्रतीत होने लगे ॥ ४१ ॥ तरेपनवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५३ ॥ -छ

वैशम्पायनजीने कहा, कि–इस अव्यय त्रिलोकीको अपने नाद से कँपाती हुई, वे दोनों सेनाएँ फिर युद्ध करने लगीं ॥१॥ तहाँ पर गोमुख आडम्बर भेरी मुरज झल्लरी और डिण्डिमोंका बड़ा भारी शब्द सुनाई आने लगा ॥ २ ॥ रोंगटोंको खड़े करने वाला तुमुल युद्धयज्ञ इसप्रकार प्रवृत्त होगया, इस रणमें शूरपूजित स्वर्गीय महानाद होरहा था ॥ ३ ॥ दैत्यसत्तम प्रल्हाद

र्तकः ॥ ४ ॥ होता चैवात्र नमुचिर्वृत्रः स्तोत्रोपकल्पकः । मंत्रा दैत्याः समाख्याता यज्ञकर्मणि तत्र वै ॥ ५ ॥ अनुयातश्च पितृभिरधिको वा पराक्रमैः । यज्ञे तत्राभवद्बाणः संयुगे चोपतिष्ठते६ ऐन्द्रं पाशुपतं ब्राह्मं स्थूणाकर्णं सुदुर्जयम् । मन्त्रास्तत्राभ्यवर्तंत साध्वनुल्हादयोजिताः ॥ ७ ॥ उद्गाता च मयः श्रीमान् स्थितः शत्रुभयंकरः । विनदन् दितिजश्रेष्ठो देवानीकं व्यदारयत् ॥८॥ वलिस्तु राजा द्युतिमान् स्वयं तत्र महासुरः । जाप्यैर्होमैश्च संयुक्तो ब्रह्मत्वमकरोत् प्रभुः ॥ ९ ॥ रणाग्निज्वलितो घोरो वैरेन्धनसमीरितः । हूयते त्वसुरैस्तत्र देवो विष्णुः सुरैः सह१० शंखशब्दैः सुतुमुलैर्भेरीणां च महास्वनैः । उद्घुष्टं विमलं चैव ब्रह्मण्यं सुप्रयुज्यते ॥११॥ बलश्च बलकश्चैव पुलोमा च महा-

इस युद्धयज्ञका नेता हुआ था और युद्धयज्ञका प्रवर्तक वैरोचन इस यज्ञका अध्वर्यु बना था ॥ ४ ॥ इस यज्ञमें नमुचि होता था, वृत्र स्तोत्रोपकल्पक (प्रस्तोता) था और इस यज्ञमें दैत्योंको मन्त्र समझना चाहिए ॥ ५ ॥ पराक्रममें पितरोंसे अधिक बाण, युद्ध आने पर उस यज्ञमें अनुयात बना ॥ ६ ॥ अनुह्लादके द्वारा प्रयुक्त ऐन्द्र पाशुपत ब्राह्म और सुदुर्जय स्थूणाकर्णरूप मन्त्रोंका तहाँ पर प्रयोग होने लगा ॥ ७ ॥ और इस रणयज्ञमें शत्रुओंको भय देने वाला श्रीमान् मय उद्गाता बना था, वह दानवोंमें श्रेष्ठ दानव गर्जना करके देवसेनाओंको विदीर्ण करने लगा ८ महासुर कान्तिमान् प्रभु राजा बलि जप और होमसम्पन्न होकर तहाँ पर ब्रह्माके कामको करने लगा ॥ ९ ॥ वैररूपी ईन्धनसे प्रचण्ड हुआ घोर रणाग्नि तहाँ पर धाँय २ करने लगा और असुर उसमें विष्णु और देवताओंको होमना चाहने लगे ।१०। तुमुल शंखशब्दोंसे, भेरियोंकी महाध्वनियोंसे वह उद्घुष्ट और विमल ब्रह्मण्य यज्ञ भली प्रकार चल रहा था ॥ ११ ॥ बल

सुरः । प्रशस्तं च समं कृत्वा सत्रं सम्यक् प्रचक्रिरे ॥ १२ ॥ कल्माषदण्डविमला विपुलाः रथपंक्तयः । यूपाश्च समकल्पन्त युद्धयज्ञे महाफले ॥ १३ ॥ कर्णनालीकनाराचा वत्सदन्तोपबृंहिकाः । तोमराः सोमकलशा विचित्राणि धनूंषि च ॥ १४ ॥ अस्थीन्यत्र कपालानि पुरोडाशाः शिरांसि च । आज्यं च रौद्रं रुधिरं तस्मिन् यज्ञेऽभिहूयते ॥ १५ ॥ इध्माः परिधयस्तत्र प्रस्तारा विपुला गदाः । हयग्रीवोऽसिलोमा च राहुः केशी च दानवः १६ विरोचनश्च जम्भश्च कुजंभश्च महाबलः । सदस्यास्तत्र तु मखे विप्रचित्तिस्तु वीर्यवान् ॥ १७ ॥ इषवस्तु स्रुवास्तत्र रथाक्षसदृशाः शुभाः । धनुष्कोट्यो धनुर्ज्याश्च स्रुचास्तत्र महामखे १८ प्रतिमास्थानिकं कर्म वृषपर्वाकरोदिह । दीक्षितस्तत्र तु बलिस्तस्य पत्नी महाचमूः ॥ १९ ॥ शंबरस्तत्र शामित्रमकरोद्दितिनन्दनः ।

बलक और पुलोमा नामक राक्षस उस यज्ञको प्रशस्त और सम बना कर भली प्रकार करने लगे ॥ १२ ॥ इस महाफलदायक युद्धयज्ञमें कल्माषके बड़े २ दण्डों वाली रथपंक्तियें यूप बनाई गई थीं १३ कर्णि नालीक नाराच और वत्सदन्त इसमें उपबृंहिका थीं, तोमर तथा विचित्र धनुष सोमकलश थे ॥ १४ ॥ अस्थियें कपाल थीं, शिर पुरोडाश थे और रक्तरूप भयंकर घृतको उस यज्ञमें होमा जारहा था ॥१५॥ उस रणयज्ञमें गदा इध्म (काष्ठ) थीं और बड़ी २ गदाएँ प्रस्तार थे, तथा हयग्रीव असिलोमा राहु और केशी दानव विरोचन जम्भ कुजम्भ और वीर्यवान् विप्रचित्ति उस यज्ञके सदस्य थे ॥ १६ ॥ १७ ॥ और रथके अक्षकी समान शुभ बाण तहाँ पर स्रुवे थे और उस महामख में धनुषकी प्रत्यञ्चा और धनुष्कोटि स्रुच थे॥ १८ ॥ वृषपर्वा तहाँ पर प्रतिप्रास्थानिक कर्म कर रहा था, उसमें बलि और उसकी पत्नी महाचमूने दीक्षा ली थी ॥ १९ ॥ उस अतिरात्र

अतिरात्रे महाबाहुर्विततते यज्ञकर्मणि ॥ २० ॥ दक्षिणास्तस्य यज्ञस्य कालनेमिर्महासुरः । बैताने कर्मणि विभो यः ख्यातो हव्यवाडिव ॥ २१ ॥ त्रिदशानां तु सैन्यस्य शरीरैर्गतजीवितैः तस्मिन् यज्ञे तु सवनं वर्धते दैत्यनिर्मितम् ॥ २२ ॥ देवानां रुधिरं संख्ये पपुरुग्रा दितेः सुताः । नर्दमानाः प्रमुदिताः सोमपानं रणाध्वरे ॥ २३ ॥ यदा बलिर्महादैत्यो विजेता समरे सुरान् । तदा ह्यवभृथो यज्ञे भविष्यति न संशयः ॥ २४ ॥ महासुरेन्द्र-पतयो यज्वानो भूरिदक्षिणाः । वेदवन्तो वृत्तवन्तः शूराः सर्वे तनुत्यजः ॥ २५ ॥ त्रैलोक्यहरणे सज्जा युद्धयज्ञाय दीक्षिताः । बद्धकृष्णाजिनाः सर्वे व्रतिनो मुञ्जधारिणः ॥ २६ ॥ एकनिश्चय-कार्याश्च त्रैलोक्यजयकांक्षिणः । सुरदानवदैत्यानां शब्दः सम-

---

महायज्ञ चलने पर दितिनन्दन शम्बरने तहाँ पर शामित्र कर्म किया था ॥ २० ॥ कालनेमि महाराक्षस उस यज्ञकी दक्षिणा थी, हे विभो ! वह वैतान यज्ञकर्ममें हव्यवाट अग्निकी समान प्रसिद्ध था ॥ २१ ॥ देवताओंकी सेनाके जीवनरहित शरीरोंसे दानवनिर्मित सवन उस यज्ञमें होता था ॥ २२ ॥ अदितिके उग्र पुत्र प्रसन्न होकर और गर्जना करके रणाध्वरमें देवताओंके रुधिररूपी सोमका पान करने लगे ॥ २३ ॥ यदि महादानव विजेता बलि समरमें देवताओंको जीत लेता तो उस यज्ञका अव-भृथ स्नान होजाता ॥ २४ ॥ बहुत सी दक्षिणा देने वाले महा-सुरेन्द्रपति याज्ञिक थे, सब वेदवेत्ता थे, शीलवान् थे शूर थे और सब शरीरके मोहसे रहित थे ॥ २५ ॥ वे त्रिलोकीको छीननेके लिए तयार होगये थे और उन्होंने युद्ध यज्ञकी दीक्षा लेली थी, सबने काले मृगकी छाल ओढ़ रक्खी थी, सब व्रतधारी और मुञ्जमेखलाधारी थे ॥ २६ ॥ सबने एक काम करनेका निश्चय कर लिया था, सब त्रिलोकीको जीतना चाहते थे, तदनन्तर तहाँ

भवन्महान् ॥ २७ ॥ नानायुधविहस्तानां त्वरितानां प्रधावताम् । क्ष्वेडितोत्कृष्टनिनदैर्गजबृंहितनिःस्वनैः ॥ २८ ॥ रथनेमिस्वनैर्घोरैस्तुमुलः सर्वतोऽभवत् । शंखदुन्दुभिनिर्घोषैर्हयहेषितनिःस्वनैः ॥ २९ ॥ हयानां हेषमाणानां दानवानां च गर्जताम् । क्ष्वेडितोत्कृष्टनिनदैः पाणिपादरवैस्तथा ॥ ३० ॥ दानवानां परेषां च शस्त्रवन्ति महान्ति च । समरे भीमकर्माणि सैन्यानि प्रचकाशिरे ॥ ३१ ॥ ततो नागा रथाश्चैव जाम्बूनदविभूषिताः भ्राजमाना व्यराजन्त मेघा इव सविद्युतः ॥ ३२ ॥ ऋष्टिशक्तिगदास्तीक्ष्णशूलशक्तिपरश्वधाः । चारु बभ्राजिरे तत्र तेष्वनीकेषु भागशः ॥ ३३ ॥ रथा बहुविधाकाराः शतशोऽथ सहस्रशः । हेमप्रच्छन्नशिखरा ज्वलन्त इव पावकाः ॥ ३४ ॥ दानवानां

पर देवता असुर और दानवोंका बड़ा भारी शब्द होने लगा २७ अनेक प्रकारके आयुधोंको छोड़कर भागते हुए योधाओंके क्ष्वेडित उत्कृष्ट और हाथियोंके चिंघाड़नेके शब्दसे और रथके नेमिस्वनसे और शंखध्वनिसे दुन्दुभिघोषसे तथा घोड़ोंके हींसनेसे तुमुलध्वनि होने लगी ॥ २८ ॥ २९ ॥ हींसते हुए घोड़ोंसे गरजते हुए दानवोंकी चीखसे भुजाओंकी फटफटाहटसे और हाथ पैरोंकी धमकसे दानवोंकी और शत्रुओंकी भयंकर कर्म करनेवाली सेनायें दमकने लगीं ॥ ३० ॥ दानवोंकी और उनके शत्रुओंकी बड़े २ शस्त्रवाली भयंकर कर्म करने वाली सेनायें रणमें दमकने लगी ॥ ३१ ॥ उस समय सुवर्णसे विभूषित दमकते हुए हाथी और रथ बिजलीवाले मेघोंकी समान दमकने लगे ३२ उस सेनादलोंमें ऋष्टि शक्ति गदा तीक्ष्ण-शूल और फरसे सुंदरतासे शोभा पाने लगे ॥ ३३ ॥ अनेक प्रकारके आकार वाले सुवर्णसे ढकी हुई ध्वजा वाले सैकड़ों और हजारों प्रकारके रथ प्रदीप्त अग्निकी समान दमकने लगे ॥ ३४ ॥ दानवोंके और

सुराणां च समालोक्यन्त सैनिकाः । काञ्चनैः कवचैः सर्वे ज्व-
लितार्कसमप्रभैः ॥ ३५ ॥ सन्नद्धाः समदृश्यन्त ज्योतींषि गगने
यथा । उद्यतैरायुधैश्चित्रैस्तलबद्धाः कलापिनः ॥ ३६ ॥ ऋष-
भाक्षाः सुरगणाश्चमूमुखगता बभुः । नानावर्णाः पताकाश्च
ध्वजमालाश्च संयुगे ॥ ३७ ॥ युध्यन्तां रणशौंडानां युद्धमासीत्
सुदारुणम् । ध्वजालंकारवस्त्राणि कवचानि च रश्मिभिः ३८
भासयामास सर्वाणि रश्मिवर्णानि रश्मिवान् । सर्वेषामप्रमेयानां
बलानां पादचारिणाम् ॥ ३९ ॥ रजः प्रच्छादयामास पत्रोर्णं
पाण्डुरं दिशः । दिव्यायुधधराः सर्वे दीप्तायुधपरिच्छदाः ॥ ४० ॥
प्रतितस्तम्भिरेऽन्योऽन्यमनीकं प्रत्यनीकतः । गिरिकूटोच्छ्रयाः
सर्वे तदा ते देवदानवाः ॥ ४१ ॥ अन्योऽन्यमभिनिघ्नन्तो रण-
स्थाश्चित्रयोधिनः । बाणैः सुरुचिरैस्तीक्ष्णैः पत्रवाजैर्दुरासदैः ४२

असुरोंके सैनिक प्रदीप्त सूर्यकी समान दमक वाले सुवर्णमय कवचोंसे तयार होकर आकाशमें स्थित नक्षत्रोंकी समान दमकने लगे, उठाये हुए आयुधोंसे, मौजे पहिरने वाले धनुषधारी बैल की समान नेत्रों वाले रंग बिरंगी पताका और ध्वजमाला वाले सेनाके मुहाने पर डटे हुए देवता शोभा पाने लगे ॥३५-३७॥ युद्ध करते हुए रणचतुर योधाओंका दारुण युद्ध होने लगा, सूर्य अपनी किरणोंसे ध्वजाओंको अलंकारोंको वस्त्रोंको और किरणोंकी समान वर्ण वाले कवचोंको सब अप्रमेय सेनादलों को दमकाने लगा ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ धुले हुए रेशमकी समान सफेदीवाली धूलने दिशाओंको ढक दिया, प्रदीप्त आयुधोंको धारण करने वाले और प्रदीप्त वस्त्र वाले सेनादल आपसमें डट गए, रणमें विराजमान पर्वतके शिखरकी समान ऊँचे और विचित्रतासे रण करनेवाले वे सब दानव मनोहर बाणोंसे दुरासद शरपुंखवेगित मुद्गरोंसे मूसलोंसे शूलोंसे अयस्तुण्डोंसे

मुद्गरैर्मुशलैः शूलैरयस्तुण्डैरुलूखलैः । वज्रैरशनिकल्पैश्च खड्गवृक्षादिभिस्तथा ॥ ४३ ॥ तथा प्रवर्तिते तेषां विमर्देऽद्भुत-विक्रमे । सावित्रस्य वधं प्रेप्सुर्बाणो जग्राह कार्मुकम् ॥ ४४ ॥ शरजालेन दिव्येन छादयानः सुरोत्तमम् । मन्त्रैर्हुत इवार्चिष्मान् संप्रजज्वाल तेजसा ॥ ४५ ॥ सागराभां महासेनां देवानां दैत्य-पुङ्गवः । संशोषयति बाणौघैरर्कांशुभिरिवार्णवम् ॥ ४६ ॥ मारुतः सुमहावेगः सावित्रः शक्तिमुत्तमाम् । चिक्षेप बलिपुत्राय शक्रोऽशनिमिवाद्रये ॥ ४७ ॥ आपतन्ती च सा शक्तिर्महोल्का ज्वलिता इव । द्विधा छिन्ना क्षुरप्रेण बाणेनाद्भुतकर्मणा ॥४८॥ हतायामथ शक्त्यां तु सावित्रो देवसत्तमः । विश्वकर्मकृतं दिव्यं सुतीक्ष्णं दानवार्दनम् ॥ ४९ ॥ सुपीनधारं विमलं विपुलं चंद्र-

---

उलूखलोंसे, वज्रोंसे, अशनिकी समान खड्गोंसे और वृक्षादि से परस्पर प्रहार करने लगे ॥ ४०-४३ ॥ अद्भुत विक्रम भरे रणके चलने पर बाणासुरने सावित्रका वध करनेकी इच्छासे धनुषको उठा लिया ॥ ४४ ॥ बाणोंके दिव्य जालसे देवश्रेष्ठ को ढकता हुआ बाणासुर मन्त्रोंसे होम करके प्रदीप्त किये हुए अग्निकी समान दमकने लगा ॥ ४५ ॥ दानवपुंगव बाणासुर समुद्रकी आभाकी समान आकारवाली देवताओंकी महासेनाको इस प्रकार सोखने लगा, जिस प्रकार सूर्य अपनी किरणोंसे समुद्रको सोखता हो ॥ ४६ ॥ तदनन्तर महावेगवान् मारुत सावित्रने, इन्द्रके पर्वत पर वज्र मारनेकी समान, बलिके पुत्र बाणासुरके ऊपर उत्तम शक्तिका प्रहार किया ४७ अद्भुत कर्म करने वाले बाणासुरने जलती हुई बड़ी भारी उल्काकी समान आती हुई शक्तिके क्षुरप्र नामक बाणसे दो टुकड़े कर डाले ॥ ४८ ॥ देवसत्तम सावित्रने शक्तिके नष्ट होने पर विश्वकर्माके बनाए हुए, दानवोंका नाश करने वाले मोटी धार वाले चन्द्रकी समान

वर्चसम् । अगृह्णान्निशितं खड्गमाशीविषमिवोरगम् ॥ ५० ॥
तं गृहीत्वा रणमुखे प्रज्वलन्तं महाप्रभम् । बाणाभ्याशे महातेजाः
खड्गपाणिरवस्थितः ॥ ५१ ॥ स तं स्थितमथालक्ष्य सावित्रं
बलिनन्दनः । लोहिताक्षं महाकायं चिक्षेप च ननाद च ॥ ५२ ॥
ततोऽर्ककिरणाकारानशनिप्रतिमाञ्छितान् । संदधे चाशुबाणौ-
घानाशीविषशिलीमुखान् ॥ ५३ ॥ रुक्मपुंखान् प्रदीप्ताग्रानुग्र-
वेगानलंकृतान् । आकर्णपूर्णांश्चिक्षेप शरानुग्रान् समन्ततः ५४
दृढचापप्रमुक्तास्ते शरा वैश्वानरप्रभाः । सावित्रं छादयामासुः
कैलासमिव तोयदाः ॥५५॥ संछाद्यमानः शस्त्रौघैर्बाणेन बलि-
सूनुना । पराङ्मुखः सुरवरः प्रयातः सरथध्वजः ॥ ५६ ॥ परा-
जित्य स सावित्रं बाणः परमहर्षितः । प्रगृह्य कार्मुकं घोरं गतः

निर्मल कान्तिवाले और विषधर सर्पकी समान खड्गको उठा लिया ॥ ४९ ॥ ५० ॥ महाप्रभावान् और रणके मुहानेपर दमकते हुए उस शस्त्रको पकड़ कर महातेजस्वी सावित्र बाणासुरके सामने खड्गपाणि-महादेवकी समान खड़ा होगया५१सावित्रको डटा हुआ देखकर बलिके पुत्र बाणासुरने लालवर्णके बड़े रथके बड़े भारी अक्षको उठा कर फैंका और गर्जना करने लगा ।५२। तदनन्तर बाणासुरने सूर्यकी किरणोंकी समान आकार वाले, वज्रकी समान तीक्ष्ण और सर्पकी समान बाणोंको धनुष पर चढ़ाया ॥ ५३ ॥ और उन सुवर्णकी पूंछड़ी वाले, भयंकर वेग वाले सुशोभित बाणोंको कान तक खेंच कर छोड़ा ।५४। जिस प्रकार मेघ कैलाशको छालें, इस प्रकार दृढ़ चापसे छूटेहुए अग्नि की समान कान्तिमान् बाणोंने सावित्रको छादिया ५५ बलिके पुत्र बाणासुरके बाणोंसे ताड़ित होने पर देवश्रेष्ठ सावित्र अपने ध्वजा वाले रथको लेकर भाग गया ॥ ५६ ॥ बाणासुर सावित्रका पराजय कर परम हर्षमें भरगया और अपने परम भयं-

शक्ररथं प्रति ॥ ५७ ॥ बलश्चाप्यसुरश्रेष्ठः प्रगृह्य महतीं गदाम् । ध्रुवाय वसवे मूर्ध्नि रौद्रां चिक्षेप दानवः ॥ ५८ ॥ तस्य निर्मथितस्त्वंसो हेमचित्रं च वर्म वै । गदावेगेन भीमेन ध्रुवस्य समरे तदा ॥५९॥ शेषाश्च वसवः सर्वे दिव्यास्त्रैर्घोरदर्शनैः । प्राच्छादयन्रणे दैत्यमादित्यमिव तोयदाः ॥ ६० ॥ ततः सम्मर्दितो बाणैर्बलो दानवसत्तमः। अवातरद्रथात्तस्माद्गदामुद्यम्य वेगवान् ६१ पातयामास शत्रूणां समाविध्य महासुरः । दिशः प्राद्रावयत् सर्वास्त्रिदशान् सा महागदा ६२ इन्द्राशनिरिवेन्द्रेण महद्भ्यामुग्रहावला । तस्याः सविद्युद्घोषायास्तेन शब्देन वेपिताः ६३ व्यद्रवन्त परिभ्रष्टा रथेभ्यो रथिनस्तदा । तदुदीर्णं रथानीकं सूर्याभं मेघनिःस्वनम् ॥६४॥ देवानां शरधाराभिः समन्तादभ्यवर्षत । क्षुरकैर्विशि-

कर चापको तान कर इन्द्रके रथकी ओर चला । ५७ । उधर असुरश्रेष्ठ बल दानवने भी बड़ी भारी गदा उठाकर ध्रुव नामके वसुके मस्तककी ओर फेंकी ॥ ५८ ॥ भयंकर गदावेगसे ध्रुवका कंधा और सुवर्णका कवच चकनाचूर होगया । ५९ । तदनन्तर बाकी सब वसु भयंकर दिखाववाले दिव्यअस्त्रोंसे बाणासुरको इस प्रकार ढकने लगे, जिस प्रकार मेघ सूर्यको ढक देते हैं ६० तदनन्तर बाणोंसे पीड़ा पाता हुआ दानवसत्तम बल गदाको पकड़कर रथमेंसे कूद पड़ा ॥ ६१ ॥ और उस गदाको घुमा कर शत्रुओंके मस्तकों पर पटकाने लगा, इस प्रकार उसने गदाके द्वारा देवताओंको दशों दिशाओंमें भगा दिया ॥ ६२ ॥ जिस प्रकार इन्द्र वज्रको पटकाता है, इसप्रकार वह उस महाबलवाली गदाको पटकाने लगा, बिजलीकी समान गर्जना करने वाली उस गदाके शब्दसे काँप कर रथी रथियोंसे भ्रष्ट होकर भागने लगे जब सूर्यकी समान आभा वाली मेघोंकी समान शब्द करनेवाली देवसेना भागने लगी ॥६३॥६४॥ तब वह क्षुरक विशिख भल्ल

क्षौभैर्वत्सदन्तैः शिलीमुखैः ॥ ६५ ॥ मुहुर्मुहुर्महातेजाः प्रत्यविध्यन् महासुरः । वलाकस्तु गदापाणिर्व्यादितास्य इवांतकः ६६
तडिद्गणार्कसदृशो वैश्वानर इवापरः । पिबन्निव शरौघांस्तान् देवचापसमुच्छितान् ॥ ६७ ॥ अभ्यद्रवत दैत्येन्द्रो महार्णव इवापरः । अवस्फूर्जन् दिशः सर्वाः स्वेन वीर्येण दानवः ॥ ६८ ॥
अरुजंस्त्रिदशान् दैत्यः सिंधुवेगान् नगा इव । समुद्रस्तरसा देवान् वायुर्वृक्षानिवौजसा ॥ ६९ ॥ आमर्षश्च महेष्वासान् वसुभ्यां समसंज्जत । आपश्चैवानिलश्चैव ववर्षतुररिन्दमौ ७०
शरवर्षाणि दीप्तानि मेघाविव परन्तपौ । क्षिप्तांस्तान् विशिखान् दीप्तानन्तरिक्षे स चिच्छिदे ॥ ७१ ॥ अमृष्यमाणस्तत् कर्म ध्रुवस्तमभिदुद्रुवे । तौ पृथक् शरवर्षाभ्यामन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥७२॥

और वत्सदन्त नामक बाणोंको देवसेना पर बरसाने लगा ६५ और महासुर वलाक भी महातेजस्वी कालकी समान मुख फाड़ कर हाथमें गदा ले देवताओंको बारबार घायल करने लगा ६६ बिजलीके पुञ्ज और सूर्यकी समान और दूसरे वैश्वानरकी समान वह दानव देवताओंके चापोंसे छूटे हुए बाणजालोंको निगलने लगा ॥ ६७॥ और वह दैत्येन्द्र महार्णवकी समान अपने वीर्यसे सब दिशाओंको दहलाता हुआ चल दिया ॥६८॥ जिस प्रकार नदीके वेगको पर्वत विशीर्ण कर देते हैं, वायु और समुद्र अपने वेगसे वृक्षोंको तोड़ डालते हैं, इसी प्रकार वह दानव देवताओंको पीडित करने लगा४६इस प्रकार बड़े २ धनुर्धरोंको पराहत कर वह आपव और अनिल नामक दो वसुओंसे भिड़ गया तब वे दोनों अरिदमन मेघोंकी समान बाणोंकी बौछार करनेलगे,उन फैंकेहुए बाणोंको वह अन्तरिक्षमें ही टुकडे २ कर फेंकने लगा ॥ ७० ॥ ७१ ॥ इस बातको न सह कर ध्रुव उसके ऊपर दौड़ गया, और वे दोनों परस्पर बाणवर्षा कर एक दूसरे

उत्तमाभिजनौ शूरौ देवदैत्यौ यशस्करौ । तौ नखैरिव शार्दूलौ दन्तैरिव महाद्विपौ ॥ ७३ ॥ रथशक्तिभिरन्योऽन्यं विशिखैश्चाप्यकृंतताम्। निर्भिदन्तौ च गात्राणि विलिखन्तौ च सायकैः ७४ स्तम्भयन्तौ च बलिनौ मतुदन्तौ स्थितौ रणे । चरन्तौ विविधान् मार्गान् मण्डलानि च भागशः ॥७५॥ मुद्गरैर्जघ्नतुः क्रुद्धावन्योऽन्यमभिमानिनौ । असिभ्यां चर्मणी दिव्ये विपुले च शरासने ।७६। निकृत्याचलसंकाशौ बाहुयुद्धं प्रचक्रतुः । व्यूढोरस्कौ दीर्घभुजौ नियुद्धकुशलावुभौ ॥ ७७ ॥ बाहुभिः समसज्जेतामयासैः परिघैरिव । तयोरासीद्भुजाघातैर्निग्रहः प्रग्रहस्तथा ॥ ७८ ॥ अतीव भीमः सह्लादो वज्रपर्वतयोरिव । द्विपाविव विषाणाग्रैः शृंगैरिव

को मारने लगे ॥ ७२ ॥ वे दोनों उत्तम देशमें उत्पन्न हुए थे, शूर थे और देवता तथा दानवोंका यश बढ़ाने वाले थे, वे दोनों नखोंसे लड़ने वाले दो सिंहोंकी समान और दाँतोंसे लड़ने वाले दो बली हाथियोंकी समान युद्ध करने लगे ७३ वे रथशक्तियोंसे एक दूसरेको काटने लगे और बाणोंसे परस्पर शरीरोंको घायल करने लगे ७४ वे दोनों बलवान् एक दूसरेको स्तंभित करनेकी इच्छासे नाना प्रकारके पैंतरे दिखाने लगे । ७५ । वे अभिमानी क्रोधमें भरकर एक दूसरे पर मुद्गर तलवार दिव्य ढाल और बाणोंसे प्रहार करने लगे ७६ चौड़ी छाती वाले, लम्बी लम्बी भुजाओं वाले युद्ध करनेमें कुशल और पर्वतकी समान आकार वाले वे दोनों बाहुयुद्ध करने लगे ॥ ७७ ॥ जैसे लोहेके परिघ गिरें, इस प्रकार उनकी भुजाएँ टकराने लगीं, वे अपनी भुजाओं से निग्रह और प्रग्रह करने लगे ॥ ७८ ॥ उन दोनोंकी भुजाओं का शब्द पर्वत पर वज्र पड़नेकी समान होता था जिस प्रकार दाँतोंसे दो हस्ती लड़ते हैं और सींगोंसे दो बैल लड़ते हैं, इस प्रकार वे दोनों मुहूर्त भर तक भुजाओंको खेंच कर लड़ते रहे,

महावृषौ ॥ ७९ ॥ अन्योन्यमभिसंरब्धौ मुहूर्तं पर्यकर्षताम् । ततः पराजितो देवो बलाकेन तथा ध्रुवः । रथं त्यक्त्वा भयाचस्य प्रणष्टः प्राङ्मुखो वसुः ॥ ८० ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

वैशम्पायन उवाच । पुनरेव तु तत्रासीन्महायुद्धं सुदारुणम् । क्रुद्धस्य नमुचेश्चैव धरस्य च महात्मनः ॥१॥ संरब्धौ च महाबाहू महेष्वासावरिन्दमौ । परस्परमुदैक्षेतां दहन्ताविव लोचनैः २ विस्फार्य च महाचापं हेमपृष्ठं दुरासदम् । संरम्भात् स वसुश्रेष्ठस्त्यक्त्वा प्राणानयुध्यत ॥ ३ ॥ स सायकमयैर्जालैर्धरो दैत्यरथं प्रति । भानुमद्भिः शिलाधौतैर्भानोः प्राच्छादयत् प्रभाम् ॥ ४ ॥ ततः प्रहस्य नमुचिर्धरस्य च शिलाशितान् । अकृन्तत् सायकान् तीक्ष्णान् भीमवेगान् दुरासदान् ॥ ५० ॥ महातेजा महाबाहुर्महा-

---

तदनन्तर बलाकसे ध्रुव नामक वसु देवता हार गया और उसके डरसे अपने रथको त्याग कर पूर्वकी ओर मुख करके भाग गया ॥७९॥८०॥ चौअनवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५४ ॥ छ

वैशम्पायनजीने कहा कि-तहाँ पर क्रोधमें भरेहुए नमुचिका और महात्मा धरका फिर महादारुण युद्ध होने लगा ॥ १ ॥ क्रोधमें भरेहुए महाभुज महाधनुर्धर और अरिदमन वे दोनों नेत्रों से आग उगलतेहुएसे एक दूसरेको देखने लगे ॥ २ ॥ तदनन्तर वसुओंमें श्रेष्ठ धर संभ्रमके कारण अपने प्राणोंका मोह छोड़ सुवर्णकी पीठ वाले दुरासद महाचापको तान कर युद्ध करने लगा ॥ ३ ॥ धर नामक वसुने शिला पर घिस चमकीले बनाए हुए किरणवाले बाणोंका जाल पूर कर दैत्यके रथकी ओर सूर्य की प्रभाका जाना रोक दिया ॥४॥ तदनन्तर नमुचि हँसा और उसने भयंकर वेग वाले प्रदीप्त बाणोंको छोड़कर धरके शिला

वेगो महारथः । विव्याधातिबलो दैत्यो नवभिर्निशितैः शरैः ६
स तोत्रैरिव मातङ्गो वार्यमाणः पतत्रिभिः॥ अभ्यधावच्च संक्रुद्धो
नमुचिर्वसुसत्तमः ॥ ७ ॥ तमापतन्तं वेगेन संरंभान्नमुचिं रणे ।
दैत्यः प्रत्यसरद्देवं मत्तो मत्तमिव द्विपम् ॥ ८ ॥ ततः प्राध्माप-
यच्छंखं भेरीशतनिनादितम् । विक्षोभ्य तद्बलं हर्षादुद्धूतार्णव-
संप्रभम् ॥ ९ ॥ अश्वानृक्षसवर्णाभान् हंसवर्णैः सुवाजिभिः ।
मिश्रयन् समरे दैत्यो वसुं प्राच्छादयच्छरैः ॥ १० ॥ समाश्लिष्टा-
वथान्योन्यं वसुदानवयो रथौ । दृष्ट्वा प्राकम्पयत मुहुस्त्रिदशानां
महद्बलम् ॥ ११ ॥ क्रोधसंरम्भताम्राक्षौ प्रेक्षमाणौ मुहुर्मुहुः ।
गर्जन्ताविव शार्दूलौ प्रभिन्नाविव वारणौ ॥ १२ ॥ महामेघोपमं

पर तेज किये हुए बाणोंको काट डाला ॥५॥ फिर महातेजस्वी महाभुज महावेगवान् महारथी अतिबली दैत्य नमुचिने नौ तीक्ष्ण बाणोंसे धरको घायल किया ॥ ६ ॥ अंकुशोंसे पीड़ित होते हुएँ हस्तीकी समान बाणोंसे पीड़ित होता हुआ वसुसत्तम धर क्रोध में भर कर नमुचिके ऊपर दौड़ा ॥ ७ ॥ क्रोधमें भरकर वेगसे झपटते हुए धर देवताके सामने, दानव इस प्रकार झपटा, जिस प्रकार मदमत्त हाथी मदमत्त हाथीके ऊपर झपटता है ॥ ८ ॥ तदनन्तर उसने सैंकड़ों भेरियोंसे गुञ्जारते हुए समुद्रकी समान प्रकटहुए उस सेनादलमें हर्षपूर्वक शंखको बजाकर उसको क्षुब्ध कर दिया ॥ ९ ॥ फिर वह दानव रीछके वर्णकी समान वर्ण वाले घोड़ोंको वसुके हंसकी समान वर्ण वाले घोड़ोंसे सटा कर वसु पर बाण बरसाने लगा ॥१०। तदनन्तर वसु और दानवके रथोंको आपसमें फिर सटे हुए देख कर देवताओंकी बड़ी भारी सेनाको बारम्बार फुरहरी आने लगी ॥ ११ ॥ क्रोधसे और संरंभसे ताँबेकी समान लाल नेत्र वाले वे दोनों परस्पर देखते हुए ऐसे प्रतीत होते थे, मानो दो शेर दहाड़ रहे हों अथवा

तौतुणप्रासादाशोभनं नयोः । रथाश्ववरसम्बाधं मत्तवारणसंकु-
लम् ॥ १३ ॥ समाजमिव तं दृष्ट्वा प्रेक्षमाणा महारथाः । आशं-
सन्तो जयन्ताभ्यां योधा नैकसंश्रयाः ॥ १४ ॥ तयोः प्रेक्षयन्त
संरम्भं सन्निकृष्टं महास्त्रयोः । सिद्धगन्धर्वमुनयो देवदानवयो-
स्तदा ॥ १५ ॥ तौ च्छादयन्तावन्योन्यं समरे निशितैः शरैः ।
शरजालावृतं व्योम चक्रतुश्च महाबलौ ॥ १६ ॥ तावन्योन्यं
जिघांसन्तौ शरैस्तीक्ष्णैर्महारथौ । मेघाणीवतमावास्तां दृष्टिमन्तौ-
विवाबुदौ ॥ १७ ॥ सुवर्णविकृतान बाणान् प्रमुञ्चन्तावरिन्दमौ ।
भास्कराभं तदाकाशमुल्काभिरिव चक्रतुः ॥ १८ ॥ तयोः शराः
प्रकाशंते देवदानवयोस्तदा । पंक्त्यः शरदमत्तानां सारसानामिवां-
बरे ॥ १९ ॥ त्रिदशाश्वगजानां हि शरीरैर्गतजीवितैः । क्षणेन

दो मदमत्त हाथी चिंघाड़ रहे हों ॥ १२ ॥ महामेघकी समान
आकार वाले, रथ अश्व तथा मदमत्त हाथियोंसे गछे हुए, उन
दोनोंके सेनादलमें पहुँच कर महारथी उस युद्धको समाजकी
समान देखने लगे और एकका आश्रित नहीं किन्तु देवता और
असुरोंके आश्रित वे महारथी उनसे जय जय कहने लगे। १३।१४।
सिद्ध गन्धर्व और मुनि उन अस्त्रवेत्ता देव दानवोंके पास आने
पर उनके क्रोधको देखने लगे १५ उन दोनों महाबलियोंने समरमें
परस्पर पर तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा करके आकाशको बाणोंके जाल
से आदिया ॥१६॥ एक दूसरेको बाणोंसे मारना चाहने वाले
वे दोनों महारथी बरसीले मेघोंकी समान अतिदर्शनीय हो
गए १७ उन दोनों अरिदमनोंने सुवर्णके बने हुए बाणोंको
छोड़ कर, उन उल्काकी समान बाणोंसे आकाशको सूर्यकी
समान आभा वाला बना दिया । १८ । उन देव दानवोंके बाण
शरद् ऋतुमें मत्त होकर आकाशमें घूमने वाले सारसोंकी लगार
की समान मालूम होते थे १९ तदनन्तर क्षण भरमें ही देवताओं

संवृता भूमिर्मेघैरिव नभस्तलम् ॥ २० ॥ ततः सुधारं ज्वलितं सूर्यमण्डलसन्निभम् । धराय वसवेमुक्तं चक्रं नमुचिना रणे । पतता तेन चक्रेण धरस्य स्यन्दनोत्तमः ॥२१॥ सध्वजः सायुधः साश्वो दग्धोर्ककिरणप्रभः । स त्यक्त्वा स्यन्दनं देवः प्रदीप्तं चक्रतेजसा ॥ २२ ॥ भयात्तस्यासुरेन्द्रस्य गतः स्वगृहमुत्तमम् । पराजित्य सुरं दैत्यो नमुचिर्बलगर्वितः ॥ २३ ॥ प्रयातः स्वेन सैन्येन भूयः सुरचमूं प्रति । यौ तौ मयश्च त्वष्टा च देवदैत्येषु विश्रुतौ ॥ २४॥ प्रवरौ विश्वकर्माणौ मायाशतविशारदौ । घोरस्तयोः संप्रहारः प्रावर्तत सुदारुणः ॥ २५ ॥ अन्योन्यस्पर्द्धिनोस्तत्र चिरात् प्रभृति संयुगे । त्वष्टा तु निशितैर्बाणैर्दैत्यं तु बलदर्पितम् ॥ २६ ॥ पराक्रान्तं पराक्रम्य विव्याध त्रिशतैः शरैः । मयस्तु प्रतिविव्याध त्वष्टारं निशितैः शरैः ॥ २७ ॥ सुघातैः

के हाथी और घोड़ोंकी लोथोंसे भूमि इस प्रकार ढक गई जिस प्रकार मेघोंसे आकाश आच्छन्न होजाता है २० तदनन्तर नमुचि ने रणमें सुन्दर धार वाला, दमकताहुआ सूर्यमण्डलकी समान आभा वाला चक्र धर नामक वसुके ऊपर फैंका, उस चक्रने गिर कर धरके ध्वजा आयुध और अश्व-सहित सूर्यकी किरणकी समान प्रभा वाले उत्तम रथको जलाना आरम्भ कर दिया, तब वह दानव चक्रसे जलते हुए उस रथको त्याग कर असुरेन्द्र के भयसे अपने उत्तम घरको भाग गया देवताओंकी सेनाका पराजय करके बलगर्वित नमुचि अपनी सेनाको लेकर फिर देवसेना पर दौड़ा तथा देवता और दानवोंमें त्वष्टा और मय नामक जो दो विश्वकर्मा हैं, उन सैंकड़ों माया करनेमें चतुर विश्वकर्माओं का दारुण युद्ध होने लगा २१-२५ परस्पर स्पर्धा करने वाले उन दोनोंका युद्ध कुछ समय चला, कि-त्वष्टाने पराक्रम करके तीक्ष्ण बाणोंसे बलदर्पित पराक्रमी दानवके तीन सौ बाण

सुप्रसन्नाग्रैः शातकुम्भविभूषितैः । ननाद दितिजश्रेष्ठो हतस्त्वष्टुः शरैर्मयः ॥ २८ ॥ संक्रुद्धो दैत्यसैन्यस्य विचिन्वन्निव जीवितम् । शक्तिं कनकवैदूर्यचित्रदण्डां महाप्रभाम् ॥ २९ ॥ देवो गृहीत्वा समरे दैत्येन्द्रं समपातयत् । भीमां सर्वायसीं दृष्ट्वा पुरन्दर इवाशनिः ॥३०॥ तां त्वष्टृभुजनिर्मुक्तामर्कवैश्वानरप्रभाम् । मयश्चिच्छेद तीक्ष्णाग्रैस्तूर्णं सप्तभिराशुगैः ॥३१॥ ततः क्षुण्वन्निव प्राणांस्त्वष्टुः कोपान्महासुरः । प्रेषयामास संरब्धः शरान् बर्हिणवाससः ॥ ३२ ॥ चिच्छेद बाणांस्त्वष्टा तान् ज्वलितैर्नतपर्वभिः । दैत्यस्य सुमहावेगैः सुवर्णविकृतैः शरैः ॥ ३३ ॥ तौ वृषाविव नर्दन्तौ बलिनौ वासितान्तरे । शार्दूलाविव चान्योन्यं

मारे, तब तो मयने भी अच्छी प्रकार चोट पहुँचाने वाले, प्रसन्न अग्रभाग वाले सुवर्णसे विभूषित बाण त्वष्टाके मारे फिर त्वष्टा के बाणोंसे घायल हुआ दितिका श्रेष्ठ वंशज गर्जने लगा२६-२८ तब तो वह दैत्यसेनापर कुपित होगया और उसके जीवनको ढूँढनेसा लगा, फिर उस देवने सुवर्ण और वैदूर्यमणिके विचित्र दण्डे वाली महाप्रभामयी गदाको समरमें दैत्येन्द्रके ऊपर फैंका, जिसप्रकार पुरन्दर-इन्द्र बज्रको फैंकता है तिसी प्रकार उस ठोस लोहेकी बनीहुई सूर्य तथा अग्निकी समान प्रभा वाली त्वष्टाकी भुजाओंसे छूटी हुई भयंकर गदाको देखकर मय दानव ने शीघ्रतापूर्वक तीक्ष्ण अग्रभाग वाले सात बाण मार कर उस गदाका चूरा२ कर डाला२९-३१तदनन्तर वह महादानव मानो त्वष्टाके प्राणोंको छीलता हो इस प्रकार क्रोधमें भर कर मोरपंख लगे हुए बाणोंको त्वष्टा पर फैंकने लगा ३२ तब त्वष्टा दानवके बाणोंको महावेगवान् सुवर्णमय नमीहुई गाँठ वाले प्रकाशित बाणोंसे काटने लगा ३३ वे दोनों ऋतुमती गौके लिए लड़ने वाले दो साँडोंकी समान गरजने लगे और शार्दूलोंकी

प्रसक्तावभिजघ्नतुः ॥ ३४ ॥ अन्योन्यं प्रतियुध्यन्तावन्योन्यवध-
काङ्क्षिणौ । अन्योन्यमभिवीक्षन्तौ क्रुद्धावाशीविषाविव ॥ ३५ ॥
महागजाविवासाद्य विषाणाग्रैः परस्परम् । शरैः पूर्णायतोत्सृष्टै-
रन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥ ३६ ॥ ततः सुविपुलां दीप्तां मयो रुक्मा-
ङ्गदो गदाम् । त्वष्टुरि प्राहिणोत् क्रुद्धः सर्वप्राणहरां रणे ॥ ३७ ॥
तया जघानातिरथस्त्वष्टुरुत्तमवाजिनः । गदया दानवः क्रुद्धो
वज्रेणेन्द्र इवाचलान् ॥ ३८ ॥ ततः क्रुद्धो महादैत्यः क्षुराभ्या-
मथ संयुगे। पुनर्द्वाभ्यां क्षुराभ्यां तु निशिताभ्यां महारणे३९ध्वजं
त्वष्टुरथं छित्त्वा सूतं निन्ये यमक्षयम् । महाबलान् महावेगान्
सदश्वान् गदयाहनत् ॥ ४० ॥ दृष्ट्वा त्वष्टा हतं सूतमश्वांश्च
विनिपातितान् । हताश्वं रथमुत्सृज्य सूतं च पतितं भुवि ॥४१॥

समान परस्पर भिड़ कर युद्ध करने लगे ३४ वे परस्परका वध
चाहने वाले परस्पर लड़ने लगे और क्रोधमें भरेहुए सर्पोंकी
समान परस्पर देखने लगे ३५ जिसप्रकार महागज दाँतोंके अग्र-
भागसे परस्परमें प्रहार करते हैं, इस प्रकार वे धनुषोंको कान
तक खेंच कर बाणोंका प्रहार करने लगे ३६ तदनन्तर सुवर्णके
बाजूबन्दको धारण करने वाले मय दानवने क्रोधमें भर कर
सब प्राणियोंके प्राणोंका हरण करने वाली दमकती हुई बड़ी
भारी गदा रणमें त्वष्टाके ऊपर फैंकी ३७ और जिसप्रकार क्रोध
में भराहुआ इन्द्र वज्रसे पर्वतोंको मारता है, इसी प्रकार उस
दानवने अतिरथी त्वष्टाके श्रेष्ठ घोड़ोंको उस गदासे मार
डाला ३८ फिर क्रोधमें भरेहुए महादैत्यने युद्धमें दो छुरोंसे
और दो तीखे बाणोंसे त्वष्टाके रथकी ध्वजाको काट डाला और
सारथीको यमसदनको भेज दिया, फिर वह महाबली और महा-
वेगवान् घोड़ोंको गदासे फिर कुचलने लगा ॥ ३९ ॥ ४० ॥
त्वष्टा सूतको मरा हुआ देख कर और अश्वोंको भी मराहुआ

विस्फारयन् महाचापं स्थितो भूमाविवाचलः । हताश्वसूतं विरथं दृष्ट्वा रिपुमवस्थितम् ॥ ४२ ॥ जयश्रिया सेव्यमानो दीप्यमान इवाचलः । मयः कालान्तकप्रख्यश्चापपाणिरदृश्यत ॥ ४३ ॥ आददहेवसैन्यानि दावाग्निरिव काननम् । त्वष्टुः सोऽक्षिपताउग्रान्नाराचांस्तिग्मतेजसः ॥ ४४ ॥ चतुर्दशशिलाधौतान् सायकान् विविधाकृतीन् । ते पपुस्तस्य सैन्यस्य शोणितं रुक्मभूषणाः ४५ आशीविषा इव क्रुद्धा भुजङ्गाः कालचोदिताः । ते क्षितिं समपद्यन्त शोभन्ते रुधिरोक्षिताः ॥ ४६ ॥ अर्धप्रविष्टाः संरब्धा बिलानीव महोरगाः॥ तं प्रत्यविध्यत्त्वष्टा तु जाम्बूनदविभूषितैः४७ चतुर्दशभिरत्युग्रैर्नाराचैरभिदारयन् । ते तस्य दैत्यस्य भुजं सव्यं निर्भिद्य पत्रिणः ॥ ४८ ॥ विदार्य विविशुर्भूमिं पन्नगा इव वेगिताः । ते प्रकाशन्त नाराचाः प्रविशन्तो वसुन्धराम् ४९

देख कर, मरे हुए घोड़ों वाले रथको और भूमिमें पड़े हुए सारथिको छोड कर धनुषको तानकर पृथ्वीमें पहाड़की समान अटल खड़ा होगया, मरे हुए घोड़ों वाले, रथरहित तथा सूतरहित शत्रुको डटाहुआ देखकर, जयलक्ष्मीसे शोभायमान, वह जिस प्रकार दावाग्नि वनको जलाता है, उसीप्रकार देवसेनाको जलाने लगा और त्वष्टाके ऊपर, शिला पर घिस कर तेज किये हुए अनेक प्रकारकी आकृतिवाले उग्र बाणोंको फेंका, विषका आशीर्वाद देनेवाले क्रोधमें भरेहुए कालसे प्रेरित सर्पोंकी समान सुवर्णसे विभूषित वे बाण त्वष्टाकी सेनाके रक्तको पीने लगे रुधिरसे सन कर पृथ्वीमें घुसते हुए वे बाण बिलमें आधे घुसे हुए क्रुद्ध सर्पोंकी समान प्रतीत होते थे, तब त्वष्टा उसको विदीर्ण करता हुआ सुवर्णसे विभूषित अतिउग्र चौदह बाणोंसे उस दानव को बींधनेलगा। वे बाण उस दानवकी दाहिनी भुजाको फोड़कर वेगवान् सर्पोंकी समान पृथ्वीको विदीर्ण करतेहुए पृथ्वीमें घुस

अस्तं गच्छन्तमादित्यं प्रविशन्त इवांशवः । मयस्त्रिभिरथानर्च्छे-त्त्वष्टारन्तु पतत्रिभिः ॥ ५० ॥ सुपर्णवेगैर्विकृतैर्ज्वलद्भिः प्राण-नाशनैः । त्वष्टाथ मयनिर्मुक्तैः सायकैरर्दितः प्रभुः ॥ ५१ ॥ अप-यातो रणं हित्वा व्रीडयाभिसमन्वितः । तं तत्र हतसूतं च भुजङ्गमिव निर्विषम् ॥ ५२ ॥ त्वष्टारं विरथं कृत्वा मुदितः स तु दानवः । विस्फार्यमाणो रुचिरश्चापं रुक्माङ्गदं दृढम् ५३ रणे व्यतिष्ठद्दैत्येन्द्रो ज्वलन्निव हुताशनः । पुलोमा तु बल-श्लाघी दृप्तो दानवसत्तमः ॥५४॥ रथे श्वेतहयेनेह सार्द्धं युध्यति वायुना । सर्वेषामेव भूतानां यः प्राणः कथ्यते द्विजैः ॥ ५५ ॥ बलिना कालकल्पेन वायुना सह संगतः । पुलोम्नस्तत्र पवनः श्रुत्वा ज्यातलनिःस्वनम् ॥ ५६ ॥ नामृष्यत यथा मत्तो गजः

गए, पृथ्वीमें घुसते हुए ये बाण अस्त होते हुए सूर्यमें प्रविष्ट होने वाली किरणोंकी समान शोभा पाने लगे, तदनन्तर मय दानवने प्राणोंका नाश करनेवाले गरुड़की समान वेगवान् और दमकते हुए तीन बाण त्वष्टाके शुभो दिये, तब मय दानवके छोड़े हुए बाणोंसे पीड़ा पाताहुआ वह रणको छोड़कर भागगया और उसे बड़ी लज्जा आई, सारथीके मारेजानेसे विषरहित सर्पकी समान त्वष्टाको रथहीन करके वह दानव प्रसन्न होगया, और सुवर्ण के छल्ले पड़े हुए अपने दृढ़ और मनोहर चापको तानकर धक-धकातेहुए अग्निकी समान रणमें खड़ा होगया, प्रशंसनीय वीर्य-वाला और गर्वीला दानवसत्तम पुलोमा भी श्वेत घोड़ोंसे जुते हुए रथमें बैठकर वायुके साथ युद्ध करनेलगा, ब्राह्मण जिसको सब प्राणियोंका प्राण कहते हैं उस कालकी समान बलवान् वायु के साथ पुलोमा डटगया उस युद्धमें पुलोमाके धनुषकी ध्वनिको सुनकर, जिसप्रकार खूनी हाथी दूसरे हाथीकी चिंघाड़को नहीं सहता है इसी प्रकार उससे वह ध्वनि सही नहीं गई, दानवके

प्रतिगजस्वनम् । दैत्यचापच्युतैर्बाणैः प्राच्छाद्यत दिशो दश ५७
रश्मिजालैरिवार्कस्य विततं सांबरञ्जगत् । स ताम्रनयनः क्रुद्धः
श्वसन्निव महोरगः ॥ ५८ ॥ ततो दैत्यशतैर्वायू रश्मिवानिव
भास्करः । दैत्यचापभुजोत्सृष्टाः शरा बर्हिणवाससः ॥ ५९ ॥
रुक्मपुंखाः प्रकाशन्त हंसाः श्रेणीकृता इव। चापध्वजपताकाभ्यः
शस्त्रा दीप्तमुखाश्च्युताः ॥ ६०॥ प्राप्तवंतश्च दृश्यन्ते दैत्यस्या-
पततः शराः । एवं सुतीक्ष्णान् खचराञ्छलभानिव पावके ६१
सुवर्णविकृतान् चित्रान् मुमोच दितिजः शरान् । तमन्तकमिव
क्रुद्धमापतन्तं स मारुतः ॥ ६२ ॥ त्यक्त्वा प्राणानतिक्रम्य
विव्याध नवभिः शरैः । तस्य वेगमसंहार्यं दृष्ट्वा वायुः सना-
तनः ॥ ६३ ॥ उत्तमं जवमास्थाय व्यधमत् सायकव्रजान् । तेजो
विधम्य बलवाञ्छरजालानि मारुतः ॥ ६४ ॥ विव्याध दैत्यं

धनुषसे छूटेहुए बाणोंसे दशों दिशाएँ इसप्रकार छागईं जिस प्रकार सूर्यकी किरणोंसे आकाशसहित सारा जगत् छाजाता है लाल लाल नेत्रवाला और कोपमें भरेहुए सर्पकी समान फुंकार छोड़ता हुआ वायु सहस्रों दानवोंसे घिरनेपर किरणोंवाले सूर्य की समान दमकने लगा, दैत्यके धनुष और भुजाओंसे छूटे हुए सुवर्णकी पूछड़ीवाले मोरपत्र लगेहुए बाण हंसोंकी लंघार की समान शोभा पाने लगे; दानवके आते हुए दीप्त मुख वाले बाण धनुष ध्वजा और पताकाओंसे छूटते हुएसे दीखते थे, दितिका पुत्र इस प्रकार वायुके ऊपर सुवर्ण के बनेहुए अतितीक्ष्ण आकाशचारी बाणोंको टीड्रियोंकी समान बरसाने लगा, यमराजकी समान क्रोधमें भरकर आतेहुए दैत्यको मारुतने अपने प्राणोंका मोह छोड़कर नौ बाणोंसे घायल कर डाला, सनातन वायु उसके नष्ट न होने योग्य वेगको देखकर बड़े वेगके साथ बाणोंको काटने लगा, बलवान् पवनने बाणोंके तेज

त्रिंशत्या विशिखैर्नतपर्वभिः । मरुद्गणानां प्रवरा दश दिव्या महौजसः ॥ ६५ ॥ साधु साध्विति वेगेन सिंहनादं प्रचक्रिरे । तस्मिन् समुत्थिते शब्दे तुमुले लोमहर्षणे ॥ ६६ ॥ अभ्यधावंत दितिजाः पौलोमाः क्रोधमूर्च्छिताः । ते समासाद्य पवनं समावृण्वन् शरोत्तमैः ॥ ६७ ॥ पर्वतं वारिधाराभिः प्रावृषीव बलाहकाः । ते पीडयन्तः पवनं क्रुद्धाः सप्त महारथाः ॥ ६८ ॥ प्रजासंहरणे घोरा सोमं सप्तग्रहा इव । ततो दक्षिणमक्षोभ्यं नानारत्नविभूषितम् ॥ ६९ ॥ करं गजकराकारमुद्यम्य युधि मारुतः । तेषां मूर्द्धसु दैत्यानां पातयामास वीर्यवान् ॥७०॥ निहता वायुवेगेन तेन सप्त महारथाः । त्यक्त्वा प्राणान् पुलोमा तु विव्याध नवभिः शरैः ॥ ७१ ॥ मदर्पितमसंहार्यं दृष्ट्वा वायुं सनातनम् । असञ्जिन्त्यं सुरौघांस्तान् ज्वलितांश्च पुलोमतः ॥ ७२ ॥ तेषां

को दूरकरके नमी हुई गाँठ वाले बीस बाण दानवके मारे तब मरुतोंमें श्रेष्ठ महातेजस्वी दश मरुत साधु२ कहकर वेगसे सिंहनाद करने लगे, रोंगटोंको खड़े करनेवाले उस शब्दके होनेपर दितिके पुत्र क्रोधमें भरकर दौड़े,वे पवनके पास पहुँचकर उत्तम बाणोंसे पवनको इसप्रकार ढकने लगे जिसप्रकार वर्षाऋतुमें मेघ जलधाराओंसे पर्वतको ढकता है, प्रजाके संहारके समय सात घोर ग्रह जिसप्रकार चन्द्रमाको पीड़ित करने लगते हैं इसीप्रकार क्रोधमें भरे हुए वे सात महारथी पवनको पीड़ित करने लगे, तदनन्तर वीर्यवान् मारुत अनेक रत्नोंसे विभूषित अक्षोभ्य हाथी की सूँडकी समान आकारवाले अपने हाथको उठाकर दानवोंके मस्तकों पर महारकरने लगा ॥ ४४–७० ॥ उस वायुवेगसे सात महारथी नष्ट होगए तब पुलोमाने प्राणोंका मोह छोड़कर दर्पमें भरेहुए असंहार्य सनातन वायुके नौ बाण मारे, पुलोमाके द्वारा देवताओंके समूहोंको जलताहुआ देखकर पवनने महात्मा दानवों

विदार्य तेजांसि दानवानां महात्मनाम् । शोणितक्लिन्नमुकुटा गैरिकाक्ता इवाद्रयः ॥ ७३ ॥ ते भिन्नवर्मास्थिभुजाः पतन्तो भांति दानवाः । मातङ्गयूथसंभग्ना पुष्पिता इव पादपाः ॥७४॥ तेषां विदारितैर्देहैर्दानवानां महात्मनाम् । ततः प्रावर्तत नदी रौद्ररूपा भयावहा ॥७५॥ प्रस्रवन्ती रणे रक्तं भीरूणां भयवर्द्धिनी। देवैर्दैत्यगणैश्चैव रुधिरौघपरिप्लुता । रणभूमिरभूद्रौद्रा तत्र तत्र सहस्रशः ॥७६॥ संभूता गतसत्वैश्च यक्षराक्षसखेचरैः । सानुगैः सपताकैश्च सोपासंगरथध्वजैः ॥ ७७ ॥ शीर्णकुम्भैस्तथा नागैर्घण्टाभिस्तु विभूषितैः। सुवर्णपुंखैर्ज्वलितैर्नाराचैस्तिग्मतेजसैः ७८ देवदानवनिर्मुक्तैः सविषैरुरगैरिव । प्रासतोमरनाराचैः शक्तिखड्गपरश्वधैः ॥ ७९ ॥ सुवर्णविकृतैश्चापि गदामुशलपट्टिशैः। कनकांगदकेयूरैर्मणिभिश्च सकुण्डलैः ॥ ८० ॥ तनुत्रैः सतल-

तेजको विदीर्ण करदिया उससमय रक्तसे भीगे हुए मुकुटवाले दानव गेरूसे भीगे हुए पर्वतोंकी समान दिखाई देते थे ७१-७३ टूटे हुए हड्डी कवच और भुजाओंवाले दानव पतित होने पर हस्तियोंके झुण्डसे कुचलेहुए पुष्पित वृक्षोंकी समान प्रतीत होते थे ॥ ७४ ॥ महात्मा दानवोंके विदीर्ण देहोंसे भयभीत करने वाली रौद्र नदी बह चली ॥ ७५ ॥ वह भयवर्धिनी नदी रणमें रक्तको बहाने लगी देवता और दानवोंके रुधिरसे भरीहुई रणभूमि जहाँतहाँ भयंकर दीखती थी ॥ ७६ ॥ उसमें मरे हुए यक्ष राक्षस आकाशचारी प्राणी उनकी ध्वजा और रथ भी उसमें पड़े हुए थे ॥ ७७ ॥ फूटे हुए कलशो नाग विभूषित, घण्टे सुवर्ण की पूँछड़ीवाले दमकते हुए अतितीखे बाण उसमें पड़े हुए थे ७८ देवता और दानवोंके छोड़ेहुए प्रास तोमर नाराच शक्ति खड्ग परशे सुवर्ण लगी हुई गदा मूसल पटे सुवर्णके बाजूबन्द कुण्डलवाली मणि कवच मोजे शोभनीय हार और निष्क शस्त्र और

त्रैश्च हारैर्निष्कैश्च शोभनैः । हतैश्च दितिजैस्तत्र शस्त्रस्यन्दनवर्जितैः ॥ ८१ ॥ पतितैरपि विद्धैश्च शतशोऽथ सहस्रशः । निपातितध्वजरथो हतवाजिरथद्विपः ॥ ८२ ॥ विमर्दो देवदैत्यानां सदृशः कर्मणा बभौ । अथ दैत्यसहस्रेण पौलोमेन महासुरः ८३ संवृतः पवनः श्रीमान् गदामुशलपाणिना ॥ ८४ ॥ ते जघ्नुः शतसाहस्राः पवनं दानवोत्तमाः । तैर्वध्यमानः स बभौ समन्तादर्पितैः शरैः ॥ ८५ ॥ हत्वाष्टौ तत्र योधानां शतानि पवनः प्रभुः । कृत्वा मार्गं सुरश्रेष्ठो ननाद सुमहारथः ॥ ८६ ॥ अद्यापि च सुविस्तीर्णः पन्था संदृश्यते दिवि । नाम्ना वायुरथो नाम सिद्धाः पश्यन्ति तं दिवि ॥ ८७ ॥ वैशम्पायन उवाच । हयग्रीवस्तु दितिजः पूषाणं प्रतिवीर्यवान् । ननाद सुमहानादः सिंहनादं महारथः ॥ ८८ ॥ विस्फार्य सुमहच्चापं हेमजालविभूषितम् ।

रथरहित मरेहुए दानव तथा गिरेहुए और घायलहुए सैंकड़ों और सहस्रों दानवोंसे वह नदी उत्पन्नहुई थी जिसमें ध्वजाएँ और रथ गिरे हुए पड़े थे तथा हाथी रथ और घोड़े नष्ट होगए थे ऐसा देव दैत्योंका संहार अपने कर्मके अनुरूप शोभा पाने लगा तदनन्तर महादेव पवनको गदा और मूसलको हाथमें धारण करने वाले पौलोम नामक हजारों दानवोंने घेर लिया ॥ ७६-८४ ॥ सैंकड़ों और सहस्रों श्रेष्ठ दानव पवनको मारने लगे इनसे पिटता हुआ और चारों ओर लगेहुए बाणोंवाला पवन शोभा पाने लगा ८५ महारथी देवताओंमें श्रेष्ठ प्रभु पवन आठ सौ योधाओंको मारकर मार्ग बनाकर गर्जने लगा ८६ आजकल भी वह वायुरथ नामसे प्रसिद्ध बड़ा विस्तृतमार्ग आकाशमें दिखाई देता है उस मार्गको सिद्ध लोग देखते हैं ॥८७॥ वैशम्पायनजीने कहा; कि- बड़ा भारी नाद करनेवाला महारथी वीर्यवान् दितिपुत्र हयग्रीव पूषाके सामने गरजने लगा ८८ सुवर्णके तारोंसे विभूषित

पूषाणं दितिजोऽपश्यत् क्रुद्धो घोरेण चक्षुषा ॥८९॥ भुजाभ्या-
माददानस्य सन्दधानस्य वै शरान् । मुञ्चतः कर्षतो वापि
ददृशुस्तत्र नान्तरम् ॥ ९० ॥ अग्निचक्रोपमं दीप्तं मण्डलीकृत-
कार्मुकम् । तदासीद्दानवेन्द्रस्य सव्यदक्षिणमस्यतः ॥ ९१ ॥
रुक्मपुंखैस्ततस्तस्य चापमुक्तैः शितैः शरैः । प्राच्छाद्यन्त शिला-
धौतैर्दिशः सूर्यस्य च प्रभाः ॥९२॥ ततः कनकपुंखानां शराणां
नतपर्वणाम् ॥९३॥ नभश्चराणां नभसि दृश्यन्ते बहवो व्रजाः ।
गिरिकूटनिभाच्चापात् प्रभवन्तः शरोत्तमाः ॥ ९४ ॥ श्रेणीभूताः
प्रकाशन्ते यांतः श्येना इवाम्बरे । गृध्रपत्राञ्छिलाधौतान् कार्त-
स्वरविभूषितान् ॥९५॥ महावेगान् प्रशस्ताग्रान् मुमोच दितिजः
शरान् । ततश्चापबलोद्भूताः शातकुंभविभूषिताः ॥ ९६ ॥ देहे

बड़े भारी चापको तानकर दितिपुत्र कोपमें भरकर भयंकर नेत्रसे पूषाकी ओर देखने लगा८९वह अपनी भुजाओंसे बाणोंको कब उठाता है कब धनुष पर चढ़ाता है कब धनुषको खेंचता है और बाणोंको छोड़ता है, यह किसीको दिखाई नहीं दिया९०दाईं बाईं ओर बाण छोडते हुए उस दानवका गोल बनाहुआ धनुष अग्नि के चक्र (बरेंटी)की समान दमकने लगा॥९१॥ उसके चापसे छूटे हुए सुवर्णकी पूँछडीवाले और शिला पर तेज किएहुए बाणोंसे दिशायें और सूर्यकी प्रभा ढक गई९२ पर्वतके शिखरकी समान धनुषमेंसे छूटते हुए उसके सुवर्णकी पूछडीवाले और नमी हुई गाठ वाले बाणोंके बहुतसे झुण्ड दिखाई देने लगे ॥ ९२॥९३॥ उनकी लंधार आकाशमें फिरतीहुई बाजपक्षियोंकी लंधारकी समान दिखाई देती थी, दितिका पुत्र गीधके पर लगे हुए, शिला पर घिस कर श्वेत किये हुए सुवर्णविभूषित महावेगवान् बाणोंको छोडने लगा, तदनन्तर चापके बलसे उडते हुए सुवर्ण से विभूषित बाण पूषाके पास आकर उसके शरीरमें घुसने लगे

समवकीर्यन्त पूष्णः सन्निहिताः शराः। ते व्योम्नि रुक्मविकृताः संप्रकाशन्त सर्वशः ॥ ९७ ॥ खद्योता इव घर्मान्ते खे द्रवन्तः समन्ततः। शिलाधौता प्रसन्नाग्राः पूषाणं सिषिचुः शराः ९८ पर्वतं वारिधाराभिर्यथा प्रावृषि तोयदाः। ततः प्रच्छादयामास पूषाणं शरवृष्टिभिः ॥ ९९ ॥ पर्वतं वारिधाराभिश्छादयन्निव तोयदः। ततः स पूष्णो देवस्य बलं वीर्यं पराक्रमम् ॥ १०० ॥ व्यवसायञ्च सत्वं च पश्यन्ति त्रिदशाद्भुतम्। तां समुद्रादिवो-द्भूतां शरवृष्टिं समुत्थिताम् ॥ १ ॥ नाचिन्तयत्तदा पूषा दैत्यं चाभ्यद्रवद्रणे। हेमपृष्ठं महानादं पूष्ण आसीन्महाधनुः ॥ २ ॥ विकृतं मण्डलीभूतं शक्राशनिनिभापरम्। ततः शराः प्रादुरासन् पूरयन्त इवांबरम् ॥ ३ ॥ सुवर्णपुंखाः पूष्णस्ते प्रभवन्तः शरा-सनात्। मालेव रुक्मपुंखानां वितता व्योम्नि पत्रिणाम् ॥४॥

वर्षा ऋतुमें चारों ओर घूमनेवाले पटबीजनोंकी समान वे सुवर्णके बने हुए बाण आकाशमें सर्वत्र दमकने लगे, वर्षाकालमें जलधारासे पर्वतको भिगोने वाले मेघोंकी समान शिला पर घिस कर तेज किये हुए बाण पूषाको सींचने लगे, इसप्रकार उसने जलधाराओंसे पर्वतको छाने वाले मेघकी समान पूषाको बाण-वृष्टिसे ढक दिया, उस समय देवताओंने पूषाके अद्भुत बलवीर्य पराक्रम सत्त्व और व्यवहारको देखा, फिर—समुद्रकी समान आती हुई शरवृष्टिका भी पूषाने कुछ विचार नहीं किया और रणमें दानवकी ओर दौड़ा, पूषाका सुवर्णकी पीठ वाला और महानाद करने वाला महाधनुष मण्डलाकार हुए दूसरे इन्द्र-धनुषकी समान दिखाई देता था, तदनन्तर आकाशको ढकते हुए बाण प्रकट होने लगे ॥ ९७–१०३ ॥ वे सुवर्णकी पूंछडी वाले बाण पूषाके धनुषसे प्रकट होरहे थे, आकाशमें सुवर्णकी पूँछडी वाले पक्षियोंकी फैली हुई मायाकी समान पूषाके धनुष

प्रादुरासीन्महाघोरा ह्यती पूषकार्मुकात् । ततो व्योम्नि विभक्तानि शरजालानि सर्वशः ॥ ५ ॥ आहतानि व्यशीर्यन्त शरैः सन्नतपर्वभिः । ततः कनकपुंखानां छिन्नानां कंकवाससाम् ६ पततां पात्यमानानां खमासीच्चावृतं रणे । पूषा प्रापूरयद्बाणै-र्हयग्रीवं शिलाशितैः ॥७॥ नामांकैरर्कसदृशैर्दिव्यहेमपरिष्कृतैः । ततोऽप्यसृजदुग्राणि शरजालानि दानवः ॥ ८ ॥ अमर्षी बलवान् क्रुद्धो दिधक्षन्निव पावकः । पूष्णस्त्वाजौ ध्वजं चैव पताकां धनुरेव च ॥ ९ ॥ रश्मीन् योक्त्राणि चाश्वानां हयग्रीवो रणे-च्छिनत् । अथाप्यश्वान् पुनर्हत्वा चतुर्भिः सायकोत्तमैः ॥१०॥ सारथिं सुमहातेजा रथोपस्थादपातयत् । कृतस्तु विरथः पूषा हयग्रीवेण संयुगे ॥ ११ ॥ पूषा तस्य रथाभ्याशात् स ययौ तेन नौ जितः । गतः शक्ररथाभ्याशं मुक्तो मृत्युमुखादिव ॥ १२ ॥

जैसे बाणोंकी महाघोर माला प्रकट होगई, तदनन्तर आकाशमें फैले हुए बाणोंके जाल नमी हुई गाँठ वाले बाणोंसे कट कर चूर्ण २ होने लगे, तदनन्तर सुवर्णकी पूँछ वाले तथा कंकपक्षी के पर वाले कट कर गिरते हुए और प्रहार करते हुए बाणोंसे रणका आकाश भर गया, पूषा शिला पर घिस कर तेज किए अपने नामसे अंकित, सूर्यकी समान वर्ण वाले और दिव्य सुवर्णसे परिष्कृत बाणोंको हयग्रीव पर बरसाने लगा, तदनन्तर अमर्षी बलवान् दानव भस्म करने वाले अग्निकी समान क्रोधमें भरकर भयंकर बाण जालोंको रचने लगा, इस प्रकार बाण वर्षा करके हयग्रीवने रणमें पूषाकी ध्वजा पताका धनुष घोडों की रास जोत आदि सबको काट डाला; फिर उस महातेजस्वी ने चार उत्तम बाणोंसे घोडोंको मार कर रथकी बैठक परसे सारथीको भी गिरा दिया, हयग्रीवने संग्राममें पूषाको जब इस प्रकार रथहीन कर दिया तब पूषा उससे हार कर उसके रथके

तत्राद्भुतमिदं भूयो युद्धं वर्तत दारुणम् । कृतप्रतिकृतं घोरं शंब-
रस्य भगस्य च १३ सप्तकिष्कुपरीणाहं द्वादशारत्निकायुकम् ।
चापं चाशनिनिर्घोषं दृढज्यं भारसाधनम् । विक्षिपन्नक्षसदृशान्
व्यसृजत् सायकान् बहून् ॥ १४ ॥ क्रोधसंरक्तनयनः शंबरः
सर्वयोगवित् । तेन वित्रास्यमानानि देवसैन्यानि सर्वशः ॥१५॥
समकम्पत भीतानि सिन्धोरिव महोर्मयः । तमापतन्तं संप्रेक्ष्य
विरूपाक्षं विभीषणम् ॥ १६ ॥ भगः प्रस्फुरमाणौष्ठस्त्वरमाणो
व्यदारयत् । ततो भगो महेष्वासो दिव्यं विस्फारयन् धनुः १७
अवाकिरन् दैत्यगणाञ्छरजालेन छादयत् । तमभ्यागाद्भगो दैत्यं
तूर्णमस्यन्तमन्तिकात् ॥ १८ ॥ मातङ्गमिव मातङ्गो वृषं प्रतिवृषो
यथा । तौ प्रगृह्य महावेगौ धनुषी भारसाधने ॥ १९ ॥ प्रच्छाद-

पाससे भाग गया और मृत्युके मुखसे छूट कर इन्द्रके पास
पहुँच गया ॥ १०४-११२ ॥ उधर शम्बर और भग देवताओंके
आपने सामने भयंकर और अद्भुत युद्ध होने लगा ॥ १३ ॥
क्रोधसे लाल नेत्रवाला और सब योगोंको जानने वाला शम्बर
दानव सात किष्कु (परिणाह) मुटाई वाले और बारह अरत्नि
वाले तथा अशनिकी समान शब्द करने वाले दृढ प्रत्यंचा
वाले और भारको सहन करने वाले धनुषसे अक्षकी समान
मोटे बहुतसे बाणोंको बरसाने लगा, उसके त्रास देनेसे
भयभीत हुई देवसेनाएँ समुद्रकी लहरोंकी समान हिलने लगीं,
उस डरावने नेत्रवाले भयंकर दानवको आता हुआ देख कर
भग क्रोधसे होटोंको फडका कर त्वराके साथ दौडा और महा-
धनुर्धर भग दिव्य धनुषको तान कर दानवोंके ऊपर बाणोंकी
वर्षा कर उनको बाणोंसे ढकने लगा और बाणोंको त्वरासे
छोडते हुए दानवके पास-हस्ती पर चढ़ने वाले हस्तीकी समान
और बैलके सामने जाने वाले बैलकी समान पहुँच गया, वे

येतामन्योन्यं तक्षमाणौ रणे शरैः । तयोः सुतुमुलं युद्धमासीद्‌ घोरं महारणे ॥ १२० ॥ भगशम्बरयोर्भीमममेयं महात्मनोः । अथ घूर्णयतोस्तूर्णं शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ २१ ॥ व्यदारयेता मन्योन्यं कार्ष्णौर्निर्भिद्य चर्मणी । तौ तु विकृतसर्वांगौ रुधिरेण समुक्षितौ ॥ २२ ॥ संप्रेक्ष्यमाणौ रथिनावुभौ परमदुर्मदौ । तक्षमाणौ सितैर्बाणैर्न वीक्षितुमशक्नुताम् २३ अथ विव्याध समरे त्वरमाणो सुरो भगम् । नाराचैः क्रोधताम्राक्षः कालान्तकयमोपमः ॥ २४ ॥ गरुत्मानिव चाकाशे पोथयानो महोरगम् । नाराचान्यपतन् देहे तूर्णं शम्बरचोदिताः ॥ २५ ॥ तानन्तरिक्षे नाराचान् भगश्चिच्छेद पत्रिभिः । ज्वलन्तमचलप्रख्यं वैश्वानरसमप्रभम् ॥ २६ ॥ ततो भगं चतुःषष्ट्या विव्याधासुरसत्तमः ।

दोनों महावेगवान् भारको सहने वाले धनुषोंको ग्रहण करके एक दूसरेको बाणोंसे काट कर बाणोंसे ढकने लगे, इस प्रकार महारणमें अप्रमेय महात्मा भग और शम्बरका महाघोर युद्ध हुआ था, तदनन्तर वह ढालोंको तोड़ कर नमीहुई गाँठवाले बाणोंको कान तक खेंच उन बाणोंसे एक दूसरेको घायल करने लगे, विकार भरे हुए सर्वांग वाले रुधिरसे सनेहुए वे दोनों परमदुर्मद रथी एक दूसरेके ताक २ कर काले बाण मारने लगे, फिर वह एक दूसरेको देख भी न सके ॥ १२३ ॥ तदनन्तर असुरके नेत्र क्रोधके कारण काल यम और यमकी समान लाल लाल होगए और वह त्वराके साथ भग देवताको बींधने लगा २४ जिस प्रकार आकाशमें गरुड़जी बड़े भारी सर्पको दबोच लेते हैं इसी प्रकार शम्बरके फेंके हुए बाण भगके शरीरमें शीघ्रतासे घुसने लगे ॥ २५॥ तब भग अन्तरिक्षमें ही उन बाणोंको अपने बाणोंसे काटने लगा, फिर असुरसत्तम शम्बरने अग्निकी समान प्रभा वाले पर्वतकी समान शरीरवाले दमकते हुए भग देवताको

शिलीमुखैर्महावेगैर्जाम्बूनदविभूषितैः ॥ २७ ॥ तदा तत् सुचिरं
कालं युद्धं सममिवाभवत् । शम्बरस्य च मायाभिर्नादृश्यत
ततोम्बरम् ॥२८॥ दोर्भ्यां चिक्षिपतश्चापं रणे विष्टभ्य तिष्ठतः ।
श्रूयते धनुषः शब्दो विस्फूर्जितमिवाशनेः ॥ २९ ॥ स भगस्य
हयान् हत्वा सारथिं च महाहवे । अभ्यवर्षच्छरैरेनं पर्जन्य इव
वृष्टिमान् ॥ १३० ॥ न तस्यासीदनिर्भिन्नं गात्रे ह्यंगुलमन्तरम् ।
भगदेवस्य दैत्येन शम्बरेणास्त्रघातिना ॥३१॥ दैत्यस्य चाद्भुतं
दिव्यमस्त्रमस्त्रेण धारयन्। मायायुद्धेन मायावी शम्बरोऽस्त्रमयोऽ-
भवत् ॥३२॥ अनश्यपद्भगं दैत्यो मायाभिर्लाघवेन च । भगस्तस्य
रथं साश्वं शरवर्षैरवाकिरत् ॥ ३३ ॥ सहस्रमायो द्युतिमान् देव-
सेनां निषूदयन् । अदृश्यत शरैश्छन्नः शम्बरः शतशो रणे ३४

सुवर्णसे विभूषित महावेगवान् चौंसठ बाणोंसे बींधडाला२६।२७
उस समय बहुत समय तक सम युद्ध हुआ फिर शंबरकी
मायाओंसे आकाशका दीखना बन्द होगया रणमें धनुषको तान
कर खड़े हुए और भुजाओंसे बाणोंको फैंकते हुए शम्बरके
धनुषका शब्द वज्रके कड़कनेकी समान सुनाई आता था ।१२८।
शम्बरने महायुद्धमें भग देवताके घोडे और सारथिको मारकर
जलवाले मेघकी समान सौ बाण बरसाए ।१३०। अस्त्र मारने
वाले शम्बर दानवके द्वारा प्रहार होने पर भग देवताके शरीरमें
दो अंगुलका स्थानभी बाणोंके बिना छिदा न रहा ॥ १३१ ॥
दानवोंके अद्भुत और दिव्य अस्त्रोंको धारण करने वाला मायावी
शम्बर मायायुद्ध करके अस्त्रमय बनगया ॥ १३२ ॥ दैत्य माया
से और फुर्तीसे भग देवताको मोहमें डालने लगा तब भग देवता
ने उसके घोड़े और रथको बाणोंकी बौछार करके ढक दिया३३
देवसेनाको पीड़ित करता हुआ कान्तिमान् और सहस्रों मायाओं
को धारण करने वाला शम्बर सैंकड़ों जगह बाणोंसे ढका हुआ

अदृश्यन् पतितो भूमौ गतचेता इवासुरः । अथ स्म युध्यते भूयः शतधा शैलसन्निभः ॥ ३५ ॥ दिशा गजेन्द्रमारूढो दृश्यते स पुनर्बली । प्रादेशमात्रश्च पुनः पुनर्भवति शैलवत् ॥३६॥ महा-मेघ इव श्रीमान् तिर्यगूर्ध्वं च सोऽभवत् । पुनः कृत्वा विरूपाणि विकृतानि च सर्वशः ॥ ३७॥ सर्वां भीषयते सेनां देवानां भीम-दर्शनः । ते भीताः प्रपलायन्ते सिंहं दृष्ट्वा मृगा यथा । ततः सोऽन्यं वरं देहं कृत्वा भाशुतरं पुनः ॥ ३८ ॥ गच्छत्यूर्ध्वगतिं घोरो दिशः शब्देन पूरयन् । नभस्तलगतश्चापि वर्षते वासवो यथा ॥ ३६ ॥ संवर्तकाम्बुदमख्यः पूरयन् पृथिवीतलम् । संव-र्तकोनलश्चैव भूत्वा भीमपराक्रमः ॥ १४० ॥ शतवर्मा शत-शिखो ददाह च पुनः सुरान् । मुहूर्ताच्च महाशैलः शतशीर्षः

दीखने लगा ॥ १३४ ॥ वह असुर कभी पृथ्वी पर मरा हुआ दिखाई देने लगता था और कभी पर्वतकी समान सैकड़ों शरीर धारण कर लड़ने लगता था ॥१३५॥ फिर वह बलवान् दिग्गज पर बैठा दीखा, कभी वह अंगूठेकी बराबर होजाता था और कभी पर्वतकी समान होजाता था ॥ १३६ ॥ वह श्रीमान् कभी महामेघकी समान बनजाता था कभी तिरछा और कभी ऊँचा बनजाता था वह भयंकर दिखाव वाला राक्षस फिर अनेक प्रकार के डरावने रूप बनाकर सारी देवसेनाको डराने लगा, तब जिस प्रकार सिंहको देख कर हिरन भाग जाते हैं इसीप्रकार देवता उसको देखकर भागने लगे तदनन्तर उसने फिर बड़ाभारी ऊँचा देह धारण करलिया ॥ १३७ ॥ १३८ ॥ और शब्दसे दिशाओं को गुंजारताहुआ ऊपरको चढ़ा और वह भयंकर राक्षस आकाश में जाकर इन्द्रकी समान वर्षा बरसाने लगा फिर संवर्तक मेघकी समान बनकर पृथ्वीको जलसे ढकने लगा फिर वह भयंकर पराक्रम करनेवाला संवर्तक नामक वायु बनगया ॥१३९-१४०॥

शतोदरः ॥ ४१ ॥ अदृश्यत दिवस्तम्भः शतशृङ्ग इवाचलः ।
येऽन्ये दैत्याश्च साध्याश्च ये च विश्वे च देवताः ॥ ४२ ॥
क्षिपन्त्यस्त्राणि दिव्यानि तानि सोग्रसतासुरः । युध्यमानश्च
समरे सरथः सोसुरोत्तमः ॥४३॥ गन्धर्वनगराकारस्तत्रैवान्तरधी-
यत । ते भीताः समुदीक्षन्त त्रिदशा भीमविक्रमाः ४४ सहस्रमायं
समरे शम्बरं चित्रयोधिनम् । स भग्नो भयसंत्रस्तो दानवेन्द्रस्य
संयुगे ॥ ४५ ॥ रथं त्यक्त्वा महाभागो महेन्द्रं शरणं गतः ।
पराजित्य तु तं देवं दानवेन्द्रः प्रतापवान् ॥ ४६ ॥ गतो यत्र
महातेजा जातवेदा महाप्रभः । स वह्निं वाग्भिरुग्राभिः क्रुद्धस्तर्ज-
यते बली । मयाम्येण हि ते मृत्युरित्युक्त्वान्तरधीयत ॥ ४७ ॥

फिर सौ ज्वालावाला बनकर देवताओंको जलाने लगा वह मुहूर्त भरमें ही बड़ाभारी पर्वत बनजाता था और मुहूर्त भरमें ही सौ शिर वाला और सौ पेटवाला बनजाता था ॥४१॥ और क्षण भरमें सौ शिखरवाले पर्वतकी समान आकाशका स्तंभ बनकर दीखने लगता था, दैत्य साध्यी और विश्वे देवताओंके छोड़े हुए दिव्य अस्त्रोंको वह असुर ग्रसने लगा, गन्धर्वनगरकी समान आकार वाला वह श्रेष्ठ असुर युद्ध करता हुआ ही रथसहित अन्तर्धान होगया, भयंकर पराक्रम करनेवाले देवता उस समय डरकर सहस्रों माया करनेवाले तथा विचित्रतासे युद्ध करनेवाले शम्बरको आँख फाड़ २ कर देखने लगे (परन्तु वह नहीं दीखा) और दानवेंद्रके भयसे डराहुआ महाभाग भग तो अपने रथको त्यागकर महेन्द्रकी शरणमें पहुँचगया, उस देवका पराजय करके प्रतापवान् दानवेन्द्र तहाँको चला जहाँ पर महातेजस्वी और महाप्रभावान् अग्नि खड़ा था, फिर क्रोधमें भराहुआ बलवान् शम्बर कठोर बचन कह कर अग्निको धमकाने लगा और अब मैं तुम्हें मारे देता हूँ यह कहकर अन्तर्धान होगया ४२-४७वैशम्पायन

वैशम्पायन उवाच । एतस्मिन्नन्तरे श्रुत्वा ब्राह्मणेन्द्रो महाबलः । जघान सोमः शीतांशो दानवानां चमूं रणे ॥ ४८ ॥ कैलासशिखराकारो द्युतिमद्भिर्गणैर्वृतः । अवधीद्दानवान् दृष्ट्वा दण्डपाणिरिवान्तकः ॥ ४९ ॥ पोथयद्रथवृन्दानि वाजिवृन्दानि वै प्रभुः । दैत्येषु विचरंश्चीणान् युगान्ते कालवद्बली ॥ १५० ॥ सोमर्षाद्रथजालानि उरुवेगेन चन्द्रमाः । ददाह दानवान् सर्वान् दावाग्निरिव चोदितः ॥ ५१ ॥ मृद्नन्रथेभ्यो रथिनो गजेभ्यो गजयोधिनः । सादिनश्चाश्वपृष्ठेभ्यो भूमौ चापि पदातिनः ॥ ५२ ॥ शीतेन व्यधमत् सर्वान् वायुर्वृक्षानिवौजसा । चन्द्रमाः सुमहातेजा दानवानां महाचमूम् ॥ ५३ ॥ तदस्त्रगणवज्रस्य प्रदिग्धं

जीने कहा, कि—इसी समय पालेके अस्त्रको धारण करने वाले ब्राह्मणोंके राजा महाबली चन्द्रमाने रणमें दानवोंकी सेनाका विनाश करना आरम्भ कर दिया ॥१४८॥ कैलासके शिखरकी समान आकार वाला चन्द्रमा कान्तिमान् सेवकोंको साथमें लेकर दण्ड-पाणि यमराजकी समान दानवों को मारने लगा ॥ १४९ ॥ वह प्रभु रथोंकी टोलियों का और घोड़ोंकी टोलियोंका पटरा करने लगे और प्रलयके समय विचरण करनेवाले कालकी समान दैत्योंके बीचमें विचरण करने लगे ॥ १५० ॥ फिर चन्द्रमा क्रोधमें भरकर बड़े भारी वेगसे रथोंको नष्ट करने लगे और जलती हुई दावाग्निकी समान बन कर सब दानवोंको भस्म करने लगे ॥१५१॥ वह रथोंसे रथियों को मसलने लगे हाथियोंसे हाथीसवारोंको मारने लगे घोड़ोंकी काठियोंसे घुड़सवारोंको मारनेलगे और भूमिमें पैदलोंको मसलने लगे ॥ १५२ ॥ महातेजस्वी चन्द्रमा जिसप्रकार वायु वेगमें भर कर वृक्षोंको नष्ट करता है इसी प्रकार दानवोंकी बड़ीभारी सेनाको पालेसे नष्ट करने लगे ॥१५३॥ शत्रुओंके रक्तसे सना

शस्त्रशोणितैः । पिनाकमिव रुद्रस्य क्रुद्धस्याभिघ्नतः पशून् ।५४। युगान्तकोपमः श्रीमान् दैत्येषु व्यचरद्बली । आचार्य महतीं सेनां माद्रवन्तीं पुनः पुनः ॥ ५५ ॥ चन्द्रं मृत्युमिवायातं दृष्ट्वा योधा विसिस्मयुः । यतो यतः प्रक्षिपति शिशिरास्त्रं तमोनुदः५६ ततस्ततो व्यशीर्यन्त दैत्यसैन्यानि संयुगे । व्यदारयत् स सैन्यानि स्वबलेनाभिसंवृतः ॥ ५७ ॥ ग्रसमानमनीकानि व्यादितास्यमिवान्तकम् । तं तथा भीमकर्माणं गृहीतास्त्रं महाहवे ५८ दृष्ट्वा शशांकमायान्तं दैत्याभं चन्द्रभास्करौ । तालमात्राणि चापानि कर्षमाणौ महाबलौ ॥ ५९ ॥ छादयेतां शरैश्चन्द्रं वृष्टिमन्ताविवाम्बुदौ । अथ विस्फार्यमाणानां कार्मुकाणां सुरासुरैः६० अभवत् सुमहाशब्दो दिशः सन्नादयन्निव । विनदद्भिर्महानागै-

हुआ उनका अस्त्र क्रोधमें भरकर पशुओंका संहार करनेवाले रुद्रके पिनाक धनुषकी समान शोभा पाने लगा ॥१५४॥ प्रलय-कालके यमराजकी समान बलवान् बनकर बली चन्द्रमा भागती हुई बड़ीभारी सेनामें विचरण करने लगे १५५ योधा चन्द्रमाको मृत्युकी समान आताहुआ देखकर विस्मित होनेलगे अन्धकार का नाश करनेवाले चन्द्रमा शिशिरास्त्रको जिधर जिधर फेंकते थे उधर उधर युद्धमें दानवोंकी सेनाएँ बिखर जाती थीं इसप्रकार चन्द्रमा अपनी सेनाको साथमें लेकर देवसेनाओंको विदीर्ण करने लगे ॥ १५६ ॥ १५७ ॥ मुखफड़े दानवकी समान आभा वाले कालकी समान सेनाओंको ग्रसते हुए महायुद्धमें अस्त्रको पकड़कर भयंकर कर्म करनेवाले चन्द्रमाको आता हुआ देखकर चन्द्र और भास्कर नामवाले महाबली दानव ताड़की समान अपने चापोंको खेंचकर बरसीले मेघोंकी समान चन्द्रमाके ऊपर बाणों की बौछार करने लगे, तदनन्तर देवता और असुरोंके द्वारा खींचे जाते हुए धनुषोंका महाशब्द दिशाओंको गुंजारने लगा,

हेषमाणैश्च वाजिभिः ॥ ६१ ॥ भेरीशंखनिनादैश्च तुमुलं सर्व-
तोऽभवत् । युयुत्सवस्ते संरब्धा जयगृध्रा यशस्विनः ॥ ६२ ॥
अन्योन्यमभिगर्जन्तो गोष्ठेष्विव महावृषाः । शिरसां पात्यमा-
नानां समरे निशितैः शरैः ॥ ६३ ॥ अश्मवृष्टिरिवाकाशे ह्यभवत्
सेनयोस्तयोः । कुण्डलोष्णीषधारीणि जातरूपस्रजांसि च ६४
पतितानि स्म दृश्यन्ते शिरांसि रणमूर्धनि । विशिखैर्मथितैर्गात्रै-
र्बाहुभिश्च सकार्मुकैः ॥ ६५ ॥ सहस्राभरणैश्चान्यैर्विच्छिन्नै
रुधिरोक्षितैः । कवचैरावृतैर्गात्रैरुरुभिश्चन्दनोक्षितैः ॥ ६६ ॥
मुखैश्च चन्द्रसंकाशैस्तप्तकुण्डलभूषणैः । गजवाजिमनुष्याणां
सर्वगात्रैः समन्ततः ॥ ६७ ॥ आसीत् सर्वा समाकीर्णा मुहूर्तेन
वसुन्धरा । चापमेघाश्च विपुलाः शस्त्रविद्युत्प्रकाशिनः ॥६८॥

चिंघाड़ते हुए बड़े २ हाथियोंसे हींसते हुए घोड़ोंसे और भेरी
तथा शंखके निनादसे चारों ओर गड़बड़ी फैलरही थी, जय
चाहनेवाले और क्रोधमें भरेहुए वे यशस्वी युद्ध करनेकी इच्छासे
गोठोंमें गरजते हुए बडे २ साँडोंकी समान परस्परमें गर्जना करने
लगे, जिसप्रकार आकाशसे ओले बरसते हैं इसीप्रकार तीक्ष्ण
बाणोंसे कटकर दोनों सेनाओंके शिर गिरने लगे रणके मुहाने
पर कुण्डल तथा पगड़ीको धारण करनेवाले और सुवर्णकी माला
वाले शिर पड़े हुए दीखते थे, क्षण भरमें ही पृथ्वी बाण मसले
हुए शरीर धनुषसहित भुजा रुधिरमें सने हुए और कटे हुए
सहस्रों आभूषण चन्दन लगे हुए कवचोंसे शोभायमान शरीर
तपे हुए कुण्डलके भूषणोंवाले चन्द्रमाकी समान मुख हाथी घोड़े
तथा मनुष्योंके शरीरोंसे चारों ओरसे ढकगई तहाँपर शस्त्ररूपी
बिजलीसे प्रकाश फैलानेवाले चापरूपी मेघ थे और सवारियों
का शब्द बिजलियोंके कड़कनेकी समान होता था॥१५८-१६८॥

स संप्रहारस्तुमुलः कटुकः शोणितोदकः । प्रावर्तत सुराणां च दानवानां च संयुगे ॥ १६६ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे पंचपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

वैशम्पायन उवाच । तस्मिन् महाहवे रौद्रे तुमुले लोमहर्षणे । ववर्षुः शरवर्षाणि संरब्धा देवदानवाः ॥ १ ॥ व्याक्रोशन्त गजास्तत्र शरघातप्रपीडिताः । अश्वाश्च पर्यधावन्त हतारोहा दिशो दश ॥ २ ॥ उत्पत्य निपतन्त्यन्ये शरवर्षप्रपीडिताः । देवानां दानवानां च गजाश्वरथिनां रणे ॥ ३ ॥ समरे तत्र शूराणामन्योन्यमभिधावताम् । धनुषां तलशब्देन न प्राज्ञायत किंचन ॥ ४ ॥ शरशक्तिगदाभिस्ते खड्गैश्चामिततेजसः । निजघ्नुर्महतीं सेनामन्योऽन्यस्य परन्तप ॥ ५ ॥ बाहूनामुत्तमांगानां कार्मुकाणां च संयुगे । राशयस्तत्र दृश्यन्ते देवदैत्यसमागमे ॥६॥

इसप्रकार देवता और दानवोंके युद्धमें रक्तरूपी जलवाला तुमुल संहार चलने लगा ॥ १६६ ॥ पचपनवाँ अध्याय समाप्त ॥५५॥

वैशम्पायनजीने कहा, कि-रोंगटोंको खड़े करने वाले उस महायुद्धमें देवता और दानव क्रोधमें भरकर बाणोंकी वर्षा करने लगे १ तहाँ पर हाथी बाणोंसे पीडित होकर भागने लगे और सवारोंके मारे जानेसे घोड़े भी दशों दिशाओंमेंको दौड़ने लगे२ तहाँ पर बहुतसे प्राणी बाणोंकी मारसे पीडित होकर उछल २ कर गिर पडते थे देवता तथा दानवोंके हाथियोंके घोडोंके रथियोंके तथा शूरोंके इधर उधर दौड़ने पर और धनुषोंकी प्रत्यञ्चाओंका शब्द होनेसे कुछ भी प्रतीत नहीं होता था ३ ।४ हे परन्तप ! वे अमिततेजस्वी परस्परकी बडी भारी सेनाओंको बाण शक्ति गदा और खड्गोंसे मारने लगे ॥ ५ ॥ उस देव दानवोंके समागममें भुजाओंके शिरोंके और धनुषोंके ढेरके ढेर

अश्वानां कुञ्जराणां च रथानां च वरूथिनाम् । नान्तं समभिगच्छन्ति निहतानां सुरासुरैः ॥ ७ ॥ गदाभिरसिभिः प्रासैर्भल्लैः सन्नतपर्वभिः । योधास्तत्राभ्यहन्यन्त हस्त्यश्वं चामितं बहु ॥८॥ प्रावर्तत नदी घोरा शोणितौघा तरङ्गिणी । तदा मध्ये तु सैन्यानां केशशैवलशाड्वला ॥९॥ हाहाकारो महाशब्दो योधानामभवत्तदा । दानवैर्हन्यमानानां त्रिदशानां महारणे ॥ १० ॥ वैशम्पायन उवाच । तेषां तदभवद्युद्धं देवानामसुरैः सह । विभीषणं महारौद्रं विकृतं भीमदर्शनम् ॥ ११ ॥ विरोचनस्तु तत्रैव विश्वक्सेनं महाहवे । जघान रुधिराभासं साध्यं परमधन्विनम् ॥ १२ ॥ तमायान्तमभिप्रेक्ष्य विष्वक्सेनः सुरैर्वृतः । अमेयात्मा सुरश्रेष्ठः प्रत्यविध्यत् स्तनान्तरे ॥१३॥ साध्यस्य बाणाभिहतस्तोत्रार्दित इव द्विपः । विरोचनः प्रजज्वाल क्रोधेनाग्नि-

---

पड़े हुए दिखाई देते थे ॥ ६ ॥ देवता और दानवोंके नष्ट भ्रष्ट हुए हाथी घोड़े रथ और वरूथोंका पार दिखाई नहीं देता था।७।तहाँ पर गदाओंसे तलवारोंसे प्रासोंसे और नमी हुई गाँठवाले भल्लोंसे योधा तथा बहुतसे हाथी घोडे मारे जाने लगे८ तब सैनिकोंके बीचमें रक्तके ओघ और तरङ्गोंवाली केशरूपी सिवारवाली भयंकर नदी बह चली ॥ ९ ॥ तब राक्षसोंके द्वारा मारे जाते हुए देवताओंके योधाओंका रणमें हाहाकारसे भरा हुआ बड़ाभारी शब्द होने लगा ॥१०॥ वैशम्पायनजीने कहा, कि–इसप्रकार देवताओंका दानवोंके साथ भयंकर दीखने वाला महारौद्र और डरावना युद्ध होने लगा ॥११॥ उस महायुद्धमें विरोचनने रुधिरका भक्षण करनेवाले बडेभारी धनुषधारी साध्यको मारना चाहा ॥ १२ ॥ अप्रमेय आत्मावाले देवताओंमें श्रेष्ठ तथा देवताओंसे घिरे हुए विश्वक्सेनने उसको आता हुआ देखकर उसकी छातीमें प्रहार किया ॥ १३ ॥ साध्यके बाणसे

रिवाध्वरे १४ स कार्मुकविनिर्मुक्तैः शरैर्दानवसत्तमः । विष्वक्-
सेनो विभेदाजौदीप्तैः सप्तभिराशुगैः ॥१५॥ सोऽतिविद्धो बलवता
दानवेन सुरोत्तमः । मूर्च्छामभिजगामाशु ध्वजं चाप्याश्रयत्
प्रभुः ॥ १६ ॥ ततः स पुनराश्वस्य साध्यो युद्धे मनो दधे ।
विस्फार्य च महाचापं दैत्यमध्ये व्यवस्थितः ॥१७॥ विरोचनस्तु
बलवानभ्ययुध्यत सर्वशः । क्षोभयन् सुरसैन्यानि समन्तान्नि-
शितैः शरैः ॥ १८ ॥ ततस्तस्यासुरेन्द्रस्य युध्यमानस्य संयुगे ।
श्रूयते तुमुलः शब्दो जीमूतस्येव गर्जतः ॥ १९ ॥ जगर्ज च महा-
घोषो विनिघ्नन् देववाहिनीम् ॥ चण्डवेगाश्मवर्षी च सविद्युत्-
स्तनयित्नुमान् ॥ २० ॥ दिशो विद्रावयामास शरवर्षेण दानवः ।
सर्वसैन्यानि देवानामुद्यतास्त्रो महाहवे ॥ २१ ॥ ते प्राद्रवन्त

घायल होनेपर अंकुशसे पिटते हुए हाथीकी समान विरोचन
क्रोधमें भरगया और यज्ञमें प्रदीप्त होने वाले अग्निकी समान
तमतमा उठा दानवोंमें श्रेष्ठ विरोचनने विश्वक्सेनको अपने
धनुषसे सात तीक्ष्ण और शीघ्रगामी बाण छोड़कर घायल कर
दिया ॥ १५ ॥ बलवान् दानवके बहुत घायल करनेपर उस श्रेष्ठ
देवताको मूर्छा आगई उससमय वह ध्वजाके सहारेसे लगगया१६
कुछ समय विश्रामलेनेके उपरान्त साध्यने फिर युद्ध करनेका
विचारकिया और दानवोंके बीचमे बड़ेभारी धनुषको तानकर
खड़ा होगया ॥ १७ ॥ उधर बलवान् विरोचन भी चारों ओर
तीक्ष्ण बाण बरसाकर देवसेनाओंको क्षुब्ध करता हुआ युद्ध
करनेलगा ॥१८॥ युद्धमें संग्राम मचाते हुए असुरेन्द्र तुमुल शब्द
गर्जना करनेवाले मेघकी समान सुनाई आता था १९ बड़ाभारी
शब्द करनेवाला वह दानव देववाहिनीको नष्ट करके दहाड़ने
लगा, प्रचण्ड वेग वाला पत्थरोंकी वर्षा करनेवाला बिजली सा
कड़कने वाला वह दानव महायुद्धमें अस्त्रको उठाकर बाण वर्षा

छिन्नस्ता रथेभ्यो रथिनस्तदा। सादिनश्चाश्वपृष्ठेभ्यो भूमौ चापि पदातयः ॥ २२ ॥ श्रुत्वा कार्मुकनिर्घोषं विस्फूर्जितमिवाशनेः। सर्वसैन्यानि भीतानि विगलितान्यन्त सयुगे २३ विरोचनभयत्रस्ता रथेभ्यो रथिनस्तदा। पदातीनां ययुः संघा यत्र देवः शचीपतिः २४ विश्वक्सेनस्य साध्यस्य सर्वतः सुमहाबलः। पादे रक्षः-सहस्राणि निजघान चतुर्दश ॥ २५ ॥ अश्ववृन्देषु नागेषु रथानीकेषु चाभिभूः। पदातीनां च संघेषु विनिघ्नन् प्रत्यदृश्यत ॥ २६ ॥ वितत्य श्येनवत् पक्षौ सर्वतः स वरूथिनीम्। भित्त्वा छित्त्वा महाबाहुः शिरांस्याजौ ह्यकृन्तत ॥ २७ ॥ सादिनश्च पदाताश्च हतशेषा रथास्तथा। विश्वक्सेनेन सहिता विरोचनमथाद्रवन् २८ तेऽसिचर्मगदाशक्तिपरिघप्रासतोमरैः। तमेकमभ्यधावन्तं सिंह-

से देवताओंकी सेनाको दशों दिशाओंमें भगानेलगा २०। २१ उस समय डरेहुए रथी रथोंमें चढ़कर भागने लगे सवार घोड़ोंकी पीठ पर चढ़कर भागनेलगे और पैदल भूमिमें ही भागनेलगे २२ बिजलीके कड़कनेकी समान धनुषके घोषको सुनकर सब सेनाएँ डर कर सहम गईं ॥ २३ ॥ विरोचनके भयसे डरे हुए रथी रथों पर सवार होकर और पैदलोंके झुण्ड पैदल ही शचीपति इन्द्र को ओर चल दिये २४ महाबली राक्षसने विश्वक्सेन साध्यके चारों ओर घूम कर उसके चौदह हजार पादरक्षकोंको मार डाला २५ वह तिरस्कार करने वाला विरोचन घोड़ोंके झुण्डों में हाथियोंमें और रथसेनामें भी संहार करता हुआ दीख रहा था २६ बाजके पंखोंको फैलानेकी समान चारों ओर सेनाको खदेड़ कर वह महाभुज संग्राममें शिरोंको काटने लगा ॥२७॥ तब मरनेसे बचे हुए सवार पैदल और रथी विश्वक्सेनको साथ में लेकर विरोचनके ऊपरको दौड़े २८ वह ढाल तलवार गदा शक्ति परिघ प्रास और तोमरोंको लेकर अकेले विरोचनके ऊपर

नादं प्रचक्रिरे ॥ २९ ॥ ततः सोऽसिं समुद्यम्य जवमास्थाय दानवः । चकर्त रथिनामाजौ शिरांसि च धनूंषि च ॥ ३० ॥ रथनागाश्ववृन्देषु बलवानरिसूदनः । विरोचनश्चरन् मार्गान् प्रकारानेकविंशतिम् ॥ ३१ ॥ भ्रान्तमुद्भ्रान्तमाविद्धमाप्लुतं विप्लुतं युगम् । संपातं समुदीर्णं च दर्शयामास दानवः ॥ ३२ ॥ केचिद्वरासिना रुग्णा दानवेन महात्मना । विनेदुश्छिन्नवर्माणो निपेतुश्च गतासवः ॥ ३३ ॥ छिन्नपृष्ठा हतारोहा दानवेन महात्मना । विद्रुताः स्वान्यनीकानि जघ्नुस्त्रिदशवारणाः ॥ ३४ ॥ निपेतुरुर्व्यामाकाशे निकृत्ता दृढधन्विना । विविधास्तोमराश्चापा महामात्रशिरांसि च ॥ ३५ ॥ प्रतीपमाहरन्नागानश्वांश्च दृढविक्रमान् । आप्लुत्य रथिनः कांश्चित् परामृश्य महाबलः ३६

दौड़े और सिंहनाद करने लगे ॥ २९ ॥ तदनन्तर वह दानव तलवारको उठा वेगके साथ रथियोंके शिर और धनुषोंको काटने लगा ३० शत्रुओंको नष्ट करने वाले बलवान् विरोचनने रथ हाथी और घोड़ोंके झुण्डमें घूम कर इक्कीस पैंतरे किये ३१ उस दानवने भ्रान्त उद्भ्रान्त आविद्ध आप्लुत विप्लुत युग और सम्पात तथा समुदीर्ण नाम वाले पैंतरे भी दिखाये ॥ ३२ ॥ महात्मा दानवकी श्रेष्ठ तलवारसे कवच कट जानेके कारण घायल हुये बहुतसे देवता डकराकर प्राणहीन हो ढह पड़े ३३ महात्मा दानवने हाथियोंके सवारोंको मार डाला और हाथियों की पीठ परकी रस्सियोंको काट डाला तब वे देवताओंके हाथी भाग कर अपनी सेनाको ही मसलने लगे ॥ ३४ ॥ दृढ धनुर्धारी विरोचनके काटे हुए अनेक प्रकारके तोमर चाप और हाथीवानोंके शिर आकाशमें उछल कर पृथिवीमें गिरने लगे ३५ वह महाबली दृढ पराक्रम करने वाले हाथी और घोड़ोंको अपने पास घसीटने लगा और बहुतसे रथियोंको रथ परसे कूद पकड़

सूतान् चिच्छेद खड्गेन रथानपि च दानवः ॥ मुहुरुत्पततो दिक्षु धावतश्च यशस्विनः ॥ ३७ ॥ मार्गांश्चरति नौ चित्रान् विस्मयं-स्ततोऽसुरान् । निजघान पदा कांश्चिदाक्षिप्यान्यानपोथयत् ३८ खड्गेन चान्यांश्चिच्छेद नादेनान्यांश्च भीषयन् । ऊरुस्तंभगृहीताश्च निपतन्त्यपरे भुवि । अपरे दैत्यमालोक्य भयात् प्राणान-त्यजन् ॥ ३६ ॥ तस्मिंस्तथा वर्त्तमाने युद्धे महति दारुणे । रथौ-घगजपत्तीनां सुराणां च महाक्षये ॥ ४० ॥ कुजम्भो दानवश्रेष्ठो ह्यंशमादित्यमाहवे । योधयामास समरे वृषः प्रतिवृषं यथा ॥ ४१ ॥ जघानाचलसंकाशो मत्तवारणविक्रमः । स्फुरद्भिर्निशितैस्तीक्ष्णैः शरैर्बहुभिराशुगैः ॥ ४२ ॥ देवसैन्यसहस्राणि सरथानि महा-

कर खेंचने लगा ३६ उस दानवने वारम्बार उछलते हुये और दिशाओंमेंको दौडते हुए यशस्वी रथियोंको और सूतोंको तल-वारसे काट डाला ३७ फिर वह देवताओंको विस्मित करता हुआ विचित्र पैंतरे दिखाने लगा उसने कुछ योधाओंको पैरसे मसल डाला, और बहुतोंको घुमा कर दे पटका ॥ ३८ ॥ और बहुतसोंको, अपने नादसे डरा कर तलवारसे काट डाला उस समय बहुतसे व्यक्तियोंकी टाँगें स्तम्भित हो गईं और वे पृथ्वी पर गिर पड़े और उस दैत्यको देख कर बहुतोंने भयके कारण अपने प्राण छोड़ दिये ॥३६॥ जब इस प्रकार परमदारुण युद्ध होरहा था तथा देवताओंके रथ हाथी पैदलोंका घोर संहार होरहा था उस समय साँड जिस प्रकार साँडके ऊपरको चढ़ कर जाता है इसी प्रकार कुजम्भ नामक दानव आदित्य अंशके साथ युद्ध करने लगा ४० ॥ ४१ पर्वत की समान अचल औरमदमत्त हाथीकी समान पराक्रम करने-वाला कुजम्भ फड़कते हुए घिसे हुए बहुतसे तीक्ष्ण बाणोंसे देवसेनाका संहार करने लगा ४२ उस महायुद्धमें रथवाली हजारों

हते । तस्य बाणपथं प्राप्य नाभ्यवर्तन्त सर्वशः ॥ ४३ ॥ प्रणेदुः सर्वभूतानि बभूवुस्तिमिरा दिशः । देवानामजयः क्रूरः प्रत्यपद्यत दारुणः ॥४४॥ अंशस्तु दानवेन्द्रस्य जघानोत्तमविक्रमः । अनीकं दशसाहस्रं कुञ्जराणां तरस्विनाम् ॥ ४५ ॥ आपतन्तं गजानीकं कुजम्भो वीक्ष्य दानवः । गदापाणिरवारोहद्रथोपस्थादरिंदमः ४६ अद्रिसारमयीं गुर्वीं प्रगृह्य महतीं गदाम् । अभ्यद्रवद्गजानीकं व्यादितास्य इवान्तकः ॥ ४७ ॥ स गजान् गदया निघ्नन्व्यचरत् समरे बली । कुजम्भो दानवश्रेष्ठो गदापाणिर्बलाधिकः ४८ विशीर्णदन्तांश्च बहून् भिन्नकुम्भांश्च दारुणान् । अकरोद्दानवश्रेष्ठ उद्दिश्योद्दिश्य तान् बली ॥ ४९ ॥ विशीर्णदन्ता बहवो भिन्नकुम्भास्तथापरे । कुजम्भेनार्दिता नागा व्यद्रवन्त दिशो दश ॥ ५० ॥ कुजम्भस्य च पैठमानस्य दानवा घोरविक्रमाः ।

देवसेनायें उसके बाणमार्गमें आकर नष्ट होगई ४३ उस समय सब प्राणी डकराने लगे दिशायें अन्धकारसे ढक गई और देवताओंकी दारुण और क्रूर हार आरम्भ होगई ४४ उत्तम पराक्रम करने वाले अंशने दानवेन्द्रकी दश हजार हाथियोंकी बलवान् सेनाका संहार कर डाला ४५ गजसेनाको आती हुई देखकर कुजम्भ नामक अरिदमन दानव हाथमें गदा लेकर रथकी बैठक परसे कूद पड़ा ४६ वह लोहेकी बनीहुई भारी और बड़ी गदाको लेकर मुख फटे हुए कालकी समान बनकर हस्तिसेना पर दौड़ा ४७ अधिक बलवाला दानवश्रेष्ठ बलवान् कुजम्भ गदासे हाथियोंको मारताहुआ संग्राम विचरने लगा ॥ ४८ ॥ दानवोंमें श्रेष्ठ बलवान् कुजंभने ताक २ कर हाथियोंके दाँतोंको तोड़ दिया और उनके गण्डस्थलोंको फाड़ डाला ॥४९॥ तब दाँत टूटे हुए और गण्डस्थल फटे हुए हाथी कुजंभसे पीड़ापाकर दशों दिशाओंमेंको भागनेलगे ॥ ५० ॥ तथा भयंकर पराक्रम

नाराचैः विविधैस्तीक्ष्णैरपास्तगजयोधिनः ॥ ५१ ॥ क्षुरैः क्षुरप्रैर्भल्लैश्च पातैरञ्जलिकैः शितैः । चिच्छेद योत्तमांगानि कुजम्भो दानवोत्तमः ॥५२॥ शिरोभिः पपतद्भिस्तु गगनं प्रत्यपूर्यत । अश्मवृष्टिरिवाकाशे बाहुभिश्च सहांकुशैः ॥५३॥ हतोत्तमांगाः स्कन्धेषु गजानां गजयोधिनः । अदृश्यन्त महाराजं ताला विशिरसो यथा ॥ ५४ ॥ आपतन्तं महानागमंशस्यासुरसत्तमः । जघानैकेषुणा क्रुद्धस्ततः स विमुखोऽभवत् ॥ ५५ ॥ विगाह्यैवं गजानीकं कुजम्भो दानवोत्तमः । विनिघ्नन् प्रवरान् सैन्यान् गदया बलिनां वरः ॥५६॥ एकप्रहाराभिहतान् कुजम्भेन महागजान् । अपश्यन्त सुराः सर्वे पर्वतानिव पातितान् ॥ ५७ ॥ कुजम्भस्य च मार्गेषु विशीर्णास्ते महागजाः । वज्राहता इवेन्द्रेण

करनेवाले कुजम्भके हाथीसवारोंको हटानेवाले मंत्री भी अनेक प्रकारके तीक्ष्ण बाणोंसे हाथियोंका संहार करने लगे) ॥५१॥ और दानवश्रेष्ठ कुजंभ भी श्रेष्ठ क्षुर क्षुरप्र भल्ल पात और अंजलिक नामक बाणोंसे योधाओंके मस्तकोंको काटने लगा ५२ आकाशसे ओलोंके गिरने पर जिस प्रकार आकाश भराहुआ दीखता है इसी प्रकार अङ्कुशवाली भुजा और गिरते हुए शिरों से आकाश भर गया ५३ हे महाराज ! शिर कटने पर हाथियों पर बैठे हुए गजयोधा शिर कटे हुए तालके वृक्षोंकी समान दीखने लगे ५४ चढकर आते हुए अंशके महानागको क्रोधमें भरे हुए दानवोंमें श्रेष्ठ कुजम्भने एक बाण मारकर घायल कर दिया तब वह मुख फेर कर भाग चला ५५ इस प्रकार गजसेना को नष्ट कर दानवोंमें श्रेष्ठ और बलवानोंमें श्रेष्ठ कुजम्भ गदासे श्रेष्ठ २ सैनिकोंको मारने लगा ५६ देवताओंने देखा, कि-- कुजम्भने बड़े २ हाथियोंको एक ही प्रहारसे मार डाला और वह पर्वतोंकी समान गिर पड़े ५७ इन्द्रके द्वारा वज्रके तोडने पर

विशीर्णा इव पर्वताः ॥ ५८ ॥ अपश्यंस्त्रिदशाः सर्वे मूर्तिमंत-
मिवान्तकम् । गजास्तथा व्यदीर्यन्त सिंहस्येवेतरे मृगाः ॥५६॥
स बभौ तां गदां बिभ्रत्शोणिताङ्गदशोणितैः । ब्यादितास्येन
दंष्ट्रोग्रो रौद्ररूपो भयानकः ॥ ६० ॥ यथा हि भगवान् क्रुद्धः
प्रजानां संक्षये पुरा । विक्रीडमानो गदया रणमध्ये महासुरः ६१
गोपाल इव दण्डेन कालयन् स महागजान् । क्रुद्धं कालमिवा-
काले दण्डमुद्यम्य दानवम् ॥६२॥ अपश्यन्त सुराः सर्वे कुंजंभं
भीमविक्रमम् । हतारोहास्तु तत्रान्ये प्रभिन्ना वारणोत्तमाः ६३
ते हन्यमाना गदया बाणैश्च भृशविक्षताः । असहन्तः कुजं-
भस्य गदावेगं महाहवे ॥ ६४ ॥ स्वान्यनीकानि मृह्नन्तः माद्र-

फैले हुए पर्वतोंकी समान वे महागज कुजम्भके मारोंमें फँ हुए
पड़े थे ५८ देवताओंने उसको मूर्तिमान् कालकी समान देखा
और सिंहके सामनेसे जिस प्रकार मृग भाग जाते हैं इसी प्रकार
हाथी उसके सामनेसे भागने लगे ५६ वह रक्त और बाजूब द
रँगी हुई गदाको उठाकर शोभा पाने लगा और वह भयंकर
रूपवाला क्रोधमें भरा हुआ राक्षस मुखको फाड कर गरजने
लगा ६० वह महाअसुर रणके बीचमें लेकर गदा लेकर प्रजा-
संहारके समय क्रीडा करनेवाले रुद्रकी समान क्रीडा करनेलगा ६१
वह महादानव ग्वालिएकी समान दण्डसे हाथियोंको खदेडने
लगा; दण्डको उठाने वाले और क्रोधमें भरे हुए भयंकर परा-
क्रमी कुजम्भको देखकर देवताओंने समझा, कि यमराज असमय
में ही दण्डको उठा रहा है, जो मदमत्त हाथी सवारोंके मारेजाने
से तहाँ बाण और गदाओंसे घायल होकर महायुद्धमें कुजम्भके
महावेगको न सह सकनेके कारण मरने लगे ६२ ॥ ६४ और
अपनी सेनाओंको मसलते हुए भागने लगे, जिस प्रकार महा
वायु मेघोंके टुकड़े उड़ा देता है, इसी प्रकार वह काल और यम

न्त महागजाः । महावात इवाभ्राणि विधमन् गदया गजान् ।
अतिष्ठत् समरे दैत्यः कालः संवर्तको यथा ॥ ६५ ॥
इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कुजम्भोत्कर्ष-
वर्णनं नाम षट्पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥
वैशम्पायन उवाच । ततः सर्वाणि सैन्यानि देवराजस्य
शासनात् । अभ्यद्रवन्त दितिजान्नदन्तो भैरवान्रवान् ॥ १ ॥
तं बलौघमपर्यन्तं देवानां सुदुरासदम् । रथनागाश्वकलिलं
शंखदुन्दुभिनिःस्वनम् ॥ २ ॥ आपतन्तं सुदुष्पारं रजसा
सर्वतो वृतम् । सैन्यसागरमक्षोभ्यं वेलेव मकरालयम् ॥ ३ ॥
तदाश्चर्यमपश्यन्त अश्रद्धेयमिवाद्भुतम् । उदीर्णां पृतनां सर्वां
साश्वां सरथकुञ्जराम् ॥ ४ ॥ आचार्यः समरे तिष्ठन् कुजम्भ-
स्तरसा बली । सैन्यार्णवं देवानां गिरिर्मेरुरिवाचलः ॥ ५ ॥
कीर्णां कुजम्भस्तु गदया संन्यवारयत् । सा तथा वारिता सेना

की समान दानव गदासे हाथियोंका संहार करनेके लिए समर
में डट गया ॥ ६५ ॥ छप्पनवां अध्याय समाप्त ५६
वैशम्पायनजीने कहा, कि- तदनन्तर देवराजकी आज्ञा पाकर
सब सेनायें भयंकर शब्द करके राक्षसोंके ऊपर झपटीं ॥ १ ॥
वह देवताओंकी अपार और दुरासद सेना रथ नाग और घोडों
से भर रही थी, उसमें शंख और दुन्दुभि बज रहीं थीं २ उस
के चलते समय दुष्पार धूल चारों ओर छा रही थी, उस सैन्य-
सागरको जिस प्रकार किनारा समुद्रको रोकता है (तिस प्रकार
कुजम्भने रोक लिया) ३ प्राणियोंने इस अश्रद्धेय और अद्भुत
आश्चर्यको देखा, कि- हाथी घोडे और रथसहित उफनती हुई
सारी सेनाके सामने बलवान् आचार्य कुजम्भ खडा होगया,
देवसेनारूप समुद्रमें कुजंभ मेरुपर्वतकी समान अचल होकर खडा
होगया ४ ॥ ५ फिर कुजंभने गदासे सेनाको हटा दिया, कुजंभ

विह्वलाऽभून्निरुद्यमा ॥६॥ तस्मिंस्तथा वर्तमाने संप्रहारे सुदारुणे ।
पुलोमा तु बलवान् दानवो दानवाधिपः ॥ ७ ॥ देवसैन्यस्य
सर्वस्य धूमकेतुरिवोत्थितः । तमांस्यर्क इवापोहत् सुरसैन्यानि
संयुगे ॥ ८ ॥ सहस्ररश्मिप्रतिमो दानवस्य रथोत्तमः । शरैर्मेघ
इवावर्षद्देवानीकं प्रतापवान् ॥ ९ ॥ शरौघरश्मिभिर्दीप्तः प्रतप्तो
घोरविक्रमः । रौद्रः क्रूरो दुराधर्षो दुराप्रो ध्वजिनीमुखे ॥ १० ॥
युध्यते दैवतैः सार्धं ग्रसमान इव प्रभुः । उग्रोग्रुकग्रवदनः समारुह्य
महागजम् ॥ ११ ॥ सुराणामुत्तमाङ्गानि प्रचिनोति महाबलः ।
ग्रसन् दैवतसैन्यानि शरदंष्ट्रः प्रतापवान् ॥ १२ ॥ असिजिह्वश्चक्र-
हस्तश्चापव्यात्ताननोऽसुरः । परश्वधनखः श्रीमान् मृदङ्गापूरित-
ध्वनिः ॥ १३ ॥ तिष्ठते दानवश्रेष्ठः संयुगे व्याघ्रवद्बली । गौर्वी-

के हटाने पर देवसेना विह्वल होगई और उसने उद्योग करना छोड़ दिया ६ इस प्रकारकी घोर मारामार चलने पर दानवोंका राजा बलवान् दानव पुलोमा सब देवसेनाके सामने धूमकेतुकी समान खड़ा होगया, जिस प्रकार सूर्य अन्धकारको दूर करदेता है इसप्रकार उसने देवसेनाओंको खदेड़ना आरंभ करदिया ७ ८ सूर्यकी समान दानवका उत्तम और प्रतापवान रथ, मेघकी समान देवसेना पर बाणवर्षा करने लगा ९ वह भयंकर पराक्रमी दीप्त बाणरश्मियोंसे दिप रहा था, रौद्र क्रूर दुराधर्ष और दुराप प्रभु पुलोमा सेनाके मुहाने पर खड़ा होकर देवताओंको ग्रसता हुआसा उनसे युद्ध करनेलगा, उग्र बाण और उग्र मुखवाला वह महाबली राक्षस बड़े भारी हाथी पर सवार होकर देवताओंके शिरोंको काटने लगा, बाणरूपी डाढ़ वाला, तलवाररूपी जिह्वा वाला, चक्ररूपी हाथ वाला, परश्वधरूपी नख वाला और मृदङ्गका बजना रूपी ध्वनि वाला दानवश्रेष्ठ व्याघ्रकी समान बनकर युद्धमें देवसेनाओंको ग्रसने लगा और मुख फाड़ कर

घोषः स्तनयित्नुः पृषत्कः प्रथितो महान् ॥ १४ ॥ धनुर्विद्युद्रण-
ध्वजो महामेघ इवापरः । इत्यस्त्रसागरो घोरो बाहुग्राहो दुरा-
सदः ॥ १५ ॥ कार्मुकोर्मितरङ्गोघैर्बाणावर्तमहाह्रदः । गदासिम-
करो रौद्रो ज्यावेलः शिक्षयोद्धतः ॥ १६ ॥ पदातिमीनः सुमहान्
गर्जितोत्कृष्टघोषवान् । हयान् गजान् पदातींश्च रथांश्च सहसा
बहून् ॥१७॥ न्यमज्जयत समरे परवीरान् महारथान् । आप्ला-
वयत् सदेवौघान् दारुणो दानवेश्वरः ॥ १८ ॥ प्रावर्तत युधि
श्रीमान् युधिश्रेष्ठो युधिष्ठिरः । अपश्यंस्त्रिदशाः सर्वे शुद्धजाम्बू-
नदप्रभम् ॥ १९ ॥ सन्नद्धं तत्र युध्यन्तं ज्वलन्तमिव पावकम् ।
मध्यं दिनगतं सूर्यं ज्वलन्तमिव तेजसा ॥ २० ॥ न शेकुः सर्व-
भूतानि दानवं प्रसमीक्षितुम् । यथा प्रवृद्धं युगान्ते दहेत् कक्षं
हुताशनः ॥ २१ ॥ तथा सुरवरो दैत्यो दहति स्म सुतेजसा ।

समरमें खडा होगया, गौर्जना घोष वाला कडकरूपी बूँदोंवाला धनुषरूपी बिजली वाला चापरूपी महामेघ वाला, बाण-रूपी सागर भुजाओंसे तरनेके योग्य नहीं था, उसमें धनुषरूपी तरंगे उठ रहीं थी, बाणजालरूपी महासरोवर थे, गदा तलवाररूप मकर थे, प्रत्यञ्चारूपी किनारे थे, शिक्षासे उद्धत होरहा था; पदलरूपी मछलियें थी, बड़ी भारी गर्जनारूपी उत्कृष्ट घोष था, ऐसा दारुण दानवेश्वररूप समुद्र हाथी घोड़े पैदल रथ और महा-रथी देवताओंको—परवीरोंको डुबोने लगा ॥ १० ॥ १८ ॥ उस समय योधाओंमें श्रेष्ठ युधिष्ठिर नामक श्रीमान् दानव वहाँ पर प्रकट होगया, सब देवताओंने देखा, कि-उसकी प्रभा शुद्ध सुवर्ण की समान थी ॥ १९ ॥ और तयार होकर लड़ता हुआ कुजंभ प्रदीप्त पावककी समान दीख रहा था, और दुपहरियामें दमकते हुए सूर्यकी समान अपने तेजसे दमक रहा था ॥ २० ॥ उस समय सब प्राणी उसकी ओर न देख सके, जिस प्रकार ग्रीष्म ऋतुके

देवानां दानवानां च बलं मर्दति दारुणम् ॥२२॥ विरूपमभवत् सर्वमाकुलं च समन्ततः । शूराश्च ते बलोदग्रा हस्त्यश्वरथभूर्गताः ॥ २३ ॥ आर्यां बुद्धिं समास्थाय न त्यजन्ति महारणम् । तदुत्पिञ्जलकं युद्धमभवद्रोमहर्षणम् ॥ २४ ॥ देवदानवयोः संख्ये रुधिरस्रावकर्दमम् । न दिशः प्रत्यजानन्त भयग्राहनिपीडिताः २५ शस्त्रपातांश्च विविधान् दानवानां महारणे । अन्योन्यं मूढचित्तास्ते निजघ्नुर्व्याकुलीकृताः । स्वान् परान्नाभिजानन्ति विमूढाः शस्त्रपाणयः ॥ २६ ॥ शिरोरुहेषु संगृह्य कश्चिच्छूरस्य संयुगे । शूरश्छिनत्ति मूर्धानं संदष्टौष्ठपुटाननम् ॥ २७ ॥ बाहुभिर्मुष्टिभिश्चैव वज्रकल्पैः सुदारुणैः । प्रहरन्ति रणे वीरा न्यस्तशस्त्राः परस्परम् ॥ २८ ॥ योधपाणहरे रौद्रे स्वर्गद्वारेऽनृपावृते । संकुले

अन्तमें अग्नि बढ़ेहुए घास फूँसको जला डालता है ॥२१॥ इसी प्रकार असुरश्रेष्ठ दानव अपने तेजसे देवता और दानवोंके दारुण सेनादलका संहार करने लगा ॥ २२ ॥ उस समय सब सेना दल उलटा भागनेलगा और चारों ओर व्याकुलता फैल गई, परन्तुहाथी घोडे और रथोंपर बैठेहुए बलवान् शूर पुरुष शूरोचित बुद्धिका आश्रय लेकर संग्रामको नहीं छोड़ते थे, इस प्रकार चमड़ीको व्याकुल करनेवाला रोमहर्षण युद्ध होने लगा ।२३।२४। उस देवदानवयुद्धमें रुधिर बहनेसे कीचड़ होगई और भयरूपी ग्राहसे पीड़ित होने पर योधाओंको दिशाओंका भी भान न रहा ॥ २५ ॥ महारणमें दानवोंका अनेक प्रकारका शस्त्रप्रहार होने पर वे व्याकुल होकर मूढ़ हो आपसमें ही प्रहार करने लगे, उन शस्त्रधारी मूढ़ोंको अपने और परायेका भी ज्ञान न रहा२६ कोई पुरुष युद्धमें किसी शूरके बालोंको पकड़ उसके दाँतोंसे ओठको काटने वाले शिरको ही काटने लगा॥२७॥शूर रणमें शस्त्रोंको त्यागकर वज्रकी समान दारुण भुजा और मुक्कोंसे परस्पर

तुमुले युद्धे वर्तमाने महाभये ॥ २९ ॥ हयो हयं गजो नागं वीरो वीरं महाहवे । अभ्यद्रवञ्जिघांसन्तो ह्यसमञ्जसमाहवे । असुराश्च सुराश्चैव विक्रमाढ्या महारथाः ॥ ३० ॥ जुहुवुः समरे प्राणान्निजघ्नुरितरेतरम् । मुक्तकेशा विकवचा विरथाश्छिन्नकार्मुकाः ३१ हस्तैः पादैश्च युध्यन्ते दानवास्त्रिदशैः सह । हरिस्तु निशितं भल्लं प्रेषयामास संयुगे ॥ ३२ ॥ स तस्य धनुषः कोटिं छित्वा भूमावपातयत् । पुनश्चापि पृषत्काणां शतानि नतपर्वणाम् ३३ प्राहिणोत् सहसा तस्य दानवेन्द्रस्य संयुगे । तस्य देहविमुक्तास्ते मारुतेन समीरिताः ॥ ३४ ॥ मग्नार्धकाया विविशुः पन्नगा इव पर्वते । स तैर्निपतितैर्गात्रैः क्षरद्भिरसृगावलीः ॥ ३५ ॥ बभौ दैत्यो महाबाहुर्मेरुधातुमिवोत्सृजन् । पुनश्चापि पृषत्काणां शतानि नतपर्वणाम् ॥ ३६ ॥ ततोऽसिलोमा संक्रुद्धः प्रगृह्यान्यन्महा-

मारने लगे ॥२८॥ योधाओंके प्राणोंका हरण करने वाले, खुले हुए स्वर्गद्वार वाले महाभयदायक तुमुल-युद्धके चलनेपर हाथी हाथीको मारनेकी इच्छासे दौड़नेलगा, घोड़ा घोड़ेके मारनेकी इच्छासे दौड़ने लगा, वीर वीरको मारनेकी इच्छासे दौड़ने लगा, विक्रमके धनी महारथी दानव और देवता समरमें परस्पर प्राणों का होम करने लगे, खुले हुए केश वाले कवच और रथ से शून्य दानव धनुषोंके टूट जाने पर हाथ और पैरोंसे देवताओं के साथ युद्ध करने लगे तदनन्तर हरिने तीखा भल्ल युद्धमें फेंका ॥२९-३२॥ और उसके धनुषके डोरेको काट कर पृथिवी पर गिरादिया, फिर उस दानवेन्द्रके ऊपर नमीहुई गाँठ वाले सौ बाण एक साथ बरसा डाले वे उसके शरीरके पार होकर वायु से प्रेरित होकर, पर्वतमें घुसने वाले सर्पोंकी समान आधे आधे पृथ्वीमें घुस गए, कटे हुए शरीरसे रक्तकी धारको बहाता हुआ महाभुज दानव, गेरुको बहाने वाले मेरु पर्वतकी समान शोभा

धनुः । रुक्मपुंखांश्च निशितान् प्रेषयामास सायकान् ॥ ३७ ॥ तैस्तु मर्मसु विव्याध सर्पानलविषोपमैः । गात्रं संच्छादयामास महाभ्रैरिव पर्वतम् ॥ ३८ ॥ भूयः संविशाय च शरं मुमोचांतकसंनिभम् । सुपुंखसूर्यसंकाशं चाणमप्रतिमं रणे ॥ ३९ ॥ तेन बाणप्रहारेण संयुगे भीमकर्मणा । मुमोह सहसा देवो भूमौ चापि पपात ह ॥ ४० ॥ ततो हाहाकृताः सर्वे देवे भूतलमाश्रिते । जगत् सदेवमाविग्नं यथार्कपतनं तथा ॥ ४१ ॥ परिवारं तु समरे तस्य हत्वा महासुरः । एकत्रिंशत्सहस्राणि योधानां दानवोत्तमः ॥ ४२ ॥ जयश्रिया सेव्यमानो दीप्यमान इवाचलः । प्रगृह्य कार्मुकं घोरं गतः शक्ररथं प्रति ॥ ४३ ॥ तथैव तु महायुद्धे ससैन्यावश्विनावुभौ । प्रयुद्धौ सह वृत्रेण बलिना देव-

---

पाने लगा, इन्द्रने फिर नमी हुई गाँठ वाले सौ बाण मारे ३३-३६ तब असिलोमाने क्रोधमें भरकर दूसरा धनुष उठा लिया और सुवर्णकी पूँछडी वाले तीक्ष्ण बाणोंको छोडने लगा ॥ ३७ ॥ और सर्प अग्नि तथा विषकी समान बाणोंसे इन्द्रके मर्मस्थलोंको भेद कर उसके शरीरको, महामेघोंसे पर्वतके छाजानेकी समान बाणोंसे छा दिया ॥ ३८ ॥ फिर यमकी समान सुन्दर पूँछड़ी वाले और सूर्यकी समान अप्रतिम बाणोंको रणमें छोडा ।३९। भयंकर कर्म करने वाले उस बाणके प्रहारसे देवराज इन्द्रको सहसा मूर्छा आगई और वह भूमिमें गिर पड़ा ॥४०॥ देवराज इन्द्रके भूमिमें गिरते ही चारों ओर हाहाकार मचने लगा, और मानो सूर्य गिर पडा हो, इस प्रकार चारों ओर हाहाकार मचने लगा ॥ ४१ ॥ दानवोत्तमने इन्द्रके परिवारको पीट कर इकतीस सहस्र योधाओंको मार डाला ॥४२॥ फिर जयलक्ष्मीसे शोभायमान और पर्वतकी समान अटल वह दानव अपने भयंकर धनुषको उठा कर इन्द्रके रथकी ओर चल दिया ॥ ४३ ॥ इसी

तारिणा ॥ ४४ ॥ बालखड्गधनुष्पाणिः समरे त्यक्तजीवितः । आसाद्य सोऽश्विनौ दैत्यः स्थितो गिरिरिवाचलः ॥ ४५ ॥ ततः शंखमुपाध्माय द्विषतां लोमहर्षणम् । ज्याघोषतलशब्देन सर्वभूतान्यवेजयत् ॥४६॥ ततः संहृष्टरोमाणः शंखशब्दं विशुश्रुवुः । यक्षराक्षसदेवौघा वृत्रस्यापि च निःस्वनम् ॥ ४७ ॥ गदातोमरनिस्त्रिंशशूलशक्तिपरश्वधाः । प्रगृहीता व्यराजन्त यक्षराक्षसबाहुभिः ॥४८॥ तैः प्रमुक्तान् महाकायैः शूलशक्तिपरश्वधान् । भल्लैश्चाप्यच्छिनद्भीमवेगरवैस्तथा ॥ ४९ ॥ अन्तरिक्षचराणां च भूमिस्थानां च गर्जताम् । शरैर्विव्याध गात्राणि देवानां प्रियदर्शिनाम् ॥ ५० ॥ वृत्रासुरभुजोत्सृष्टैर्बहुधा यक्षरक्षसाम् । निकृत्तान्येव दृश्यन्ते शरीराणि शिरांसि च ५१ अथ रक्तमहावृष्टि-

प्रकार दोनों अश्विनीकुमार भी अपनी सेनाओंको लेकर देवशत्रु बलवान् इन्द्रके साथ लड़नेको चढ़ गए ॥ ४४ ॥ छोटी तलवार और धनुषको हाथमें धारण करने वाला वह दानव अश्विनीकुमारोंके पासमें आनेपर अपने जीवनका मोह छोड़ पर्वतकी समान अटल होकर खड़ा होगया ॥४५॥ और उसने शत्रुओंके रोंगटेको खड़े करने वाले अपने शंखको बजाया और प्रत्यञ्चा तथा घोषका शब्द करके सब प्राणियोंको कँपा डाला ४६ तब यक्ष राक्षस और देवताओंके झुण्डोंने अपने रोंगटोंको खड़े करके शंखके शब्दको तथा वृत्रासुरके शब्दको सुना ४७ उस समय यक्ष और राक्षसोंकी भुजाओंमें गदा तोमर तलवार शूल शक्ति और परश्वध विराजने लगे ॥ ४८ ॥ वृत्रासुर अपने आश्रयमें रहने वाले महाकाय योधाओंके शूल शक्ति परश्वध और भल्लों से तथा बाणोंसे आकाशमें फिरने वाले और भूमिपर गरजतेहुए प्रियदर्शी देवताओंके शरीरोंको घायल करने लगा । ४९॥५०॥ वृत्रासुरकी भुजाओंसे छूटते हुए बाणोंसे यक्ष राक्षसोंके शिर

रभ्यवर्षत मेदिनीम् । गदापरिघभिन्नानां देवतागात्रसंभवा ५२
मच्छादयन्तं बाणौघैर्वृत्रं भीमपराक्रमम् । ददृशुः सर्वभूतानि भानुमन्तमिवांशुभिः ॥ ५३ ॥ तीक्ष्णरश्मिरिवादित्यः मतपन् सर्वदेवताः । अश्विनोर्बलवान् क्रुद्धः सायकैर्मर्मभेदिभिः ॥५४॥ नदतो विविधान्नादानर्दितस्यापि सायकैः । न मोहमसुरेन्द्रस्य ददृशुस्त्रिदशा रणे ॥ ५५ ॥ तेसिचर्मगदाभिश्च परिघप्रासतोमरैः । परश्वधैश्च शूलैश्च मववर्षुर्महारथाः ॥ ५६ ॥ ततो वृत्रः सुसंक्रुद्धस्तैस्तदाभ्यर्दितो बली । अभ्यवर्षच्छितैर्बाणैस्तान् सर्वान् सत्यविक्रमः ॥ ५७ ॥ तेन वित्रासिता देवा विप्रकीर्णमहायुधाः । घोरमार्तस्वरं चक्रुर्वृत्रासुरभयार्दिताः॥५८॥ उत्सृज्य ते गदाशक्ति-

---

और शरीर मायः कटते हुए ही दीखते थे ॥ ५१ ॥ तदनन्तर गदा और परिघसे घायल हुए देवताओंके शरीरोंमेंसे पृथिवी पर बडी भारी रक्तवर्षा होने लगी ॥ ५२ ॥ भयंकर पराक्रम करने वाले वृत्रासुरको प्राणी, किरणोंका विस्तार करने वाले सूर्यकी समान, सब प्राणियोंको बाणसमूहसे ढकता हुआ देखने लगे ५३ वह तीखी किरणों वाले सूर्यकी समान सब देवताओंको सन्तप्त करनेलगा फिर वह बलवान् दानव अश्विनीकुमारोंके मर्मभेदी बाणोंसे क्रोधमें भर गया ॥५४॥ अनेकप्रकारका शब्द करनेवाले अश्विनीकुमारोंके बाणोंसे पीडित असुरेन्द्रमें देवताओंने किसी प्रकारकी गडबड नहीं देखी ॥ ५५ ॥ तब वे महारथी ढाल तलवार गदा और परिघ प्रास तोमर और फरसे तथा शूलोंकी वर्षा करने लगे ॥५६॥ तब तो उनसे पीडा पाकर सत्यपराक्रमी बलवान् दानव कोपमें भर कर तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा करने लगा५७ उसके त्रास देने पर वे वृत्रासुरसे त्रस्तहुए असुरभयपीडित अपने आयुधोंको छोड़ कर भयंकर आर्तस्वर करनेलगे ॥ ५८ ॥ उस दृढ़ धनुषधारीसे पीडा पाकर वे अपनी गदा शक्ति शूल ऋष्टि

शूलर्ष्टिपरिघाशनीन् । उत्तरां दिशमाजग्मुस्त्रासिता दृढधन्विना ५९
शूलशक्तिगदापाणिर्व्यूढोरस्को महाभुजः । प्रावर्तत रणे वृत्रस्त्रा-
सयानश्चराचरान् ॥६०॥ तत्रैकस्तु महाबाहुरसिशूलधरः प्रभुः ।
अभ्यधावत दैत्येन्द्रं वृत्रमप्रतिमं रणे ॥ ६१ ॥ तमापतन्तं संप्रेक्ष्य
निर्भिन्नमिव वारणम् । वत्सदन्तैस्त्रिभिः पार्श्वे विव्याध सुरसत्त-
मम् ।६२। सोऽतिविद्धो महेष्वासः शरैरमितविक्रमः । गदां जग्राह
बलवान् गदायुद्धविशारदः ॥ ६३ ॥ तां प्रगृह्य महाभीमामयः
सारमयीं दृढाम् । अश्विनौ सहसागम्य ताडयामास वीर्यवान् ६४
दीप्यमानं ततः शूलमश्वी सुविपुलं दृढम् । प्रासृजद्वृत्रदैत्याय
सहसा रोमहर्षणम् । भंक्त्वा शूलं गदाग्रेण गदायुद्धविशारदः ।
अश्विनं सहसाभ्यर्च्य गरुत्मानिव पन्नगम् ॥६६॥ सोऽन्तरिक्षात्

और फरसे तथा अशनियोंको त्याग कर उत्तर दिशाकी ओर
भाग गए ॥ ५९ ॥ उस समय भरी हुई छाती वाला और बड़ी
बड़ी भुजाओं वाला वृत्रासुर हाथमें शूल शक्ति और गदाको
लेकर चराचरको त्रस्त करताहुआ रणमें विचरण करनेलगा६०
दोनों अश्विनीकुमारोंमेंसे एक महाभुज प्रभु अश्विनीकुमार तल-
वार और शूलको लेकर दानवराज अद्वितीय वृत्रासुर पर
दौड़ा ॥ ६१ ॥ मदमत्त हाथीकी समान उस देवसत्तमको आते
हुए देख कर वृत्रासुरने तीन बाण उसकी पसलीमें मारे ॥६२॥
उन बाणोंसे संगीन चोट पहुँचनेपर अमितपराक्रमी महाधनुर्धर
और गदायुद्धमें कुशल बलवान् अश्विनीकुमारने गदा उठा
ली ॥ ६३ ॥ परन्तु वीर्यवान् वृत्रासुरने उस गदाको छीन लिया
और उस महाभयंकर लोहेकी दृढ गदाका सहसा अश्विनीकुमारों
पर प्रहारकिया ॥६४॥तब तो अश्विनीकुमारने रोंगटे खडे करने
वाला बड़ा और दृढ तथा दमकता हुआ शूल सहसा वृत्रासुरके
ऊपर फैंका ६५ तब गदायुद्धविशारद वृत्रासुरने अपनी गदाके

समुत्पत्य विधूय महतीं गदाम् । नासत्योपरि चिक्षेप गिरिशृङ्गोपमां बली ॥६७॥ गदयाभिहितः सोश्वी त्यक्त्वा शूलमनुत्तमम् । प्रयातः सहसा तत्र यत्र युध्यति वासवः ॥ ६८ ॥ पराजित्य तु संग्रामे अश्विनं भीमविक्रमम् । जयश्रिया सेव्यमानो वृत्रो युद्धे व्यवस्थितः ॥ ६९ ॥ छ छ छ छ

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वृत्रासुरोत्कर्षवर्णनं नाम सप्तपंचशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

वैशम्पायन उवाच । तत्रैव तु महायुद्धे रणाजिद्देवसत्तमः । युध्यते सह दैत्येन एकचक्रेण धीमता ॥ १ ॥ प्रच्छाद्य रथपंथानं मुत्क्रोशंश्च महाबलः । एकचक्रस्य सैन्यं तच्छरवर्षैरवाकिरत् ॥२॥ महासुरा महावीर्या महापट्टिशयोधिनः । शूलानि च भुशुंडीश्च क्षिपंति स्म महारणे ॥ ३ ॥ तच्छूलवर्षैस्तु गदद्दाशक्तिसमाकु-

अग्रभागसे उस शूलको तोड़ डाला, और गरुड़के सर्पकी पूजा करनेकी समान, अश्विनीकुमारकी पूजाकी ॥ ६६ ॥ फिर बलवान् वृत्रासुरने अन्तरिक्षमें उछल पर्वतके शिखरकी समान आकारवाली उस गदाको घुमा कर अश्विनीकुमारके ऊपर फेंका ॥ ६७ ॥ गदासे पिटनेपर अश्विनीकुमारने अपने शूलको तो रखदिया और जहाँपर इन्द्र लड़ रहा था तहाँपर पहुँच गया।६८ भयंकर पराक्रमी अश्विनीकुमारका पराजय करके जयश्रीसे शोभायमान वृत्रासुर रणमें डट गया।६९सत्तावनवाँ अध्याय समाप्त

वैशम्पायनजीने कहा, कि-तहाँ युद्धमें देवसत्तम रणाजि (साध्य) भी एकचक्र नामक बुद्धिमान् दानवके साथ युद्ध कर रहा था ॥ १ ॥ महाबली रणाजिने रथके मार्गको आच्छादित करके गर्जनाकी और एकचक्रकी सेनापर बाणोंकी बौछार करने लगा ॥ २ ॥ उस समय पटेबाज बड़े २ राक्षस महारणमें शूल और भुशुण्डियोंकी वर्षा करने लगे ॥ ३ ॥ चर और अचर

लम् अविशद्दितिजैर्मुक्तं दुर्निवार्यं चराचरैः ॥ ४ ॥ अन्योन्यमभि-
वर्त्तते देवासुरगणा युधि। महाद्रिशिखराकारा वीर्यवंतो महाबलाः ५
तुरङ्गमाणां तु शतं युक्तं तस्य महारथे । महासुरवरस्येव हिर-
ण्यकशिपोर्युधि ॥ ६ ॥ तेषां चरणपातेन चक्रनेमिस्वनेन च ।
तस्य बाणनिपातैश्च हता वै शतशः सुराः ॥ ७॥ ततः स लघु-
भिश्चित्रैः शरैः सन्नतपर्वभिः । सायुधानच्छिनत् क्रुद्धः शत-
शोथ सहस्रशः ॥८॥ बध्यमानाः शरैस्तीक्ष्णै रथद्विरदवाजिनः ।
गमिताः प्रलयं केचिद्विदशैर्दानवा रणे ॥ ९ ॥ ततः प्रक्षीय-
माणांस्तानुपप्रेक्ष्य दितेः सुताः । त्यक्त्वा प्राणान् न्यवर्तन्त प्रगृ-
हीतवरायुधाः ॥१०॥ ते दिशो विदिशश्चैव प्रतियुद्धप्रहारिणः ।
अभ्यघ्नन् निशितैः शस्त्रैर्देवान् दितिसुता रणे ॥ ११ ॥ रणा-
द्विचलितं घोरं परमं तिग्मतेजसम् । मुमोचास्त्रं महाबाहुर्मथनं

प्राणियोंसे न हटने योग्य राक्षसोंके द्वारा बरसाई हुई गदा शक्ति
और शस्त्रोंकी वर्षा सेनामें प्रवेश करनेलगी ॥ ४ ॥ महापर्वत
के शिखरकी समान आकार वाले वीर्यवान् और महाबली देव
दानव परस्पर युद्ध करने लगे ॥ ५ ॥ महादानव हिरण्यकशिपु
के रथकी समान महारथी एकचक्रके रथमें सौ घोड़े जुत रहे थे ६
उनके चरणोंके प्रहारसे और चक्रनेमिके शब्दसे तथा एकचक्रके
बाणोंके लगनेसे सैकड़ों असुर मारे गए ।७। तदनन्तर रणाभि
क्रोधमें भरकर नमी हुई गाँठ वाले विचित्र और छोटे बाणोंसे
आयुधों सहित सैकड़ों और हजारों दानवोंको काटने लगा ॥८॥
दानव और दानवोंके रथ हाथी और घोड़े देवताओंके बाण
मारने पर नष्ट होगए ॥ ९ ॥ दानवोंको नष्ट होते हुए देख कर
दितिके पुत्र अपने प्राणोंका मोह छोड़ हाथमें श्रेष्ठ २ आयुधों
को लेकर चढ़ आये ॥१०॥ दितिके पुत्र दिशा और विदिशाओं
में भी तीक्ष्ण शस्त्रोंका प्रहार कर देवताओंको मारने लगे ११

नाम संयुगे ॥ १२ ॥ ततः शस्त्राणि शूलानि निशितानि सहस्रशः। अतिवीर्येण महता दितिजः संप्रचिच्छिदे ॥ १३ ॥ छित्वा शूलेन तान् सर्वानेकचक्रो महासुरः । अभ्यविध्यत तं साध्यं दशभिर्निशितैः शरैः ॥ १४ ॥ अस्त्रवेगेन हत्वैव सोऽस्त्रैस्तस्यानुसैनिकान्। ज्वलितैरपरैः शीघ्रैस्तानविध्यत् सहस्रशः॥१५ तेषां छिन्नानि गात्राणि विसृजन्ति स्म शोणितम् । प्रावृषीवाम्बुवृष्टीनि शृङ्गाणि धरणीभृताम् ॥ १६ ॥ इन्द्राशनिसमस्पर्शैर्निपतद्भिरजिह्मगैः । दितिजैर्वध्यमानास्ते वित्रेसुः सुरसत्तमाः ॥१७॥ एकचक्रो रथे तिष्ठन्नपश्यद्गजयूथपम् । वराभरणनिह्रादान् समुद्रस्वननिःस्वनान् ॥ १८ ॥ मत्तान् सुविहितान् दक्षान् महामात्रैरधिष्ठितान् । कुलीनान् वीर्यसंपन्नान् प्रतिद्विरदघा-

---

तदनन्तर महाभुज एकचक्रने परम तेजस्वी और रणमेंसे विचलित करने वाला मथन नामक बाण छोड़ा ॥ १२ ॥ फिर वह दितिनन्दन बड़े वेगके साथ सैकड़ों तीक्ष्ण शस्त्र और बाणों को काटने लगे ॥ १३ ॥ महाराक्षस एकचक्रने उन सबको शूल से काट कर उसको दश बाणोंसे घायल कर डाला ॥१४॥ वह उसके सैनिकोंको अस्त्रवेगसे मार कर दूसरे दमकते हुए बाण मार कर उनके सैकड़ों टुकड़े उड़ाने लगा ॥ १५ ॥ उनके कटे हुए अङ्ग, वर्षा ऋतुमें जल बहाने वाले पर्वतोंके शिखरोंकी समान, रक्तको बहाने लगे ॥ १६ ॥ सुरसत्तम राक्षसोंके द्वारा फैंकेहुए इन्द्रवज्रकी समान स्पर्श वाले सरलगामी बाणोंके पड़ने पर भयभीत होने लगे ॥ १७ ॥ तदनन्तर एकचक्रने रथमें बैठ कर गजसेनाके यूथकी रक्षा करने वालेकी ओर देखा, फिर वह सुरसेनाके श्रेष्ठ आभूषणोंसे झनकारते हुए, समुद्रकी गर्जनाकी समान चिंघाडने वाले, मत्त, दक्ष और हाथीवानोंसे अधिष्ठित कुलीन वीर्य संपन्न, सामनेके हाथीको मारने वाले, गजशिक्षा

तिनः ॥ १९ ॥ शिक्षितान् गजशिक्षायामैरावतसमान् युधि । न्यहनत् सुरसैन्यस्य गजान् गज इवासुरः ॥ २० ॥ विक्षरन्तो महानागान् भीमवेगांस्त्रिधा मदम् । मेघस्तनितनिर्घोषान् महाद्रीनिव चोत्थितान् ॥ २१ ॥ सहस्रसम्मितान् दिव्याञ्जाम्बूनदपरिष्कृतान् । सुवर्णजालैर्विततांस्तरुणादित्यवर्चसः ॥ २२ ॥ एकचक्रो गदापाणिर्बलवान् गदिनां वरः । उत्सारयामास गजान् महाभ्राणीव मारुतः ॥ २३ ॥ निहत्य गदया सर्वांस्तान् गजान् गजमर्दनः । भूयोऽश्वसंघान् स बली निरैक्षत महासुरः ॥ २४ ॥ शुकवर्णानृक्षवर्णान् मयूरसदृशांस्तथा । पारावतसवर्णांश्च हंसवर्णांस्तथैव च ॥२५॥ मल्लिकाक्षान् विरूपाक्षान् क्रौंचवर्णान् मनोजवान् । अश्वसैन्यं महाबाहुस्तदप्रतिमपौरुषः ॥ २६ ॥

से शिक्षित युद्धमें ऐरावतकी समान खड़े हुए हाथियोंको गजासुरकी समान मारने लगा ॥ १८–१० ॥ वह हाथी भयंकर वेग वाले थे और कण्ठ सूँड तथा कुम्भ नामक तीन स्थानोंसे मद को टपका रहे थे, मेघके गडगडानेकी समान चिंघाड रहे थे और और महापर्वतकी समान ऊँचे थे, सुवर्णसे विभूषित थे, उनके ऊपर सुवर्णकी जाली पड़ी हुई थी और उनकी कांतितरुण-सूर्य की समान थी ॥ २१–२२ ॥ उन हाथियोंको बलवान् एकचक्र हाथमें गदा लेकर, वायुके मेघोंको धुँगलनेकी समान, धुँगलने लगा ॥ २३ ॥ वह गजमर्दन राक्षस गदासे सब हाथियोंका संहार करनेके अनन्तर शुककी समान वर्णवाले, रीछकी समान वर्ण वाले, मयूरकी समान वर्ण वाले कबूतरोंकी समान वर्ण वाले और हंसोंकी समान वर्ण वाले मल्लिकाकी समान वर्ण वाले, वेडौल नेत्रों वाले, क्रौंचकी समान वेग वाले और मन की समान वेग वाले घोड़ोंके झुण्डकी ओर देखने लगा, फिर भयंकर पराक्रम करनेवाले और अप्रतिम पुरुषार्थ वाले महाभुज

निषूदयामास बली गदया भीमविक्रमः । रणाजिस्तस्य समरे सर्वान् व्यस्य सुरद्विषः ॥ २७ ॥ अचिन्त्यविक्रमः श्रीमानभ्ययाद्देववाहिनीम् । गदायुद्धेषु कुशलो रथेन रथयूथपः ॥ २८ ॥ हृष्टसैन्यो महाबाहुः प्रस्थितः शक्रसन्निभौ । त्रिंशच्छतसहस्राणि रथानां विनिहत्य सः ॥ २९ ॥ रणेऽतिष्ठत दैत्येन्द्रो विधूम इव पावकः । तस्मिन्नेव तु संग्रामे बलहा महासुरः ॥ ३० ॥ मृगव्याधं महात्मानं योधयत्यजितं रणे । मृगव्याधस्य रुद्रस्य महापारिषदास्तथा ॥ ३१ ॥ समुत्पेतुर्बलं दृष्ट्वा हुताग्निसमतेजसः । गजैर्मत्तै रथैर्दिव्यैर्वाजिभिश्च महाजवैः ॥३२॥ अस्त्रैश्च निशितैर्बाणैः शरैश्चानलसन्निभैः । ददृशुस्ते ततो वीरा दीप्यमानं महासुरम् ॥ ३३ ॥ रश्मिवन्तमिवोद्यन्तं सुतेजोरश्मिमालिनम् । संग्रामस्थं महावेगं महासत्वं महाबलम् ॥ ३४ ॥ महामतिं महो-

---

एकचक्रने गदासे अश्वसेनाको नष्ट कर दिया, तब रणाजि सब देवशत्रुओंको छोड़ कर देवसेनाकी ओर चला, अचिंत्य पराक्रम करने वाला गदायुद्धमें कुशल, रथयूथप अचिन्त्य पराक्रमी रणाजि रणमें तीन लाख योधाओंको मार कर अपनी सेनाको प्रसन्न करता हुआ इन्द्रके पासको गया था ॥२४-२९॥ उस समय दैत्येन्द्र निर्धूम अग्निकी समान रणमें खड़ा होगया, इसी संग्राममें घमण्डमें भरा हुआ बल नामक महाराक्षस, महात्मा और अजित मृगव्याधसे युद्ध करने लगा, मृगव्याध रुद्रके प्रदीप्त अग्निकी समान तेज वाले बड़े २ पार्षद होमे हुए अग्निकी समान तेज वाले बल दानवको देखकर मदमत्त हाथी दिव्य रथ और महावेगवान् घोड़ों पर चढ कर उठ आए ३०-३२ उन्होंने तीक्ष्ण अस्त्र बाण और अग्निकी समान बाणोंसे उस महाराक्षसको चमकता हुआ देखा ॥३३॥ सूर्यकी समान उदते हुए, सुन्दर तेज वाले किरणोंको धारण करके वाले, महावेग-

त्साहं महाकायं महारथम् । समीक्ष्य तं महायोधं दिक्षु सर्वास्व-
वस्थितम् ॥ ३५ ॥ ततः महद्भिर्घोरैरभिपेतुः समन्ततः । तस्य
सर्वायसास्तीक्ष्णाः शराः पीतमुखाः शिताः ॥ ३६ ॥ शिरस्य-
द्रिप्रतिकाशे मृगव्याधेन पातिताः । तैश्च सप्तभिराविद्धः शरैः
शिरसि चार्पितैः ॥ ३७ ॥ उत्पपात तदा व्योम्नि दिशो दश
निनादयन् । ततस्तं त्रिदशो वीरः सरथः सज्यकार्मुकः ॥३८॥
अनुवव्राज संहृष्टः खे तदा स महाबलः । असुरं छादयामास तं
व्योम्नि शरवृष्टिभिः ॥ ३९ ॥ वृष्टिमानिव जीमूतो निदाघान्ते
धराधरम् । अर्द्यमानस्ततस्तेन मृगव्याधेन दानवः ॥४०॥ चकार
निनदं घोरमम्बरे जलदो यथा । स दूरं सहसोत्पत्य मृगव्याध-
रथं गति ॥ ४१ ॥ निपपात महावेगः पक्षवान्गिरिर्यथा । बभंज
च ततो दैत्यो भग्नेषाकूबरं रथम् ॥४२॥ मृगव्याधः परित्यज्य

वान् महासत्त्व महाबली महामति महोत्साह महाकाय महारथी
बलको संग्रामकी चारों दिशाओंमें खडा हुआ देखकर भयंकर
आयुधोंको ले उस पर टूट पड़े, और मृगव्याध नामक रुद्रने उस
के पर्वतकी समान मस्तकमें लोहेके बने हुए तीखे, पीले मुख
वाले बाण मारे, शिरमें लगे हुए उन सात बाणोंके साथ ही
वह, दशों दिशाओंको गुञ्जारता हुआ, आकाशमें उड़ा, उस
समय उसके पीछे महाबली त्रिदशवीर मृगव्याध भी हाथमें धनुष
ले अपने रथको ले आकाशमेंको उड़े, और जिस प्रकार ग्रीष्म
ऋतुके अन्तमें वर्षा वाला मेघ पर्वत पर बरसता है, इसी प्रकार
आकाशमें बाणवर्षा करके असुरको ढकने लगे, तब तो मृगव्याध
से पीडित हुआ दानव, आकाशमें गडगडाते हुए मेघकी समान
घोर शब्द करने लगा, फिर वह महावेगवान् दानव, पक्षवान
से गिरने वाले पर्वतकी समान; उडकर मृगव्याधके रथकी ओर
गिरने लगा, और उसने रथकी ईषा और कूबरको तोडकर उस

स्थितो भूमौ महाबलः । विरथं प्रेक्ष्य रुद्रन्तु तस्य पारिषदाः शुभाः ॥ ४३ ॥ उत्थिता घोररक्ताक्षा व्योम्नि मुद्गरपाणयः । स तु तैः सहसोत्थाय वेष्टितो विमलेऽम्बरे ॥ ४४ ॥ मुद्गरैरर्दितो भीमैर्वृक्षः परशुभिर्यथा । तेषां वेगवतां वेगं निहत्य स महारथः ४५ निपपात पुनर्भूमौ सुपर्णसमविक्रमः । स शालवृक्षमुत्पाट्य महाशाखं महाबलः ॥ ४६ ॥ सर्वान् पारिषदान् संख्ये सूदयामास दानवः । स तैर्विजितदेहस्तु रुधिरौघपरिप्लुतः ॥ ४७ ॥ शुशुभे दानवश्रेष्ठो बालसूर्य इवोदितः । अथोत्पाट्य गिरेः शृङ्गं समृगव्यालपादपम् ॥४८॥ जघान तान् पारिषदान् समरे दानवेश्वरः । ततस्तेषु च भग्नेषु महापारिषदेषु वै ४९ बलं तदवशेषन्तु नाशयामास वीर्यवान् । अश्वैरश्वान् गजैर्नागान् योधान्योधै रथान्रथैः ५० दानवः सूदयामास युगान्तेऽन्तकृवत् प्रजाः । हतैरश्वैश्च नागैश्च

रथको भी तोड डाला ॥ ३४-४२ ॥ तब महाबली मृगव्याध अपने रथको छोडकर पृथिवीमें खडे होगए, रुद्रको रथहीन देख कर रुद्रके शुभ पारिषद हाथमें मुद्गर ले, नेत्रोंको लाल २ कर आकाशमें प्रकट होगए, और उन्होंने उठकर विमल आकाशमें उसको चारों ओरसे घेर लिया ॥४३-४४॥ और जिस प्रकार फरसोंसे वृक्षोंको काटें, तिस प्रकार उसको भयंकर मुद्गरोंसे पीडित करने लगे, परन्तु गरुडकी समान पराक्रम करने वाला वह महारथी उन वेगवानोंके वेगको नष्ट करके फिर पृथिवीमें आगया, फिर वह महारथी दानव बडे २ गुद्दों वाले शालके पेडको उखाड कर युद्धमें उन सब पारिषदोंका नाश करने लगा उनके शरीर घायल करने पर रुधिरसे सना हुआ दानव श्रेष्ठ उदित हुए बाल सूर्यकी समान शोभा पाने लगा, तदनन्तर वह दानवेश्वर मृग सर्प और वृक्षों सहित पहाडके एक शिखरको उखाड कर उन पारिषदोंको मारने लगा और उन महापारिषदों

भग्नालैश्च महारथैः ॥ ५१ ॥ त्रिदशैश्चाभवद्भूमी रुद्धमार्गा समन्ततः । एवं बलः स दैत्येन्द्रो मृगव्याधश्च वीर्यवान् ॥५२॥ युधि मत्तौ बलिनौ प्रभिन्नाविव वारणौ ॥ ५३ ॥ वैशंपायन उवाच । तत्रैव युध्यते रुद्रो द्वितीयो राहुणा सह । विश्रुतस्त्रिषु लोकेषु क्रोधात्मा ह्यज एकपात् ॥५४॥ तद्यथा सुमहद्युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् । आसीत् प्रतिभयं रौद्रं वीराणां जयमिच्छताम् ५५ देवदानवदेहैस्तु दुस्तरा केशशाद्वला । शरीरसंघातवहा प्रसृता लोहितापगा ॥ ५६ ॥ आजघानाथ संक्रुद्धो रुद्रो रौद्राकृतिः प्रभुः । राहुं शतमुखं युद्धे शत्रुसैन्यनिवारणम् ॥ ५७ ॥ तस्य कांचनचित्रागं रथं साश्वं ससारथिम् । जघान समरे श्रीमान्

के भाग जाने पर बची हुई सेनाका संहार करने लगा । प्रलय कालमें प्रजाओंका संहार करने वाले यमराजकी समान वह दानव घोडोंसे घोडोंको मारने लगा, हाथियोंसे हाथियोंको मारने लगा, योधाओंको योधाओं पर पटकने लगा और रथों से रथोंको नष्ट करने लगा, मरे हुए हाथी घोडे और देवताओं से तथा भूमिमें टूट कर पड़े हुए रथोंसे पृथिवीका मार्ग बन्द होगया, इस प्रकार वह बल दानव और वीर्यवान् मृगव्याध मद-मत्त और बलवान् हाथियोंकी समान युद्ध करने लगे ४५-५३ वैशम्पायनजीने कहा, कि-तहाँ ही पर तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध क्रोधात्मा अजैकपाद नामक द्वितीय रुद्र राहुके साथ युद्ध कर रहे थे ॥ ५४ ॥ वह जय चाहने वाले वीरोंका भयदायक और रोमहर्षण युद्ध जिस प्रकार हुआ था (उसको तुम सुनो) ५५ तहाँ पर देवता और दानवोंके देहके कारण दुस्तर, केशरूपी शाड्वल वाली, शरीरोंके ढेरको बहाने वाली रक्तनदी चल निकली थी ॥ तदनन्तर भयंकर आकृति वाले प्रभु रुद्रने क्रोध में भरकर शत्रुओंकी सेनाको हटाने वाले सौ मुखके राहुको

क्रुद्धो दैत्यस्य सायकैः ॥ ५८ ॥ तस्य पारिषदस्त्वेको शर-
शक्त्या महाबलः । बिभेद समरे हृष्टो दानवं तं स्तनान्तरे ५९
स भिन्नगात्रो रुद्रेण तथा पारिषदैरपि । रुद्रस्य रथमायान्तं स
राहुर्दानवोत्तमः ॥ ६० ॥ प्रममाथ बलेनाशु सहसा क्रोध-
मूर्च्छितः । भिन्नगात्रं शरैस्तीक्ष्णैर्मेरुं सूर्य इवांशुभिः ॥६१॥ हतै-
र्दानवमुख्यैस्तु रुद्रेणामिततेजसा । रुद्रपारिषदान् सर्वान् निजघान
महासुरः ॥६२॥ वर्तमाने महाघोरे संग्रामे लोमहर्षणे । रुधिरौघा
महावेगा महानद्यः प्रसुस्रुवुः ॥ ६३ ॥ दानवं समरे रुद्रो नीला-
ञ्जनचयोपमम् । निर्बिभेद शरैस्तीक्ष्णैर्मेरुं सूर्य इवांशुभिः ६४
हतैर्दानवमुख्यैश्च शक्तिशूलपरश्वधैः। पतितैः पर्वताभैश्च दानवैः
कामरूपिभिः ॥ ६५ ॥ वर्तमाने महाघोरे संग्रामे लोमहर्षणे ।
महाभेरीमृदङ्गानां पणवानां च निःस्वनः ॥ ६६ ॥ शंखवेणुस्व-

पीड़ना आरम्भ कर दिया ॥ ५७ ॥ दानवके बाणोंसे क्रोधमें
भरे हुए श्रीमान् रुद्रने उसके सुवर्णकी चित्रकारी वाले रथके
घोड़ोंको और सूतको मार डाला ॥५८॥ उस समय रुद्रके एक
महाबली पारिषदने समरमें प्रसन्न होकर दानवकी छातीके
बीचमें शरशक्तिका प्रहार किया ५९ रुद्रसे और पारिषदोंसे
अंगों पर प्रहार होनेके कारण टूटे हुए अंगों वाला दानवोंमें
श्रेष्ठ राहु क्रोधसे मूर्छित हो रुद्रके आते हुए रथको कुचलने
लगा, सूर्य जिस प्रकार अपनी किरणोंसे मेरुपर्वतको छादेता है
इसी प्रकार घायल अंगों वाले रुद्रको तीक्ष्ण बाणोंसे छाने
लगा ६०-६४ मरे हुए मुख्य मुख्य दानवोंसे शक्ति शूल और
फरसोंसे तथा इच्छानुसार रूप धारण करने वाले गिरे हुए
पर्वताकार दानवोंसे (पृथ्वी पट गई) ॥ ६५ ॥ जब इस प्रकार
महाभयंकर लोमहर्षण संग्राम हो रहा था तब महाभेरी मृदंग और
पणवोंका शब्द शंख और वेणुके शब्दसे मिलकर अद्भुत प्रकार

नोन्मिश्रः संबभूवाद्भुतोपमः । हतानां स्वनतां तत्र दैत्यानां चापि निःस्वनः ॥ ६७ ॥ देवानां च तथा तत्र शुश्रुवे दारुणो महान् । तुरङ्गमखुरोत्कीर्णं रथनेमिसमुत्थितम् ॥६८॥ ररोध मार्गं योधानां चक्षूंषि च धरारजः । शस्त्रपुष्पोपहारा सा तत्रासीद्युद्धमेदिनी ॥ ६९ ॥ दुर्दर्शा दुर्विगाह्या च मांसशोणितकर्दमा । भग्नैः खड्गैर्गदाभिश्च शक्तितोमरपट्टिशैः ॥ ७० ॥ अपविद्धैश्च भग्नैश्च रथैः सांग्रामिकैर्हतैः । निहतैः कुञ्जरैरश्वैस्तथा त्रिदशदानवैः ॥ ७१ ॥ चक्राक्षयुगशस्त्रैश्च भग्नैरवनिपातितैः । बभूवायोधनं घोरं पिशिताशनसंकुलम् ॥ ७२ ॥ उत्पेतुश्च कबन्धानि दिक्षु सर्वासु संयुगे । अन्योन्यबद्धवैराणां दैत्यानां जयगृद्धिनाम् ॥७३॥ संप्रहारस्तथा युद्धे वर्ततेऽतिभयंकरः । सैन्यानां संप्रयुद्धानां शूराणामनिवर्तिनाम् ॥ ७४ ॥ अजस्य चैकपादस्य राहोश्चैव महात्मनः । तेषां तु तत्र पततां क्रुद्धानामतिनिः-

का होने लगा, मारे जाते हुए और चीखते हुए दैत्योंका और दानवोंका दारुण स्वर तहाँ पर होने लगा, घोड़ोंकी टापोंसे उड़ी हुई और रथकी नेमिसे उड़ती हुई पृथ्वीकी धूलने योधाओंके दृष्टिमार्गको रोकदिया शस्त्र और पुष्पोंके उपहार वाली युद्धभूमि में मांस और रक्तकी कीच मचनेके कारण कठिनतासे देखा जा सकता था, टूटे हुए खड्ग गदा शक्ति तोमर पट्टिश—टूटे फूटे रथ युद्धके सामान, मरे हुए हाथी घोड़े देव दानव चक्राक्ष युग और टूटे हुए शस्त्रोंसे रणाङ्गण पट रहा था और मांसभक्षी राक्षस आदिसे खचाखच भर रहा था ॥ ६६—७२ ॥ युद्धमें चारों ओर कबंध उठने लगे, परस्पर वैरभाव रखने वाले और जय चाहने वाले देवता तथा दानवोंमें उस समय भयंकर मारामार चलने लगी, एकपाद अज और महात्मा राहुके लड़ते हुए क्रोधमें भरे हुए और अडियलसैनिकोंका तुमुल शब्द समुद्रोंके उफानकी समान

स्वनः ॥ ७५ ॥ उद्धूत इव भूतानां समुद्राणां तु शुश्रुवे । तत्रैक-
स्तु सुधूम्राक्षः श्रीमान् रुद्रो मुनीश्वरः ॥ ७६ ॥ विभेद केशिनं
शक्त्या गदापरिघशूलभृत् । नानाप्रहरणा घोरा भीमाख्या भीम-
विक्रमाः ॥ ७७ ॥ निष्पेतू रुद्रदयिता महापारिषदास्तथा ॥ रथ-
मास्थाय च श्रीमांस्तप्तकाञ्चनकुण्डलः ॥ ७८ ॥ दानवैः संवृतः
केशी युध्यते युद्धदुर्जयैः । तस्य संग्रामशौण्डस्य संग्रामेषु युयु-
त्सतः ॥ ७९ ॥ निपेतुरुग्रवीर्यस्य ज्वाला हि प्रसृता मुखात् ।
स तु सिंहर्षभस्कन्धः शार्दूलसमविक्रमः ॥ ८० ॥ महाजलद-
संकाशो मृदङ्गध्वनिनिःस्वनः । तस्य निष्पात्यमानस्य दानवैः
संवृतस्य च ॥ ८१ ॥ बभूव सुमहानादः क्षोभयंस्त्रिदिवं यथा ।
तेन शब्देन वित्रस्ता त्रिदशानां महाचमूः ॥ ८२ ॥ द्रुमशैलप्रह-
रणा योद्धुमेवाभ्यवर्तत । तेषां च देवदैत्यानां युयुत्सूनां पर-

---

मतीन होने लगा, तहाँपर सुधूम्राक्ष नामवाले गदा परिघ और
शूलधारी श्रीमान् मुनीश्वर रुद्रने केशी दानवके शक्ति मारी, उस
समय तहाँ पर अनेक प्रकारके आयुधोंको धारण करने वाले
तथा भयंकर पराक्रम करने वाले रुद्रके प्यारे भीम नामक गण
भी आ कूदे, तब तपे हुए सोनेके कुण्डलों वाला केशी दानव
रथमें बैठ अपने युद्धदुर्जय दानवोंको साथमें ले युद्ध करने लगा,
फिर संग्राममें युद्ध करना चाहने वाले और भयंकर वीर्यवाले
संग्रामचतुर केशी दैत्यके मुखमेंसे ज्वाला निकलने लगी, उस
दानवके कंधे बैलकी समान थे और उसका पराक्रम शार्दूलके
पराक्रमकी समान था ॥ ७३ ॥ ८० ॥ उसका आकार महामेघ
की समान था और उसका शब्द मृदंगकी ध्वनिकी समान था,
दानवोंसे घिर कर ज्वालाको मुखमेंसे निकालते हुए दानवका
बड़ाभारी नाद स्वर्गको क्षुब्धसा करने लगा, उस शब्दसे देव-
ताओंकी बड़ीभारी सेना भयभीत होगई ८१-८२ फिर भी वह

र्षणम् । सन्निपातः सुतुमुलो रौद्रो लोकभयावहः ॥ ८३ ॥ तेषां युद्धं महाघोरं संजज्ञे लोमहर्षणम् । देवदानवसंग्रामं प्राणांस्त्यक्त्वा महाहवे । सर्वे ह्यतिबलाः शूराः सर्वे पर्वतसन्निभाः ॥ ८४ ॥ सर्वे सर्वास्त्रविद्वांसः सर्वे सर्वायुधोद्यताः । त्रिदशा दानवाश्चैव परस्परजिघांसवः । तेषां वै नदतां शब्दः संयुगे मेघनिःस्वनः ॥ ८५ ॥ शुश्रुवेऽतिमहाघोरश्चरस्थावरकम्पनः । रेणुश्चारुणसंकाशो भीमः स समपद्यत ॥ ८६ ॥ उद्धूतो देवदैत्यौघैः संरुरोध दिशो दश । अन्योऽन्यं रजसा तेन कौशेयारुणपाण्डुना ॥ ८७ ॥ संवृता बहुरूपेण ददृशुर्न च किंचन । न ध्वजो न पताकाश्च न वर्मतुरगोऽपि वा ॥ ८८ ॥ आयुधं स्यन्दनो वापि दृश्यते नैव सारथिः । स शब्दस्तुमुलस्तेषामन्योन्यं समधावताम् ॥ ८९ ॥ निपेतुरुग्रवीर्यस्य ज्वाला हि प्रसृतान्मुखात् । स तु सिंहर्षभ-

वृक्ष और पत्थरोंको लेकर युद्ध करनेके लिए ही खड़ी रही फिर उन परस्पर युद्धाभिलाषी देव दानवोंमें संसारको भयभीत करने वाला भयंकर संहार चलने लगा ॥ ८३ ॥ अपने प्राणोंका मोह छोड़ संग्राममें भिड़तेहुए देव दानवोंका महायुद्ध फिर रोंगटोंको खड़ा करने लगा, वे सब अतिबली थे, शूर थे, पर्वतकी समान आकार वाले थे ॥ ८४ ॥ सब सब अस्त्रोंके विद्वान् थे और सबोंके हाथोंमें शस्त्र खिंच रहे थे और वे दानव तथा देवता परस्परका संहार करना चाहते थे, गर्जना करने पर उनका शब्द मेघके गड़गड़ानेकी समान प्रतीत होता था ॥ ८५ ॥ फिर वह भयंकर शब्द चर और स्थावर पदार्थोंको कँपाने लगा उससमय अरुणकी समान (लाल) और भयंकर धूल छागई८६और देवता तथा दानवोंके झुण्डोंमे उठकर दशों दिशाओंको रोक लिया, वे कौशेय अरुण और पाण्डु वर्णकी धूल परस्पर अट जानेके कारण कुछ न देख सके, उस समय न ध्वजा दीखती.

स्कन्धः शार्दूलसमविक्रमः ।९०॥ तस्य निष्पतमानस्य दानवैः संवृतस्य च । श्रूयते तुमुलः शब्दो न रूपाणि चकाशिरे ॥९१॥ दानवास्तत्र संक्रुद्धा दानवानेव जघ्निरे । त्रिदशा त्रिदशांश्चैव निजघ्नुस्तुमुले तदा ॥ ९२ ॥ न परांश्च विनिघ्नन्तः स्वांश्च युद्धे महासुराः । रुधिरार्द्रां तथा चक्रुर्मेदिनीं च महासुराः ॥९३॥ ततस्तु रुधिरौघेण संसिक्तमुदितं रजः । शरीरशतसंकीर्णं बभूव धरणीतलम् ॥ ९४ ॥ शूलशक्तिगदाखड्गपरिघप्रासतोमरैः । त्रिदशा दानवाश्चैव जघ्नुरन्योऽन्यमाहवे ॥ ९५ ॥ बाहुभिः परिघाकारैः निघ्नन्तः परिघैस्तथा । रुद्रपारिषदान् सर्वान् मर्दयन्ति स्म दानवाः । रुद्रपारिषदाश्चैव महाद्रुममहाश्मभिः ।९६।

थी, न पताका दीखती थी, न कवच दीखता था और न घोड़ा देखता था और आयुध रथ तथा सारथिका भी दीखना बन्द होगया, वे दौड़ते हुए परस्पर कहते थे, कि इस उग्रग्रीवके फटे हुए मुखमेंसे ज्वालाएँ निकल रही हैं । इसके कंधे सिंह और बैलकी समान हैं और पराक्रम सिंहकी समान है ॥ ८७-९० ॥ दानवोंसे घिरे हुए और धमक कर आते हुए इसका तुमुल शब्द सुनाई आरहा है और अब रूप भी पहिचानमें नहीं आते ॥ ९१ ॥ उस समय दानव क्रुद्ध होकर दानवोंको ही मारने लगे और देवता भी देवताओंको मारने लगे ॥ ९२ ॥ देवता परायोंको न मार कर युद्धमें अपनोंको ही मारने लगे तथा बड़े २ राक्षसोंने भी (आपसमें प्रहार करके) पृथ्वीको रुधिरसे गीली कर दिया ॥ ९३ ॥ तदनन्तर रुधिरसे भीगी हुई धूल उड़ने लगी, और पृथ्वी पर सैकड़ों ल्हाशें पड़ गईं ॥९४॥ उस समय देवता और दानव शूल शक्ति गदा खड्ग परिघ प्रास और तोमरोंसे परस्परका संहार करने लगे ॥९५॥ उससमय दानव परिघकी समान आकार वाली भुजाओंसे और परिघोंसे रुद्रके

विदारयन्नतिक्रम्य शस्त्रैश्चादित्यसन्निभैः । एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धः केशी दानवसत्तमः ॥ ९७ ॥ संग्राममर्षी घोरः स स्वान्यनीकानि हर्षयन् । तेषां परमसंक्रुद्धो वज्रमस्त्रमुदीरयत् ॥ ९८ ॥ वज्रेणास्त्रेण दिव्येन शस्त्रेण च महात्मना । महापारिषदाः सर्वे निहता युधि दुर्जयाः ॥ ९९ ॥ वज्रास्त्रपीडिता भ्रान्ता रुद्रपारिषदा युधि । विप्रकीर्णद्रुमाः पेतुः शैला वज्रहता इव ॥ १०० ॥ एवं सुतुमुलं युद्धमभवल्लोमहर्षदम् । केशिनः सह रुद्रेण तदद्भुतमिवाभवत् ॥ १०१ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे केशिरुद्रयुद्धकथनं नामाष्टपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥५८॥

वैशम्पायन उवाच । वृषपर्वा तु दैत्येन्द्रो विश्वमद्भुतदर्शनम् । निष्कुम्भं योधयामास लोहिताकसमद्युतिम् ॥ १ ॥ क्रोधमूर्च्छित

... पार्षदोंको पीटने लगे और रुद्रके पार्षद भी बड़े २ वृक्ष और बड़े २ पत्थर और सूर्यकी समान चमकदार शस्त्रोंसे राक्षसोंको विदीर्ण करने लगे, इसी समय दानवोंमें श्रेष्ठ केशी दानव कोप में भर गया ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ वह संग्रामको सहनेवाला अपनी सेनाओंको हर्षित करने लगा, और उसने बड़े भारी कोपमें भर कर वज्रास्त्रको प्रकट किया ॥ ९८ ॥ तदनन्तर उस महात्माने दिव्यवज्रास्त्रसे और शस्त्रसे समरदुर्जय सब बड़े पार्षदोंको मार डाला ॥ ९९ ॥ वज्रास्त्रसे पीड़ित हुए घूमते हुए रुद्रके पारिषद वज्रसे टूटने पर फैलेहुए पेड़ोंवाले शिखरोंकी समान गिरपड़े १०० इसप्रकार केशीका रुद्रके साथ रोमोंको हर्षित करनेवाला तुमुल और परमअद्भुत युद्ध हुआ ॥ १०१ ॥ अट्ठावनवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५८ ॥

छ छ छ

वैशम्पायनजीने कहा, कि-दानवेन्द्र वृषपर्वा बालसूर्यकी समान कान्तिवाले सम्पूर्ण अद्भुत शरीरवाले निष्कुम्भसे युद्ध

वक्त्रस्तु धुन्वन् परमकार्मुकम् । धनूंषि भेदय शत्रूणां सारथिं त्वरितोऽब्रवीत् ॥ २ ॥ अत्रैव तानत्वरितं नय मे सारथे रथम् । एते देवास्तु सहिता घ्नंति नः समरे बलम् ॥ ३ ॥ एतान् निहन्तुमिच्छामि समरश्लाघिनो रणे । एतैर्हि दानवानीकं कृतच्छिद्रमिदं महत् ॥ ४ ॥ ततः प्रजवितातश्वेन रथेन रथिनां वरः । अरीनभ्यहनत् क्रुद्धः शरजालैर्महासुरः ॥ ५ ॥ न स्थातुं देवताः शक्ताः किं पुनर्योद्धुमाहवे । वृषपर्वेषुनिर्भिन्नाः सर्वे एवाभिदुद्रुवुः ॥६॥ तान् मृत्युवशमापन्नान् वैवस्वतवशंगतान् । समीक्ष्य निहतान् ज्ञातीनवतस्थे महासुरः ॥ ७ ॥ दृष्ट्वा तं तत्र निष्कुम्भं सर्वे ते त्रिदशोत्तमाः । समेत्य सहिताः सर्वे द्रुतं तं पर्यवारयन् ८ व्यवस्थितं तु निष्कुम्भं दृष्ट्वा त्रिदशसत्तमम् । बभूवुर्बलवन्तो नै

करने लगा ॥ १ ॥ कोपसे लाल २ मुखवाला निष्कुम्भ अपने श्रेष्ठ धनुषको घुमाकर शत्रुओंके धनुषोंको देख सारथीसे कहने लगा, कि–॥२॥ हे सारथे ! तू शीघ्रतासे मेरे रथको तहाँ लेचल जहाँ पर यह देवता इकट्ठे होकर हमारी सेनाका संहार कर रहे हैं ॥ ३ ॥ मैं इन समरमें अपना महत्व दिखानेवालोंको मारना चाहता हूँ इन्होंने दानवोंकी सेनामें बड़ीभारी गड़बड़ी मचा दी है ॥४॥ तदनन्तर रथियोंमें श्रेष्ठ वह महाराक्षस कोपमें भर फुर्ती से चलनेवाले घोड़ोंसे जुतेहुए रथमें बैठ कर शत्रुओंको बाणोंसे बींधने लगा ॥ ५ ॥ देवता उस युद्धमें खड़े भी न होसके फिर वे युद्ध तो कर ही क्या सकते थे तदनन्तर वृषपर्वाके बाणों से घायल सब दानव भागने लगे उनको मृत्युके वशमें और यमराजके वशमें पड़े हुए देखकर तथा अपनी जाति वालोंको पिटतेहुए देखकर वह महाराक्षस डटगया ॥ ६ ॥ ७ ॥ निष्कुम्भ को तहाँपर खड़ाहुआ देखर सब देवता भी उसके पासको भाग आए और उसको घेर कर खड़े होगए ॥८॥ देवताओंमें उत्तम

तस्यास्त्रबलतेजसा ॥ ९ ॥ वृषपर्वा तु शैलाभं निष्कुम्भं समरे स्थितम् । महेन्द्र इव धाराभिः शरवर्षैरवाकिरत् ॥ १० ॥ अचिंतयित्वा तु शरान्छरीरे पतितान् बहून् । स्थितश्च प्रमुखे श्रीमान् ससैन्यः स महाबलः ॥ ११ ॥ संप्रहस्य महातेजा वृषपर्वाणमाहवे । अभिदुद्राव वेगेन कम्पयन्निव मेदिनीम् ॥ १२ ॥ तस्य त्वाधावमानस्य दीप्यमानस्य तेजसा । बभूव रूपं दुर्धर्षं दीप्तस्येव विभावसोः ॥ १३ ॥ रथं त्यक्त्वा महातेजाः सक्रोधः समपद्यत । वृक्षमुत्पाटयामास महातालं महोच्छ्रयम् ॥ १४ ॥ ततश्चिक्षेप तं वृक्षं निष्कुम्भो वृषपर्वणः । तं गृहीत्वा महावृक्षं पाणिनैकेन दानवः ॥ १५ ॥ विनद्य सुमहानादं भ्रामयित्वा च वीर्यवान् । सगजान् स गजारोहान् सरथान्रथिनस्तथा ॥ १६ ॥ जघान दानवस्तेन शाखिना त्रिदशांस्तदा । तमन्तकमिव क्रुद्धं

निष्कुंभको खड़ाहुआ देखकर उसके अस्त्रबलके तेजसे सब देवता बलवान् होने लगे ९ समरमें पर्वतकी समान खड़े हुए निष्कुम्भ के ऊपर वृषपर्वा इन्द्रके धारा बरसानेकी समान बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥१०॥ परन्तु वह महाबली शरीरमें लगते हुए उन बाणोंकी कुछ भी परवाह न करके अपनी सेनाको ले मुहाने पर ही डटा रहा ॥११॥ फिर वह महातेजस्वी हँसा और पृथ्वीको कँपाता हुआसा वृषपर्वाके ऊपर वेगसे दौड़ा ॥ १२ ॥ तेजसे दीप्त होकर दौड़ते हुए निष्कुम्भका रूप प्रदीप्त अग्निकी समान दुर्धर्ष होगया १३ उस महातेजस्वीने रथको छोड़कर बड़ाभारी क्रोप किया और बड़े ऊँचे ताडके पेड़को उखाड़ लिया।१४।फिर निष्कुम्भने वह वृक्ष वृषपर्वाके ऊपर फेंका परन्तु वृषपर्वाने एक एक हाथसे ही उस बड़े भारी वृक्षको पकड़ लिया १५ और वह वीर्यवान् बडी भारी गर्जनाके साथ उस वृक्षको घुमाने लगा और उस दानवने उस पेडसे देवताओंको उनके हाथियोंको उनके

समरे प्राणहारिणम् १७ वृषपर्वाणमासाद्य त्रिदशा विप्रदुद्रुवुः । समापतन्तं संक्रुद्धं त्रिदशानां भयावहम् १८ आलोक्य धन्वी निष्कुम्भश्चुक्रोध च ननाद च । स तत्र निशितैर्बाणैस्त्रिंशद्भिर्मर्मभेदिभिः १९ निर्बिभेद महावीर्यो निष्कुम्भो दानवाधिपम् । शरशक्तिभिरुग्राभिर्दैत्यानामधिपं प्रभुम् २० विद्धः समरमध्यस्थो रुधिरं्चास्रवद्बहु । उद्विग्ना मुक्तकेशास्ते भग्नदर्पाः पराजिताः २१ श्वसन्तो दुद्रुवुः सर्वे भयाद्वै वृषपर्वणः । अन्योन्यं प्रममन्थुस्ते त्रासिता वृषपर्वणा २२ पृष्ठवक्त्राः सुसंविग्ना मेत्त्यमाणा मुहुर्मुहुः । त्यक्तप्रहरणाः सर्वे कृतास्ते वृषपर्वणा २३ संग्रामे युद्धशौण्डेन तदा निष्कुम्भसैनिकाः । तत्रैव तु महावीर्यैः

हाथीसवारोंको और रथसहित रथियोंको मारना आरम्भ कर दिया समरमें प्राणोंका हरण करनेवाले यमराजकी समान कोप में भरे हुए वृषपर्वासे पाला पडनेपर देवता भागने लगे देवताओं को भयमें डालनेवाले उस दानवको कोपमें भर आते हुए देख कर धनुषधारी निष्कुम्भको बडा कोप चढा और वह गर्जना करने लगा तदनन्तर महावीर्य निष्कुम्भने दानवराजके मर्मभेदी तीस तीखे बाण मारे और उग्रबाण तथा शक्तियोंसे भी दानवराजको पीडित किया १६-२० वह घायल होगया तब समरके बीचमें उसके शरीरमेंसे वहुतसा रुधिर टपकने लगा (तदनन्तर वृषपर्वाके पराजय करने पर) हारे हुए और जिनका घमण्ड खण्डित होगया था ऐसे देवता वृषपर्वाके भयसे हांफते हुए भागने लगे उस समय उनके केश खुल गए थे वृषपर्वासे से घबडाए हुए देवता आपसमें एक दूसरेके ऊपर गिरकर उस को मसलने लगे २१ ॥ २२ वृषपर्वाने उनकी एसी दशा कर दी, कि-उनके सब आयुध छूट गए और वे घबडाकर बारम्बार पीठकी ओर देखने लगे २३ युद्धचतुर वृषपर्वाने संग्राम

प्रह्लादः कालमाहवे २४ योधयामास रक्ताक्षो हिरण्यकशिपोः सुतः । तस्य दानववीरस्य युद्धकाले जयक्रियाः ॥२५॥ चकार त्वरया युक्तो भार्गवो विजयावहाः । हुताशनं तर्पयतो ब्राह्मणांश्च नमस्यतः ॥ २६ ॥ आज्यगन्धप्रतिवहो मारुतः सुरभिर्ववौ । स्रजश्च विविधाश्चित्रा जयार्थमभिमन्त्रिताः ॥ २७ ॥ प्रह्लादस्य शुभे मूर्द्धन्यावबन्धोशनाः स्वयम् । कालेन सह संग्रामे प्रयुद्धस्य महात्मनः ॥२८॥ प्रह्लादस्यातिवीर्यस्य शान्तिं चक्रे स भार्गवः । दश शिष्यसहस्राणि भार्गवस्य महात्मनः ॥ २९ ॥ यानि दानववीराणां जेपुः शान्तिमनुत्तमाम् । अथर्वाणमयो दिव्यं ब्रह्मसंस्तवचोदितम् ॥ ३० ॥ रणप्रवेशसदृशं कर्म वैजयिकं कृतम् । ततः सर्वास्त्रविदुषः समरेष्वनिवर्तिनः ॥ ३१ ॥ विद्यया तपसा

में निष्कुम्भके सैनिकोंकी (ऐसी दुर्गति बनादी) हिरण्यकशिपु का पुत्र महावीर्यवान् प्रह्लाद भी तहाँ पर अपने नेत्रोंको लाल २ करके कालसे लड़नेलगा, युद्धके समय शुक्राचार्यने उस दानववीर की जय क्रियाओंको शीघ्रताके साथ किया था अग्निको तृप्त करते हुए और ब्राह्मणोंको प्रणाम करतेहुए प्रह्लादके सामने घृतकी गंधको बहानेवाला सुगन्धित वायु चला था और शुक्राचार्यने अपने हाथसे प्रह्लादके शुभमस्तक पर जयके लिये अभिमन्त्रितकी हुई अनेक प्रकारकी विचित्र मालाएँ बाँधदी थीं, शुक्राचार्यने कालके साथ संग्राममें लड़नेवाले अतिवीर्यवान् महात्मा प्रह्लादका शान्तिवाचन किया था महात्मा शुक्राचार्यके दशहजार चेले थे ॥ २४–२९ ॥ उन्होंने दानववीरोंके लिये श्रेष्ठ शान्तिपाठ का जप किया था और स्तुति करने योग्य दिव्य अथर्ववेदका भी जप किया था ॥ ३० ॥ इसप्रकार शुक्राचार्यने रणप्रवेशके अनुकूल विजय दिलानेवाला कर्म किया था फिर सब अस्त्रोंके जाननेवाले और समरमें पीछेको न हटनेवाले विद्या और तपसे

युक्ताः कृतस्वस्त्ययनक्रियाः । धनुर्हस्ताः कवचिनो वेगेनासुत्य-
दानवाः । बलिमभ्यर्च्य राजानं प्रह्लादं पर्यवारयन् ॥ ३२ ॥
आस्थाय परमं दिव्यं रथं पररथारुजम् । नानाप्रहरणाकीर्णं
सवज्रमिव पर्वतम् ॥ ३३ ॥ तदभूत् मुहूर्तेन क्ष्वेडितास्फोटिता-
कुलम् । मेरोः शिखरमाकीर्णं द्यौरिवाम्बुधरागमे ॥ ३४ ॥ स्रजः
पद्मपलाशानामामुच्य सुविभूषिताः । प्राणान् संपरित्यज्य निष्-
तन्ति रणप्रियाः ॥३५॥ महायुधधरः श्रीमाञ्छुभवर्मधरः प्रभुः ;
शिरस्त्राणतनुत्राणि धन्वी परमदुर्जयः ॥ ३६ ॥ सिंहशार्दूल-
दर्पाणां गद्गदां किङ्किणीकिनाम् । तस्य दैत्यसहस्राणि प्रयान्त्यग्रे
महारणे ॥ ३७ ॥ सैन्यपतिहतास्तस्य रथाः परमदुर्जयाः । सप्त-
तिर्वै सहस्राणि गजास्तावन्त एव च ॥ ३८ ॥ मध्ये व्यूहोदर-

युक्त दानवोंने स्वस्तिवाचनको कराकर हाथमें धनुष ले और कवच
को पहिर कर बलिकी पूजाकी थी फिर उन्होंने प्रह्लादको घेर
लिया ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ उस समय वे शत्रुओंके रथोंको तोड़ने
वाले दिव्य रथोंमें बैठेहुए थे उनके रथोंमें अनेक प्रकारके आयुध
भर रहे थे इस कारण वे रथ रत्नोंसे भरे हुए पर्वतोंकी समान
दिख रहे थे ॥३३॥ जिसप्रकार बादलोंके आनेपर आकाश छा
जाता है इसीप्रकार मेरु पर्वतका शिखर भी क्षण भरमें ही ताँसों
और भुजाओंके शब्दसे गुञ्जारने लगा ३४ पद्मपत्रोंकी मालाको
पहिरनेसे विभूषित रणको प्रिय समझनेवाले दानव अपने प्राणों
का मोह छोड़ कर निकलने लगे बड़े २ आयुधोंको धारण करने-
वाला श्रीमान् प्रह्लाद शुभ ढालको धारण कररहा था और
टोप तथा कवचको धारण कर रहा था, वह धनुषधारी था और
परमदुर्जय था ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ सिंह और शार्दूलकी समान दर्प
वाले और किङ्किड़ियोंकी समान बोलनेवाले एक हजार दानव
उसके आगे चल रहे थे ॥ ३७ ॥ उसके सैनिकोंने परमदुर्जय

रथस्स्तु कालनेमिर्महासुरः । धनुर्विस्फारयामास ननाद प्रजहास च ॥ ३९ ॥ तस्मिन् शतसहस्राणि पुरो यान्ति महाद्युतेः । दानवानां बलवतां शक्रप्रतिमतेजसाम् ॥ ४० ॥ स समं वर्तमानस्तु पक्षाभ्यां विस्तृतो महान् । अभवद्दानवव्यूहो दुर्भेद्यः सर्वदैवतैः ४१ षष्टीरथसहस्राणि दानवानां धनुर्भृताम् । नानाप्रहरणानां च परिमाणं न विद्यते ॥ ४२ ॥ गदापरिघनिस्त्रिंशैः शूलमुद्गरपट्टिशैः । प्रगृहीतैर्व्यराजन्त दानवाः पर्वतोपमाः ॥४३॥ गर्जन्तो विनदन्तश्च विक्रोशन्तः पुनः पुनः । अयुध्यन्त महावीर्याः समरेष्वनिवर्तिनः ॥ ४४ ॥ तत्र तूर्यसहस्राणि भेरीशंखरवाणि च । हयानां च गजानां च गर्जतामतिवेगिनाम् ॥ ४५ ॥ दुन्दुभीनां च निर्घोषं पर्जन्यनिनदोपमः । शुश्रुवे शंखशब्दश्च पटहानां च निःस्वनः ॥ ४६ ॥ तेन शंखनिनादेन भेरीतूर्यरवेण च । निर्घो-

---

सत्तर हजार रथियोंको मारडाला था और इतने ही हाथियोंको मार डाला था ॥३८॥ उसकी सेनाके व्यूहके बीचमें खड़ा होकर कालनेमि नामक बड़ाभारी राक्षस धनुषको तानने लगा और गर्जना करके हँसने लगा ॥ ३९ ॥ उस महाकान्तिवान्के साथ में भी इन्द्रकी समान तेजवाले सैंकड़ों और हजारों बलवान् दानव चल रहे थे इसप्रकार चौरस और पक्षोंसे फैला हुआ बड़ाभारी दानवव्यूह सब देवताओंसे दुर्भेद्य होगया धनुषधारी दानवोंके साठ हजार रथ थे और बहुतसे आयुधोंकी तो कुछ गिनती ही नहीं ॥४०-४२॥ पर्वतकी समान दानव हाथमें गदा परिघ तलवार शूल मुदर और पट्टिशोंको धारण कर शोभा पाने लगे४३ समरमें पीछेको न लौटनेवाले महावीर दानव बारम्बार गर्जना कर डकराकर और चीख २ कर युद्ध करने लगे ॥ ४४ ॥ तहाँ पर सहस्रों तुरहियें और भेरी शंख तथा दुन्दुभियोंका शब्द तथा हींसते हुए और चिंघाड़ते हुए अतिवेगवान् हाथी घोड़ोंका और-

येण रथानां च क्रोशतीव नभस्तलम् ॥ ४७ ॥ सागरप्रतिमौघेन
बलेन महता वृतः। मन्हादोऽयुद्धयत रणे कालान्तकयमोपमः ४८
तस्य नादेन रौद्रेण घोरेणाप्रतिमौजसः । विनेदुः सर्वभूतानि
त्रैलोक्यविकृतैः स्वनैः ॥ ४९ ॥ अन्तरिक्षात्परं त्यक्त्वा वायुश्च
परुषो ववौ । वमन्त्यः पावकं घोरं शिवाश्चैव ववाशिरे ॥५०॥
मन्हादस्तु महावीर्यः प्रहसन् युद्धदुर्मदः। उवाच वचनं श्रीमांस्त-
त्कालसममुत्तमम् ॥ ५१ ॥ अद्याहं दर्शयिष्यामि स्वबाहुबल-
मूर्जितम् । अद्य मद्बाणनिहतान् देवान् द्रक्ष्यथ संयुगे ॥ ५२ ॥
बान्धवा निहता येषां त्रिदशैरिह संयुगे । अद्य निर्वर्तयिष्यन्ति
शत्रुमांसानि दानवाः ॥ ५३ ॥ इमगद्य समुद्भूतं रेणुं समर-
मूर्द्धनि । अहं तु शमयिष्यामि शत्रुशोणितविस्रवैः ॥ ५४ ॥

शंख तथा पटहोंका शब्द सुनाई आने लगा ॥ ४५ ॥ ४६ ॥
शंखोंके शब्दसे तथा भेरी और तूरियोंके शब्दसे और रथोंकी
झनकारसे आकाश गुञ्जारने लगा ॥ ४७ ॥ समुद्रकी लहरोंकी
समान बड़े भारी सेनादलसे घिराहुआ काल अन्तक और यम-
राजकी समान प्रह्लाद रणमें विचरण करने लगा ॥४८॥ अनु-
पम बलवाले प्रह्लादके घोरनादसे सब प्राणी त्रिलोकीको डराने
वाले भयंकर स्वरसे डकराने लगे ॥४९॥ उस समय अन्तरिक्ष
को छोड़ कर रूखा वायु चलने लगा और गीदड़ियें आगको
उगलती हुई रोने लगीं ॥ ५० ॥ उस समय युद्धदुर्मद महावीर्य-
वान् प्रह्लाद हँसकर उस समयके योग्य उत्तम वचन कहने लगा,
कि-॥ ५१ ॥ आज मैं अपने भुजाओंके बलको दिखलाऊँगा,
और आज तुम देवताओंको मेरे बाणसे मरा हुआ देखोगे ५२
इस युद्धमें देवताओंने जिनके बान्धवोंको मार डाला है दानव
अपने शत्रुओंके मांससे (उन अपने पितरोंको) तृप्त करेंगे ॥५३॥
रणके मुहाने पर जो आज धूल उड़ रही है उसको मैं शत्रुओंके

तिमिरौघहतार्कन्तु सैन्यरेणुवरुणीकृतम् । आकाशं सम्पतिष्यन्ति खद्योता इव मे शराः ॥ ५५ ॥ हृष्टाः संपरिमोदध्वं देवेभ्यस्त्यजतां भयम् । अद्याहं निहनिष्यामि कालेन्द्रं धनुषा रणे ॥५६॥ तोषयिष्यामि राजानं बलिं बलवतां रणे । त्रिदशान् सगणान् हत्वा रणे चान्तकमन्तिकात् ॥ ५७ ॥ अक्षयाः संति मे तूणाः शराश्चाशीविषोपमाः । स्थातुं मे पुरतः शक्ताः के रणे जीवितप्सवः ॥ ५८ ॥ हत्वा रिपुगणांस्तुष्टिरनुरागश्च राजसु । हतस्य त्रिदिवे वासो नास्ति युद्धसमा गतिः ॥५९ ॥ तद्भयं पृष्ठतः कृत्वा रणे दानवसत्तमाः । निहत्येमानरीन् सर्वान् मोदध्वं नन्दने वने ॥६०॥ एवमुक्त्वा महत्सैन्यं प्रह्लादो दानवोत्तमः । कालसैन्यं महारौद्रं तरसा मर्दतासुरः ॥६१॥ सर्वास्त्रविद्वान् वीरश्च

रक्तके झरनोंसे शान्त करदूँगा ॥ ५४ ॥ सूर्यके द्वारा जिसमें से अन्धकार दूर होजावेगा और सेनाकी रेणुसे जो लाल हो जायगा उस आकाशमें मेरे बाण पटबीजनोंकी समान घूमेंगे ५५ अब तुम मसन्न होकर आनन्द मनाओ और देवताओंसे भय हरो आज मैं यमराजको धनुषसे मारडालूँगा ॥५६॥ आज मैं यमराजके पास देवताओंको और उनके गणोंको मारकर बलवानों में श्रेष्ठ राजा बलिको सन्तुष्ट करूँगा ॥ ५७ ॥ मेरे भाथे अक्षय हैं और मेरे बाण भी सर्पकी समान हैं रणमें जीवित रहनेकी इच्छा रखनेवाले कौनसे पुरुष मेरे सामने खड़े होसकते हैं । ५८ शत्रुओंको मारकर प्रसन्नता मिलती है और राजाओंमें सन्मान होता है, जो पुरुष मरजाता है वह स्वर्गमें रहता है अतः युद्धकी समान कोई गति नहीं है ॥५९॥ इसलिये हे श्रेष्ठ दानवो ! तुम भयको छोड़कर रणमें इन सब शत्रुओंको मारकर नन्दनवनमें आनन्द करो ॥ ६० ॥ दानवोंमें श्रेष्ठ प्रह्लाद इस प्रकार कहकर कालसेनाकी समान महाभयंकर बडीभारी देवसेनाको बलपूर्वक

नित्यं चाप्यपराजितः । युद्धे ह्यभिमुखो नित्यं स्वबाहुबलदर्पितः ॥६२॥ षष्टिं रथसहस्राणि विविधायुधधारिणाम् । प्रह्लादस्यातिवीर्यस्य ते तस्य तनया निजाः ॥ ६३ ॥ तैस्तु क्रतुशतैरिष्टं विपुलै राप्तदक्षिणैः । क्षान्ता धर्मपरा नित्यं सत्यव्रतपरायणाः ॥ ६४ ॥ दातारः प्रियवक्तारो वक्तारः शास्त्रवस्तुषु । स्वदारनिरता दान्ता ब्रह्मण्याः सत्यसंगराः ॥ ६५ ॥ यष्टारः क्रतुभिर्नित्यं नित्यं चाध्ययने रताः । इष्वस्त्रकुशलाः सर्वे बहुशो दृढविक्रमाः ॥ ६६ ॥ मत्तवारणविक्रान्ताः शत्रुसैन्यप्रमर्दकाः । दारयन्तः पदाक्षेपैः सुघोरान् वातरेचकान् ॥ ६७ ॥ युद्धोत्सुकधियां नित्यं क्रोधरञ्जितलोचनाः । संदष्टौष्ठपुटा दैत्या विनेदुर्भीमविक्रमाः । क्ष्वेडितास्फोटितरवैरन्योन्यं समहर्षयन् ६८

मसलने लगा ॥ ६१ ॥ वीर प्रह्लाद सब अस्त्रोंका जाननेवाला था सर्वदा अपराजित था रणमें सदा अभिमुख रहता था और अपनी भुजाओंके घमण्डमें भरा रहता था ॥६२॥ अनेक प्रकारके आयुधोंको धारण करने वाले साठ हजार रथी परम वीर्यवान् प्रह्लादके पुत्र थे ॥ ६३ ॥ उन सबोंने जिनमें बहुतसी दक्षिणा दीजाती है ऐसे बड़े बड़े सौ यज्ञ किये थे वे क्षमाशील थे धर्म परायण रहते थे और सत्यव्रतका सर्वदा पालन करते रहते थे६४ वे प्रियवक्ता और दाता थे तथा शास्त्रीय वस्तुओंको कहनेवाले थे अपनी स्त्रीमें ही परायण रहते थे चतुर थे ब्राह्मणभक्त थे और सत्यप्रतिज्ञ थे ॥६५॥ वे सर्वदा यज्ञोंसे पूजन करते रहते थे और सर्वदा अध्ययनमें परायण रहते थे सब बाणोंमें कुशल थे और अधिकतर दृढपराक्रमी थे ।६६। मदमत्त हाथियोंकी समान पराक्रमी और शत्रुकी सेनाको मसलने वाले थे वे अपने पैरों की धमकसे वातरेचक भयंकर वृक्षोंको दहलाने लगे॥६७॥रणमें उत्सुकताके विचारके कारण उनके नेत्र कोपसे सर्वदा लाल लाल

वेणुशंखरवैश्चैव सिंहनादैश्च पुष्कलैः । आस्फुत्याप्लुत्य सहसा रणे चक्रुरनेकशः ॥६९॥ तालपात्राणि चापानि विकृष्य सुमहाबलाः । अमृष्यमाणाः सहसा दानवाश्चापपाणयः ॥ ७० ॥ सुरासुरैरप्यजितं योधयन्ति रणेऽन्तकम् । तप्तहेमाभरणाः सर्वे ते श्वेतवाससः ॥ ७१ ॥ दानवा मानिनः सर्वे सर्वे स्वर्गाभिकांक्षिणः । सर्वे जयैषिणो वीराः सर्वे शत्रुवधोद्यताः ॥ ७२ ॥ शुशुभे सा चमूर्दीप्ता पताकाध्वजमालिनी । गजाश्वरथसंबाधा स्वर्गमार्गाभिकांक्षिणी ॥ ७३ ॥ ततः कालः सुनिर्यातो भीमो भीमपराक्रमः । निनदन् सुमहाकायो व्याधिभिर्बहुभिर्वृतः ७४ ददर्श महतीं सेनां दानवानां बलीयसाम् । अभिसञ्जातदर्पाणां कालं समभिगर्जताम् ॥ ७५ ॥ तदायान्तं तदानीकं दानवानां

रहते थे वे भयंकर पराक्रम करने वाले अपने होठोंको दाब कर गर्जने लगे ॥ ६८ ॥ वेणु शंख और शङ्खोंके बड़े भारी नादसे (उत्साहमें भर कर) वे रणमें कूद २ कर बातें करने लगे ६९ चापपाणि महाबलवान् दानव तालभरके धनुषोंको तान देवता और दानवोंसे अजित कालके साथ रणमें युद्ध करने लगे, वे सब दानव तपे हुए सुवर्णके आभूषणोंको धारण कर रहे थे और श्वेत वस्त्रोंको धारण कर रहे थे ॥ ७० ॥ ७१ ॥ वे सब दानव मानी थे और स्वर्गको चाहते थे, सब जय चाहते थे और सब शत्रुका वध करनेके लिए उद्यत थे ।७२। पताका और ध्वजाओंकी मालाको धारण करने वाली, हाथी घोड़े तथा रथोंसे खचाखच भरी हुई स्वर्गके मार्गकी अभिलाषा करने वाली वह प्रदीप्त सेना शोभा पानेलगी ॥ ७३ ॥ तदनन्तर भयंकर पराक्रम करने वाला महाकाय भयंकर काल बहुतसी व्याधियोंको साथले गर्जना करता हुआ निकल आया ७४ और उसने जिनको अभिमान उत्पन्न होगया था और जो कालकी ओर देखकर गर्जना

तरस्विनाम् । प्रतिलोमं मकाराशु व्याधिभिः सहितोऽन्तकः ७६
प्रविश्य ध्वजिनीं चैषां पातयामास दानवान् । कालो रुधिर-
रक्ताक्षः स्वेनानीकेन संवृतः ॥ ७७ ॥ प्रव्हादबलमत्युग्रं प्रव्हादं
च महाबलम् । आजघान रणे कालो दण्डमुद्गरपट्टिशैः ॥७८॥
शरशक्त्यृष्टिखड्गाश्च शूलानि मुशलानि च । गदाश्च परिघा-
श्चैव विचित्राश्च परश्वधाः ७९ धनूंषि च विचित्राणि शतघ्नी-
श्च शिलायसीः । पात्यन्ते व्याधिभिर्युद्धे दानवानां चमूमुखे८०
बहवो व्याधयो युद्धे बहूनसुरपुङ्गवान । व्याधीनपि च दैत्यौघा
निजघ्नुर्बहवो बहून् ८१ शूलैः प्रमथिताः केचित् केचिच्छिन्नाः
परश्वधैः । परिघैराहताः केचित् केचिच्च परमायुधैः । केचिद्द्विधा
कृताः खड्गैः स्फुरन्तः पतिता भुवि ॥ ८२ ॥ व्याधयो दानवै-

कर रहे थे उन बलवान् दानवोंकी बड़ी भारी सेनाको देख ७५
बलवान् दानवोंकी आतीहुई बड़ीभारी सेनाको देखते ही यम-
राज और व्याधियोंने शीघ्रतासे उसको प्रतिलोमरीतिसे घेर
लिया ७६ उनकी सेनामें घुसनेके अनन्तर रुधिरकी समान लाल
नेत्र वाला बलवान काल और उसकी सेना दानवोंको गिराने
लगी ७७ काल रणमें दण्ड मुद्गर और पट्टिशोंसे अति उग्र
प्रव्हादके सैनिकदलको और महाबली प्रव्हादको मारनेलगा७८
उस समय व्याधियें दानवोंकी सेनाके मुहाने पर बाण शक्ति
ऋष्टि खड्ग शूल मूसल गदा परिघ और विचित्र परश्वध
विचित्र धनुष और ठोस लोहेसे बनी हुई शतघ्नी (तोपों) को
चलाने लगीं ७९-८० बहुत सी व्याधियें बहुतसे असुरपुङ्गवों
को पीडित करने लगीं फिर दानवोंके झुण्डके झुण्ड इकट्ठे हो
कर बहुतसी व्याधियोंको मारने लगे ॥ ८१ ॥ शूलोंसे मथेहुए
परश्वधोंसे छिन्न हुए, परिघोंसे पीटे हुए और श्रेष्ठ आयुधोंसे
तथा खड्गोंसे दो टूक होकर पृथ्वीपर पड़े हुए बहुतसे सैनिक

रैव नानाशस्त्रैर्विदारिताः । ते चापि व्याधिभिः सर्वे विविधैरा-युधोत्तमैः ॥ ८३ ॥ खड्गैश्च मुशलैस्तीक्ष्णैः प्रासतोमरमुद्गरैः । भिन्नाश्च दानवाः सर्वे निकृत्ताश्च परश्वधैः ॥ ८४ ॥ मुद्गरैः पट्टिशैश्चैव व्याधिभिश्च महाबलैः । कृत्वा शस्त्रैरनेकैश्च मुष्टि-भिश्च हता भृशम् ॥ ८५ ॥ वेमुः शोणितमन्योन्यं विवृध्यदशनेक्षणाः । आर्तस्वरं च नदतां सिंहनादं च गर्जताम् ॥ ८६ ॥ बभूव तुमुलः शब्दः संग्रामे लोमहर्षणे । मुष्टिभिश्चोत्तमांगानि तथोगात्राणि चासकृत् ॥ ८७ ॥ सादितानि महीं जग्मुस्तिष्ठता-मेव संयुगे । अस्रफेना ध्वजावर्ता छिन्नबाहुमहोरगा ॥ ८८ ॥ शूलशक्तिमहामत्स्या चापग्राहसमाकुला । रथेषूपलसंबंधा ध्वज-द्रुमलतावृता ॥८९॥ सशब्दघोरविस्तारा लोहितोदाऽभवन्नदीः । स्वधनुःशक्रधनुषौ कांचनांगदविद्युतौ ॥ ९० ॥ तौ दैत्यकाल-

रहे खड़ा रहे थे ॥ ८२ ॥ दानवोंने अनेक प्रकारके शस्त्रोंसे व्याधियोंको विदीर्ण कर डाला और उन सबको भी व्याधियों ने उत्तम शस्त्रोंसे घायल कर डाला ॥ ८३ ॥ उस समय दानव खड्ग मूसल तीक्ष्ण प्रास तोमर मुद्गर और परश्वधोंसे कुचले गए थे और मसल गए थे ॥ ८४ ॥ व्याधियोंने उनको मुद्गर और पट्टिश तथा अनेक शस्त्रोंसे काटकर मुक्कोंसे भी बहुत मारा ८५ उस समय उन्होंने आँख और दाँत फैला दिये तथा रक्त ओकने लगे, आर्तस्वर करते हुए योधाओंका तुमुल शब्द उस रोमहर्षण संग्राममें होने लगा युद्धमें खड़े हुए पुरुषोंके शिर मुक्कोंसे और अंग प्रत्यंग थप्पड़ोंसे पृथ्वी पर गिरने लगे, उस समय आँसु-रूप फेन वाली, ध्वजारूपी भ्रमर वाली, कटी हुई भुजा रूपी बड़े २ सर्प वाली, शूलशक्तिरूपी बड़े २ मत्स्यों वाली, चाप-रूपी ग्राहसे व्याकुल, रथकी ईषारूपी पत्थरोंसे घिरी हुई, ध्वज-दण्डरूपी लताओंसे आवृत, शब्दरूपी घोर विस्तार वाली रक्त

जलदौ शरधारां विमुञ्चताम् । तौ महामेघसंकाशौ रथनागगतौ तदा ॥९१॥ बभूवतुरभिक्रुद्धौ साम्बुगर्भाविवाम्बुदौ । तप्तकाञ्चन-सन्नाहौ दिव्यहारविभूषितौ ॥ ९२ ॥ तौ विरेजतुरायत्तौ सूर्य-वैश्वानरोपमौ । तौ महाबलसंकाशावन्योन्यस्य च मूर्धनि ॥९३॥ शक्राशनिसमस्पर्शैर्बाणैर्जघ्नतुराहवे । परस्परं समायान्त तयोर्युधि दुरासदम् ॥ ९४ ॥ नाशंसन्त तदा योधा जीवितान्यपि संयुगे । शरैर्विभिन्नसर्वांगा युधि प्रक्षीणबान्धवाः । निपेतुर्योधमुख्यास्तु रुधिरोक्षितवक्षसः ॥ ९५ ॥ पतितैर्निष्पतद्भिश्च पात्यमानैश्च संयुगे । बभूव भूः समाकीर्णा योधैरुद्गतजीवितैः ॥९६॥ अगृह्णतो शरान् घोरांस्ते च सन्दधतोस्तयोः अंतरं ददृशे कश्चित्प्रयतादपि

की नदी बहने लगी, इन्द्रधनुषकी समान उन दोनोंने अपने २ धनुषोंको सुवर्णके बाजूबन्दोंसे विभूषित कर दिया था ।८६-९०। तदनन्तर रथ और हाथी पर बैठे हुए वे दानव और काल मह-मेघकी समान बाणधाराको बरसाने लगे ॥९१॥ वे दोनों जल भरेहुए मेघोंकी समान क्रोधमें भर गये वे तपे हुए सुवर्णके कवच पहिररहे थे और दिव्य हारसे विभूषित थे॥९२॥ नियम-पूर्वक खड़ेहुए वे दोनों सूर्य और अग्निकी समान दमकनेलगे,वे दोनों महाबली सेनाके मुहाने पर खड़े होकर परस्परकी सेनाका संहार करनेलगे, परस्पर लड़ते हुए उन दोनोंके युद्धके बीचमें पड़कर योधा अपने जीवनका भी संदेह करनेलगे,बाणोंसे घायल अङ्गों वाले और युद्धमें जिनके बान्धव नष्ट होगए थे वे मुख्य २ योधा छातीसे रक्तको बहाकर गिरने लगे ॥ ९३-९५ ॥युद्धमें गिरे हुए गिराये हुए और गिरते हुए प्राणहीन योधाओंसे पृथिवी भर गई ॥ ९६ ॥ वे योधा भयंकर बाणोंको उठाते थे और धनुषों पर बाणोंको चढाते थे उनके इस कर्ममें कितना समय लगता है, इसको कोई यत्नपूर्वक देखकर भी नहीं देख

संयुगे ॥९७॥ लघुत्वाच्च महाबाहू युद्धशौण्डौ महाबलौ। मंडली-
भूतधनुषौ सकृदेव बभूवतुः ॥ ९८ ॥ प्रह्लादस्य च बाणौघैर्द्रु-
द्राववान्तकवाहिनी। उह्यमाना बलवता वायुनेवाभ्रमण्डलम् ९९
हतदर्पं तु विज्ञाय प्रह्लादः कालमाहवे। अपयातं च समरे द्विषन्तं
संगतवर्गं तम् ॥ १०० ॥ मत्वा वशगतं चैव प्रह्लादो युद्धदुर्मदः।
तत्रैवान्यां चमूं भूयः संममर्द महासुरः ॥ १ ॥ कालप्रह्लादयो-
र्युद्धमभवद्यादृशं पुरा। तादृशं सर्वलोकेषु न भूतं न भविष्यति २
एवमद्भुतवीर्येण महारणकृतव्रणः। प्रह्लादस्तत्र युद्धेन काल-
स्त्वपहृतो रणात् ॥ १०३ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कालप्रह्लादयुद्धे
एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

वैशम्पायन उवाच । धनाध्यक्षमनुह्लादः प्रह्लादस्यानुजो

सकता था ॥ ९७ ॥ उन दोनों महाबली युद्धचतुर पुरुषोंने
एक साथ ही अपने धनुषोंको मण्डलाकार कर लिया ॥९८॥
बलवान् वायु जिस प्रकार बादलोंको भगा देता है, इसी प्रकार
प्रह्लादके बाणोंसे यमराजकी सेना भागने लगी ९९ प्रह्लाद
ने रणमें कालको गर्वरहित हुआ जानकर और समरमें उस
शत्रुको भागा हुआ अनुमान कर और वशमें फँसा हुआ समझ
कर (फिर दूसरी सेना पर धावा कर दिया) और उस सेना
को वह महासुर प्रह्लाद मसलने लगा ॥ १००-१०१ ॥ काल
और प्रह्लादका जैसा युद्ध पहिले हुआ था वैसा युद्ध सब लोकों
में न हुआ है और न कभी होगा ॥१०२॥ इसप्रकार महावीर्य-
वान् प्रह्लाद बड़ी भारी लड़ाईमें घायल होगया था, इस युद्धमें
प्रह्लाद तो जीत गया था और काल रणमेंसे भाग गया था १०३
उनसठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५९ ॥ ❀ ❀ ❀
वैशम्पायनजीने कहा, कि-प्रह्लादका छोटा भाई बलवान्

बली । ससैन्यं योधयामास क्षोभयन् यक्षवाहिनीम् ॥१॥ महता च बलौघेन स्वनुह्लादो सुरोत्तमः । अर्दयामास संक्रुद्धो धनाध्यक्षं प्रतापवान् ॥ २ ॥ अमृष्यमाणास्त्रिदशानाहवस्थानुदायुधान् । चकार कदनं घोरं धनुष्पाणिर्महासुरः ॥ ३ ॥ आवर्त इव संजज्ञे बलस्य महतो महान् । क्षुभितस्याप्रमेयस्य सागरस्येव संप्लवः ॥ ४ ॥ त्रिदशानां शरीरैस्तु दानवानां च मेदिनी । बभूव निचिता घोरैः पर्वतैरिव संप्लवे ॥ ५ ॥ मेरुपृष्ठं तु रक्तेन रञ्जितं सम्प्रकाशते । सर्वतो माधवे मासि पुष्पितैरिव किंशुकैः ॥ ६ ॥ हतैर्वीरैर्गजैरश्वैः प्रावर्तत महानदी । शोणितौघा महाघोरा यमराष्ट्रविवर्धिनी ॥ ७ ॥ शकृन्मेदोमहापंका सम्प्रकीर्णान्त्रशैवला ॥

अनुह्लाद यक्षोंकी सेनाको क्षुब्ध करता हुआ कुबेरसे और उसकी सेनासे युद्ध करने लगा १ असुरोंमें श्रेष्ठ प्रतापी अनुह्लाद क्रोधमें भरकर बड़ी भारी सेनाको साथले धनके स्वामी कुबेरको पीड़ित करने लगा ॥ २ ॥ हाथमें आयुध उठाकर युद्धमें खड़े हुए देवताओंको वह सह न सका और हाथमें धनुषको लेकर भयंकर संहार करने लगा ॥ ३ ॥ अप्रमेय समुद्रके क्षुब्ध होने पर जिसप्रकार रुहाई आती है इसीप्रकार उसकी बड़ी भारी सेनाकी रुहाई आनेलगी ॥ ४ ॥ पृथ्वी दानवोंके और देवताओंके शरीरोंसे प्रलयकालमें पर्वतोंसे छाई हुईकी समान दीखने लगी ॥५॥ जिसप्रकार वैशाखके महीनेमें खिले हुए पुष्पोंवाले टेसूके फूल होते हैं तैसे रक्तसे रंगा हुआ मेरुका शिखर प्रकाशित होने लगा ॥ ६ ॥ मरे हुए वीर हाथी और घोड़ोंसे बड़ी भारी नदी बह चली उसमें रक्त रूप जल था वह महाघोर नदी यमराजके राज्यको बढ़ाने वाली थी ॥७॥ विष्ठा और मेदकी कीच मचरही थी इधर उधर बिखरी हुई अँतड़ियें ही उसमें सिवार थीं कटेहुए धड और शिर उसमें मछलियें थीं अङ्गोंके अवयव-

छिन्नकायशिरोग्रीवा अङ्गावयवशाद्वला ॥ ८ ॥ गृध्रहंससमाकीर्णा केकिसारसनादिता । वसाफेनसमाकीर्णा मोत्कृष्टस्तनितस्वरा ॥ ९ ॥ तां कापुरुषदुस्तारां युद्धभूमौ महानदीम् । नदीमिवातपापाये हंससंघोपशोभितम् ॥ १० ॥ त्रिदशा दानवाश्चैव तेरुस्ते दुस्तरां नदीम् । यथा पद्मरजोध्वस्तां नलिनीं गजयूथपाः ॥ ११ ॥ ततः सृजन्तं बाणौघाननुह्लादं रथे स्थितम् । ददर्श तरसा देवो निघ्नन्तं यक्षवाहिनीम् ॥ १२ ॥ क्रुद्धस्ततो दैत्यबलं मृदगामास वित्तपः । विक्षिपन्निव खे वायुर्महाभ्रपटलं बलात् ॥ १३ ॥ समीक्ष्य तुमुलं युद्धमनुह्लादश्च वीर्यवान् । रथेनादित्यवर्णेन कुबेरमभिदुद्रुवे ॥ १४ ॥ स धनुर्धन्विनां श्रेष्ठो विकृष्य रणमूर्धनि । उत्ससर्ज शितान् बाणान् वित्तेशस्य महात्मनः ॥ १५ ॥ कुबेरं प्राप्य ते बाणा निर्भिद्य

थी शाद्वलतथा गृद्धरूपी हंसोंसे वह भररही थी मयूर और सारसोंसे गुञ्जार रही थी उसमें चरबीके झाग उठ रहे थे बड़ी भारी कड़कका उसमें स्वर होरहा था वर्षाऋतुमें हंसोंसे सुशोभित नदीकी समान युद्धभूमिमें कायर पुरुषोंसे दुस्तर उस महानदी को देवता और दानव इसप्रकार पार करनेलगे जिसप्रकार पद्मरजसे उद्ध्वस्त नलिनीको हाथियोंके झुंड पारकर जाते हैं९-११ तदनन्तर रथमें स्थित होकर बाणोंको छोड़ते हुए अनुह्लादको कुबेरने देखा, कि-वह शीघ्रतासे यक्षसेनाका संहार कररहा है१२ तदनन्तर धनाध्यक्ष क्रोधमें भरकर दानवदलको इसप्रकार पीड़ित करने लगा जिसप्रकार वायु आकाशमें क्रीड़ाकर बलपूर्वक घनघटाओंको पीड़ित करने लगता है ॥ १३ ॥ वीर्यवान् अनुह्लाद ने युद्धको जोर पकड़ता हुआ देखकर सूर्यकी समान वर्णवाले रथमें बैठकर कुबेरके ऊपर धावा किया ॥ १४ ॥ धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ अनुह्लाद रणके मुहाने पर धनुषको तानकर तेज बाणोंको

सुसमाहिताः । अपरान् पृष्ठतो जघ्नुर्व्यासक्तान् यक्षराक्षसान् १६
देवः शरैरभिहतो निशितैर्ज्वलनोपमैः । अनुह्लादं मत्युदियात्
संक्रुद्धः परमाहवे ॥१७॥ ततो वैश्रवणो राजा क्रुद्धो यक्षगणैः
सह । ववर्ष शरवर्षाणि दानवं प्रति वीर्यवान् ॥ १८ ॥ तद्यथा
शारदं वर्षं गोवृषः शीघ्रमागतम् । अपारयन् वारयितुं प्रतिगृह्य
न्निमीलितः ॥ १९ ॥ एवमेव कुबेरस्य शरवर्षं महासुरः । निमी-
लिताक्षः सहसा दैत्यः सहति दारुणम् ॥ २० ॥ रोषितः शर-
वर्षेण धनदेन महासुरः । इन्द्रकेतुप्रतीकाशमभितोऽपश्यत द्रुमम् २१
प्रवृद्धशाखाविटपं तरुणाङ्कुरपल्लवम् । उत्पाटय कुपितो दैत्य-
स्तरुं फलसमन्वितम् ॥ २२ ॥ निजघान हयाञ्छ्रेष्ठान् कुबेरस्य
महात्मनः । तस्य कर्म महाघोरं दृष्ट्वा सर्वे महासुराः ॥ २३ ॥

महात्मा कुबेरके ऊपर बरसाने लगा ॥ १५ ॥ वे बाण कुबेरके पास पहुँच उसके शरीरको भेद उसकी पीठके पीछे खड़े हुए यक्ष राक्षसोंको घायल करनेलगे १६ अग्निकी समान तीखे बाणों से घायल होकर योधा क्रोधमें भरगए और महायुद्धमें अनुह्लाद के ऊपर चढ़ने लगे १७ तदनन्तर कोपमें भरेहुए बलवान् राजा कुबेर और उनके सैनिक यक्ष दानवोंकी ओर बाणोंकी बौछार करने लगे ॥१८॥ जिसप्रकार सांड एकाएक बरसती हुई शरद् ऋतुकी वर्षाको हटानेमें असमर्थ होकर नेत्रोंको मीचकर उसे सह लेता है १९ इसीप्रकार कुबेरकी सहसा होती हुई दारुण बाण-वर्षाको वह दानव नेत्रोंको मीचकर सहने लगा ।२०। तदनन्तर कुबेरकी बाणवर्षासे रोषमें भराहुआ वह महाराक्षस किसी इन्द्र-केतुकी समान बड़े भारी वृक्षको चारों ओर देखने लगा । २१ । फिर उस कोपमें भरेहुए दानवने बड़े २ गुद्दे और विटपवाले तरुण अङ्कुर और पल्लव वाले फलोंसे युक्त वृक्षको उखाड कर महात्मा कुबेरके श्रेष्ठ घोडोंको मारडाला, बड़े बड़े सब राक्षस

सिंहनादं नदन्ति स्म अनुन्हादप्रहर्षिताः । तयोस्तु तुमुलं युद्धं संजज्ञे देवदैत्ययोः ॥ २४ ॥ ततस्तौ क्रोधरक्ताक्षावन्योन्यवधकाङ्क्षिणौ । अन्योन्यं विविधैः शस्त्रैः घोरैर्जघ्नतुराहवे ॥२५॥ त्रिदशा दानवान् सर्वे मथित्वा प्रणदंस्तथा । दानवैस्त्रिदशाश्चापि क्रुद्धैर्भुवि निपातिताः ॥ २६ ॥ दानवास्त्वथ संक्रुद्धास्त्रिदशान्निशितैः शरैः। विव्यधुर्वज्रसंकाशैः कंकपत्रैरजिह्मगैः२७ विदार्यमाणा दैत्यौघैस्त्रिदशास्तु महाबलाः । अमर्षिततराश्चक्रुर्युद्धकर्माण्यभीतवत् ॥ २८ ॥ ते गदाभिः सुभीमाभिः पट्टिशैः शूलमुद्गरैः । परिघैश्च सुतीक्ष्णाग्रैर्दानवाः पीडिताः शरैः ।२९। शरनिर्भिन्नगात्राश्च खड्गविच्छिन्नवक्षसः । जगृहुस्ते शिलाश्चैव द्रुमांश्चासुरसत्तमाः ॥ ३० ॥ ते भीमसत्त्वा दितिजा नर्दमानाः पुनः पुनः। ममन्थुस्त्रिदशान् वीर्याच्छतशोऽथ सहस्रशः३१

उसके महाघोर कर्मको देखकर प्रसन्न हो सिंहनाद करने लगे फिर उन देव और दानवमें तुमुल युद्ध होने लगा ॥२२-२४॥ तदनन्तर क्रोधसे लाल नेत्र वाले और परस्परका वध करना चाहनेवाले वे दोनों अनेकप्रकारके भयंकर अस्त्रोंसे परस्पर प्रहार करने लगे २५ उस समय सब देवता दानवोंको मसलकर गर्जना करने लगे तब कोपमें भरे हुए दानवोंने भी देवताओंको भूमिमें लुटा दिया २६ तदनन्तर क्रोधमें भरे हुए दानव कंकपत्र लगे हुए सूधे जाने वाले वज्रकी समान तीक्ष्ण बाणोंसे देवताओंको घायल करने लगे ॥२७॥ दैत्योंके पीटने पर महाबली देव परम कोपमें भरकर निर्भय पुरुषकी समान युद्ध करने लगे उस समय भयंकर गदा पट्टिश शूल मुद्गर सुतीक्ष्ण परिघोंसे तथा बाणोंसे दानव पीडित होने लगे । २७ । २९ । तदनन्तर बाणोंसे फटे हुए शरीर वाले और खड्गसे फटीहुई छाती वाले असुरसत्तमोंने वृक्ष और शिलाओंको उठालिया ३० तदनन्तर भयं-

ततस्तु तुमुलं युद्धं तेषां समभिवर्तत। शिलाभिर्विपुलाभिश्च शतशश्चैव पादपैः॥३२॥ परिघैः पट्टिशैर्भल्लैर्भिन्दिपालैश्च परश्वधैः। केचिन्निकृत्तशिरसः केचिच्च विदलीकृताः॥ ३३ ॥ केचिद्विनिहता भूमौ रुधिरार्द्राः सुरासुराः। केचिद्रणाजिरान्नष्टाः परस्परवधार्दिताः॥ ३४॥ विभिन्नहृदयाः केचिच्छिन्नपादाश्च शेरते। विदारितास्त्रिशूलैश्च केचित्तत्र गतासवः॥ ३५ ॥ तत् सुभीमं महद्युद्धं देवदानवसङ्कुलम्। बभूव तुमुलं युद्धं शिलापादपसङ्कुलम्॥ ३६ ॥ धनुर्ज्यातन्त्रिमधुरं हिक्कातालसमन्वितम्। आर्तस्तनितघोषाढ्यं युद्धं गान्धर्वमाबभौ॥ ३७ ॥ कुबेरः सधनुष्पाणिर्दानवानूणमूर्धनि। दिशो विद्रावयामास सङ्क्रुद्धः शरवृ-

कर आयुधोंको धारण करने वाले राक्षस बारम्बार गर्जना करके बलपूर्वक सैंकडों और सहस्रों दैत्योंको मथने लगे।३१। तदनन्तर उनमें बडी२ शिला और सैंकडों वृक्षोंसे तुमुल युद्ध होने लगा ३२-परिघ पट्टिश भल्ल भिन्दिपाल और फरसोंसे किन्हींके शिर कट गए और बहुतसे कुचल गए ३३ कुछ रुधिर से गीले देवता और असुर मर कर पृथ्वीमें गिरपड़े और कुछ परस्परके वधसे भयभीत होकर रणांगणसे भागगए।३४। कोई फटे हुए हृदय वाले और कोई कटेहुए पाँव वाले पृथ्वीमें सो रहे थे और त्रिशूलोंसे विदीर्ण हुए बहुतसे प्राणी निर्जीव होकर तहाँ पर सोरहे थे।३५। तदनन्तर वह देवदानवोंसे घिरा हुआ भयंकर महायुद्ध पत्थर और वृक्षोंके चलने पर तुमुल रीतिसे होने लगा ३६ वह धनुषकी प्रत्यञ्चारूपी मधुर तन्त्री वाला और हिचकीरूपी तालसे युक्त आर्त पुरुषोंकी चीखरूपी घोषका धनी गान्धर्वयुद्ध शोभा पाने लगा ३७ तदनन्तर कोपमें भरा हुआ कुबेर हाथमें धनुष ले बाणोंकी वर्षा कर दानवोंको रणके मुहाने परसे बाण बरसा कर दशों दिशाओंमेंको भगाने लगा।३८।

छिभिः ॥३८॥ कुवेरेणार्दितं सैन्यं विद्रुतं प्रेक्ष्य दानवः । अभ्य-द्रवदनुह्लादः प्रगृह्य महतीं शिलाम् ॥ ३९ ॥ क्रोधाद् द्विगुणरक्ताक्षः पितृतुल्यपराक्रमः । शिलां तां पातयामास कुवेरस्य रथोत्तमे ४० आपतन्तीं शिलां दृष्ट्वा गदापाणिर्धनाधिपः । रथादाप्लुत्य वेगेन वसुधायां व्यतिष्ठत ॥ ४१ ॥ सचक्रकूबरहयं सध्वजं सशरा-सनम् । भंक्त्वा रथोत्तमं तस्य निपपात शिला भुवि ॥ ४२ ॥ विपथ्य तु कुवेरस्य प्रह्लादस्यानुजो रथम् । शूराणां कदनं चक्रे सस्कन्धविटपैर्द्रुमैः ॥ ४३ ॥ निर्भिन्नशिरसो भग्नास्त्रिदशाः शोणितोक्षिताः । द्रुमभग्नव्यथितांगाश्च निपेतुर्धरणीतले ॥ ४४ ॥ विद्राव्य विपुलं सैन्यमनुह्लादो महासुरः । गिरिशृङ्गं गृहीत्वा तु कुवेरमभिदुद्रुवे ॥ ४५ ॥ तमापतन्तं धनदो गदामुद्यम्य वीर्यवान् । विनदित्वाहयामास दानवेन्द्रं महाबलम् ॥ ४६ ॥ तस्य दैत्यस्य

अनन्तर अपनी सेनाको कुवेरके द्वारा अर्दित हो भागती हुई देख कर बड़ीभारी शिलाको उठाकर दौड़ा ॥ ३९ ॥ क्रोधसे दुगने लाल नेत्रवाले और पिताकी समान पराक्रम करनेवाले उस राक्षसने कुवेरके श्रेष्ठ रथ पर उस शिलाको फेंका ॥४०॥ कुवेर शिलाको आती हुई देख कर हाथमें गदा ले वेगके साथ रथमेंसे कूद कर पृथ्वी पर खडे होगए ॥४१॥ और उसकी शिला भी चक्र कूबर घोड़े और धनुषसहित श्रेष्ठ रथको नष्ट कर पृथ्वीमें गिर पड़ी ॥ ४२ ॥ प्रह्लादका छोटा भाई अनुह्लाद कुवेरके रथ को इसप्रकार नष्ट करके शुद्द वाले वृक्षसे शूरोंका संहार करने लगा ॥ ४३ ॥ उस समय शिर फूटनेके कारण रक्तसे सरोबार देवता वृक्षसे अंग टूटने पर पृथ्वी पर गिरने लगे ॥४४॥ महा-राक्षस अनुह्लाद इसप्रकार बहुतसी सेनाको भगानेके अनन्तर पर्वतके शिखरको उठा कर कुवेरके ऊपर दौड़ा ॥४५॥ उसको आता हुआ देखकर वीर्यवान् कुवेरने अपनी गदा उठा ली और

संक्रुद्धो गदां तां बहुकण्टकाम् । न्यपातयत वित्तेशो दानवस्योरसि प्रभो ॥ ४७ ॥ दैत्यः संक्रोधताम्राक्षस्तं प्रहारमचिंतयत् । वित्तेशस्योपरि तदा गिरिश्रृंगमपातयत् ॥ ४८ ॥ स विह्वलितसर्वांगो गिरिशृंगेण ताडितः । पपात सहसा भूमौ विशीर्ण इव पर्वतः ॥ ४९॥ वित्तेशं विह्वलं दृष्ट्वा सर्वे ते यक्षराक्षसाः । परिवार्य महात्मानं ररक्षुर्भीमविक्रमाः ॥ ५० ॥ मुहूर्तं विह्वलो भूत्वा पुनर्विश्रवसः सुतः । उपतस्थे च सहसा धनदः क्रोधमूर्छितः ५१ स ननाद महानादं त्रैलोक्यमभिनादयन् । जनयन्निव निर्घोषं विधमन्निव पर्वतान् ॥ ५२ ॥ तमवध्यं तु विज्ञाय निहन्तुं पुनरुत्थितम् । प्रेक्ष्य पिंगाक्षमायान्तं दानवा विप्रदुद्रुवुः ॥ ५३ ॥ तांस्तु विद्रवतो दृष्ट्वानुह्लादो ह्यसुरोऽब्रवीत् । कालनेमिं दानवं च

गर्जना करके महाबली दानवराजको बुलाने लगे॥४६॥ हे प्रभो ! उस दैत्य पर कुपित हुए कुबेरने अनेक काँटे वाली गदाको राक्षसकी छातीमें मारा ॥४७॥ तब क्रोधके कारण दैत्यके नेत्र लाल २ होगए और उसने गदाके प्रहारकी ओर कुछ ध्यान न देकर कुबेरके ऊपर पर्वतका शिखर फैंका ॥ ४८ ॥ पर्वतका शिखर लगने पर कुबेरके सब अङ्ग विह्वल होगए और वह विदीर्णहुए पर्वतकी समान भूमिमें गिर पड़े ॥ ४९ ॥ धनाधिप कुबेरको विह्वल हुआ देख कर भयंकर पराक्रम करने वाले यक्ष राक्षस महात्मा कुबेरको घेरकर उनकी रक्षा करने लगे ॥५०॥ मुहूर्त भर तक विह्वल रहनेके अनन्तर विश्रवाके पुत्र कुबेर फिर सावधान होकर क्रोधसे तमतमा उठे ॥ ५१ ॥ और पर्वतको तोड़ते हुएसे और निर्घोषको उत्पन्न करते हुएसे५२ त्रिलोकीको गुञ्जारते हुए नाद करनेलगे,कुबेरको अवध्य और जानकर प्रहार करनेके लिए उठकर आते हुए पीले नेत्र वाले कुबेरको देखकर दानव भागने लगे ॥ ५३ ॥ अनुह्लाद असुरने उनको भागतेहुए

वीर्यदर्पसमन्वितम् ॥ ५४ ॥ आत्मानं चैव वीर्यं च विस्मृत्याभिजनं तथा । क्व गच्छथ भयत्रस्ताः प्राकृता इव दानवाः ॥५५॥ निवर्तध्वं महावीर्याः किं प्राणान् परिरक्षथ । नालं युद्धाय यत्नोऽयं महतीयं विभीषिका॥५६॥एतां विभीषिकामद्य दानवानां समुत्थिताम् । विक्रम्य विधमिष्यामि निवर्तध्वं महासुराः ॥५७॥ ते सुराः सन्निवृत्ताश्च सगदा इव कुञ्जराः । निजघ्नुः परमक्रुद्धा देवसैन्यं महासुराः ॥ ५८ ॥ क्षीणप्रहरणाः केचिन्महामेघनिभस्वनाः । दर्पोत्कटा भुजैरेव संप्रहारं प्रचक्रिरे ॥ ५९ ॥ प्रांशुभिश्चैव काष्ठैश्च शिलाभिश्च महाबलाः । बाहुभिश्च तथान्योन्यमाक्षिपन्ति स्म वेगिताः ॥ ६० ॥ मुष्टिभिश्च तलैश्चैव नखपातैर्महाबलाः । पादपैश्च महाशाखैरयुध्यन्त रणाजिरे ६१

देखकर उनसे और वीर्य तथा दर्प सम्पन्न कालनेमि दानवसे यह बात कही, कि-॥ ५४ ॥ अरे दानवों ! तुम आत्माभिमान वीर्य और अपने कुटुम्बका भी कुछ ध्यान न रखकर भयसे त्रस्त होकर साधारण व्यक्तियोंकी समान कहाँको भागे जाते हो ॥ ५५ ॥ अरे बलवानों ! लौट आओ क्या प्राणोंको बचाए फिरते हो ! यह यत्न युद्ध करनेके लिए पर्याप्त नहीं है;परन्तु यह बड़ी डरकी बात होगई है ॥ ५६ ॥ दानवोंके ऊपर पड़ी हुई इस भयंकर बातको मैं बलपूर्वक नष्ट कर डालूँगा अतः हे महाराक्षसों ! तुम लौट आओ ।५७। तब मदमत्त हाथियोंकी समान वे दैत्य लौट पड़े और परमक्रोधमें भर कर देवसेनाको मारने लगे ॥ ५८ ॥ महामेघकी समान शब्द करने वाले गर्वीले बहुत से बड़े २ राक्षस आयुधोंके नष्ट होने पर भुजाओंसे ही प्रहार करने लगे ॥५९॥ वे महाबली वेगमें भरकर लम्बी लाठी शिला और भुजाओंसे परस्पर प्रहार करने लगे ।६०। और वे महाबली मुक्केके थप्पड़ नाखून और बड़े २ शुदों वाले वृक्षोंसे रणा-

अनुह्लादस्तु संक्रुद्धो देवतानां महाचमूम् । ममन्थ परमायत्तो वनान्यग्निरिवोत्थितः ॥ ६२ ॥ रुधिरार्द्रास्तु बहवः शेरते योधसत्तमाः । विकृताः पतिता भूमौ ताम्रपुष्पा इव द्रुमाः ॥ ६३ ॥ अनुह्लादश्च विक्रान्तो देवांस्त्वाशीविषोपमान् । युध्यमानश्च समरे व्यसृजन्निशिताञ्छरान् ॥ ६४ ॥ धनाधिपेन विद्धस्य अनुह्लादस्य संयुगे। अङ्गारमिश्राः क्रुद्धस्य मुखान्निश्चेरुरर्चिषः ६५ अथ बाणसहस्रेण वित्तेशं दानवोत्तमः । विव्याध स शरैः क्रुद्धो दण्डपाणिरिवान्तकः ॥ ६६ ॥ कुबेरस्तु शरैर्भिन्नः समन्तात् क्षतजोक्षितः । रुधिरं परिसुस्राव गिरिः प्रस्रवणैरिव ॥ ६७ ॥ लब्ध्वा स तु पुनः संज्ञां रोषरक्तेक्षणः सुरः । गदामथ समासाद्य भीमां भीमपराक्रमः । चिक्षेप दैत्यमुद्दिश्य बलात् क्रोधेन मूर्च्छितः ॥ ६८ ॥ अप्राप्तामन्तरे सोऽथ तां गदां गदयासुरः ।

क्षणमें प्रहार करने लगे ॥ ६१ ॥ और क्रोधमें भरा हुआ अनुह्लाद तो अग्निके वनको जलानेकी समान, परम सावधान हो देवताओंकी बड़ीभारी सेनाका संहार करनेलगा ॥६२॥ रुधिरसे सने हुए और भूमिमें पड़े हुए श्रेष्ठ योधा लाल २ पुष्पों वाले वृक्षोंकी समान प्रतीत होते थे ६३ इस समय पराक्रमी अनुल्हाद भी युद्ध करके सर्पसमान देवताओं पर तीक्ष्ण बाण बरसाने लगा ६४ जब कुबेरने समरमें अनुल्हादको बींध डाला, उस समय क्रोधमें भरे हुए अनुल्हादके मुखमेंसे अङ्गारों वाली लपटें निकलने लगीं॥६५॥तदनन्तर वह दानवश्रेष्ठ दण्डपाणि यमकी समान कोपमें भरकर सहस्रों बाण बरसानेलगा ६६ बाणोंसे भिदने पर कुबेरके घावमेंसे चारों ओर रुधिर छलकने लगा फिर जैसे पर्वतमेंसे झरने बहते हैं, इसी प्रकार उसके शरीरमेंसे रुधिर बहने लगा ६७ फिर चेतना आने पर कुबेरके नेत्र रोषके कारण लाल २ होगए, फिर कोपमें भरे हुए भयंकर पराक्रमी कुबेरने दानवको

बभञ्ज विनदन् क्रुद्धस्तदाश्चर्यमभूत्तदा ॥ ६९ ॥ प्रगृह्य तु गदां भूयो ह्यभिदुद्राव दानवम् । तमापतन्तं दृष्ट्वैव अनुल्हादो महाबलः ॥ ७० ॥ गिरिशृंगमिवोत्पाट्य कैलासाचलसन्निभम् । धनाधिपं प्रदुद्राव व्यादितास्य इवान्तकः ॥ ७१ ॥ तमन्तकमिवायान्तमजेयं सकलैः सुरैः । ग्रसन्तमिव तं दैत्यं त्रैलोक्यमखिलं रुषा ॥ ७२ ॥ तमालोक्य तथा भूतं धनाध्यक्षो रणं भयात् । त्यक्त्वाय ययौ तत्र यत्र शक्रः सुराधिपः ॥ ७३ ॥ तस्य चापि महत् कर्म दृष्ट्वा वित्तपतिस्तदा । जगाम भयसंत्रस्तो यत्र देवः शचीपतिः ॥ ७४ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे अनुल्हादकुबेरयुद्धवर्णनं नाम षष्टितमोऽध्यायः ॥६०॥

वैशम्पायन उवाच । विप्रचित्तिस्तु वरुणं दैत्यानामादिरव्ययम् । जघानेषुगणैः क्रुद्धो दीप्तैरिव महोरगैः ॥१॥ स दह्यमानो

खड्ग बना कर भयंकर गदा फेंकी ६८ गदा पासमें पहुँचने भी न पाई थी, कि-असुरने क्रोधमें भर कर अपनी गदासे उस गदा को तोड़ डाला, यह एक आश्चर्यकी सी बात हुई ॥६९॥ कुबेर फिर गदा उठा कर दानव पर दौड़े उसको आते हुए देखकर महाबली अनुल्हादने कैलासपर्वतकी समान एक बड़ा भारी पर्वत का शिखर उठा लिया और मुख फाड़ते हुए कालकी समान कुबेरके ऊपर दौड़ा । ७० । ७१ । क्रोधमें भर कर पूरी त्रिलोकी को ग्रसते हुएसे और सकल देवताओंसे अजेय यमराजकी समान उस दानवको आता देखकर धनाध्यक्ष भयके कारण रणको त्याग कर देवराज इन्द्रके पास चले गए । ७२ । ७३ । धनपति कुबेर इसप्रकार उसके बड़े भारी कर्मको देख कर भयभीत हो जहाँ पर इन्द्र थे तहाँको भागगए ७४ साठवाँ अध्याय समाप्त६०

वैशम्पायनजीने कहा, कि-दानवोंमें मुख्य विप्रचित्ति कोपमें

दैत्येन दीप्तैः शरगभस्तिभिः । नाभ्यजानत कर्त्तव्यं संग्रामे स जलेश्वरः ॥ २ ॥ सर्वलोकेश्वरस्येव परमेष्ठी प्रजापतिः ॥३॥ न शक्नोत्यग्रतः स्थातुं विप्रचित्तेर्जलाधिपः ॥३ ॥ वज्रो नाम महाव्यूहो निर्भयः सर्वतोमुखः । तं व्यूह्य प्रत्यदृश्यन्त दानवा देववाहिनीम् ॥ ४ ॥ वन्हिज्वालासमं तत्र रविमण्डलसन्निभम् । मुखमाभाति दैत्यस्य विप्रचित्तेर्महात्मनः ॥ ५ ॥ वरुणस्तु महातेजा विप्रचित्तिं महासुरम् । प्रदहन्निव तेजोभिर्जिगीषुः प्रत्यैक्षत ॥ ६ ॥ स्रग्दाममालाभरणः केयूरांगदभूषणः । जग्राह परिघं दैत्यः कैलासशिखरोपमम् ॥ ७ ॥ पिनद्धं काञ्चनैः पट्टैर्हेममालिनमायसम् । यमदण्डोपमं घोरं दैत्यानां भयनाशनम् ॥ भ्रामयामास संक्रुद्धो महाशक्रध्वजोपमम् । विननाद विवृतास्यो

भर कर अव्यय वरुणको, प्रदीप्त सर्पोंकी समान बाणोंसे घायल करने लगा ॥१॥ दानवकी प्रकाशवान् बाणकिरणोंसे जलने पर वरुणको यह भी भान न रहा, कि–मैं क्या करूँ ? २ सब लोकों के ईश्वरके सामने जिस प्रकार प्रजापति परमेष्ठी खड़े नहीं हो सकते, इसी प्रकार वरुण विप्रचित्ति असुरके सामने खड़ा न हो सका ३ वज्र नामक व्यूह बड़ा भारी व्यूह होता है, उसके मुख चारों ओरको होते हैं उस निर्भय व्यूहको बनाकर दानव देवसेनाकी ओर देखने लगे ४ तहाँ पर महात्मा विप्रचित्ति दानव का मुख अग्निकी ज्वालाकी समान और सूर्यमण्डलकी समान दमक रहा था ५ उधर महातेजस्वी वरुण भी विप्रचित्ति महादानवको जीतनेकी इच्छासे अपने तेजसे उसको जलाते हुएसे देखने लगे ॥ ६ ॥ तब माला और केयूर तथा बाजूबन्दके आभूषणों वाले दानवने भी कैलासके शिखरकी समान परिघको उठा लिया ॥ ७ ॥ फिर महादानव विप्रचित्ति सुवर्णके तारोंसे बँधे हुए सुवर्णकी माला वाले दानवोंके भयको

विप्रचित्तिर्महासुरः ॥ ६ ॥ स कण्ठरथेन निष्केण भुजस्थैरपि
चांगदैः । कुण्डलाभ्यां विचित्राभ्यां प्रजाश्चैव विचित्रयन् १०
दानवो भूषणैर्भाति परिघेणायसेन च । यथेन्द्रधनुषा मेघः स-
विद्युत्स्तनयित्नुमान् ॥ ११ ॥ प्रस्फुरत्परिघास्त्रेण वातस्कः
न्धान् महास्वनः । जज्वाल च सधूमार्चिः सांकर्षण इवानलः १२
विद्याधरगणैः सार्धं गन्धर्वनगरैरपि । सह चैवामरावत्या सिद्ध-
लोकैस्तथा सह ॥ १३ ॥ ग्रहनक्षत्ररचितं सार्कचन्द्रविभूषितम् ।
दैत्येन्द्रपरिघोद्धूतं भ्रमतीव नभस्तलम् ॥ १४ ॥ दुरासदः सुसं-
पन्नो परिघाभरणक्षमः । सुरेन्धनो सुरेन्द्राग्निर्युगांताग्निरिवो-
त्थितः ॥ १५ ॥ त्रिदशा वरुणश्चैव न शेकुः स्पन्दितुं भयात् ।
तत्रासीन्निर्भयस्त्वेकः कौशिको वासवः प्रभुः । भास्करप्रतिमं

नष्ट करने वाले और यमदण्डकी समान भयंकर और इन्द्रध्वज
की समान उस परिघको उठा कर घुमाने लगा और कोपसे मुख
फाड़कर गर्जना करने लगा ॥ ८-९ ॥ वह कण्ठमें स्थित
निष्कसे भुजाओंमें स्थित बाजूबन्दोंसे और विचित्र कुण्डलोंसे
प्रजाको भी विचित्र बनाता हुआ दानव भूषण और लोहेके
परिघसे, इन्द्रधनुष युक्त बिजली वाले गरजते हुए मेघकी समान
प्रतीत होता था १० ॥ ११ यह बड़ा भारी शब्द करने वाला
दानव फड़कते हुए परिघास्त्रसे वायुका सन्नाटा फैलाने वाले
मण्डलोंको दिखाकर धूम और लपटयुक्त अग्निकी दिपनेलगा १२
विद्याधर गन्धर्वनगर अमरावतीनगरी और सिद्धपुरुषों सहित ग्रह
तथा नक्षत्रोंसे रचित चन्द्रमा और सूर्यसे विभूषित आकाश
दानवेन्द्रके परिघसे घबडा कर चकराने लगा १३।१४ परिघको
धारण करनेमें समर्थ वह दानव दुरासद होगया देवतारूपी ईन्धन
वाला वह असुरेन्द्र अग्नि प्रलयाग्निकी समान उठ खड़ा हुआ १५
उस समय वरुण आदि देवता भयके कारण हिल भी नहीं सके

घोरं परिघं रौद्रदर्शनम् ॥ १६॥ पातयामास सेनायां जलेशस्य स दानवः । पतता तेन संग्रामे जलेशस्य महात्मनः ॥ १७ ॥ भूतानां शतसाहस्रं परिघेण समाहतम् । तेषां गात्राणि चासाद्य व्यशीर्यन्त सहस्रशः ॥ १८ ॥ विशीर्यमाणं विबभावुल्काशतमिवाम्बरे । भूयश्चैनं तदा भ्राम्य वरुणाय न्यपातयत् ॥१९॥ पात्यमाने तदा तस्मिन् शरीरे वारुणे तदा । स भिन्नपरिघो घोरो देवगात्रे व्यशीर्यत ॥२०॥ शीर्यमाणस्य चूर्णानि खद्योता इव चाम्बरे । स तु तेन प्रहारेण न चचाल जलाधिपः ॥ २१ ॥ परिघेण हतः संख्ये यथा वज्रहतोऽचलः । स्वसैन्येष्वपि भग्नेषु भिन्नदेहेषु चाहवे ॥ २२ ॥ मुहूर्तमभवत्तोभ्यमपां पतिररिमर्दनः । सोऽमर्षं च समापन्नो वरुणोऽमितविक्रमः ॥ २३ ॥ सर्वसंहारमकरोत्

तहाँ पर एक प्रभु इन्द्र ही निर्भय था, तदनन्तर उस दानवने वरुणकी सेनामें भयंकर आकार वाला सूर्यकी समान घोर परिघ फेंका उस परिघने महात्मा वरुणकी सेनामें गिरकर सैंकड़ों और सहस्रों प्राणियोंको घायल कर दिया देवताओंके शरीर उससे टकराकर सैंकड़ों टुकड़ोंमें बिखर गए १६–१८ देवताओंके फटते हुए शरीर आकाशमें सैंकड़ों उल्काओंकी समान फैल गए इतनेमें ही उस परिघको फिर घुमाकर वरुणके ऊपर प्रहार किया ।१९। जब उस परिघका वरुणके शरीर पर प्रहार किया गया तो वह भयंकर परिघ वरुणके शरीरमें लगकर टूटगया २० टूटे हुए परिघके टुकड़े पटबीजनोंकी समान आकाशमें विचरण करने लगे परन्तु जलके राजा वरुण उस प्रहारसे न काँपे ।२१। और परिघसे पिटने पर वज्रका प्रहार होने पर भी अचल रहनेवाले पर्वतकी समान अचल खड़े रहे जब युद्धमेंसे अपनी सेनाएँ शरीरोंके टूटनेसे भाग गईं तब जलराज वरुण भी मुहूर्त भरके लिये क्षुब्ध होगए तब क्रोधमें आकर अरिमर्दन वरुण अपने

स्वपक्षस्यारिमर्दनः । स सागरैश्चतुर्भिश्च वृतो दीप्तैश्च पन्नगैः ॥ २४ ॥ शंखमुक्तामणिचितो बिभ्रत्तोयमयं वपुः । पाण्डुरोद्धूतवसनो नानारत्नविभूषितः ॥ २५ ॥ वरुणः पाशधृक् श्रीमान् कूर्ममीनसमाकुलः । वरुणस्तु तदा क्रुद्धस्तान्निरीक्ष्य स्वसैनिकान् ॥ २६ ॥ उवाच हृष्टा युध्यध्वं दानवानां जिघांसया । अहमेनं हनिष्यामि भयं मुक्त्वाऽनुयुध्यत ॥२७॥ ततस्ते पन्नगाः सर्वे महार्णवजलाश्रयाः । जघ्नुर्दैत्यानूर्णमुखे नदन्तो जयगृद्धिनः ॥ २८ ॥ ते तु नालीकनाराचैर्गदाभिर्मुशलैस्तथा । अभ्यघ्नन् दानवान् हृष्टा मुदिता वरुणानुगाः ॥ २९ ॥ विप्रचित्तिस्तु संक्रुद्धो महाबलपराक्रमः । पन्नगानां शरीराणि व्यधमद्युद्धदुर्मदः ॥ ३० ॥ गारुडेनापि चास्त्रेण पन्नगान् दानवो-

---

पक्षके सब योधाओंको एकत्रित करने लगे उस समय चारों समुद्र और दिपते हुए सर्प उनके पास आगए २२-२४ उस समय शंख मोती मणि आदिसे वह सुशोभित होरहे थे और जलमय शरीर को धारण कर रहे थे तथा पाण्डुर वर्णके उड़ते हुए वस्त्रको पहिर रहे थे और विविध भाँतिके रत्नोंसे विभूषित होरहे थे, उस समय पाशधारी श्रीमान् वरुणके पास कूर्म और मीन भी आगये थे अपने इन सैनिकोंको देख कर वरुण कोपमें भर गए २६ तथा दानवोंको मारनेकी इच्छासे अपने सैनिकोंको देखकर कहने लगे, कि लड़ो, लड़ो, मैं इसको मार डालूँगा इसलिए तुम भयको छोड़कर युद्ध करो ॥२७॥ तदनन्तर महासमुद्रके आश्रयमें रहनेवाले विजयाभिलाषी सब पन्नग रणके मुहाने पर गर्जना करके दानवोंको मारने लगे २८ वे वरुणके अनुगामी प्रसन्न होकर बन्दूक तीर गदा और मूसलोंसे दानवों को मारने लगे २९ तब युद्धदुर्मद महापराक्रमी विप्रचित्ति कोप में भरकर पन्नगोंके शरीरोंको नष्ट करनेलगा ३० फिर वह दानव

त्तमः । समरे घातयामास गरुडैः पन्नगाशनैः ॥ ३१ ॥ स शरैः
सूर्यसंकाशैः शातकुम्भविभूषितैः । पन्नगान् समरे वीरः प्रममाथ
सुदुर्जयान् ॥ ३२ ॥ समरे भिन्नगात्रास्ते पन्नगाः शरपीडिताः ।
पेतुर्मथितसर्वांगा गजा इव महागजैः ॥ ३३ ॥ तं पतन्तमिवा-
दित्यं दीप्तैर्बाणगभस्तिभिः । अभ्यधावत संक्रुद्धः समरे वरुणः
प्रभुः ॥ ३४ ॥ ततस्तु दानवास्तत्र भिन्नदेहाः सहस्रशः । व्य-
थिता विद्रवन्ति स्म दिशो दश विचेतसः ॥ ३५ ॥ इन्द्रस्यार्थे
पराक्रम्य वरुणस्त्यक्तजीवितः । विनर्दमानो युयुधे समरे पाश-
भृद्वरः ॥ ३६ ॥ वरुणः पन्नगाश्चैव मुष्टिभिः समरोत्कटाः ।
अभ्यवर्तन्त समरे विप्रचित्तिं महासुरम् ॥ ३७ ॥ ततोऽस्त्रैश्च
शिलाभिश्च प्राहरत् स बलोत्कटान् । व्यपोहत महातेजा विप्र-
चित्तिर्महासुरः ॥ ३८ ॥ ततः पावकसंकाशैः सुमुक्तैः शीघ्रगा-

गारुडास्त्रसे सर्पोंको समरमें नष्ट करने लगा वह वीर समरमें
दुर्जय पन्नगोंको पन्नगोंका भक्षण करनेवाले सुवर्णसे विभूषित
सूर्यकी समान गरुड नामक अस्त्रोंसे मथनेलगा ३१॥३२ बाणोंसे
पीडित होने पर घायल शरीरवाले महागजोंसे घायल किये हुए
सर्वाङ्गवाले हाथियोंकी समान वह पृथ्वीमें गिरने लगे ॥ ३३ ॥
बाणरूपी किरणोंसे सूर्यकी समान तपते हुए विप्रचित्ति दानव
के ऊपर वरुण क्रोधमें भरकर दौड़े३४तदनन्तर घायल हुए दानव
व्यथित और मूढ होकर दशों दिशाओंमेंको भागने लगे ।३५।
समरमें पाशको धारण करने वाला वरुण इन्द्रके लिये अपने
प्राणोंका मोह छोड गर्ज २ कर संग्राममें युद्ध करने लगा ३६
उस समय वरुण और समरमें उत्कट सर्प महाराक्षस विप्रचित्ति
को मुक्कोंसे मारने लगे ३७ तदनन्तर महातेजस्वी महासुर विप्र-
चित्ति सेनादलके उत्कट वीरोंको शिला और अस्त्रोंकी मारा-
मार कर भगाने लगा ॥ ३८ ॥ तदनन्तर वह अग्निकी समान

भिर्भिः । वरुणस्य महावेगान् विभेद समरे हयान् ॥ ३९ ॥
कर्मणा तेन महता विप्रचित्तेर्महात्मनः । अग्नेराज्याहुतस्येव तेजः
समभिवर्धत ॥४०॥ स शरैः सूर्यसंकाशैः सुमुखैः शीघ्रगामिभिः ।
वारुणीं तां महासेनां निर्ममन्थ महाबलः ॥ ४१ ॥ क्षीणास्त्रां
सायकाक्रान्तां शरजालेन मोहिताम् । शूलशक्त्यृष्टिभिन्नां च
चकार रुधिरोक्षिताम् ॥ ४२ ॥ अभिद्रुतोऽथ दैत्येन ससैन्यः
सलिलाधिपः । महेन्द्रं शरणं प्राप्तो विप्रचित्तेर्भयार्दितः ॥४३॥
इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामने विप्रचित्ति-
युद्धं नामैकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

वैशम्पायन उवाच । पराजयं तु देवानां दृष्ट्वाग्निर्देवसत्तमः ।
चकार बुद्धिं दैत्यानां वधे ब्रह्मर्षिभिः स्तुतः ॥१॥ स्वयंप्रभायां
शाण्डिल्यां यः पुत्रो हव्यवाहनः । हिरण्यरेताः पिंगाक्षो देव-

शीघ्रगामी बाणोंको छोड़ कर वरुणके महावेगवान् घोड़ोंको
रणमें मारने लगे ३९ महात्मा विप्रचित्तिके इस बड़े भारी कर्मसे
घीकी आहुति डाली हुई अग्निकी समान उसका तेज बढ़ने
लगा ॥४०॥ वह महाबली वरुणकी महासेनाको सूर्यकी समान
तेज शीघ्रगामी बाणोंसे मथने लगा४१ उसने क्षणभरमें ही सेना
को शरजालसे मोहित करके क्षीण अस्त्रोंवाली बाणोंसे आक्रान्त,
शूल शक्ति और ऋष्टिसे घायल और रुधिरसे सराबोर कर
दिया ॥ ४२ ॥ तदनन्तर दानवने जलके स्वामी वरुणको और
उनकी सेनाको भगा दिया तब वह विप्रचित्तिके भयसे डराहुआ
वरुण इन्द्रकी शरणमें पहुँच गया ॥ ४३ ॥ इकसठवाँ अध्याय
समाप्त ॥ ६१ ॥

वैशम्पायनजीने कहा, कि-देवताओंके पराजयको देख कर
ब्रह्मर्षियोंसे स्तुत देवसत्तम अग्नि दानवोंके वधका विचार करने
लगा ॥ १ ॥ स्वयंप्रभा शाण्डलिके जो पुत्र हव्यवाहन हैं हिर-

हूतो हुताशनः॥२॥रोहितो लोहितग्रीवो हर्ता दाता हविः कविः। पावको विश्वभुग् देवः सर्वदेवाननः प्रभुः॥ ३॥ सुमखआत्मा सुवर्चस्कः सहस्रार्चिर्विभावसुः। कृष्णवर्त्मा चित्रभानुर्देवानामपि देवराट्॥ ४॥ लोकसाक्षी द्विजहुतः सदार्चिष्मान् वषट्कृतः। हव्यभक्षः शमीगर्भः स्वयोनिः सर्वकर्मकृत्॥ ५॥ पावनः सर्वभूतानां त्रिदशानां तपोनिधिः। शमनः सर्वपापानां लेलिहानस्तपोमयः॥ ६॥ प्रदक्षिणावर्तशिखः शुचिरोमा मखाकृतिः। हव्यभुक् भूतभव्येशो यज्ञभागहरो हरिः॥ ७॥ सोमपः सुमहातेजा भूतेशः सुमहातपाः। अधृष्यः पावको भूतिर्भूतात्मा वै स्वधाधिपः॥ ८॥ स्वाहापतिः सामगीतः सोमपूताशनोऽद्रिधृक्। देवदेवो महाक्रोधो रुद्रात्मा ब्रह्मसंभवः॥९॥ लोहिताश्वं

ऊर्ध्वरेता हैं पिङ्गाक्ष हैं देवभूत हैं और हुताशन हैं॥ २॥ रोहित लाल ग्रीवा वाले हर्ता दाता हवि कवि पावक विश्वभुक् देव सर्वदेवानन और प्रभु हैं॥ ३॥ शोभन यज्ञस्वरूप हैं विद्यारूप सुन्दर तेजवाले हैं सहस्र लपटोंवाले विभावसु कृष्णवर्त्मा चित्रभानु और देवताओंके भी देवराज हैं४ जो लोकसाक्षी ब्राह्मणों से हुत सर्वदा लपटोंवाले वषट्कृत हव्यभक्षी शमीगर्भ और सर्वकर्मकृत् हैं५ सब भूतोंको और देवताओंको पवित्र करनेवाले तपोनिधि हैं सब पापोंका शमन करनेवाले लपलपाने वाले हैं और तपोमय हैं६ जिनकी लपट दाईं ओरको उठती है जिनका धुआँ पवित्र है जो यज्ञाकृति हव्यका भक्षण करने वाले भूत भव्यके स्वामी और हरि हैं ७ सोमका पान करने वाले महा तेजस्वी भूतोंके स्वामी और महातपस्वी हैं अधृष्य पावक भूति भूतात्मा और स्वधाके स्वामी हैं ८ स्वाहाके स्वामी सामवेदमें गाए हुए और सामवेदसे पवित्र सोमका भक्षण करने वाले हैं सोमका अभिषव करनेके लिये पत्थरोंको धारण करने वाले हैं

वायुचक्रं रथमास्थाय भूतधृक् । धूमकेतुर्धूमशिखो नीलवासाः
सुरोत्तमः ॥ १० ॥ उद्यम्य दिव्यमाग्नेयं शस्त्रं देवो रणे महान् ।
दानवानां सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च ॥११॥ ददाह भगवान्
वन्हिः संक्रुद्धः प्रलये यथा । प्राणो यः सर्वभूतानां देहे तिष्ठति
पञ्चधा१२यन्ता यश्च हुताशश्च सखा च प्रभुरीश्वरः । प्रभञ्जने
यो लोकानां युगान्ते सर्वनाशनः ॥१३॥सप्तस्वरगती यस्य योनि-
र्गीर्भिरुदीर्यते । यो ह्याकाशमयो देवो दूरगः सर्वसम्भवः ॥१४॥
यश्च कर्ता विकर्ता च गतिर्गतिमतां प्रभुः । वेदकर्ता समो लोके
ब्रह्मणा यः सनातनः ॥ १५ ॥ अमूर्तिमन्तं यं प्राहुर्महाभूतं
महत्तरम् । सोऽग्निं समीरयामास शमीगर्भं समीरणः ॥ १६ ॥
त्रिदिवारोहिभिर्ज्वालैर्जृम्भमाणो दिशो दश । दानवानामभा-

देवदेव हैं महाक्रोध हैं रुद्रात्मा हैं और वेदप्रतिपादित हैं ६ वह
भूतधारी धूमध्वज धूमशिख नीलवस्त्रधारी श्रेष्ठ देवता अग्नि
लाल घोड़ेवाले वायुचक्र पर सवार होने लगे १० वह भगवान्
हुत क्रोधमें भरकर दिव्य आग्नेय अस्त्रको उठा कर हजारों
लाखों करोड़ों दानवोंको प्रलयकी समान भस्म करने लगे जो
सबके प्राण हैं और सब प्राणियोंके शरीरमें पाँच प्रकारसे रहते
हैं ११ ॥ १२ जो यन्ता हैं, हुताश हैं, सखा हैं, प्रभु हैं, ईश्वर
हैं और जो लोकोंके प्रलयके समय सबका नाश करडालते हैं १३
श्रुतियें जिसको सात स्वर गतियोंकी योनि बतलाती हैं जो
आकाशमय दूरगामी और सर्वत्र विचरण करने वाले हैं ।१४।
जो कर्ता विकर्त्ता और गति वालोंकी गति है, और सनातन
ब्रह्माकी समान जो संसारमें लोककर्ता हैं १५ और जिन महा-
भूतको मूर्तिरहित कहते हैं उस भूत वायुने शमीगर्भ अग्निको
प्रेरित किया १६ तब वह अपनी स्वर्गगामिनी ज्वालाओंसे दशों
दिशाओंमें जँभाई लेता हुआ प्रलयाग्निकी समान दानवोंका

वाय युगान्ताग्निरिवोत्थितः ॥ १७ ॥ मेदोमज्जामहापंकां केश-
शैवलशालिनीम् । योधशीर्षोपलवहां मृतद्विपतटोत्कटाम् ॥ १८ ॥
शोणितोदां रणे दृष्ट्वा संग्रामसरितं विभुः । वह्निः प्रवर्तयामास
दैत्यानां भयवर्धनः ॥ १९ ॥ ततोऽग्निर्दितिजान् सर्वान्
प्रह्लादप्रमुखांस्तथा । पराजयानः स विभुः क्रोशमानो महा-
मृधे ॥२०॥ केचित् प्रदीप्तैर्मुकुटैः केचिद्दीप्तैः शिरोरुहैः । केचित्
प्रदीप्तवसनैः केचिद्दीप्तैर्भुजाननैः ॥ २१ ॥ केचित् प्रदीप्तैरूरुभिः
केचिच्छत्रैर्ध्वजै रथैः। असुरास्तत्र दृश्यन्ते प्रदीप्तेनाग्निना हताः॥२२
त्यक्त्वायुधानि सर्वाणि सध्वजांश्च रथोत्तमान् । प्रयाति समरे
भीताः पावकेन पराजिताः ॥ २३ ॥ न च पश्यन्ति ते वह्निं
प्रदीप्तध्वजिनीमुखे । दिशः खड्गांश्च मेघांश्च दीप्तान् पश्यन्ति
दानवाः ॥ २४ ॥ ध्रुवः स्वयंभुवा सृष्टो युगान्तस्तोययोनिना ।
इत्येवं दानवाः सर्वे मेनिरे त्रस्तचेतसः ॥ २५ ॥ मयश्च शंबर-

नाश करनेके लिए प्रकट होगया १७ और दानवोंके भयको
बढानेवाले प्रभु अग्निने मेदमज्जारूपी कीच वाली केशरूपी
सिवारवाली, योधाओंके शिररूपी पत्थरोंको और लुढकानेवाली
मरे हुए हाथीरूप तटोंसे उत्कट और रक्तरूपी जलवाली संग्राम-
नदी बहा दी ॥१८॥१९॥ तदनन्तर विभु अग्नि प्रह्लाद आदि
सकल दानवोंको भस्म करनेकी इच्छासे शब्द करने लगे ।२०।
उस समय किन्हींके चमकते हुए मुकुटोंमें और किन्हीकी दम-
हुई भुजा और मुखोंमें तथा छत्र रथ और ध्वजाओंमें अग्नि
लग रही थी २१॥ २२ तब समरमें अग्निसे पराजित हुए दानव
भयभीत हो अपने सब आयुध त्याग कर भागने लगे२३जलती
हुई सेनाके मुहानेपर वे अग्निको न देखसके और उन दानवोंने
दिशा खड्ग मेघ आदि सबको भस्म होता हुआ ही देखा २४
त्रस्त चित्तवाले दानव यह मानने लगे, कि-जलयोनि स्वयम्भू

शम्बर महामायाधरौ सदा। पर्जन्यवारुणे माये सृजतां वारिविस्रवे॥ २६ ॥ ताभ्यां वह्निः समायाभ्यां सिच्यमानः समन्ततः। तोयौघैः पर्वतनिभैर्मृदुर्चिरभवद्रणे ॥ २७ ॥ शम्यमाने तु समरे पावके दैत्यनाशिनि। बृहत्कीर्तिर्बृहत्तेजा वह्निमाह बृहस्पतिः२८ गुरुरुवाच। हिरण्यरेतः सुमुख ज्वलनाद्य सर्वभुक्। सप्तजिह्वानन छाग लेलिहान महाबल॥ २९ ॥ आत्मा वायुस्तव विभो शरीरं सर्ववीरुधः। योनिरापश्च ते प्रोक्ता योनिस्त्वमसि चाम्भसः॥ ३० ॥ ऊर्ध्वं चाधश्च गच्छन्ति सञ्चरन्ति च पार्श्वतः। अर्चिषस्ते महाभाग सर्वतः प्रभवन्ति च ॥ ३१ ॥ त्वमेवाग्ने सर्वमसि त्वयि सर्वमिदं जगत्। त्वं धारयसि भूतानि भुवनं त्वं बिभर्षि च ॥ ३२ ॥ त्वमग्ने हव्यवाडेकस्त्वमेव परमं हविः।

अमराने यह प्रलयाग्नि रची है २५ तब महामायावी शम्बर और मय दानव आकाशमेंसे बरसने वाली पार्जन्य और वारुणी मायाको रचने लगे २६ जब उन दोनों मायावियोंने पर्वतकी समान जलकी धारोंसे अग्नि पर छिड़काव किया, तब रणमें अग्निकी लपट कोमल होगई २७ समरमें दानवनाशक अग्निके कोमल पड़ने पर महाकीर्तिमान् महातेजस्वी बृहस्पति अग्निसे बोले २८ बृहस्पतिजीने कहा, कि-हे हिरण्यरेता! हे सुमुख! हे ज्वलन! हे सर्वभुक! हे सप्तजिह्वानन! हे छाग! हे लेलिहान! हे महाबल! हे विभो! वायु तुम्हारी आत्मा है, सब लतायें तुम्हारा शरीर हैं, जल तुम्हारी योनि कहलाता है और तुम जलके उत्पादक हो २९॥ हे महाभाग! तुम्हारी लपटें नीचेको ऊपरको और चारों दिशाओंमें जाती हैं और सब ओर उत्पन्न होजाती हैं ३१ हे अग्ने! तुम ही सब कुछ हो, तुममें ही सारा जगत् व्याप्त है, तुम प्राणियोंको धारण करते हो और तुम ही भुवनोंका पालन पोषण करते हो ३२ हे अग्ने! तुम

यजन्ति च सदा सन्तस्त्वामेव परमाध्वरे॥३३॥ त्वमन्नं प्राणिनां भुंक्ते जग्धपीतासि त्वं प्रभो। त्वयि प्रवृत्तो विजयस्त्वयि लोकाः प्रतिष्ठिताः॥ ३४॥ सर्वां लोकांस्त्रीनिमान् हव्यवाह प्राप्ते काले त्वं पचस्येव दीप्तः। त्वमेवैकस्तपसे जातवेदो नान्यस्त्वत्तो विद्यते गोषु देव॥ ३५॥ वृषाकपिः सिन्धुपतिस्त्वमग्ने महामखेष्वग्र-हरस्त्वमेव। विश्वस्य भूमस्त्वमसि प्रसूतिस्त्वं च प्रतिष्ठा भगवत्-प्रजानाम्॥ ३६॥ सृजंस्त्वपो रश्मिभिर्जातवेदस्त्वमौषधीरोषधीनां रसांश्च। विश्वं त्वमादाय युगांतकाले स्रष्टा भवस्यनलसर्ग-काले॥ ३७॥ त्वमग्ने सर्वभूतानां योनिर्वेदेषु गीयसे। त्वया देवहितार्थाय निहता दानवा रणे॥ ३८॥ स्वयोनिस्ते महातेज-स्तोयं मखशतार्चितम्। तां स्वयोनिं समासाद्य किं विषीदसि

एक ही हव्यवाह हो, तुम ही परम हवि हो, सन्त पुरुष परम-यज्ञमें तुम्हारा ही पूजन करते हैं ३३ हे प्रभो! तुम प्राणियोंके अन्नका भक्षण करते हो! तुम ही पीनेवाले और खानेवाले हो! तुममें विजय रहती है और आपमें ही लोक प्रतिष्ठित रहते हैं ३४ हे हव्यवाह! तुम समय आने पर प्रदीप्त होकर इन तीनों लोकों को पका डालते हो, हे जातवेदः! एक आप ही तप करनेके लिए समर्थ हो! हे देव! प्राणियोंमें आपसे अधिक और कोई नहीं है॥ ३५॥ हे अग्ने! तुम ही वृषाकपि हो, तुम ही सिंधुपति हो, और बड़े २ यज्ञोंमें पहिले भाग पाने वाले तुम ही हो, तुम विश्वके उत्पत्तिस्थान हो और तुम भगवान्‌की प्रजाकी प्रतिष्ठा हो॥ ३६॥ हे जातवेद!! तुम अपनी किरणोंसे जलको औष-धियोंको और औषधियोंके रसको रचते हो॥ ३७॥ हे अग्ने! वेद तुमको ही सब प्राणियोंका उत्पत्तिस्थान बतलाते हैं, और तुमने देवताओंका हित करनेके लिये रणमें दानवोंको मारा था॥३८॥ हे महातेजस्विन्! सैंकड़ों यज्ञोंमें पूजित जल तुम्हारी

पावक ॥ ३९ ॥ त्रायस्व समरे देवान् दैत्येभ्यः सुरसत्तम । पिंगाक्ष लोहितग्रीव कृष्णवर्त्मन् हुताशन ॥ ४० ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनेऽग्नि-स्तवो नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

वैशम्पायन उवाच । बृहस्पतेस्तु वचनं श्रुत्वा सत्यं समीरितम् । प्रजज्वाल रणे वन्हिर्हविषेव महामखे ॥१॥ हतास्तु माया दैत्यानां प्रदीप्तेनाग्निना रणे । हतमाया हतबला बलिं ते समुपस्थिताः ॥ २ ॥ पराजितेषु दैत्येषु वह्निनाद्भुतकर्मणा । प्रल्हादस्तूत्तरं वाक्यमाह दैत्यपतिं बलिम् ॥ ३ ॥ भवानग्निश्च वायुश्च भास्करः सलिलं शशी । नक्षत्राणि दिशो व्योम भूश्च दानवसत्तम ॥ ४ ॥ भविष्यं चैव भूतं च भवच्चासुरसत्तम । दत्तं चैतद्भगवता वरदेन स्वयंभुवा ॥ ५ ॥ इन्द्रत्वं चामरत्वं च युद्धे

योनि है, हे पावक ! तुम उस अपनी योनिको पाकर क्यों खिन्न होते हो ॥ ३९ ॥ हे पिंगाक्ष ! हे लोहितग्रीव ! हे कृष्णवर्त्मन् ! हे हुताशन ! तुम दानवोंसे देवताओंकी रक्षा करो ४० बासठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ६२ ॥ छ ॥

वैशम्पायनजीने कहा, कि–बृहस्पतिके कहे हुए सत्यवचनको सुन कर अग्नि महायज्ञमें हविसे प्रदीप्त होनेकी समान रणमें प्रज्वलित होने लगे ॥ १ ॥ रणमें प्रदीप्त होनेके उपरान्त अग्नि ने दानवोंकी मायाका नाश करडाला तब बल और मायाके नष्ट होने पर असुर बलिके पास भाग गए ॥ २ ॥ अद्भुत कर्म करने वाले अग्निके द्वारा दानवोंको हारा हुआ देख कर प्रल्हाद दैत्यपति बलिसे कहने लगा ॥ ३ ॥ कि-हे दानवसत्तम ! आप अग्नि वायु सूर्य जल चन्द्रमा नक्षत्र दिशाएँ आकाश और पृथ्वीरूप हैं ॥ ४ ॥ और हे सुरश्रेष्ठ ! आपही भूत भविष्य और वर्तमानरूप है, क्योंकि–वरदायक स्वयम्भू भगवान्ने आपको यह

चाप्यपराजयः । ईशित्वं च वशित्वं च बलं चामितं शुभम् ६
सर्वभूतेश्वरत्वं च दैत्यराज सदा तव । महायोगीश्वरत्वं च शूर-
त्वञ्च महामृधे ॥ ७ ॥ अणिमा लघिमा चैव ये चान्ये सात्त्विका
गुणाः । तत्पराजित्य दैत्येन्द्र देवान् सर्वांश्च सानुगान् ॥ ८ ॥
यथोक्तं ब्रह्मणा राजंस्तत्तथा न तदन्यथा । तस्य तद्वचनं श्रुत्वा
प्रह्लादस्य महात्मनः । बलिः परमसंहृष्टः प्रायाच्छक्ररथं प्रति ९
ततः प्रयान्तं त्रिदशेन्द्रसन्निभौ महासुरेन्द्रं बलिमुत्तमश्रियम् ।
तमञ्जसा जग्मुरभिप्रदक्षिणं द्विजाश्च पुण्याः पशवश्च सत्तमाः १०
महाजटाभारधरास्तपस्विनस्तदा तमाहुर्विविधैस्तमङ्गलैः । अभि
ष्टुवन्तः कवयः स्वलंकृतं बलिं प्रयांतं रणमूर्धनि स्थिताः ॥ ११ ॥
भतप्तजाम्बूनदचित्रभूषणैर्दिव्यैश्च रत्नैर्विविधैरलंकृतः । विराज-
मानः परमेण वर्चसा रणे विभात्यग्निशिखेव दानवः ॥ १२ ॥

वर दे दिया है ॥ ५ ॥ हे दानवराज ! इन्द्रत्व, अमरत्व और
युद्धमें पराजय न पाना, ईशित्व वशित्व और अमित बल तथा
सब भूतोंका ईश्वरत्व आपमें सर्वदा रहता है, आप महायोगी
और रणमें परम शूर हैं ॥७॥ अणिमा लघिमा तथा और भी
जो सात्त्विक गुण हैं हे दैत्य ! इन्द्र आदि देवताओंका और
उनके सब अनुचरोंका पराजय करके उनको आप प्राप्त करिये ८
क्योंकि-ब्रह्माजीने जो बात कही है, वह वैसे ही होगी और
प्रकारसे नहीं होगी ९तदनन्तर देवराजके ऊपर चढ़ाई करनेवाले
उत्तम शोभासम्पन्न महासुरेन्द्र बलिके पीछे पवित्र ब्राह्मण और
श्रेष्ठ पशु चलने लगे ॥ १० ॥ उस समय रणके मुहाने पर खड़े
हुए बड़ी२ जटाओंवाले तपस्वी अनेक प्रकारके मंगलमय मंत्रोंसे
अलंकृत बलिकी स्तुति करने लगे ॥ ११ ॥ तपे हुए सुवर्णके
विचित्र भूषण और अनेक प्रकारके दिव्य रत्नोंसे अलंकृत दानव
परमकान्तिके कारण अग्निकी समान दमकने लगा १२ तदनन्तर

स वै तदा शत्रुबलार्दितं बलं बलिर्ददर्शोत्तमसत्ववीर्यवान् । जला-
गमे भीमदिवाभ्रमण्डलं विशीर्यमाणं नभसीव वायुना ॥ १३ ॥
ततो ददर्शाथ बलानि सर्वतो रणे प्रशुप्तानि हुताशनेन वै । समु-
च्छ्रितान्युग्रतराणि तत्र वै समुद्रवेगानिव पर्वसन्धिषु ॥ १४ ॥
स शूलशक्त्यृष्टिगदासिसायकान् क्षिपन् रिपूणां समरे महात्म-
नाम् । ननाद सिंहर्षभमत्तनागवज्जलागमे तोयदवच्च वीर्यवान् १५
दिव्यास्त्रधूमः सुभुजोग्रवायुर्महाबलः पौरुषविक्रमेंधनः । प्रजा
दिधक्षन्निव कालवह्निः सुघोररूपो विबभौ रणे बली ॥ १६ ॥
इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे
त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

वैशम्पायन उवाच । बलिना तु सुराः सर्वे वर्जयित्वा सुरा-
धिपम् । रणे शरशतैर्भिन्नाः ससैन्या वै पराजिताः ॥ १ ॥

उत्तम सत्त्व और वीर्य वाले बलिने, वर्षाऋतुके समय वायुके द्वारा विदीर्ण कियेहुए मेघमण्डलकी समान, शत्रुकी सेनासे पीड़ित हुए अपने सेनादलको देखा ॥ १३ ॥ तदनन्तर बलिने अग्निसे रक्षित बड़ी २ सेनाओंको, पर्वसंधिके समय समुद्रके वेगों की समान, उफनती हुई देखा ॥ १४ ॥ तदनन्तर वह वीर्यवान् समरमें महात्मा शत्रुओं पर शूल शक्ति ऋष्टि गदा तलवार और बाणको बरसाने लगा और बरसाते समय सिंह साँड और मद-मत्त हाथीकी समान और वर्षाऋतुके मेघकी समान गर्जना करने लगा ॥ १५ ॥ दिव्य अस्त्ररूपी धूम वाला, सुन्दर भुजारूपी आँधी वाला, पौरुष तथा विक्रमरूपी ईंधन वाला महाबली बलि प्रजा भस्म करना चाहने वाले भयंकर रूपयुक्त कालाग्निकी समान शोभा पाने लगा ॥ १६ ॥ तरेसठवाँ अध्याय समाप्त ६३

वैशम्पायनजीने कहा, कि-बलिने इन्द्रके अतिरिक्त सब देव-ताओंको सैकड़ों बाणोंसे बींध कर और उनका तथा उनकी

विमुखा याति दैत्येन्द्रैर्वध्यमाना महाचमूः । जितास्तु बलिना देवाः शक्रमाहुर्महाबलम् ॥ २ ॥ देवा ऊचुः । भवानिन्द्रश्च धाता च लोकानां प्रभुरव्ययः । त्वमप्रतिमकर्मा च तथैवानुपमद्युतिः ॥ ३ ॥ विद्रुतानीह सैन्यानि सहास्माभिः सुरेश्वर । रथचक्र-ध्वजाक्षाणि विभिन्नानि महासुरैः ॥ ४ ॥ रथहस्त्यश्वयोधाश्च पदाताश्च सहस्रशः। भिन्नाश्छिन्नाश्च शतशो गदामुशलपट्टिशैः ॥ ५ ॥ महाभैरवरूपं हि दैत्येन्द्रेण कृतं रणे । किमुपेक्षसि दैत्येन्द्रैर्हन्यमानां महाचमूम् ॥ ६ ॥ त्रायस्व त्रिदशश्रेष्ठ शरण्य शरणागतान् । श्रुत्वा तु वचनं तेषां देवानाममराधिपः ७ संवर्ताग्निसमः क्रुद्धः सर्वान् दहति दानवान् । दिवाकरकराकारं किरीटं धारयन् प्रभुः ॥ ८ ॥ वैदूर्यवर्णसंकाशो नानारत्नविता-

---

सेनाका पराजय किया ॥ १ ॥ उस समय दानवराजोंसे पिटती हुई महासेना मुख फेर कर भागने लगी, तब बलिसे हारे हुए देवता महाबली इन्द्रसे कहने लगे २ देवताओंने कहा कि—आप इन्द्र हैं, धाता हैं, लोकोंके प्रभु हैं, अव्यय हैं,आप अद्वितीय कर्म करने वाले और अनुपम कान्ति वाले हैं ॥३॥ हे सुरेश्वर ! इस समय हम और हमारी सेना भाग रही है, राक्षसोंने हमारे रथोंके पहिए ध्वजा धुरे आदिको तोड़ डाला है ४ तथा गदा मूसल और पट्टिशोंसे सैंकड़ों और सहस्रों बार रथ हाथी घोडे योधा और पैदल छिन्न भिन्न हुए हैं ५ दानवेन्द्रने रणमें महाभयानक दशा कर डाली है, आप दैत्येन्द्रोंसे पिटती हुई महासेनाकी उपेक्षा कैसे कर रहे हैं ? ।६। हे देवश्रेष्ठ ! हे शरण्य ! आप हम शरणागतोंकी रक्षा करिये उन देवताओंके वचनको सुनकर देवराज प्रलयाग्निकी समान क्रोधमें भरकर सब दानवोंको भस्म करने लगे, उस समय वह प्रभु सूर्यकी किरणोंकी समान आकार वाले धनुषको धारण कर रहे थे ।७।८। उनका वैडूर्य मणिकी

गदः । मयूररोमा रक्ताक्षः शतबाहुः सहस्रधृक् ॥ ९ ॥ हरिरेको हरिश्मश्रुर्नानाकेतुर्महाबलः । वज्रप्रहरणः श्रीमान् योगी शतशिरोधरः ॥ १० ॥ सधनुर्बद्धसन्नाहः शतादित्यसमप्रभः । देवगन्धर्वयक्षौघैरनुयातः सहस्रशः ॥ ११ ॥ सामगैश्च जपैश्चापि स्तूयमानो महर्षिभिः । शतपर्वमहारौद्रं स्फोटनं सर्वतो मुखम् ॥१२॥ प्रगृह्य रुचिरं वज्रं दीप्तं रौद्राट्टहासिनम् । दैत्यानयोधयत् सर्वान् महेन्द्रं पाकशासनः ॥ १३ ॥ अधृष्यः सर्वभूतानामदित्या दयितः सुतः । ततः प्रवृत्तः संग्रामो बलिवासवयोस्तदा ॥ १४ ॥ उभाभ्यां देवदैत्याभ्यामचिरान्महदद्भुतः । अतिवीर्यबलोदग्रस्तुमुलो लोमहर्षणः ॥ १५ ॥ प्रल्हादेन स्तुतिशतैः कर्मभिर्जयसंमतैः। प्रबोधितो दैत्यपतिरग्निरिद्ध इवाबभौ१६

समान वर्ण वाला बाजूबन्द अनेक रत्नोंसे जड़ा हुआ था, इन्द्रके रोम मयूरकी समान थे, नेत्र लाल २ थे, सौ भुजाएँ थीं और सहस्र नेत्र थे ९ उनकी मूछें काली थीं, अनेक ध्वजाएँ (उनके रथ पर) लग रहीं थीं, उनमें परम बल था, वह वज्रसे प्रहार करते थे, योगी थे और वह सौ शिरोंको धारण कर रहे थे१० उन्होंने धनुष और कवचको धारण कर रक्खा था और उनकी प्रभा सौ सूर्योंकी समान प्रतीत होरही थी, देवता गन्धर्व और यक्षोंके सैंकड़ों टोले उनके पीछे चल रहे थे ११ सामगान करने वाले और जप करने वाले महर्षि उनकी स्तुति कर रहे थे, उस समय सब भूतोंसे अधृष्य अदितिके प्रिय पुत्र पाक नामक दानव का शासन करने वाले महेन्द्र सौ गाँठों वाले महाभयंकर चारों ओर मुख (धार) वाले रौद्र अट्टहास्य करने वाले रुचिर वज्र को ग्रहण कर सब दानवोंसे युद्ध करने लगे अल्पकालमें ही बलि और इन्द्र नामक दोनों दानव देवताओंमें परम अद्भुत संग्राम होने लगा वह परमवीर्यसे उदग्र और तुमुल संग्राम रोंगटे खडे करने

सुरासुरेन्द्रयोर्दृष्ट्वा संग्रामं लोमहर्षणम् । देवानां दानवानां च भूयो युद्धमभूत्तदा ॥ १७ ॥ ततोऽविध्यन्महेन्द्रस्तं बलिमस्त्रैर्महाबलम् । तान्यस्त्राणि महाबाहुश्चिच्छेद शतधा रणे ॥१८॥ ततः क्रुद्धः पुनस्तत्र निजघ्ने दानवं महत् । आग्नेयमथ शत्रुघ्नं चिक्षेपेन्द्रो महाबलः । तं दृष्ट्वा खे समागच्छत् प्रलयानलसन्निभम् ॥१९॥ पातयामास तच्चैन्द्रं वारुणास्त्रेण धीमता । संक्रुद्धो मघवा वज्रमगृह्णात् पर्वतोपमम् ॥ २० ॥ हन्तुकामो रणश्लाघी बलिं दैत्याधिपं रणे ततः शुश्राव देवेन्द्रः कौशिको हरिवाहनः २१ अशरीरां शुभां वाणीं तस्मिन् महति वैशसे । निवर्तस्व महाबाहो सुराणां नन्दिवर्धन ॥ २२ ॥ पुरन्दर सुरश्रेष्ठ न जेष्यसि

लगा १२-१५ उस समय मल्हादकी विजयमय सैंकड़ों स्तुति करनेसे जागा हुआ दानवपति जलते हुए अग्निकी समान शोभा पाने लगा। १६ देवराज और असुरराजके रोमहर्षण संग्रामको देख कर देवता और दानवोंमें युद्ध फिर होने लगा ॥ १७ ॥ तदनन्तर महेन्द्रने महाबल बलिको अस्त्रोंसे बींधना आरम्भ कर दिया, उन अस्त्रोंके वह महाभुज सैंकड़ों टुकड़े उड़ाने लगा १८ तदनन्तर वह कोपमें भरकर फिर दानवोंके बड़े भारी सेनादल का संहार करने लगे, तदनन्तर महाबली इन्द्रने शत्रुनाशक आग्नेय अस्त्र फैंका, प्रलयकालकी अग्निकी समान ऐन्द्रास्त्रको आकाशमें आता हुआ देख कर उस बुद्धिमान्ने वारुणास्त्रसे उसको शान्त कर दिया, तदनन्तर रणश्लाघी इन्द्रने दैत्याधिप बलिको रणमें मारनेकी इच्छासे कोपमें भरकर पर्वतकी समान वज्रको उठा लिया इसी समय हरिवाहन कौशिक दानवेंद्रने उस मारकाटमें शुभ आकाशवाणी सुनी, कि-'हे देवताओंके आनंदको बढ़ाने वाले महाभुज ! तुम अब युद्धसे हट जाओ १९-२२ हे सुरश्रेष्ठ पुरन्दर ! तुम रणमें बलिको न जीत सकोगे, क्योंकि-यह दानव तपसे

रणे बलिम् । तपसात्युत्तमो दैत्यो वरदानेन चाधिकः ॥ २३ ॥ स्वयम्भूपरितोषाच्च सत्यधर्माच्च वासव । नैष शक्यस्त्वया जेतुं त्रिदशैर्वा सुरेश्वर ॥ २४ ॥ यो ह्यस्य जेता भगवांस्तं शृणुष्व समाहितः । ब्रह्मणः स हि सर्वस्वं देवानां चैव सा गतिः २५ परं रहस्यं धर्मस्य परस्य च परा गतिः । परात् परतरः श्रीमान् परावरगतिः प्रभुः ॥२६॥ सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् । शंखचक्रगदापाणिः पीतवासा सुरारिहा ॥२७॥ जेताऽजेयो जयः श्रीमान् सोऽस्य जेता भविष्यति । श्रुत्वा दिव्यां तु मधुरां वाणीं तामशरीरिणीम् ॥ २८ ॥ अपयातो रणाच्छक्रः सार्धं सर्वैः सुरोत्तमैः । अपयाते तु देवेन्द्रे कौशिके हरिवाहने२९ सिंहनादो महानासीद्दानवानां महामृधे । ततः किलकिलाशब्दः क्ष्वेडितास्फोटितस्वनः ॥ ३० ॥ शंखानां निनदश्चात्र योधानां

उत्तम बन गया है और वरदानके कारण भी अधिक होगया है २३ हे इन्द्र ! ब्रह्माजीके सन्तोषके कारण और सत्यधर्मके कारण तुम अथवा देवता इसको नहीं जीत सकते २४ जो इसको जीतेंगे उन भगवान्का तुम सावधान होकर वर्णन सुनो, वह ब्रह्माजीका सर्वस्व है और देवताओंकी गति हैं वह धर्मके परमरहस्य है परकी भी परा गति है वह श्रेष्ठसे भी श्रेष्ठ है और वह श्रीमान् प्रभु पर और अवरकी गति हैं२५-२६ उनके सहस्र शिर हैं, सहस्र नेत्र हैं सहस्रचरण हैं, वह हाथमें शंख चक्र और गदाको लिए रहते हैं और देवताओंके शत्रुओंको मार डालते हैं२७ वह जेता हैं अजेय हैं और जयस्वरूप हैं, वही इस बलिको जीतेंगे, उस मधुर और दिव्य आकाशवाणीको सुन कर, इन्द्र सब श्रेष्ठ २ देवताओंको साथमें लेकर रणस्थलसे भाग गया, देवराज कौशिक हरिवाहन इन्द्रके भागने पर २८ ॥ २९ दानव युद्धमें बडा भारी सिंहनाद करने लगे, तदनन्तर किलकिल शब्द होने लगा, तथा बाँस

चलितस्वनः । वादित्राणां च निर्घोषस्तुमुलश्चाभवत्तदा ३१
जयशब्दरवाश्चैव देवानां तु पराजये । ससैन्यो दैत्यराजस्तु
स्तूयमानः सुहृद्गणैः । बलीन्द्रो विबभौ दैत्यो हिरण्यकशिपुर्यथा॥
इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामने देवासुर-
संग्रामो नाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

वैशम्पायन उवाच । निष्प्रयत्नेषु देवेषु त्रैलोक्ये दैत्यपा-
लिते । जये बलेर्बलवतो मयशम्बरयोस्तथा ॥ १ ॥ सुधासु दिक्षु
सर्वासु प्रवृत्ते धर्मकर्मणि । अपवृते चन्द्रमसि अयनस्थे दिवा-
करे ॥ २ ॥ प्रह्लादशम्बरमयैरनुह्लादेन चैव हि । दिक्षु सर्वासु
गुप्तासु गगने दैत्यपालिते ॥ ३ ॥ दैत्येषु मखशोभाश्च स्वर्गार्थं
दर्शयत्सु च । प्रकृतिस्थे तदा लोके वर्तमाने च सत्पथे ॥ ४ ॥

फटकारने और थपोडोंका शब्द होने लगा ॥ ३० ॥ तथा शंखों
की ध्वनि योधाओंकी बातचीत और बाणोंका शब्द तुमुलरीतिसे
होने लगा ३१ और देवताओंका पराजय होने पर जयजयकार
की ध्वनि होने लगी, उस समय मित्रोंसे स्तुति पाता हुआ
दानवराज बलि इन्द्र बन कर हिरण्यकशिपुकी समान शोभा
पाने लगा ३२ चौंसठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ६४ ॥

वैशम्पायनजीने कहा, कि–जब देवताओंने प्रयत्न करना
छोड़ दिया और दानव त्रिलोकीका पालन करने लगे, इसप्रकार
जब बलवान बलिकी और मय तथा शम्बरकी विजय होगई १
और सब दिशाएँ अमृतमयी (शान्त) होगई और धर्म कर्म
चलने लगे, चन्द्रमाका उद्धार होगया और सूर्य अयनमें स्थित
होगया ॥२॥ प्रह्लाद शम्बर मय और अनुह्लाद सब दिशाओं
की रक्षा करने लगे और दानव आकाशकी भी रक्षा करने
लगे ॥ ३ ॥ और दानव स्वर्गकी शोभाके लिए यज्ञशोभाको
दिखाने लगे, संसार प्रकृतिस्थ होगया और सन्मार्ग पर चलने

अभावे सर्वपापानां भावे चैव तथा स्थिते। भावे तपसि सिद्धानां सर्वत्राश्रमरक्षिषु ॥ ५ ॥ चतुष्पादे स्थिते धर्मे अधर्मे पादविग्रहे। प्रजापालनयुक्तेषु भ्राजमानेषु राजसु ॥ ६ ॥ स्वधर्मसंयुक्तेषु सर्वाश्रमनिवासिषु । अभिषिक्तो सुरैः सर्वैर्दैत्यराजो बलिस्तदा॥७॥ हृष्टेष्वसुरसंघेषु नदत्सु मुदितेषु च । अथाभ्युपगता लक्ष्मीर्बलिं पद्मासने स्थिता ॥ ८ ॥ पद्मोद्यतकरा देवी वरदा सुरमोहिनी । श्रीरुवाच । बले बलवतां श्रेष्ठ महाराज महाद्युते ९ प्रीतास्मि तव भद्रन्ते देवतानां पराजये। यत्त्वया युधि विक्रम्य देवराजः पराजितः ॥ १० ॥ दृष्ट्वा ते परमं सत्वं ततोऽहं स्वयमागता । नाश्चर्यं दानवश्रेष्ठ हिरण्यकशिपोः कुले ॥११॥ प्रसूत-

लगा ॥ ४ ॥ सब पापोंका अभाव होगया और पुण्यक्रियाएँ चलने लगीं और दानवोंके सर्वत्र आश्रमोंकी रक्षा करने पर सिद्ध तप करने लगे ॥ ५ ॥ धर्म चारों पादमें ठीक होगया अधर्मका एक पाद ही बाकी रह गया राजा प्रजाका पालन कर शोभा पाने लगे ॥ ६ ॥ और सब आश्रमोंके निवासी अपने २ धर्ममें परायण होगए, उस समय सब असुरोंने राजा बलिका अभिषेक किया ॥७॥ जब असुरोंके टोले मुदित होकर गर्जना करने लगे, उस समय पद्मासनमें स्थित लक्ष्मी बलिके पास आई ।८। उस देवीके हाथमें कमल था, वह वरदान देनेवाली थी देवताओंको वह मोहमें डाल चुकी थी । उस श्रीने कहा, कि-हे महाराज ! हे बलवानोंमें श्रेष्ठ महाकान्तिमान् बले ! देवताओंका पराजय करनेके कारण मैं आप पर प्रसन्न हुई हूँ, तुमने युद्धमें पराक्रम करके जो देवराज इन्द्रको हरा दिया, तुम्हारे इस परमसत्त्वको देख कर मैं स्वयं ही तुम्हारे पास चली आई हूँ, हे दानवश्रेष्ठ ! हिरण्यकशिपुके कुलमें उत्पन्न हुए आप असुरराजका ऐसा कर्म होना कोई अचरजकी बात नहीं है, हे राजन् ! तुमने

स्यासुरेन्द्रस्य तव कर्मेदृगीदृशम् । विशेषितस्त्वया राजन् दैत्येन्द्रः प्रपितामहः ॥ १२ ॥ येन भुक्तं हि निखिलं त्रैलोक्यमिदमव्ययम् । विशेषतस्तव विभो सर्वे धर्मपथे स्थिताः ॥ १३ ॥ तेन त्रैलोक्यमुख्येन भोक्ष्यस्यमितविक्रम । एवमुक्त्वा तु सा देवी लक्ष्मीर्दैत्यपतिं बलिम् ॥ १४ ॥ प्रविष्टा वरदा सौम्या सर्वभूतमनोरमा । शिष्टाश्च देव्यः प्रवरा ह्रीः कीर्तिर्द्युतिरेव च ॥१५॥ प्रभा धृतिः क्षमा भूतिर्नीतिर्विद्या दया स्मृतिः । स्मृतिर्लज्जा तथा मेधा लक्ष्मीरीहा गतिस्तथा ॥ १६ ॥ श्रुतिः प्रीतिरिला कीर्तिः शान्तिः पुष्टिः क्रियास्तथा । सर्वाश्चाप्सरसो दिव्या नृत्यगीतविशारदाः ॥१७॥ पतिं प्राप्ताः सुदैतेयं त्रैलोक्ये सचराचरे । प्राप्तमैश्वर्यममितं बलिना ब्रह्मवादिना ॥ १८ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

अपने प्रपितामह दैत्येन्द्र हिरण्यकशिपुकी कीर्त्तिको बढ़ा दिया है ॥ ९-१२ ॥ उन्होंने इस सारी अव्यय त्रिलोकीको भोगा था, और हे विभो ! तुम्हारे राज्यमें सब व्यक्ति धर्ममार्गमें स्थिर हैं, यह बात अधिक है ॥ १३ ॥ हे अमितविक्रम ! इस त्रिलोकीमें मुख्य माने जाने वाले धर्मके कारण तुम त्रिलोकीको भोगोगे सब भूतोंमें मनोरम वरदान देने वाली सौम्य लक्ष्मी इस प्रकार कहकर दैत्यपति बलिमें प्रवेश कर गई, इसके अतिरिक्त बाकी ह्री कीर्ति द्युति प्रभा धृति क्षमा भूति नीति विद्या दया स्मृति लज्जा मेधा लक्ष्मी ईहा गति श्रुति प्रीति इला पूर्त आदि औतक्रिया कीर्ति शान्ति पुष्टि क्रिया तथा नाचने गानेमें चतुर सब दिव्य अप्सराएँ उस सुन्दर दानवके पास आगईं इसप्रकार ब्रह्मवादी बलिने चराचर त्रिलोकीमें अमित ऐश्वर्य पाया था ॥ १४-१८ ॥ पैंसठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ६५ ॥ ❋

जनमेजय उवाच । पराजिताः सुरा दैत्यैः किमकुर्वत वै मुने । कथं च त्रिदिवं लब्धं भूयो देवैर्द्विजोत्तम ॥ १ ॥ वैशम्पायन उवाच । श्रुत्वा वाणीं तु तां दिव्यां सह देवैः सुराधिपः । प्राग्दिशं प्रस्थितः श्रीमानदित्यालयमुत्तमम् ॥ २ ॥ प्राप्यादित्यालयं शक्रः कथयामास तां गिरम् । अदित्यां सा यथा युद्धे तेन वाणी पुरा श्रुता ॥ ३ ॥ अदितिरुवाच । यद्येवं पुत्र युष्माभिर्न शक्यो हन्तुमाहवे । बलिर्विरोचनसुतः सर्वैश्चैव मरुद्गणैः ॥४॥ सहस्रशिरसा हन्तुं केवलं शक्यतेऽसुरः । तेनैकेन सहस्राक्ष न ह्यन्येन शतक्रतो ॥ ५ ॥ तद्धः पृच्छस्व पितरं कश्यपं सत्यवादिनम् । पराजयार्थं दैत्यस्य बलेस्तस्य महात्मनः ॥६॥ ततोऽदित्या सह सुराः सम्प्राप्ताः कश्यपान्तिकम् । अपश्यन् कश्यपं तत्र मुनिं दिव्यतपोनिधिम् ॥ ७ ॥ आद्यं देवं गुरुं दिव्यं विलन्नं त्रिष-

---

जनमेजयने कहा, कि—हे मुने ! देवताओंने दानवोंसे हार कर क्या किया था; तथा हे द्विजोत्तम ! देवताओंने स्वर्गको फिर कैसे पाया था ॥१॥ वैशम्पायनजीने कहा, कि—उस दिव्य वाणी को सुनकर देवता और श्रीमान् देवराज इन्द्र पूर्व दिशाकी ओर अदितिके उत्तम स्थानको जाने लगे ॥ २ ॥ अदितिके भवनमें पहुँच कर इन्द्रने युद्धमें सुनी हुई आकाशवाणी अदितिसे कही३ अदितिने कहा, कि—हे पुत्र ! विरोचनके पुत्र बलिको तुम और सब देवता भी युद्धमें नहीं मार सकते ॥ ४ ॥ और हे शतक्रतो ! उन सहस्र शिर वाले और सहस्र नेत्र वालेके अतिरिक्त यदि दूसरेसे वह महाअसुर न मारा जासके तो ॥ ५ ॥ उस महात्मा बलि दैत्यकी पराजयके विषयमें अपने पिता कश्यपजीसे बात चीत कर ६ तदनन्तर देवता अदितिको साथमें लेकर कश्यपजी के समीपको चल दिये और तहाँ पर उन्होंने दिव्य तपके निधि आद्य देव गुरु त्रिषवणके जलसे भीगे हुए तेजसे सूर्यकी समान

वर्णावुभिः। तेजसा भास्कराकारं गौरमग्निशिखाप्रभम् ॥ ८ ॥
न्यस्तदण्डं तपोयुक्तं बद्धकृष्णाजिनोत्तरम् । वल्कलाजिनसंवीतं
प्रदीप्तं ब्रह्मवर्चसा ॥ ९ ॥ हुताशमिव दीप्यन्तमाज्यमन्त्रपुर-
स्कृतम् । स्वाध्यायनिरतं नित्यं वपुष्मन्तमिवानलम् ॥ १० ॥
तं ब्रह्मवादिनां श्रेष्ठं सुरासुरगुरुं प्रभुम् । प्रतपन्तमिवादित्यं
मारीचं दीप्ततेजसम् ॥ ११ ॥ यः सृष्टा सर्वभूतानां प्रजानां पति-
रुत्तमः । आत्मभावविशेषेण तृतीयो यः प्रजापतिः ॥ १२ ॥ ततः
प्रणम्य ते वीराः सहादित्याः सुरर्षभाः । ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे
ब्रह्माणमिव मानसाः ॥ १३ ॥ तच्छ्रुतं युधि शक्रेण सरस्वत्याः
समीरितम् । अजेयस्त्रिदशैः सर्वैर्बलिर्दानवसत्तमः ॥१४॥ श्रुत्वा
तु वचनं तेषां पुत्राणां कश्यपस्तदा । चकार गमने बुद्धिं ब्रह्म-
लोकाय लोककृत् ॥ १५ ॥ कश्यप उवाच । गच्छाम ब्रह्मसदनं

दिपते हुए और अग्निशिखकी समान गौर दण्डत्यागी तपस्वी
कृष्णमृगचर्मका दुपट्टा पहिरे हुए वल्कल और चर्मसे आवृत
ब्रह्मतेजसे प्रदीप्त, घृत और मंत्रोंसे प्रदीप्त अग्निकी समान,
स्वाध्यायमें परायण, मूर्तिधारी अग्निकी समान ब्रह्मवादियोंमें
श्रेष्ठ, सुर और असुरोंके गुरु, तपते हुए आदित्यकी समान दीप्त
तेज वाले मरीचिके पुत्र कश्यपको देखा ॥ ७—११ ॥
जो प्रजाओंके पति उत्तम ब्रह्मा सब भूतोंके रचयिता हैं, वही
तीसरी पीढीमें प्रजापति (कश्यप बनकर) उतर आये थे ॥१२॥
उस समय ब्रह्माजीके मानस पुत्रोंके ब्रह्माजीको प्रणाम करनेकी
समान, अदितिके साथ वीर और श्रेष्ठ देवता हाथ जोड़ प्रणाम
कर कश्यपजीसे कहने लगे कि-॥ १३ ॥ इन्द्रने युद्धमें आकाश-
वाणी सुनी है, कि-दानवसत्तम बलि सब देवताओंसे अजेय
है ॥ १४ ॥ अपने पुत्रोंके वचनको सुन कर लोककर्ता कश्यपने
ब्रह्मलोकको चलनेका विचारकिया ॥ १५ ॥ कश्यपजीने कहा,

ब्रह्मघोषनिनादितम् । यथा श्रुतं च तत्रैव ब्रह्मणे वदतानघाः१६
वैशम्पायन उवाच । ततोऽदित्या सह सुरा यान्तं कश्यपमन्वयुः।
प्रस्थितं ब्रह्मसदनं देवर्षिगणसेवितम् ॥ १७ ॥ ते मुहूर्तेन संप्राप्ता
ब्रह्मलोके दिवौकसः । दिव्यैः कामगमैर्यानैर्महार्हैः सुमनोहरैः१८
दिदृक्षवस्ते ब्रह्माणं तपसो राशिमव्ययम्। अभ्यगच्छन्त विस्तीर्णां
ब्रह्मणः परमां सभाम् ॥ १६ ॥ षट्पदोद्गीतनिनदां सामगीत-
विमिश्रिताम् । श्रेयस्करीममित्रघ्नीं दृष्ट्वा संजहृषुर्मुदा ॥ २० ॥
ब्राह्मणैश्च महाभागैर्वेदवेदांगपारगैः । ऋचो बह्वृचमुख्यैश्च प्रेर्य-
माणपदाक्षराः ॥ २१ ॥ शुश्रुवुस्तेऽमरव्याघ्रा विततेषु च कर्मसु ।
यज्ञवेदांगविदुषां पदक्रमविदां तथा ॥ २२ ॥ घोषेण परमर्षीणां
सा बभूव निनादिता ॥ यज्ञसंस्तवविद्भिश्च शिक्षाविद्भिस्तथा

कि—अब हम वेदके घोषसे गुञ्जारते हुए ब्रह्मलोकको चलते हैं हे पापरहित देवताओ ! तहाँ चल कर जो कुछ तुमने सुना है, उसको ब्रह्माजीसे कहना ॥ १६ ॥ वैशम्पायनजीने कहा, कि—उस समय कश्यप देवर्षियोंसे सेवित ब्रह्मलोकको चलनेलगे तब देवता और अदिति भी उनके पीछे२ चलने लगी१७उस समय देवता इच्छानुसार चलने वाले बहुमूल्य मनोहर दिव्य विमानों में बैठकर क्षणभरमें ही ब्रह्मलोकके पास पहुँच गए ।१८। फिर वे तपोराशि अव्यय ब्रह्माजीको देखनेकी इच्छासे ब्रह्माजीकी परम विस्तृत सभामें घुसने लगे ॥ १६ ॥ उसमें भौंरे गुञ्जार रहे थे, सामगान भी हो रहा था, उस कल्याणकारिणी शत्रुनाशिका सभाको देखकर देवता प्रसन्न होने लगे २०. व्याघ्र की समान देवताओंने तहाँ पर होतेहुए कर्मोंमें वेदवेदाङ्गके पारगामी महाभाग ब्राह्मणोंसे और बहुतसी ऋचाओंको मुख्यरूप से जानने वाले ब्राह्मणोंसे उच्चारण कियेहुए पद और अक्षरों को सुना, यज्ञ और वेदांगके ज्ञाता तथा पद और क्रमको जानने

द्विजैः ॥ २३ ॥ शब्दनिर्वचनार्थज्ञैः सर्वविद्याविशारदैः ।
मीमांसाहितवाक्यज्ञैः सर्ववादविशारदैः । हृष्टपुष्टस्वरैस्तत्र द्विजे-
न्द्रैर्वल्गुवादिभिः । नादितं ब्रह्मसदनं प्रवरं देवसद्मवत् ॥ २५ ॥
ते तत्र समनुप्राप्य शृण्वन्तो वै ध्वनिं सुराः । पूतान्यात्मशरी-
राणि मेनिरे तु न संशयः॥२६॥ तूष्णीं भूता एकचित्ता ब्रह्मण्य-
गतमानसाः । विस्मयोत्फुल्लनयना निरीक्षन्तः परस्परम्॥२७॥
नमस्कुर्वन्ति च पुनर्गुरुं लोकगुरुं प्रभुम् । मनसैव सुरश्रेष्ठाः
पुरस्कृत्य तु कश्यपम् ॥ २८ ॥ पुनः संपूज्य परमं वेदोच्चारण-
निःस्वनम् । गम्भीरोदारमधुरं सुस्वरं हंसगद्गदम् ॥२९॥ ऐक्य-
नानात्वसंयोगसमवायविशारदैः । लोकायतिकमुख्यैश्च शुश्रुवुः
स्वनमीरितम् ॥ ३० ॥ तत्र तत्र च विप्रेन्द्रान् नियता संशित-

वाले परमर्षियोंके घोषसे वह सभा गुञ्जार रही थी, यज्ञके स्तोत्रोंको जानने वाले तथा शिक्षाको जानने वाले, शब्दकी व्याख्या और अर्थको जानने वाले सर्वविद्याविशारद, मीमांसा के अनुकूल वाक्यको जाननेवाले सब वादोंमें चतुर हृष्ट पुष्ट स्वरवाले मधुरभाषी ब्राह्मणोंसे वह देवभवन–वह ब्रह्मभवन गुञ्जार रहा था ॥ २१–२५ ॥ देवता तहाँ पहुँच उस ध्वनिको सुन अपने शरीरोंको पवित्र हुआ समझने लगे ॥ २६ ॥ फिर वे चुप हो ब्रह्माजीमें एकाग्रतापूर्वक चित्तको लगाकर विस्मयके कारण खिले हुए नेत्रोंसे परस्परको देखने लगे ॥२७॥ तदनन्तर सब श्रेष्ठ देवताओंने कश्यपको आगे करके मनही मन प्रभु लोकगुरुको प्रणाम किया ॥२८॥ तदनन्तर गम्भीर उदार मधुर और हंसकी समान गद्गद वेदोंके उच्चारणकी ध्वनिको सुन उन्होंने उसकी प्रशंसाकी ॥ २९ ॥ फिर उन्होंने ऐक्य नानात्व संयोग और समवायमें चतुर मुख्य २ लोकायतिकोंके शब्द को सुना कश्यपके पुत्रोंने जहाँ तहाँ जप और होममें परायण

व्रतान् । जपहोमपरान् मुख्यान् ददृशुः कश्यपात्मजाः ॥ ३१ ॥ तस्यां सभायामास्ते स्म ब्रह्मा लोकपितामहः । सुरासुरगुरुः श्रीमान् विधिवद्देवमायया ॥ ३२ ॥ उपासते च तत्रैनं प्रजानां पतयः प्रभुम् । दक्षः प्रचेताः पुलहो मरीचिश्च द्विजोत्तमः ३३ भृगुरत्रिर्वशिष्ठश्च गौतमो नारदस्तथा । मनुर्द्यौरन्तरिक्षं च वायुस्तेजो जलं मही ॥३४॥ शब्दस्पर्शौ च रूपं च रसो गंधस्तथैव च । प्रकृतिश्च विकाराश्च यच्चान्यत् कारणं महत् ॥३५॥ साङ्गोपाङ्गाश्चतुर्वेदाः सरहस्यपदक्रमाः । क्रियाश्च क्रतवश्चैव संकल्पः प्राण एव च ॥ ३६ ॥ एते चान्ये च बहवः स्वयंभुवमुपस्थिताः । अर्थो धर्मश्च कामश्च द्वेषो दर्पश्च नित्यदा ॥ ३७ ॥ शक्रो बृहस्पतिश्चैव संवर्तो बुध एव च । शनैश्चरोथ राहुश्च ग्रहाः सर्वे ह्यशेषतः ३८ मरुतो विश्वकर्मा च नक्षत्राणि च भारत । दिवाकरश्च सोमश्च ब्रह्माणं समुपासते । सावित्री दुर्गतरणी वाणी सप्तविधा तथा ३९

रहनेवाले प्रशंसित व्रत वाले और नियमानुसार चलने वाले श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको भी देखा ॥ ३१ ॥ उस सभामें देवमायावश देवता और दानवोंके गुरु लोकोंके पितामह श्रीमान् ब्रह्माजी उचितरीतिसे बैठे हुए थे ॥ ३२ ॥ तहाँ पर प्रजापति उन प्रभु की उपासना कर रहे थे तथा दक्ष प्रचेता पुलह मरीचि द्विजोत्तम भृगु अत्रि वसिष्ठ गौतम नारद मनु स्वर्ग आकाश वायु तेज जल पृथ्वी शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध प्रकृति विकार महाकारण (अहंकार) रहस्य क्रम और क्रम सहित तथा अङ्ग प्रत्यंगसहित वेद क्रिया क्रतु संकल्प प्राण ये तथा और भी बहुतसे व्यक्ति स्वयंभूके पास आगए थे । अर्थ धर्म काम द्वेष दर्प इन्द्र बृहस्पति सम्वर्त बुध शनैश्चर राहु और सब ग्रह मरुत विश्वकर्मा नक्षत्र सूर्य और चन्द्रमा भी ब्रह्माजीकी उपासना कर रहे थे और हे राजन्! दुर्गतारिणी सावित्री सात प्रकारकी वाणी सब मूर्तिमान्

सर्वाणि श्रुतिशास्त्राणि गाथाश्च नियमास्तथा । भाष्याणि सर्व-शास्त्राणि देहवन्ति वशाम्पते । क्षणा लवा मुहूर्ताश्च दिवारात्रिश्च भारत ॥ ४० ॥ अर्धमासाश्च मासाश्च ऋतवः षट् तथैव च । संवत्सराश्चतुर्युगं मासा रात्रिश्चतुर्विधा ॥ ४१ ॥ कालचक्रं च यद्दिव्यमनित्यं ध्रुवमव्ययम् । एते चान्ये च बहवः स्वयंभुवमुपस्थिताः ॥ ४२ ॥ ते प्रविष्टाः सभां दिव्यां ब्रह्मणः सर्वकामदाम् । कश्यपस्त्रिदशैः सार्धं पुत्रैर्धर्मविशारदैः ॥ ४३ ॥ सर्वतेजोमयीं दिव्यां ब्रह्मर्षिगणसेविताम् । ब्राह्म्या श्रिया दीप्यमानमचिन्त्यं विगतक्लमम् ॥ ४४ ॥ ब्रह्माणं वीक्ष्य ते सर्वे आसीनं परमासने । जग्मुर्मूर्ध्ना शुभौ पादौ ब्रह्मणस्ते दिवौकसः ॥ ४५ ॥ शिरोभिः स्पृश्य चरणौ तस्य ते परमेष्ठिनः । विमुक्ताः सर्वपापेभ्यः शान्ता विगतकल्मषाः ॥ ४६ ॥ दृष्ट्वा तु तान् सुरान् सर्वान् कश्यपेन सहागतान् । आह ब्रह्मा महातेजा देवानां प्रभुरीश्वरः ॥ ४७ ॥ षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

श्रुतिशास्त्र गाथा नियम भाष्य और सब शास्त्र क्षण लव मुहूर्त दिन रात पक्ष मास छः ऋतु सम्वत्सर चतुर्युग मास चार प्रकार की रात्रि तथा ध्रुव नित्य अव्यय कालचक्र तथा और भी बहुत से व्यक्ति ब्रह्माजीके पास आए थे ॥ ३३–४२ ॥ ये सब और कश्यपजी अपने धर्मविशारद पुत्रोंको साथमें लेकर सब कामनाओंको देने वाली ब्रह्मर्षियोंसे सेवित सर्वतेजोमयी, ब्रह्माजी की सभामें घुसे फिर उन सब देवताओंने ब्राह्मी शोभासे दिपते हुए क्लमरहित अचिन्त्य ब्रह्माजीको श्रेष्ठ आसन पर बैठा हुआ देख कर उनके शुभ चरणोंमें शिर झुका कर प्रणाम किया ॥ ४३–४५ ॥ ब्रह्माजीके चरणोंमें मस्तक झुका कर वे सब पापोंसे मुक्त होगए और कल्मष शून्य होगए ॥ ४६ ॥ उन सब देवगणोंको कश्यपके साथ आया हुआ देखकर देवताओं के प्रभु ईश्वर महातेजस्वी ब्रह्माजी कहने लगे ॥ ४७ ॥ छियासठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ६६ ॥ छ छ छ

ब्रह्मोवाच । यदर्थमिह संप्राप्ता भवन्तः सर्व एव हि । विज्ञातमन्यच्चन्यच्च एतत् सर्वं महाबलाः ॥ १ ॥ भविष्यति च वः सोऽर्थः कांक्षितो यः सुरोत्तमाः । बलेर्दानवमुख्यस्य यो विजेता भविष्यति ॥ २ ॥ न खल्वसुरसंघानामेको जेता स विश्वकृत् । त्रैलोक्यस्यापि जेतासौ देवानामपि चोत्तमः ॥ ३ ॥ धाता चैव हि लोकानां विश्वयोनिः सनातनः । पूर्वदेहं सदा प्राहुर्हिरण्यगर्भविदर्शनम् ॥ ४ ॥ आत्मा देवेन विष्णुना कृतोऽजेयो महात्मना । बलेरसुरमुख्यस्य विश्वस्य जगतस्तथा ॥ ५ ॥ प्रभवः स हि सर्वेषामस्माकमपि पूर्वजः । अचिन्त्यः स हि विश्वात्मा योगमुक्तः परन्तप ॥ ६ ॥ तं देवापि महात्मानं न विदुः कोऽप्यसाविति । वेदात्मानं न विश्वं च स देवः पुरुषोत्तमः ॥७ ॥ तस्यैव

ब्रह्माजीने कहा, कि-हे महाबलवानो ! आप सब जिस लिये यहाँ पर आए हैं उस सबको मैं भली प्रकार जानता हूँ ॥१॥ हे श्रेष्ठ देवताओं ! तुम जिस बातको चाहते हो, वह काम सिद्ध होजायगा, दानवोंमें मुख्य बलि दैत्यको जो जीतेंगे ॥ २ ॥ वह विश्वकर्ता केवल असुरोंके टोलोंको ही जीत सकें, यही बात नहीं है किन्तु वह तो त्रिलोकीके भी विजेता हैं और देवताओं में भी उत्तम हैं ॥ ३ ॥ लोकोंके धाता हैं, विश्वयोनि हैं, सनातन हैं, विद्वान् पुरुष सदा इस बातको कहते रहते हैं वह (मुझ) हिरण्यगर्भके भी उत्पादक हैं ॥ ४ ॥ उन महात्मा विष्णु देवने असुरोंमें मुख्य बलिकी आत्माको विश्वका अजेय बना दिया है ॥ ५ ॥ वह सबके उत्पत्तिस्थान हैं और हमारे भी पूर्वज हैं, हे परन्तप ! वह विश्वात्मा योगयुक्त हैं और अचिन्त्य हैं ॥६॥ देवता भी उन महात्माको यह नहीं जानते कि-यह कौन हैं ? और वह पुरुषोत्तम देव तो अपने आपेको और विश्वको भी जानते हैं ॥ ७ ॥ उनकी कृपासे ही मैं उस परम गन्तव्य स्थान

तु प्रसादेन प्रवक्ष्येऽहं परां गतिम् । यत्र योगं समास्थाय तप-श्चरति दुश्चरम् ॥ ८ ॥ क्षीरोदस्योत्तरे कूले उदीच्यां दिशि देवताः । अमृतं नाम परमं स्थानमाहुर्मनीषिणः ॥ ९ ॥ भवन्त-स्तत्र वै गत्वा तपसा संशितव्रताः । अमृतं स्थानमासाद्य तपश्चरत दुश्चरम् १० तत्र श्रोष्यथ निस्पष्टां स्निग्धगम्भीरनिःस्वनाम् । उष्णगे तोयपूर्णस्य तोयदस्य समस्वनाम् । युक्ताक्षरपदां स्निग्धां रम्यामभयदां शिवाम् ॥ ११ ॥ वाणीं परमसंस्कारां वरदां ब्रह्मवादिनीम् । दिव्यां सरस्वतीं सत्यां सर्वकिल्बिषनाशि-नीम् ॥ १२ ॥ सर्वदेवाधिदेवस्य भाषितां भावितात्मनः । तस्य व्रतसमाप्तौ तु यावद्व्रतविसर्जनम् ॥ १३ ॥ अमोघस्य तु देवस्य विश्वरूपां महात्मनः । स्वागतं वः सुरश्रेष्ठा मत्साकाशे व्यव-स्थिताः ॥ १४ ॥ कस्य किं वा वरं देवा ददामि वरदः स्थितः ।

को बताता हूँ, कि जहाँ पर वह योग धारण कर परम दुष्कर तपको कर रहे हैं ॥८॥ हे देवताओं ! मनीषी पुरुष उत्तर दिशा में क्षीरसमुद्रके उत्तर तट पर अमृत नाम वाले श्रेष्ठ स्थानका वर्णन करते हैं॥९॥ हे प्रशंसनीय व्रतवाले देवताओं ! तुम तपो बलसे अमृत नामक स्थान पर पहुँचकर दुष्कर तप करो ॥१०॥ व्रत पूर्ण होने पर उन अमोघ देव महात्मा और पवित्रात्मा सर्वाधिदेवकी उच्चारणकी हुई स्निग्ध और गम्भीर स्वर वाली; वर्षाऋतुके सगम जलसे भरेहुए मेघकी समान शब्द करने वाली; उचित और पदोंसे स्निग्ध रमणीय अभयदायिनी शिवंकरी परमसंस्कृत वरदायिनी ब्रह्मवादिनी दिव्य सरस्वतीरूपा सर्व पापोंका नाश करने वाली विश्वरूप वाणीको स्पष्टरूपमें सुनोगे, कि हे श्रेष्ठ देवताओं ! तुम मेरे पास खड़े हुए हो, तुम्हारा स्वा-गत है ११-१४ हे देवताओं ! मैं किसको क्या वर दूँ बताओ ! मैं सामने खड़ा हुआ हूँ, उस समय कश्यप और अदिति उन

तं कश्यपोदितिश्चैव वरं गृह्णीत वै ततः ॥१५॥ प्रणम्य शिरसा पादौ तस्मै योगात्मने तदा । भवानेव च नः पुत्रो भवत्विति न संशयः ॥१६॥ उक्तश्च परया भक्त्या तथास्त्विति स वक्ष्यति । देवा ब्रुवन्तु तं सर्वे भ्राता नस्त्वं भवेति ह ॥१७॥ तथास्त्विति च तेनोक्तः श्रीमान् वक्ष्यते सर्वलोककृत् । तस्माद्वरं गृहीत्वा तु वरं त्रिदशसत्तमाः ॥ १८ ॥ कृतकृत्याः पुनः सर्वे गच्छध्वं स्वं स्व-धामकम् । तथास्त्विति सुराः सर्वे कश्यपोऽदितिरेव च ॥ १९ ॥ वन्दित्वा ब्रह्मचरणौ गताः सौम्यां दिशं प्रति । तेऽचिरेणैव सम्प्राप्ताः क्षीरोदस्योत्तरं तटम् ॥ २० ॥ यथोद्दिष्टं भगवता ब्रह्मणा ब्रह्मवादिना । तेऽतीत्य सागरान् सर्वान् पर्वतांश्च बहून् क्षणात् ॥ २१ ॥ नद्यश्च विविधा दिव्याः पृथिव्यां सुरसत्तमाः । पश्यन्ति च सुघोरां वै सर्वसत्त्वविवर्जिताम् ॥२२॥ अभास्करम-मर्यादां तमसा संवृतां दिशम् । अमृतं स्थानमासाद्य कश्यपेन

योगात्माके चरणोंमें शिर झुका प्रणाम करके यह वर माँगे; कि-आप ही हमारे पुत्र हों ॥ १५ ॥ १६ ॥ परमभक्तिसे इस प्रकार कहने पर वह तथास्तु कहेंगे और सब देवताओंको भी उस समय यह कहना चाहिये, कि-आप हमारे भाई बनिये १७ तब वह सब लोकोंको रचने वाले श्रीमान् तथास्तु कहेंगे, उनके इस प्रकार वरको ग्रहण करके हे देवताओं ! तुम कृतकृत्य होकर घरोंको चले जाना, तब कश्यप अदिति तथा सब देवता तथास्तु कह कर और ब्रह्माजीके चरणोंमें प्रणाम करके उत्तरदिशाकी ओर चल दिए और शीघ्र ही क्षीर समुद्रके उत्तरतट पर पहुँच गए १८।१९ ब्रह्मवादी भगवान् ब्रह्माजीने जिसप्रकार बताया था तिसप्रकार उन्होंने क्षणभरमें बहुतसे समुद्र पर्वत और पृथ्वीकी दिव्य नदियोंका उल्लँघन करके सब प्राणियोंसे रहित भयंकर, सूर्यरहित, मर्यादारहित अन्धकारसे छाईहुई दिशाको देखा, अमृत

सुरैः सह ॥ २३ ॥ दीक्षिता कामदं दिव्यं व्रतं वर्षसहस्रकम् । प्रसादार्थं सुरेशाय तस्मै योगाय धीमते । नारायणाय देवाय सहस्राक्षाय धीमते॥२४॥ब्रह्मचर्येण मौनेन स्थानवीरासनेन च । दमेन च सुराः सर्वे तपो दुश्चरमास्थिताः ॥ २५ ॥ कश्यपस्तत्र भगवान् प्रसादार्थं महात्मनः । उदीरयति वेदोक्तं यमाहुः परमं स्तवम् ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

कश्यप उवाच । नमोस्तु १ ते देवदेवेश एकशृङ्ग वराह वृषार्चिष ४ वृषसिन्धो ५ वृषाकपे सुरवृषभ सुरनिर्मित अनिर्मित भद्रकपिल विष्वक्सेन ध्रुव धर्म धर्मराज वैकुण्ठ त्रेतावर्त १७ अनादिमध्यनिधन धनञ्जय शुचिश्रवः अग्निज २१ वृष्णिज अज अजय मृतेशय सनातन विधातस्त्रिकाम त्रिधाम त्रिककुद् ३०

स्थान पर पहुँचनेके अनन्तर कश्यपने और देवताओंने देवताओंके स्वामी योगस्वरूप बुद्धिमान सहस्राक्ष इच्छापूरक नारायणको प्रसन्न करनेके लिए सहस्र दिव्य वर्षोंकी दीक्षाली२१-२४ उस समय सब देवता ब्रह्मचर्य मौन स्थान वीरासन और दमके द्वारा भयंकर तप करने लगे ॥२५॥ उस समय भगवान् कश्यप के उन महात्माको प्रसन्न करनेके लिए वेदोक्त स्तोत्र गाया था उसको परमस्तोत्र कहते हैं ॥२६॥ सरसठवाँ अध्याय समाप्त ६७

कश्यपजीने कहा, कि—हे देवदेवेश ! आपको प्रणाम है, हे एकशृंग ! हे धर्ममयूख ! हे वराह ! हे धर्मसागर ! हे वृषाकपे ! हे सुरवृषभ ! हे सुरनिर्मित ! हे अनिर्मित ! हे भद्रकपिल ! हे विश्वक्सेन ! हे ध्रुव ! हे धर्म ! हे धर्मराज ! हे वैकुण्ठ ! हे त्रेतावर्त ! (श्रुतियुक्त कर्मोंसे अभिमुख होने वाले) हे अनादिमध्यनिधन ! हे धनञ्जय ! हे शुचिश्रवः ! हे अग्निज ! (कार्तिकेय)

ककुद्मिन् दुंदुभे ६२ महानाभ लोकनाभ पद्मनाभ विरंचे वरिष्ठ बहुरूप विरूप विश्वरूप त्रयाक्षर सत्याक्षर हंसाक्षर ४३ हव्यभुक् खंडपरशो शुक्र मुंजकेश हंस महाहंस महदक्षर हृषीकेश सूक्ष्म परसूक्ष्म तुराषाट् विश्वमूर्ते सुराग्रज नीलनिरस्तमो विरजस्तमोरजः सत्वधाम सर्वलोकप्रतिष्ठ शिपिविष्ट सुनपस्तपोग्र अग्र अग्रज धर्मनाभ गभस्तिनाभ धर्मनेम सत्यधाम सत्याक्षरे गभस्तिनेमे विपाप्मन् चन्द्ररथ ७४ विपाप्मन् त्वमेव समुद्रवासाः अजैकपात् सहस्रशीर्ष सहस्रसंमित महाशीर्ष सहस्रदृक् सहस्रपात् अधोमुख महामुख महापुरुष पुरुषोत्तम सहस्रबाहो सहस्रमूर्ते सहस्रास्य सहस्राक्ष सहस्रभुज सहस्रभुव सहस्रशस्त्वामाहु-

---

हे वणिज ! हे अज ! हे अजय ! हे भूतेश ! हे सनातन ! हे त्रिधाता ! हे त्रिकाय ! हे त्रिधाम ! हे त्रिककुद् (धर्मज्ञानवैराग्यस्कंध) हे ककुद्मिन् ! हे दुन्दुभे ! हे महानाभ हे लोकनाभ ! हे पद्मनाभ ! हे विरिञ्चे ! हे वरिष्ठ हे! बहुरूप ! हे विरूप ! हे विश्वरूप ! हे त्रयाक्षर ! हे सत्याक्षर ! हे हंसाक्षर ! (अजपामंत्र) हे हव्यभुक्! हे खण्डपरशो ! हे शुक्र! हे मुञ्जकेश! हे हंस! हे महाहंस ! हे महदक्षर ! हे हृषीकेश ! हे सूक्ष्म ! हे परसूक्ष्म ! हे तुराषाट् ! हे विश्वमूर्ते हे सुराग्रज ! हे नीलनिरस्तम ! हे विरजस्तम ! हे सत्वधाम ! हे सर्वलोकप्रतिष्ठ ! हे शिपिविष्ट ! हे सुनपस्तपोग्र ! हे अग्र ! हे अग्रज ! हे धर्मनाभ ! हे गभस्तिनाभ हे धर्मनेम ! हे सत्यधाम ! हे सत्याक्षरे! हे गभस्तिनेमे! हे विपाप्मन् ! हे चन्द्ररथ ! (समष्टि मन पर अधिरूढ़ अर्थात् विराडात्मन्) हे विपाप्मन् ! आप समुद्ररूप वस्त्रको धारण करते हैं, हे अजैक ! हे सहस्रनेत्र ! हे सहस्रपात् ! हे अधोमुख ! हे सहस्रशीर्ष ! हे सहस्र-सम्मित ! हे महाशीर्ष ! हे महामुख ! हे महापुरुष ! हे पुरुषोत्तम ! हे सहस्रबाहो !

वेदाः विश्वेदेव विश्वसम्भव सर्वेषामेव देवानां सौभग आद्यो गतिः ॥ ९७ ॥ विश्वं त्वमाप्यायनः विश्वं त्वामाहुः पुष्पहासं परमवरदस्त्वमेव त्वमेव वौषट् ॐकारवषट्कारं त्वामेवमाहुरग्र्यं यज्ञभागप्राशिनम् । शतधार १०५ सहस्रधार १०६ भूर्द भुवर्द स्वर्द भूर्भुवःस्वर्द त्वमेव भूर्त्वं भुवनं त्वं स्वधा त्वमेव ब्रह्मेशय ब्रह्ममय ब्रह्मादिस्त्वमेव द्यौरसि पृथिव्यसि पूषासि मातरिश्वासि धर्मोसि मघवासि होता पोता नेता हन्ता मन्ता होम्यहोता परात्परस्त्वम् होमहोता त्वमेव आपोसि विश्ववाक् धात्रा परमेण धाम्ना त्वमेव दिग्भ्यः स्रुक् ॥ १३२ ॥ स्रुग्भाण्ड १३३ त्वं गण्य इष्टोसि इज्योसि ईड्योसि त्वष्टा त्वमसि सिद्धस्त्वमेव गति-

---

हे सहस्रमूर्ते ! हे सहस्रास्य ! हे सहस्राक्ष ! हे सहस्रभुज ! वेद आपका सहस्रों प्रकारसे वर्णन करते हैं, हे विश्वेदेव ! हे विश्वसंभव ! और आप सब देवताओंके सौभाग्य और (धर्मरूप) मुख्य गति हैं आप विश्वको बढ़ाने वाले हैं, आपको विश्व कहते हैं, हे पुष्पहास ! आप ही परम-वरद हैं, आप ही वौषट् हैं, आपको ही ओंकार वषट्कार प्रशंस-नीय और यज्ञके भागका भक्षण करनेवाला कहते हैं, हे शतधार (चन्द्र) हे सहस्रधार (चन्द्र) हे भूर्द ! हे भुवर्द हे स्वर्द ! हे भूर्भुवः स्वर्द ! आप ही भूः हैं आप ही भुवन हैं और आप ही स्वधा हैं, हे ब्रह्मेशय ! हे ब्रह्ममय ! आप ही ब्रह्मादि हैं, आप ही स्वर्ग हैं, पृथ्वी हैं, पूषा हैं, मातरिश्वा हैं आप ही धर्म हैं, आप ही इन्द्र हैं और आप ही होता नेता पोता हन्ता मन्ता होम्य और होमहोतासे परमश्रेष्ठ हैं और आप ही होम्यहोता हैं और आप ही जल हैं, परमयज्ञके कारण अग्निके लिये दिशाओंसे लाये हुए स्रुक् भी आप ही हैं, हे स्रुग्भाण्ड ! आप गण्य हैं, इष्ट हैं इज्य हैं, ईड्य हैं, आप त्वष्टा हैं आप समिद्ध हैं और आप ही

गतिमतामसि मोक्षोसि योगोसि सुखोसि सिद्धोसि धर्म्योसि धातासि परमोसि यज्ञोसि सोमोसि यूपोसि दक्षिणासि दीक्षासि विश्वमसि स्थविष्ठ स्थविर विश्वं तुराषाट् हिरण्यगर्भ हिरण्यनाभ हिरण्यनारायण नारायणान्तर नृणामयन आदित्यवर्ण आदित्यतेजः महापुरुष सुरोत्तम आदिदेव पद्मनाभ पद्मेशय पद्माक्ष पद्मगर्भ हिरण्याग्रकेश शुक्लविश्वदेव विश्वतोमुख विश्वाक्ष विश्वसंभव विश्वभुक्त्वमेव भूरिविराग नरक्रम त्रिभुवन सुविक्रम स्वर्विक्रम वभ्रु सुविभुः प्रभाकर शम्भुः स्वयंभूश्च भूतादिः भूतात्मन् महाभूत विश्वभुक्त्वमेव विश्वगोप्तासि विश्वम्भर पवित्रमसि हविर्विशारद हविःकर्मा अमृतेश्वन सुरासुरगुरो महादिदेव नृदेव ऊर्ध्वकर्मन् २०२ पूतात्मन् अमृतेश दिवस्पृक् विश्वस्य पते घृताच्यसि २०७ अनन्तकर्मन् २०८ द्रुहिणवंश

गति वालोंकी गति हैं, मोक्ष हैं, योग हैं सुख हैं, सिद्ध हैं और तुम ही धाता हो, परम हो, यज्ञ हो, सोम हो, यूप हो, दक्षिणा हो, दीक्षा हो, और विश्व हो हे स्थविष्ठ ! हे स्थविर ! हे विश्व ! हे तुराषाट् ! हे हिरण्यगर्भ ! हे हिरण्यनारायण ! हे नारायणान्तर ! हे मनुष्योंके आश्रयस्थान ! हे आदित्यवर्ण ! हे आदित्यतेज ! हे महापुरुष ! हे सुरोत्तम ! हे आदिदेव ! हे पद्मनाभ ! हे पद्मेशय ! हे पद्माक्ष ! हे पद्मगर्भ ! हे हिरण्याग्रकेश ! हे शुक्लविश्वदेव ! हे विश्वतोमुख ! हे विश्वाक्ष ! हे विश्वसंभव ! आप ही विश्वभुक् हैं हे विश्वंभर ! तुम ही विश्वगोप्ता हो और हे हविर्विशारद ! तुम ही पवित्र हो, हे हविकर्मा ! हे अमृतेश्वन ! हे सुरासुरगुरो ! हे महादिदेव ! हे नृदेव ! हे ऊर्ध्वकर्मन् ! हे पूतात्मन् ! हे अमृतेश ! हे दिवस्पृक् ! हे विश्वके स्वामिन् ! तुम घृताची हो हे अनन्तकर्मन् ! हे द्रुहिणवंश ! हे स्ववंश ! आप विश्वकी रक्षा करनेवाले हैं आप ही विश्वका भरण पोषण

स्त्वं श विश्वरूपास्त्वं त्वमेव विश्वं बिभर्षि वरार्थिनो नस्त्राग-
स्वेति २१३

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे
अष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

वैशम्पायन उवाच । नारायणस्तु भगवाञ्छ्रुत्वैतत् परमं स्तः
वम् । ब्रह्मज्ञेन द्विजेन्द्रेण कश्यपेन समीरितम् ॥ १ ॥ स्निग्धं
गम्भीरनिर्घोषजीमूतस्वननिःस्वनम् । मनसा प्रीतियुक्तेन विबु-
धानां महात्मनाम् ॥ २ ॥ उवाच वचनं सम्यग्घृष्टपुष्टपदाक्षरम् ।
आकाशाच्छ्रुश्रुवे शब्दो दर्शनं नोपलभ्यते । श्रीमान् प्रीतमना
देवः प्रोवाच प्रभुरीश्वरः ॥ ३ ॥ विष्णुरुवाच । प्रीतोस्मि वः
सुरश्रेष्ठाः सर्वे मत्तो विनिश्चयम् । वरं वृणुत भद्रं वो वरदोस्मि
सुरोत्तमाः ॥ ४ ॥ कश्यप उवाच । यदैव भगवान् प्रीतः सर्वेषा-
ममरोत्तमः । तदैव कृतकृत्याः स्म त्वं हि नः परमा गतिः ॥५॥

करते हैं आप हम वरकी प्रार्थना करने वालोंकी रक्षा करिये
अड़सठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ६८ ॥

वैशम्पायनजीने कहा, कि—नारायण भगवान्ने ब्रह्मज्ञ द्विज-
राज कश्यपके कहे हुए और महात्मा देवताओंके प्रीति भरे मन-
में भरे हुए स्निग्ध गम्भीर निर्घोष करने वाले मेघकी समान
शब्दयुक्त इस परमश्रेष्ठ स्तोत्रको सुनकर हृष्टपुष्ट अक्षर और पद
वाले वचनको कहने लगे, प्रभु ईश्वर श्रीमान् देव जिस समय
मनको प्रसन्न करके कहने लगे उस समय आकाशसे शब्द
सुनाई आता था, परन्तु दर्शन नहीं होता था ॥ १-३ ॥ विष्णु-
ने कहा, कि—हे श्रेष्ठ देवताओं ! मैं तुम पर प्रसन्न हूँ, हे सुरो-
त्तमों ! तुम अपने निश्चित वरको मुझसे माँग लो मैं तुमको वर
दूँगा ॥४॥ कश्यपजीने कहा कि—देवताओंमें श्रेष्ठ भगवान् ! हम
पर प्रसन्न होगए, इसीसे हम कृतकृत्य होगए, क्योंकि—आप

यदि प्रसन्नो भगवान् देयो नो वा वरो यदि। वासवस्यानुजो भ्राता ज्ञातीनां नन्दिवर्धनः॥ ६॥ अदित्यां वामनः श्रीमान् भगवानस्तु नो सुतः। वैशम्पायन उवाच। अदितिर्देवमाता च एवमेवार्थमुत्तमम्। पुत्रार्थं वरदं प्राह भगवन्तं वरार्थिनी॥ ७॥ अदितिरुवाच। याचे त्वां पुत्रकामा वै भवान् पुत्रो भवत्विति। निःश्रेयसाय सर्वेषां देवानां महात्मनाम्॥ ८॥ देवा ऊचुः। भ्राता भर्ता च दाता च शरणं च भवस्व नः। अदित्याः पुत्रतां याते त्वयि देवाः सवासवाः। देवशब्दं वहिष्यन्ति कश्यपस्यात्मजो भव॥९॥ वैशम्पायन उवाच। ततस्तानब्रवीद्विष्णुर्देवान् कश्यपमेव च। एवं भवतु भद्रं वो यथेष्टं कामकाम्यया। सर्वेषामेव युष्माकं ये भविष्यन्ति शत्रवः॥ १०॥ मुहूर्तमपि ते सर्वे न स्थास्यन्ति ममाग्रतः। हत्वासुरगणान् सर्वान् ये चान्ये देवशत्रवः॥ ११॥ करिष्ये देवताः सर्वा यज्ञभागाग्रभोजिनः।

हमारी परमगति हैं॥ ५॥ यदि भगवान् हमारे ऊपर प्रसन्न हुए हों और यदि हमें वर देना चाहते हों तो श्रीमान् भगवान् अदितिमें वामनरूपसे उत्पन्न हो इन्द्रके छोटे भाई बन जाति वालों के आनन्दको बढ़ावें, वैशम्पायनजीने कहा, कि—वर चाहने वाली देवमाता अदितिने भगवान्‌से यही उत्तम वर माँगा॥ ६॥ ७॥ अदितिने कहा, कि—मैं पुत्र चाहने वाली आपसे सब महात्मा देवताओंका कल्याण करनेके लिए वर माँगती हूँ, कि—आप मेरे पुत्र बनें॥८॥ देवताओंने कहा, कि—आप हमारे भ्राता भर्ता दाता और शरण्य हूजिए; आपके अदितिके पुत्र बननेपर इन्द्रसहित सब देवता देवशब्दको धारण किए रह सकेंगे, इस लिए आप कश्यपके पुत्र बनिए॥ ९॥ वैशम्पायनजीने कहा, कि—तदनन्तर विष्णुने देवता और कश्यपसे कहा, कि—ऐसा ही हो आपका मनोरथ सिद्ध हो, तुम सबके जो शत्रु होंगे, वे

हव्यादांश्च सुरान् सर्वान् कव्यादांश्च पितॄनपि ॥१२॥ करिष्ये विबुधश्रेष्ठाः पारमेष्ठ्येन कर्मणा । यथागतेन मार्गेण निवर्तध्वं सुरोत्तमाः ॥१३॥ देवमातुस्तथादित्याः कश्यपस्यामितात्मनः । यथा मनीषितं कर्ता गच्छ ध्वं स्वं स्वमालयम् ॥ १४ ॥ वैशम्पायन उवाच । एवमुक्ते तु वचने विष्णुना प्रभविष्णुना । देवाः प्रहृष्टमनसः पूजयन्ति स्म सर्वशः ॥१५॥ विश्वेदेवा महात्मानः कश्यपोऽदितिरेव च । साध्या मरुद्गणाश्चैव शक्रश्चैव महाबलः॥ नमस्कृत्य सुरेशाय तस्मै देवाय रंहसे ॥१६॥ प्रयाताः प्राग्दिशं दिव्यं विपुलं कश्यपाश्रमम् । गत्वा त आश्रमं तत्र ब्रह्मर्षिगणसेवितम् । चेरुः स्वाध्यायनियता अदित्या गर्भगौप्सवः ॥१७॥ अदितिर्देवमाता च गर्भं दध्रेऽतितेजसम् । भूतात्मानं महात्मानं

सब मुहूर्त भर भी मेरे सामने खड़े न होसकेंगे, सब असुरोंको तथा देवताओंके दूसरे शत्रुओंको मार कर मैं सब देवताओंको यज्ञमें श्रेष्ठ भाग पाने वाला करूँगा हे श्रेष्ठ देवताओ ! मैं पारमेष्ठ्यकर्मसे सब देवताओंको हव्यभक्षी और सब पितरोंको कव्यभक्षी बनाऊँगा, हे श्रेष्ठ देवताओ ! तुम जिस मार्गसे आये हो उस मार्गसे लौट जाओ।१०–१३॥ मैं देवमाता अदितिकी और और अमितात्मा कश्यपकी मनचाही बात करूँगा, अतः तुम अपने २ घरको लौट जाओ ॥ १४ ॥ वैशम्पायनजीने कहा, कि—प्रभाववान् विष्णुके इस प्रकार कहने पर देवता मन में प्रसन्न होकर चारों ओर प्रशंसा करने लगे ॥ १५ ॥ तदनन्तर महात्मा विश्वेदेवा, कश्यप अदिति, साध्य, मरुद्गण और महाबली इन्द्र उन सुरेशको प्रणाम करके पूर्वदिशामें कश्यप के बड़े भारी आश्रमको चल दिए, और ब्रह्मर्षियोंसे सेवित उस आश्रममें पहुँच कर, अदितिके गर्भ (बालक) को चाहते हुए स्वाध्यायपरायण हो वहाँ रहने लगे ॥ १६ ॥ १७ ॥ देवमाता

दिव्यं वर्षसहस्रकम् ॥ १८ ॥ पूर्णे वर्षसहस्रे तु प्रसूता गर्भमुत्तमम् । सुराणां शरणं देवमसुराणां विनाशनम् ॥ १९ ॥ गर्भस्थेन तु देवेन परित्राताः सुरास्तदा । आददानेन तेजांसि त्रैलोक्यस्य महात्मना ॥ २० ॥ तस्मिन् जाते तु देवेशे त्रैलोक्यस्य सुखावहे । भयदे दैत्यसंघानां सुराणां नन्दिवर्धने ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

वैशम्पायन उवाच । प्रजानां पतयः सप्त सप्त चैव महर्षयः । तस्य देवस्य जातस्य नमस्कारं प्रचक्रिरे ॥ १ ॥ भरद्वाजः कश्यपो गौतमश्च विश्वामित्रो जमदग्निर्वसिष्ठः । यश्चोदितो भास्करे संप्रणष्टे सोऽप्यत्रात्रिर्भगवानाजगाम ॥ २ ॥ मरीचिरङ्गिराश्चैव पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः । दक्षप्रजापतिश्चैव नमस्कारं प्रचक्रिरे ३

अदितिने भी प्राणियोंके आत्मा उन महात्माके गर्भको एक हजार दिव्य वर्षों तक धारण किया ॥ १८ ॥ और सहस्र वर्ष पूर्ण होने पर देवताओंके शरण देने वाले और असुरोंका विनाश करनेवाले उत्तम बालकको उत्पन्नकिया ॥ १९ ॥ उन महात्मा देवने त्रिलोकीके तेजका हरण करके गर्भमें ही देवताओंकी रक्षा की थी ॥ २० ॥ देवताओंके आनन्दको बढ़ाने वाले और दानवोंके झुण्डोंको भय देने वाले तथा त्रिलोकीके सुखकारक उन देवेशके उत्पन्न होने पर २१ ॥ उनहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ६९

वैशम्पायनजीने कहा, कि-(उन देवके उत्पन्न होने पर) मरीचि आदि सात प्रजापति और सात महर्षियों ने उनको प्रणाम किया ॥ १ ॥ तहाँ पर भरद्वाज कश्यप गौतम विश्वामित्र जमदग्नि वसिष्ठ और भास्करके नष्ट होने पर उदित होने वाले भगवान् अत्रि भी आए थे ॥ २ ॥ मरीचि अङ्गिरा पुलस्त्य पुलह क्रतु दक्ष प्रजापतिने उनको प्रणाम किया ३ वसिष्ठपुत्र और

और्वो वसिष्ठपुत्रश्च स्तम्बः काश्यप एव च । कपीवानकपीवांश्च दत्तो निश्च्यवनस्तथा ॥ ४ ॥ वसिष्ठपुत्राः सप्तासन् वासिष्ठा इति विश्रुताः । हिरण्यगर्भस्य सुता और्जाताः सुतेजसः ॥ ५ ॥ गार्ग्यः पृथुस्तथैवान्यो जन्यो वामन एव च । देवाबाहुर्यदुध्रश्च पर्जन्यश्चैव सोमजः ॥ ६ ॥ हिरण्यरोमा वेदशिराः सप्तनेत्रस्तथैव च । विश्वोतिविश्वश्च्यवनः सुधामा विरजस्तथा ॥ ७ ॥ अतिनामा सहिष्णुश्च नमस्कारमकुर्वत । उद्योतमाना वपुषा सर्वाभरणभूषिताः ॥ ८ ॥ उपनृत्यन्ति देवेशं विष्णुमप्सरसां वराः । ततो गन्धर्वतूर्येषु प्रणदत्सु विहायसि ॥ ९ ॥ बहुभिः सह गन्धर्वैः प्रागायत च तुम्बुरुः । महाश्रुतिश्चित्रशिरा ऊर्णायुरनघस्तथा ॥ १० ॥ गोमायुः सूर्यवर्चाश्च सोमवर्चाश्च सप्तमः । युगपस्तृणपः कार्ष्णिर्नन्दिश्च त्रिशिरास्तथा ॥ ११ ॥ त्रयोदशः शालिशिराः पर्जन्यश्च चतुर्दशः । कलिः पंचदशश्चात्र

स्तंब काश्यप कपीवान् अकपीवान् दत्त और निश्च्यवन ये वसिष्ठजीके सात पुत्र वासिष्ठ नामसे प्रसिद्ध थे इन्होंने तथा हिरण्यगर्भके पुत्र, तेजस्वी और्वके पुत्र तथा गार्ग्य पृथु अन्य जन्य वामन देवाबाहु यदुध्र पर्जन्य सोमज हिरण्यरोमा वेदशिराः सप्तनेत्र विश्वोतिविश्व च्यवन सुधामा विरजा अतिनामा और सहिष्णुने भी उन देवको प्रणाम किया, तदनन्तर जिनका सब शरीर दमक रहा था और सब प्रकारके आभूषण पहिर रही थीं ॥ ४–८ ॥ वे श्रेष्ठ अप्सराएँ देवेश विष्णुके सामने नृत्य करने लगी, तदनन्तर जब आकाशमें गन्धर्वोंके बाजे बजने लगे तब बहुतसे गन्धर्वोंको साथमें लेकर तुम्बुरु गन्धर्व गाना गाने लगा महाश्रुति, चित्रशिरा, ऊर्णायु, अनघ, गोमायु; सातवाँ सूर्यवर्चा, युगप, तृणप, कार्ष्णि, नन्दि, त्रिशिरा, तेरहवाँ शालिशिरा चौदहवाँ पर्जन्य, पन्द्रहवाँ कलि है महीपते ! मैंने इन पन्द्रहके तहाँ होनेका वर्णन

सत्रैव तु महीपते ॥ १२ ॥ दशपञ्च तिमे प्रोक्ता नारदश्चैव षोडशः। हाहाहूहूश्च गन्धर्वौ हंसश्चैव महाद्युतिः ॥ १३ ॥ सर्वे ते देवगन्धर्वा उपगायन्ति केशवम्। तथैवाप्सरसो हृष्टाः सर्वालंकारभूषताः ॥ १४ ॥ वपुष्मन्तः सुजंघनाः सर्वांगशुभदर्शनाः। ननृतुश्च महाभागा जगुश्चायतलोचनाः ॥ १५ ॥ सुमध्याश्चारुमध्याश्च प्रियमुख्या वरानना। अनूकाथ तथा जामी मिश्रकेशी त्वलम्बुषा ॥ १६ ॥ मरीचिशुचिकाश्चैव विद्युत्पूर्णा तिलोत्तमा। अद्रिका लक्षणा चैव रम्भा तद्वन्मनोरमा ॥१७॥ असिता च सुबाहुश्च सुप्रिया सुभगा तथा। उर्वशी चित्रलेखा च सुग्रीवा च सुलोचना ॥ १८ ॥ पुण्डरीका सुगन्धा च सुरथा च प्रमाथिनी। नन्दा शारद्वती चैव तथान्यास्तत्र संघशः ॥ १९ ॥ मेनका सहजन्या च पर्णिका पुञ्जिकस्थला। एताश्चाप्साप्सरसोऽन्याश्च ननृत्यन्ति सहस्रशः ॥ २० ॥ धातार्यमा च मित्रश्च

कर दिया, ये और सोलहवें नारद, हाहा हूहू नामक गन्धर्व तथा महाद्युति हंस ये सब देवगन्धर्व केशवके समीप गायन करने लगे इसी प्रकार सब अप्सराओंने प्रसन्न हो सब अलंकारों को धारण कर लिया उनकी जँघाएँ सुन्दर थीं, और उनके सब अङ्ग शुभ थे वे महाभागा और चौडे नेत्रों वाली अप्सराएँ नाचने लगीं और गाने लगीं ॥ ९–१५ ॥ इन सबका मध्यभाग सुन्दर और मुख श्रेष्ठ था, अनूका जामी मिश्रकेशी अलम्बुषा मरीचि शुचिका, विद्युत्पूर्णा तिलोत्तमा अद्रिका लक्षणा रम्भा मनोरमा असिता सुबाहु सुप्रिया सुभगा उर्वशी चित्रलेखा सुग्रीवा सुलोचना पुण्डरीका सुगन्धा सुरथा प्रमाथिनी नन्दा और शारद्वती तथा और दूसरी अप्सराओंके टोले, मेनका सहजन्या पर्णिका पुञ्जिकस्थला ये तथा और भी सहस्रों अप्सराएं वहाँ नाचने लगीं ॥ १६–२० ॥ धाता अर्यमा मित्र वरुण अंश भग इन्द्र

अरुणोंशो भगस्तथा । इन्द्रो विवस्वान् पूषा च त्वष्टा च सविता तथा ॥ २१ ॥ कथितो विष्णुरित्येवं काश्यपेयो गणस्तथा । इत्येते द्वादशादित्या ज्वलन्तः सूर्यवर्चसः ॥ २२ ॥ चक्रुस्तस्य सुरेशस्य नमस्कारं महात्मनः : मृगव्याधश्च सर्पश्च निर्ऋतिश्च महाबलः ॥ २३ ॥ अजैकपादहिर्बुध्न्यः पिनाकी चापराजितः । दहनोथेश्वरश्चैव कपाली च विशाम्पते ॥ २४ ॥ स्थाणुर्भगश्च भगवान् रुद्रास्तत्रावतस्थिरे । अश्विनौ वसवश्चाष्टौ मरुतश्च महाबलाः ॥२५॥ विश्वेदेवाश्च साध्याश्च तस्य प्रांजलयः स्थिताः । शेषानुजा महाभागा वासुकिप्रमुखास्तथा ॥ २६ ॥ कच्छपश्चापहर्ता च तक्षकश्च महाबलः । अधृष्टास्तेजसा युक्ता महाक्रोधा महाबलाः ॥ २७ ॥ एते नागा महात्मानस्तस्मै प्राञ्जलयः स्थिताः । तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च गरुडश्च महाबलः ॥ २८ ॥ अरुणश्चारुणिश्चैव वैनतेया ह्युपस्थिताः । पितामहश्च भगवान् स्वयमागम्य लोककृत् ।

विवस्वान् पूषा त्वष्टा सविता और विष्णु ये काश्यपेय गण कहलाता है, सूर्यकी समान वर्चवाले दमकते हुए ये बारह आदित्य, उन महात्मा सुरेशको प्रणाम करने लगे मृगव्याध सर्प महाबली निर्ऋति अजैकपात् अहिर्बुध्न्य अपराजित पिनाकी दहन ईश्वर कपाली तथा हे राजन् ! स्थाणु भग और भगवान् रुद्र तहाँ पर आगए, आठ वसु महाबली मरुत् विश्वेदेवा और साध्य उनके सामने हाथ जोड़ कर खड़े होगए, शेषके अनुज महाभाग वासुकि आदि और चापहर्ता कच्छप महाबली तक्षक, ये अधृष्ट क्रोधयुक्त महाबली महात्मा नाग उनके सामने हाथ जोड़ कर खड़े होगए, तार्क्ष्य अरिष्ट नेमि महाबली गरुड अरुण आरुणि ये विनताके पुत्र भी तहाँ आगए और लोककर्ता गुरु ब्रह्माजी भी तहाँ स्वयं आकर सब महात्माओंको साथमें लेकर

प्राह चैनं गुरुः श्रीमान् सह सर्वैर्महात्मभिः ॥२९॥ ब्रह्मोवाच ।
यस्मात् प्रसूयते लोकः प्रभविष्णुः सनातनः । तस्माल्लोकेश्वरः
श्रीमान् विष्णुरेव भवत्वयम् ॥३०॥एवमुक्त्वा तु भगवान् सार्धं
देवर्षिभिः प्रभुः । नमस्कृत्वा सुरेशाय जगाम त्रिदिवं पुनः ३१
स तु जातः सुरेशानः कश्यपस्यात्मजः प्रभुः । नवदुर्दिनमेघाभो
रक्ताक्षो वामनाकृतिः ॥ ३२ ॥ श्रीवत्सेनोरसि श्रीमान् रोमजा-
तेन राजता । उत्फुल्ललोचनाः सर्वाः पश्यन्त्यप्सरसस्तदा ३३
दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता । यदि भाः सदृशी सा स्या-
द्भासस्तस्य महात्मनः ॥ ३४ ॥ सुरर्षिमतिमः श्रीमान् भूर्भुवो
भूतभावनः । शुचिरोमा महास्कन्धः सर्वतेजोमयः प्रभुः ॥३५॥
या गतिः पुण्यकीर्तीनामगतिः पापकर्मणाम् । योगसिद्धमहा-

यह बात कहने लगे ॥ २१-२९ ॥ ब्रह्माजीने कहा, कि-जिनसे
यह सनातन प्रभाववान् लोक उत्पन्न होता है, वह ये लोकेश्वर
श्रीमान् विष्णु कहलावेंगे ॥३०॥ इस प्रकार कह कर वह भग-
वान् प्रभु, सुरेशको प्रणामकर देवताओंके साथमें फिर स्वर्गको
चले गए ॥ ३१ ॥ कश्यपके पुत्ररूपमें जब वह प्रभु देवेश उत्पन्न
हो गए, तब उनकी आभा नवीन दुर्दिनके मेघकी समान थी;
आँखें लाल थीं और आकृति बौनी थी ।३२॥ और वह श्रीमान्
वक्षःस्थलमें विराजमान रोमयुक्त श्रीवत्सके चिन्हसे शोभा पा
रहे थे उस समय सब अप्सरायें प्रसन्न नेत्रोंसे उनको देखने लगीं
आकाशमें सहस्र सूर्योंके उदित होने पर जैसा प्रकाश होसकता
है वह प्रकाश उन महात्माके प्रकाशकी समान शायद होसके ।४।
वह देवता और ऋषियोंकी समान थे, श्रीमान् थे, भूः भुवः और
प्राणियोंका कल्याण चाहने वाले थे,उनके रोम पवित्र थे, स्कंधा
बड़े २ थे और वह प्रभु सर्व तेजोमय थे ॥ ३५ ॥ पुण्य कीर्ति
वाले जिनको पाते हैं, और पापकर्मी जिनको नहीं पासकते और

त्मानो यं विदुर्योगमुत्तमम् ॥ ३६ ॥ यस्याष्टगुणमैश्वर्यं यमाहु-
र्देवसत्तमम् । यं प्राप्य शाश्वतं विप्रा नियता मोक्षकाङ्क्षिणः ३७
जन्मनो मरणाच्चैव मुच्यन्ते भवभीरवः । यद्वैतत्तप इत्याहुः सर्वा-
श्रमनिवासिनः ॥ ३८ ॥ सेवन्ते यं यताहारा दुश्चरं व्रतचा-
रिणः । योऽनन्त इति नागेषु सेव्यते सर्वभोगिभिः ॥ ३९ ॥
सहस्रमूर्धा रक्ताक्षः शेषादिभिरनुत्तमैः । यो यज्ञ इति विप्रैरि-
ज्यते स्वर्गलिप्सुभिः ॥ ४० ॥ नानास्थानगतः श्रीमानेकः कवि-
रनुत्तमः । यं वेदा यान्ति वेत्तारं यज्ञभागप्रदायिनम् ॥ ४१ ॥
वृषार्चिश्चन्द्रसूर्याक्षं देवमाकाशविग्रहम् । स प्राह त्रिदशान्
सर्वान् वाचा वै परया विभुः ॥ ४२ ॥ जानन्नपि महातेजा
गतो योगेन बालताम् । किं करोमि सुरश्रेष्ठाः कं वरं च ददामि

योगसिद्ध महात्मा जिनको उत्तम योग कहते हैं ॥ ३६ ॥ जिनका
आठगुणा ऐश्वर्य है, जिनको देवसत्तम कहते हैं, जिन शाश्वत
पुरुषको पाकर भवभीरु मोक्षाभिलाषी नियमोंका पालन करने
वाले ब्राह्मण जन्म और मरणसे छूट जाते हैं, सब आश्रमोंमें
निवास करने वाले जिसको तप कहते हैं ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ नियम-
पूर्वक भोजन करने वाले दुष्कर ब्रतचर्या करते समय जिनका
सेवन करते हैं, जो नागोंमें अनन्त कहलाते हैं और सब सर्प
जिनका सेवन करते हैं ॥ ३९ ॥ जिन हजार फन वाले लाल
नेत्र वाले अनन्तकी श्रेष्ठ शेष आदि भी सेवा करते हैं एक होने
पर भी अनेक स्थानोंमें व्याप्त जिन अनुत्तम, कविकी स्वर्गाभि-
लाषी विप्रेन्द्र यज्ञरूपसे पूजा करते हैं, वेद जिनको जानने वाला
यज्ञभागका देने वाला, धर्मरूप अर्चि वाला, चन्द्र सूर्यरूपी नेत्र
वाला और आकाशरूपी शरीर वाला कहते हैं, वह प्रभु श्रेष्ठ
वाणीमें सब देवताओंसे कहने लगे ॥ ४०-४२ ॥ वह महा
तेजस्वी जानते थे तब भी योगसे बालभावको प्राप्त होकर (कहने

भः ॥ ४३ ॥ यत् काङ्क्षितं वै सर्वेषां तद्ब्रूत मुदा युताः । तस्य तद्वचनं श्रुत्वा वामनस्य महात्मनः ॥ ४४ ॥ सर्वे ते हृष्टमनसो देवाः कश्यपनन्दनम् । ऊचुः प्राञ्जलयो विष्णुं सुराः शक्रपुरोगमाः ॥ ४५ ॥ ब्रह्मणो वरदानेन हृतं नो निखिलं जगत् । तपसा महता चैव विक्रमेण दमेन च ॥ ४६ ॥ बलिना दैत्यमुख्येन सर्वज्ञेन महात्मना । अवध्यः किल सोऽस्माकं सर्वेषां देवसत्तम ॥ ४७ ॥ भवान् प्रभवते तस्य नान्यः कश्चन सुव्रत । यत् प्रपद्यामहे सर्वे भवन्तं शरणार्थिनः । शरण्यं वरदं देवं सर्वदेवभयापहम् ॥४८॥ ऋषीणां च हितार्थाय लोकानां च सुरेश्वर । प्रियार्थं च तथादित्याः कश्यपस्य तथैव च ॥४९॥ कव्यं पितृणामुचितं सुराणां हव्यमुत्तमम् । प्रवर्तेत महाबाहो यथा पूर्वं सुरो-

---

लगे) कि–हे श्रेष्ठ देवताओं ! मैं क्या करूँ और मैं तुमको क्या वर दूँ ॥४३॥ तुम सबोंकी जो अभिलाषा हो उसको प्रसन्नतापूर्वक कहो महात्मा वामनके उस वचनको सुन कर ॥४४॥ उस समय इन्द्र आदि सब देवता मनमें प्रसन्न हो हाथ जोड़ कर कश्यपनन्दन विष्णुसे कहने लगे ॥ ४५ ॥ कि-ब्रह्माजीके वरदानवश सर्वज्ञ दैत्योंमें मुख्य महात्मा बलिने बड़े भारी तप विक्रम और दमसे हमारी सब त्रिलोकी छीन ली है, हे देवसत्तम ! वह हम सबसे अवध्य है॥४६–४७॥हे सुव्रत ! एक आप ही उसको दबा सकते हैं और कोई उसको नहीं दबा सकता, इसलिए हे सुरेश्वर ! ऋषि और लोकोंका हित करनेके लिए और अदिति तथा कश्यपका हित करनेके लिए शरणार्थी बनकर हम शरण्य वरद देव और सब देवताओंके भयको दूरकरने वालेकी शरण लेते हैं ॥४८॥४९॥ हे महाभुज सुरोत्तम ! आप ऐसा करिए जिससे पहिलेकी समान पितरोंको उचित रीतिसे कव्य मिलने लगे और देवताओंको उचित रीतिसे हव्य मिलने लगे ॥५०॥

त्तम ॥ ५० ॥ आनृण्यार्थं सुरेशस्य वासवस्य महात्मनः । मत्प्र-
नेन महेन्द्रस्य त्रैलोक्यमिदमव्ययम् ॥ ५१ ॥ क्रतुना वाजिमेधेन
यजते स हि दानवः । यत् प्रत्यानयने युक्तं लोकानां तद्विचि-
न्त्यताम् ॥ ५२ ॥ वैशम्पायन उवाच । एवमुक्तस्तदा देवैर्विष्णु-
र्वामनरूपधृक् । प्रहर्षयन्सुरांश्चाथ सर्वान् देवानिदं वचः ॥५३॥
विष्णुरुवाच । तस्य यज्ञसकाशं मां महर्षिर्वेदपारगः । बृहस्पति-
र्महातेजा नयत्वंगिरसः सुतः ॥ ५४ ॥ तत्राहं समनुप्राप्तो यज्ञ-
वाटं सुरोत्तमाः । विचरिष्ये यथा युक्तं त्रैलोक्यहरणाय वै ५५
वैशम्पायन उवाच । ततो बृहस्पतिर्धीमाननयद्वामनं प्रभुम् । यज्ञ-
वाटं महातेजा दानवेन्द्रस्य धीमतः ॥ ५६ ॥ मौञ्जीयज्ञोपवीती च
छत्री दण्डी ध्वजी तथा । वामनो धूम्ररक्तान्तो भगवान् बाल-
रूपधृक्॥५७॥ तं गत्वा यज्ञवाटं च ब्रह्मर्षिगणसंकुलम् । आत्मना

महात्मा सुरेश इन्द्रका उद्धार करनेके लिए आप इस अव्यय त्रिलोकीको इन्द्रको दीजिए ॥५१॥ इस समय वह दानव अश्वमेध यज्ञ कर रहा है अब त्रिलोकीको लौटानेका जो उपाय ठीक है उसका विचार करिए ॥ ५२ ॥ वैशम्पायनजी कहते हैं, कि-वामनरूपधारी विष्णुसे देवताओंने इस प्रकार कहा तब वह सब देवताओंको हर्षित करते हुए कहने लगे ॥ ५३ ॥ विष्णुने कहा, कि–राजा बलिके यज्ञके पास मुझको वेदके पारगामी महातेजस्वी बृहस्पति अङ्गिराके पुत्र लिवा चलें ॥ ५४ ॥ हे सुरोत्तमों ! उसके यज्ञवाटमें पहुँच कर मैं त्रिलोकीको छीननेके लिए यथायोग्य युक्ति करूँगा ॥ ५५ ॥ वैशम्पायनजीने कहा, कि–तदनन्तर बुद्धिमान् और महातेजस्वी बृहस्पतिजी प्रभु वामनको बुद्धिमान् दानवेन्द्रके यज्ञवाटमें लेगए ॥ ५६ ॥ मूँजकी मेखला और यज्ञोपवीतको धारण करने वाले तथा छत्र दण्ड ध्वजा वाले धूम्ररक्तान्त भगवान् बालरूपधारी प्रभु वामन ब्रह्मर्षियोंसे भरे

चैव भगवान् वर्णयामास तं क्रतुम् ॥ ५८ ॥ लोकेश्वरेश्वरः श्रीमान् सुरैर्ब्रह्मपुरोगमैः । अचिन्त्यात्मा भगवानहृष्टोऽप्यथ हृद्भवत् ॥ ५९ ॥ दानवाधिपतेस्तस्य बलेर्वैरोचनस्य च । यज्ञवाटमभियात्वा जगाम सुरसत्तमः ॥ ६० ॥ पालितेऽपि हि दैतेयैः सांग्रामिकपरिच्छदैः । द्वारे दानवसंबाधे सहसैव विवेश ह ६१ ऋषिभिश्चैव मन्त्राद्यैः सर्वतः परिवारितम् । दैत्यदानवराजेन्द्रमुपतस्थे बलिं बली ॥ ६२ ॥ वर्णयित्वा यथा न्यायं यज्ञं यज्ञसनातनः । विस्तरेण नरश्रेष्ठ प्रयोगैर्विविधैस्तथा ॥६३॥ शुक्रादीनृत्विगश्चापि यज्ञकर्मविचक्षणान् । सर्वानेव निजग्राह चकार च निरुत्तरान् ॥ ६४ ॥ आरादथ बलेस्तस्य ऋत्विजामपि तत्त्वतः । यज्ञपर्वाणमहिमासौ हेतुभिः कारणैर्विभुः ॥६५॥ वेदश्रेरप्रकाशैश्च पुनरप्यथ भारत । प्रत्यक्षानुमितिसंघातैर्वर्णयामास

हुए उस यज्ञवाटमें जाकर अपने (मुखसे) से यज्ञकी प्रशंसा करने लगे ॥५७॥५८॥ जिन श्रीमान् तीनोंलोकेश्वरका ब्रह्मा आदि देवता चिन्तवन करते हैं ऐसे अचिन्त्यात्मा भगवान् हर्ष होने पर भी बालककी संतान बन कर दानवराज विरोचनके पुत्र बलिके यज्ञवाटमें पहुँच गए ॥ ५९ ॥ ६० ॥ दानवोंसे घिरे हुए द्वारमें वह संग्रामके सामानोंसे विभूषित दानवोंके साथ सहसा घुस गए । ६१ । इस प्रकार वह वहाँ ऋषियोंसे और मन्त्र आदिसे घिरेहुए दानव और दानवोंके राजा बलिके पास पहुँच गए ६२ यज्ञसनातनने यज्ञका उचित रीतिसे वर्णन करनेके अनन्तर कर्म करनेमें चतुर शुक्र आदि सब ऋत्विजोंको अनेक प्रकारके प्रयोग करके सबके कार्यको बन्द कर दिया और निरुत्तर कर दिया ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ हे भारत ! वह विराट् विभु बलिके सामने और ऋत्विजोंके सामने अप्रकाशित वेदकी श्रुतियोंसे युक्तियोंसे कारणरूपसे यज्ञात्माका वर्णन करने लगे ॥ ६५ ॥

विग्रहः ॥ ६६ ॥ ततो निरुध्यमानं तं दृष्ट्वा शोभाध्यायानृषींश्च
तान् । अद्भुतेनापि [illegible] वामनेन महात्मना ॥६७॥ अद्भुतं
प्राणि दृष्ट्वैतं विस्मितमना बली । भूत्वा कृताञ्जलिरेवमब्र-
वीद्विस्मितो वचः ॥ ६८ ॥ कुतस्त्वं कोऽसि कस्यासि किं तवे-
ह प्रयोजनम् । नैवं विधः परिज्ञातो दृष्टपूर्वो मया द्विजः ६९
बालो मनीषिणां श्रेष्ठो ज्ञानविज्ञानकोविदः । शिष्टवाग्रूपसम्पन्नो
मनोज्ञः प्रियदर्शनः ॥ ७० ॥ नेदृशाः सन्ति देवानां ऋषीणा
मपि सूनवः । न नागानां न यक्षाणां नासुराणां न रक्षसाम् ७१
न पितॄणां न सिद्धानां गन्धर्वाणां तथैव च । योऽसि सोऽसि
नमस्तेऽस्तु ब्रूहि किं करवाणि ते ॥ ७२ ॥ वैशम्पायन उवाच ।

विरोचनके पुत्र बलिने महातेजस्वी अद्भुत (बालक) वामनके
द्वारा शुक्र, स्वाध्याय और ऋषियोंको निरुद्ध हुआ देखकर
वामनको अद्भुत प्राणी समझा और विस्मित हो मस्तक झुका
हाथ जोड़कर यह बात कहने लगा, कि—६७,६८आप कहांसे आये
हैं ? कौन हैं ? किसके (पुत्र) हैं आपके यहाँ आनेका क्या प्रयोजन
है? मैंने ऐसे ब्राह्मणका न कभी वर्णन सुना है न कभी देखा है६९
और बालक होने पर भी बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ हैं, ज्ञान विज्ञानमें
कुशल हैं, शिष्ट वचनोंका उच्चारण करने वाले हैं, रूपवान् हैं,
मनोहर, प्रियदर्शन हैं ॥ ७० ॥ ऐसे पुत्र तो न देवताओंके होते
हैं, न ऋषियोंके होते हैं, न नागोंके होते हैं, न यक्षोंके होते
हैं न असुरोंके होते हैं और न राक्षसोंके होते हैं ७१ न पितरोंके
होते हैं, न सिद्धोंके होते हैं और न गन्धर्वोंके होते हैं, आपदेव
कोन भी हों आपको नमस्कार है, बतलाइये मैं आपका क्या प्रिय
करूं ॥ ७२ ॥ वैशम्पायनजी बोले, कि—इसप्रकार कहने

उक्त एवं ह्यचिन्त्यात्मा बलिना वामनस्तदा। मोवाचोपायत-त्त्वज्ञः स्मितपूर्वमिदं वचः ॥ ७३ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनावतारे सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

विष्णुरुवाच। अहो यज्ञो सुरेशस्य बहुभक्षः सुसंस्कृतः। पितामहस्येव पुरा यजतः परमेष्ठिनः ॥१॥ सुरेशस्य न शक्रस्य यमस्य वरुणस्य न। विशेषितस्त्वया यज्ञो दानवेन्द्र महाबल! २ यजता वाजिमेधेन क्रतूनां प्रवरेण तु। सर्वपापविनाशाय त्वया स्वर्गप्रदर्शिना ॥ ३ ॥ सर्वकाममयो ह्येषः सम्मतो ब्रह्मवादिनाम्। क्रतूनां प्रवरः श्रीमानश्वमेध इति श्रुतिः ॥ ४ ॥ सुवर्णशृङ्गो हि महानुभावो लोहक्षुरो वायुजवो महारयः। स्वर्गेक्षणः कांचन-गर्भगौरः स विश्वयोनिः परमो हि मेध्यः ॥ ५ ॥ अश्वाय वै आजिनमश्वमेधमिष्ट्वा नरा दुष्कृतमुत्तरन्ति। आहुश्च यं वेद-

पर अचिन्त्यात्मा और उपायके तत्त्वको जानने वाले वामन मुस्कुराकर कहने लगे ७३ सत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७० ॥ छ

विष्णुने कहा, कि—अहो! यह असुरेशका यज्ञ पहिले यजन करने वाले पितामह परमेष्ठीके यज्ञकी समान सुसंस्कृत भक्षणीय पदार्थोंसे भराहुआ है ॥ १ ॥ हे महाबली दानवेन्द्र देवराज इन्द्रके यमके और वरुणके यज्ञसे भी आपका यज्ञ अधिक है २ आप स्वर्गके मार्गको दिखाने वाले हैं आप सब पापोंका नाश करनेके लिए यज्ञोंमें श्रेष्ठ अश्वमेध यज्ञको करके (इन्द्र वरुण और यमसे भी श्रेष्ठ होगए हैं) ३ आपका यह यज्ञ सर्वकाममय हैं, ब्रह्मवादियोंका सम्मत है, श्रुतिमें भी कहा है, कि—अश्वमेध यज्ञ सब यज्ञोंमें श्रेष्ठ हुआ करता है ४ वह सुवर्णके यूपवाला लोहेके छुरे वाला, वायुकी समान वेग (वाले घोड़ेसे युक्त, स्वर्गका नेत्र, कांचनगर्भकी समान गौरवर्ण विश्वकी योनि

विदो द्विजेन्द्रा वैश्वानरं वाजिनमश्वमेधम् ॥ ६ ॥ यथाश्रमाणां
प्रवरो गृहाश्रमो यथा नराणां प्रवरा द्विजातयः । यथाऽसुराणां
प्रवरो भवानिह तथा क्रतूनां प्रवरोश्वमेधः ॥ ७ ॥ वैशम्पायन
उवाच । एतच्छ्रुत्वा तु वचनं वामनेन समीरितम् । मुदा परमया
युक्तः प्राह दैत्यपतिर्बलिः ॥८॥ बलिरुवाच । कस्यासि ब्राह्मण-
श्रेष्ठ किमिच्छसि ददामि ते । वरं वरय भद्रं ते यथेष्टं कामवा-
प्नुहि ॥ ९ ॥ वामन उवाच । न राज्यं न च यानानि न रत्नानि
न च स्त्रियः । कामये यदि तुष्टोऽसि धर्मे च यदि ते मतिः १०
गुर्वर्थं मे प्रयच्छस्व पदानि त्रीणि दानव । त्वयाग्निशरणार्थं एव
मे प्रवरो वरः ॥ वामनस्य वचः श्रुत्वा प्राह दैत्यपतिर्बलिः ११
बलिरुवाच । त्रिभिः किं तव विप्रेन्द्र पदैः प्रवदतां वर । शतं

यह यज्ञ परमपवित्र है ५ अश्वमेध करने वाले पुरुष अश्वपर
बैठकर दुष्कृतोंके पार होजाते हैं वेदको जानने वाले ब्राह्मण भी
अश्वमेधके घोड़ेको अग्नि (की समान दमकता हुआ) कहते हैं ६
जैसे आश्रमोंमें गृहस्थाश्रम श्रेष्ठ है मनुष्योंमें ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं,
असुरोंमें आप श्रेष्ठ हैं. इसी प्रकार यज्ञोंमें अश्वमेधयज्ञ श्रेष्ठ
है ७ वैशम्पायनजीने कहा, कि—वामनके कहे हुए इस वचनको
सुनकर दानवपति बलि परम प्रसन्नतासे यह बात कहने लगा ८
बलिने कहा, कि—हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! तुम किसके पुत्र हो, क्या
चाहते हो, वह वस्तु मैं तुमको दूँ, तुम्हारा कल्याण हो, तुम वर
माँग लो और यथेष्ट कामनाको प्राप्त करो ९ वामनने कहा, कि-
हे दानव! मैं राज्य सवारी वस्त्र रत्न और स्त्रीको भी नहीं चाहता
परन्तु यदि आप प्रसन्न हैं और आपकी मति धर्ममें स्थिर है
तो १० हे दानव! आप मुझे गुरुदक्षिणाके लिए तीन पैर पृथ्वी
दीजिए, उसमें मेरे गुरु अग्नि स्थापित करना चाहते हैं, यह
मेरा श्रेष्ठ वर है, वामनके वचनको सुनकर दानवपति बलि कहने

शतसहस्राणां पदानां मार्गतां भवान् ॥ १२ ॥ शुक्र उवाच । मा ददस्व महाबाहो न त्वं वेत्सि महासुर । एष मायापतिच्छन्नो भगवान् परो हरिः ॥ १३ ॥ वामनं रूपमास्थाय शक्रप्रियहितेप्सया । त्वां वञ्चयितुमायातो बहुरूपधरो विभुः ॥ १४ ॥ एवमुक्तः स शुक्रेण चिरं संचिन्त्य वै बलिः । प्रहर्षेण समायुक्तः किमतः पात्रमिष्यते ॥ १५ ॥ गृह्य हस्ते सुसंप्राप्तो भृङ्गारं कनकोद्भवम् । बलिरुवाच । विप्रेन्द्र प्राङ्मुखस्तिष्ठ स्थितोस्मि कमलेक्षणः ॥१६॥ प्रतीच्छ देहि किं भूमिं का मात्रा भोः पदत्रयम् । दत्तं च पातय जलं नैव मिथ्या भवेद्गुरुः ॥१७॥ शुक्र उवाच । भो न देयं कुतो दैत्य विज्ञातोयं मया ध्रुवम् । कोऽयं विष्णुरहो प्रीतिर्वञ्चितस्त्वं न वञ्चितः॥१८॥बलिरुवाच । कथं सनाथोऽयं

लगा ११ बलिने कहा, कि—हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ विप्रेन्द्र ! आप तीन क्या सैंकड़ों लाखों पैरकी भूमि लेलीजिए १२ शुक्रने कहा, कि—हे महाबाहो ! आप दान न दें, हे महासुर ! आप इस बातको समझे नहीं हैं, यह मायासे ढके हुए श्रेष्ठ भगवान् हरि हैं १३ यह अनेक प्रकारका रूप धारण करनेवाले विभु इन्द्रका प्रिय करनेकी इच्छासे वामनका रूप धारण करके आए हैं १४ शुक्राचार्यके इस प्रकार कहनेपर बलि बहुतसमय तक विचार करने के अनन्तर प्रसन्न होकर कहने लगे, कि—इनसे अधिक और कौनसे पात्रको चाहते हो ? १५ यह कहकर बलिने हाथमें झारी उठाली बलिने, फिर कहा, कि—हे कमलकी समान नेत्र वाले विप्रेन्द्र ! मैं तयार हूँ आप पूर्व दिशाकी ओर मुख करके खड़े हूजिए १६ और आप कितनी भूमि चाहते हैं उसे कहिये तीन पैर भूमि क्या वस्तु है, आपके जल लेनेपर मैं संकल्प छोड़ दूँगा, गुरुजीके कहनेसे ऐसी मिथ्या बात कैसे होसकती है १७ शुक्राचार्यने कहा, कि—हे राजन् ! तुम इनको दान न देना, दानव

विष्णुर्यज्ञे स्वयमुपस्थितः । दास्यामि देवदेवाय यद्यदिच्छत्ययं विभुः ॥ १९ ॥ को वान्यः पात्रभूतोऽस्माद्विष्णोः परतरो भवेत्। एवमुक्त्वा बलिः शीघ्रं पातयामास वै जलम् ॥ २० ॥ वामन उवाच । पदानि त्रीणि दैत्येन्द्र पर्याप्तानि ममानघ । यन्मया पूर्वमुक्तं हि तत्तथा न तदन्यथा ॥ २१ ॥ वैशम्पायन उवाच । इत्येतद्वचनं श्रुत्वा वामनस्य महौजसः । कृष्णाजिनोत्तरीयं स कृत्वा वैरोचनिस्तदा ॥ २२ ॥ एवमस्त्विति दैत्येशो वाक्यमुक्त्वारिसूदनः । ततो वारिसमापूर्णं भृङ्गारं स परामृशत् २३ वामनो ह्यसुरेन्द्रस्य चिकीर्षुः कदनं महत् । क्षिप्रं प्रसारयामास दैत्यक्षयकरं करम् ॥ २४ ॥ सांगुलस्तापि दैत्येशस्तस्मै सुमनसा

ने कहा कि – क्यों नहीं हूँ शुक्राचार्यने कहा; कि-मैंने इनको पहिचान लिया है, दानवने कहा, कि-क्यों नहीं हूँ शुक्राचार्यने कहा, कि—अहो ! तुम्हें बड़ा आग्रह है, यह तो विष्णु हैं, अब तुम ठगे गए हो, बलिने कहा, कि—मैं नहीं ठगा गया १८ बलिने कहा, कि—यह सनाथ विष्णु यज्ञमें स्वयं कैसे आगए, यदि यह आगए हैं तो यह विभु जिस २ वस्तु को चाहेंगे, वह २ वस्तु मैं इनको दूँगा १९ इन विष्णुसे अधिक और कौन पात्र होसकता है, इस प्रकार कह कर बलिने शीघ्रता जल गिरा दिया ॥ २० ॥ वामनने कहा, कि—हे निष्पाप दानवेन्द्र ! तीन पैर भूमि ही मेरेलिए बहुत है, मैंने जो बात पहिले कही है वह वैसे ही होगी, उसमें कुछ लौट फेर नहीं होगा ॥ २१ ॥ वैशम्पायनजी कहते हैं, कि-ओजस्वी वामनके इस वचनको सुन कर विरोचनपुत्र बलिने कृष्णमृगके चर्मका दुपट्टा धारण कर लिया, फिर उस अरिसूदन दैत्येशने एवमस्तु कहकर जलसे भरी हुई झारीको उठा लिया ॥ २२ ॥ २३ ॥ तब वामनने असुरेन्द्र का बड़ा भारी कदन करनेकी इच्छासे अपने दानवोंका नाश करने

जलम् । दातुकामः करे यावत्तावत्तं प्रत्यषेधयत् ॥ २५ ॥ तस्य तद्रूपमालोक्य ह्यचिन्त्यं च महात्मनः । अभूतपूर्वं च हरेर्जिहीर्षोः श्रियमासुरीम् ॥ २६ ॥ इंगितज्ञोग्रतः स्थित्वा प्रल्हादस्त्वब्रवी-द्वचः । प्रल्हाद उवाच। मा ददस्व जलं हस्ते बटोर्वामनरूपिणः२७ स त्वसौ येन ते पूर्वं निहतः प्रपितामहः । विष्णुरेष महाप्राज्ञ-स्त्वां वंचयितुमागतः ॥ २८ ॥ वलिरुवाच । हन्त तस्मै प्रदा-स्यामि देवायेमं प्रतिग्रहम् । अनुग्रहकरं देवमीदृशं जगतः प्रभुम्२९ ब्रह्मणोपि गरीयांसं पात्रं लप्स्यावहे वयम् । अवश्यं चासुरश्रेष्ठ दातव्यं दीक्षितेन वै ॥ ३० ॥ इत्युक्त्वाऽसुरसंघानां मध्ये वैरो-चनिस्तदा । देवाय प्रददौ तस्मै पदानि त्रीणि विष्णवे ॥३१॥ प्रल्हाद उवाच । दानवेश्वर मा दास्त्वं विप्रायास्मै प्रतिग्रहम् ।

वाले हाथको शीघ्रतासे फैला दिया जब तक दानव प्रसन्न मनसे वामनके हाथमें जल देना चाह रहा था तब तक शुक्राचार्य उससे निषेध करतेरहे२४।२५आसुरी संपत्तिका हरण करना चाहनेवाले उन महात्मा हरिके अभूतपूर्व अचिन्त्य रूपको देखकर चेष्टाओं को जानने वाला प्रल्हाद आगे बढ़ कर बातें करने लगा,प्रल्हाद ने कहा, कि वामनरूपधारी बटुकके हाथमें तू जल मत दे।२६।२७। यह वही हैं, जिन्होंने पहिले तेरे प्रपितामहको मार डाला था यह महाबुद्धिमान् विष्णु हैं और तुझको ठगनेके लिए आये हैं ।२८। वलिने कहा, कि–जगत्के ऊपर अनुग्रह करनेवाले जगत्के प्रभु को तो मैं दान दूँगा ही ॥ २९ ॥ हमने ब्रह्माजीसे भी श्रेष्ठ पात्रको पालिया है इस लिए हे असुरश्रेष्ठ ! दीक्षित होने पर हमें अवश्य ही दान देना चाहिये ॥ ३० ॥ विरोचनका पुत्र वलि देवताओंके टोलेके वीचमें इस प्रकार बातें कह कर विष्णुदेवको तीन पैर पृथ्वी देने लगा ॥ ३१ ॥ प्रल्हादने कहा, कि–हे दानवेश्वर ! तू इस ब्राह्मणको दान न दे, मैं इसको ब्राह्मणका

नेमं विप्रशिशुं मन्ये नेदृशो भवति द्विजः ॥ ३२ ॥ रूपेणानेन दैत्येन्द्र सत्यमेवं ब्रवीमि ते । नारसिंहमहं मन्ये तमेव पुनरागतम् ॥ ३३ ॥ एवमुक्तस्तदा तेन प्रह्लादेनामितौजसा । प्रह्लादमब्रवीद्वाक्यमिदं निर्भर्त्सयन्निव ॥ ३४ ॥ बलिरुवाच । देहीति याचते यो हि मत्याख्याति च योऽसुर । उभयोरप्यलक्ष्म्या वै भागस्तं विशते नरम् ॥ ३५ ॥ प्रतिज्ञाय तु यो विप्रे न ददाति प्रतिग्रहम् । स याति नरकं पापी मित्रगोत्रसमन्वितः ॥ ३६ ॥ अलक्ष्मीभयभीतोऽहं ददाम्यस्मै वसुन्धराम् । प्रतिग्रहीता चाप्यन्यः कश्चिदस्माद् द्विजोऽथ वै ॥ ३७ ॥ नाधिको विद्यते यस्मात्ददामि वसुन्धराम् । हृदयस्य च मे तुष्टिः परा भवति दानव ३८ दृष्ट्वा वामनरूपेण याचन्तं द्विजपुङ्गवम् । एवं तस्मात् प्रदास्यामि न स्थास्यामि निवारितः ३९ भूयश्च सोऽब्रवीदेवं वामनं विप्ररूपि-

---

बालक नहीं समझता ब्राह्मण ऐसे नहीं होते हैं ॥३२॥ हे दानवेन्द्र इसके रूपको (देखकर) मैं यह तुमसे सत्य ही कहरहा हूँ, मैं तो समझता हूँ यह नरसिंह ही फिर आगए हैं ३३ अमित तेजस्वी प्रल्हादके इस प्रकार कहने पर वह प्रल्हादको धमकाता हुआ यह कहनेलगा ३४ बलिने कहा, कि-हे असुर! जो दो कहकर याचना करता है और जो देनेवालेको निषेध करता है, इन दोनों में अलक्ष्मीका भाग प्रवेश कर जाता है ॥ ३५ ॥ जो प्रतिज्ञा करके ब्राह्मणको दान नहीं देता है वह पापी अपने मित्र और गोत्र वालोंके साथ नरकमें पड़ता है ॥३६॥ अत एव अलक्ष्मीके भयसे भयभीत होकर मैं इनको पृथ्वी देता हूँ, इन ब्राह्मणसे अधिक और कोई प्रतिग्रहीता नहीं मिल सकता, इस लिए मैं इनको पृथ्वी देता हूँ, वामनके रूपमें इन द्विजपुङ्गवको याचना करता हुआ देख कर, मेरे हृदयको परम सन्तोष होता है, अतः मैं इनको दान दूँगा और रोकने पर भी दान देनेसे नहीं

णम् । स्वल्पैः स्वल्पमते किं ते पदैस्त्रिभिरनुत्तमम् ॥ ४० ॥ कृत्स्नां ददामि ते दिव पृथिवीं सागरैर्वृताम् । वामन उवाच । न पृथ्वीं कामये कृत्स्नां सन्तुष्टोऽस्मि पदैस्त्रिभिः । एष एव रुचिष्यो मे वरो दानवसत्तम ॥ ४१ ॥ वैशम्पायन उवाच । तथास्त्विति बलिः प्रोच्य स्पर्शयामास दानवः । पदानि त्रीणि देवाय विष्णवेऽमिततेजसे ॥ ४२ ॥ तोये तु पतिते हस्ते वामनोऽभूदवामनः । सर्वदेवमयं रूपं दर्शयामास वै विभुः ॥ ४३ ॥ भूः पादौ द्यौः शिरश्चास्य चन्द्रादित्यौ च चक्षुषी । पादाङ्गुल्यः पिशाचाश्च हस्ताङ्गुल्यश्च गुह्यकाः ॥ ४४ ॥ विश्वे देवाश्च जानुस्था जंघे साध्याः सुरोत्तमाः । यक्षा नखेषु संभूता लेखाश्चाप्सरसस्तथा ॥ ४५ ॥ तडिद्दृष्टिः सुविपुला केशाः सूर्यांशवस्तथा । तारका रोमकूपाणि रोमाणि च महर्षयः ॥ ४६ ॥ बाहवो

करूँगा ॥ ३७-३९ ॥ तदनन्तर वह फिर, विगरूपधारी ब्राह्मण से कहने लगा, कि-आपका तीन पैरमात्र थोड़ीसी पृथिवीसे क्या कार्य चलेगा ॥ ४० ॥ मैं आपको समुद्रों सहित सारी पृथ्वी देसकता हूँ, वामनने कहा, कि-मैं सारी पृथ्वीको नहीं चाहता हूँ, तीन पैर मात्र पृथ्वीसे ही मैं सन्तुष्ट हूँ, हे दानवसत्तम ! मुझे यही वर अच्छा लगता है ॥ ४१ ॥ वैशम्पायनजीने कहा, कि-तब बलिने तथास्तु कह कर अमित तेजस्वी विष्णुको तीन पग पृथ्वी देनेके लिए (वामनके हाथका) स्पर्श किया ॥ ४२ ॥ हाथमें जलके आते ही, वामन वामन नहीं रहे, उन प्रभुने अपना सर्वदेवमय रूप दिखा दिया ॥ ४३ ॥ उनके दोनों पैर पृथ्वी थी, स्वर्ग शिर था, चन्द्रमा और आदित्य दोनों नेत्र थे पिशाच पैरोंकी अंगुलिएँ गुह्यक हाथोंकी अँगुलिएँ थी ॥ ४४ ॥ जानुओंमें विश्वेदेवा स्थित थे; जंघाओंमें देवश्रेष्ठ सुरोत्तम साध्य थे, नखोंमें यक्ष अप्सराएँ थीं ॥ ४५ ॥ सूर्यकी किरणें और तडिद्दृष्टि उनके विपुल

विदिशश्चास्य दिशः श्रोत्रे तथैव च । अश्विनौ श्रवणौ चास्य नासा वायुर्महाबलः ॥४७॥ प्रसादश्चन्द्रमाश्चैव मनोधर्मस्तथैव च । सत्यमस्याभवद्वाणी जिह्वा देवी सरस्वती ॥ ४८ ॥ ग्रीवा-दितिर्महादेवी तालुः सूर्यश्च दीप्तमान् । द्वारं स्वर्गस्य नाभिर्वै मित्रस्त्वष्टा च वै भ्रुवौ ॥ ४९ ॥ मुखं वैश्वानरश्चास्य वृषणौ तु प्रजापतिः । हृदयं भगवान् ब्रह्मा पुस्त्वं वै विश्वतो मुनिः॥५० पृष्ठेऽस्य वसवो देवा मरुतः पादसन्धिषु । सर्वच्छन्दांसि दशना ज्योतींषि विमलाः प्रभाः ॥ ५१॥ ऊरू रुद्रो महादेवो धैर्यं चास्य महार्णवः । उदरे चास्य गन्धर्वा भुजगाश्च महाबलाः । लक्ष्मी-र्मेधा धृतिः कांतिः सर्वविद्या च वै कटिः । ललाटमस्य परमं स्थानं च परमात्मनः ॥ ५३ ॥ सर्वज्योतींषि यानीह तपः शक्रस्तु देव-राट् । तस्य देवाधिदेवस्य तेजो ह्याहुर्महात्मनः ॥ ५४ ॥ स्तनौ

केश थे, तारक रोमकूप थे और महर्षि रोम थे ॥४६॥ दिक्कोण इनकी भुजायें थी और कान दिशाएँ थी, अश्विनीकुमार चरण थे और नाक महाबली वायु था ॥ ४७ ॥ मनका धर्म प्रसाद चन्द्रमा था, सत्य इनकी वाणी थी और सरस्वती देवी जिह्वा थी ॥ ४८ ॥ ग्रीवामें महादेवी अदिति थी, और तालुमें दीप्ति-मान् सूर्य था नाभिमें स्वर्गका द्वार था और दोनों भौंहोंमें मित्र तथा त्वष्टा थे ॥ ४९ ॥ मुखमें वैश्वानर था और वृषणमें प्रजा-पति थे, हृदयमें भगवान् ब्रह्मा थे, और पुंस्त्वमें चारों ओर मुनि थे ॥ ५० ॥ पीठमें वसुदेवता थे और पैरोंकी संधियोंमें मरुत्-देवता थे, दाँतोंमें सब छन्द थे और ज्योतियोंकी विमल प्रभा फैल रही थी ॥ ५१ ॥ ऊरुओं महादेव रुद्र थे और महार्णव इनका धैर्य था और उदरमें गन्धर्व और महाबली सर्प थे ।५२। कटिमें लक्ष्मी मेधा धृति कान्ति और सब विद्याएँ थीं और इन का ललाट परमात्माका परम स्थान था॥५३॥ सब ज्योतियोंको

कक्षौ च वेदाश्च ओष्ठौ चास्य मखाः स्थिताः । इष्टयः पशुबन्धाश्च द्विजानां चेष्टितानि च ॥ ५५ ॥ तस्य देवमयं रूपं दृष्ट्वा विष्णोर्महासुराः । अभिसर्पन्त संक्रुद्धाः पतंगा इव पावकम् ॥ ५६ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

वैशम्पायन उवाच । शृणु नामानि सर्वेषां रूपाण्यभिजनानि च । आयुधानि च मुख्यानि दानवानां महात्मनाम् ॥ १ ॥ विप्रचित्तिः शिबिः शंकुरयः शंकुस्तथैव च । अयः शिरा अश्वशिरा हयग्रीवश्च वीर्यवान् ॥२॥ वेगवान् केतुमानुग्रः सोग्रव्यग्रो महासुरः । पुष्करः पुष्कलश्चैव साश्वोऽश्वपतिरेव च ॥३॥ प्रह्लादोऽश्वशिराः कुम्भः संह्लादो गगनप्रियः । अनुह्लादो हरिहरौ वाराहः संहरारुजः ॥ ४ ॥ वृषपर्वा विरूपाक्षो अतिचन्द्रः सुलोचनः । निष्प्रभः सुप्रभः श्रीमांस्तथैव च निरूदरः ॥ ५ ॥

तपको देवराज इन्द्रको इन महात्मा देवदेवका तेज कहते हैं ५४ इनके स्तन और बगलोंमें वेद और ओठोंमें यज्ञ इष्टि पशुबन्ध और ब्राह्मणोंकी चेष्टाएँ विराजमान थे ॥ ५५ ॥ बडे २ राक्षस विष्णुके देवमयरूपको देखकर क्रोधमें भर कर उनके ऊपर अग्नि के ऊपर झपटने वाले भुनगोंकी समान दौड़े ५६ इकहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७१ ॥ छ छ छ छ

वैशम्पायनजीने कहा, कि-अब आप महात्मा दानवोंके नामों को रूपोंको अभिजनोंको और मुख्य२ आयुधोंको सुनिए१ विप्रचित्ति शिबि शंकुरय शंकु अयःशिरा अश्वशिरा वीर्यवान्-हयग्रीव वेगवान् केतुमान् उग्र महासुर-सोग्रव्यग्र पुष्कर पुष्कल साश्व अश्वपति प्रह्लाद अश्वशिरा कुम्भ संह्लाद गगनप्रिय अनुह्लाद हरिहर वाराह संहारज वृषपर्वा विरूपाक्ष अतिचन्द्र सुलोचन निष्प्रभ सुप्रभ श्रीमान् निरूदर एकवक्र महावक्र कालकी समान

एकवक्त्रो महावक्त्रो द्विवक्त्रः कालसन्निभः ॥ शरभः शलभश्चैव कुणपः कुलपः क्रथः ॥ ६ ॥ बृहत्कीर्तिर्महागर्भः शंकुकर्णो महाध्वनिः । दीर्घजिह्वोऽर्कवदनो मृदुबाहुर्मृदुप्रियः ॥ ७ ॥ वायुर्गविष्ठो नमुचिः शम्बरो विज्वरो महान् । चन्द्रहन्ता क्रोधहन्ता क्रोधवर्धन एव च ॥ ८ ॥ कालकः कालकान्तश्च वृत्रः क्रोधो विमोक्षणः । गविष्ठश्च हविष्ठश्च प्रलम्बो नरकः पृथुः ॥ ६ ॥ चन्द्रतापनवातापी केतुमान् बलदर्पितः । असिलोमा पुलोमा च बाष्कलः प्रमदो मदः ॥ १० ॥ शृगालवदनश्चैव करालः केशिरेव च । एकाक्षश्चैकबाहुश्च तुहुण्डः सृमलः सृपः ॥ ११ ॥ एते चान्ये च बहवः क्रममाणं त्रिविक्रमम् । उपतस्थुर्महात्मानं विष्णुं दैत्यगणास्तदा ॥ १२ ॥ प्रासोद्यतकराः केचिद्व्यादितास्याः खरस्वनाः । शतघ्नीचक्रहस्ताश्च वज्रहस्तास्तथाऽपरे ॥ १३ ॥ खड्गपट्टिशहस्ताश्च परश्वधधराः परे । प्रासमुद्गरहस्ताश्च तथा परिघपाणयः ॥ १४ ॥ महाशनिप्रभकरा गौशलास्तु महाबलाः ।

द्विवक्त्र शरभ शलभ कुलप कुणप क्रथ बृहत्कीर्ति महागर्भ शंकुकर्ण महाध्वनि दीर्घजिह्व अर्कमदन मृदुबाहु मृदुप्रिय वायु गविष्ठ नमुचि शम्बर विज्वर महान चन्द्रहन्ता क्रोधहन्ता क्रोधवर्धन कालक कालकान्त क्रोध विमोक्षण गविष्ठ हविष्ठ प्रलम्ब नरक पृथु चन्द्रतापन वातापि बलदर्पित केतुमान् असिलोमा पुलोमा बाष्कल प्रमद मद शृगाल वदन कराल केशि एकाक्ष एकबाहु तुहुण्ड सृमल सृप ये तथा और भी बहुतसे दानव नापते हुए त्रिविक्रम विष्णुके पास आगये ॥ २-१२ ॥ इनमें कोई प्रासको हाथमें उठा रहे थे, किन्हींका मुख फटा हुआ था और स्वर गधेकी समान था और दूसरे तोप चक्र और वज्रको हाथमें ले रहे थे ॥ १३ ॥ दूसरे खड्ग पट्टिश और फरसेको ले रहे थे तथा प्रास मुद्गर और परिघको हाथमें ले रहे थे ॥ १४ ॥ बहुतसे महाबली राक्षस

महाप्रोद्यतकरास्तथैव च. धनुर्धराः ।१५। गदामुशुण्डिहस्ताश्च वज्रहस्तास्तथापरे । महापट्टिशहस्ताश्च तथा परिघपाणयः १६ असिकम्पनहस्ताश्च दानवा युद्धदुर्मदाः । नानाप्रहरणा घोरा नानावेषा महाबलाः ॥ १७ ॥ कुक्कुटवक्त्राश्च हस्तिवक्त्रा-स्तथाऽपरे । खरोष्ट्रवदनाश्चैव वराहवदनास्तथा ॥१८॥ भीमा मकरवक्त्राश्च शिशुमारमुखास्तथा । मार्जारशुकवक्त्राश्च दीर्घ-वक्त्राश्च दानवाः ॥ १९ ॥ गरुडाननाः खड्गमुखा मयूरवदना-स्तथा । अश्ववक्त्रा बभ्रुवक्त्रा घोरा मृगमुखास्तथा ॥ २० ॥ उष्ट्रशल्यकवक्त्राश्च दीर्घवक्त्राश्च दानवाः । नकुलस्येव वक्त्राश्च पारावतमुखास्तथा २१ चक्रवाकमुखाश्चैव गोधावक्त्रास्तथाऽपरे । तथा मृगाननाः शूरा गोजाविमहिषाननाः ॥ २२ ॥ कृकलास-

---

के हाथमें अशनि और मूसल थे और बहुतसे बडे २ वृक्षोंको और धनुषोंको हाथमें लेरहे थे १५ दूसरे गदा मुशुण्डि वज्र बडे२ पटे और परिघोंको हाथमें ले रहे थे १६ और युद्धदुर्मद महा-बली अनेक वेषोंको धारण करने वाले दानवोंके हाथोंमें तल-वार कम्पन और अनेक प्रकारके भयंकर आयुध थे ॥ १७ ॥ किन्हींका मुख कुक्कुटकी समान हाथीके मुखकी समान गधे और ऊँटके मुखकी समान और सूअरके मुखकी समान था १८ किन्हींका मुख भयंकर मगरकी समान था, और किन्हींका मुख गोहकी समान था, किन्हीं दानवोंका मुख विलावकी समान था और किन्हींका मुख तोतेकी समान था तथा किन्हींका मुख लम्बा था ॥ १९ ॥ उनमें गरुडकी समान मुख वाले खड्गकी समान मुख वाले मयूरकी समान मुख वाले चकवेकी समान मुख वाले घोड़ेकी समान मुख वाले, बभ्रुकी समान मुख वाले मृगकी समान मुख वाले, ऊँट और सेईकी समान मुख वाले नकुलकी समान मुख वाले कबूतरकी समान मुख वाले मृगकी

मुखाश्चैव व्याघ्रवक्त्रास्तथापरे । ऋक्षशार्दूलवक्त्राश्च सिंहवक्त्रा-
स्तथापरे ॥ २३ ॥ गजेन्द्रचर्मवसनास्तथा कृष्णाजिनाम्बराः ।
चीरसंवृतगात्राश्च तथा फलकवाससः ॥ २४ ॥ उष्णीषिणो
मुकुटिनस्तथा कुण्डलिनोऽसुराः । किरीटिनो लम्बशिखाः कम्बु-
ग्रीवाः सुवर्चसः ॥ २५ ॥ नानावेषधरा दैत्या नानामाल्यानु-
लेपनाः । स्वान्यायुधानि दीप्तानि प्रगृह्यासुरसत्तमाः ॥ २६ ॥
क्रममाणं हृषीकेशमुपातिष्ठन्त दानवाः । प्रमथ्य सर्वान् दैतेयान्
पादहस्ततलैः प्रभुः ॥ २७ ॥ रूपं कृत्वा महाकायं जहाराशु स
मेदिनीम् । त्रैलोक्यं क्रममाणस्य द्युतिरादित्यसम्भवा । २८ ।
तस्य विक्रमतो भूमिं चन्द्रादित्यौ स्तनान्तरे । नभः प्रक्रममाणस्य
सक्थिदेशे व्यवस्थितौ ॥ २९ ॥ विष्णोरमितवीर्यस्य वदन्त्येवं

समान मुख वाले गौ बकरी और भेडकी समान मुख वाले भी थे २०-२२ और गिरगटकी समान मुखवाले, व्याघ्रकी समान मुख वाले रीछ और शार्दूलकी समान मुख वाले और सिंहकी समान मुख वाले थे २३ हाथीके चर्मको ओढने वाले, काले मृगके चर्मको ओढने वाले, चीरोंसे ढके हुए शरीर वाले और फलकवस्त्रधारी भी थे २४ असुर पगडी मुकुट और कुंडल धारण कर रहे थे, किरीट धारण कर रहे थे, उनकी चोटियें लम्बी थीं; गर्दन शंखकी समान थी और तेज सुन्दर था २५ अनेक प्रकार का वेष धारण करने वाले दानव अनेक प्रकारके माल्य और अनुलेपनोंको लगा रहे थे श्रेष्ठ असुर अपने प्रदीप्त आयुधोंको उठाकर नापते हुए हृषीकेशके पास आगए उस समय प्रभुने लातों और थप्पड़ोंसे सब दानवोंको मथ बड़ा भारी रूप बनाकर पृथ्वी को छीन लिया त्रिलोकीको नापते हुए वामनकी कान्ति ऐसी प्रतीत होती थी, मानों सूर्यमेंसे कान्ति निकल रही हो२६-२८ अमितवीर्य विष्णु जिस समय पृथिवीको नाप रहे थे तब चन्द्रमा

द्विजातयः । जित्वा लोकत्रयं कृत्स्नं हत्वा चासुरपुङ्गवान् ॥ ३० ॥ ददौ शक्राय वसुधां हरिर्लोकनमस्कृतः । सुतलं नाम पातालमध-स्ताद्व वसुधातले ३१ बलेर्दत्तं भगवता विष्णुना प्रभविष्णुना । तदवाप्यासुरश्रेष्ठश्चकार मतिमुत्तमाम् ॥ ३२ ॥ रसातलतले वासमकरोदसुराधिपः । तत्रस्थश्च महातेजा ध्यानं परममा-स्थितः ॥ ३३ ॥ उवाच वचनं धीमान् विष्णुं लोकनमस्कृतम् । किं मया देव कर्तव्यं ब्रूहि सर्वमशेषतः । ततो दैत्याधिपं प्राह देवो विष्णुः सुरोत्तमः ॥ ३४ ॥ विष्णुरुवाच । ददामि ते महा-भाग परितुष्टोऽस्मि तेऽसुर । वरं वरय भद्रं ते यथेष्टं कामम-प्नुहि ॥ ३५ ॥ मा च शुक्रस्य वचनं प्रतिहासीः कथञ्चन । अहमाज्ञापयामि त्वां श्रेयश्चैवमवाप्स्यसि ॥ ३६ ॥ अथ दैत्या-

---

और सूर्य उनके स्तनों तक थे और जब वे आकाशको नापने लगे तब तो चन्द्रमा और सूर्य उनकी जाँघों तक ही रह गए इस बातको ब्राह्मण कहते हैं, लोकनमस्कृत प्रभुने इस प्रकार तीनों लोकोंको जीत कर इन्द्रको पृथ्वी देदी और पृथ्वीके नीचे जो सुतल नामका पाताल है २९-३१ उसको प्रभावशाली भगवान् विष्णुने बलिको देदिया उसको पाकर वह असुरश्रेष्ठ उत्तम विचार करने लगा ३२ रसातलमें रहनेके उपरान्त वह महातेजस्वी परम ध्यानके साथ लोकनमस्कृत विष्णुसे यह बात कहने लगा; कि—हे देव ! अब मेरा कर्तव्य क्या है ? इसको आप पूर्णरीति से बतादीजिए, उस समय देवताओं में श्रेष्ठ विष्णु दैत्यराजसे कहने लगे । ३३ । ३४ । विष्णुने कहा, कि—हे महाभाग असुर! मैं तुझ पर प्रसन्न हुआ हूँ, तू वर माँग ले, तेरा कल्याण हो और तू यथेष्ट कामनाको प्राप्त कर ॥ ३५ ॥ और मैं तुझे आज्ञा देता हूँ, कि—तू शुक्राचार्यके वचनका किसी प्रकार उल्लंघन न करना ऐसा करनेसे तेरा कल्याण होगा ॥ ३६ ॥ तदनन्तर देव-

धिपं प्राह विष्णुर्देवाधिपानुजः। वाचा परमया देवो वरेण्यः प्रभुरीश्वरः ॥ ३७ ॥ यस्त्वया सलिलं दत्तं गृहीतं पाणिना मया। तस्मात्ते दैत्यदेवेभ्यो नास्ति जातु भयं क्वचित् ॥ ३८ ॥ सुतलं नाम पातालं तत्र त्वं सानुगो वस। सर्वदैत्यगणैः सार्धं मत्प्रसान्महासुरः ॥ ३९ ॥ न च ते देवदेवस्य शक्रस्यामिततेजसः। शासनं प्रतिहन्तव्यं स्मरता शासनं मम ॥ ४० ॥ देवताश्चापि ते सर्वाः पूज्या एव महासुर। भोगांश्च विविधान् सम्यक् यज्ञांश्च सह दक्षिणान् ॥ ४१ ॥ प्राप्स्यसे च महाभाग दिव्यान् कामान् यथेप्सितान्। इह चामुत्र चान्यान् विविधांश्च परिच्छदान् ४२ दैत्याधिपत्यं च सदा मत्प्रसादादवाप्स्यसि। यदा चोक्तां मया प्रोक्तां मर्यादां चालयिष्यसि। बधिष्यन्ति तदा हि त्वां नागपाशैर्महाबलाः ॥ ४३ ॥ नमस्कार्याश्च ते नित्यं महे-

राजके छोटे भाई वरदान देने वाले प्रभु और ईश्वर विष्णुने श्रेष्ठ वाणीमें देवराज इन्द्रसे कहा, कि—॥ ३७ ॥ तुमने मेरे हाथमें जल दिया था और मैंने उसको ग्रहण कर लिया था, इस लिए तुमको देव और दानवोंसे कभी विपत्ति नहीं भोगनी पड़ेगी ३८ हे महासुर! तू मेरे प्रसादसे सब दैत्योंको और अपने अनुयायियों को साथ लेकर सुतल नामक पातालमें निवास कर ॥ ३९ ॥ तू मेरी आज्ञाका स्मरण कर अमित तेजस्वी देवदेव इन्द्रकी आज्ञा को न टालना ॥ ४० ॥ हे महासुर! सब देवता भी तेरे पूज्य ही हैं, हे महाभाग! तू दक्षिणा वाले यज्ञोंको करेगा और दिव्य कामनाओंको भी पावेगा और इस लोकमें तथा परलोकमें अनेक प्रकारके भोगोंको भी पावेगा ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ मेरे प्रसादसे दैत्यों पर सर्वदा तेरा आधिपत्य रहेगा, परन्तु जब तू मेरी कही हुई मर्यादाका उल्लंघन करने लगेगा, तब महाबली (नाग) तुझे नागपाशोंसे पीड़ने लगेंगे ॥४३॥ तू महेन्द्र आदि देवताओं

न्द्राद्या दिवौकसः । मम ज्येष्ठः सुरश्रेष्ठः शासनं प्रतिगृह्यताम् ४४
बलिरुवाच । देवदेव महाभाग शंखचक्रगदाधर । सुरासुरगुरो श्रेष्ठ सर्वलोकमहेश्वर । तत्रासतो मे पाताले भागं ब्रूहि सुरोत्तम ॥ ४५ ॥ ममान्नमशनं देव प्राशनार्थमरिन्दम । तद्ददस्व सुरश्रेष्ठ तृप्तिर्येन ममाक्षया ॥ ४६ ॥ श्रीभगवानुवाच । अश्रोत्रियं श्राद्धमधीतमव्रतमदक्षिणं यज्ञमनर्त्विजा हुतम् । अश्रद्धया दत्तमसंस्कृतं हविरेते मदत्तास्तव दैत्य भागाः ॥ ४७ ॥ पुण्यं सद्घोषितं यच्च मद्भागद्वेषिणां तथा । क्रयविक्रयसक्तानां पुण्यं यच्चाग्निहोत्रिणाम् ॥ ४८ ॥ अश्रद्धया च यद्दानं ददतां यजतां तथा । तत्सर्वं तव दैत्येन्द्र मत्प्रसादाद्भविष्यति ॥ ४९ ॥

को सर्वदा नमस्कार करता रहना, और मेरे बड़े भाई सुरश्रेष्ठ इन्द्रकी आज्ञाको मानतो रहना ॥ ४४ ॥ बलिने कहा, कि—हे देवदेव ! हे महाभाग ! हे शंख चक्र और गदाको धारण करने वाले ! हे देवता और राक्षसोंके गुरो ! हे श्रेष्ठ ! हे सब लोकोंके महेश्वर ! हे सुरोत्तम! पातालमें रहने पर मेरा भाग क्या होगा, उसको बताइये ॥ ४५ ॥ हे अरिदमन ! मेरे भक्षणके लिए ऐसा कौनसा अन्न होगा, जिससे मुझको अक्षय तृप्ति मिले, उसको हे सुरश्रेष्ठ ! आप मुझे बताइये ॥ ४६ ॥ श्रीभगवान्ने कहा, कि—श्रोत्रियरहित श्राद्ध, व्रतका पालन किये बिना किया हुआ पठन दक्षिणारहित यज्ञ ऋत्विजरहित हुत अश्रद्धापूर्वक दिया हुआ और असंस्कृत हवि इन भागोंको हे दैत्य ! मैं तुझे देता हूँ ॥ ४७ ॥ जिस पुण्यका ढँढोरा पीटा गया हो और मेरे भाग से द्वेष करने वालोंका क्रय और विक्रयमें आसक्त रहने वाले अग्निहोत्रियों का पुण्य ॥ ४८ ॥ जो अश्रद्धापूर्वक दिया जाता है और अश्रद्धापूर्वक दान करने और यजन करने वालोंका सब पुण्य हे दैत्येन्द्र ! मेरे प्रसादसे तेरा होजावेगा ॥ ४९ ॥ कौर्म-

वैशम्पायन उवाच । एतच्छ्रुत्वा तु वचनं बलिर्विष्णोर्महात्मनः ।
एवमस्त्विति तं प्रोक्त्वा पातालमसुरोत्तमः ॥ ५० ॥ प्रविवेश
महाभागो देवाज्ञां प्रतिपालयन् । भगवानपि राज्यानां प्रविभा-
गांश्चकार ह ॥५१॥ ददौ पूर्वां दिशं चैन्द्रीं शक्रायामिततेजसे ।
याम्यां यमाय देवाय पितृराज्ञे महात्मने ॥ ५२ ॥ पश्चिमां तु
दिशं प्रादाद्वरुणाय महात्मने । उत्तरां च कुबेराय यक्षाधिपतये
दिशम् ॥ ५३ ॥ अधःस्थां नागराजाय सोमायोर्ध्वां दिशं ददौ ।
एवं विभज्य त्रैलोक्यं विष्णुर्बलवतां वरः ॥५४॥ जगाम त्रिदिवं
देवः पूज्यमानो महर्षिभिः । वामनः सर्वभूतेशः प्रतिष्ठाप्य च
वासवम् ॥ ५५ ॥ तस्मिन् प्रयाते दुर्धर्षे वामनेऽमिततेजसि ।
सर्वे मुमुदिरे देवाः पुरस्कृत्य शतक्रतुम् ॥ ५६ ॥ वैशम्पायन
उवाच । गते तु त्रिदिवं कृष्णे बध्वा वैरोचनिं बलिम् । नागैः

पायनजीने कहा, कि-महात्मा विष्णुके इस वचनको सुन कर असुरोंमें श्रेष्ठ महाभाग बलि एवमस्तु कह कर देवकी आज्ञाका पालन करनेके लिए पातालमें घुस गया, तदनन्तर भगवान् ने भी राज्यके विभाग किये ॥ ५० ॥ ५१ ॥ उन्होंने पूर्वदिशा अमित तेजस्वी इन्द्रके अर्पण कर दी और दक्षिण दिशा महात्मा पितृराजके अर्पण कर दी ॥ ५२ ॥ और पश्चिम दिशा महात्मा वरुणको दे दी और उत्तरदिशा यक्षराज कुबेरको दे दी ॥५३॥ नीचे की दिशा नागराजको दे दी और सोमको ऊपरकी दिशा दे दी, इस प्रकार बलवानोंमें श्रेष्ठ विष्णुने त्रिलोकीका विभाग कर दिया ॥ ५४ ॥ इस प्रकार सब भूतोंके स्वामी वामन इन्द्रको (राज्यपर) प्रतिष्ठित करके महर्षियोंसे पूजित हो स्वर्गको चले गए ॥ ५५ ॥ अमित तेजस्वी वामनके प्रयाण करने पर इन्द्र आदि सब देवता प्रसन्न होगए ॥५६॥ वैशम्पायनजीने कहा, कि-जब कम्बल अश्वतर आदि सात फन वाले नागों से घिरा-

सप्तशिरोभिश्च कम्बलाश्वतरादिभिः ॥५७॥ नागबन्धनदुःखार्तं बलिं वैरोचनिं ततः। यदृच्छयासौ देवर्षिर्नारदः प्रत्यपद्यत ५८ स तं कृच्छ्रगतं दृष्ट्वा कृपयाभिपरिप्लुतः। उवाच दानवश्रेष्ठं मोक्षोपायं ददामि ते ॥ ५९ ॥ स्तवं देवाधिदेवस्य वासुदेवस्य धीमतः। अनादिनिधनस्यास्य अक्षयस्याव्ययस्य च ॥ ६० ॥ तमधीष्वाथ दैत्येन्द्र विशुद्धेनान्तरात्मना। तद्गतस्तन्मना भूत्वा द्रुतं मोक्षमवाप्स्यसि ॥ ६१ ॥ ततो विरोचनसुतः प्रयतः प्राञ्जलिः शुचिः। मोक्षविंशकमव्यग्रो नारदात् समधीतवान् ॥ ६२ ॥ तमधीत्य स्तवं दिव्यं नारदेन समीरितम्। पृथिवी चोद्धृता येन तं जजाप महासुरः ॥ ६३ ॥ ओं नमोऽस्त्वनन्तपतये अक्षयाय महात्मने। जलेशयाय देवाय पद्मनाभाय विष्णवे ॥ ६४ ॥ सप्तसूर्यवपुः कृत्वा त्रींल्लोकान् क्रान्तवानसि। भगवान् काल-

---

चनके पुत्र बलिको बाँध कर कृष्ण स्वर्गको चले गए ॥ ५७ ॥ उस समय सर्पोंके बन्धनसे दुःखमें पड़े हुए विरोचनके पुत्र बलि के पास नारदजी यदृच्छासे आगए ॥ ५८ ॥ उसको कष्टमें पड़ा हुआ देख कर नारदजीको दया आगई और वह दानवश्रेष्ठसे कहने लगे, कि—मैं तुझे मोक्षका उपाय बताता हूँ ॥ ५९ ॥ यदि तू मृत्यु और जन्मरहित अक्षय अव्यय देवाधिदेव बुद्धिमान् वासुदेवके स्तोत्रको उनमें मन लगा कर विशुद्ध अन्तः करणसे पढेगा, तब तू शीघ्र ही मुक्त होजावेगा ॥ ६० ॥ तब विरोचनके पुत्र बलिने पवित्र हो नियममें रह कर और हाथ जोड़ कर सावधानीके साथ नारदजीसे मोक्षविंशक पढ़ा था ॥ ६२ ॥ नारदजी के कहे हुए उस दिव्य स्तोत्रको पढ़ कर वह महासुर पृथ्वीका उद्धार करने वाले देवका जप करने लगा ॥ ६३ ॥ ॐ अनन्तपति अक्षय महात्मा जलशायी पद्मनाभ विष्णुदेवको प्रणाम है ॥ ६४ ॥ आपने सात सूर्योंकी समान शरीर बना कर तीनों

कालस्त्वं तेन सत्येन मोक्षय ॥ ६५ ॥ नष्टचन्द्रार्कगगने क्षीणयज्ञतपः क्रिये । पुनश्चिन्तयसे लोकांस्तेन सत्येन मोक्षय ॥६६॥ ब्रह्मरुद्रेन्द्रवाय्वग्निसरित्समगपर्वताः । त्वत्तस्था दृष्टा द्विजेन्द्रैस्तेन सत्येन मोक्षय ॥६७॥ मार्कण्डेन पुरा कल्पे प्रविश्य जठरं तव । चराचरगतं दृष्टं तेन सत्येन मोक्षय ॥ ६८ ॥ एको विद्यासहायस्त्वं योगी योगमुपागतः । पुनस्त्रैलोक्यमुत्सृज्य तेन सत्येन मोक्षय ।.६९॥ जलशय्यामुपासीनो योगनिद्रामुपागतः । लोकांश्चिन्तयसे भूयस्तेन सत्येन मोक्षय ॥७०॥ वाराहं रूपमास्थाय वेदयज्ञपुरस्कृतम् । धरा जलोद्धृता येन ते सत्येन मोक्षय ॥७१॥ उद्धृत्य दंष्ट्रया यज्ञांस्त्रीन् पिण्डान् कृतवानसि । त्वं पितृणामपि

लोकोंको नाप लिया है और कालको भी काल है,इस सत्य वातसे आप मुझे मुक्त करिये ॥ ६५ ॥ आप चन्द्रमा और सूर्यके न रहने पर और यज्ञ तथा तपःक्रियाके क्षीण होने पर आप फिर लोकोंके कल्याणका चिन्तवन करते हैं, इस सत्य वातके कहने से आप मुझे बंधनमुक्त करिए ॥६६॥ ब्राह्मणोंने आपमें ब्रह्मा रुद्र इन्द्र वायु अग्नि नदी सर्प और पर्वतोंको देखा है इस सत्य से आप मुझे बन्धनमुक्त करिये ॥ ६७ मार्कण्डेयने पहिले कल्प में आपके जठरमें प्रवेश करके आपके उदरमें चराचर जगत्को देखा था, इस सत्यवातके कहनेसे आप मुझे बन्धनसे छुड़ा दीजिए ॥ ६८ ॥ विद्यासहायक अद्वितीय योगी योगको प्राप्त होकर त्रिलोकीको रचता है, इस सत्योक्तिसे आप मुझे बंधन-मुक्त करिये ॥ ६९ ॥ आप जलशय्या पर शयन कर योगनिद्राको पाकर फिर तीन लोकोंका चिन्तवन करते हैं इस सत्य बात से मुझे बन्धनमुक्त करिए ७० वेद और यज्ञोंमें प्रशंसित वराह के रूपको धारण करके जलमेंसे आपने पृथ्वीका उद्धार किया था; उस सत्यसे आप मेरा उद्धार करिए ७१ हे हरे ! आपने

हरे तेन सत्येन मोक्षय ॥ ७२ ॥ प्रदुद्रुवुः सुराः सर्वे हिरण्याक्ष-भयार्दिताः । परित्रातास्त्वया देव तेन सत्येन मोक्षय ॥ ७३ ॥ दीर्घवक्त्रेण रूपेण हिरण्याक्षस्य संयुगे । शिरो जहार चक्रेण तेन सत्येन मोक्षय ॥ ७४ ॥ भग्नमूर्द्धास्थिमस्तिष्को हिरण्यकशिपुः पुरा । हुंकारेण हतो दैत्यस्तेन सत्येन मोक्षय ॥७५॥ दानवाभ्यां हृता वेदा ब्रह्मणः पश्यतः पुरा । परित्रातास्त्वया देव तेन सत्येन मोक्षय ॥ ७६ ॥ कृत्वा हयशिरो रूपं हत्वा तु मधुकैटभौ । ब्रह्मणे तेर्पिता वेदास्तेन सत्येन मोक्षय ॥ ७७ ॥ देवदानवगन्धर्वा यक्षसिद्धा महोरगाः । अन्तं तव न पश्यन्ति तेन सत्येन मोक्षय ॥ ७८ ॥ अपान्तरतमा नाम जातो देवस्य

अपनी डाढसे पृथिवीका उद्धार कर पितरोंके लिए भी तीन पिण्ड बनाए थें,इस सत्यसे आप मुझे बन्धनसे मुक्त करिए७२ हिरण्याक्षके भयसे पहिले देवता भागने लगे थे; हे देव ! उस समय आपने देवताओंकी रक्षाकी थी, उस सत्यसे आप मुझे बन्धनमुक्त करिए७३ आपने युद्धमें लम्बे मुख वाला रूप धारण करके हिरण्याक्षके शिरको चक्रसे काट लिया था,इस सत्योक्ति से आप मुझे बन्धनसे मुक्त करिए ॥ ७४ ॥ हिरण्यकशिपुके मस्तककी हड्डी और मस्तकको तोडनेके अनन्तर आपने हुंकार शब्द करके उस दानवको मार डाला था, इस सत्योक्तिसे आप मुझे बन्धनमुक्त करिए ७५ पहिले ब्रह्माजीके सामने ही दो दानवोंने वेदोंको छीन लिया था, उस समय आपने वेदोंको बचाया था; इस सत्योक्तिसे आप मुझे मुक्त करिए ॥ ७६ ॥ हयग्रीवका रूप धारण करके मधु कैटभोंको मारनेके अनन्तर आपने ब्रह्माजीको वह वेद फिर दे दिये थे, इस सत्योक्तिसे आप मुझे बन्धनमुक्त करिए ७७ देव दानव गन्धर्व यक्ष सिद्ध महोरग आपका पार नहीं पासकते, इस सत्योक्तिसे आप मुझे

वै सुतः । कृताश्च तेन वेदार्थास्तेन सत्येन मोक्षय ॥७९॥ वेद-यज्ञाग्निहोत्राणि पितृयज्ञहवींषि च । रहस्यं तव देवस्य तेन सत्येन मोक्षय ॥ ८० ॥ ऋषिर्दीर्घतमा नाम जात्यन्धो गुरुशापतः । त्वत्प्रसादाच्च चक्षुष्मांस्तेन सत्येन मोक्षय ॥८१॥ ग्राहग्रस्तं गजेन्द्रं च दीनं मृत्युवशं गतम् । भक्तं मोक्षितवांस्त्वं हि तेन सत्येन मोक्षय ॥८२॥ अक्षयश्चाव्ययश्चैव ब्रह्मण्यो भक्तवत्सलः उच्छ्रितानां नियन्तासि तेन सत्येन मोक्षय ८३ शंखं चक्रं गदां पद्मं शार्ङ्गं गरुडमेव च । प्रसादयामि शिरसा ते बन्धान्मोक्षयन्तु माम् ८४ शंखचक्रगदातूणशार्ङ्ग च गरुडादयः । प्रसादयामासुर्हरिं बलिं मोक्षय बन्धनात् ८५ ततः प्रसन्नो भगवानादिदेश

बन्धनमुक्त करिये ७८ आप देवके अपान्तरतमा नामक पुत्र वन उत्पन्न हुए थे फिर आपने वेदोंके अर्थ किये थे, इस सत्यसे आप मुझे आपत्तिसे मुक्त करिए ॥ ७९ ॥ वेद यज्ञ अग्नि-होत्र पितृयज्ञ और हवि आप देवके रहस्य हैं, इस सत्य बातसे आप मुझे बन्धनमुक्त करिए ८० दीर्घतमा नामक ऋषि गुरुके शापवश जन्मसे ही अन्धे उत्पन्नहुए थे, परन्तु वह आपके प्रसाद से नेत्रवाले होगए, इस सत्य बातसे आप मुझे बन्धनमुक्त करिए ८१ ग्राहसे ग्रस्त हुए मृत्युके मुखमें पडे हुए दीन गजेन्द्र भक्तको आपने मुक्त किया था, इस सत्योक्तिसे आप मुझे बन्धनमुक्त करिए ८२ आप अव्यय हैं, अक्षय हैं, ब्रह्मण्य हैं, भक्तवत्सल हैं और उच्छृङ्खलोंके नियन्ता हैं, इस सत्योक्तिसे आप मुझे बन्धनमुक्त करिये ॥ ८३ ॥ मैं शंख चक्र गदा पद्म शार्ङ्ग और गरुडको शिर झुका कर प्रणाम करता हूँ, वे मुझे बन्धनसे मुक्त करवावें ८४ तब शंक चक्र गदा तूण शार्ङ्ग और गरुड आदि हरिको प्रसन्न करने लगे कि आप बलिको बंधन से छुडाइये ८५ तब भगवान्ने प्रसन्न होकर सर्पोंके मारनेवाले

खगेश्वरम् । गरुडं नागहन्तारं बलिं मोचय बन्धनात् ॥ ८६ ॥ ततो विक्षिप्य गरुडः पक्षावतुलविक्रमः । जगाम वसुधामूलं यत्रास्ते संयतो बलिः ॥ ८७ ॥ आगमं तस्य विज्ञाय नागा मुक्त्वा महासुरम् । ययुः पुरीं भोगवतीं वैनतेयभयार्दिताः ८८ मुक्तं कृष्णप्रसादेन चिंतयानमधोमुखम् । भ्रष्टश्रियमुवाचेदं गरुत्मान् पन्नगाशनः ॥ ८९ ॥ गरुड उवाच । दानवेन्द्र महाबाहो विष्णुस्त्वामब्रवीत् प्रभुः । मुक्तो निवस पाताले सपुत्रजनबांधवः॥९०॥इतस्त्वया न गन्तव्यं गव्यूतिमपि दानव । समयं यदि भिंद्यास्त्वं मूर्धा ते शतधा भवेत् ॥ ९१ ॥ पक्षीन्द्रवचनं श्रुत्वा दानवेन्द्रोऽब्रवीदिदम् । स्थितोऽस्मि समये तस्य अनन्तस्य महात्मनः ॥ ९२ ॥ जीवोपायं तु भगवान् मम किंचित् करोतु सः ।

गरुडजीको आज्ञा दी, कि-तुम बलिको बन्धनसे छुडाओ ॥८६॥ तब अतुलविक्रमी गरुड अपने पंखोंको फैलाकर वसुधाके मूल में तहाँ पहुँचे, जहाँ पर बलि बन्धनमें पडा हुआ था ॥ ८७ ॥ गरुडजीके आगमनके वृत्तान्तको जानकर नाग महादानवको छोडकर गरुडजीके भयसे भोगवती पुरीको चले गये ॥ ८८ ॥ तब सर्पोंका भक्षण करने वाले गरुडजी कृष्णके प्रसादसे मुक्त हुए और लक्ष्मीभ्रष्ट होनेके कारण नीचेको मुख करके चिन्ता करते हुए बलिसे कहने लगे ॥ ८९ ॥ गरुडजीने कहा, कि— महाभुज दानवेन्द्र प्रभुविष्णुने तुमसे कहा है, कि- तू मुक्त होगया अब पुत्र और बांधवोंको साथमें ले पातालमें बस॥९०॥हे दानव ! तुम यहाँसे दो कोस आगे भी मत जाना, यदि तुम इस प्रतिज्ञा को भंग करोगे तो तुम्हारे शिरके सौ टुकडे होजावेंगे ॥ ९१ ॥ पक्षिराज गरुडजीके वचनको सुन कर दानवेन्द्रने यह बात कही, कि मैं महात्मा अनन्तकी आज्ञामें स्थित रहूँगा ॥ ९२ ॥ परन्तु वह भगवान् मेरे जीते रहनेका तो कुछ उपाय कर दें, हे खगेश्वर!

इहस्थोहं सुखासीनो येनाप्यायै खगेश्वर ॥ ६३ ॥ बलेस्तु वचनं श्रुत्वा गरुत्मानिदमब्रवीत् । पूर्वमेव कृतस्तेन ओन्योपायो महात्मना ॥ ६४ ॥ वर्तयिष्यन्ति ये यज्ञां विधिहीना न ऋत्विजः । प्रायश्चित्तमजानन्तो यज्ञभागस्ततस्तव ॥ ६५ ॥ न तेषां यज्ञभागं वै प्रतिगृह्णन्ति देवताः । अनेनाप्यायितबलः सुखमार्गं निगहृष्यसि ॥ ६६ ॥ वैशम्पायन उवाच । संदेशमेतं भगवान् दत्तवान् कश्यपात्मजः । दानवेन्द्र महाबाहो विष्णुस्त्रैलोक्यभावनः ६७ इमं स्तवमनन्तस्य सर्वपापप्रमोचनम् । यः पठेत् नरो भक्त्या तस्य नश्यति किल्बिषम् ॥ ६८ ॥ गोहन्तायाः प्रमुच्येत ब्रह्मघ्नो ब्रह्महत्यया । अपुत्रो लभते पुत्रं कन्या चैवेप्सितं पतिम् ॥ ६९ ॥ सद्यो गर्भात् प्रमुच्येत गर्भिणी जनयेत् सुतम् । ये च मोक्षैषिणो

जिससे मैं यहाँ बैठा तृप्त होता रहूँ ॥ ६३ ॥ बालक वचनका सुन कर गरुड़जीने कहा, कि-उन महात्माने तुम्हारी जीविका का उपाय पहिले ही कर दिया है ॥ ६४ ॥ कि-जो यज्ञ विधिहीन और ऋत्विजहीन होंगे और प्रायश्चित्तको न जानने वाले पुरुषोंसे यज्ञ होंगे, वह सब यज्ञभाग तुम्हें ही मिलेगा ॥ ६५ ॥ ऐसे पुरुषोंके यज्ञभागको देवता ग्रहण नहीं करते हैं, तू इन भागों से तृप्त और बलवान् होकर सुखपूर्वक विचरण कर सकेगा ६६ वैशम्पायनजी कहते हैं, कि-हे महाभुज ! त्रिलोकीका कल्याण चाहने वाले कश्यपजीके पुत्र भगवान् विष्णुने दानवेन्द्रको यह संदेशा भेजा था ॥६७॥जो मनुष्य सब पापोंसे मुक्त करने वाले अनन्त भगवान्के इस स्तोत्रका भक्तिपूर्वक पाठ करता है, उसके पाप नष्ट होजाते हैं ॥६८॥ (इस स्तोत्रका पाठ करनेसे) मनुष्य ब्रह्महत्यासे छूट जाता है, गोहत्यारा गोहत्याके पातकसे मुक्त होजाता है, पुत्ररहित पुरुष पुत्रको पाता है और कन्या अभिलषित पतिको पाती है ॥ ६९ ॥ गर्भिणी तत्काल ही गर्भ-

लोके योगिनः सांख्यकापिलाः ॥ १०० ॥ स्तवेनानेन गच्छन्ति श्वेतद्वीपमकल्मषाः। सर्वकामप्रदो ह्येष स्तवोऽनन्तस्य कीर्त्यते १०१ यः पठेत् प्रातरुत्थाय शुचिः प्रयतमानसः। सर्वान् कामानवाप्नोति मानवो नात्र संशयः ॥१०२॥ एष वो वामनो नाम प्रादुर्भावो महात्मनः। वेदविद्भिर्द्विजैरेव पठ्यते वैष्णवं यशः १०३ यस्त्विमं वामनं दिव्यं प्रादुर्भावं महात्मनः। शृणुयान्नियतो भक्त्या सदा पर्वसु पर्वसु ॥ ४ ॥ परान् विजयते राजा यथा विष्णुर्महायशाः। यशो विमलमाप्नोति विपुलं चाप्नुते वसु ॥५॥ प्रियो भवति भूतानां सर्वेषां वामनो यथा। पुत्रपौत्राश्च वर्धन्ते

पीड़ासे मुक्त हो पुत्रको उत्पन्न करती है और मोक्ष चाहने वाले सांख्यानुयायी और कापिलानुयायी योगी भी इस स्तोत्रका पाठ करनेसे निष्पाप हो श्वेतद्वीपको प्राप्त होते हैं अनन्तका यह स्तोत्र सब कामनाओंको पूर्ण करने वाला कहलाता है १०० ॥ १०१ जो मनुष्य प्रातःकालके समय उठ पवित्र हो मनको नियममें रख कर इस स्तोत्रका पाठ करता है वह अपनी सब कामनाओंको पाता है ॥ १०२ ॥ वेदवेत्ता ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य महात्मा वामन के इस अवतारूप वैष्णवयशका इस प्रकार कीर्तन करते हैं ॥ १०३ ॥ जो पुरुष महात्मा वामनके इस अवतारको प्रत्येक पर्वके समय भक्तिपूर्वक पढ़ता है १०४ वह राजा अपने शत्रुओं को इस प्रकार जीत लेता है, जिस प्रकार महाबली विष्णुने बलि को जीत लिया था, और उसको विमल यश तथा बहुतसा धन मिलता है ॥ १०५ ॥ और वह वामनकी समान सब प्राणियों का प्रिय हो जाता है, उसके बेटे पोते बढ़ते रहते है और आरोग्य तथा धनसम्पत्ति भी बढ़ती रहती है ॥ १०६ ॥ इस स्तोत्रका पाठ करनेसे देवदेव जनार्दन प्रसन्न होते हैं और वह पुरुष सब

आरोग्यं गुणसंपदः ॥ ६ ॥ प्रीयते पठतश्चास्य देवदेवो जनार्दनः । सर्वकामयुतश्चैव कृष्णद्वैपायनोऽब्रवीत् ॥ १०७ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

जनमेजय उवाच । किमर्थं भगवान् विष्णुर्देवदेवो जनार्दनः । गतः कैलासशिखरमालयं शंकरस्य च ॥ १ ॥ नारदाद्यैस्तपो-

कामनाओंसे युक्त होजाता है, यह बात कृष्णद्वैपायनजीने कही है ॥ १०७ ॥ बहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७२ ॥ * ॥ * ॥ *

[हरिवंशमें धन्योपाख्यानसे आरम्भ करके बाणासुरके युद्ध तक श्रीकृष्णका उत्कर्ष कहा और अवतारोंमें उनके सगुण और निर्गुण रूपकी व्याख्या करके उनके गुणोंकी कथामें ही भारत को फलश्रुति तक दिखाया और बाणासुरके युद्धमें हरि और हरका अभेद भी कह दिया परन्तु कोई मन्दमति यह न समझे, कि-'यह अभेद तो भद्रसेन मेरा आत्मा है' इस प्रकारका औपचारिक है और शास्ताशास्यभावका असंभवरूप अभेद है इस भ्रमको दूर करनेके लिए कैलासयात्रासे लेकर त्रिपुरवध तकका वर्णन किया जायगा । क्योंकि-ये दोनों सर्वत्र प्रत्येक सर्वोत्तम कहलाते हैं अतः यहाँ पर कायव्यूहमें योगीकी समान देहभेद होने पर भी ऐकात्म्य सिद्ध होता है, देहभेदसे व्यक्तिका भेद नहीं होसकता, क्योंकि-दो व्यक्ति सर्वोत्तम नहीं होसकते । और अनुशासनपर्वमें संक्षेपसे कहा है, कि-कृष्ण शंकरकी आराधना करनेके लिए कैलासको गए थे उसको विस्तारपूर्वक जाननेकी इच्छासे जनमेजयने प्रश्न किया, कि-ब्रह्मा आदि देवताओंके देव कि-जिनमें प्रलयकालके समय प्राणी लीन होजाते है, वह जनार्दन दूसरेकी पूजा करने क्यों गए थे और उनसे अतिरिक्त दूसरेका शंकरत्व किस प्रकार होसकता है, अर्थात् वह पूर्ण-

वृद्धैर्मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः । तत्र दृष्टो महादेवः शंकरो नीललो-
हितः ॥ २ ॥ केशवेन पुरा विप्र कुर्वता तप उत्तमम् । अर्चितो
देवदेवेन शंकरश्चेति नः श्रुतम् ॥ ३ ॥ देवौ तत्र जगन्नाथौ
दृष्टवन्तौ पुरातनौ । अचर्याञ्चक्रिरे देवा इन्द्राद्याः शंकरं हरिम् ४
तौ हि देवौ महादेवावेकीभूतौ द्विधा कृतौ । एकात्मानौ जग-
द्योनी सृष्टिसंहारकारकौ ॥ ५ ॥ परस्परसमावेशाज्जगतः पालने
स्थितौ । तयोस्तत्र यथावृत्तं कैलासे पर्वतोत्तमे ॥ ६ ॥ ऋषयः
किमचेष्टन्त दृष्ट्वा तौ पुरुषोत्तमौ । एतत्सर्वमशेषेण वक्तुमर्हसि
सत्तम ॥ ७ ॥ यथागतो हरिर्विष्णुः कृष्णो जिष्णुः पुरातनः ।

नन्दस्वरूप होने पर भी अल्पसुखकी इच्छासे दूसरेके पास क्यों गए थे] जनमेजयने कहा, कि-देवदेव जनार्दन भगवान् विष्णु शंकरके स्थान कैलासके शिखर पर क्यों गए थे ॥ १ ॥ नारद आदि तपोवृद्ध तत्त्वदर्शी मुनियोंने नीललोहित महादेव शंकर को तहाँ देखा ॥ २ ॥ और हे विप्र तात ! हमने सुना है, कि-देवदेव केशवने उत्तम तप करके शंकरकी पूजा की थी ॥ ३ ॥ [इस प्रकार पूज्यपूजकभावसे अवगत हुए हरि और हरका एकात्मत्व किस प्रकार होसकता है, इसका उत्तर देते हैं] तहाँ पर प्राचीन देव दोनों जगत्के नाथोंको देखा था, तब इन्द्र आदि देवताओंने शंकर और हरिकी पूजा की थी ४ वे दोनों महादेव एक होने पर भी दो होगए थे, यद्यपि वे एकसे स्वरूप वाले थे तब भी वे दोनों जगत्योनि सृष्टिसंहार और सृष्टिपालनरूप कार्य भेदसे भिन्न शरीर वाले प्रतीत होते थे ॥ ५ ॥ वे परस्परके समावेशके कारण जगत्के पालनमें स्थित थे, पर्वतोत्तम कैलास पर्वतमें उनका जैसे वृत्तान्त हुआ हो ॥ ६ ॥ और उन दोनों पुरुषोत्तमोंको देख कर ऋषियोंने क्या चेष्टा की थी, हे सत्तम! इस बातको आप पूर्णरीतिसे कहिये ॥ ७ ॥ हरि विष्णु

तथा च शंकरः साक्षात् कृतवान्नागभूषणः । एतत् सर्वं विप्रवर्य ब्रूहि तत्त्वेन यत्नतः ॥ ८ ॥ वैशम्पायन उवाच । शृणुष्वावहितो राजन् यथा कृष्णो गतो नगम् । यथा च दृष्टो देवेशः शंकरो वृषवाहनः ॥ ९ ॥ यथा चचार स तपो यथा ते मुनयो गताः । एवं तयोर्यथावृत्तं तथा शृणु नरोत्तम ॥ १० ॥ द्वैपायनोऽथ भगवान् यथा प्रोवाच मां तथा । नमस्कृत्य प्रवक्ष्यामि केशवं खगवाहनम् ॥ ११ ॥ यथाशक्ति यथाप्रज्ञं शृणु यत्नेन सुव्रत । न चाशुश्रूषवे वाच्यं नृशंसायातपस्विने ॥ १२ ॥ नानधीताय वक्तव्यं पुण्यं पुण्यवतां सदा । स्वर्ग्यं यशस्यं धन्यं च बुद्धिशुद्धिकरं

कृष्ण जिष्णु जिस प्रकार तहाँ पर आये थे, और नागभूषण शंकरका उन्होंने किस प्रकार साक्षात्कार किया था, हे विप्रवर्य ! इस बातको आप यत्नपूर्वक मुझसे कहिए ॥ ८ ॥ वैशम्पायनजी कहते हैं, कि—हे राजन् ! कृष्ण जिस प्रकार पहाड पर गए थे और उन्होंने जिस प्रकार देवेश वृषवाहन शंकरके दर्शन किए थे उसको तुम सावधान होकर सुनो ॥९॥ हे नरोत्तम ! जिस प्रकार कृष्णने तप किया था और जिस प्रकार मुनि तहाँ पर पहुँचे थे और उनका वृत्तान्त जिस प्रकार हुआ था उसको हे नरोत्तम ! आप सुनिये ॥ १० ॥ और द्वैपायन भगवान्ने मुझसे जिस प्रकार वर्णन किया था, पक्षिवाहन केशवको प्रणाम करके मैं उस वृत्तान्तको कहता हूँ ॥ ११ ॥ हे सुव्रत ! इस बातको तुम अपनी बुद्धि और शक्तिके अनुसार सुनो, इस स्तोत्रको तपस्या न करनेवालेको शुश्रूषा न करनेवालेको और नृशंसको न सुनाना चाहिए ॥ १२ ॥ यह पुण्यात्माओंका भी पुण्यस्वरूप स्वर्गदायक यशोदायक धनदायक और बुद्धिको सर्वदा शुद्ध करनेवाला स्तोत्र अपढ पुरुषसे नहीं कहना चाहिये १३ यह (हरिहरका ऐकात्म्य) पुण्यात्माओंके

सदा ॥ १३ ॥ इमेयं पुराणात्मना नित्यमिदं वेदार्थनिश्चितम् । अनेकारण्यसंयुक्तं सेवन्ते नित्यमीदृशम् ॥ १४ ॥ मुनयो वेद-निरता नारदाद्यास्तपोधनाः । अत्यद्भुतं महापुण्यं वृत्तं कैलास-पर्वते ॥ १५ ॥ शिवयोर्देवयोस्तत्र हरेश्चैव भवस्य ह । हतेष्व-सुरसंघेषु नरकादिषु भूमिप ॥ १६ ॥ हतेष्वथ नृपेष्वेवं किंचि-ध्यान करने योग्य है, वेदसे इसका प्रयोजन स्पष्ट होता है अनेक उपनिषदोंमें इसका वर्णन है, वेदमें निरत रहने वाले तपोधन नारद आदि मुनि नित्यप्रति इसका सेवन करते हैं कल्याणकारक इन हरि और भव नामक देवताओंका अति अद्भुत महापुण्य-जनक वृत्तान्त कैलास नामक पर्वतमें हुआ था, हे राजन् ! जब नरक आदि असुर मारे गए [तात्पर्य यह है, कि—बीज और अंकुरकी समान परस्पर कार्यकारण भावको प्राप्त हुए हरि और हरमें पर्यायरूपसे जीव और ईशभावका प्रतिपादन करनेके लिए, कहते हैं, कि—जब जीव ईश्वर विष्णु होता है वा विपरीत होता है उस समय ईश्वरमें जीव जलमें जलकी समान अथवा अग्निमें अग्निकी समान विलीन होजाता है यह वेदान्तका निश्चित सिद्धान्त है, ऐसी दशामें कहीं पुराणों में प्रथम पक्षका समर्थन किया जाता है और कहीं दूसरे पक्षका समर्थन किया जाता है, परन्तु जीव और ईश्वरका सर्वथा अभेद है यह सब शास्त्रों का तात्पर्य है । दूसरे देवता तो समष्टि जीवके अवयवभूत हैं, अकृत्स्न कृत्स्न परब्रह्मके अनन्त ऐश्वर्यको भोगता है, इस प्रकार इस खिल ग्रन्थमें सब पुराणोंका संग्रह है. पहिले शिव विष्णु ईश हैं यह कहा था अब विष्णु जीव हैं और शिव ईश्वर हैं, इस बात का प्रतिपादन किया जाता है, इस प्रकार पुराणोंके आपसमें विरोधी प्रतीत होने पर भी तत्त्वतः कुछ विरोध नहीं होता है] ॥ १४–१६ ॥ और राजाओंके मारे जाने पर जब कुछ शत्रु

च्छिष्टेषु शत्रुषु । शासति स्म सदा विष्णुः पृथिवीं पुरुषोत्तमः १७
द्वारवत्यां जगन्नाथो वसन् वृष्णिभिरीश्वरः । रुक्मिण्या संगतो
देवो वसंस्तत्र पुरे हरिः ॥१८॥ कदाचिच्च तया सार्धं शेते रात्रौ
जगत्पतिः । विहरंश्च यथायोगं प्रीतः प्रीतियुजा तया ॥ १९ ॥
अथोवाच तदा देवी रुक्मिणी रुक्मभूषणा । पुत्रमिच्छामि देवेश
त्वत्तो माधवनन्दनम् ॥ २० ॥ बलिनं रूपसम्पन्नं त्वयैव सदृशं
प्रभो । वृष्णीनामपि नेतारं वीर्यवन्तं तपोनिधिम् ॥ २१ ॥ सर्व-
शास्त्रार्थकुशलं राजविद्यापुरस्कृतम् । एवमादिगुणैर्युक्तं दातु-
मर्हसि सत्तम २२ त्वयि सर्वस्य दातृत्वं नित्यमेव प्रतिष्ठितम् ।
त्वं हि सर्वस्य कर्ता च दाता भोक्ता जगत्पतिः २३ विशेषतस्तु
भृत्यानां शुश्रूषा नियतात्मनाम् । वक्तव्यं किमु देवेश यदि भक्ता-

---

बाकी रह गए उस समय पुरुषोत्तम विष्णु पृथिवीका शासन करने लगे १७ वह जगन्नाथ ईश्वर द्वारकापुरीमें वृष्णियोंके और रुक्मिणीके साथ मिल कर रहने लगे १८ एक समय जगत्पति उसके साथ रात्रिमें शयन कर रहे थे और उस प्रीति करनेवाली स्त्रीसे उचित हास्य विलास कर रहे थे ।१९। उस समय सुवर्णके आभूषणोंको धारण करने वाली रुक्मिणी देवीने पुत्रप्राप्तिकी इच्छासे कहा, कि-मैं आपसे माधवनन्दन पुत्रको पाना चाहती हूँ ॥२०॥ हे प्रभो ! वह बलवान् हो, रूपवान् हो और हे प्रभो ! आपकी समान ही वृष्णियोंका नेता हो वीर्यवान् हो और तपो- निधि हो सब शास्त्रों के अर्थमें कुशल हो और ब्रह्मविद्या वालोंमें सत्कृत हो, हे सत्तम ! ऐसे गुणोंसे युक्त पुत्रको आप मुझे दीजिये ॥ २२ ॥ सबको दान देना आपमें सर्वदा प्रतिष्ठित रहता है और आप ही सबके कर्ता हैं; दाता हैं भोक्ता हैं और प्रजापति हैं ॥ २३ ॥ और आपकी ही शुश्रूषामें नियत रहने वाले भृत्योंके विषयमें तो कहा ही क्या जाय हे केशव ! हे देवेश ! मैं भी

स्मि केशव २४ अनुग्रहो यदि स्यान्मे देवदेव जगत्पते । दातु-
मर्हसि पुत्रं त्वं वीर्यवन्तं जनार्दन ॥२५॥ वैशम्पायन उवाच ।
इत्युक्तो देवदेवेशः प्रियया प्रीयमाणया । तया महिष्या रुक्मि-
ण्या रुक्मिशत्रुर्यदूद्वहः ॥ २६ ॥ प्रोवाच वचनं काले रुक्मिणीं
यादवेश्वरः । दातास्मि तादृशं पुत्रं यं त्वमिच्छसि भामिनि २७
नित्यं भक्तासि मे देवि नात्र कार्या विचारणा। अवश्यं तव दा-
स्यामि पुत्रं शत्रुनिवर्हणम् २८ पुत्रेण लोकान् जयति सतां कामदुघा
हि ये। नरकं पुदितिख्यातं दुःखं च नरकं विदुः२९ पुदस्त्राणात्ततः
पुत्रमिहेच्छंति परत्र च । अनन्ताः पुत्रिणो लोकाः पुरुषस्य प्रिये
शुभाः ॥ ३० ॥ पतिर्जायां प्रविशति गर्भो भूत्वा स मातरम् ।
तस्यां पुनर्नवो भूत्वा दशमे मासि जायते ॥३१॥ पुत्रवन्तं विभे-

आपकी भक्त हूँ ॥२४॥ हे देवदेव जगत्पते ! हे जनार्दन ! यदि आप मुझ पर अनुग्रह करना चाहते हैं तो मुझे वीर्यवान् पुत्र दीजिये ॥२५॥ वैशम्पायनजीने कहा, कि-जब प्रेम करने वाली प्रिया-रानी रुक्मिणीने रुक्मीके शत्रु देवदेवेश यदुकुलको धारण करने वाले श्रीकृष्णसे यह बात कही ॥ २६ ॥ तब यादवेश्वर रुक्मिणीसे समयोचित वचन कहने लगे, कि-हे भामिनि ! तू जैसे पुत्रको चाहती है, तैसा पुत्र मैं तुझको दूँगा ॥ २७ ॥ तू मेरी परम भक्त है, इसमें कहने सुननेकी क्या बात है, मैं तुझे शत्रुओंको नष्ट करने वाला पुत्र अवश्य दूँगा ॥ २८ ॥ सज्जनों की कामनाओंको पूर्ण करने वाले लोकोंको पुत्रके द्वारा जीता जाता है, एक पुत् नाम वाला प्रसिद्ध नरक है, और दुःखको नरक कहते हैं ॥ २९ ॥ परलोकमें और इस लोकमें पुत्से रक्षा पानेके लिए प्राणी पुत्रकी इच्छा करते हैं, हे प्रिये ! पुत्र वाले पुरुषको अनन्त शुभ लोक मिलते हैं ॥ ३० ॥ पति स्त्रीमें गर्भ बनकर प्रवेश करता है, तब वह उसकी मातृभावसे भावना करता

तीन्द्रः किन्तु तेनाजितं भवेत् । नापुत्रो विन्दते लोकान् कुपुत्रा-
दनपत्यता वरा ॥ ३२ ॥ कुपुत्रो नरके यस्मात् सुपुत्रात् स्वर्ग एव
हि । तस्माद्विनीतं सत्पुत्रं श्रुतवन्तं दयापरम् ॥ ३३ ॥ विद्यया विनयो
यस्माद्विद्यायुक्तं सुधार्मिकम् । इच्छेत् पुत्रं पुत्रकामः पुरुषो यत्न-
वान् बुधः ॥ ३४ ॥ तस्माद्दास्यामि ते पुत्रं विद्यावन्तं सुधार्मि-
कम् । एष गच्छामि पुत्रार्थे कैलासं पर्वतोत्तमम् ॥ ३५ ॥ तत्रो-
पास्य महादेवं शंकरं नीललोहितम् । ततो लप्स्यामि पुत्रं ते
भवाज्जगद्धिते रतात् ॥ ३६ ॥ तपसा ब्रह्मचर्येण हरं शंकरम-
व्ययम् । तोषयित्वा विरूपाक्षमादिदेवमजं विभुम् ॥ ३७ ॥
गमिष्याम्यहमद्यैव द्रष्टुं शंकरमव्ययम् । स च मे दास्यते पुत्रं

है, इस प्रकार वह दूसरे मास नवीन बनकर उसमेंसे उत्पन्न हो जाता है ॥ ३१ ॥ पुत्र वाले पुरुषको देखकर इन्द्र भी डरता है, (अर्थात् पुत्र वाला पुरुष इन्द्रके पदको भी जीत सकता है) पुत्र वाला पुरुष किसको नहीं जीत सकता ? पुत्ररहित पुरुष लोकों को नहीं पा सकता और कुपुत्रसे तो अपुत्रता (निःसन्तानपन) अच्छा है ॥ ३२ ॥ क्योंकि-कुपुत्रके कारण नरकमें पड़ना पड़ता है और सुपुत्रसे स्वर्ग मिलता है, इस लिए शास्त्रसम्पन्न दयालु और विनम्र सत्पुत्रकी (इच्छा करे) ॥ ३३ ॥ विद्यासे विनय की प्राप्ति होती है, इस लिए पुत्र चाहने वाला बुद्धिमान् पुरुष यत्न करके विद्यावान् धार्मिक पुत्रको पाना चाहे ॥ ३४ ॥ इस लिये मैं तुझे विद्यावान् धार्मिक पुत्र दूँगा, इस लिए अब मैं पुत्र के लिए पर्वतोंमें उत्तम कैलास पर्वत पर जाता हूँ ॥ ३५ ॥ तहाँ पर नील लोहित महात्मा शंकरकी उपासना करके, प्राणियोंके कल्याणमें निमग्न रहने वाले शंकरसे तेरे लिए पुत्र पाऊँगा ॥ ३६ मैं तप और ब्रह्मचर्यसे विरूपाक्ष आदिदेव अज भव अव्यय शंकर को प्रसन्न करके (पुत्र पाऊँगा) ॥ ३७ ॥ मैं आज ही अव्यय

तोषितस्तपसा मया ॥ ३८ ॥ तत्र गत्वा महादेवं नमस्कृत्य सहोमया । प्रविश्य बदरीं पुण्यां मुनिजुष्टां तपोमयीम् ॥ ३९ ॥ अग्निहोत्राकुलां दिव्यां गंगांबुसाविर्ता सदा । मृगपक्षिसमायुक्तां सिंहहस्तिशताकुलाम् ॥ ४० ॥ बदरीफलसंपूर्णां वानरक्षोभितद्रुमाम् । वेत्राऽऽरूढमहावृक्षां कदलीखण्डमण्डिताम् ॥४१॥ मुनिभिर्वेदतत्त्वार्थविचारनिपुणैः सदा । वेदनिश्चिततत्त्वार्थैः प्रमाणकुशलैर्युताम् ॥ ४२ ॥ इदमेकमिदं तत्त्वमिति निश्चितमानसैः । उपास्यमानामन्यत्र सिद्धैः सिद्धार्थतत्परैः ॥ ४३ ॥ इतिहासपुराणज्ञैः सेव्यमानां महर्षिभिः । गच्छद्भिः स्वर्गनिलयं

शंकरको देखनेके लिए जाता हूँ जब मैं उनको तपसे सन्तुष्ट कर लूँगा, तब वह मुझे पुत्र देंगे ॥ ३८ ॥ मैं मुनियोंसे सेवित पुण्य और तपःसंयुक्त बदरिकाश्रममें प्रवेश करके महादेव और उमादेवीको प्रणाम करके (पुत्र पाऊँगा) ॥ ३९ ॥ उस बदरिकाश्रममें अग्निहोत्र होते रहते हैं, और दिव्य गंगा उसको सर्वदा आप्लावित करती रहती है, मृग और पक्षी उसमें रहते हैं और सैंकड़ों सिंह तथा हाथी भी वहाँ रहते हैं ॥ ४० ॥ बेरोंसे वह भरा रहता है और वानर उसके वृक्षोंको हिलाते रहते हैं वहाँके बड़े २ वृक्षों पर बेत चढ़ा रहता है और केलेके वृक्षोंसे वह सुशोभित है ४१ वेदका विचार करने वाले, तत्त्वार्थविचारमें निपुण वेदके निश्चित तत्त्वोंके अर्थको जानने वाले और प्रमाणकुशल पुरुष वहाँ पर रहते हैं ४२ सिद्ध और प्रयोजनको सिद्ध करने वाले पुरुष उस बदरिकाश्रमको अपने मनमें तत्त्व समझकर वहाँ पर रहते हैं ॥४३॥ इतिहास और पुराणोंके जानने वाले महर्षि उस बदरिकाश्रमका सेवन करते रहते हैं और अपने शरीरको त्याग कर स्वर्गको जाना चाहने वाले व्यक्ति भी उसका सेवन करते हैं ४४ वह आश्रम दमकता रहता है और पुण्यात्माओंका

परित्यज्य कलेवरम् ॥ ४४ ॥ प्रसिद्धां महतीं देवीं यास्यामि सुकृतालयाम् । इत्युक्त्वा विरराभैव देवदेवो जनार्दनः ॥४५॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

वैशम्पायन उवाच । प्रभातायां तु शर्वर्यां गन्तुमैच्छज्जनार्दनः । हुताग्निः कृतकल्याणः समाप्तवरदक्षिणः ॥ १ ॥ गाश्च दत्त्वाथ विप्रेभ्यो नमस्कृत्य द्विजोत्तमान् । आस्थानमण्डपं कृष्णः प्रविवेश जगत्पति ॥ २ ॥ आसनं महदास्थाय वृष्णीनाहूय सर्वशः । बलभद्रं शिनेः पुत्रं हार्दिक्यं शुकसारणी ॥ ३ ॥ उग्रसेनं महाबुद्धिमुद्धवं नीतिमत्तरम् । यस्य बुद्धिं समाश्रित्य जीवंते यदवः सुखम् ॥ ४ ॥ नेता च यदुवृष्णीनां स तु धर्मपरः सदा । यस्य बिभ्यन्ति देवाश्च नीतेस्तस्य महात्मनः ॥ ५ ॥ यस्य बुद्धि-

निवास रूप है, इस प्रकार कह कर देवदेव जनार्दन मौन हो गए ॥४५॥ तिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७३ ॥ ॥ * ॥

वैशम्पायनजीने कहा, कि—जब रात बीत कर प्रातःकाल होगया, उस समय श्रीकृष्णने पयान करनेकी इच्छाकी; अग्नि में होम करके, कल्याणमय कर्मोंको करके और बड़ी २ दक्षिणा देकर तथा ब्राह्मणोंको गौएँ देकर और श्रेष्ठ २ ब्राह्मणोंको प्रणाम करके जगत्पति श्रीकृष्ण राजसभामें गए ॥ १ ॥ २ ॥ और बडे भारी आसन पर बैठनेके अनन्तर उन्होंने सब वृष्णिवंशियोंको बुलाया फिर कृष्ण भगवान् बलभद्रसे शिनिके पुत्र हार्दिक्यसे शुकसे सारणसे, उग्रसेनसे, महाबुद्धिमान् नीति जाननेवालोंमें श्रेष्ठ तथा जिसकी बुद्धिका आश्रय लेकर यादव सुखपूर्वक जीवित रहते हैं और जो धर्मपरायण पुरुष यादवोंके सर्वदा नेता रहते हैं और जिस महात्माकी नीतिसे देवता भी सदा डरते रहते हैं, और जिसकी बुद्धिके अनुसार विष्णु इसपृथ्वीका शासन करते हैं

वशाद्विष्णुः शशास पृथिवीं सदा। तं च वृष्णिवरं वीरमुद्धवं देव-
सुप्रभम् ॥ ६ ॥ अन्यानपि यदून् सर्वानुवाच भगवान् हरिः।
शृण्वन्तु मम वाक्यानि यादवाः सर्व एव हि। शृणु चापि वचो
मह्यं पितुरुद्धव मे सखे ॥ ७ ॥ बाल्यात् प्रभृति यो यत्नो मम
दुष्टनिवर्हणे। प्रत्यक्षं भवता दृष्टं पूतनानिधनं नृप ॥ ८ ॥ केशी
च निहतो बाल्ये मया बालेन यादवाः। गोवर्धनो धृतः शैलो
गावश्च परिपालिताः ॥ ९ ॥ अभिषिक्तोस्मि शक्रेण देवानामग्रतः स्थितः। कंसोपि निधनं नीतो मया चाणूरमुष्टिकौ ॥१०॥
उग्रसेनोभिषिक्तश्च कृता द्वारवती मया। अन्ये चापि नृपा
राजन् बलिनो निहता मया ॥ ११ ॥ योपि वीरो जरासन्धो
निगृहीतो बलान्मया। भीमेन बलिना राजन्नयेन मम यादवाः१२
शृगालो निहतः संख्ये गोमन्ताद्गच्छता मया। योपि वीरो दुरा-

देवताकी समान प्रभा वाले वृष्णियोंमें श्रेष्ठ वीर उद्धव और सब यादवोंसे भी कहा, कि-सब यादव मेरे वाक्यको सुने और हे मेरे पिताके मित्रसमान उद्धवजी ! आप भी मेरे वचनको सुनिए ॥ ६-७ ॥ मैं बालकपनसे दुष्टोंका निग्रह करनेके लिए यत्न कर रहा हूँ, इस बातको आप प्रत्यक्ष देख रहे हैं, मैंने पूतनाको मार डाला था ॥ ८ ॥ और हे यादवों ! मैंने बालकपनमें केशी दानवको भी मार डाला था, गोवर्धन पर्वतको उठा लिया था और गौओंकी रक्षाकी थी ॥ ९ ॥ इन्द्रने देवताओंके सामने मेरा अभिषेक किया था तथा मैंने कंस तथा चाणूर और मुष्टिकको भी मार डाला था ॥१०॥ तथा मैंने उग्रसेनका अभिषेक करके द्वारकापुरी बसाई है तथा हे राजन् ! दूसरे बलवान् राजाओंको भी मैंने मार डाला है ११ बलवान् जरासन्धको जो बली भीमने मार डाला था, वह भी मेरी नीतिके कारण ही मारा था ॥ १२ ॥ मैंने गोमन्तपर्वत पर चलते समय

रमासौ दानवो नरको हतः ॥ १३ ॥ निष्कण्टकमिमं लोकं कृत-वान्राजसत्तमाः। किंतु वीरो नृपो जज्ञे सखा भौमस्य यादवाः।१४ पौण्ड्रो वीर्यवतां नेता द्वेष्टा चासौ सदा मम। शिष्यो द्रोणस्य राजेन्द्रो बली ब्रह्मास्त्रवित् कृती ॥ १५ ॥ शास्त्रज्ञो नीतिमान् साक्षान्नेता सर्वस्य यत्नवान्। योद्धा युद्धप्रियो राजा जामदग्न्य इवापरः ॥ १६ ॥ एकान्तशत्रुरस्माकं छिद्रान्वेषी सदा मम। बाधिष्यते पुरीं योद्धा छिद्रं यदि लभेत सः ॥ १७ ॥ न ह्यल्प-साध्यो बलवान् पुण्ड्रस्येशो नृपोत्तमः। यथा भवन्तस्तिष्ठन्तु प्रगृहीतशरासनाः।१८यथा न बाधते राजा पुरीं यदुकुलाश्रयाम्। अहं तु यास्ये कैलासं कुतश्चित् कारणान्नृपाः ॥ १९ ॥ शंकरं द्रष्टुकामोऽस्मि भूतभावनभावनम्। यावदागमनं मह्यं तावद्यत्ता

शृगालको मार डाला था, जो वीर दुरात्मा नरकासुर था, उसको भी मैंने मार डाला था ॥ १३ ॥ हे राजाओं ! इस प्रकार मैंने इस लोकको निष्कण्टक कर दिया है, किन्तु हे यादवों ! भौमासुरका मित्र वीर पौंड्र अब मुझ से द्वेष करने लगा है और वह वीर्यवानोंका नेता है, वह राजेन्द्र द्रोणाचार्यजीका शिष्य है बलवान्, ब्रह्मास्त्रवेत्ता है और कुशल है ॥ १५ ॥ शास्त्रज्ञ है नीतिमान् सबका नेता है और यत्नवान् है, योधा है, युद्धप्रिय है और वह राजा दूसरे परशुरामकी समान है ॥ १६ ॥ वह हमारा परमशत्रु है और हमारे छिद्रोंको सर्वदा देखता रहता है; यदि उसको छिद्र मिल जायगा तो वह योधा हमारी पुरीको पीडित करने लगेगा।१७। नृपोत्तम बलवान् पुण्ड्राज थोडेसे प्रयाससे वशमें नहीं आसकता अतः आप अपने धनुषोंको ठीक कर तयार रहें १८ तब वह राजा यदुकुलको आश्रय देने वाली पुरीको पीड़ित न कर सकेगा, हे राजाओं ! मैं किसी कारणसे कैलासको जारहा हूँ१९

प्रविशेह ॥ २० ॥ मया विरहितां चेमां यदि जानाति पुंड्रकः । आगमिष्यति राजेन्द्रो योद्धुं पने च पुरीमिमाम् ॥ २१ ॥ इमां निर्यादवीं कर्तुं शक्नोतीति च मे मतिः । यत्ता भवत राजेन्द्राः खड्गैः पाशैः परश्वधैः ॥ २२ ॥ पाषाणैः कर्पणीभिश्च सन्नद्धा भवत स्वकैः । पिधाय च कपाटानि महाद्वाराणि यत्नतः ।२३। एक एव महाद्वारो गमनागमने सदा । मुद्रया सह गच्छन्तु राज्ञो ये गन्तुमीप्सवः ॥ २४ ॥ न चामुद्रः प्रवेष्टव्यो द्वारपालस्य पश्यतः । यावदागमनं मह्यं तावदेवं भविष्यति ॥ २५ ॥ मृगया नात्र कर्तव्या न च क्रीडा बहिः पुरात् । ज्ञातव्याश्च परे स्वे च

और भूतभावनभावन (भूतभावन-विग्रहादिके कारण अव्यक्तके भी भावन अर्थात् कारण, तस्मादव्यक्तमुत्पन्नं त्रिगुणं द्विजसत्तम इस प्रकार उनके अव्यक्तके भी सान्निध्यका स्मरण होनेसे) शंकरको देखना चाहता हूँ, अतः जब तक मैं न आऊँ तब तक आप सावधान रहें २० यदि पुण्ड्रकको पता चल जायगा, कि-मैं इस नगरीमें नहीं हूँ, तब वह राजेन्द्र चढ आवेगा और इस पुरी पर युद्ध मचावेगा ।२१। और मेरा विचार है, कि-वह इस पुरीको यादवरहित कर सकता है, इस लिये हे राजेन्द्रो ! तुम अपने २ खड्गपाश परश्वध पाषाण और कर्पणी नामक आयुधोंसे तयार रहना और किवाडोंको बन्दकर द्वारकाकी रक्षा करना और गमनागमनके लिए एक महाद्वारको ही रखना और जो पुरुष बाहर को जाना चाहें, मुद्रा (पासपोर्ट) लेकर जाँय २४ और जिसके पास मुद्रा न हो उसको द्वारपाल नगरमें न घुसने देय, जब तक मेरा आना न हो तब तक ऐसा ही बर्ताव करना २५ मेरे पीछे द्वारकामेंसे बाहर निकल कर शिकार न खेलना और गमनागमन के समय अपने तथा परायोंको सदा पहिचानते रहना ।२६। जब तक मैं न आऊँ तब तक इस कामको बराबर करना, इस प्रकार

गमनागमने सदा ॥ २६ ॥ एवमादिक्रिया कार्या यावदागमनं मम । इत्युक्त्वा यादवान् सर्वान् सात्यकिं पुनराह च ॥ २७ ॥
इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

श्रीभगवानुवाच । सात्यके शृणु मद्वाक्यं यत्तो भव युधां वर । त्वं तु खड्गी गदी भूत्वा चापपाणिस्तनुत्रवान् ॥१॥ तिष्ठ यत्नेन रक्षस्व पुरीं बहुनृपाश्रयाम् । न च निद्रा त्वया कार्या रात्रौ यदुनृप प्रभो ॥ २ ॥ न च व्याख्या त्वया कार्या शास्त्राणां शास्त्रतत्पर । न च वादस्त्वया कार्यो वादिभिः सह वृष्णिप ३ त्वं हि योद्धा बली ज्ञाता धनुर्वेदाख्यवेदवित् । तथा कुरु यथा वीर नोपहास्या भवेदियम् ॥ ४ ॥ सात्यकिरुवाच । करिष्यामि वचस्तुभ्यं यथाशक्ति जनार्दन । आज्ञा तव जगन्नाथ धार्या यत्नेन मे सदा ॥५॥ भृत्यवत् प्रचरिष्यामि कामपालस्य माधव।

यादवोंसे कह कर वह फिर सात्यकिसे कहने लगे । २७ । चौहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७४ ॥ छ छ

श्रीभगवान्ने कहा, कि-हे सात्यके !, तुम मेरे वाक्यको सुनो ! हे योधाओंमें श्रेष्ठ ! तुम सावधान होजाओ, तुमखड्ग गदा और चापको हाथमें लेकर कवचको धारण कर लो १ और यत्नपूर्वक खड़े होकर अनेक राजाओंकी आवासभूमि इस अपनी पुरीकी रक्षा करो २ तुम योधा बली ज्ञाता और धनुर्वेद नामक वेदको जानने वाले हो, हे यदुनृप ! हे प्रभो ! तुम रात्रिमें (अधिक) न सोना, हे वीर ! तुम ऐसा करना जिससे हमारी हँसी न हो, हे वृष्णिरक्षक ! तुम वादियोंके साथ वादविवाद न करना । ३ । ४ । सात्यकिने कहा, कि-हे जनार्दन मैं आपके वचनका यथाशक्ति पालन करूँगा हे जगन्नाथ ! आपकी आज्ञाका तो हमैं यत्नपूर्वक सदा पालन करना चाहिये ५ हे माधव ! मैं आपकी आज्ञाका

यावदागमनं तुभ्यं तावत् स्थास्यामि यत्नतः ॥ ६ ॥ प्रसादस्तव गोविन्द यदि स्यान्मयि माधव । किं मम मे च दुःसाध्यं शत्रूणां निग्रहे रणे ॥ ७ ॥ यदि शक्रं यमं वापि कुबेरमपि पाशिनम् । सर्वानेतान्विजेष्यामि किमु पौंड्रं नृपोत्तमम् ॥ ८ ॥ गच्छ कार्यं कुरुष्वेदं यत्तोहं सततं हरे । उद्धवं पुनराहेदं कृष्णः पद्मनिभेक्षणः ॥ ६ ॥ शृणूद्धव त्वं वाक्यं मे कुर्यास्त्वेतत् प्रयत्नवान् । रक्ष्या नयेन राजेन्द्र पुरी द्वारवती त्वया ॥ १० ॥ यत्तो भव सदा तात कुरु साहाय्यमत्र नः । लज्जा मम समुत्पन्ना वदतस्तव साम्प्रतम् ॥११॥ त्वं हि नेता समस्तस्य विद्यापारस्य सर्वतः । को नु शक्ष्यति मेधावी वक्तुं विद्यावतः पुरः ॥ १२ ॥ यत् कार्यं तद्भवान् वेत्ति ह्यकार्यं वापि सर्वतः । अतोहं विरमे तात

पालन कर आपके सेवककी समान बर्ताव करूँगा, और जब तक आप आवेंगे, तब तक मैं यत्नपूर्वक काम करूँगा ६ हे माधव ! हे गोविन्द ! यदि मेरे ऊपर आपकी कृपा होगी, तो शत्रुओंका निग्रह करना मेरे लिए क्या असाध्य होगा ॥७॥ आपके प्रसाद से तो मैं इन्द्र यम कुबेर और वरुण इन सबको जीत सकता हूँ, नृपोत्तम पौण्ड्रकी तो बात ही क्या है ॥८॥ आप जाइये और कार्यको सिद्ध करिये हे हरे ! मैं सर्वदा सावधान रहूँगा, कमल की समान नेत्र वाले श्रीकृष्ण उद्धवसे फिर कहने लगे ॥ ६ ॥ हे उद्धव ! तुम मेरी बातको सुनो और उसको प्रयत्नके साथ करो, हे राजेन्द्र ! तुम इस द्वारका पुरीकी नीति पूर्वक रक्षा करना ॥१०॥ हे तात ! तुम सदा सावधान रहो और हमारी सहायता करो, मैं इस समय आपसे इस बातको कहतेहुए सकुचा रहा हूँ ॥ ११ ॥ तुम सब विद्यावानोंके नेता हो, विद्यावान्के सामने कौन बुद्धिमान् पुरुष बोल सकता है ॥१२॥ आप कार्य को और अकार्यको भी भली प्रकार जानते हैं, इस लिए हे वृष्णि-

वक्तुं संप्रति दुर्मिणप ॥१३॥ उद्धव उवाच । किमिदं तव गोविंद वर्तते मां प्रति प्रभो । अहो प्रसन्नता नाहं किन्तु प्रीतिरियं तव ॥ १४ ॥ जानाम्यहं जगन्नाथ प्रसादस्यैष विस्तरः । यस्य प्रसन्नो भवसि तस्य किं नास्ति केशव ॥ १५ ॥ त्वं हि सर्वस्य जगतः कर्ता हर्ता प्रधानतः । प्रभवः सर्वकार्याणां वक्ता श्रोता प्रमाणवित् ॥ १६ ॥ ध्याता ध्यानमयो ध्येयं इति ब्रह्मविदो विदुः । जेता देवरिपूणां च गोप्ता नाकसदां भवान् ॥ १७ ॥ त्वं नाथ वयमेवेति जीवामो निहतद्विषः । इयं नीतिरहं मन्ये नेता नीतेर्यतो भवान् ॥ १८ ॥ को नु नाम नयो वेद त्वां विना साम्प्रतं वद । नीतिस्त्वं सर्वकार्याणामिति मे निश्चिता मतिः १९ दुर्गाढो नयमार्गोयमित्याहुस्तद्विदो जनाः । चतुर्धा प्रोच्यते नीतिः

रक्षक तात ! अब मैं चुप होता हूँ ॥ १३ ॥ उद्धवने कहा, कि-हे प्रभो गोविन्द ! इस समय आप मुझसे कैसी बातें कर रहे हैं? आपकी मुझपर यह प्रसन्नता है और मुझ पर प्रेम होनेके कारण यह कह रहे हैं ॥ १४ ॥ हे जगन्नाथ ! मैं आपके प्रसाद की महिमाको जानता हूँ, हे केशव ! आप जिसके ऊपर प्रसन्न होते हैं, उसको क्या नहीं मिल सकता ॥ १५ ॥ आप ही प्रधान-रूपसे सब जगत्के कर्ता हर्ता हैं तथा उत्पत्तिस्थान और सब कार्योंके वक्ता तथा श्रोता और प्रमाणोंके जानने वाले हैं ॥१६॥ और ध्याता ध्यानमय और ध्येय हैं, ऐसा ब्रह्मवेत्ता कहते हैं आप देवताओंके शत्रुओंको जीतने वाले हैं और स्वर्गमें रहने वालोंके रक्षक हैं ॥ १७ ॥ आप नेता हैं, इस लिये हम शत्रुओं के मारे जानेसे जीवित हैं, इस नीतिको मैं मानता हूँ, क्योंकि-आप नीतिके नेता हैं ॥ १८ ॥ बताइये ऐसी कौनसी नीति है, जिसको आप न जानते हों, आप सब कार्योंकी नीति हैं, यह मेरा निश्चित सिद्धान्त है १९ नीतिको जानने वाले पुरुष कहते

समादाने जनार्दन ॥ २० ॥ दंडो भेदो मनुष्याणां निग्रहावग्रहे सदा । दण्डर्थेषु दण्डमिच्छन्ति सामान्यं तु नये हरे ॥ २१ ॥ बलवत्स्वेव दानं तु नयाणामप्यगोचरे । प्रयोक्तव्यो महाभेद इति नीतिमतां मतम् ॥ २२ ॥ तेषु तेष्वथ सर्वेषु प्रमाणं त्वां विदुर्बुधाः । किमत्र बहुनोक्तेन सर्वं त्वयि समन्वितम् ॥ २३ ॥ वैशम्पायन उवाच । इत्युक्त्वा विरराभैव उद्धवो नीतिमत्तरः । ततः स भगवान् विष्णुरेवमेव नृपोत्तमः ॥ २४ ॥ कामपालं महाबाहुमुवाच यदुसंसदि । उग्रसेनं नृपं राजंस्तथा हार्दिक्यमेव च ॥ २५ ॥ कामपालं पुनर्विष्णुरिदं प्रोवाच तत्त्ववित् । न प्रमादस्त्वया कार्यः सर्वदा यत्नवान् भव ॥ २६ ॥ स्थिते त्वयि

हैं, कि-नीतिमार्गका पार पाना बड़ा कठिन है हे जनार्दन ! साम दान दण्ड भेद इस प्रकार चार प्रकारकी नीति कहलाती है, मनुष्योंका दूसरोंसे अपना रोष होने पर वा अपनेसे दूसरों का रोष होने पर (इन चारोंका प्रयोग किया जाता है, दुर्बल पुरुषोंको दण्ड दिया जाता है और उनसे समानताका बर्ताव किया जाय तो वह भी साम ही कहाता है ॥ २० ॥ २१ ॥ साम दण्ड और भेद इन तीनोंसे काम न चलने पर बलवान् पुरुषोंको दान दिया जाता है और नीति जानने वालोंका मत तो यह है, कि-बड़ी भारी भेदनीतिका ही (सर्वत्र) प्रयोग करना चाहिये ॥ २२ ॥ परन्तु इन सब बातोंमें बुद्धिमान् पुरुष आपको ही प्रमाण मानते हैं, मैं अधिक बात क्या कहूँ, सब बातें आपमें (पूर्णरीतिसे) रहती हैं ॥ २३ ॥ वैशम्पायनजीने कहा, कि-इस प्रकार कह कर नीति जानने वालोंमें श्रेष्ठ उद्धव मौन होगए, तदनन्तर नृपोत्तम भगवान् विष्णुने यादवोंकी सभामें इसीप्रकार महाभुज बलदेवजीसे राजा उग्रसेनसे और राजा हार्दिक्यसे कहा ॥ २४ ॥ २५ ॥ तत्त्ववेत्ता विष्णु फिर बलदेवजीसे कहने

महाबाहो का पीडा जगतो भवेत् । गदी भव सदा स्वार्य न क्रीडा सर्वदा भवेत् ॥ २७ ॥ रक्ष त्वं सर्वदा यत्नात् पुरीं द्वारवतीं प्रभो । नोपहास्या यथा स्यामस्तथा कुरु गदी भव ॥२८॥ उत्साहः सर्वदा कार्यो निरुत्साहो न यत्नतः । बाढमित्यब्रवीद्रामः कृष्णं वृष्णिकुलोद्भवम् ॥२९॥ वृष्णयः सर्व एवैते स्वं स्वं सद्म समाययुः । गन्तुमैच्छज्जगन्नाथः कैलासं पर्वतोत्तमम् ॥३०॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां

पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

वैशम्पायन उवाच । ततः स चिंतयामास गरुडं पक्षिपुंगवम् । आगच्छ त्वरितं तार्क्ष्य इति विष्णुर्जगत्पतिः ॥ १ ॥ ततः स भगवांस्तार्क्ष्यो वेदराशिरिति स्मृतः । बलवान् विक्रमी योगी शास्त्रनेता कुरूद्वह २ यज्ञमूर्तिः पुराणात्मा साममूर्धा च पावनः ।

लगे; तुम प्रमाद न करना सर्वदा यत्न करते रहना ॥ २६ ॥ हे महाबाहो ! तुम्हारे होने पर जगत्को क्या पीड़ा होसकती है २७ हे प्रभो ! तुम द्वारका पुरीकी यत्नपूर्वक सदा रक्षा करते रहना, हे आर्य ! तुम गदा उठाये तयार रहना सर्वदा क्रीड़ा करनेका समय नहीं होता है ॥ २८ ॥ सर्वदा उत्साह रखना अनुत्साह न रखना; तब बलरामने वृष्णिकुलमें उत्पन्न हुए श्रीकृष्णसे बहुत अच्छा कहा ॥ २९ ॥ तदनन्तर सब वृष्णिवंशी अपने २ घरोंको चलेगए, उस समय श्रीकृष्णने भी पर्वतश्रेष्ठ कैलास पर्वत पर जानेका विचार किया ३० पिछत्तरवाँ अध्याय समाप्त ७५

वैशम्पायन कहते हैं, कि-तदनन्तर जगत्के स्वामी विष्णु पक्षियोंमें श्रेष्ठ गरुडजीका ध्यान करने लगे, कि-तार्क्ष्य(गरुड) शीघ्र ही आवें ॥ १ ॥ हे कुरूद्वह ! तदनन्तर वेदराशि कहलाने वाले बलवान् विक्रमी योगी शास्त्रोंके नेता यज्ञमूर्त्ति पुराणात्मा, सामवेदरूपी मस्तकवाले पावन ऋग्वेदरूपी पक्ष वाले, पिंगल,

ऋग्वेदपक्षवान् पक्षी पिंगलो जटिलाकृतिः ॥ ३ ॥ ताम्रतुण्डः
सोमहरः शक्रजेता महाशिराः । पन्नगारिः पद्मनेत्रः साक्षाद्विष्णु-
रिवापरः ॥४॥ वाहनं देवदेवस्य दानवीगर्भकृन्तनः । राक्षसा-
सुरसंघानां जेता पक्षबलेन यः ॥५॥ प्रादुरासीन्महावीर्यः केशव-
स्याग्रतस्तदा । जानुभ्यामपतद्भूमौ नमो विष्णो जगत्पते ॥६॥
नमस्ते देवदेवेश हरे स्वामिन्निति ब्रुवन् । पस्पर्श पाणिना कृष्णः
स्वागतं तार्क्ष्यपुङ्गवम् ॥७॥ इत्युवाच तदा तार्क्ष्यं यास्ये कैलास-
पर्वतम् । शूलिनं द्रष्टुमिच्छामि शंकरं शाश्वतं शिवम् ॥ ८ ॥
बाढमित्यब्रवीत्तार्क्ष्य आरुह्येनं जनार्दनः । तिष्ठध्वमिति होवाच
यादवान् पार्श्ववर्तिनः ॥ ९ ॥ ततो ययौ जगन्नाथो दिशं प्रागु-
त्तरां हरिः । रवेण महता तार्क्ष्यस्त्रैलोक्यं समकम्पयत् ॥१०॥

जटिल आकृति वाले ताँबेकी समान शिर वाले, अमृतका हरण करने वाले, बडे भारी मस्तक वाले सर्पोंके शत्रु कमलकी समान नेत्र वाले, साक्षात् दूसरे विष्णुकी समान, देवदेव श्रीकृष्णके वाहन, और जिनके दर्शनमात्रसे ही दानवियोंके गर्भ गिर जाते हैं और जो अपने पंखके बलसे राक्षस और असुरोंके टोलोंको जीत लेते हैं वह भगवान् महावीर्य गरुड़ केशवके सामने प्रकट होगए और पृथ्वीमें घुटने टेककर, जगत्के स्वामी विष्णुको प्रणाम है ॥२-६॥ हे देवदेवेश ! हे हरे ! हे स्वामिन् ! आपके प्रणाम है, ऐसा कहने लगे, तब कृष्णने पक्षिराजको हाथसे छूकर उनका स्वागत किया ॥ ७ ॥ फिर वह गरुडसे कहने लगे, कि—मैं कैलासपर्वतको जाऊँगा, तहाँ जा कर मैं शूलधारी कल्याणकारी शाश्वत शिवको देखना चाहता हूँ ॥ ८ ॥ तब गरुडने बहुत अच्छा कहा फिर जनार्दन भी गरुड पर चढ़कर समीपमें विराजमान यादवोंसे कहने लगे, कि-आप यहाँ ही विराजमान रहिये तदनन्तर जगत्के नाथ हरि पूर्वोत्तर दिशाकी ओर चल दिये,

सागरं क्षोभयामास पद्भ्यां पक्षी व्रजंस्तदा । पक्षेण पर्वतान्
सर्वान् वहन् देवं जनार्दनम् ॥ ११ ॥ ततो देवाः सगन्धर्वा
आकाशेऽधिष्ठितास्तदा । तुष्टुवुः पुंडरीकाक्षं वाग्भिरिष्टाभिरी-
श्वरम् ॥ १२ ॥ जय देव जगन्नाथ जय विष्णो जगत्पते । जया-
जेय नमो देव भूतभावनभावन ॥ १३ ॥ नमः परमसिंहाय
दैत्यदानवनाशन । जयाजेय हरे देव योगिध्येय परागते । नारा-
यण नमो देव कृष्ण कृष्ण हरे हरे । आदिकर्तः पुराणात्मन्
ब्रह्मयोने सनातन ॥ १५ ॥ नमस्ते सकलेशाय निर्गुणाय
गुणात्मने । शक्तिप्रियाय शक्ताय नमो दानवनाशन ॥ १६ ॥
अचिन्त्यमूर्तये तुभ्यं नमस्ते सकलेश्वर । इत्यादिभिस्तदा देवा
वाग्भिरीशानमव्ययम् ॥ १७ ॥ तुष्टुवुर्देवगन्धर्वा ऋषयः सिद्ध-

उस समय गरुडजी अपने बड़े भारी शब्दसे त्रिलोकीको कँपाने
लगे ॥९॥१०॥ और जनार्दन देवको ले जाते हुए वह गरुडजी
अपने पैरोंसे समुद्रको क्षुब्ध करने लगे और पंखोंकी वायुसे
पर्वतोंको क्षुब्ध करने लगे ॥११॥ तदनन्तर देवता और गंधर्व
आकाशमें आकर प्रिय वाणियोंमें पुण्डरीकाक्ष ईश्वरकी स्तुति
करने लगे ॥१२॥ कि–हे जगत्के स्वामिन् ! देव ! आपकी जय
हो, हे जगत्के नाथ विष्णो ! आपकी जय हो; हे भूत-
भावन भावन ! अजेय देव, आपकी जय हो ॥ १३ ॥
हे आदिकर्ता ! हे पुराणात्मन् ! हे ब्रह्मयोने ! हे सनातन कृष्ण !
कृष्ण ! हरे ! हरे ! हे देव ! आपको प्रणाम है ॥१५॥ सम्पूर्ण
विश्वके स्वामी निर्गुण और गुणात्मा शक्तिप्रिय और शक्तके
लिए नमस्कार है हे दानवनाशन ! आपको प्रणाम है १६ हे सक-
लेश्वर ! आप अचिन्त्यमूर्तिके लिए प्रणाम है, देवता गन्धर्व
और ऋषि तथा सिद्ध और चारण ऐसे वाक्योंसे पुण्डरीकाक्ष
अव्यय ईशानकी स्तुति करने लगे, जगत्के स्वामी विष्णु उन

चारणाः । शृण्वन्नेव जगन्नाथः स्तुतिवाक्यानि तानि च ।१८।
ययौ सार्धं सुरगणैर्मुनिभिर्वेदपारगैः । यत्र पूर्वं स्वयं विष्णु-
स्तपस्तेपे सुदारुणम् ॥ १६ ॥ लोकवृद्धिकरः श्रीमांल्लोकानां
हितकाम्यया । वर्षायुतं तपस्तप्तं विष्णुना प्रभविष्णुना ॥२०॥
यत्र विष्णुर्जगन्नाथस्तपस्तप्त्वा सुदारुणम् । द्विधाकरोत्स्वमा
त्मानं नरनारायणाख्यया ॥ २१ ॥ गङ्गा यत्र सरिच्छ्रेष्ठा मध्ये
धावति पावनी । यत्र शक्रः स्वयं हत्वा वृत्रं वेदार्थतत्वगम् २२
ब्रह्महत्याविनाशार्थं तपो वर्षायुतं चरत् । यत्रासिद्धाश्च सिद्धाः
स्युर्ध्यात्वा देवं जनार्दनम् ॥२३॥ यत्र हत्वा रणे रामो रावणं
लोकरावणम् । एतच्छासनमिच्छंश्च तपो घोरमतप्यत ॥ २४ ॥
देवाश्च मुनयश्चैव सिद्धिं यान्ति शुचिव्रताः । यत्र नित्यं जग-

स्तुति वाक्योंको सुनते हुए ॥ १७ ॥ १८ ॥ वेदपारगामी मुनियों के साथ तहाँ पहुँचे, जहाँपर पहिले विष्णुने दारुण तप किया था १६ तहाँ पर संसारकी वृद्धि चाहने वाले श्रीमान् प्रभावान् विष्णुने एक अयुत वर्ष तक तप किया था २० तहाँ पर विष्णुने भयंकर तप करके अपनी आत्माको नर नारायण इन दो रूपों में बाँट दिया था २१ तहाँ पर पवित्र करने वाली नदियोंमें श्रेष्ठ गंगाजी बीचमें बहती रहती हैं, इन्द्रने वेदके अर्थोंके तत्त्वसे वृत्रासुरको मारकर ब्रह्महत्या दूर करनेके लिए एक अयुत वर्षों तक तप किया था, तहाँ पर देवदेव जनार्दनका ध्यान करनेसे असिद्ध पुरुष भी सिद्ध होजाते हैं । २२ । २३ । और तहाँ पर रामने संसारको रुलाने वाले रावणको मारकर (जब इन्द्रने वृत्रासुर-सरीखे निर्गुण ब्राह्मणको मार करभी शास्त्राज्ञाके अनुसार ब्रह्महत्याको दूर करनेके लिए तप किया था तो मुझे शास्त्रानुसार तप करना चाहिये इस) शास्त्राज्ञाके अनुसार भयंकर तप किया था२४ तहाँ पर पवित्र व्रतका पालन करने वाले देवता और मुनि सिद्ध

न्नाथः साक्षाद्वसति केशवः ॥ २५ ॥ यत्र यज्ञाः प्रवर्तन्ते नित्यं मुनिगणैः सह । यस्याः स्मरणमात्रेण नरः स्वर्गं गमिष्यति २६ स्वर्गसोपानमिच्छन्ति यां पुण्यां मुनिसत्तमाः । शत्रवो मित्रतां यान्ति यत्र नित्यं नृपोत्तम ॥ २७ ॥ यामाहुः पुण्यशीलानां स्थानमुत्तमधर्मिणाम् । यत्र विष्णुं समाराध्य देवाः स्वर्गं समाययुः ॥ २८ ॥ सिद्धक्षेत्रमिदं प्राहुर्ऋषयो वीतमत्सराः । विशालां बदरीं विष्णुस्तां द्रष्टुं सकलेश्वरः ॥२९॥ सायाह्ने चामरगणैर्मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः । प्रविवेश महापुण्यमृषिजुष्टं तपोवनम् ॥ ३० ॥ अग्निहोत्राकुले काले पक्षिव्याहारसंकुले । नीडस्थेषु विहंगेषु दुह्यमानासु गोषु च ॥ ३१ ॥ ऋषीष्वप्यथ तिष्ठत्सु मुनिवीरेषु सर्वतः । समाधिस्थेषु सिद्धेषु

को पाते हैं, तहाँ पर जगन्नाथ केशव सर्वदा रहते हैं ।२५। तहाँ पर मुनियोंके साथ रह कर यज्ञ किया करते हैं, उस स्थानके स्मरण करनेसे ही मनुष्योंको स्वर्ग मिल जाता है उस स्वर्गकी सीढ़ी रूप स्थानकी मुनिसत्तम इच्छा करते रहते हैं और हे नृपोत्तम ! तहाँ पर शत्रु भी मित्र बन जाते हैं ।२७। और वह पुण्यशील उत्तम धर्मात्माओंका स्थान कहलाता है और तहाँ पर देवताओंने विष्णुकी आराधना करके स्वर्ग पाया था ॥ २८ ॥ और राग तथा मत्सररहित ऋषि उसको सिद्धक्षेत्र कहते हैं सबोंके ईश्वर विष्णु उस विशाल बदारिकाश्रमको देखनेके लिए सायंकालके समय घुसे उस समय देवता और तत्त्वदर्शी मुनि उनके साथ थे और उन्होंने भी ऋषियोंसे सेवित पवित्र बदरिकाश्रममें प्रवेश किया ॥ २६ ॥ ३० ॥ उस समय तहाँ पर अग्निहोत्रोंकी धूम मच रही थी, और पक्षी शब्द कर रहे थे और अपने २ घोंसलोंमें बैठ रहे थे और गौए दुही जा रहीं थीं ।।३१।। और सिद्ध ऋषि तथा मुनि समाधि लगा कर

न्तियस्तु जनार्दनम् ॥ ३२ ॥ अधिश्रितेषु हविषु ज्वाल्यमानेषु चाग्निषु । हूयमानेषु तत्रैव पावकेषु समन्ततः ॥ ३३ ॥ अतिथौ पूज्यमाने च सन्ध्याविष्टे जगन्मये । स तस्यामथ वेलायां देवैः सह जनार्दनः ॥ ३४ ॥ विवेश बदरीं विष्णुर्मुनिजुष्टां तपोमयीम् । आश्रमस्याथ मध्यं तु प्रविश्य हरिरीश्वरः ॥ ३५ ॥ गरुडादवरुह्याथ दीपिकादीपिते तदा । प्रदेशे पुण्डरीकाक्षः स्थितस्तावत् सहामरैः ॥ ३६ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

वैशम्पायन उवाच । ततो मुनिगणा दृष्ट्वा देवदेवमुपस्थितम् । समाप्य चाग्निहोत्राणि सम्पूज्यातिथिसत्तमान् ॥ १ ॥ मुनयो दीर्घतपसः समाधौ कृतनिश्चयाः । जटिनो मुण्डिनः केचिच्छिरीषमनिसन्तताः ॥ २ ॥ निर्मज्जा नीरसाः केचिद्वेताला इव

जनार्दनका ध्यान कर रहे थे ॥३२॥ हवियें चढाई जा रहीं थी, अग्नियें प्रज्वलितकी जा रही थीं और चारों ओर अग्नियों का आह्वान किया जा रहा था ॥ ३३ ॥ अतिथियोंकी पूजा की जा रही थी, और जगत् संध्यासे व्याप्त होगया था, उस समय जनार्दनने देवताओंके साथमें मुनियोंसे सेवित तपोमय बदरिकाश्रममें प्रवेश किया हरि आश्रमके बीचमें प्रवेश करके गरुड़परसे उतर दीपकोंसे दीपित प्रदेशमें जाकर खड़े होगए ॥३४॥ ३६॥ छिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७६ ॥ छ छ छ

वैशम्पायनजीने कहा; कि-मुनियोंने देवदेवको आया हुआ देख कर अग्निहोत्रको समाप्त कर और अतिथियोंकी पूजा कर (उनके पास चलनेका विचार किया) ॥ १ ॥ बड़ी २ तपस्या करने वाले समाधिका दृढ़ विचार रखने वाले, जटाधारी, मुण्डी, संटेकी समान धमनिगात्र दीखते हुए ॥ २ ॥ कुछ मज्जा और

केचन । अश्मकुट्टाशनपराः पर्णभक्षास्तथापरे ॥ ३ ॥ वेदविद्याव्रतस्नाता निराहारा महातपाः । स्मरन्तः सर्वदा विष्णुं तद्भक्तास्तत्परायणाः ॥ ४ ॥ आसन्नयुक्तयः केचित् केचिद्ध्यानैकतत्पराः । ध्यानेन मनसा विष्णुं दृष्टवन्तस्तपोधनाः ॥ ५ ॥ संवत्सराशिनः केचित् केचिज्जलविचारिणः । शक्रस्य भयदातारः श्रुतिस्मृतिपरायणाः ॥ ६ ॥ वसिष्ठो वामदेवश्च रैभ्यो धूम्रस्तथैव च । जाबालिः कश्यपः कण्वो भरद्वाजोऽथ गौतमः ७ अत्रिरश्वशिरा भद्रः शंखः शंखनिधिः कुणिः । पाराशर्यः पवित्राक्षो याज्ञवल्क्यो महामनाः ॥ ८ ॥ कक्षीवानंगिराश्चैव मुनिर्दीप्ततपास्तथा । असितो देवलस्तात वाल्मीकिश्च महातपाः ९ एते चान्ये च मुनयो द्रष्टुमीश्वरमव्ययम् । आदायार्घं यथायोग्यमुटजात् स्वात् समाययुः ॥ १० ॥ ते च गत्वा हरिं कृष्णं विष्णु

रसरहित वेतालोंकी समान ऋषि दूसरे (फलोंको) पत्थरोंसे कूट कर खाने वाले और पत्तोंका भक्षण करने वाले ऋषि थे ३ कुछ ऋषि वेदविद्यारूपी व्रतके स्नातक थे और कुछ महातपस्वी निराहार रहते थे और सर्वदा विष्णुका स्मरण करते रहते थे और उसमें परायण रहते थे ॥४॥ कुछ युक्तियोंको जानने वाले थे और कुछ केवल ध्यानमें ही तत्पर रहते थे और कुछ तपोधन ध्यान और मनसे विष्णुको देखा करते थे ॥ ५ ॥ कुछ साल भरमें भोजन करते थे और कुछ जलमें विचरते थे और कुछ श्रुति स्मृतिमें परायण रहने वाले मुनि इन्द्रको भी भयभीत करने वाले थे ॥६॥ वसिष्ठ वामदेव रैभ्य धूम्र जाबालि कश्यप कण्व भरद्वाज गौतम अत्रि अश्वशिरा भद्र शङ्ख शंखनिधि कुणि व्यास पवित्राक्ष याज्ञवल्क्य महामनस्वी कक्षीवान् अङ्गिरा, दीप्ततपा मुनि, असित देवल, महातपस्वी वाल्मीकि, ये तथा और भी बहुतसे मुनि अव्यय ईश्वरको देखनेके लिए अपनी २ कुटियों

मीशं जनार्दनम् । भक्तिनम्रास्तदा देवं प्रणेमुर्भक्तवत्सलम् ११
नमोस्तु कृष्ण कृष्णेति देवदेवेति केशवम् । प्रणतात्मन् जगन्नाथ
नताः स्म शिरसा हरे ॥ १२ ॥ कृष्ण विष्णो हृषीकेश केशवेति
च सर्वदा । प्रणामप्रवणा विप्राः प्राहुरित्थं जगत्पतिम् ॥ १३ ॥
इदमर्घमिदं पाद्यमिदं विष्टरमेव च । कृतार्थाः सर्वदा देव प्रसन्नो
नो जगत्पतिः ॥ १४ ॥ किं कर्म किं पुनः कृत्यं कश्चिद्रोषः
प्रभो हरे । इति प्राञ्जलयः सर्वे प्राहुर्देवस्य पश्यतः ॥ १५ ॥
कृष्णोपि तद्यथायोगमुपयुज्य सहामरैः । कृतं सर्वं मुनिवरा वर्धतां
तप उत्तमम् ॥१६॥ इति ब्रुवन् पुराणात्मा प्रीतस्तेन गरुत्मता ।
आसनं लम्भयामास रात्रौ देवो जनार्दनः ॥ १७ ॥ कुशलं पृष्ट-
वान् भूयो मुनीनां भावितात्मनाम् । अग्निहोत्रेषु तपसि तथा

मेंसे अर्घ लेकर चल दिये ॥ ७-१० ॥ वे भक्तिनम्र पुरुष तहाँ पहुँच कर हरि कृष्ण विष्णु ईश जनार्दन भक्तवत्सल देवको प्रणाम करने लगे ॥ ११ ॥ हे कृष्ण ! कृष्ण ! आपके लिए प्रणाम हो, हे देवदेव ! केशवके लिए प्रणाम हो, हे प्रणतात्मन् जगन्नाथ ! आपको हम शिर झुका कर प्रणाम करते हैं ॥१२॥ जगत्पति विष्णुसे प्रणाम करनेको उन्मुख ब्राह्मण सर्वदा कृष्ण विष्णो हृषीकेश केशव ! कहते हैं ॥ १३ ॥ यह अर्घ है, यह पाद्य है, यह विष्टर है, जब जगत्पति हम पर प्रसन्न हैं, तो हम सर्वदा कृतार्थ हैं ॥ १४ ॥ उस समय देवके देखते हुए सब हाथ जोड़ कर कहनेलगे, कि-हमारा क्या कर्म है, हमें क्या कृत्य करना चाहिये, क्या प्रभु हरि हम पर रुष्ट होरहे हैं ॥१५॥ तब कृष्णने और देवताओंने उन सबका यथायोग्य सत्कार किया, और कहने लगे, कि-आपने सब कुछ कर लिया, आपका उत्तम तप बढ़ता रहे ॥ १६ ॥ इस प्रकार कह कर प्रसन्न मन वाले श्रीकृष्णदेव गरुड़जीके साथ रात्रिमें आसन पर विराजमान हो

भृत्येषु सर्वतः ॥१८॥ एवमादि जगन्नाथः पृष्टवानीश्वरस्तदा। सर्वत्र कुशलं तत्र ब्रूयुः कृष्णस्य सर्वतः ॥ १९ ॥ आतिथ्यं चक्रिरे तेनु नीवारैः फलमूलकैः। देवानामथ सर्वेषां विष्णोः कृष्णस्य यत्नतः। आतिथ्यमुपयुञ्जानस्ततः प्रीतोऽभवद्धरिः२०

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां सप्तसप्ततितमोऽध्ययः ॥ ७७ ॥

वैशम्पायन उवाच। ततः स भगवान् विष्णुर्दुर्विज्ञेयगतिः प्रभुः। यत्र पूर्वं तपस्तप्तमात्मना यादवेश्वरः ॥ १ ॥ गंगायाश्चोत्तरे तीरे देशं द्रष्टुमुपागतः। स्वयमेव हरिः साक्षात् प्रविवेश तपोवनम् ॥ २ ॥ प्रविश्य सुचिरं देशं ददर्श च मनोरमम्। निषसाद ततस्तस्मिन्नाश्रमे पुण्यवर्धनः ॥ ३ ॥ समाधौ योजयामास मनः पद्मनिभेक्षणः। किमप्येष जगन्नाथो ध्यात्वा देवेश्वरः

गए ॥ १७ ॥ फिर उन्होंने पवित्र अन्तःकरण वाले मुनियोंके अग्निहोत्र तप और भृत्योंकी कुशल बूझी ॥१८॥ जब जगन्नाथ ईश्वरने इस प्रकार सबकी कुशल बूझी तब उन्होंने श्रीकृष्णसे सबको कुशली बतलाया ॥ १९ ॥ तदनन्तर उन्होंने विष्णुका और सब देवताओंका नीवार नामक अन्नसे और वनके फल मूलोंसे अतिथिसत्कार किया ॥ २० ॥ सतत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७७ ॥ * * * * *

वैशम्पायनजीने कहा, कि–तदनन्तर जिनकी गति जानना कठिन है उन भगवान् प्रभुने पहिले जिस देशमें तप किया था, गङ्गाके उत्तरी किनारे पर उस देशको देखनेके लिए यादवेश्वर हरि तपोवनमें घुसे ॥१ ॥२ ॥ तहाँ प्रवेश करके उस मनोरम देशको उन्होंने बहुत समय तक देखा, फिर वह पुण्य वर्धन उस आश्रममें बैठ गए ॥ ३ ॥ तदनन्तर कमलकी समान नेत्र वाले श्रीकृष्णने अपने मनको समाधिमें लगाया और वह देवेश्वर

स्थितः ॥ ४ ॥ स्थिते देवगुरौ तत्र समाधौ दीपवद्धरौ । तत्र शब्दो महाघोरः प्रादुरासीत् समन्ततः । खाद खादत मोदेत यात यात मृगानिमान् । प्रेषयेह पुनः सर्वान् प्रसादाच्छार्ङ्गधन्वनः ६ एष विष्णुरयं कृष्णो हरिरीश इतोच्युतः । नमोस्तु विष्णो देवेश स्वामिन् माधव केशव ॥ ७ ॥ इत्यादिशब्दः सुमहानाविरासीत्तदा निशि । ततश्च सुमहानादः सिंहानां मृगविद्विषाम् ॥ ८ ॥ धावतां च शुनां राजन् मृगाननुविनर्दताम् । मृगाणां भीतियुक्तानामृक्षाणां द्वीपिनां तथा ॥ ९ ॥ गजानां नदतां राजन् बृंहितं च ततस्ततः । महावातसमुद्धूतक्षुभितस्येव वारिधेः १० नादस्त्रैलोक्यवित्रासः प्रादुरासीत्तदा निशि । श्रुत्वा शब्दं हरिर्देवस्तादृशं तत्र धिष्ठितः ॥ ११ ॥ समाधिक्षोभमासाद्य विश्वस्य च जगत्पतिः । ततः संचिंतयामास कोयमेष महास्वनः ॥१२॥

किसी वस्तुका ध्यान करने लगे ॥ ४ ॥ जब वह देवगुरु हरि दीपककी समान समाधिमें निश्चल स्थित होगए उस समय तहाँपर महाघोर शब्द चारों ओरसे सुनाई आने लगा ५ कि–खाओ ! खाओ ! आनन्द करो ! इन मृगोंके पीछे दौड़ो ! दौड़ो !! शार्ङ्गधनुषधारीके प्रसादसे सर्वोंको यहाँ भेजो ॥ ६ ॥ यह विष्णु कृष्ण हरि ईश अच्युत यहां हैं, हे विष्णो देवेश स्वामिन् माधव केशव ! आपको प्रणाम है ७ उस समय रात्रिमें इस प्रकार बड़ा भारी शब्द प्रकट होने लगा और उस समय रात्रिमें मृगोंसे द्वेष करने वाले सिंहोंका मृगोंके पीछे दौड़कर गुर्राते हुए कुत्तोंका, डरे हुए मृगोंका रीछोंका चीतोंका और गर्जना करते हुए हाथियोंकी चिघाड़का शब्द आँधीसे क्षुब्ध हुए समुद्रके नादकी समान त्रिलोकीको त्रस्त करने वाला शब्द होने लगा, उस शब्दको सुनने पर भी हरि तहां ही डटे रहे ८–११ समाधिमें जब क्षोभ पड़ा तब सारे जगत्के स्वामी विचारने लगे, कि यह बड़ा भारी

कस्यायमीदृशः शब्दः स्तुतियुक्तो मम त्विति । अहोऽस्मिन् मृगया शब्दः शुनां संचरतां वने ॥ १३ ॥ मृगाणामथ सर्वेषां नादश्च सुमहानयम् । व्यामिश्रस्तुतियुक्ताभिर्वाग्भिर्मम समन्ततः ॥१४॥ इति संचिंत्य मनसा दिशो विप्रेक्ष्य सर्वतः । तत्र आस्ते हरिस्तत्र ज्ञातुं तस्य समुद्भवम् ॥ १५ ॥ ततो मृगाः समाधावन् यत्र तिष्ठति केशवः । तांश्चैवानुचरो राजन् सगणः समपद्यत १६ अथ वै दीपिका राजञ्छतशोथ सहस्रशः । ततस्तमोपि ध्यनशद्दिवेव समपद्यत ॥ १७ ॥ ततोऽनुभूतसंघाश्च समदृश्यन्त तत्र ह । पिशाचाश्च महाघोरा नन्दतो बहुविस्वनम् ॥ १८ ॥ भक्षयन्तोऽथ पिशितं पिबन्तो रुधिरं बहु । प्रादुरासन्महाघोराः पिशाचा विकृताननाः ॥ १९ ॥ हन्यमाना हता राजन् पतन्तः पतिता मृगाः । इतश्चेतश्च धावन्तो बाणैर्विद्धा मृगा द्विपाः ॥ २० ॥

शब्द कैसे होरहा है १२ मेरी स्तुतिसे युक्त यह किसका शब्द है, अहो ! वनमें फिरते हुए कुत्तोंका और मृगोंका शब्द सुनाई आरहा है १३ अहो ! यह सब मृगोंका शब्द भी मेरी स्तुतिसे भर रहा है ॥१४॥ इस प्रकार मनमें विचार करके उन्होंने चारों ओर दिशाओंमें देखा और यह शब्द कहांसे आरहा है, इस बात को जाननेके लिए वह बैठ गए १५ तदनन्तर जहां केशव खडे थे, तहांको ही मृग भाग आए और उनके पीछे वे (शिकारी) भी भाग आए १६ हे राजन् ! तहां पर सैंकडों और सहस्रों मशालें दीखने लगीं और उस समय अन्धकार नष्ट होकर दिन सा होगया १७ तब तहां पर अनेक प्रकारके विकृत स्वर करते हुए भूतोंके और पिशाचोंके टोले दीखने लगे १८ तदनन्तर तहां पर मांस खाते हुए और रुधिर पीतेहुए बेडौल मुख वाले बहुत से पिशाच प्रकट होगए १९ हे राजन् ! तब तहां पर मृगबाणों से मर गए मारे जाने लगे, गिर गए और गिरने लगे और बाणों

ततो मृगसहस्राणि समुदीर्णानि भारत। यत्रासौ तिष्ठते देवस्तत्र यातानि भारत ॥ २१ ॥ अन्तरीकृत्य देवेशं स्थितानीत्यनुशुश्रुम। पिशाच्यो विकृताकाराः कराला रोमहर्षणाः ॥ २२ ॥ पुत्रवत्यः समापेतुर्यत्र तिष्ठति केशवः। श्वगणस्तत्र राजेन्द्र चरन्स्येवं ततस्ततः ॥ २३ ॥ ततः स भगवान् विष्णुः सर्वमालोक्य वेष्टितः। विस्मयं परमं गत्वा पश्यन्नास्ते स्म केशवः ॥ २४ ॥ कस्यैष विस्तृतो नादः कस्य वायं जनोऽपतत्। को नु मां स्तौति भक्त्या वै भविष्ये प्रीतिमानहम् ॥२५॥ कस्य मुक्तिः समायाता प्रीते मयि सुदुर्लभा। इति संचिन्त्य भगवानास्ते प्राकृतवद्धरिः ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां अष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

से बिंधेहुए मृग इधर उधर भागने लगे २० हे भारत ! तब तहां सहस्रों मृग प्रकट होगए और जहां पर श्रीकृष्ण विराजमान थे तहां पहुँच गए २१ फिर वह देवेशको घेर कर खडे होगए और हमने सुना है, कि–जहाँ केशव खडे थे तहां पर विकृत आकार वाली रोंगटे खड़े करने वाली पुत्रवती पिशाचियें भी पहुँचगईं और हे राजेन्द्र ! कुत्तोंका समूह भी तहां पर इधर उधर विचरण करने लगा ॥ २२ ॥ २३ ॥ भगवान विष्णु अपनेको सबसे घिरा हुआ देखकर विस्मित होने लगे और देखने लगे, कि-२४ यह किनका बड़ा भारी दुन्द सुनाई आरहा है और ये किसके आदमी आपहे और कौन भक्तिपूर्वक मेरी स्तुति कर रहा है, उससे मैं प्रसन्न होऊँगा २५ मेरे प्रसन्न होने पर किसको आज दुर्लभ मुक्ति मिलेगी, इस प्रकार भगवान् हरि साधारण मनुष्य की समान विचार करने लगे ॥ २६ ॥ अठहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७८ ॥ छ छ छ छ ॥

वैशम्पायन उवाच । तेषामनु महाघोरौ पिशाचौ विकृताननौ । प्रांशुपिंगलरोमाणौ दीर्घजिह्वौ महाहनू ॥ १ ॥ लंबकेशौ विरूपाक्षौ हाहाहाहेति वादिनौ । खादन्तौ मांसपिटकं पिबन्तौ रुधिरं बहु॥२आंत्रवेष्टितसर्वांगौ दीर्घौ कृशकृतोदरौ । लम्बमानमहामान्तशूलप्रोतशिरोधरौ ॥ ३ ॥ कर्षन्तौ शवयूथानि बाहुभ्यां तत्र तत्र ह । हसन्तौ विविधं हासं स्वजातिसदृशं नृप ॥ ४ ॥ वदन्तौ बहुरूपाणि वचांसि प्राकृतानि च । कम्पयन्तौ महावृक्षानुरुपादपघट्टनैः ॥ ५ ॥ सृक्किणी लेलिहन्तौ च दन्तान् कटकटायिनौ । अस्थिस्नायुसमाकीर्णौ धमनीरज्जुसन्ततौ ॥६॥ वदंतौ कृष्ण कृष्णेति माधवेति च सन्ततम् । कदा नु द्रक्ष्यसे विष्णुः स इदानीं क तिष्ठति ॥ ७ ॥ स्वामी नः कुत्र वसतिः कुतो द्रष्टु

वैशम्पायनजी कहते हैं, कि-उनके पीछे दो महाघोर पिशाच प्रकट हुए, उनका मुख विकृत था, उनके रोम ऊँचे और पीले थे जिह्वा लम्बी थी, ठोडी बडी थी ॥ १ ॥ केश लम्बे थे, आँखें वेडौल थीं और वे हाहा शब्द कर रहे थे और वह दूसरोंके शरीरको संदूकडीकी समान (उठा कर) खा रहे थे और बहुतसे रक्तका पान कर रहे थे २ उनके सब शरीरोंमें अँतडियें लिपट रहीं थी वे लम्बे थे और दुबले पेट वाले थे और मनुष्योंकी मुण्डमालाओंसे पुरे हुए शरीरोंको धारण कर रहे थे । ३ । और अपनी भुजाओंसे शवोंके ढेरको जहां तहां खेंच रहे थे और हे राजन् ! अपनी जातिके अनुकूल विविध प्रकारका हास्य कर रहे थे ४ और अनेक प्रकारके प्राकृत वचनोंका उच्चारण कर रहे थे और अपनी जँघाओंसे पेडोंको मारकर बड़े २ वृक्षोंको कँपा रहे थे ५ जबाड़ोंको चाट रहे थे, दांतोंको कटकटा रहे थे, अस्थि और स्नायुसे घिरे हुए थे और धमनीरूप रज्जुसे बँध रहे थे और कृष्ण कृष्ण माधव ! कह रहे थे और यह भी कह रहे थे कि-हमें

यतामहे । अत्र वा कुत्र देवेशः कुतो नु स्थास्यते हरिः ॥ ८ ॥ कुतः पद्मपलाशाक्षः साक्षादिन्द्रानुजो हरिः । यमाहुः पुण्डरीकाक्षं ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ॥ ९ ॥ तमजं पुरुषं विष्णुं द्रष्टुमभ्युद्यता वयम् । अन्तकाले जगन्नाथं प्रविवेश जगत्त्रयम् ॥१०॥ तमजं विश्वकर्तारं कुतो द्रक्ष्याम साम्प्रतम् । यस्य विस्तार एवैष लोकः प्राणिनिवासिनः ॥ ११ ॥ तं द्रष्टुं देवमीशानं यतामः सांप्रतं हरिम् । दशा घोरतमा लोके विद्विष्टा सर्वजन्तुभिः ॥१२॥ पैशाचीयं समुत्पन्ना कथं नौ प्राविशद्बलात् । नरमांसास्थिकलुषा सर्वभीतिप्रदायिनी ॥ १३ ॥ अहो नौ दुष्कृतं कर्म प्राक्तने कर्मसंचये । अत्रैव महती प्रीतिर्वर्तते सर्वदा तथा ॥१४॥ यावन्नौ दुष्कृतं कर्म तावत्स्थास्यति तादृशी । दशा सा सर्वविद्विष्टा

विष्णुका दर्शन कब होगा, वह इस समय कहां होंगे ॥ ७ ॥ हमारे स्वामी कहाँ रहते हैं, हम उनको कहाँ देखनेका प्रयत्न करें, यहाँ पर देवेश कहाँ होंगे, भगवान् कहाँ बैठे हैं ॥ ८ ॥ कमलके पत्तेकी समान नेत्रवाले इन्द्रके छोटे भाई हरि कि जिनको ब्रह्मवेत्ता पुरुष ब्रह्म कहते हैं यहाँ कहाँसे आवेंगे ॥ ९ ॥ उन अज विष्णु पुरुषको देखनेके लिए हम उद्यत होगए हैं, जिन जगन्नाथ में अन्तके समय त्रिलोकी लीन होजाती है ॥ १० ॥ उन अज विश्वकर्ताको हम अब कहाँ देखेंगे; लोक जिन प्राणियोंमें निवास करने वाले विष्णुका विस्तारमात्र है ॥ ११ ॥ उन देव ईशान हरिको देखनेके लिए हम इस समय प्रयत्न कर रहे हैं, सब प्राणी जिस दशासे लोकमें घृणा करते हैं, ॥ १२ ॥ वह यह पैशाची दशा हम दोनोंमें किसप्रकार घुस गई, यह तो मनुष्योंके मांस और हड्डियोंसे कलुषित मानी जाती है और सब प्रकारका भय देती है ॥१३॥ अहो ! हमने पहिले कर्मसञ्चय करते समय बडे भारी पापका संचय किया होगा इसीलिए इन कामोंमें हमारी बड़ा

प्राणिपीडनकारिणी ॥ १५ ॥ सर्वथा दुष्कृतं कर्म बहुभिर्जन्मसंचयैः । तथा हि तत्फलं घोरमद्यापि न निवर्तते ॥१६॥ यत्ताः स्म प्राणिनो हन्तुं श्वगणैः सह सांमतम् । तथा हि प्राणिनो लोके बाल्यभावे समास्थिताः ॥ १७ ॥ अज्ञानाद्धतचित्ताश्च कृत्याकृत्यं न जानते । तथा यौवनिनो भ्रान्ता विषयैर्बहुलीकृताः ॥ १८ ॥ यतन्ते श्रेयसे नैव ततो विषयसंस्थिताः । विषयाविष्टचित्ता हि मनुष्या न विजानते ॥ १९ ॥ तथा च वृद्धभावे तु व्याधिभिर्बहुभिर्वृताः । ज्वरादिभिर्महाघोरैर्नानादुःखविधायिभिः ॥ २० ॥ यतन्ते न हि वै श्रेयो विनष्टेन्द्रियगोचराः । ततो मृता गर्भवासे वसन्ति सततं नराः ॥ २१ ॥ विण्मूत्रकलिले घोरे दुःखैर्बहुभिराचिताः । च्यवन्ते तु ततो घोरात्

आसक्ति रहती है ॥ १४ ॥ सब प्राणी जिससे द्वेष रखते हैं, ऐसी यह प्राणियोंको पीड़ित करने वाली अवस्था जब तक हमारी पास रहेगा तब तक रहेगी ॥ १५ ॥ हमने अनेक जन्मोंमें बहुत से पापोंका सञ्चय किया है, इसीकारण उसका घोर फल अब भी दूर नहीं होता ॥ १६ ॥ हम इस समय भी कुत्तोंको साथमें लेकर प्राणियोंको मारनेके लिए उद्यत होगए हैं, इसी प्रकार प्राणी भी पहिले बालकपनमें चित्तमें अज्ञान होनेके कारण कृत्य और अकृत्यको नहीं जानते और युवावस्थामें विषयोंसे भ्रान्त हो अनेक मार्गोंका अवलम्बन लेलेते हैं ॥ १८ ॥ और विषयोंमें मग्न रहनेके कारण कल्याण पानेका यत्न नहीं करते, इस प्रकार विषयोंके द्वारा चित्तके घिर जाने पर वे (कार्याकार्यको) नहीं जानते ॥ १९ ॥ इसी प्रकार वे वृद्धावस्थामें अनेक प्रकारका दुःख देने वाली महाभयंकर ज्वर आदि व्याधियोंसे आक्रान्त होनेके कारण कल्याणमय कर्म करनेकी चेष्टा नहीं करते और उनकी इन्द्रियें शिथिल होजाती हैं, फिर वे मर कर बारम्बार

संसारमण्डले । परस्परं विहिंसन्तः कुर्वन्तः कर्मसंचयम् । महत्येवं सदा घोरे संसारे दुःखसंकुले ॥२३॥ पापानि बहुरूपाणि कुर्वतेऽज्ञानतस्तदा । संसारस्यैष महिमा विस्तृतः सर्वजन्तुषु ॥ २४॥ अच्छेद्यः शस्त्रसम्पातैरुपायैर्बहुभिः सदा । एतस्मान्न निवर्तन्ते मर्त्याः प्राकृतबुद्धयः ॥ २५ ॥ इमं हत्वा मनुष्येन्द्रमितस्माद्धराम्यहम् । चोरयित्वा धनमिदं हरिष्याम्यददाम्यहम् ॥ २६ ॥ निर्भत्स्यैनमिमं शान्तं हरिष्यामि धनं बली । इत्यादि व्याकुला मूर्खा यतन्ते प्राणिपीडनम्॥२७॥अस्यैव दुःखमूलस्य संसारस्य सदा हरिः । भेषजं सर्वथा देवः शंखचक्रगदाधरः ॥ २८ ॥ आदिदेवः पुराणात्मा आत्मा ब्रह्मविदां सदा । ते वयं सर्व-

गर्भमें बसते हैं ॥ २० ॥ २१ ॥ तहाँ विष्ठा और मूत्रकी कीचड़ में उनको बहुतसे दुःख भोगने पड़ते हैं फिर वे भयंकर गर्भवाससे छूट कर संसारमण्डलमें आजाते हैं ॥२२॥ और परस्पर की हिंसा करके पापोंका सञ्चय करने लगते हैं, इस प्रकार प्राणी अज्ञानवश दुःखसंकुल महाघोर अनेक प्रकारके पाप करते हैं, संसारकी यह महिमा सब जन्तुओंमें व्याप्त रहती है ।२३।२४। यह संसार शस्त्रोंसे अच्छेद्य है और अनेक उपायोंसे भी इसका भेदन नहीं होसकता, साधारण बुद्धि वाले मनुष्य इस संसारसे नहीं हटते हैं ॥ २५ ॥ मैं इस मनुष्योंके राजाको मार कर इससे (सम्पत्ति) छीन लूँगा, मैं धनको चुरा कर छीन लूँगा अब मैं इसके धनको लिए लेता हूँ ॥२६॥ मैं बलवान् पुरुष इस शान्त पुरुषको धमका कर इसके धनको छीन लूँगा, इत्यादि बातोंसे व्याकुल होकर मूर्ख पुरुष प्राणियोंको कष्ट देनेका प्रयत्न किया करते हैं ॥ २७ ॥ इस दुःखमूलक संसारकी शंख चक्र और गदाके धारण करने वाले एक हरि ही गति हैं ॥२८॥ यह आदि देव हैं, पुराणात्मा हैं, और ब्रह्मवेत्ताओंकी आत्मा हैं, ऐसे हरि

यत्नेन द्रक्ष्यामः सर्वथा हरिम् । इत्थं पिशाचौ गायन्तौ प्रादुरास्तां हरेः पुरः ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायामेकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

वैशम्पायन उवाच । ततः स भगवान् विष्णुः पिशाचौ मांसभक्षकौ । ददर्शाथ महाघोरौ दीपिकाधारिणौ हरिः ॥ १ ॥ विलोकयांचक्रतुस्तौ पिशाचौ देवकीसुतम् । स्थितं सुखासने विष्णुं दृष्ट्वा लोकेश्वरेश्वरम् ॥२॥ तौ च गत्वा समुद्देशं पिशाचौ केशवस्य ह । ततस्तावूचतुर्विष्णुमन्तरीकृत्य केशवम् ॥३॥ को भवान् कस्य वा मर्त्यः कुतश्चागम्यते त्वया । किमर्थमिह संप्राप्तो वने घोरे मृगाकुले ॥ ४ ॥ निर्मनुष्ये द्वीपिवृते पिशाचगणसेविते । श्वापदैः सेव्यमाने च विपिने व्याघ्रसंकुले ॥ ५ ॥

का हम सब प्रकारसे प्रयत्न करके दर्शन करेंगे, इस प्रकार बातचीत करते हुए वे दोनों पिशाच श्रीकृष्णके सामने प्रकट हो गए ॥ २६ ॥ उनासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७६ ॥

वैशम्पायनजीने कहा, कि—तदनन्तर भगवान् विष्णुने हाथ में मशाल धारण करने वाले मांसभक्षक महाघोर दो पिशाचों को देखा ॥ १ ॥ और उन पिशाचोंने भी देवकीके पुत्रको देखा, लोकके स्वामी विष्णुको सुखपूर्वक आसन पर बैठे हुए देख कर ॥ २ ॥ वे दोनों पिशाच केशवके समीप पहुँचे और केशव को विष्णु न समझ कर उनसे कहने लगे, कि—॥ ३ ॥ आप कौन हैं ? किसके आदमी हैं और कहाँसे आए हैं ? और इस मृगोंसे भरे हुए वनमें किस लिए आए हैं ४ इस वनमें मनुष्यों का पता नहीं है चीतोंसे यह वन भर रहा है और पिशाच इस वनका सेवन करते हैं, और श्वापद भी इस वनका सेवन करते हैं और इस वनमें व्याघ्र भर रहे हैं ॥ ५ ॥ और तुम सुकुमार

सुकुमारोऽनवद्यांगः साक्षाद्विष्णुरिवापरः। पद्मपत्रेक्षणः श्यामः प्रभाभिः श्रीपतिः स्वयम् ॥ ६ ॥ अस्मत्प्रीतिकरः साक्षात् प्राप्तो विष्णुरिवापरः। देवो वा यदि यक्षो वा गन्धर्वः किन्नरोऽपि वाऽप्यिन्द्रो वा धनदो वापि यमोथ वरुणोपि वा। एकाकी विपिने घोरे ध्यानार्पितमना इव ॥ ८ ॥ ब्रूहि मर्त्य यथा तत्त्वं ज्ञातुमिच्छामि मानद। एवं पृष्टः पिशाचाभ्यामाह विष्णुरुरुक्रमः ६ क्षत्रियोऽस्मीति मामाहुर्मनुष्याः प्रकृतिस्थिताः। यदुवंशे समुत्पन्नः क्षात्रं वृत्तमनुष्ठितः ॥१०॥ लोकानामथ पातास्मि शास्ता दुष्टस्य सर्वदा। कैलासं गन्तुकामोऽस्मि द्रष्टुं देवमुमापतिम् ११ इत्येवं मम वृत्तान्तः कथ्यतां कौ युवामिति। युवामिह समायातौ किमर्थं ब्राह्मणाश्रमम् ॥ १२ ॥ एषा हि महती पुण्या नाना-

तथा निर्दोष अङ्गों वाले होनेके कारण दूसरे विष्णुकी समान प्रतीत होते हो, तुम्हारे नेत्र कमलपत्रकी समान हैं, तुम श्याम होनेके कारण श्रीपतिकी समान प्रतीत होते हो ॥ ६ ॥ तुम हमें प्रसन्न करते हो और हमारे सामने साक्षात् दूसरे विष्णुकी समान आए हुए प्रतीत होते हो, आप देवता गन्धर्व यक्ष इन्द्र वरुण वा कुबेर हो ? परन्तु यह बताइये आप इस वनमें इकले बैठे ध्यान (क्यों) कर रहे हैं, हे मानद मर्त्य ! मैं इस बातके तत्त्वको जानना चाहता हूँ, पिशाचोंके इस प्रकार बूझने पर भयंकर पराक्रमी विष्णु कहने लगे कि-॥ ७ ॥ ८ ॥ मैं क्षत्रिय हूँ प्रजाके मनुष्य मेरे विषयमें कहते हैं, कि-यह यदुवंशमें उत्पन्न हुए हैं और क्षत्रियोंके योग्य आचरणका पालन करते हैं ॥१०॥ मैं लोकोंकी रक्षा करने वाला हूँ और दुष्टोंको सर्वदा दण्ड देता रहता हूँ और मैं उमापति शिवको देखनेके लिए कैलासको जाना चाहता हूँ ॥ ११ ॥ यह तो मेरा वृत्तान्त, अब तुम कहो, कि तुम कौन हो ? और तुम इस ब्राह्मणोंके आश्रममें किस लिए आए

विप्रनिषेविता । बदरीयं समाख्याता न क्षुद्रैराश्रिता क्वचित् १३
तपस्विभिस्तपोयुक्तैर्जुष्टा सिद्धनिषेविता । श्वगणा नात्र दृश्यन्ते
पिशाचा मांसभोजनाः ॥ १४ ॥ न हन्तव्या मृगाश्चात्र मृगया
नात्र वर्तते । न तु क्षुद्रैः प्रवेष्टव्या न कृतघ्नैर्न नास्तिकैः ॥१५॥
अहमस्य तु देशस्य रक्षिता नात्र संशयः । व्यतिक्रमो यदि भवे-
त्तस्य शास्तास्मि यत्नतः॥१६॥कौ भवन्तौ क्व नु युवां कस्येयं
महती चमूः । नातः परं प्रवेष्टव्यमृषयस्तत्र संस्थिताः ॥ १७ ॥
विघ्नस्तत्र प्रवर्तेत तपःसु च तपस्विनाम् । इहैव स्थीयतां ताव-
दुक्तव्यञ्च ततः सुखम् ॥ १८ ॥ अन्यथाहं निषेद्धा स्यां बला-
द्वाक्यैस्तथैव च । वैशम्पायन उवाच । एवं पृष्टौ पिशाचौ तु
वक्तुमेवोपचक्रतुः ॥ १९ ॥ तयोरेको महाघोरः पिशाचो दीर्घ-

है ॥ १२ ॥ इस बड़े भारी बदरिकाश्रमका अनेक ब्राह्मण सेवन करते हैं और इस बदरिकाश्रम नामसे प्रसिद्ध आश्रमका क्षुद्र पुरुष सेवन नहीं करते हैं ॥ १३ ॥ तपोयुक्त तपस्वी इससे प्रेम करते हैं और सिद्ध पुरुष इसका सेवन करते हैं और यहाँ पर कुत्ते तथा मांसभक्षी पिशाच दिखाई नहीं देते हैं॥१४॥ यहाँ पर मृगों को नहीं मारना चाहिये, क्योंकि-यहाँ पर शिकार नहीं होसकता तथा क्षुद्र मनुष्योंको नास्तिकोंको और कृतघ्न पुरुषोंको यहाँ पर प्रवेश नहीं करना चाहिये ॥ १५ ॥ मैं इस देशकी रक्षा करने वाला हूँ यदि यहाँ पर कोई गड़बड़ी होगी तो मैं उसको ठीक करूँगा ।१६। तुम दोनों कौन हो ? कहाँ रहते हो ? और यह बड़ी भारी सेना किसकी है, यहाँसे आगे तुम न बढ़ना, क्योंकि-आगे ऋषि रहते हैं १७ तुम्हारे वहाँ जाने पर सुखपूर्वक तप करने वाले तपस्वियोंके तपमें विघ्न पड़ेगा, इस लिए तुम यहाँ ही खड़े रहो और सुखपूर्वक अपनी बात कहो ॥१८॥ अन्यथा मैं तुमको बल और वाणीसे रोकूँगा, वैशम्पायनजी कहते हैं, कि-

बाहुकः । उवाच वचनं तत्र यथा हृदि समर्पितम् ॥२०॥ पिशाच उवाच । श्रूयतामभिधास्यामि समाहितमना भव । नमस्कृत्य जगन्नाथं हरिं कृष्णं जगत्पतिम् ॥ २१ ॥ आदिदेवमजं विष्णुं वरेण्यमनघं शुचिम् । वक्ष्यामि सकलं यद्वृत्तथा शृणु यदीच्छसि ॥ २२ ॥ घंटाकर्णोऽस्मि नाम्नाहं पिशाचो घोरदर्शनः । मांसादो विकृतो घोरः साक्षान्मृत्युरिवापरः ॥२३॥ धनदस्यानुमन्ताहं साक्षाद्रुद्रसखस्य च । ममानमनुजः साक्षादन्तकस्यान्तको ह्यहम् ॥ २४ ॥ मृगयेयं सुमहती विष्णोः पूजार्थमित्युत । ममेयं वर्तते सेना श्वगणोपि ममैव तु ॥ २५ ॥ आगतोहं महाशैलात् कैलासाद्भूतसेवितात् । अहं पिशाचवेषेण संविष्टः पापकर्मकृत् ॥ २६ ॥ सततं दूषयन् विष्णुं घण्टमाबध्य कर्णयोः ।

इस प्रकार बूझने पर उन दोनों पिशाचोंने अपना वृत्तान्त वर्णन किया था, उन दोनों पिशाचोंमें एक पिशाच बड़ा भयंकर था, उसकी भुजाएँ लम्बी थीं उसके मनमें जो बात थी उसको उसने कहा था, पिशाचने कहा, कि-सुनो, मैं कहता हूँ, तुम अपने मन को सावधान कर लो, मैं जगत् के नाथ हरि कृष्ण जगत्पति आदि-देव अज वरेण्य निष्पाप विष्णुको प्रणाम करके उस सब बात को कहता हूँ, जिसको तुम सुनना चाहते हो १९-२२ मैं घण्टाकर्ण नाम वाला पिशाच हूँ, मेरा दिखाव भयंकर है, मैं मांस खाने वाला हूँ, घोर हूँ और दूसरे मृत्युकी समान हूँ ।२३। और मैं रुद्रके मित्र कुबेरका अनुगामी हूँ, और यह मेरा खास छोटा भाई है, मैं तो कालका भी काल हूँ २४ विष्णुकी पूजा करनेके लिये मैं इस शिकारको खेल रहा हूँ, यह सेना मेरी ही है और यह कुत्ते भी मेरे ही हैं ॥ २५ ॥ और मैं भूतोंसे सेवित कैलास नामक महापर्वतसे आरहा हूँ, मैं पापमय कर्म करने वाला पिशाचयोनि में था, २६ और विष्णुकी सदा निन्दा किया करता था, और

मम न प्रविशेन्नाम विष्णोरिति विचिन्तयन् ॥ २७ ॥ अहं
कैलासनिलयमासाद्य वृषध्वजम् । आराध्यं तं महादेवमस्तुवं
सततं शिवम् ॥ २८ ॥ ततः प्रसन्नो मामाह वृणीष्वेति वरं
हरः । ततो मुक्तिर्मया तत्र प्रार्थिता देवसन्निधौ ॥ २९ ॥ मुक्तिं
प्रार्थयमानं मां पुनराह त्रिलोचनः । मुक्तिप्रदाता सर्वेषां विष्णु-
रेव न संशयः ॥ ३० ॥ तस्माद्गत्वा च बदरीं तत्राराध्य जना-
र्दनम् । मुक्तिं प्राप्नुहि गोविंदान्नरनारायणाश्रमे ॥ ३१ ॥ इत्युक्तो
देवदेवेन शूलिना ज्ञातवानहम् । तमेव परमं मत्वा गोविंदं गरुड-
ध्वजम् ॥ ३२ ॥ तस्मात् प्रार्थयमानः सन् मुक्तिदेशमहं गतः ।
अन्यच्च शृणु मे कार्यं यदि कौतूहलं तव ३३ पुरी द्वारवती नाम
पश्चिमस्योदधेस्तटे। यदुवृष्णिसमाकीर्णा सागरोर्मिसमाकुलाम् ३४

विष्णुका नाम कहीं मेरे कानोंमें न पड़ जाय इसलिए कानोंमें घण्टा बाँधे रहता था २७ तदनन्तर मैंने कैलासपर्वत पर पहुँच कर वृषध्वज महादेव शंकरकी उपासना कर उनकी स्तुतिकी २८ तदनन्तर भगवान् हर प्रसन्न होकर मुझसे कहने लगे, कि—वर माँग, तब मैंने उन देवसे मुक्तिका वरदान माँगा २९ मुक्तिकी प्रार्थना करने पर त्रिलोचनने मुझसे कहा, कि—सबोंको मुक्ति देने वाले तो विष्णु ही हैं ३० इस लिए तू बदरिकाश्रममें जा जनार्दनकी आराधना कर और नर नारायणके आश्रममें गोविंद से मुक्ति प्राप्त कर ३१ शूलधारी शिवजीसे यह सब बातें मैंने जानीं और गरुडध्वज गोविन्दको परमदेव मान कर ३२ उनसे प्रार्थना करता हुआ मैं इस मुक्तिदेशमें आगया हूँ यदि तुमको कौतूहल हो तो तुम मेरे दूसरे कार्यको भी सुनो ३३ पश्चिम समुद्रके तट पर द्वारका नाम वाली एक पुरी है, यादवों तथा वृष्णियोंसे भरी हुई तथा समुद्रकी लहरोंसे आकुल उस पुरीमें पुरुषोत्तम हरि रहते हैं, संसारका हित करनेके लिए द्वारकापुरी

अथागस्ते स हरिर्विष्णुस्तां पुरीं पुरुषोत्तमः । द्रष्टुं लोकहितार्थाय वसन्तं द्वारकापुरे ॥ ३५ ॥ निर्गताः साम्प्रतं मर्त्य वयमेते सहानुगैः । विष्णुः सर्वेश्वरः साक्षाद्द्रष्टव्योऽस्माभिरद्य वै ।३६। लोकानां प्रभवः पाता कर्ता हर्ता जगत्पतिः । आदिः स हि समस्तस्य प्रभवः कारणं हरिः ३७ कर्ता समस्तस्य हरिः पुरातनः प्रभुः प्रभूणामपि यः सदात्मकः । तमादिदेवं वरदं वरेण्यं द्रष्टुं हरिं संप्रति संगता स्मः ॥ ३८ ॥ यस्य प्रसादाज्जगदेवमासीत् सनागिगन्धर्वमहोरगौघम् । देवं जगद्योनिमजं जनार्दनं द्रष्टुं हरिं संप्रति संगता स्मः ॥ ३९ ॥ यस्योदयाद्विश्वमिदं प्रभूतं लयं च तस्मिन् समुपैति कल्पे । तस्यैव साक्षाद्वशवर्ति विश्वं द्रक्ष्याम देवं पुरुषोत्तमं हरिम् ॥४०॥ स्रष्टा च योसौ सकलस्य देवः पाता च हर्ता च हरिः स एव । द्रक्ष्याम नित्यं भुवनेश्वरं

में रहने वाले श्रीकृष्णको देखनेके लिए ३४ ॥ ३५ हे मर्त्य ! हम इन अनुचरोंको साथमें लेकर निकले हैं, हम आज सर्वेश्वर विष्णुके साक्षात् दर्शन अवश्य करेंगे ३६ हरि लोकोंके उत्पत्ति स्थान हैं रक्षक हैं कर्ता हर्ता हैं और जगत्पति हैं, वह सबके आदि हैं और उत्पत्तिकारण हैं ३७ हरि सबके कर्ता हैं पुरातन हैं प्रभुओंके भी प्रभु हैं, सदात्मक हैं उन आदिदेव वरेण्य हरिको देखनेके लिए हम उद्यत हुए हैं ॥ ३८ ॥ जिनकी कृपासे नागी गन्धर्व और महोरगों वाला यह जगत् इस रूपमें वर्तमान है, उन जगत्के कारण जन्मरहित जनार्दन हरिदेवको देखनेके लिए हम यत्न कर रहे हैं ॥३९॥ जिनके उदयसे यह विश्व उत्पन्न होता है और प्रलयके समय जिनमें लीन होजाता है और जिनके वश में ही यह जगत् रहता है, उन पुरुषोत्तम हरि देवको हम देखेंगे ४० जो देव सबके रचयिता पालक और संहारक हैं वही हरि हैं उन नित्य भुवनेश्वर हरि पुराण आदिदेव प्रभावशील अव्यय विष्णु

हरिं पुराणमाद्यं प्रभविष्णुमव्ययम् ॥ ४१ ॥ अजस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता भुवश्च कर्ता हरिरेक एव । तं योगिनो योगविशुद्धबुद्धिं लभेम तेनैव गतिः समाकुला ॥४२॥ निगीर्य विश्वं सकलं जगत्पतिः शेते शिशुत्वं समवाप्य साक्षात् । वटस्य पत्रे जगतां निवासः पादौ च विक्षिप्य करौ विधुन्वन् ॥ ४३ ॥ यस्योदरे देवमुनिः पुरातनो ददर्श लोकानखिलान् स मायया । प्रविश्य विश्वं सकलं यथावद्बहिर्यथाभूत्तथभूदिदं महत् ॥ ४४ ॥ निगीर्य विश्वं जगदादिकाले शेते महात्मा जलधेर्जलौघे । देव्या श्रिया चामरलोलहस्तया निषेव्यमाणः पुरुषोत्तमस्तदा ॥४५॥ नाभेश्च यस्याविरभूत् सपत्रं पद्मं महत्काञ्चनसप्रभं प्रभोः । जन्मास्पदं लोकगुरोर्यदासीद्विस्तारिपद्मं जगदादिसृष्टौ ॥ ४६ ॥ दधार यो

को हम देखेंगे ॥ ४१ ॥ ब्रह्माजीके कर्ता भुवनके रक्षक और पृथ्वीके निर्माता हरि एक ही हैं उन योगसे विशुद्ध बुद्धि वालेको योगी ही पासकते हैं, उनसे द्वेष करनेके कारण ही हमारी बुद्धि व्याकुल होरही है ॥ ४२ ॥ जगत्पति सम्पूर्ण विश्वको निगल कर बालक बनकर बड़के पत्ते पर शयन किया करते हैं तहाँ वह जगत्के निवासस्थान हरि हाथ और पैरोंको फैंका करते हैं ॥ ४३ ॥ जिनके उदरमें प्रवेश करके प्राचीन देवमुनि (मार्कण्डेय) ने सब लोकोंको देखा था और उस समय माया-वश उनको जैसा जगत् बाहर था, तैसा ही सारा जगत् दीखा था ॥ ४४ ॥ वह महात्मा जगत्के आदिकालमें सम्पूर्ण विश्वको निगल कर समुद्रकी जलराशिमें शयन करते हुए होते हैं और उस समय उन पुरुषोत्तम पर लक्ष्मी देवी हाथ चलाकर चमर हिलाती हैं ॥ ४५ ॥ उन प्रभुकी नाभिसे सुवर्णकी समान कान्ति वाला पत्तोंसे युक्त कमल निकला है, वह कमल लोकगुरु ब्रह्माजीका उत्पत्तिस्थान है, वह विस्तारी कमल जगत्की आदि-

भूतपतिर्महान् मही- दंष्ट्राग्रसंस्थापितरूढमूलाम् । नदन् महामेघ इवादिकाले कुर्वन् वराहो मुनिगीतमूर्तिः ॥ ४७ ॥ हरिः पुराणः पुरुषोत्तमः प्रभुः कर्ता समस्तस्य समस्तसाक्षी । यज्ञात्मको यज्ञपतिर्जगत्पतिर्द्रष्टुं तमीशं वयमुद्यता स्मः ॥ ४८ ॥ केचिद्बहुत्वेन वदन्ति देवमेकात्मना केचिदिमं पुराणम् । वेदान्तसंस्थापितसत्वयुक्तं द्रष्टुं तमीशं वयमुद्यता स्मः ॥ ४९ ॥ अनेकमेकं बहुधा वदन्ति श्रुतिस्मृतिन्यायनिविष्टचित्ताः । आहुर्यमात्मानमजं पुराविदो द्रष्टुं तमीशं वयमुद्यता स्मः ॥ ५० ॥ यं प्राहुरीड्यं वरदं वरेण्यमेकान्ततत्वं मुनयः पुरातनाः । यं सर्वगं देवमजं जनार्दनं द्रष्टुं हरिं सम्प्रति संयता स्मः ॥५१॥ यस्मिन्

म्भिक सृष्टिमें उत्पन्न होता है ॥ ४६ ॥ उन भूतपति महात्माने पृथ्वी । । अपनी डाढ़के अग्रभाग पर स्थापित करके धारण किया था और मुनियोंने जिनकी कीर्तिका गान किया था, ऐसे वह वराहमूर्ति आदिकालमें महामेघकी समान गरजे थे ॥४७॥ हरि पुराणपुरुष पुरुषोत्तम प्रभु सबके कर्ता सबके साक्षी यज्ञात्मक यज्ञपति और जगत्के स्वामी हैं, उनको देखनेके लिए हम उद्यत हुए हैं४८कोई (अनेक याज्ञिक)इन देवको (इन्द्र आदि) अनेक रूप वाला कहते हैं और कोई एकोपासक इन प्राचीन पुरुषको एक कहते हैं और हम भी वेदान्तसे सिद्ध सत्त्वयुक्त एक पुरुष को (सत्यगभेदरूपसे) देखनेके लिए उद्यत हुए हैं ॥ ४९ ॥ श्रुति और स्मृतियोंमें अपने चित्तको लगाने वाले व्यक्ति अनेक को एक (आत्मा) कहते हैं प्राचीन ज्ञानी पुरुष जिसको अज और आत्मा कहते हैं उन ईशको देखनेके लिए हम उद्यत हुए हैं ५० प्राचीन मुनि जिसको पूज्य वरदान देने वाले श्रेष्ठ और परमतत्त्व कहते हैं और जिसको सर्वत्र व्याप्त देव उत्पत्तिरहित और जनार्दन कहते हैं, उन देवको देखनेके लिए हम उद्यत हुए

विश्वमिदं प्रोतमादिकाले जगत्पतौ । तं द्रष्टुमभिसंहृष्टाः कं नु वदाम साम्प्रतम् ॥ ५२ ॥ गच्छामो वयमन्यत्र गच्छ त्वं काममन्यतः । नियमोऽप्यस्ति नो मर्त्य यथेष्टं गच्छ साम्प्रतम् ॥५३॥ रात्रिमध्यमनुप्राप्तं नात्र कार्या विचारणा । इत्युक्त्वा घोररूपोऽसौ पिशाचो विकृताननः ॥ ५४ ॥ तस्मिन्नेव समे देशे पीत्वा च रुधिरं बहु । भक्षयित्वा यथाकामं मांसराशिं विचक्षणः ५५ अपः संस्पृश्य तत्रैव पार्श्वे संस्थाप्य साधनम् । आन्त्रपाशं महाघोरं संस्थाप्य विपुलं महत् ॥ ५६ ॥ आसनं कुशसंयुक्तं कृत्वा चाभ्युक्ष्य वारिणा । उत्सार्य श्वगणान् सर्वान् यत्नेन महता तदा ॥ ५७ ॥ सुखासनं समास्थाय समाधौ यतते श्वपः । एकचित्तस्तदा भूत्वा नमस्कृत्य च केशवम् । इमं मन्त्रं पठन् घोरः

हैं ५१ आरम्भके समयमें जिन जगत्पतिमें यह विश्व ओतप्रोत होता है, उन देवको देखनेके लिए हम तयार हुए हैं और किस बातको अब हम कहें५२अब हम और स्थानपर जारहे हैं और तुम भी अपनी इच्छानुसार अन्यत्र चलेजाओ;हमारा एक नियम भी है, इसलिए हे मर्त्य! तुम इच्छानुसार चले जाओ५३ अब रात्रि आधी होनेको आगई है, अतः तुम कुछ और विचार न करो, इस प्रकार कह कर भयंकर रूपवाला और बेडौल मुख वाला पिशाच उस सम देशमें बहुतसे रक्तका पान करने लगा, फिर उस विचक्षण (चतुर) व्यक्तिने इच्छानुसार मांस खाया।५४।५५। फिर वह जलका स्पर्श करके (पवित्र हुआ) और अपना साधन महाघोर आन्त्रपाश पासमें रख दिया ५६ और कुशा वाले आसन पर जल छिड़का;फिर बड़ा भारी प्रयत्न करके कुत्तोंको भी भगा दिया ॥५७॥ तदनन्तर यह कुत्तोंका रक्षक सुखपूर्वक आसन पर बैठ समाधि चढाकर प्रयत्न करनेलगा,तदनन्तर उस ने एकचित्त हो केशवको प्रणाम किया फिर वह घोर पिशाच

पिशाचो भक्तवत्सलम् ॥ ५८ ॥ नमो भगवते तस्मै वासुदेवाय चक्रिणे । नमस्ते गदिने तुभ्यं वासुदेवाय धीमते ॥ ५९ ॥ ओं नमो नारायणाय विष्णवे प्रभविष्णवे । मम भूयान्मनःशुद्धिः कीर्तनात्तव केशव ॥६० ॥ जन्ममेदृशमीदृशं घोरं माभून्मम दुरासदम् । देवदूतो भविष्यामि स्मरणात्तव गोपते ॥ ६१ ॥ तव चक्रप्रहारेण कायो नश्यतु मामकः । मम भूयो भवो माभूदेषा मे प्रार्थना विभो ॥६२॥ अर्थिनां कल्पवृक्षोऽसि दाता सर्वस्य सर्वदा । यत्र यत्र भवेज्जन्म तत्र तत्र भवान् हृदि ॥६३॥ वर्ततां मम देवेश प्रार्थनैषा ममापरा । नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं भवत्वेवं सदा मम ६४ निर्विघ्ना प्रार्थना देव नमस्तेऽस्तु सदा मम । यदा मे मरणं भूयात्सदा मा भूत् स्मृतिभ्रमः ॥ ६५ ॥ दिने दिने क्षणं चित्तं त्वयि संस्थं भवत्विति । एवं प्रेरय मां देव मा भूचे चिन्तयीदृशम् ६६

भक्तवत्सल श्रीकृष्णको प्रणाम कर इस मन्त्रको पढ़ने लगा ५८ चक्रधारी वासुदेव भगवान्को प्रणाम है, गदाधारी बुद्धिमान् वासुदेवको प्रणाम है ॥ ५९ ॥ ॐ नारायण प्रभाववान् विष्णु को प्रणाम है, हे केशव ! आपका कीर्तन करनेसे मेरे मनकी शुद्धि होजाय ॥ ६० ॥ मेरा फिर घोर और दुरासद जन्म न हो, हे गोपते ! मैं आपका स्मरण करनेसे फिर देवदूत होजाऊँ ६१ आपके चक्रके प्रहारसे मेरा यह शरीर नष्ट होजाय, और मेरा फिर जन्म न हो, हे प्रभो ! मेरी यह प्रार्थना है ॥ ६२ ॥ आप याचकोंके लिए कल्पवृक्षरूप हैं, सदा सबके दाता हैं, मेरा जहाँ जहाँ जन्म हो, तहाँ २ आप मेरे हृदयमें बसते रहें ॥ ६३ ॥ हे देवेश ! मेरी यह परम प्रार्थना है मेरे (मनमें) सर्वदा यह विचार रहे कि-आपको प्रणाम हो, प्रणाम हो ॥६४॥ हे देव ! मेरी प्रार्थना सर्वदा निर्विघ्न रहे,हे देव ! जब मेरा मरण हो उस समय मेरी स्मृति न जाती रहे ॥ ६५ ॥ प्रतिदिन और प्रतिक्षण

नृशंसोयं पिशाचोयं दयास्मिन् का भवेदिति । एवं चिंतय मां देव भृत्यो ममेति प्रभो ॥ ६७ ॥ परपीडा न मत्तोस्तु नमस्ते भगवन् प्रभो । इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु मा भूवन् साम्प्रतं हि मे ६८ अन्तकाले ममाप्येवं प्रसादात्तव केशव । पृथिवी यातु मे घ्राणं रसनां यातु मे पयः ॥ ६९ ॥ सूर्यश्च यातु मे चक्षुः स्पर्शं यातु च मारुतः । श्रोत्रमाकाशमप्येतु मनः प्राणं च गच्छतु ॥ ७० ॥ जलं मां रक्षतां नित्यं पृथिवी रक्षतां हरे । सूर्यो मां रक्षतां विष्णो नमस्ते सूर्यतेजसे ॥ ७१ ॥ वायुर्मा रक्षतां दुःखादाकाशं च जनार्दनः । न मनः सर्वगं देव रक्षतां विषयान्तरे ॥ ७२ ॥ मनो विपर्यये घोरे पुरुषान् हन्ति निश्शः । पापेषु योजयेत् पुंसः

आपमें मेरा चित्त रहे, हे देव ! आप ऐसी ही प्रेरणा करिये और हे देव ! आप अपने चित्तमें यह ध्यान न रखिये, कि-॥६६॥यह तो नृशंस और पिशाच है, इसके ऊपर क्या दया करूँ परन्तु हे प्रभो ! आप ऐसा विचार करिये, कि-यह मेरा भृत्य है ६७ हे भगवन् ! हे प्रभो ! मुझसे दूसरोंको पीड़ा न पहुँचे और इस समय मेरी इन्द्रिये इन्द्रियोंके अर्थोंमें अर्थात् विषयोंमें न फँसे ६८ हे केशव ! इसी प्रकार अन्तिम समयमें आपके प्रसादसे पृथ्वी मेरी घ्राणेन्द्रियमें आजाय और और जल मेरी रसनामें आजाय ॥ ६९ ॥ सूर्य मेरे नेत्रोंमें आजाय और पवन स्पर्शको प्राप्त होजाय, श्रोत्र आकाशमें लीन होजाय मन प्राणमें लीन हो जाय ॥ ७० ॥ हे हरे ! जल मेरी सर्वदा रक्षा करे, पृथिवी मेरी सर्वदा रक्षा करे, सूर्य मेरी रक्षा करे, हे विष्णो ! सूर्यकी समान तेजस्वी आपको प्रणाम है ॥ ७१ ॥ हे जनार्दन ! वायु और आकाश दुःखसे मेरी रक्षा करें और परमात्मगत मेरा मन विषय और विषयातिरिक्त दोनों कार्योंकी रक्षा न करे (केवल विषय-विमुख ही रहे) ७२ क्योंकि मन यदि विषयोन्मुख होजाता है,

परपीडात्मकेषु च ॥ ७३ ॥ मनस्तद्रक्षतां देव भूयो भूयो जनार्दनः । माभून्मनसि कालुष्यं मनो मे निर्मलं भवेत् ॥ ७४ ॥ कलुषं तस्य यच्चित्तं नरके पातयत्यमुम् । बाह्यानि निर्मलान्येव-मिन्द्रियाणि भवन्त्युत ॥ ७५ ॥ न तानि कार्यवन्तीह मनश्चेत् कलुषं भवेत् । नांगानि मुष्टिना मेध्यं गृहीत्वा यो व्यवस्थितः ७६ बहिः प्रक्षालनं कुर्वन् किं भवेत्तस्य केशव । व्यर्थो हि केवलं तस्य निग्रहो बाह्यगोचरः ॥ ७७ ॥ तस्मात् सर्वप्रयत्नेन चित्तं रक्ष जनार्दन । बलवानिन्द्रियग्रामो वारयैनं जनार्दन ॥ ७८ ॥ परीवादाज्जगन्नाथ वाचं रक्ष दुरुद्वहाम् । परद्रव्यान्मनो रक्ष परदाराज्जनार्दन । सर्वत्र मे दया भूयात् प्रसादात्तव केशव ॥७९॥ त्वय्येव भक्तिरचला भूयाद्भूतेषु मे दया । बहुनात्र किमुक्तेन

तो वह पुरुषोंका नाश करने लगता है और पुरुषको दूसरेको पीडित करनारूप पापमें लगा देता है ॥ ७३ ॥ हे जनार्दन ! वह मन मेरी वारम्बार रक्षा करे, मेरे मनमें कलुषता न रहे और मेरा मन निर्मल होजाय ॥ ७४ ॥ जिसका चित्त कलुषित होता है, उसका चित्त उसको नरकमे गिरा देता है और उसकी इन्द्रियें ऊपरसे ही निर्मल दीखती हैं ॥ ७५ ॥ यदि मन कलुषित होता है, तो वह कुछ (सत्) कार्य नहीं कर सकता अङ्ग (मुट्ठियों) हाथोंसे मलने पर ही शुद्ध नहीं हो सकते, हे केशव ! जो (विषयोंको) ग्रहण करके स्थित होजाता है ॥७६॥ उसके बाहरसे अङ्गोंको धोनेसे क्या ? उसका बाहरी दीखने वाला इन्द्रियनिग्रह व्यर्थ है ॥ ७७ ॥ इसलिये हे जनार्दन ! आप सब यत्नोंसे मेरे चित्तकी रक्षा करिये, इन्द्रियोंका समूह बड़ा बलवान् है, इसको आप रोकिये ॥ ७८ ॥ और इस दुरुद्वहा वाणीकी निन्दासे रक्षा करिये और हे जनार्दन ! दूसरोंके द्रव्य और दूसरोंकी स्त्रियोंसे भी इस मनकी रक्षा करिये ॥ ७९ ॥ आपमें

शृणुष्वेदं वचो मम ॥ ८० ॥ सुखदुःखे च रागे च भोजने गमने तथा । जाग्रत्स्वप्नेषु सर्वत्र त्वय्येव रमतां मनः ॥ ८१ ॥ नमस्ते देवदेवेश नमस्तेऽस्तु जनार्दन । इति ब्रुवन् घोरतमो जात्या हीनो न चिन्तकः ॥८२॥ पिशाचो भगवद्भक्तः समाधिं समपद्यत । दृढं बध्वात्मनः कायमान्त्रपाशेन मांसपः ॥८३॥ निश्चलेनैव मनसा सुखमास्ते स्म संवृतः । ध्यायन् हरिं जगद्योनिं विष्णुं पीताम्बरं शिवम् ॥ ८४ ॥ मुकुन्दमादिपुरुषमेकाकारमनामयम् । नित्यं शुद्धं ज्ञानगम्यं कारणं सर्वदेहिनाम् ॥ ८५ ॥ नासिकाग्रं समालोक्य पठन् ब्रह्म सनातनम् । निर्वातस्थो यथा दीपः प्रोच्चरन् प्रणवं सदा ॥८६॥ प्रणवं वाचकं मत्वा वाच्यं ब्रह्मेति निश्चितः । एकाग्रं सततं कृत्वा चित्तं विष्णौ समर्पितम् ॥ ८७ ॥ विकल्प-

---

मेरी अचल भक्ति रहे और सब प्राणियों पर मैं दयाभाव रक्खूँ, अब अधिक कहनेसे क्या लाभ आप मेरे इस बचनको सुनियेंकि- सुखमें दुःखमें रागमें भोजनमें गमनमें और जाग्रत् स्वप्न आदि सब दशाओंमें मेरा मन आपमें ही रमण करे; हे देवदेवेश जनार्दन ! आपको नमस्कार है, इस प्रकार कहता हुआ जाति में हीन भगवद्भक्त पिशाच और किसी विचारको छोड़ कर समाधिस्थ होगया, वह मांसभक्षक अपने शरीरको आँतपाशसे दृढतासे बाँधकर निश्चिल मनसे सुखपूर्वक स्थिर होगया और जगद्योनि पीताम्बर कल्याणकारक हरिका ध्यान करने लगा ॥ ८१–८४ ॥ आदि पुरुष मुकुन्द एकाकी नित्य-शुद्ध ज्ञानगम्य अनामय सब देहधारियोंके कारण (हरिका ध्यान करने लगा) ॥ ८५ ॥ और नासिकाके अग्रभागको देख कर सनातन ब्रह्मका पाठ करनेलगा और वायुरहित स्थानमें निश्चल दीपककी समान बन कर प्रणव (ओंकार) का जप करने लगा ॥८६॥ उसने प्रणवको वाचक माना और ब्रह्मको निश्चय

रहितं चित्तं हृदि मध्ये न्यवेशयत् । पुण्डरीके शुभदले समा
वेश्य जगत्पतिम् ॥८८॥ आस्ते सुखं महायोगी पिशिताशस्तदा
महान् । त्रिधा मानं जपंस्तत्र स्मरन्विष्णुं सनातनम् ॥ ८६ ॥
इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां
घंटाकर्णचित्तसमाधिर्नामाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

वैशम्पायन उवाच । ततः स भगवान्विष्णुः पिशाचं दृष्टवां-
स्तदा । चिंतयंतं स्वमात्मानं शुद्धबुद्धिसमन्वितम् ॥१॥ आत्म-
न्यवस्थितं साक्षात्पठंतं प्रणवं सकृत् । प्रार्थयन्तं स्वमात्मानमेकांते
नियतं हरिः ॥ २ ॥ अचिंतयज्जगन्नाथः कारणं पुण्यसंचये ।
ध्यात्वा तु सुचिरं विष्णुः कारणं पुण्यकर्मणः ॥३ ॥ धनदस्यो
पदेशेन पठन्सुबहुशः क्षितौ । वासुदेवेति कृष्णेति माधवेति च मां
सदा ॥ ४ ॥ जनार्दन हरे विष्णो भूतभावनभावन । जराकार-

करके चित्तको बहुत समय तक एकाग्र करके चित्तको ब्रह्ममें
लगादिया ॥ ८७ ॥ विकल्परहित चित्तको हृदयके बीचमें लीन
करके वह पुण्डरीकके अर्थात् हृदयकमलके मध्यमें जगत्पतिको
स्थापित करके मांसभक्षक महायोगी सुखपूर्वक बैठ गया और
तीन रूपमें विभक्त सनातन विष्णुका जप करने लगा ॥ ८६ ॥
अस्सीवाँ अध्याय समाप्त ॥ ८० ॥　　छ　　छ

वैशम्पायनजी कहते हैं, कि-तदनन्तर भगवान् विष्णुने देखा,
कि-पिशाच शुद्ध बुद्धिसे आत्मचिन्तवन कर रहा है, और आत्म-
निष्ठ होकर प्रणवका पाठ कर रहा है और एकान्तमें अपनी
आत्माकी प्रार्थना कर रहा है ॥ १ ॥ २ ॥ तब जगन्नाथ विचा-
रने लगे, किस कारणसे इसने इतना पुण्यसञ्चय कर लिया है,
बहुत समय तक विचार करके विष्णुने उसके पुण्यकर्मोंके सञ्चय
का कारण खोज निकाला, कि-॥ ३ ॥ यह कुबेरके उपदेश देने
के कारण पृथ्वीमें बहुधा वासुदेव कृष्ण माधव जनार्दन हरे

जगन्नाथ नारायणपरायण ॥ ५ ॥ इति मां नामभिर्नित्यं पठ-
त्येव दिवा निशम् । स्वपन् जाग्रंस्तथातिष्ठन् भुंजन् गच्छंस्तथा
वदन् ॥ ६ ॥ भक्षयन् मांसपिटकं पिबञ्छोणितमेव वा । बाध-
मानं च सुचिरं हत्वा चापि मृगान्बहून् ॥ ७ ॥ हनने भोजने चैव
जाग्रत्स्वप्ने तथैव च । सर्वेष्वपि च कार्येषु कर्ताहमिति मन्यतेऽनघ
एतस्य कर्मणः पाक एष घोरस्य कर्मणः । निश्चित्यैवं जगन्नाथः
प्रीतस्तस्य बभूव ह ॥ ९ ॥ अदर्शयत्स्वमात्मानमनन्यस्य जग-
त्पतिः । शुद्धेऽन्तःकरणे तस्य पिशाचस्यापि भूमिप ॥ १० ॥ स
च घोरः पिशाचोपि ददर्शात्मनि केशवम् पीतकौशेयवसनं पद्माक्षं
श्यामलं हरिम् ॥ ११ ॥ शंखिनं चक्रिणं विष्णुं स्रग्विणं गदिनं
विभुम् । किरीटिनं कौस्तुभिनं श्रीवत्साङ्कादितोरसम् ॥ १२ ॥
नीलमेघनिभं कांतं गरुडस्थं प्रभंजनम् । चतुर्भुजं शुभगिरं

विष्णो भूतभावन नराकार जगन्नाथ नारायणपरायण आदि
मेरे नामोंको पढ़ा करता है ॥ ४ ॥ ५ ॥ और सोता हुआ जागता
हुआ बैठता हुआ खाता हुआ चलता हुआ भाषणकरता हुआ,
मांसपिटकका भक्षण करता हुआ पीड़ा देता हुआ और बहुतसे
मृगोंको मारता हुआ भी रात दिन उपरोक्त नामोंसे मेरा स्मरण
करता ही रहता है ॥ ६ ॥ ७ ॥ हननमें भोजनमें जाग्रत् अवस्था
में स्वप्नमें और सब कार्योंमें भी मैं (वासुदेव) कर्ता हूँ, ऐसा
मानता रहता है ॥ ८ ॥ अब यह इसके घोरकर्मके नष्ट होनेका
समय आगया है, ऐसा निश्चय करके जगन्नाथ उसके ऊपर
प्रसन्न होगए ॥ ९ ॥ हे पृथ्वीरक्षक ! फिर उस अनन्य भक्त
पिशाचके भी शुद्ध अन्तःकरणमें अपने स्वरूपका दर्शन दिया १०
उस घोरपिशाचने अपने अन्तःकरणमें पीला रेशमी वस्त्र धारण
करने वाले, कमलकी समान नेत्र वाले श्यामल शंखधारी चक्र-
धारी मालाधारी गदाधारी, किरीट और कौस्तुभमणिधारी,

निश्चलं सर्वगं शिवम् ॥ १३ ॥ अनादिनिधनं नित्यं मायाविन-मायाधिनम् । सत्त्वयुक्तं सदा शुद्धं सिद्धिगम्यं सदाऽमलम् १४
मनस्येवं जगन्नाथं दृष्ट्वा विष्णुमनेकधा । अनुमीलयेव नयने कृतार्थोस्मीत्यमन्यत ॥ १५ ॥ अथ दृष्टो हरिर्विष्णुः साक्षात् सर्वगः शुभः । प्रसन्नो हि हरिर्मह्यं तेनाहं दृष्टवान् हरिम् ।१६।
सिद्धं मे जन्मनः कृत्यं किमतः कृत्यमस्ति मे । ग्रंथयो मम निर्भिन्ना वश्यान्येवेन्द्रियाणि मे ॥ १७ ॥ मायेण जितमित्येव मनो मन्ये स्मृते हरौ । ईषणा च निरस्ता मे प्रसन्नोहं तथाभ-वम् ॥१८॥ एतेभ्योपि पिशाचेभ्यो निर्मुक्तः संमतं तथा । योसौ ममानुजः साक्षात् स च भक्तस्तथा हरौ ॥ १९ ॥ कालेन सैव निर्मुक्तो विष्णोः सायुज्यमाप्नुयात् इत्येवं चिंतयित्वा स शांत्रमाशां

श्रीवत्ससे आच्छादित वक्षःस्थल वाले, नीलमेघकी समान मनो-हर, गरुड़ पर स्थित, प्रफुल्लमन, चतुर्भुजी, शुभ वाणी वाले निश्चल सर्वगामी शिव, जन्ममृत्युरहित नित्य मायावी और मायारहित सत्त्वयुक्त सदाशुद्ध सिद्धिगम्य सदा निर्मल विभु हरि केशवको देखा ॥ ११–१४ ॥ मनमें जगत्के स्वामी विष्णुके ऐसे अनेक प्रकारके रूपोंको देख कर वह अपने नेत्रोंको मीच कर अपनेको कृतार्थ मानने लगा कि–॥ १५ ॥ मैंने सर्वव्यापक शुभ हरि विष्णुके साक्षात् दर्शन करलिए, हरि मुझ पर प्रसन्न ही होगए हैं, तभी मैंने इनका दर्शन पाया है ॥१६॥ मेरे जन्म का उद्देश्य पूर्ण होगया, अब मुझे क्या काम बाकी रहा है, अब मेरी सब गाँठे कटगईं और इन्द्रियें वशमें हो गईं ॥१७॥ हरिका स्मरण करने पर मेरा मन (जित) निर्मल ही होगा, एषणाएँ जाती रहीं इसी लिए मैं प्रसन्न होरहा हूँ ॥ १८ ॥ और अब इन पिशाचोंसे भी मैं मुक्त होगया, और जो यह मेरा छोटा भाई है, वह भी हरिभक्त है ॥१९॥ वह भी समयानुसार मुक्त होकर

विभिद्य च॥२०॥ क्रमेण प्राणानुन्मुच्य विलोक्य च दिशस्तथा। शरीरं सुगमं कृत्वा प्राविशत् स सुखेन ह॥ २१॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां पिशाचस्य विष्णुसाक्षात्कारो नाम एकाशीतितमोऽध्यायः ८१

वैशम्पायन उवाच। पिशिताशो जगन्नाथं ददर्शाथ जगद्गुरुम्। समाधौ च यथादृष्टं भूमौ चापि तथा हरिम्॥ १॥ अयं विष्णुरयं विष्णुरित्यूचे पिशिताशनः। समाधौ च यथादृष्टः सोऽयमत्रापि दृश्यते। इत्युवाच पुनर्ब्रूते नृत्यन्निव हसन्निव॥ २॥ अयं स चक्री शरशार्ङ्गधन्वा गदी रथी सध्वजतूणपाणिः। सहस्रमूर्धा सकलामरेशो जगत्प्रसूतिर्जगतां निवासः॥ ३॥ विष्णुर्जिष्णुर्जगन्नाथः पुराणः पुरुषोत्तमः। विश्वात्माविश्वकर्ता

विष्णुके सायुज्यको प्राप्त होजावेगा, इस प्रकार विचार करनेके अनन्तर उसने आन्त्रपाशको तोड़ डाला २० प्राणोंको क्रमशः छोड़ दिया फिर वह दशों दिशाओंको देख शरीरको सुगम बना फिर उसमें सुखपूर्वक आगया॥ १२॥ इक्यासीवाँ अध्याय समाप्त॥ ८१॥ ❀ ❀ ❀ ❀ ❀

वैशम्पायनजी कहते हैं, कि-तदनन्तर मांसभक्षी पिशाचने समाधिमें जिस प्रकार जगत्के स्वामी जगद्गुरुको देखा था, इसी प्रकार उसने उनको भूमिमें विराजमान देखा॥ १॥ तब वह मांसभक्षक कहने लगा, कि-यह विष्णु हैं, यह विष्णु हैं, समाधिमें मैंने जैसे देखा था, यहाँ यह विष्णु भी ऐसे ही दीख रहे हैं, इस बातको कहकर वह हँसा और नाच कर बारम्बार इसी बातको कहने लगा॥ २॥ और कहने लगा, कि-)यह चक्रधारी, बाण और शार्ङ्ग धनुषको धारण करने वाले गदाधारी और हाथमें ध्वजा और तरकसके चिन्ह वाले श्रीकृष्ण हैं, इनके सहस्रों मस्तक हैं, यह सब देवताओंके स्वामी हैं, जगत्की योनि

यः सोयमेव सनातनः ॥ ४ ॥ अस्यैव देवस्य हरे स्तनांतरे विराजते कौस्तुभरत्नदीपः । यस्य प्रसादाज्जगदेतदादौ विराजते चन्द्रमसेव रात्रिः ॥ ५ ॥ योसौ पृथ्वीं दधाराशु दंष्ट्रया जलसंप्लवात् । सोयमेव हरिः साक्षाद्वाराहं वपुरास्थितः ॥ ६ ॥ बद्ध्वा तथा मानवमुग्रपौरुषं ददौ च शक्राय ततोनुराज्यम् । बलिं बलादेव हरिः स वामनः स्तुतश्च भक्त्या मुनिभिः पुरातनैः ॥ ७ ॥ दंष्ट्राकरालान् सुमदान् हत्वा यो दानवान्रणे । निःशोकमखिलं लोकं चकारासौ जनार्दनः ॥ ८ ॥ आदौ दधारैकभुजेन मंदरं निर्जित्य सर्वानसुरान् महार्णवे । ददौ च शक्राय सुधामयं महान् स एष साक्षादिह मामवस्थितः ॥ ९ ॥ यः शेते जलधौ नागे देव्या लक्ष्म्या सुखावहे । हत्वा तौ दानवौ घोरौ मधुकैटभसं-

और जगत्के निवास हैं ॥३॥ और यह विष्णु जिष्णु जगन्नाथ पुराण पुरुषोत्तम विश्वात्मा, विश्वकर्ता और सनातन हैं ।४। इन हरिदेवके वक्षःस्थलमें ही कौस्तुभमणिरूप दीपक विराजमान रहता है उसके प्रकाशसे चन्द्रमासे शोभा पाने वाली रात्रिकी समान इनका शरीर शोभा पाता रहता है ॥ ५ ॥ इन्होंने जल मेंसे पृथ्वीको अपनी डाढ पर रख उसका उद्धार किया था, वराहका रूप धारण करने वाले वह हरि यही हैं ॥६॥ इन्होंने भयंकर पराक्रमी बलिको बलपूर्वक बाँधकर इन्द्रको राज्य दे दिया था, उस समय पुरातनमुनियोंने इन वामनजीकी स्तुतिकी थी ॥ ७ ॥ इन्होंने विकराल डाढ वाले मदमत्त दानवोंको मार कर सारे लोकको शोकरहित कर दिया था ॥ ८ ॥ जिन्होंने पहिले महार्णवमें एकभुजासे मन्दराचलको धारण कर सब दानवों का नाश करके सुधाका पात्र इन्द्रको देदिया था, वह यह साक्षात् हरि मेरे सामने खड़े हुए हैं ॥ ९ ॥ यह मधु कैटभ नाम वाले घोर दानवोंको मारकर सुखदायक नागशय्या पर लक्ष्मीके साथ

क्षितौ ॥ १० ॥ यमाहुराद्यं विबुधा जगत्पतिं सर्वस्य धातारमजं
जनित्रम् । अणोरणीयांसमतिप्रमाणं स्थूलात् स्थविष्ठं हरिमेव
विष्णुम् ॥ ११ ॥ यत्र स्थितमिदं सर्वं माप्ते लोकस्य नाशने ।
आदौ यस्मात् समुत्पन्नं सोयं विष्णुरिति स्थितः ॥१२॥ यस्ये-
च्छया सर्वमिदं प्रवृत्तं प्रवर्तते चापि जनार्दनस्य । अयं स विष्णुः
पुरुषोत्तमः शिवः प्रवर्तते मामिह यादवेश्वरः ॥ १३ ॥ भृगोर्वंशे
समुत्पन्नो जामदग्न्य इति श्रुतः । शिष्यत्वं समवाप्यैव मृगव्या-
धस्य यः स्थितः ॥ १४ ॥ जघान वीर्यद्बलिनं महारणे कुठार-
शस्त्रेण गिरीशशिष्यः । सहस्रबाहुं कृतवीर्यसंभवं हयैर्गजैश्चैव
रथैश्च निर्गतम् ॥ १५ ॥ कुरुक्षेत्रं समासाद्य य श्चकार पितृक्रि-
याम् । निःक्षत्रियमिमं लोकं कृतवानेकविंशतिः ॥ १६ ॥ दशर-
थकुले जातो रामो नाम जनार्दनः । सीतया च श्रिया युक्तो

शयन करते हैं ॥१०॥ देवता जिन हरिविष्णुको आद्य जगत्पति
सबके धाता उत्पत्तिरहित जनपिता; परमसूक्ष्म, अतिप्रमाण;
स्थूलसे भी स्थूल कहते हैं ॥११॥ लोकनाशका समय आने पर
जिनमें यह सब स्थित होजाता है और आदिके समय जिनमेंसे
यह सब जगत् उत्पन्न होता है, वह विष्णु यह खडे हुए हैं १२
जिनकी इच्छासे यह सब चल रहा है, और जिन जनार्दनकी
इच्छासे चलता है, वह यह विष्णु पुरुषोत्तम शिव यादवेश्वर मेरे
सामने प्रकट होरहे हैं ॥ १३ ॥ जो भृगुके वंशमें उत्पन्न होकर
जामदग्न्य (परशुराम) नामसे प्रसिद्ध हुए थे और शिवके
शिष्य बने थे १४ और जिन शिवके शिष्यने महारणमें कुठार
नामक शस्त्रसे हाथी घोडे और रथोंके साथ निकल कर आए
हुए कृतवीर्यके पुत्र बलवान सहस्रभुजको बलपूर्वक मार डाला
था १५ जिन्होंने कुरुक्षेत्रमें आकर पितरोंका तर्पण किया था
और पृथ्वीको इक्कीस बार क्षत्रियरहित कर दिया था १६ और

लक्ष्मणानुचरः कृती ॥ १७ ॥ कृत्वा च सेतुं जलधौ जनार्दनो हत्वा च रक्षःपतिमाशुगैः शरैः । दत्वा च राज्यं स विभीषणाय दशाश्वमेधैरजयच्च योसौ ॥ १८ ॥ वसुदेवकुले जातो वासुदेवेति शब्दितः । गोकुले क्रीडते योसौ संकर्षणसहायवान् ॥ १९ ॥ उत्तानशायी शिशुरूपधारी पीत्वा स्तनं पूतनिकाप्रदत्तम् । व्यसुं प्रकारास्तु जनार्दनस्तदा दनोः सुतां तामवसत् सुखं हरिः ।२०। पयः पानं तथा कुर्वन् भक्षयन् दधिपिंडकम् । दाम्ना बद्धोदरो विष्णुर्मात्रा रुपितया दृढम् ॥२१॥ ततश्च दाम्ना सुदृढेन बद्धो जघान योसौ यमुलार्जुनौ च । क्रीडन् हरिर्गोकुलवासवासी गोपिभिरास्वाद्य मुखं स्तनं च ॥ २२ ॥ वृंदावने वसन्विष्णुर्गोपैर्गोकुलवासिभिः । तत्र हत्वा वृषं राजन् विरराजाशुभा-

जो कुशल जनार्दन लक्ष्मण नामक भाईके साथ और लक्ष्मीकी अंश सीताके साथ दशरथके कुलमें उत्पन्न हुए थे ॥१७॥ तहाँ पर जिन्होंने समुद्रका पुल बाँध शीघ्रगामी बाणोंसे राक्षसोंके स्वामी रावणको मारकर विभीषणको राज्य देदिया था और दश अश्वमेध यज्ञोंसे यजन किया था १८ और जो वसुदेवके कुलमें उत्पन्न होकर वासुदेव नामसे प्रसिद्ध हैं और संकर्षणको सहायक बना कर गोकुलमें क्रीड़ा करते हैं ।१९। और जिन्होंने ऊपरको पैर कर शयन करते समय पूतनाके दिये हुए स्तनका पान करके उसे प्राणहीन कर दिया था और उस दनुकी पुत्री के ऊपर सुखपूर्वक शयनकिया था २० और दुग्ध पीने पर तथा दही खाने पर इनकी माताने क्रोधमें भरकर इनके उदरसे दृढता के साथ रस्सी बाँध दी थी २१ पेटमें रस्सी बँधने पर भी यमल अर्जुन नाम वाले वृक्षोंको तोड डाला था,फिर गोकुल जहाँ रहना था तहाँ रहने वाले हरिने गोपियोंके मुख और स्तनका आस्वाद लिया था २२ फिर हरि गोकुलमें रहने वाले गोपोंके साथमें

नि ॥२३॥ यः क्रीडते नागफणौ जनार्दनो विपेक्ष्यमाणः सह गोपदारकैः । महाह्रदे नागपतिं जगत्पतिर्ममर्द वीर्यातिशयं प्रदर्शयन् ॥ २४ ॥ यो धेनुकं तालवने तरुफलैः सममप्छिन्नत् । हत्वा दानवमुग्रं तं गोपान्विस्मापयत्यसौ ॥ २५ ॥ दधार यो गोधरमुग्रपौरुषो महापतिर्मेघसमागमे सति । विडंबयन्छक्रबलं प्रमोदयन् गोपांश्च गोपींश्च स गोकुलं हरिः ॥ २६ ॥ गोपीनां स्तनमध्ये तु क्रीडते काममीश्वरः । योसौ पिबंस्तदधरं मायागानुपदेहवान् ॥ २७ ॥ गोपीभिरास्वाद्य मुखं विविक्ते शेते स्म रात्रौ सुखमेव केशवः । स्तनांतरेष्वेव तदा च तासां कामी च कांताधरपल्लवं पिबन् ॥ २८ ॥ अक्रूरेण समाहूतस्तेन गच्छन् हि यामुने । जले यो दर्शितस्तेन नागलोके स एव हि ॥ २९ ॥

लेकर वृन्दावनमें रहे थे, वहाँ हयासुरका (केशीका) संहार करके सूर्यकी समान शोभा पाने लगे थे २३ फिर जिन गोपस्त्रियोंसे सेवित जगत्पतिने सर्पके फन पर क्रीड़ाकी थी और महासरोवरमें सर्पराजको अपना अधिक बल दिखाकर दबा दिया था ॥२४॥ और जिन्होंने तालवनमें धेनुकासुरको तालके फलकी समान गिरा दिया था और उस उग्रदानवका वध करके गोपोंको विस्मित कर दिया था ॥ २५ ॥ और मेघोंके आने पर उग्र पुरुषार्थ वाले महापति हरिने गोवर्धनको धारण कर इन्द्रके बलकी विडम्बना कर गोप गोपी और गोकुलकी रक्षाकी थी ॥ २६ ॥ और जिन ईश्वरने गोपियोंके स्तनोंके बीचमें इच्छानुसार क्रीड़ाकी है और उनके अधरका पान किया है ॥ २७ ॥ एकान्तमें गोपियोंके मुखका आस्वाद लेकर केशव रात्रिमें सुखपूर्वक शयन करते हैं और वह कामी कान्ताके अधरपल्लवका पानकर उनके स्तनोंके बीच में शयन करते हैं ॥२८॥ अक्रूरके बुलाने पर अक्रूरने यमुनाजी के जलमें जिनको देखा था उनको ही उन्होंने नागलोकमें देखा

ततश्च गच्छन् बलवान् जनार्दनो हत्वा तमुग्रं रजकं बलात्
पथि । हृत्वा च वस्त्राणि यथेष्टमीश्वरो ययौ सरामो मथुरां पुरीं
हरिः ॥ ३० ॥ लब्ध्वा च दामानि बहूनि कामदो दत्त्वा वरं
माल्यकृते महान्तम् । लब्ध्वानुलेपं सुरभिं च यादवः कुब्जां
चकाराशु महार्हरूपाम् ॥ ३१ ॥ योसौ चापं समादाय मध्ये
छित्वा महद्धनुः । सिंहनादं महांश्चक्रे कल्पान्ते जलदो यथा ३२
हत्वा गजं घोरमुदग्ररूपं विषाणमादाय ततोनु केशवः । ननर्त
रंगे बहुरूपमीश्वरः कंसस्य दत्त्वा भयमुग्रवीर्यः ॥ ३३ ॥ योसौ
हत्वा महामल्लं चाणूरं निहतद्विषम् । यादवेभ्यो ददौ प्रीतिं कंस-
स्यैव तु पश्यतः ॥ ३४ ॥ जघान कंसं रिपुपक्षघातिनं पितृद्विषं
यादवनामधेयम् । संस्थाप्य राज्ये हरिरुग्रसेनं सान्दीपिनं काश्य-

था ॥ २९ ॥ तदनन्तर बलवान् जनार्दनने जाते २ मार्गमें बल-वान् धोबीको मार कर उसके वस्त्रोंको छीन लिया था, फिर वह ईश्वर बलरामजीको साथमें लेकर इच्छानुसार मथुरापुरीमेंको चले गए थे ३० फिर उन इच्छापूरकने पुष्पोंकी माला पाकर माला बनाने वालेको श्रेष्ठ वर दिया था और सुगन्धित चन्दन का लेप पाकर कुब्जाको अनुपम रूपवाली करदिया था ॥३१॥ और इन्होंने चापको उठाकर रङ्गस्थलमें चापको तोड़ कर प्रलय-कालके मेघकी समान बड़ा भारी शब्द किया था ॥३२॥ भयंकर रूप वाले हाथीको मारकर केशवने उसके दाँतको उखाड़ लिया था; फिर यह अनेकरूपधारी ईश्वर कंसको भय देनेके लिए रङ्गस्थलमें नाचने लगे थे ॥ ३३ ॥ और इन्होंने कंसके सामने ही जिसके शत्रु नष्ट होगए थे ऐसे चाणूर मल्लको मार कर यादवोंको प्रसन्न किया था ॥ ३४ ॥ और शत्रुओंके पुरुषोंका वध करने वाले तथा पितासे द्वेष करने वाले, यादवनामधारी (वास्तवमें द्रुमिलसे उत्पन्न) कंसको जिन्होंने मार डाला था

मुपागतो यः ३५ विद्यामकाप्य सकलां दत्वा पुत्रं महामुनेः। साग्रजोथ जगामाशु मथुरां यादवीं पुरीम् ॥३६॥ हत्वा निशुंभं नरकं महामतिः कृत्वा सुघोरं कदनं जनार्दनः। ररक्ष विप्रान् मुनिवीरसंघान् देवांश्च सर्वान् जगतो जगत्पतिः ॥ ३७ ॥ स एष भगवान् विष्णुरद्य दृष्टो जनार्दनः। कृतकृत्योऽस्मि संजातः सायुज्यं गामवाइनम्॥ ३८॥येन दृष्टो हरिः साक्षात्तस्य मुक्तिः करे स्थिता। सोयमेव हरिः साक्षात् प्रत्यक्षमिह वर्तते॥ ३९ ॥ नूनं जन्मान्तरे पूर्वं धर्मः सञ्चित एव मे। यस्य पाकः समुत्पन्नो येनासौ दृश्यते मया ॥ ४० ॥ सर्वथा पुण्यवानस्मि नष्टसंसारबन्धनः। किमस्मै दीयते वस्तु किं नु वक्ष्यामि साम्प्रतम्। करिष्ये किमहं विष्णो वदस्वाद्य यथेप्सितम् ॥ ४१ ॥ वैशंपायन उवाच। इत्युक्त्वा विस्तरन्नादं ननर्द बहुशस्तदा। जहास

और जो हरि राज्य पर उग्रसेनको प्रतिष्ठित करके सान्दीपन कश्यपके पास गए थे ॥ ३५ ॥ और सब विद्याओंको पढ़नेके अनन्तर महामुनिको पुत्र देकर अपने बड़े भाईके साथ शीघ्रतासे मथुरापुरीमें चले आए थे ॥३६॥ और महामति जनार्दनने शुंभ और नरकको मारते समय भयंकर संहार करके सब मुनि विप्र और देवताओंकी रक्षाकी थी, क्योंकि वह जगत्पति हैं॥३७॥ उन्हीं भगवान् विष्णु जनार्दनको मैं आज देख रहा हूँ, अतएव मैं कृतकृत्य होगया और सायुज्यको प्राप्त होगया ॥३८॥ जिसने हरिको साक्षात् देख लिया मुक्ति उसके हाथमें आजाती है सो यह हरि यहाँ साक्षात् विराजमान हैं ३९ मैंने पूर्वजन्ममें अवश्य ही धर्मक्रिया होगा, उसका फल आने पर ही मैं इनको देख रहा हूँ ४० मैं सर्वथा पुण्यात्मा हूँ, मेरा संसारबन्धन नष्ट होगया है, मैं इनको क्या वस्तु दूँ, और इस समय इनसे क्या कहूँ ॥४१॥ वैशम्पायनजी कहते हैं, कि–इस प्रकार नादके साथ विस्तृत

विकृतं भूयो ननर्त पिशिताशनः ॥ ४२ ॥ नमो नमो हरे कृष्ण यादवेश्वर केशव । प्रत्यक्षं च हरेस्तत्र ननर्त विविधं नृप ॥४३॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां घंटाकर्णस्तुतिर्नाम अशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

वैशम्पायन उवाच । विहस्य विकृतम्भूयः ननृत्य च यथाबलम् । ब्राह्मणस्य हतस्याथ शवमादाय सत्वरः ॥ १ ॥ द्विधा कृत्य महाघोरम्पिशितं केशशाद्वलम् । ततः खण्डं समादाय अद्भिरभ्युक्ष्य यत्नतः ॥ २ ॥ निधाय पात्रे सुशुभे नमस्कृत्य जनार्दनम् । इदम्प्रोवाच देवेशम्प्राञ्जलिः प्रणतः स्थितः ॥३॥ गृहाण मे जगन्नाथ भक्ष्यं योग्यन्तव प्रभो । भवादृशैर्जगन्नाथ ग्राह्यं सर्वात्मना हरे ॥ ४ ॥ भक्तिनम्रा वयं विष्णो नात्र कार्या

बातको कहकर वह मांसभक्षक विकृत स्वरसे हँसने लगा और नाचने लगा ४२ और हे राजन् ! हरिके सामने नमो नमो हरे कृष्ण यादवेश्वर केशव कह कर अनेक प्रकारसे नाचने लगा ४३ बयासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ ८२ ॥ छ छ छ

वैशम्पायनजी कहते हैं, कि-तदनन्तर वह पिशाच विकृतस्वर से हँसता रहा और अपने बलके अनुसार नाचता रहा, फिर उसने शीघ्रताके साथ मारे हुए ब्राह्मणके शवको उठालिया ।१। और उस केशयुक्त महाभयंकर मांसके दो टुकड़े कर डाले फिर (एक)खण्डको ले उस पर यत्नके साथ जल छिड़कार फिर उस को शुभ पात्रमें रख जनार्दनको प्रणाम कर हाथ जोड़ खड़ा हो उनसे यह कहने लगा ३ हे जगन्नाथ ! आप इस मेरे भक्ष्यको ग्रहण करिये हे प्रभो ! यह आपके योग्य है, हे हरे ! आप सरीखे पुरुषोंको सब प्रकारसे इसे ग्रहण करना चाहिये (पिशाच की यह उक्ति "यदन्नः पुरुषो भवति तदन्नास्तस्य देवताः" इस श्रुतिके अनुसार है) ४ हे विष्णो ! हम भक्तिनम्र हैं, इस लिए

विचारणा । दत्तं यद्भक्तिनम्रेण ग्राह्यं तत् स्वामिना हरे ॥ ५ ॥ नवं सुसंस्कृतं भक्ष्यं ब्राह्मण्यं शवमुत्तमम् । अस्माकं पिशिताशानां शास्त्रे नियतमेव हि ॥ ६ ॥ तस्माद्गृहाण भगवन् यदि दोषो न विद्यते । इत्युक्त्वा विकृतं भूयो विहस्य स तु कामतः ७ दातुमैच्छत्तदा खण्डमस्पृश्यं तु शवस्य ह । ततः प्रीतोऽभवत्तस्मै मनसापूजयच्च तम् ॥ ८ ॥ अहोऽस्य स्नेहकारुण्यं मयि सर्वत्र वर्तते । इति सञ्चिन्त्य मनसा प्रोवाच यदुपुङ्गवः ॥ ९ ॥ अलमेतेन सर्वत्र पिशाच पिशिताशन । अस्पृश्यं मादृशैरेतद्ब्राह्मण्यं शवमुत्तमम् १० ब्राह्मणः सर्वथा पूज्यो जन्तुभिर्धर्मकाङ्क्षिभिः । पिशाचा घोरकर्माणो यतन्ते ब्रह्महिंसने ॥ ११ ॥ न हन्तव्याः सदा विप्रास्तद्धिंसा नरकावहा । तस्मादस्पृश्यमस्माभिर्नात्र कार्या विचा-

---

कुछ विचार न करना चाहिये, हे हरे ! भक्तिनम्र पुरुष जिस वस्तुको दे, उसको स्वामीको ग्रहण करना चाहिये ५ यह नवीन सुसंस्कृत ब्राह्मणका उत्तम शव हम मांसभक्षियोंके लिए शास्त्रमें नियत है६ इसलिए हे भगवन ! यदि इसमें दोष न हो तो आप इसको ग्रहण करिये, इस प्रकार कह कर वह इच्छानुसार विकृत हास्य करके हँसा ७ और अस्पृश्य शवखण्ड श्रीकृष्णको देना चाहने लगा, तब भगवान् उसके ऊपर प्रसन्न हुए और मनमें उसकी प्रशंसा करने लगे, कि—; ८ । अहो ! यह सर्वत्र मुझसे करुणापूर्वक स्नेहका बर्ताव करता है, इस प्रकार मनमें विचार कर यदुपुंगव कहने लगे, कि—९ हे मांसभक्षी पिशाच ! तुम्हारा सर्वत्र ऐसी (भक्ति दिखाना) ही पर्याप्त है, यह ब्राह्मणका शव हम सरीखे पुरुषोंके लिए अस्पृश्य है । १० । धर्माभिलाषी प्राणियोंको ब्राह्मणकी पूजा सर्वदा करनी चाहिये और भयंकर कर्म करने वाले पिशाच ब्राह्मणोंका वध करनेके लिए प्रयत्न करते रहते हैं ॥ ११ ॥ ब्राह्मणोंको कभी नहीं मारना

रणा १२ भक्तया प्रीतोऽस्मि भद्रन्ते मनो निर्मलता मया । मनः शुद्धि यदा यत्नं ततः प्रीतोऽस्मि मांसप ॥ १३ ॥ अस्मात् संकीर्तनाच्छश्वद् शुद्धं हि करणं तव । अतीव मनसा प्रीत इत्युक्त्वा भगवान् हरिः ॥ १४ ॥ पस्पर्शांगं तदा विष्णुः पिशाचस्याथ सर्वतः । करेण मृदुना देवः पापान्निर्मोचयद्धरिः १५ ततस्तस्याभवद्रूपं कामरूपसमप्रभम् । दीर्घकुंचितकेशाढ्यो दीर्घबाहुः सुलोचनः१६ समांगुलिः समनखः समवक्त्रः समुन्नसः । पद्माक्षः पद्मवर्णाभः पद्मकेसरभूषणः ॥ १७ ॥ केयूरी चाङ्गदी चैव कौशेयवसनस्तदा । ज्ञानवान् सत्वसम्पन्नः साक्षादिन्द्र इवापरः १८ गन्धर्व इव गायंस्तु सिद्धः सिद्ध इव स्वयम् । साक्षात्

चाहिये, उनकी हिंसा करनेसे नरकमें गिरना पड़ता है, इसलिये यह हमारे लिए अस्पृश्य है, इसमें तुम कुछ विचार न करो १२ भद्र ! मैं तेरी भक्तिसे प्रसन्न हुआ हूँ मैंने तुझको मनकी निर्मलता दी थी और तूने मनःशुद्धिके लिये यत्नकिया था, इससे हे मांसभक्षक ! मैं तुझ पर प्रसन्न हुआ हूँ । १३ । इस कीर्तनसे तेरा मन सर्वदाको पवित्र होगया है, इसप्रकार कहकर भगवान् मनमें परमप्रसन्न हुए १४ फिर हरि देवने उसके पाप को दूर करनेके लिए उसके शरीरका अपने कोमल हाथसे स्पर्श किया १५ तब तो उसका रूप कामके रूपके प्रभाकी समान प्रभा वाला होगया उसके केश लम्बे २ घुँघुराले होगए, भुजाएँ लंबी होगई और नेत्र सुन्दर होगए १६ उसकी अंगुलि नख मुख और नासिका सुडौल होगई, नेत्र कमलकी समान होगए, आभा पद्मके वर्णकी समान होगई और वह पद्मके केसरके आभूषणोंको धारण करनेलगा १७ और वह केयूर अंगद और रेशमी वस्त्र धारण कर और ज्ञानवान् बनकर साक्षात् दूसरे इन्द्रकी समान हो गया १८ गन्धर्वकी समान गाने लगा और सिद्धकी समान स्वयं

स्पृष्टं तदा विष्णोः करेण मृदुपूर्वकम् १९ न नूनन्तादृशं रूप-
मासीत् कालान्तरेष्वपि । अद्यापि नैव मुनयो लभन्ते तादृशं
वपुः २० कृत्वा सुबहुशो घोरं तपः परमदारुणम् । यच्च लब्धं
तदा तेन पिशाचेन नृपोत्तम २१ को नु नाम जगन्नाथमाश्रितः
सीदते नृप । स हि सर्वत्र कल्याणो यो हि नित्यञ्जनार्दनम् २२
ध्यायन् पठन् जपन् वापि तस्य किं नास्ति भूपते । ततः प्रोवाच
भगवान् स्थितं कामनिभाकारम् २३ अक्षयः स्वर्गवासस्ते यावदिन्द्रो भविष्यति । तावत् स्वर्गी भवानस्तु शासनान् मम नान्यतः २४ नष्टे शक्रे ततः स्वर्गात् सायुज्यम्मम गच्छतु । योयं
भ्राता तव स्वर्गी स यदिन्द्रो भवेत्तदा २५ वरं वरय भद्रस्ते यत्ते
मनसि वर्त्तते । दातास्मि सर्वं सर्वत्र नात्र कार्या विचारणा २६

सिद्ध होगया, उस समय विष्णुने अपने हाथसे मृदुतापूर्वक उस का स्पर्श किया १९ बहुत समय तक परम दारुण तप करके उस पिशाचने जैसा रूप पाया था उसका ऐसा रूप पहिले कभी नहीं हुआ था और मुनि आज तक भी वैसा रूप नहीं पासके हैं २०।२१। हे राजन्! जगन्नाथका आश्रय लेने वाला कौन पुरुष कष्ट पा सकता है? हे राजन्! जो सर्वदा जगन्नाथका ध्यान करता है पाठ करता है और जपता है, वह सर्वत्र कल्याणयुक्त रहता है और उसको क्या वस्तु नहीं मिलसकती तदनन्तर भगवान्ने दूसरे कामदेवकी समान खडे हुए उससे कहा, कि—॥ २३ ॥ तुझे अक्षय स्वर्गवास मिलेगा, जब तक इन्द्र स्वर्गवाला रहेगा, तबतक तू मेरे शासनसे स्वर्गमें रहेगा; तुझे मैं आज्ञा देरहा हूँ कोई और आज्ञा नहीं दे रहा है ॥ २४ ॥ और इन्द्रके पदभ्रष्ट होने पर तू मेरे सायुज्यको प्राप्त होजायगा, और यह तेरा भ्राता भी जब तक इन्द्र रहे तब तक स्वर्गमें रहे ॥ २५ ॥ और हे भद्र! तेरे मन में जो बात हो उसका तू वर माँग ले, मैं तुझे सब जगत्की सब

घण्टाकर्ण उवाच । यश्चेमं सङ्गमं देव संस्मरन्नियतात्मवान् । भक्तिस्तस्याचला देव त्वयि भूयाज्जनार्दन २७ मनःशुद्धिर्भवे-त्तस्य माभूत् कलुषता हरे । कालुष्यं मनसस्तस्य माभूदेष वरो मम २८ एवमस्त्विति देवेशः स्वर्गं गच्छेति केशवः । इन्द्रातिथि-र्भवानस्तु त्वां प्रतीक्ष्य हरिः स्थितः २९ इत्युक्त्वा भगवान् कृष्ण उत्थाप्य ब्राह्मणं तदा । तेन स्तुतो जगन्नाथः पूजयित्वा च तं द्विजम् ३० ततो विसृज्य गोविन्दस्तस्मादेशादुपागमत् । यत्र ते मुनयः सिद्धा अग्निहोत्रसमन्विताः ३१ स च स्वर्गी ततः स्वर्गमाज्ञया केशवस्य ह । तस्मात् पठ सदा राजन् मनःशुद्धिं यदीच्छसि । मनश्च शुद्धं भवति पठतस्ते जगत्पते ॥ ३२ ॥

वस्तुएँ देदूँगा, मुझे उसमें कुछ विचार नहीं होगा२६घण्टाकर्ण ने कहा, कि–हे देव! जो अपनी आत्माको वशमें करके मेरे और आपके इस संगमको पढ़े, हे जनार्दन देव! उसकी आपमें अवि-चल भक्ति होजाय ॥२७॥ हे हरे! उसके मनकी शुद्धि होजाय और उसमें कलुषता न रहे, हे देव! उसके मनमें कलुषता न हो यही मेरा वर हो २८ तब केशवने एवमस्तु कह कर उससे स्वर्ग जानेको कहा और कहा, कि—तुम इन्द्रके अतिथि बनो, देवेश इन्द्र तुम्हारी प्रतीक्षामें खड़े हुए हैं ॥ २९ ॥ इस प्रकार कहनेके अनन्तर भगवान् कृष्णने उस ब्राह्मणको उठाया, तब उस ब्राह्मणने जगन्नाथकी स्तुतिकी, तब उसकी पूजाकरके ३० उसको छोड़कर गोविन्द उस स्थानसे हट कर अग्निहोत्र करने वाले सिद्ध मुनियोंके आश्रममें चले आए ॥३१॥ और वह स्वर्ग का अधिकारी पुरुष भी केशवकी आज्ञासे स्वर्गको चला गया, हे राजन्! यदि तुम अपने मनको शुद्ध करना चाहते हो तो सर्वदा (विष्णुके नामोंका पाठ किया करो, हे जगत्पते! पाठ करने पर तुम्हारा मन पवित्र होजायगा ३२ तिरासीवाँ अध्याय समाप्त

वैशम्पायन उवाच । ततः स भगवान् विष्णुर्मुनिभ्यस्तत्त्व-मादितः । कथयामास यद्वृत्तं पिशाचस्य महात्मनः॥१॥तच्छ्रुत्वा मुनयः सर्वे विस्मयं परमं गताः । अहोस्य कर्मणः पाकस्तव संदर्शनादिति ॥ २ ॥ अर्चितो मुनिभिः सर्वैः प्रीतः प्रीतिमतां प्रियः । ततः प्रभाते विमले सूर्ये चाभ्युदिते सति ॥ ३ ॥ आरुह्य गरुडं विष्णुर्ययौ कैलासमुत्तमम् । भवद्भिस्तत्र गन्तव्यमित्युक्त्वा मुनिसत्तमान् ॥ ४ ॥ यत्र विश्वेश्वराः सिद्धास्तपस्यन्ति यत-व्रताः । यत्र वैश्रवणः साक्षादुपास्ते शंकरं शिवम् ॥ ५ ॥ यत्र तन्मानसं नाम सरो हंसालयं महत् । यत्र भृङ्गीरिटिर्देवमुपास्ते शंकरं शिवम् ॥ ६ ॥ गाणपत्यमवाप्याथ हरपार्श्वेचरः सदा । यत्र सिंहा वराहाश्च द्विपद्वीपिमृगैः सह ॥ ७ ॥ क्रीडन्ति वन्य स्तथः परस्परहिते रताः । यत्र नद्यः समुत्पन्ना गङ्गाद्याः सागरं-

---

वैशम्पायनजीने कहा, कि-तदनन्तर उन भगवान् विष्णुने मुनियोंको महात्मा पिशाचका वृत्तान्त आदिसे अन्त तक सुना दिया॥१॥ उस बातको सुनकर सब मुनि परम विस्मित हुए और कहने लगे, कि-अहो ! आपके दर्शनके फलसे उसके कर्मोंका पुण्य उदय होगया तब प्रेम करने वालोंके प्रिय श्रीकृष्णकी सब मुनियोंने प्रेमपूर्वक पूजाकी तदनन्तर निर्मल प्रभात होकर सूर्य का उदय होने पर ॥२॥३॥ विष्णु गरुड़ पर सवार हो उत्तम कैलास पर्वतको चले गए और चलते समय श्रेष्ठ मुनियोंसे कहने लगे कि—आप भी वहाँ आइये ४ (फिर श्रीकृष्ण वहाँको चल दिये, जहाँ विश्वेश्वर यतव्रत तपस्वी तप करते थे और कुबेर शिवकी उपासना करते हैं ॥५॥ और सर्वदा शिवके पासमें रहने वाला हंसोंका निवासस्थान मानसरोवर है और भृंगी रिटि गण-पतित्वको पाकर महादेव शिवकी उपासना करते हैं और जहाँपर सिंह और सूअर हाथी और चीते तथा मृगोंके साथ परस्पर प्रेम

गंगाः ॥८॥ यत्र विश्वेश्वरः शम्भुश्छिन्नब्रह्मणः शिरः। यत्रो-
त्पन्ना महावेत्रा भूतानां दण्डतां ययुः ॥ ९॥ उमया यत्र सहितः
शंकरो नीललोहितः। ऋषिभिः प्रार्थितः पूर्वं ददौ यत्र गिरिः
सुताम् ॥१०॥ शंकराय जगद्धात्रे शिवाय जगतीपते। यत्र लेभे
हरिश्चक्रमुपास्य बहुभिर्दिनैः ॥ ११ ॥ पुष्करैः शतपत्रैश्च
नेत्रेण च जगत्पतिम्। गुहां यत्र समाश्रित्य क्रीडंते सिद्ध-
किन्नराः ॥ १२ ॥ प्रियाभिः सह मोदंते पिबंते मधु चोत्तमम्।
यमुद्धृत्य भुजैः सर्वैः पौलस्त्यो विरराम ह ॥ १३ ॥ तमारुह्य
महाशैलं देवकीनंदनो हरिः। मानसस्योत्तरं तीरं जगाम यदु-
नन्दनः ॥ १४ ॥ तपश्चर्तुं किल हरिर्विष्णुः सर्वेश्वरः शिवः।
जटी चीरी जगन्नाथो मानुषं वपुरास्थितः ॥ १५ ॥ तपसे धृत-

करके वनक्रीड़ामें रत रहते हैं और तहाँसे सागरगामी गंगा
और नदियाँ निकलती हैं ६-८ और जहां विश्वेश्वर शंभुने ब्रह्माजी
के शिरको काट दिया था, और जहाँ उत्पन्न हुए बेत भूतोंके
दण्ड बन गए हैं, जहाँ पार्वतीके साथ नीललोहित भगवान् शिव
रहते हैं; और हे पृथ्वीपते! जहाँ पर ऋषियोंके प्रार्थना करने
पर हिमाचलने जगत्के धाता शिव शंकरको अपनी पुत्री दी थी,
और जहाँपर हरिने जगत्पति शिवकी पुष्कर और शतपत्र
नामक कमलोंसे तथा अपने नेत्रसे उपासना कर बहुत दिनोंमें
चक्र पाया था और जहाँ पर सिद्ध किन्नर गुहामें जाकर
क्रीड़ा करते हैं १०—१२ और अपनी प्रियाओंके साथ उत्तम
मधुका पान करके आनन्द करते हैं, और जिसको अपनी सब
भुजाओंसे उठा कर रावण शान्त होगया था १३ देवकीनन्दन
हरि उस महापर्वतपर चढ कर मानसरोवरके उत्तर तटपर जाने
लगे १४ हरि विष्णु सर्वेश्वर शिव जटी चीरी जगत्के स्वामी
मनुष्य शरीरमें स्थित होकर तप करनेको चलने लगे १५

चित्तस्तु शुचौ भूमावुपाविशत् । अवरुह्य ततो यानाद्गरुडाद्वेद-
संमितात् । १६ । द्वादशाब्दं तपश्चर्तुं मनो दध्रे ततो हरिः ।
फाल्गुनेन तु मासेन समारेभे जगत्पतिः । १७ । शाकभक्षः
कृतजपो वेदाध्ययनतत्परः । किमुद्दिश्य जगन्नाथस्तपश्चरति
मानवः ॥ १८ ॥ तं न विद्मो यथाकामं दुर्ज्ञेयेश्वरचिंतना ।
तपस्यति तदा विष्णौ पर्वते भूतसेविते ॥ १९ ॥ गरुडः कश्यपसुत
इंधनानि समाचिनोत् । होमार्थं वासुदेवस्य चरतस्तप उत्तमम् २०
चक्रराजोथ पुष्पाणि संचिनोति तदा हरेः । दिक्षु सर्वासु सर्वत्र
ररक्ष जलदस्तदा ॥२१॥ खड्ग आहृत्य यत्नेन कुशान् सुबहुशा-
स्तदा । गदा कौमोदकी चैव परिचर्यां चकार ह ॥ २२ ॥ धनुः-
प्रवरमत्युग्रं शार्ङ्गं दानवभीषणम् । स्थितं हि पुरतस्तस्य यथेष्टं
भृत्यवत् स्वयम् ॥ २३ ॥ जुहोति भगवान् विष्णुरेधोभिर्बहुभिः

तपस्या करनेका मनमें विचार करनेवाले हरि शुद्धभूमि
पर उतरे, वेदसम्मित गरुडपरसे उतर कर हरिने बारहवर्ष तक
तप करनेका विचार किया और उन जगत्पतिने फागुन माससे
तप करना आरम्भ कर दिया ॥ १६ ॥ १७ ॥ (प्राणी कहने
लगे, कि–) यह हरि मानव बन शाकका भक्षण करके और वेदा-
ध्ययनमें तत्पर रहकर और जप करके न जाने किस उद्देशको
मनमें रखकर तपश्चर्या कर रहे हैं ॥ १८ ॥ इस बातको हम
नहीं जानते, क्योंकि–ईश्वरके विचारोंको जानना कठिन है १९
तब उत्तम तप करते हुए वासुदेवके होमके लिए कश्यपजीके पुत्र
गरुड़ ईंधन इकट्ठा करने लगे ॥ २० ॥ चक्रराज सुदर्शन हरिके
लिए पुष्प लाने लगा और पाञ्चजन्य शंख सब दिशाओंमें रक्षा
करने लगा ॥ २१॥ और नन्दक खड्ग यत्नपूर्वक कुशोंका संग्रह
करने लगा और कौमोदकी गदा परिचर्या करने लगी ॥ २२ ॥
और दानवोंको डराने वाला श्रेष्ठ और अति उग्र शार्ङ्ग धनुष

सदा । आज्यादिभिस्तदा इन्धैरग्निं संपूज्य माधवः ॥२४॥ सप्तार्चिषः समाप्तिं च सम्यस्तव्यस्ततः कृती । एकस्मिन्नेकदा मासे भुंजानो नियतात्मवान् ॥ २५ ॥ द्वितीये त्वथ पर्याये भुंजन्नेकेन केशवः । एकस्मिन्वत्सरे भुंजंस्तथैवैकेन केनचित् ॥ २६ ॥ समाप्य तत्तपः सर्वमेवमेव जगत्पतिः । द्वादशाब्दे तथा पूर्णेऽऊनमासे जगत्पतिः ॥ २७ ॥ जुह्वन्नग्निं समास्थाय पठन् मन्त्रं जनार्दनः । आरण्यकं पठन् विष्णुः साक्षात् सर्वेश्वरो हरिः । आस्ते ध्यानपरस्तत्र पठन् प्रणवमुत्तमम् ॥ २८ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां कृष्णतपोवर्णनं नाम चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

वैशम्पायन उवाच । तत इन्द्रः स्वयं तत्र आरुह्य गजमुत्तमम् । द्रष्टुं सर्वेश्वरं विष्णुं तपस्यन्तं समाययौ ॥ १ ॥ ततो यमस्तु

उनके सामने भृत्यकी समान खड़ा रहता था ॥ २३ ॥ भगवान् विष्णु तब घृत आदिसे अग्निकी भलीप्रकार पूजा करके बहुतसे काष्ठोंसे अग्निमें होम करते थे ॥ २४ ॥ इस प्रकार वह कुशल-पुरुष सात लपटों वाले अग्निकी समष्टि और व्यष्टि रूपमें पूजा करते थे, फिर वह नियतात्मा एक मासमें एक दिन भोजन करने लगे ॥ २५ ॥ फिर वह केशव दो मासमें एक दिन भोजन करने लगे, फिर वर्षमें एक दिन किसी एक अन्नका ही भक्षण करने लगे ॥ २६ ॥ इस प्रकार जगत्पतिने अपना सब तप समाप्त सा करलिया, और जब बारह वर्ष पूर्ण होनेमें एक मास रह गया तब जगत्पति जनार्दन अग्निमें होम कर आरण्यकभागके मन्त्रों का पाठ करने लगे, फिर वह सर्वेश्वर हरि उत्तम प्रणवका पाठ करते हुए ध्यानपरायण होगए ॥ २७ ॥ चौरासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ ८४ ॥ ※ ※ ※ ※ ※

वैशम्पायनजीने कहा, कि–तदनन्तर तप करते हुए सर्वेश्वर

भगवानारुह्य महिषं वरम् । किङ्करैश्च स्वयं साक्षादाययौ भग- हुत्तमम्॥२॥प्रचेता हंसमारुह्य वारुणैश्च समन्वितः । श्वेतच्छत्रसमा- युक्तः श्वेतव्यजनवीजितः॥३॥ययौ कैलासशिखरं द्रष्टुं केशवमंजसा। अन्ये चापि तथा देवा आदित्या वसवस्तथा ॥ ४ ॥ रुद्राश्चैव तथा राजन् द्रष्टुं केशवमाययुः । सिद्धाश्च मुनयश्चैव गन्धर्वा यक्षकिन्नराः ॥५॥ सर्वाश्चाप्सरसो राजन्नृत्यगीतविशारदाः । ततो देवगणाः सर्वे कैलासं समपद्यत ॥ ६ ॥ पर्वतो नारदश्चैव तथान्ये मुनिसत्तमाः । विस्मयव्यिपनलोलाक्षाः सर्वदेवगणा- स्तथा ॥ ७ ॥ आश्चर्यं खलु पश्यध्वं न भूतं न भविष्यति । योगिध्येयः स्वयं कृष्णो यत्तप्यति गुरुः स्वयम् ॥ ८ ॥ ततः समाप्ते क्रतौ जगत्पतेर्व्रते समूले सुरलोकेश्वरः शिवः । द्रष्टुं हरिं लोकहितैषिणं प्रभुं ययौ भवान्या सह भूतसंघैः ॥ ९ ॥ सार्धं

विष्णुको देखनेके लिए इन्द्र श्रेष्ठ हाथी पर सवार होकर आगया१ और भगवान् यम श्रेष्ठ भैंसे पर सवार होकर और अपने किंकरों को साथमें लेकर श्रेष्ठ पर्वत पर आगए ॥ २ ॥ और प्रचेता हंस पर सवार हो वरुणगणोंको साथमें ले केशवको देखनेके लिए कैलासके शिखरकी ओर चला, उस समय उस पर श्वेत छत्र लग रहा था और श्वेत व्यजन डुल रहा था हे राजन् ! दूसरे भी देवता आदित्य वसु और रुद्र केशवको देखनेके लिए वहाँ आए, तदनन्तर हे राजन् ! सिद्ध मुनि गंधर्व यक्ष और नाचने गानेमें चतुर सब अप्सराएँ कैलासपर्वत पर आगए ३-६ तदनन्तर पर्वत नारद और मुनिसत्तम तथा सब देवतागण विस्मयसे अपने नेत्रोंको चञ्चल करके (कहने लगे कि-) ७ इस आश्चर्यकी बातको तो देखो, योगियोंके ध्यान करने योग्य गुरु श्रीकृष्ण ही स्वयं तप कर रहे हैं, ऐसा आश्चर्य तो न हुआ है और न होगा ८ ऐसा कौन सा कार्य होगा, इसका

कुबेरेण सगुह्यकेन सखा प्रियेण प्रभुरीश्वरः शिवः । स्वयं जटी भूतपिशाचसंवृतः शरी च खड्गी शशिखण्डशेखरः १० अन्येन बिभ्रन्महतीं स डिण्डिमां शूलञ्च बिभ्रन्न परेण बाहुना करेण बिभ्रत् सह दर्भकुण्डिकां करेण साक्षादपरेण दीपिकाम् ।११। गुणान् स रुद्राक्षकृतान्प्रमुद्वहन् जटाभिरापिंगलताम्रमूर्तिः । विराजमानः प्रभुरिन्दुशेखरो वृषेण युक्तः स सितेन शंकरः ॥ १२ ॥ उमास्तनद्वन्द्वसमर्पिताननस्तया समाश्लिष्य निपीडिताधरः । गङ्गाम्बुविक्षालितचन्द्रशेखरस्तां चापि वीक्षन् बहुशस्तदा शिवः ॥ १३ ॥ भस्मांगरागैरनुलेपिताननो महोरगैर्बद्धजटः सनातनः । शिरः कपालैः परिशोभितस्तदा द्रष्टु-

---

यह विचार करने लगे, तदनन्तर जब जगत्पतिका व्रत पूर्ण हो गया, तब सर्वोंके ईश्वर शिव भवानीको और भूतोंके टोलोंको अपने साथमें लेकर लोकहितैषी प्रभुको देखनेके लिए चलदिए ६ उससमय प्रभु ईश्वर शिवके साथ उनकेप्रिय मित्र कुबेर गुह्यकोंको साथ लेकर चल रहे थे शिव स्वयं जटा धारण कर रहे थे, धनुष और खड्गको धारण कररहे थे और चन्द्रखण्डके शेखर वाले थे १० एक हाथसे दर्भकुण्डिकाको पकड़रहे थे और दूसरे हाथसे दीपिकाको पकड़रहे थे११एक हाथसे बड़े भारी डिण्डिम को धारण कर रहे थे और एक हाथसे शूलको धारण रहे थे रुद्राक्षकी मालाको पहर रहे थे, और जटाओंके कारण उनकी मूर्त्ति पिंगल प्रतीत होरही थी, ऐसे चन्द्रशेखर प्रभु शंकर श्वेत वृषभपर विराजमान होरहे थे१२उमाके दोनों स्तनोंमें शिर रखने वाले और उसके आलिंगन करने पर अधरको पीड़ित करने वाले गंगाके जलसे धुले हुए चन्द्रशेखर वाले शिव उमाको अधिकतर देखते हुए चल रहे थे ॥१३॥ उनका मुख भस्मराग से सन रहा था, और उन सनातन पुरुषकी जटामें बड़े २ साँप

हरिं केशवगरुडध्वजाव्हिक्रः ॥ १४ ॥ यमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तं पुरातनं सांख्यनिबद्धहृदयः। यस्यापि देवस्य गुणान् समग्रांस्तत्त्वांश्चतुर्विंशतिमाहुरेके ॥ १५ ॥ यमाहुरेकं पुरुषं पुरातनं कणादनामानमजं महेश्वरम्। दक्षस्य यज्ञं विनिहत्य यो वै विनाश्य देवानसुरान् सनातनः ॥ १६ ॥ यं विदुर्भूततत्त्वज्ञं भूतेशं भूतभावनम्। वामदेवं विरूपाक्षमाहुस्तत्त्वविदो जनाः ॥ १७ ॥ महादेवं सहस्राक्षं कालमूर्तिं चतुर्भुजम्। रुद्रं रोदननामानमाहुर्विश्वेश्वरं शिवम् ॥ १८ ॥ अप्रमेयमनाधारमाहुर्माहेश्वरा जनाः। नग्नं नग्नपरीतं तु नागिनं त्वग्निवर्चसम् ॥ १९ ॥ आहुर्विश्वेश्वरं शान्तं शिवमादिं सनातनम्। तस्य मूर्तिरिमाः सर्वा धराद्याः सकला नृप ॥ २० ॥ भूमिरापोऽनलो वायुः खं

बँध रहे थे और शिर कपालोंसे सुशोभित होरहा था, ऐसे शिव केशव हरिको देखनेके लिए चलदिये ॥१४॥ सांख्य शास्त्रका ज्ञान रखने वाले पुरुष जिनको आत्मपुरुष महान् और पुरातन कहते हैं और एक पुरुष जिन देवके चौबीस गुणरूप तत्त्वोंका वर्णन करते हैं ॥ १५ ॥ जिनको एक पुरुष पुरातन कणाद नाम वाला अज महेश्वर कहते हैं और जिन सनातन देवने दक्षके यज्ञ का विनाश करके देवता और असुरोंको नष्ट कर दिया था १६ जिनको पुरुष भूतोंके तत्त्वका जाननेवाला भूतेश और भूतभावन जानते हैं और तत्त्ववेत्ता प्राणी जिनको विरूपाक्ष वामदेव कहते हैं ॥ १७ ॥ महादेव सहस्राक्ष कालमूर्ति चतुर्भुज और रोदन नाम वाला विश्वेश्वर शिव कहते हैं ॥१८॥ और महेश्वर के भक्त जिनको अप्रमेय अनाधार नग्न नग्नपरीत और अग्निवर्चा कहते हैं ॥ १९ ॥ और विश्वेश्वर शान्त शिव आदि तथा सनातन कहते हैं, हे राजन्! ये पृथ्वी आदि सब उन्हींकी मूर्त्ति हैं ॥ २० ॥ भूमि जल अग्नि वायु आकाश सूर्य चन्द्रमा अग्नि

सूर्यश्च तथा शशी । अग्निश्च यजमानश्च प्रकृतिश्चैवमष्टधा २१
महादेवो महायोगी गिरीशो नीललोहितः । आदिकर्ता महाभर्ता
शूलपाणिरुमापतिः॥ द्रष्टुं विश्वेश्वरं विष्णुम्भूतसंघैः समाययौ॥
इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां
शिवागमनकथनं नाम पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥
वैशम्पायन उवाच । तस्याग्रे समपद्यन्त भूतसंघाः सहस्रशः॥
घण्टाकर्णो विरूपाक्षः कुण्डधारः समुद्रहः१ दीर्घरोमा दीर्घभुजो
दीर्घबाहुर्निरञ्जनः । उरुनेत्रः शतमुखः शतग्रीवः शतोदरः ॥२॥
कुण्डोदरो महाग्रीवः स्थूलजिह्वो द्विबाहुकः । पार्श्ववक्त्रः सिंह-
मुख उन्नतांसो महाहनुः ॥३॥ त्रिबाहुः पञ्चबाहुश्च व्याघ्रवक्त्रः
सिताननः । एते चान्ये च बहवो दीर्घास्या दीर्घलोचनाः ॥४॥
नृत्यन्तः प्रहसन्तश्च स्फोटयन्तः परस्परम् । तथान्ये घोररूपाश्च

और यजमान और आठ प्रकारकी प्रकृति (ये सब महादेवकी) मूर्ति हैं ॥ २१ ॥ ऐसे महायोगी गिरीश नीललोहित आदिकर्ता महाभर्त्ता शूलपाणि उमापति विश्वेश्वरको देखनेके लिए भूत-संघोंको साथमें लेकर चल दिये ॥ २२ ॥ पिचासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ ८५ ॥ छ छ छ छ छ

वैशम्पायनजीने कहा, कि–उनके आगे भूतोंके हजारों टोले उपस्थित होगए, घण्टाकर्ण विरूपाक्ष कुण्डधार कुमुद्रह दीर्घरोमा दीर्घभुज दीर्घबाहु निरञ्जन उरुनेत्र शतमुख शतग्रीव शतोदर कुण्डोदर महाग्रीव स्थूलजिह्व द्विबाहुक पार्श्ववक्त्र सिंहमुख उन्नतांस महाहनु त्रिबाहु पञ्चबाहु व्याघ्रवक्त्र सितानन ये तथा और भी बहुतसे बड़े मुख और बडे नेत्रों वाले गण आपसमें हँसने लगे; नृत्य करने लगे और भुजाओंपर शब्द करने लगे, इसके अतिरिक्त दूसरे भयंकर रूपवाले और बेडौल मुख वाले, प्रेत भक्षी प्रेतवाह मांस और रक्तका आहार करनेवाले गण शर्वोका

तथान्ये विकृताननाः ॥ ५ ॥ प्रेतभक्ष्याः प्रेतवाहा मांसशोणित-
भोजनाः । शवानि सुबहून्याशु भक्षयन्तस्ततस्ततः ॥६॥ पिबन्तो
रुधिरं घोरं खण्डयतः शवान् बहून् । कराला विकृता दीर्घा
दीर्घाश्मनिस्नायुसन्तताः ॥७॥ नानाविधाः सुवीराश्च शूलाग्र-
प्रोतमानुषाः । शिरोमालावृता केचिदांत्रपाशावपाशिताः ॥ ८ ॥
डिंडिमैरट्टहासैश्च नादयन्तो वसुन्धराम् । कपालिनो भैरवाश्च
जटिला मुण्डिनस्तथा ॥ ९ ॥ एवं बहुविधा घोराः पिशाचा
विकृताननाः । तथान्ये मुनिवीराश्च ध्यायन्तः परमेश्वरम् १०
पठन्तो वेदवाक्यानि सांगानि विविधानि च । कुण्डिकास्थकराः
केचित् केचित् कुशविचारिणः ॥ ११ ॥ कौपीनवसनाः केचित्
केचित् कार्पाससंवृताः । स्तुवंतः शंकरं भक्त्या स्तोत्रैर्माहेश्वरै-
स्तथा ॥ १२ ॥ एकत्र ते मुनिगणा अपरत्र गणास्तथा । अन्यत्र
सिद्धगन्धर्वाः प्रियाभिः सह संगताः ॥ १३ ॥ नृत्यंति नृत्य-
कुशला गायंतिस्म च कन्यकाः । विद्याधरास्तथान्यत्र स्तुवंत

भक्षण करनेलगे ॥६नाड़ी और धमनिमात्र बचेहुए कराल लम्बे
चौड़े गण लहासोंको चीरकर रक्त पीते हुए (इनके आगे चलने
लगे) ७उनमें अनेक प्रकारके वीर शूलके अग्रभागमें मनुष्योंको
पूररहे थे और कोई मुण्डमाल तथा आन्त्रपाशको धारण कररहे
थे, तथा बहुतसे मुनि भी परमेश्वरका ध्यान करते हुए, अङ्ग-
सहित वेदवाक्योंको पढते हुए कुण्डिका और कुशाओंको हाथमें
लेकर चल रहे थे ॥ ८–११ ॥ कुछ कौपीन धारण कररहे थे
और कुछ कपासके वस्त्र धारण कर रहे थे और शिवस्तोत्रोंसे
भक्तिपूर्वक शंकरकी स्तुति कर रहे थे १२एक ओर मुनि चलरहे
थे एक ओर गण चल रहे थे और एक ओर सिद्धगन्धर्व अपनी
प्रियाओंको लेकर चल रहे थे १३ नृत्यकुशल विद्याधर और
कन्याएँ शंकर शिवकी उपासना कर गाने लगीं और नाचने

शंकरं शिवम् ॥ १४ ॥ ननृतुस्तस्य पुरतो गच्छन्तोप्सरसांगणाः ।
एवमेतैर्महाघोरैः पिशाचैर्भूतकिन्नरैः ॥१५॥ मुनिभिश्चैव ममथैः
सार्धं शर्वः समाययौ । यत्र विश्वेश्वरो विष्णुस्तपस्तेपे सुदारु-
णम् ॥ १६ ॥ यत्र ते लोकपालाश्च तिष्ठन्ति स्म दिदृक्षवः ।
उमया लोकमात्रिन्या गंगया चन्द्रशेखरः ॥ १७ ॥ स सर्वलोक-
प्रभवो भवो विभुर्जटी च साक्षात् प्रणवात्मकः कृती । द्रष्टुं हरिं
विष्णुमुदारविक्रमो ययौ यथेष्टं पिशिताशनैर्वृतः ॥ १८ ॥
इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां
महादेवागमने षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

वैशम्पायन उवाच । एवं बहुविधैर्भूतैः पिशाचैरुरगैः सह ।
आगत्य भगवान् रुद्रः शंकरो वृषवाहनः ॥ १ ॥ ददर्श विष्णुं
देवेशं तपन्तं तप उत्तमम् । जुह्वानमग्निं विधिवद्द्रव्यैर्मेध्यैर्जगत्-
प्रभुम् ॥ २ ॥ गरुडाहृतकाष्ठं तु जटिलं चीरवाससम् । चक्रेणा-

लगीं १४ उनके सामने चलती हुई अप्सरायें नाचने लगीं, इस प्रकार पिशाचोंसे और महाभयंकर भूत किन्नरोंसे मुनियोंसे और प्रमथ गणोंसे घिरे हुए शिव तहाँको चलदिये जहाँ पर विश्वेश्वर विष्णु दारुण तपकर रहे थे ॥ १५—१६ ॥ और जहाँ पर वे लोकपाल उनका दर्शन करनेकी इच्छासे खडे हुए थे (तहाँको शिव चलदिये) संसारका कल्याण करनेवाली गङ्गा और उमाको साथमें लेकर सब लोकोंके उत्पत्तिस्थान भव विभु जटी प्रणवात्मक कृती चन्द्रशेखर उदारविक्रम शिव मांस-भक्षियोंको साथमें लेकर हरिको देखने चल दिये ॥१७॥१८॥
छियासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ ८६ ॥ ❀ ❀ ❀

वैशम्पायनजी कहते हैं, कि—इस प्रकार बहुतसे पिशाचोंके और सर्पोंके साथ वृषवाहन भगवान् शंकरने आकर ॥ १ ॥ देवेश विष्णुको देखा; वह उत्तम तप कर रहे थे, और वह जगत्-

नीतकुसुमं खड्गानीतकुशं तथा ॥ ३ ॥ गदाकृतसमाचारं देव-
देवं जनार्दनम् । इन्द्राद्यैर्देवसंघैश्च वृतं मुनिगणैः सह ॥ ४ ॥
अचिन्त्यं सर्वभूतानां ध्यायन्तं किमपि प्रभुम् । अवरुह्य वृषाच्छर्वो
भगवान् भूतभावनः ॥ ५ ॥ ततः प्रीतः प्रसन्नात्मा ललाटाक्ष
उमापतिः । ततो भूतपिशाचाश्च राक्षसा गुह्यकास्तथा ॥ ६ ॥
ऋषयो विप्रवर्याश्च जयशब्दं प्रचक्रिरे । जय देव जगन्नाथ
जय रुद्र जनार्दन ॥ ७ ॥ जय विष्णो हृषीकेश नारायणपरा-
यण । जय रुद्र पुराणात्मन् जय देव हरेश्वर ॥ ८ ॥ आदिदेव
जगन्नाथ जय शंकर भावन । जय कौस्तुभदीप्ताङ्ग जय भस्म-
विराजित ॥ ९ ॥ जय चक्रगदापाणे जय शूलिंस्त्रिलोचन । जय

पति अनेक प्रकारके पवित्र द्रव्योंसे शास्त्रानुसार अग्निहोत्र कर रहे थे ॥ २ ॥ गरुड़ उनके लिए काष्ठ ला रहे थे और विष्णु जटा धारण कर रहे थे-तथा चीरवस्त्र धारण कर रहे थे; चक्रने पुष्प लाकर उनके सामने धर दिए थे, और खड्गने कुश लाकर रखदिये थे, गदा उनकी रक्षा कर रही थी तथा इन्द्र आदि देवता और मुनि उनको घेरे हुए थे उन सब प्राणियोंसे अचिन्त्य किसी वस्तुका ध्यान करते हुए विष्णुके पास भूतभावन भगवान् शिव वृषभ परसे उतर कर पहुँच गए ॥ ३-५ ॥ तदनन्तर जिनके मस्तकमें नेत्र है ऐसे उमापति प्रसन्न हुए तथा भूत पिशाच राक्षस और गुह्यक तथा मुनि और श्रेष्ठ ब्राह्मण गणों प्रसन्न होकर जयजयकार करने लगे, कि-हे देव ! हे जगन्नाथ ! आपकी जय हो, हे रुद्र ! हे जनार्दन ! आपकी जय हो ॥ ६ ॥ औ हे विष्णो ! हे हृषीकेश ! हे नारायणपरायण आपकी जय हो, हे रुद्र ! हे पुराणात्मन् ! आपकी जय हो, हे देव ! हे हरेश्वर ! आपकी जय हो ॥ ८ ॥ हे आदिदेव ! हे शंकरभावन ! आपकी जय हो, हे कौस्तुभमणिसे दमकते हुए अङ्गवाले ! आपकी जय

मौक्तिकदीप्तांग जय नागविभूषण ॥ १० ॥ इति ते मुनयः सर्वे प्रणाम चक्रिरे हरिम् । तत उत्थाय भगवान् दृष्ट्वा देवमवस्थितम् ॥ ११ ॥ वृषध्वजं विरूपाक्षं शंकरं नीललोहितम् । ततो हृष्टमना विष्णुस्तुष्टाव हरमीश्वरम् ॥ १२ ॥ श्रीभगवानुवाच । नमस्ते शितिकण्ठाय नीलग्रीवाय वेधसे । नमस्ते शोचिषे अस्तु नमस्ते उपवासिने ॥ १३ ॥ नमस्ते मीढुषे अस्तु नमस्ते गदिने हर । नमस्ते विश्वतनवे वृषाय वृषरूपिणे ॥ १४ ॥ अमूर्ताय च देवाय नमस्तेऽस्तु पिनाकिने । नमः कुब्जाय कूपाय शिवाय शिवरूपिणे ॥ १५ ॥ नमस्तुंडाय तुण्डाय नमस्तुण्डिटाय च । नमः शिवाय शान्ताय गिरिशाय च ते नमः ॥ १६ ॥ नमो हराय हिताय नमो हरिहराय च ।

हो, हे भस्मसे शोभित ! आपकी जय हो ॥ ९ ॥ हे चक्र और गदाको हाथमें रखने वाले आपकी जय हो, हे शूलधारी ! हे त्रिलोचन ! आपकी जय हो, हे मौक्तिकदीप्ताङ्ग ! आपकी जय हो, हे नागविभूषण ! आपकी जय हो ॥ १० ॥ इस प्रकार सब मुनियोंने हरिको प्रणाम किया, तदनन्तर भगवान् विष्णु वृषभध्वज विरूपाक्ष नीललोहित शंकरको खड़ा हुआ देख कर मन में प्रसन्न होकर ईश्वर हरकी स्तुति करने लगे ॥ ११ ॥ १२ ॥ श्रीभगवानने कहा, कि शितिकण्ठ नीलग्रीव वेधाके लिए प्रणाम है, और आप दीप्तिमानके लिए प्रणाम है, उपवासीके लिए प्रणाम है ॥ १३ ॥ मीढुष शिवको प्रणाम है, हे हर ! आप गदाधारीको प्रणाम है, संसाररूप शरीर वालेके लिए प्रणाम है, वृषरूपीके लिए और वृषके लिए प्रणाम है १४ अमूर्त देव पिनाकीके लिए प्रणाम है, कुब्ज कूपवासी शिव और कल्याणमय रूप वालेके लिए प्रणाम है ॥ १५ ॥ तुण्ड (सर्वभक्षक मुखरूप) तुण्ड (तुष्टिमान्) तुण्डिटुट (हिंस्र) शिवके लिए प्रणाम है,

नमोऽघोराय घोराय घोरघोरप्रियाय च ॥ १७ ॥ नमोऽघंटाय घण्टाय नमो घटिघटाय च । नमः शिवाय शान्ताय गिरीशाय च ते नमः ॥ १८ ॥ नमो विरूपरूपाय पुराय पुरहारिणे । नम आद्याय बीजाय शुचयेऽष्टस्वरूपिणे ॥ १९ ॥ नमः पिनाकहस्ताय नमः शूलासिधारिणे । नमः खट्वाङ्गहस्ताय नमस्ते कृत्तिवाससे ॥ २० ॥ नमस्ते देवदेवाय नम आकाशमूर्तये । हराय हरिरूपाय नमस्ते तिग्मतेजसे ॥ २१ ॥ भक्तप्रियाय भक्ताय भक्तानां वरदायिने । नमोस्तु मूर्तये देव जगन्मूर्तिधराय च ॥ २२ ॥ नमश्चन्द्राय देवाय सूर्याय च नमो नमः । नमः प्रधानदेवाय भूतानां पतये नमः ॥ २३ ॥ करालाय च मुण्डाय विकृताय

और शिव शान्त गिरिश शिवके लिए प्रणाम है १६ हरके लिए हिम अर्थात् रेचकपूरक दोनों रूप वालेके लिए और हरिहरके लिए प्रणाम है, घोर अघोर और घोरघोरप्रियके लिए प्रणाम है ॥१७॥ अघण्टके लिए प्रणाम है घण्टा वालेके लिए प्रणाम है और रचयिताओंके रचयिताको भी प्रणाम है, शिव शान्त गिरीशके लिए प्रणाम है १८ हविरूप रूप पुरहारी और पुररूपके लिए प्रणाम है, आद्य बीज शुचि और पृथ्वी आदि अष्ट रूप वालेको प्रणाम है १९ पिनाकहस्तके लिए प्रणाम है, शूल और तलवार धारण करने वालेके लिए प्रणाम है, खट्वांगको हाथमें धारण करने वालेके लिए प्रणाम है और चर्मवस्त्रधारीके लिए प्रणाम है २० देवदेवके लिए प्रणाम है, आकाशमूर्तिके लिए प्रणाम है, अति तीखे तेज वाले हरिरूपी हरके लिए नमस्कार है २१ भक्तोंके प्रिय भक्त और भक्तोंको वरदान देने वाले जगत् भरकी मूर्तियोंमें व्याप्त मूर्तिस्वरूप शंकरको प्रणाम है २२ चन्द्र और सूर्यमें व्याप्त देवके लिए नमस्कार है, प्रधानदेव और भूतोंके पतिके लिए नमस्कार है ॥२३॥ कराल मुण्ड

कपर्दिने । अजाय च नमस्तुभ्यं भूतभावनभावन ॥ २४ ॥ नमोस्तु हरिकेशाय पिंगलाय नमो नमः । नमस्तेऽभीषुहस्ताय भीरुभीरुहराय च ॥ २५ ॥ हराय भीतिरूपाय घोराणां भीतिदायिने । नमो दक्षमखघ्नाय भगनेत्रापहारिणे ॥ २६ ॥ उमापते नमस्तुभ्यं कैलासनिलयाय च । आदिदेवाय देवाय भवाय भवरूपिणे ॥ २७ ॥ नमः कपालहस्ताय मनोजमथनाय च । त्र्यम्बकाय नमस्तुभ्यं त्र्यक्षाय च शिवाय च ॥ २८ ॥ वरदाय वरेण्याय नमस्ते चन्द्रशेखर । नम इध्माय हविषे ध्रुवाय च कृशाय च २९ नमस्ते शक्तियुक्ताय नागपाशप्रियाय च । विरूपाय सुरूपाय मद्यपानप्रियाय च ३० श्मशानरतये नित्यं जयशब्दप्रियाय च । खरप्रियाय खर्वाय खराय खर-रूपिणे ३१ भद्रप्रियाय भद्राय भद्ररूपधराय च । विरूपाय सुरू-

त्रिकृत कपर्दी अज और भूतभावनके लिए नमस्कार है ॥२४॥ हरिकेशके लिए नमस्कार है, पिंगलके लिए नमस्कार है, अभीषुहस्तके लिए नमस्कार है, भीरुभीरुहरके लिए नमस्कार है २५ भीतिरूप घोर व्यक्तियोंको भी भयभीत करनेवाले, दक्षके यज्ञका विध्वंस करनेवाले और भगदेवताके नेत्रका अपहरण करनेवाले हरके लिए प्रणाम है २६ हे उमापते ! कैलासमें रहने वाले आदिदेव देव भवरूपी भव आपके लिए प्रणाम है ।२७। हाथमें कपाल धारण करने वाले और कामदेवका मथन करने वाले तीन नेत्र वाले और तीन मस्तक वाले शिवके लिए प्रणाम है२८ हे चन्द्रशेखर ! आप वरद और वरेण्यके लिए नमस्कार है, इध्म हवि ध्रुव और कृशमें व्याप्तके लिए प्रणाम है ॥ २९ ॥ शक्ति और नागपाश वालेको अभिवादन है, विरूप सुरूप और मद्यपानप्रियको नमस्कार है ३० श्मशानरति जय शब्दको प्रिय समझने वाले खरप्रिय खर्व खर (कर्कश) और खररूपीको प्रणाम

पाय महाघोराय ते नमः ३२ घण्टाय घण्टभूषाय घण्टभूषण-भूषिणे । तीव्राय तीव्ररूपाय तीव्ररूपप्रियाय च । ३३ । नग्नाय नग्नरूपाय नग्नरूपप्रियाय च । भूतावास नमस्तुभ्यं सर्वावास नमो नमः ३४ नमः सर्वात्मने तुभ्यं नमस्ते भूतिदायक । नमस्ते वामदेवाय महादेवाय ते नमः ३५ ननु वाक् स्तुतिरूपा ते को नु स्तोतुं प्रशक्नुयात् । कस्य वा स्फुरते जिह्वा स्तुतौ स्तुतिमतां वर ॥ ३६ ॥ क्षमस्व भगवान् देव भक्तोहं त्राहि मां हर । सर्वात्मन् सर्वभूतेश त्राहि मां सततं हर ॥ ३७ ॥ रक्ष देव जगन्नाथ लोकान् सर्वात्मना हर । त्राहि भक्तान् सदा देव भक्तप्रिय सदा हर ॥ ३८ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां विष्णुकृत ईश्वरस्तुतिर्नाम सप्ताशीतितमोऽध्यायः ८७

हे ३१ भद्रप्रिय भद्र भद्ररूपधारी विरूप सुरूप और महाघोर रूपवाले आपको प्रणाम है ३२ घण्ट घण्टभूष घण्टभूषणभूषी तीव्र तीव्ररूप और तीव्ररूपप्रियके लिए (प्रणाम है) ३३ नग्न नग्नरूप नग्नरूपप्रियके लिए प्रणाम है, हे भूतावास आपको प्रणाम है, हे सर्वावास ! आपको प्रणाम है ३४ सर्वात्माके लिए प्रणाम है; हे भूतिदायक ! आपको प्रणाम है, वामदेवके लिए नमस्कार और महादेवके लिए प्रणाम है ॥३५॥ सब वाणियें ही आपकी स्तुतिएँ हैं, इस लिए आपकी स्तुति कौन कर सकता है और हे स्तुतिमतां वर ! आपकी स्तुति करनेके लिए किसकी वाणी समर्थ होसकती है ३६ हे भगवन् देव ! क्षमा करिये, मैं आपका भक्त हूँ, आप मुझे क्षमा करिये हे सर्वात्मन् ! हे सर्वभूतेश ! हे हर ! आप मेरी सर्वदा रक्षा करिए ॥३७॥ हे जगन्नाथ हर देव ! हे भक्तप्रिय ! आप सर्वात्मभावसे मेरी रक्षा करिए; हे देव ! आप भक्तोंकी सर्वदा रक्षा करिए ॥ ३८ ॥

वैशम्पायन उवाच । ततो वृषध्वजो देवः शूली साक्षादुमापतिः । करं करेण संस्पृश्य विष्णोश्चक्रधरस्य ह १ प्रोवाच भगवान् रुद्रः केशवं गरुडध्वजम् । शृण्वतां सर्वदेवानां मुनीनां भावितात्मनाम् २ किमिदं देवदेवेश चक्रपाणे जनार्दन । तपश्चर्या किमर्थं ते प्रार्थना तव का विभो ३ स्वयं विष्णुर्भवान्नित्यं तपस्त्वं तपसां हरे । पुत्रार्थं यदि ते देव तपश्चर्या जनार्दन ४ पुत्रो दत्तो मया देव पूर्वमेव जगत्पते । शृणु तत्रापि भगवन् कारणं कारणात्मक ५ तपश्चर्तुं प्रवृत्तोऽहं कुतश्चित् कारणाद्धरे । वर्षायुतं महाघोरं पुरा कृतयुगे तदा ६ भवानी तत्र मे देव परिचर्तुं तदाभवत् । पित्रा नियुक्ता देवेश उमैषा वरवर्णिनी ७ भीत इन्द्रस्तदा देव मारं मां प्रेषयत्तदा । मधुना सह संयुक्तो मारो मामागतस्तदा ८ तस्यं मामकरोत्तत्र वाणस्य प्रेषितस्य

वैशम्पायनजीने कहा, कि- तदनन्तर वृषभध्वज शूलधारी उमापति शंकरने अपने हाथसे चक्रधर विष्णुके हाथको पकड़ लिया १ फिर भगवान् रुद्र पवित्र अन्तःकरण वाले सब देवताओंके सुनते हुए गरुड़ध्वज केशवसे कहने लगे २ हे चक्रपाणे जनार्दन ! आप यह क्या कर रहे हैं आप किस लिए तपस्या कर रहे हैं और हे विभो ! आपकी क्या प्रार्थना है ३ हे हरे ! आप स्वयं विष्णु हैं, इस लिए तपोंके भी तप हैं, हे जनार्दन देव ! यदि आप पुत्रके लिए तपस्या कर रहे हों तो । ४ । हे जगत्पते ! मैंने आपको पहिले ही पुत्र दे दिया है हे कारणात्मक ! इसका कारण भी आप सुनिए ५ हे हरे ! मैंने किसी कारणसे पहिले कृतयुग में एक लाख वर्षतक महाघोर तप करना आरम्भ करदिया था हे देव ! उस समय भवानी मेरी सेवा करती थी हे देवेश ! उस वरवर्णिनी उमाको उसके पिताने इस काम पर नियुक्त किया था ॥ ६ ॥ ७ ॥ उस समय इन्द्र डर गया और उसने कामदेव

ह । एना मां सेवते तत्र दानात् पुष्पादिना हरे ६ ततः क्रुद्धोऽहं गमवं दृष्ट्वा मारं तथाविधम् । क्रुद्धस्य मम देवेश नेत्रादग्निः पपात ह १० सोऽयमग्निस्तदा मारं भस्मसात् कृतवान् हरे । अचिंतयं तदा विष्णो शक्रस्यैतच्चिकीर्षितम् ॥ ११ ॥ ततः प्रभृति देवेश दया तं मति वर्तते । ब्रह्मणा च नियुक्तोस्मि प्रीतः स्तत्र जनार्दन । १२ । नियुक्तः पुत्ररूपेण स ते देव जगत्पते । ज्येष्ठस्तव सुतो देव प्रद्युम्नेत्यभिविश्रुतः । १३ । स्मरं तं विद्धि देवेश नात्र कार्या विचारणा । इत्युक्त्वा पुनराहेदं याथात्म्यं दर्शयन्निव १४ मुनीनां श्रोतुकामानां याथात्म्यं तत्र सत्तमः । अंजलिं संपुटं कृत्वा विष्णुमुद्दिश्य शंकरः । १५ । उमया सार्ध-

---

को मेरे पास भेजा तब चैत्रमासमें कामदेव मेरे पास आया ८ और उसने बाणका निशाना ताक कर मुझे लक्ष्य बनाया, हे हरे ! इस प्रकार पुष्प आदिका दान कर वह मेरी सेवा करने लगा ६ कामदेवकी ऐसी दशा देखकर मुझे क्रोध चढ़ आया और क्रोध करते समय मेरे नेत्रोंमेंसे अग्नि निकलने लगी ॥१०॥ हे हरे ! उस अग्निने कामदेवको भस्म करदिया हे विष्णो ! उस समय यह सब करतूत मुझे इन्द्रकी ही मालूम हुई । ११ । हे देवेश ! तबसे मुझे उसके ऊपर दया आरही है और ब्रह्माजी ने भी मुझे उसके ऊपर दया करनेको कहा था, हे जनार्दन ! तबसे मैं उसके ऊपर प्रेम रखता हूँ १२ हे जगत्पते देव ! वह आपके पुत्ररूपमें नियुक्त हुआ है, वह आपका ज्येष्ठ पुत्र होगा और प्रद्युम्न नामसे प्रसिद्ध होगा १३ उसको आप कामदेव समझें, और अब कुछ विचार न करें, इस प्रकार कह कर वह अपने आत्मस्वरूपको दिखाते हुए कहने लगे ॥ १४ ॥ उस समय मुनि भी यथार्थ बातको जानना चाहते थे श्रेष्ठ शंकर विष्णुकी ओर हाथ जोड़ कर खड़े होगए । १५ । और उमा भी

मीशानो याथात्म्यं वक्तुमैहत । हरे कुर्वति तत्रैवमञ्जलिं कुरुसत्तम ॥ १६ ॥ मुनयो देवगन्धर्वाः सिद्धाश्च सह किन्नराः । अञ्जलिं चक्रिरे विष्णौ देवदेवेश्वरे हरौ॥१७॥ महेश्वर उवाच । यत्तत्कारणमाहुस्तत् सांख्याः प्रकृतिसंज्ञकम् । ततो महान् समुत्पन्नः प्रकृतिर्यस्य कारणम् ॥ १८॥ त्रिधा भूतं जगद्योनिं प्रधानं कारणात्मकम् । सत्वं रजस्तमो विष्णो जगदण्डं जनार्दन १९ तस्य कारणमाहुस्त्वां सांख्यप्रकृतिसंज्ञकम् । तद्रूपेण भवान् विष्णो परिणम्याधितिष्ठति ॥ २० ॥ तस्मात्तु महतो घोरादहंकारो महानभूत् । सत्वमादौ जगन्नाथ परिणामस्तथा हि सः२१ अहंकारात् प्रभो देव कारणानि महान्ति च । तन्मात्राणि तथा पंच भूतानि प्रभवन्त्युत ॥ २२ ॥ तानि स्वाप्याहुरीशानं भूता-

हाथ जोड़ कर खड़ी होगई फिर ईशान आत्माके वास्तविक स्वरूपको कहना चाहने लगे हे कुरुसत्तम ! जब शिवजीने हाथ जोड़े ॥ १६ ॥ तब मुनि देवता गन्धर्व सिद्ध और किन्नर भी देवदेवेश्वर विष्णुके अवतार श्रीकृष्णके सामने हाथ जोड़ कर खड़े होगए १७ महेश्वरने कहा, कि-सांख्यमतावलम्बी जिसको प्रकृति नाम वाला कारण कहते हैं, उससे महान् उत्पन्न हुआ प्रकृति उसका कारण है १८ वह जगत्की योनि है प्रधान कारण है और सत्व रज तथा तम रूपी तीन गुणोंमें व्याप्त है और हे जनार्दन विष्णो ! वह जगत्की अण्डस्वरूप है ॥ १९ ॥ आप को उस प्रकृतिका भी कारण और सांख्यप्रतिपादित प्रकृतिको भली प्रकार जानने वाला कहते हैं, हे विष्णो ! आप ही उसके रूपमें परिणत होकर रहते हैं २०. उस घोर महान्से महाहंकार उत्पन्न हुआ हे जगन्नाथ ! आदिमें सत्व हुआ, इस प्रकार वही अहंकार सात्विक (अहंकार) के रूपमें परिणत होगया ॥ २१॥ हे देव ! अहंकारसे पञ्चभूतोंके तन्मात्रास्वरूप बड़े, २ कारण

नीह जगत्पते । पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिश्च पञ्चमम् २३
चक्षुर्घ्राणं तथा स्पर्शो रसनं श्रोत्रमेव च । मनः षष्ठं तथा देव
प्रेरकं तत्र तत्र ह ॥ २४ ॥ कर्मेन्द्रियाणि चान्यानि वागादीनि
जनार्दन । त्वमेव तानि सर्वाणि करोषि नियतात्मवान् ॥ २५ ॥
स्वेषु स्वेषु जगन्नाथ विषयेषु तथा हरे । निवेशयसि देवेश यो-
ग्यामिन्द्रियपद्धतिम् ॥ २६ ॥ यदा त्वं रजसा युक्तस्तदा भूतानि
सृष्टवान् । यदा च सत्वयुक्तोऽसि तदा पाता जगत्त्रयम् ॥ २७ ॥
यदा त्वं तमसा कृष्णस्तदा संहरसे जगत् । त्रिभिरेव गुणैर्युक्तः
सृष्टिरक्षाविनाशने ॥ २८ ॥ वर्तसे त्रिविधां भूतिमादाय निय-
तात्मवान् । इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु नियोजयसि माधव ॥ २९ ॥
प्राणिनामुपभोगार्थमनन्तः स्थितवा जगद्गुरो । तस्मात् सर्वत्र

उत्पन्न हुए २२ हे जगत्के स्वामिन् ! आप ईशको ही पृथिवी वायु आकाश जल और पाँचवाँ अग्नि भूत कहते हैं २३ हे देव ! इनमें चक्षु नासिका स्पर्श जिह्वा और कान (ये पाँच इन्द्रियें हैं) और छठा मन इनको जहाँ तहाँ प्रेरित करता रहता है ॥२४॥ और हे जनार्दन ! वाणी आदि कर्मेन्द्रियोंको तथा दूसरी (ज्ञान) इन्द्रियोंको, अपनी आत्माको वशमें रखने वाले एक आप ही रचते हैं २५ हे जगन्नाथ देवेश ! आप उचित इन्द्रियपद्धतिका अनुसरण कर इन्द्रियोंको उनके विषयोंमें लगाते हैं ।।२६।। जब आप रजोगुणसे संयुक्त होते हैं तब प्राणियोंको रचते हैं और सत्वगुणसम्पन्न होकर तीनों लोकोंकी रक्षा करते हैं २७ और जब आप तमोगुणसे युक्त होते हैं तब जगत्का संहार करते हैं इस प्रकार आप सृष्टि रक्षा और विनाश रूप कार्योंमें तीनों गुणोंसे युक्त होते हैं २८ आप मनको वशमें रखते हैं और तीन प्रकारकी विभूतियोंसे कार्य लेते हैं, हे माधव ! आप इन्द्रियोंको इन्द्रियोंके (रूप रस आदि) विषयोंमें लगाते हैं २९ हे जगद्गुरु !

भूतेषु वर्तसे सर्वभोगवान् ॥३०॥ ब्रह्मा त्वं सृष्टिकाले तु स्थितौ विष्णुरसि प्रभो । संहारे रुद्रनामासि त्रिधामा त्वमसि प्रभो ३१ भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च । एताः प्रकृतयो देव भिन्नाः सर्वत्र ते हरे ॥३२॥ सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् । सहस्रशारः साहस्री सहस्रात्मा दिवस्पतिः ॥३३॥ भूमि सर्वामिमां प्राप्य सप्तद्वीपांससागराम् । अणुः सर्वत्रगो भूत्वा अत्यतिष्ठद्दशांगुलम् ॥ ३४ ॥ त्वमेवेदं जगत् सर्वं यद्भूतं यच्च भविष्यति । त्वत्तो विराट् प्रादुरभूत् सम्राट् चैव जनार्दन ॥३५॥ तव वक्त्राज्जगन्नाथ ब्राह्मणो लोकरक्षकः । प्रादुरासीत् पुराणात्मा षट्कर्मनिरतः सदा ॥ ३६ ॥ राजन्यस्तु तथा बाहोरासीत् संरक्षणे रतः । ऊर्वो वैश्यस्तदा विष्णोः पादाच्छूद्र उदाहृतः३७

आप उपभोग करनेके लिए सब प्राणियोंके अन्तःकरणमें रहते हैं, अतः आप सब भूतोंमें रहनेके कारण सब भोगों वाले हैं ३० हे प्रभो ! आप सृष्टिके समय ब्रह्मा होते हैं और स्थितिके समय विष्णु होते हैं और संहारके समय आपका नाम रुद्र होता है, हे प्रभो ! इस प्रकार आप तीन धाम वाले हैं ३१ हे हरे ! भूमि जल अग्नि वायु आकाश मन और बुद्धि ये सब भिन्न प्रकृतिएँ आपकी ही हैं ॥३२॥ आप सहस्र शिर वाले, सहस्र नेत्रों वाले, सहस्र चरणों वाले सहस्रचार साहस्री सहस्रात्मा और स्वर्गके स्वामी हैं ३३ आप समुद्र और सातों द्वीप वाली पृथ्वीमें व्याप्त हैं अणु बन दश अंगुलमात्र आकारमें रहते हैं ।३४। जो जगत् होगया है और जो जगत् वर्तमान है तथा जो जगत् होगा, वह सब आप ही हैं, हे जनार्दन ! आपसे ही विराट उत्पन्न हुआ है और आपसे ही सम्राट उत्पन्न हुआ है ३५ हे जगन्नाथ! आपके मुखसे सर्वदा षट्कर्मों में निरत रहने वाले पुराणात्मा लोकरक्षक ब्राह्मण उत्पन्न हुए हैं ३६ और रक्षाकार्यमें संलग्न रहनेवाले

एवं वर्णा जगन्नाथ तव देहाज्जनार्दन । मनसस्तव देवेश चंद्रमाः समपद्यत ॥ ३८ ॥ सुखकृत् सर्वभूतानां शीतांशुरमितप्रभः । अक्ष्णोः सूर्यः समुत्पन्नः सर्वप्राणिविलोचनः ॥ ३९ ॥ यस्य भासा जगत्सर्वं भासते भानुमानसौ । मुखादिन्द्रश्च अग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत ॥ ४० ॥ नाभेरभूदन्तरिक्षं तव देव जनार्दन । द्यौरासीत्तु महाघोरा शिरसस्तव गोपते ॥ ४१ ॥ पद्भ्यां भूमिः समुत्पन्ना दिशः श्रोत्राज्जगत्पते । एवं दृष्ट्वा जगत् सर्वं व्याप्य सर्वं व्यवस्थितः ॥ ४२ ॥ व्याप्य सर्वानिमाँल्लोकान् स्थितः सर्वत्र केशव । ततश्च विष्णुनामासि धातोर्व्याप्तेश्च दर्शनात्४३ नारा आपः समाख्यातास्तासामयनमादितः । यतस्त्वं भूत-

क्षत्रिय आपकी भुजाओंसे उत्पन्न हुए हैं जंघाओंसे वैश्य उत्पन्न हुए हैं और चरणोंसे शूद्र उत्पन्न हुए हैं, ऐसा (वेदमें) कहा है ३७ हे जगन्नाथ ! हे जनार्दन ! इस प्रकार वर्ण आपकी देहसे उत्पन्न हुए हैं और हे देवेश ! आपके मनसे चन्द्रमा उत्पन्न हुआ है ३८ वह सब प्राणियोंको सुख देने वाला है उस की किरणें शीतल हैं और प्रभा अमित है और नेत्रोंसे सब प्राणियोंका नेत्ररूप सूर्य उत्पन्न हुआ है ३९ उसकी कान्तिसे यह सारा जगत् कान्तिमान् दीखता है तथा आपके मुखसे इन्द्र और अग्नि उत्पन्न हुए हैं और प्राणोंसे वायु उत्पन्न हुआ है और हे जनार्दन ! आपकी नाभिसे अन्तरिक्ष उत्पन्न हुआ है और हे गोपते ! आपके शिरसे महाघोर आकाश उत्पन्न हुआ है ॥४०॥४१॥ और हे जगत्पते ! आपके पैरोंसे भूमि उत्पन्न हुई है, और कानोंसे दिशाएँ उत्पन्न हुई हैं, इस प्रकार देखने पर प्रतीत होता है, कि—आप सब जगत्को व्याप्त करके स्थित हैं । ४२ । हे केशव ! इसप्रकार आप सब जगत्में व्याप्त हैं, इस लिए आपका विष्णु नाम है, क्योंकि धातुसे आपका यही अर्थ

भव्येश तन्नारायणशब्दितः॥ ४४॥ हरसि प्राणिनो देव ततो हरिरिति स्मृतः। शंकरोसि सदा देव ततः शंकर तागतः ४५ बृहत्त्वाद्बृंहणत्वाच्च तस्माद्ब्रह्मेति शब्दितः। मधुरिन्द्रियनामेति ततो मधुनिषूदनः ॥ ४६ ॥ हृषीकाणीन्द्रियाण्याहुस्तेषामीशो यतो भवान्। हृषीकेशस्ततो विष्णो ख्यातो देवेषु केशव ॥ ४७ ॥ क इति ब्रह्मणो नाम ईशोऽहं सर्वदेहिनाम्। आवां तवांगसंभूतौ तस्मात् केशवनामवान् ॥४८॥ मा विद्या च हरे प्रोक्ता तस्यां ईशो यतो भवान्।तस्मान्माधवनामासि धवः स्वामीति शब्दितः॥४९ गौरेषा तु यतो वाणी तां च वेदयते भवान्। गोविन्दस्तु ततो देव मुनिभिः कथ्यते भवान् ॥ ५० ॥ त्रिरित्येव त्रयो वेदाः

सिद्ध होता है ४३ जल नार कहलाते हैं और आप आरम्भकालसे उनके अयन हैं, हे भूतभव्येश ! इसी कारण आप नारायण नामसे प्रसिद्ध हैं ४४, आप प्राणियोंका हरण करते हैं; इस लिए आप हरि नामसे प्रसिद्ध हैं और हे देव ! आप कल्याण करने वाले हैं इस लिए आप शंकर कहलाते हैं ।४५। आप बड़े और वर्धक होनेसे ब्रह्म शब्दसे कहे, जाते हैं और मधु नाम इन्द्रियोंका है इस लिए आप मधुसूदन कहलाते हैं ४६ इन्द्रियों को हृषीक कहते हैं और आप उसके ईश हैं, हे केशव विष्णो ! इसी लिए आप देवताओंमें हृषीकेश नामसे प्रसिद्ध हैं ।४७। क यह ब्रह्मका नाम है और मैं सब देहधारियोंका ईश हूँ और हम दोनों आपके अंगसे उत्पन्न हुए हैं, इस लिए आपका नाम केशव है ४८ हे हरे ! विद्या मा कहलाती है और आप उसके स्वामी हैं, इस लिए आपका नाम माधव है, क्योंकि-धव नाम स्वामी का है ४९ गौ वेदवाणीका नाम है और आप उसको जानते हैं, हे देव ! इसलिये मुनि आपको गोविन्द कहते हैं ५० मुनिसत्तम त्रिशब्दसे तीन वेदोंको कहते हैं और आप उन सबके पारगामी

कीर्तिता मुनिसत्तमैः । क्रमते तांस्तथा सर्वांस्त्रिविक्रम इति श्रुतः ॥ ५१ ॥ अणुर्वामननामासि यतस्त्वं वामनाख्यया । मननान्मुनिरेवासि यमनाद्यतिरुच्यते ॥ ५२ ॥ तपश्चरसि यस्मात्त्वं तपस्वीति च शब्दितः । वसन्ति त्वयि भूतानि भूतावासस्ततो हरे ॥ ५३ ॥ ईशस्त्वं सर्वभूतानामीश्वरोऽसि ततो हरे । प्रणवः सर्ववेदानां गायत्री छन्दसां प्रभो ॥ ५४ ॥ अक्षराणामकारस्त्वं स्फोटस्त्वं वर्णसंश्रयः । रुद्राणामहमेवासि वसूनां पावको भवान् ॥ ५५ ॥ अश्वत्थो वृक्षजातीनां ब्रह्मा-लोकगुरुर्भवान् । मेरुस्त्वं पर्वतेन्द्राणां देवर्षीणां च नारदः ५६ दानवानां भवान् दैत्यः प्रह्लादो भक्तवत्सलः । सर्पाणामेव सर्वेषां भवान् वासुकिसंज्ञितः ॥ ५७ ॥ गुह्यकानां च सर्वेषां भवान् धनद एव च । वरुणो यादसां राजा गङ्गा त्रिपथभाग्भ-

हैं, इस लिए त्रिविक्रम नामसे प्रसिद्ध हैं ५१ आप अणु अर्थात् बौने होनेसे वामन नाम वाले हैं, मननके कारण आपका नाम मुनि है और आप यमन करनेसे यति कहलाते हैं ५२ आप तप करते हैं, इस कारण तपस्वी कहलाते हैं और हे हरे ! प्राणी आपमें निवास करते हैं, इसलिए आप भूतावास कहलाते हैं ५३ और हे हरे ! आप सब प्राणियोंके ईश हैं इसलिए आप ईश्वर कहलाते हैं, आप सब वेदोंमें प्रणवरूप हैं और हे प्रभो ! छन्दों में गायत्रीरूप हैं ॥५४॥ आप अक्षरोंमें अकार हैं और वर्णोंमें स्फोटस्वरूप हैं, रुद्रोंमें मेरा रूप है और आप वसुओंमें पावक हैं ५५ वृक्षोंमें अश्वत्थ हैं और आप लोकगुरु ब्रह्मा हैं आप बड़े बड़े पर्वतोंमें मेरु हैं और देवर्षियोंमें नारद हैं ५६ आप दानवोंमें भक्तवत्सल प्रह्लादनामक दानव हैं और सब सर्पोंमें आप वासुकि नामवाले सर्प हैं ५७ आप सब गुह्यकोंमें धनद (कुबेर) हैं, और जल जीवोंके राजा वरुण हैं और तीन मार्गोंमें बहनेवाली गंगा हैं ५८

वान् ॥ ५० ॥ आदिस्त्वं सर्वभूतानां मध्यमन्तस्तथा भवान् । त्वत्तः समभवद्विश्वं त्वयि सर्वं प्रलीयते ॥५९॥ अहं त्वं सर्वगो देव त्वमेवाहं जनार्दन । आवयोरन्तरं नास्ति शब्दैरर्थैर्जगत्पते ॥ ६० ॥ नामानि तव गोविन्द यानि लोके महान्ति च । तान्येव मम नामानि नात्र कार्या विचारणा ॥६१॥ त्वदुपासा जगन्नाथ सैवास्तु मम गोपते । यश्च त्वां द्वेष्टि देवेश स मां द्वेष्टि न संशयः ॥६२॥ त्वद्विस्तारयतो देव अहं भूतपतिस्ततः । न तदस्ति विना देव यत्ते विरहितं हरे ॥ ६३ ॥ यदासीद्वर्तते यच्च यच्च भावि जगत्पते । सर्वं त्वमेव देवेश विना किंचित्त्वया न हि॥६४॥स्तुवन्ति देवाः सततं भगवंतं स्वैर्गुणैः प्रभो । ऋक्च त्वं यजुरेवासि सामासि सततं प्रभो ॥ ६५ ॥ किमुच्यते

और आप सब भूतोंके आदि मध्य और अंत हैं आपसे सब विश्व उत्पन्न हुआ है और सब विश्व आपमें ही लीन होजाता है५९ हे देव ! आप मैं हूँ और हे जनार्दन ! मैं ही आप हैं और हे जगत्पते ! शब्दतः और अर्थतः आपमें और हममें कोई भेद नहीं है ६० हे देव ! संसारमें आपके जितने महत्त्वमय नाम हैं, वे सब नाम मेरे भी हैं, इसमें कुछ विचार न करना चाहिये॥६१॥ हे गोपते ! जो आपकी उपासना होती है, वह मेरी भी उपासना होती है और हे देवेश ! जो आपसे द्वेष करता है, वह मुझसे ही द्वेष करता है ६० हे देव ! आपके विस्तारमें मैं भूतपति कहलाता हूँ, हे हरे ! ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जो आपसे रहित हो ॥६३॥ हे जगत्पते ! जो था, जो है और जो होने वाला है, हे देवेश ! वह सब आप ही हैं, आपके विना और कुछ नहीं है । ६४ । हे प्रभो ! आपको आपके निजी गुणोंके कारण देवता आपकी स्तुति करते हैं, हे प्रभो ! आप ही ऋग्वेद यजुर्वेद और सामवेद-रूप हैं ६५ हे देव ! मैं क्या कहूँ, क्योंकि-हे भूतभावन ! आप

मया देव सर्वं त्वं भूतभावन । नमः सर्वात्मना देव विष्णो माधव केशव ६६ नमस्करोमि सर्वात्मन्नमस्तेऽस्तु सदा हरे । नमः पुष्करनाभाय वन्दे त्वामहमीश्वर ६७

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां शिवकृतविष्णुस्तुतिर्नामाष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥८८॥

वैशम्पायन उवाच । इत्युक्त्वा देवदेवेशं मुनीनाह पुनः शिवः। एवज्ञानीत हे विप्रा ये भक्ता द्रष्टुमागताः ।१। एतदेव परं वस्तु नैतस्मात् परमस्ति वः । एतदेव विजानीध्वमेतद्वः परमं तपः २ एतदेव सदा विप्रा ध्येयं सततमानसैः। एतद्वः भवतां श्रेय एतद्वः परमं धनम् ॥ ३ ॥ एतद्वो जन्मनः कृत्यमेतद्वस्तपसः फलम् । एष वः पुण्यनिलय एष धर्मः सनातनः ॥ ४ ॥ एष वो मोक्षदाता च एष मार्ग उदाहृतः । एष पुण्यप्रदः साक्षादेतद्वः कर्मणां

ही सब कुछ हैं, हे देव विष्णो माधव ! सब प्रकारसे आपको प्रणाम है ६६ हे सर्वात्मन् ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ, हे हरे ! आपको सर्वदा प्रणाम है पुष्करनाभके लिए प्रणाम है, हे हे ईश्वर ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ ॥ ६७ ॥ अट्ठासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ ८८ ॥ छ छ छ

वैशम्पायनजीने कहा, कि-देवदेवेशसे इस प्रकार कह कर शिवजी फिर मुनियोंसे कहने लगे, जो भक्त ब्राह्मण यहाँ देखने को आए हैं, वे इस बातको जानें १ यह कृष्ण ही पर वस्तु हैं और तुममेंसे कोई भी इनसे अधिक श्रेष्ठ नहीं है तुम इनको ही जानो, यही परम तप हैं २ हे विप्रो ! तुम मनमें सर्वदा इनको ही ध्यान रक्खो यह आपका परम कल्याण हैं और यह आपका परम धन हैं । ३ । यह आपके जन्मका कर्तव्य हैं और यह आपके तपका फल है यह आपके पुण्य स्थान हैं और यह सनातनधर्म हैं ॥ ४ ॥ यह तुम्हें मोक्ष देने वाले हैं और यह

फलम् ॥ ५ ॥ एतदेव प्रशंसन्ति विद्वांसो ब्रह्मवादिनः । एषा त्रयी गतिर्विप्राः प्रार्थ्या ब्रह्मविदां सदा ॥ ६ ॥ एतदेव प्रशंसन्ति सांख्ययोगसमाश्रिताः। एष ब्रह्मविदां मार्गः कथितो वेदवादिभिः ॥ ७ ॥ एवमेव विजानीत नात्र कार्या विचारणा । हरिरेकः सदा ध्येयो भवद्भिः सत्त्वसंस्थितैः ॥८॥ नान्यो जगति देवोऽस्ति विष्णोर्नारायणात् परः । ओमित्येवं सदा विप्राः पठत ध्यात केशवम् ॥९॥ ततो निःश्रेयसप्राप्तिर्भविष्यति न संशयः । एवं ध्यातो हरिः साक्षात् प्रसन्नो वो भविष्यति ॥ १० ॥ भवनाशमयं देवः करिष्यति दृढं हरिः । सदा ध्यात हरिं विप्रा यदीच्छा प्राप्तुमच्युतम् ॥ ११ ॥ एष संसारविभवं विनाशयति वो गुरुः । स्मरध्वं सततं विष्णुं पठध्वं त्रिशरीरिणम् ॥ १२ ॥

(मोक्ष) मार्ग कहलाते हैं, यह साक्षात् पुण्यका फल देने वाले हैं और यह आपके कर्मोंके फल हैं ॥५॥ ब्रह्मवादी विद्वान् इनकी ही प्रशंसा करते हैं त्रिकाण्डमार्ग गति ये ही हैं, ब्रह्मवेत्ताओंको इस गतिकी सर्वदा प्रार्थना करनी चाहिये ॥ ६ ॥ सांख्य और योगका आश्रय लेने वाले पुरुष इनकी ही प्रशंसा करते हैं, ब्रह्मवादियोंने यही ब्रह्मवेत्ताओंका मार्ग कहा है ॥७॥ तुम ऐसा ही समझो और इसमें कुछ विचार न करो, तुम सत्त्वगुणका आश्रय लेकर केवल हरिका ही ध्यान धरते रहो ८ जगत्में नारायणसे अधिक और कोई देव नहीं है, अतः हे विप्रो ! ॐ इस प्रकार उच्चारण करके केशवका ध्यान और पाठ सर्वदा करते रहो ९ तब तो तुम्हें कल्याणकी ही प्राप्ति होगी और इस प्रकार ध्यान करनेपर साक्षात् विष्णु तुम पर प्रसन्न होंगे १० यह हरि भवबन्धनको दृढ़तापूर्वक नष्ट करदेंगे, हे विप्रो! यदि तुम्हें अच्युत पद पानेकी इच्छा हो तो हरिका सर्वदा ध्यान करो ११ यह गुरु तुम्हारे सांसारिक वैभवका नाश कर देंगे तुम (ब्रह्मा विष्णु और महेश

मनःसंयमनं विप्रा कुरुध्वं यत्नतः सदा । शुद्धेऽन्तःकरणे विष्णुः प्रसीदति तपोधनाः ॥ १३ ॥ ध्यात्वा मां सर्वयत्नेन ततो जानीत केशवम् । उपास्योऽहं सदा विप्रा उपास्येऽस्मिन्हरौ स्मृतः ॥ १४ ॥ उपायोयं मया प्रोक्तो नात्र सन्देह इत्यपि । अयं पापी सदा विप्रा यतध्वमघनाशने ॥१५॥ यथा नो बुद्धिरखिला शुद्धा भवति यत्नतः । तथा कुरुत विप्रेन्द्रा यथा देवः प्रसीदति ॥१६॥ वैशम्पायन उवाच । एवमुक्तास्ततः सर्वे मुनयः पुण्यशीलिनः । यथावदुपगृह्णाना निरसन् संशयं नृप ॥ १७ ॥ एवमेवेति तं विप्राः प्राहुः प्राञ्जलयो हरम् । छिन्नो नः संशयः सर्वो गृहीतार्थः स तादृशः ॥ १८ ॥ एतदर्थं समायाता वयमद्य तवालयम् । संगमाद्युवयोः सर्वो नष्टो मोहो महानिह ॥ १९ ॥

इन) तीन शरीर वाले विष्णुका सर्व्वदा पाठ करो और स्मरण करो ॥ १२ ॥ हे विप्रों ! तुम यत्नपूर्व्वक मनका निग्रह करो हे तपोधनों ! तुम्हारे अन्तःकरणोंके शुद्ध होने पर विष्णु तुम पर प्रसन्न होजावेंगे ॥ १३ ॥ तुम सब प्रकारसे यत्न करके फिर केशवको जानों, हे विप्रों ! तुम मेरी सर्व्वदा उपासना करो, और मैं उपासना करने योग्य हरिमें रहता हूँ ॥ १४ ॥ मैंने तुमसे जो उपाय कहा, इसमें कुछ सन्देह नहीं है, हे विप्रों ! यह पापी वाले हैं, तुम सर्व्वदा पापको दूर करनेका यत्न करते रहो १५ जिस प्रकार यत्न करने पर तुम्हारी बुद्धि पूर्ण रूपसे शुद्ध होजाय, हे विप्रेन्द्र ! तुम वैसा ही करो, जिससे यह देव प्रसन्न हो जाँय ॥ १६ ॥ वैशम्पायनजी कहते हैं, कि-जब महादेवजीने पुण्यात्मा मुनियोंसे इस प्रकार कहा, तब उन्होंने उसको समझ कर अपने सन्देहको दूर कर दिया १७ और ब्राह्मण हाथ जोड़ कर हरसे कहने लगे, कि-ऐसा ही है, हमारा सब सन्देह दूर होगया और प्रयोजनकी बात हमने समझ ली ॥१८॥ हम इसी

यथा वदसि देवेश तथा नः श्रेयसे परम् । यथाह भगवान् रुद्रो यताम: सततं हरौ । इति ते मुनयः प्रीताः प्रणेमुः केशवं हरिम् २०
इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां नवाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

वैशम्पायन उवाच । ततः स भगवान् रुद्रः सर्वान् विस्मापयन्निव । स्तुत्या प्रचक्रमे स्तोतुं विष्णुं विश्वेश्वरं हरिम् । अर्थ्याभिस्तु तदा वाग्भिर्मुनीनां शृण्वतां तथा ॥ १ ॥ महेश्वर उवाच । नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय धीमते । यस्य भासा जगत् सर्वं भासते नित्यमच्युत ॥ २ ॥ नमो भगवते देव नित्यं सूर्यात्मने नमः । यः प्रीतयति शीतांशुर्लोकान् सर्वानिमान् विभुः ॥ ३ ॥ नमस्ते विष्णवे देव नित्यं सोमात्मने नमः । यः

लिए आपके पास आए थे, आप दोनोंके संग्रामसे हमारा बड़ा भारी मोह नष्ट होगया ॥१९॥ हे देवेश ! आपने हमारे कल्याण के लिए जैसी बात कही है, और भगवान् रुद्रने जो कहा है, उसके अनुसार हम हरिमें (भक्ति करनेका) उद्योग करेंगे, इस प्रकार कह कर उन सब मुनियोंने केशव हरिको प्रणाम किया २०
नवासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ ८९ ॥ छ छ छ

वैशम्पायनजी कहते हैं, कि—तदनन्तर भगवान् रुद्र सबको विस्मितसे करते हुए सब मुनियोंके सुनते हुए प्रयोजनमयी वाणियोंसे विश्वेश्वर हरि विष्णुकी स्तुति करने लगे ॥ १ ॥ महेश्वरने कहा, कि—हे अच्युत ! जिनकी कान्तिसे यह सारा जगत् भासमान रहता है, ऐसे आप बुद्धिमान भगवान् वासुदेवको प्रणाम है ॥ २ ॥ भगवान्के लिए प्रणाम है, आप सूर्यात्मा के लिए नमस्कार है जो शीतल किरणों वाला विभु चन्द्रमा इन सब लोकोंको शीतल करता है ॥ ३ ॥ और जो प्राणियोंका कल्याण करने वाला एक विश्वात्मा

प्रजाः प्रीणयत्येको विश्वात्मा भूतभावनः ॥४॥ नमः सर्वात्मने देव नमो वागात्मने हरे। यो दधार करेणासौ कुशचीरादि यत्सदा ॥ ५ ॥ दधार वेदान् सर्वांश्च तुभ्यं ब्रह्मात्मने नमः। सर्वान् संहरते यस्तु संहारे विश्वदृक् सदा ॥ ६ ॥ क्रोधात्मासि विरूपोसि तुभ्यं रुद्रात्मने नमः॥ सृष्टौ स्रष्टा समस्तानां प्राणिनां प्राणदायिने ॥७॥ अजाय विष्णवे तुभ्यं स्रष्ट्रे विश्वसृजे नमः। आदौ प्रकृतिमूलाय भूतानां प्रभवाय च ॥८॥ नमस्ते देवदेवेश प्रधानाय नमो नमः। पृथिव्यां गन्धरूपेण संस्थितः प्राणिनां हरे ॥ ९ ॥ दृढाय दृढरूपाय तुभ्यं गन्धात्मने नमः। अपां रसाय सर्वत्र प्राणिनां सुखहेतवे ॥ १० ॥ नमस्ते विश्वरूपाय रसाय च नमो नमः। तेजसा भास्करो यस्तु घृणो जन्तुहितः सदा ११

प्रजाओंको प्रसन्न करता है उन सोमात्मा विष्णुदेवको प्रणाम है ॥४॥ सर्वात्माको नमस्कार है; हे हरे देव ! आप वागात्माके लिए नमस्कार है जो हाथसे कुश चीर आदिको सदा धारण करते हैं ॥ ५ ॥ और जिन्होंने सब वेदोंको धारण किया था; उन ब्रह्मात्माको नमस्कार है और जो चारों ओर दृष्टि रखने वाले संहारके समय सबका संहार करते हैं ॥६॥ ऐसे क्रोधात्मा विरूप आप रुद्रको प्रणाम है सृष्टिके समय रचना करने वाले और समस्त प्राणियोंको प्राणदान करने वालेको प्रणाम है ॥७॥ अज स्रष्टा विश्वके रचयिता आदिमें प्रकृतिके मूल और भूतोंके उत्पत्तिस्थान विष्णुके लिए नमस्कार है ॥ ८ ॥ हे देवदेवेश ! आपको प्रणाम है, प्रधानके लिए नमस्कार है, हे प्राणियोंके (पापोंका) हरण करनेवाले आप पृथ्वीमें गन्धरूपसे रहते हैं ९ दृढ़ दृढरूप आप गन्धात्माके लिए प्रणाम है, प्राणियोंके सुखके कारण सर्वत्र जलोंके रसरूप विश्वरूपके लिए नमस्कार है, रसस्वरूपके लिए नमस्कार है, जो तेजमें भास्कररूप हैं, किरण

तस्मै देव जगन्नाथ नमो भास्कररूपिणे । वायोः स्पर्शगुणो यत्र शीतोष्णसुखदुःखदः ॥ १२ ॥ नमस्ते वायुरूपाय नमः स्पर्शात्मने हरे । आकाशेऽवस्थितः शब्दः सर्वश्रोत्रनिवेशनः ॥ १३ ॥ नमस्ते भगवन् विष्णो तुभ्यं सर्वात्मने नमः । यो दधार जगत् सर्वं मायामानुषदेहवान् ॥ १४ ॥ नमस्तुभ्यं जगन्नाथ मायिनेऽमायदायिने । नम आद्याय बीजाय निर्गुणाय गुणात्मने १५ अचिन्त्याय सुचिन्त्याय तस्मै चिन्त्यात्मने नमः । हराय हरिरूपाय ब्रह्मणे ब्रह्मदायिने १६ नमो ब्रह्मविदे तुभ्यं ब्रह्म ब्रह्मात्मने नमः । नमः सहस्रशिरसे सहस्रकिरणाय च ॥१७॥ नमः सहस्रवक्त्राय सहस्रनयनाय च । विश्वाय विश्वरूपाय विश्वकर्त्रे नमो नमः १८ विश्ववक्त्र नमो नित्यं भूतावास नमो नमः ।

वाले हैं और सर्वदा प्राणियोंका हित करते हैं, हे देव जगन्नाथ ! तिन भास्कररूपी आपके लिए प्रणाम है वायुका गुण स्पर्श है और वह शीत उष्णरूपी सुख और दुःखको देता है॥१०–१२॥ वायुरूपके लिए नमस्कार है, स्पर्शात्माके लिए नमस्कार है, सब कर्णोंमें रहने वाला शब्द आकाशमें स्थित है ॥ १३ ॥ हे भगवन् विष्णो ! आपको नमस्कार है, सर्वात्माको नमस्कार है, जिन्होंने सम्पूर्ण विश्वको धारण कर रक्खा है, और जो मायासे मनुष्य शरीरको धारण करते हैं ।१४। हे जगन्नाथ ! ऐसे मायावी और मायारहित कर देने वाले और आद्य बीज और निर्गुण गुणात्माको प्रणाम है ॥ १५ ॥ अचिन्त्य सुचिन्त्य और चिन्त्यात्माको नमस्कार है, हरिरूप हर ब्रह्म और वेदज्ञान देनेवाले हरिको प्रणाम है१६आप ब्रह्मवेत्ताको नमस्कार है और वेदस्वरूपको प्रणाम है, सहस्र शिर और किरण वालेको प्रणाम है ।१७। सहस्र मुख वालेको और अनन्त नेत्रों वालेको प्रणाम है, विश्व विश्वरूप और विश्वकर्ताके लिए

इन्द्रियायेन्द्ररूपाय विषयाय सदा हरे । १६ ॥ नमोऽश्वशिरसे तुभ्यं वेदाभरणरूपिणे । अग्नयेऽग्निपतये तुभ्यं ज्योतिषां पतये नमः॥२०॥ सूर्याय सूर्यपुत्राय तेजसां पतये नमः । नमः सोमाय सौम्याय नमः शीतात्मने हरे २१ नमो यज्ञाय इज्याय हविषे हव्यसंस्कृते । नमः स्रुवाय पात्राय यज्ञाङ्गाय पराय च ॥ २२ ॥ नमः प्रणवदेहाय चरायाप्यक्षराय च । वेदाय वेदरूपाय शस्त्रिणे शस्त्ररूपिणे ॥ २३ ॥ गदिने खड्गिने तुभ्यं शंखिने चक्रिणे नमः । शूलिने चर्मिणे नित्यं वरदाय नमो नमः ॥ २४ ॥ बुद्धिप्रियाय बुद्धाय प्रबुद्धाय सुखाय च । हरये विष्णवे तुभ्यं नमः सर्वात्मने गुरो ॥ २५ ॥ नमस्ते सर्वलोकेश सर्वकर्त्रे नमो नमः। नमः स्वभावशुद्धाय नमस्ते यज्ञसूकर ॥२६॥ नमो विष्णो नमो

नमस्कार है १८ चारों ओर मुखवालेको प्रणाम है, हे भूतावास ! आपको सर्वदा प्रणाम है, हे हरे ! इन्द्रिय इन्द्ररूप और विश्वस्वरूपके लिए प्रणाम है १६ वेदके आभरणरूप और हयग्रीव नामवाले आपको प्रणाम है,अग्नि अग्निपति और ज्योतियोंके स्वामीको नमस्कार है२०सूर्य सूर्यपुत्र और तेजोंके स्वामीको प्रणाम है सोमके लिए नमस्कार है सौम्यके लिए नमस्कार है,शीतात्माके के लिए नमस्कार है ।२१। इज्य यज्ञ हवि और हव्यसंस्कृतको प्रणाम है, स्रुवपात्रस्वरूप और यज्ञांगमें परायण रहने वालेको नमस्कार है २२ प्रणवदेहके लिए प्रणाम है, क्षर और अक्षररूप वालेको प्रणाम है वेदको यज्ञस्वरूपको शस्त्रको और शस्त्ररूपीको प्रणाम है ॥ २३ ॥ गदा खड्ग शंख और चक्रधारीको प्रणाम है, शूल और ढालधारी तथा वरदान देने वालेको प्रणाम है २४ बुद्धिसे प्रेम करनेवाले बुद्ध प्रबुद्ध सुखस्वरूप हरि विष्णु और सर्वात्मा विष्णुको प्रणाम है २५ हे सर्वलोकेश ! आपको प्रणाम है, सर्वकर्ताको नमस्कार है, स्वभावसे ही शुद्ध पुरुषको

विष्णो नमो विष्णो नमो हरे । नमस्ते वासुदेवाय वासुदेवाय
धीमते२७नमः कृष्णाय कृष्णाय सर्वावास नमो नमः। नमो भूयो
नमस्तेऽस्तु पाहि लोकान् जनार्दन२८इति स्तुत्वा जगन्नाथमुवाच
मुनिसत्तमान्। इदं स्तोत्रमधीयाना नित्यं भजत केशवम् । २९ ।
शरण्यं सर्वभूतानां तत्र श्रेयो विधास्यति । ये चेमं धारयिष्यन्ति
स्तवं पापविमोचनम् ॥ ३० ॥ तेषां प्रीतः प्रसन्नात्मा पठतां
शृण्वतां हरिः । श्रेयो दास्यति धर्मात्मा नात्र कार्या विचारणा३१
अवश्यं मनसा ध्यात केशवं भक्तवत्सलम् । श्रेयः प्राप्तुं यदी-
च्छन्ति भवन्तः शंसितव्रताः ॥३२॥ इत्युक्त्वा भगवान् रुद्रस्तत्रै-
वान्तरधीयत । सगणः शंकरः साक्षादुमया भूतभावनः ॥३३॥
नेमुस्तं मुनयः सर्वे परां निर्वृतिमापयुः । तमेव परमं तत्त्वं मत्वा

नमस्कार है और हे यज्ञसूकर (आपको प्रणाम है)२६नमो विष्णो
नमो विष्णो! नमो विष्णो! नमो हरे! वासुदेवके लिए प्रणाम है;
बुद्धिमान् वसुदेवपुत्रके लिये प्रणाम है २७कृष्णके लिए नमस्कार
है, हे सर्वावास! आपको प्रणाम है, हे जनार्दन! आपको बारं-
बार प्रणाम है, आप लोकोंकी रक्षा करिये ॥२८॥ इस प्रकार
जगन्नाथसे कहकर वह श्रेष्ठ मुनियोंसे कहने लगे, कि इस स्तोत्र
को पढ़ कर तुम सदा केशवकी शरण लो ।२९। ये सब प्राणियों
को शरण देने वाले हैं, यह आपका कल्याण करेंगे, जो
इस पापको छुड़ाने वाले स्तोत्र को धारण करेंगे उनके
ऊपर भगवान् प्रसन्न होंगे और वह धर्मात्मा प्रसन्न मन
वाले हरि पढने वालोंका और सुनने वालोंका कल्याण
करेंगे, इसमें कुछ विचार नहीं करना चाहिये । ३१ । हे पूजनीय
व्रत वालो! यदि आप कल्याण पाना चाहते हैं तो भक्तवत्सल
केशवका मनमें ध्यान करिए॥३२॥ इसप्रकार कहकर भूतभावन
भगवान् शंकर तहाँ ही अन्तर्धान होगए, उमाभी अन्तर्धान हो

नारायणं हरिम् । विस्मयं परमं गत्वा मेनिरे स्वकृतार्थताम् ३४
लोकपालास्तदा विष्णुं नमस्कृत्य हरिं मुदा । जग्मुः स्वान्यथ
वेश्मानि गणैः सर्वैर्नृपोत्तम ॥ ३५ ॥ आरुह्य भगवान् विष्णु-
र्गरुडं पक्षिपुङ्गवम् । शंखी चक्री गदी खड्गी शार्ङ्गी तूणीतनुत्र-
वान् ॥ ३६ ॥ यथागतं जगन्नाथो ययौ बदरिकाश्रमम् । सायाह्ने
पुण्डरीकाक्षो नित्यं मुनिनिषेविताम् ॥ ३७ तत्र गत्वा यथायोगं
विनम्य हरिरीश्वरः । अर्चितो मुनिभिः सर्वैर्निषसाद सुखासने॥
इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां
नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥

वैशम्पायन उवाच । एतस्मिन्नेव काले तु पौण्ड्रो नृपवरो-
त्तमः । बलवान् सत्वसम्पन्नो योद्धा विपुलविक्रमः ॥ १ ॥ वृष्णि-

---

गई और उनके गण भी अन्तर्धान होगए । ३३ । तदनन्तर सब मुनियोंने उनको प्रणाम किया और नारायण हरिको परमतत्त्व मानकर परम सन्तुष्ट हुए और परम विस्मित होकर अपनेको कृतार्थ मानने लगे ३४ हे नृपोत्तम ! तब सब लोकपालभी हरि को प्रेमपूर्वक प्रणाम कर अपने गणोंको साथ ले अपने २ लोकों को चले गए ॥ ३५ ॥ तब शंख चक्र गदा खड्ग शार्ङ्गधनुष कवच और भाथेको धारण करनेवाले पक्षियोंमें श्रेष्ठ गरुड़ पर सवार होकर जैसे आये थे, तैसे ही बदरिकाश्रमको लौट चले और वह जगन्नाथ पुण्डरीकाक्ष सायंकालके समय मुनियोंसे सेवित बदरिकाश्रममें पहुँचगए ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ तहाँ पहुँचकर हरि ईश्वरने उचित रीतिसे (मुनियों को) प्रणामकिया, फिर मुनियोंसे सत्कार पाकर सुखपूर्वक आसन पर बैठ गए ॥ ३८ ॥ नब्भैवाँ अध्याय समाप्त ॥ ९० ॥ ❀ ❀ ❀ ❀

वैशम्पायनजी कहते हैं, कि—इसीसमय नृपोंमें श्रेष्ठ राजा पौंड्र बलवान् सत्त्वसम्पन्न और विपुल पराक्रमी योद्धा होगया १

शत्रुस्सदा राजा कृष्णद्वेषी बलात्तदा । नृपान् सर्वान् समाहूय प्रोवाच नृपसंसदि ॥ २ ॥ जिता च पृथिवी सर्वा जिताश्च नृपसत्तमाः । वृष्णयस्ते बलोन्मत्ताः कृष्णमाश्रित्य गर्विताः ॥३॥ दास्यन्ति मे करं सर्वे न हि ते कृष्णसंश्रयात् । स तु कृष्णश्चक्रबलान्मामवज्ञाय तिष्ठति ॥४॥ अहं चक्रीति गर्वोऽभूत्तस्य गोपस्य सर्वदा । शंखी चक्री गदी शार्ङ्गी शरी तूणी सहायवान् ॥ ५ ॥ एवमादिर्महागर्वस्तस्य संप्रति वर्तते । लोके च मम यन्नाम वासुदेवेति विश्रुतम् ॥६॥ अगृह्णन्मम तन्नाम गोपो मदबलान्वितः । तस्य चक्रस्य यच्चक्रं ममापि निशितं महत् ॥७॥ गर्वहन्तृ सदा तस्य नाम्ना चापि सुदर्शनम् । सहस्रारं महाघोरं तस्य चक्रस्य नाशनम् ॥ ८ ॥ अनेकमहतं चक्रं गोपजस्य नृपोत्तमाः । मना-

वह राजा वृष्णियोंका शत्रु था और कृष्णसे सर्वदा द्वेष करता था, उसने बलपूर्वक सब राजाओंको बुलाकर राजसभामें कहा, कि—॥ २ ॥ मैंने सब पृथिवीको जीतलिया है और सकल श्रेष्ठ राजाओंको भी जीत लिया है, परन्तु वृष्णि बलसे उन्मत्त बन रहे हैं, वे कृष्णका आश्रय लेकर गर्वमें भर गए हैं ॥३॥ और वे कृष्णका आश्रय पानेके कारण मुझे कर नहीं देते हैं, और कृष्ण चक्रके बलसे मेरा तिरस्कार करता रहता है ॥ ४ ॥ वह गोप इस गर्वमें सदा भरा रहता है कि-मेरे पास चक्र है, शंख गदा शार्ङ्ग धनुष, बाण और भाथा है, तथा मेरे पास सहायक हैं ॥ ५ ॥ ऐसे बहुतसी बातोंका उसको गर्व है और संसारमें मेरा जो वासुदेव नाम है ॥६॥ उस मेरे नामको भी मदसे छके हुए उस गोपने धर लिया है, परन्तु मेरा तीक्ष्ण चक्र उसके चक्रका भी नाश करने वाला है ॥ ७ ॥ उसके गर्वको तोड़नेमें समर्थ मेरे चक्रका नाम भी सुदर्शन है, उसमें सहस्र आरे हैं और वह महाघोर चक्र श्रीकृष्णके चक्रको भी नष्ट कर सकता है ।८।

ध्येतद्धनुर्दिव्यं शार्ङ्गं नाम महास्वनम् ॥ ६ ॥ गदा कौमोदकी नाम ममेयं बृहती दृढा । कालायससहस्रस्य भारेण सुकृता मया १० खड्गो नन्दकनामासौ ममायं विपुलो दृढः।अन्तकस्यान्तको घोरः स्तस्य खड्गस्य नाशनः ११ तथाग्रं च गदी खड्गी शंखी चक्री तनुत्रवान् । युधि जेता च कृष्णस्य नात्र कार्या विचारणा।१२। मां संब्रूत नृपाश्चैव गदिनं चक्रिणं तथा । शांखिनं शार्ङ्गिणं वीरं ब्रूत नित्यं नृपोत्तमाः ॥ १३ ॥ वासुदेवेति मां ब्रूत न तु गोपं यदूत्तमम् । एकोहं वासुदेवो हि हत्वा तं गोपदारकम् ॥ १४ ॥ सख्युर्मम बलाद्धन्ता नरकस्य महात्मनः । मां तथा यदि न ब्रूत दण्डया भारशतैः शतम् ॥१५॥ सुवर्णस्य च निष्कस्य धान्यस्य

हे श्रेष्ठ राजाओं ! उस गोपपुत्रका चक्र अनेक रूप धारण कर लेता है और अप्रतिहत है, इसी प्रकार मेरा चक्र भी है और मेरे पास भी महाशब्द करने वाला शार्ङ्ग नामक धनुष है ॥ ६ ॥ और मेरे पास यह कौमोदकी नाम वाली बड़ी भारी दृढ गदा है मैंने इसको फौलादके सहस्र भारसे बनवाया है ॥१०॥ और यह मेरा नन्दक नाम वाला बड़ा भारी खड्ग है यह कालका भी काल है और श्रीकृष्णके खड्गको नष्ट कर सकता है ।११। यह पौण्ड्रक गदा शंख चक्र और कवचको धारण करके युद्धमें कृष्णको जीतलेगा, इसमें तुम कुछ विचार न करना ॥१२॥ हे नृपोंमें श्रेष्ठ राजाओं ! तुम मुझे ही गदाधारी चक्रधारी शंखधारी शार्ङ्गधारी और वीर कहा करो । १३ । और तुम मुझसे ही वासुदेव कहो, यादवोंमें उत्तम गोपको वासुदेव न कहा करो, मैं उस गोपके बच्चेको मारकर अकेला ही वासुदेव रहना चाहता हूँ ॥ १४ ॥ मैं अपने मित्र महात्मा नरकके बलसे उसको मार डालूँगा, यदि तुम मुझे वासुदेव न कहोगे तो मैं तुम पर एक लाख भारका जुरमाना करूँगा १५ और बहुतसे सुवर्ण लूँगा,

बहुशस्तदा । तथा ब्रुवति राजेन्द्रे मनसा दुस्सहं यथा ॥ १६ ॥ केचिल्लज्जासमायुक्ता आसंस्ते बलवत्तराः । रसज्ञा बलवीर्यस्य राजानस्ते सदा नृप॥१७॥अपरे तु नृपा राजन्नेवमेवेति चुक्रुशुः॥ अन्ये बलमदोत्सिक्ता जेष्यामः केशवं रणे ॥ १८ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौण्ड्रकोक्ता-
 वेकनवतितमोऽध्यायः ॥९१॥

वैशम्पायन उवाच । ततः कैलासशिखरान्निर्गतो मुनिसत्तमः। नारदः सर्वलोकज्ञः पौण्ड्रस्य नगरं प्रति ॥ १ ॥ अवतीर्य नभोभागात् प्रत्यागम्य नरोत्तमम् द्वास्थेन च समाज्ञप्तः प्रविवेश गृहोत्तमम् ॥ २ ॥ अर्घादिसमुदाचारं नृपाल्लब्ध्वा महामुनिः । निषसादासने शुभ्रे ह्यास्तृते शुभवाससा ॥ ३ ॥ कुशलं पृष्टवान् भूयो नृपः स मुनिसत्तमम् । उवाच नारदं भूयः पौण्ड्रको बलगर्वितः ॥४॥ भवान् सर्वत्र कुशलः सर्वकार्येषु पण्डितः । प्रथितो

जब वह राजेन्द्र अपने मनसे ऐसी दुःसह बात कहने लगा १६ उस समय कुछ बलवान् पुरुष लज्जित होगए, हे राजन् ! क्योंकि-वे उसके बलवीर्यको जानते थे १७ दूसरे राजे ऐसा ही होगा, ऐसा ही होगा, कहनेलगे और दूसरे मद तथा बलमें भरे हुए राजे कहने लगे, कि-हम रणमें केशवको जीतेंगे १८ इक्यानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥ ९१ ॥ छ छ छ

वैशम्पायनजीने कहा, कि-तदनन्तर सब लोकोंको जानने वाले मुनिसत्तम नारदजी कैलासके शिखरसे उतर कर पौण्ड्रके नगरकी ओर चले १ वह आकाशसे उतर कर नरोत्तमके पास चले और द्वारपालको सूचना देने पर उत्तम घरमें घुसे ॥ २ ॥ तब राजाने उन महामुनिकी अर्घादि देकर पूजाकी, फिर वह शुभ्रवस्त्रसे ढके हुए शुभ्र आसन पर बैठ गए ३ तब पौण्ड्रक राजाने मुनिसत्तम नारदजीसे कुशलसमाचार बूझा फिर बल-

देवसिद्धेषु गन्धर्वेषु महात्मसु ॥ ५ ॥ सर्वत्रगो निराबाधो गन्ता सर्वत्र सर्वदा । अगम्यं तव विप्रेन्द्र ब्रह्माण्डे न हि किंचन ।६। नारदेदं वद त्वं हि यत्र यत्र गतो भवान् । तत्र तत्र तपःसिद्धो लोके प्रथितवीर्यवान् । पौण्ड् एवं च विख्यातो वासुदेवेति शब्दितः ॥ ७ ॥ शंखी चक्री गदी शार्ङ्गी खड्गी तूणी तनुत्रवान् । विजेता राजसिंहानां दाता सर्वस्य सर्वदा ॥ ८॥ भोक्ता राज्यस्य सर्वस्य शास्ता राजा बलाद्बली । अजेयः शत्रुसैन्यानां रक्षिता स्वजनस्य ह ॥ ९ ॥ योऽयं गोपकनामासौ वासुदेवेति शब्दितः । तस्य वीर्यबले न स्तो नाम्नोऽस्य मम धारणे ॥१०॥ स हि गोपो वृथा बाल्याद्धारयत्येव नाम मे । इदं निश्चित्तु

गर्वित पौण्ड्रक नारदजीसे कहने लगा कि—४ आप सर्वत्र चतुरताका वर्ताव करते हैं और सब कार्योंमें पण्डित हैं तथा देवता सिद्ध गन्धर्व और मनुष्योंमें प्रसिद्ध हैं ५ आप सर्वत्र जाते हैं आपकी गति सदा और सर्वत्र बाधारहित रहती है और हे विप्रेन्द्र ! ब्रह्माण्डमें ऐसा कोई स्थान नहीं है जो आपके लिए अगम्य हो ६ हे नारदजी ! आप जहाँ २ गए होंगे तहाँ आपने (सुना होगा, कि–) पौण्ड् ही तपःसिद्ध है, संसारमें उसका वीर्य प्रसिद्ध है और वही वासुदेव शब्दसे कहा जाने योग्य है ७ वह शंखधारी है शार्ङ्ग धनुष भाथे और कवच वाला है और वह सब राजसिंहोंको सर्वदा जीत सकता है ॥८॥ वह सब राज्यका भोक्ता है और सदा सबका दाता है और वह राजा बलपूर्वक शासन करता है, शत्रुओंकी सेनाओंसे अजेय है और अपने मनुष्योंकी रक्षा करता है ९ और जो गोप वासुदेव नामसे कहा जाता है उसने मेरे नामको तो धारण करलिया है, परन्तु उसमें मेरे नामके धारण करने योग्य बल और वीर्य नहीं है १० वह गोप बाल्यवश मेरे नामको वृथा ही धारण करता है, हे विप्रेन्द्र !

विप्रेन्द्र एक एव भवाम्यहम्॥११॥वासुदेवो जगत्यस्मिन्निर्जित्य वलिनं यदुम् । वृष्णीन् सर्वान् बलात् क्षिप्त्वा निहनिष्ये च तां पुरीम् ॥ १२ ॥ द्वारकां विष्णुनिलयां योद्धा चाहं महामते । एते च बलिनः सर्वे नृपा मम समागताः ॥ १३ ॥ अश्वाश्च वेगिनः सन्ति रथा वायुजवा मम । नानामन्त्राः सहस्रं च गजा नियुतमेव च ॥ १४ ॥ एतेनाहं बलेनाजौ हनिष्ये केशवं रणे । तस्मादेवं सदा विप्र वद ब्रह्मन् पुरे मम ॥ १५ ॥ इन्द्रस्यापि सदा विप्र वद नारद साम्प्रतम् । प्रार्थनैषा मम विभो नमस्ये त्वां तपोधन ॥ १६ ॥ नारद उवाच । सर्वत्रगः सदा चास्मि यावद्ब्रह्माण्डसंस्थितिः । आचार्यः सर्वकार्येषु गमने केनचिन्नृप ॥ १७ ॥ किन्तु वक्तुं तथा राजन्नुत्सहे नृपसत्तम । महीं

अब आप इस बातका निश्चय करिये, जिससे मैं अकेला ही वासुदेव रह जाऊँ ११ मैं वासुदेव संसारमें इस बलवान् यादव वासुदेवको मारकर सब वृष्णियोंको बलपूर्वक दबा कर इस पुरी को नष्ट भ्रष्ट कर दूँगा १२ हे महामते ! जिसमें विष्णु रहते हैं उस द्वारकापुरी पर मैं चढाई करूँगा, इसी लिए ये बली राजा मेरे पास आए हैं ॥१३॥ मेरे घोड़े तेज हैं और मेरे रथ वायुकी समान वेग वाले हैं, और इन सबको शिक्षा दीगई है ऐसे रथ घोड़े मेरे पास सहस्र हैं और लाखों हाथी हैं ॥१४॥ इतनी सेना से मैं केशवको रणमें मार डालूँगा, इस लिए हे विप्र ! आप मेरे नगरमें सर्वदा इस बातको ही कहिये १५ हे ब्राह्मण नारदजी ! आप मुझे इन्द्रका भी इन्द्र कहा करिये, हे तपोधन विभो ! यह मेरी प्रार्थना है, मैं आपको प्रणाम करता हूँ ॥१६॥ नारदजीने कहा, कि–जबतक ब्रह्माण्ड रहेगा तब तक मैं सर्वदा सर्वत्र जा सकूँगा, हे राजन् ! मैं सब कार्योंमें किसी न किसी उपायसे पहुँचनेमें आचार्य हूँ १७ हे नृपसत्तम ! देवेश चक्रपाणि जना-

शासति देवेशे चक्रपाणौ जनार्दने ॥ १८॥ विष्णौ सर्वत्रगे देवे दुष्टान् हत्वा सबान्धवान् । वासुदेवेति को नाम तिष्ठत्यस्मिन् हराविति ॥ १९ ॥ को नाम वक्तुमेवेदं कृष्णे शासति गोमती । अज्ञानादुक्तमेवं च समर्थाः प्राकृता जनाः ॥२०॥ हरिः सर्वत्रगो विष्णुर्दर्पं ते व्यपनेष्यति । अचिन्त्यविभवो विष्णुः शार्ङ्गधन्वा गदाधरः ॥ २१ ॥ आदिदेवः पुराणात्मा दर्पं ते व्यपनेष्यति । हास्यमेतन्महाराज यच्च वौ तत्र संस्थितम् ॥२२॥ शार्ङ्गं खड्गं तथा राजन् महाघोरं न दाप्यते। अतीव हासकालोयं तव संप्रति वर्तते ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौंड्रकनारद-
संवादे द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥

वैशम्पायन उवाच । ततः क्रुद्धो महाराज पौण्ड्रो मदबला-

र्दनके पृथ्वीका शासन करने पर कुछ नहीं कहा जासकता १८ वह विष्णुदेव सर्वत्रगामी हैं और उन्होंने बान्धवोंसहित सब दुष्टोंको मार डाला है उन हरिके विराजमान होने पर वासुदेव नामको कौन धारण कर सकता है ॥ १९ ॥ कृष्णके पृथिवीका शासन करने पर (जैसा आपने कहा है) तैसा कौन कह सकता है ? साधारण मनुष्य ही अज्ञानके कारण ऐसा कह सकते हैं २० सर्वव्यापी विष्णु तेरे गर्वको दूर करेंगे, शार्ङ्ग धनुष और गदा को धारण करने वाले विष्णुका विभव अचिन्त्य है ॥२१॥ वह पुराणात्मा आदिदेव तेरे गर्वको दूर कर देंगे, हे महाराज ! उन्होंने तहाँ रहकर ही तेरे शार्ङ्ग धनुष तथा महाघोर खड्गको नष्ट नहीं किया है इससे मुझे प्रतीत हुआ है कि-अब तेरे बड़े भारी नाशका समय आगया है ॥ २२ । २३ । बयानबेवाँ अध्याय समाप्त ॥ ९२ ॥ * * * *

वैशम्पायनजीने कहा- कि-हे महाराज ! तदनन्तर मद और

न्वितः । नारदं विप्रवर्यं तं प्रोवाच नृपसंसदि ॥ १ ॥ किमिदं प्राह विप्रर्षे राजाहं च द्विजैः सह । गच्छ त्वं काममथवा मुने शापमदः सदा ॥ २ ॥ भीतस्त्वत्तो महाबुद्धे गच्छ त्वं कामगध हि ॥ इत्युक्तो नृपवर्येण तूष्णीमेव स नारदः ३ जगामाकाशगमनो यत्र तिष्ठति केशवः ॥ स गत्वा विष्णुसंकाशं विष्णोः सर्वं शशंस ह ४ तच्छ्रुत्वा भगवान्विष्णुर्यथेष्टं वदतामिति । दर्पं तस्यापनेष्यामि श्वो भूते द्विजसत्तम ५ इत्युक्त्वा विरराभैव तस्मिन् बदरिकाश्रमे । ततः पौण्ड्रो महाबाहुर्बलैर्बहुभिरीश्वरः ॥ ६ ॥ अश्वैरनेकसाहस्रैर्गजैर्बहुभिरन्वितः । शस्त्रकोटिसमायुक्तः स राजा सत्यसङ्गरः ॥ ७ ॥ अनेकशतसाहस्रैः पत्तिभिश्च समन्वितः । एकलव्यप्रभृतिभी राजभिश्च समन्ततः ८ अष्टौ रथसहस्राणि

बल वाला पौण्ड्र क्रोधमें भरकर विप्रोंमें श्रेष्ठ नारदजीसे सभामें यह कहने लगा, कि १ हे विप्रर्षे ! आपने यह क्या बात कही मैं राजा हूँ, हे मुने ! अब आपकी इच्छा हो तो ठहरिये वा ब्राह्मणोंको अपने साथमें लेकर चले जाइये २ हे महाबुद्धे ! मैं आपसे डर रहा हूँ, इस लिए आप इच्छानुसार चले जाइये, राजाके इसप्रकार कहनेपर नारदजी चुपचाप ही, आकाशमेंको चल कर तहाँ पहुँच गए जहाँ केशव थे, और अपनेको विष्णुके समीप पहुँचा हुआ समझ कर उनसे सब बाते कहने लगे ॥ ३॥४ ॥ इस बातको सुनकर भगवान् विष्णुने कहा, कि उसको जो चाहे सो कहने दीजिए, हे द्विजसत्तम ! मैं कल उसके घमण्डको उतार दूँगा ॥ ५ ॥ इसप्रकार कहकर वह बदरिकाश्रममें चुप होगए, इसीसमय महाभुज ईश्वर पौण्ड्रने हजारों घोड़े और बहुतसे हाथी इकट्ठे किए, करोड़ों शस्त्र मँगवाये, इस प्रकार उस सच्ची प्रतिज्ञा करने वाले राजाने सैकड़ों हजारों पैदल इकट्ठे कर लिए और एकलव्य आदि राजाओंको बुला

नागानामयुतं तथा । अर्बुदं पत्तिसंघानां तद्बलं समपद्यत । ६ ।
एतेन च बलेनाजौ गस्फुरन्नृपसत्तमः । विरराज महाराज उदय-
स्थो महारविः ॥ १० ॥ स ययौ मध्यरात्रेण नगरीं द्वारकामनु ।
पत्तयो दीपिकाहस्ता रात्रौ तमसि दारुणे ॥ ११ ॥ ययुर्विविधैः
शस्त्रौघान्सम्पतन्तो महाबलाः । द्वारकां वीर्यसम्पन्ना महाघोरां
नृपोत्तमाः ॥ १२ ॥ रथं महान्तमारुह्य शस्त्रौघैश्च समाहृतम् ।
पट्टिशासिसमाकीर्णं गदापरिघसंकुलम् ॥ १३ ॥ शक्तितोमरसं-
कीर्णं ध्वजमालासमाचितम् । किंकिणीजालसंयुक्तं शरासि-
प्राससंयुतम् १४ महाघोरं महारौद्रं युगान्तजलदोपमम् । धनु-
र्गदासमाकीर्णं महावाद्योपमं महत् १५ अग्न्यर्कसदृशाकारं ययौ

लिया, (इस समय उसके पास) आठ हजार रथ, एक अयुत हाथी और एक अर्बुद पैदलोंकी सेना होगई ॥ ८-६ ॥ युद्धमें इतनी सेनासे फड़कता हुआ महाराज पौण्ड्र वासुदेव उदयाचल पर विराजमान सूर्यकी समान दिपने लगा ॥ १० ॥ तदनन्तर उसने आधी रातके समय द्वारका पर चढ़ाई कर दी, रात्रिके दारुण अंधकारमें उसके पैदल हाथमें मशाल लेकर चलने लगे ॥ ११ ॥ महाबली वीर्यसम्पन्न श्रेष्ठ राजे महाघोर द्वारका पर अनेक प्रकारके शस्त्रोंका प्रहार (करनेकी इच्छा) करते हुए चल दिए ।१२॥ और हे राजन्! वीर्यवान् राजा पौण्ड्र भी शस्त्रोंसे भरे हुए रथमें बैठ कर और मशालोंको साथमें लेकर द्वारका-पुरीकी ओर चल दिया । उसके बड़े भारी रथमें पटे तलवार गदा परिघ शक्ति और तोमर भर रहे थे, और वह ध्वजाओंकी मालाओंसे भर रहा था उसमें घुघुरुओंकी जालियें पड़ी हुई थीं, तलवार बाण और प्रास लग रहे थे वह प्रलयकालीन मेघकी समान महाघोर रथ महारौद्र था, उसमें धनुष और गदाएँ भर रही और वह बड़े भारी बाजेकी समान प्रतीत होरहा था, उस

द्वारवतीमनु । गृहीतदीपिको राजा वीर्यवान् बलवान्नृप ॥१६॥ हन्तुमैच्छज्जगन्नाथं वृष्णींश्चैव समन्ततः । आकर्षन् बलमुख्यांस्तान् राज्ञः सर्वान् महाद्युतिः ॥ १७ ॥ पुरद्वारं समासाद्य बलं संस्थाप्य यत्नतः । इदं प्रोवाच राजा तु नृपान् सर्वानवस्थितान् ॥ १८ ॥ ताड्यतामत्र भेरी तु नाम विश्राव्य मामकम् । युध्यतां युध्यतामत्र देयं वा प्रतिदीयताम् ॥१९॥ आगतः पौंड्रको राजा युद्धार्थी वीरवत्तरः । हन्तुकामः समग्रान् वः कृष्णबाहुबलाश्रयान् ॥२०॥ इति ते प्रेषिताः सर्वे समीयुः सूचकान् बहून् । दीपिकाश्च प्रदीप्यन्ते बहुधः शतसहस्रशः ॥ २१ ॥ इतश्चेतश्च राजानो युद्धयन्ते युद्धलालसाः । पुरीं ते पुरतस्तत्र क्षत्रियाः शस्त्रिणस्तथा ॥ २२ ॥ सिंहनादं प्रकुर्वन्तः शस्त्रधारासमा-

का आकार अग्नि और सूर्यकी समान दीखता था ॥१३-१६॥ वह महाकान्तिमान् राजा इन बड़ी २ सेनाओंको अपने साथ लेजाते समय जगन्नाथ श्रीकृष्णको और वृष्णियोंको चारोंओरसे मारना चाहने लगा ॥ १७ ॥ नगरके द्वार पर पहुँचकर उस ने यत्नपूर्वक सेनाको ठहरादिया, फिर वह वहाँके सब राजाओंसे यह कहने लगा, कि- ॥ १८ ॥ मेरी नामकी भेरीको यहाँ बजाओ और यहाँ (डट कर) बारंवार युद्ध करो, और कर ग्रहण करो, इस प्रकार प्रेरित करने पर क्षत्रियोंने सूचकोंसे अर्थात् भीतर बाहर का ज्ञान रखने वाले दूतोंसे मिलकर कहा, कि—बलवान् राजा पौण्ड्र युद्ध करनेके लिए आगया है और वह कृष्णके भुजबलके आश्रयसे रहने वाले तुम सबोंको मारना चाहता है, उसके पास सैंकड़ों और हजारों मशालें जल रहीं हैं ॥१९-२१॥ और इधर उधर युद्धकी लालसा वाले क्षत्रिय युद्ध करना चाह रहे हैं, शस्त्रधारी क्षत्रियोंने तुम्हारी नगरीको चारों ओरसे घेर लिया है ।' २२ ॥ शस्त्रोंसे सजे हुए राजे सिंहनाद करके कर

कुला। । कुतोऽयं वृष्णिप्रवरः कुतो राजा जगत्पतिः ॥ २३ ॥ कुतोऽयं सात्यकिर्वीरः कुतो हार्दिक्य एव च । कुतो नु बलभद्रश्च सर्वयादवसत्तमः । इत्येवं कथयन्तो वै राजानः सर्व एव ते ॥ २४ ॥ आदाय शस्त्राणि बहूनि सर्वतः शरांश्च चापानि बहूनि सर्वे । युद्धाय सन्नाहनिबद्धशो वयुर्हरेः पुरीं द्वारवतीं नृपोत्तमाः ॥ २५ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौण्ड्रकवधे त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥

वैशम्पायन उवाच । ततश्च यादवाः सर्वे दृष्ट्वा सैनिकसंचयम् । रात्रौ च व्यसनं प्राप्तं महाशस्त्रसमाकुलम् ॥१॥ महावातसमुद्धूतं कल्पान्ते समरोपमम् । सन्नद्धाः समपद्यन्त शस्त्रिणो युद्धलालसाः ॥२॥ गृहीतदीपिकाः सर्वे यादवाः शस्त्रयोधिनः। सात्यकिर्बलभद्रश्च हार्दिक्यो निशठस्तथा ॥३॥ उद्धवोऽथ महाबुद्धिरुग्रसेनो महाबलः । अन्ये च यादवाः सर्वे कवचग्रहे रताः ४

रहे हैं, कि-वृष्णिप्रवर राजा उग्रसेन कहाँ है और वह जगत्पति कहाँ है ॥ २३ ॥ वह वीर सात्यकि कहाँ है, हार्दिक्य कहाँ है और यादवोंमें श्रेष्ठ वह बलभद्र कहां है ? इस प्रकार कहते हुए सब राजाओंने बहुतसे शस्त्रोंको और धनुष बाणोंको उठाकर युद्धके साजसे सजकर हरिकी द्वारकापुरीको घेरलिया है २४।२५ तिरानवेवां अध्याय समाप्त ॥ ९३ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं, कि-तदनन्तर सब यादवोंने सेनाको एकत्रित हुआ देख कर रात्रिमें आपत्ति आई समझी, यादव बड़े बड़े अस्त्रोंसे भरी हुई आँधीसे आते हुए कल्पान्तके समरकी समान सेनाको देख कर युद्ध करनेकी इच्छासे शस्त्र लेकर तयार होगए ॥१॥२॥ उस समय सकल शस्त्रयोधी यादवोंने मसालें लेलीं, सात्यकि हार्दिक्य बलभद्र निशठ महाबुद्धि उद्धव और

समस्तयुद्धकुशला रात्रौ सन्नाहयोधिनः । शस्त्रिणः खड्गिन-श्चैव सर्वे शस्त्रसमाकुलाः ॥५॥ युद्धाय समपद्यन्त बहवो बाहु-शालिनः । रथिनो गदिनश्चैव सादिनः सायुधास्तथा ६ नित्य-युक्ता महात्मानो धन्विनः पुरुषोत्तमाः । निर्ययुर्नगराच्चूर्णं दीपि-काभिः समन्ततः ॥ ७ ॥ कुतः पौण्ड्रक इत्येवं वदन्तः सर्वसा-त्वताः । दीपिकादीपितो देशो निस्तमः समपद्यत ॥ ८ ॥ ततो वितिमिरो देशः समन्तात् मत्यपद्यत । युद्धं समभवद्घोरं वृष्णी-नां शत्रुभिः सह ॥ ९ ॥ ततो महान् समभवत् सन्नादो रोम-हर्षणः । हया हयैः समायुक्ता गजाश्च गजयूथपैः ॥ १० ॥ रथा रथैः समायुक्ताः सादिभिः सादिनस्तथा। खड्गिनः खड्गिभिः सार्द्धं गदिभिर्गदिनस्तथा॥११॥ परस्परव्यतीकारो रण आसीत्

महाबली उग्रसेन कवच पहरनेमें लग गए ॥ ३ ॥ ४ ॥ ये सब युद्धोंमें कुशल थे और रात्रिमें डट कर युद्ध करने वाले थे, शस्त्र-धारी खड्गधारी और शस्त्रोंसे गठे हुए थे ॥५॥ भुजबलशाली बहुतसे रथी गदाधारी और सवार आयुधोंको लेकर युद्ध करने को तयार होगए ॥ ६ ॥ सर्वदा तयार रहने वाले धनुषधारी महात्मा श्रेष्ठ २ पुरुष चारों ओर मशालोंको लेकर नगरमेंसे बाहर निकले ।७। फिर सब सात्वत कहने लगे, कि–"पौण्ड्रक कहाँ है ? पौण्ड्रक कहाँ है ?" उस समय मशालोंसे दमकता हुआ स्थान अन्धकाररहित होगया ॥ ८ ॥ और चारों ओर उजाला होगया और वृष्णियोंका शत्रुओंके साथ भयंकर युद्ध होने लगा ॥ ९ ॥ तदनन्तर रोंगटोंको खड़ा करनेवाला बड़ा गबड़दुंद होने लगा, हाथी हाथियोंसे डट गए और घोड़े घोड़ों से भिड़गए ॥ १० ॥ रथी रथियोंसे डट गए सवार सवारोंसे अड़ गए खड्गधारी खड्गधारियोंके साथ और गदाधारी गदाधारियोंके साथ जूझने लगे ॥ ११ ॥ इस प्रकार परस्परमें

सुदारुणः । महाप्रलयसंक्षोभः शब्दस्तेषां महात्मनाम् ॥ १२ ॥ धावन्तः प्रहरन्त्येतान् हन्त्येतान् सर्वतो नृपान् । अयमेष महाबाहुः खड्गी पतति वीर्यवान् ॥ १३ ॥ अयमेष शरी घोरो वर्ततेऽतिसुदारुणः । गदी चायं महावीर्यः सर्वान्नो बाधते नृपः १४ अयं रथी शरी चापी गदी तूणी तनुत्रवान् । यादृशः सर्वतो याति कुन्तपाणिरयं खली ॥ १५ ॥ अयमत्र महाशूली संश्रितः सर्वतो दिशम् । गजोऽयं सविषाणाग्रो वर्तते सर्वतः प्रति ॥१६॥ अतिसर्वत्रगः शूरो वेगवान् वातसन्निभः । शराञ्छरैः समाहंति दण्डान् दण्डैर्जगत्पते ॥ १७ ॥ कुन्तान् कुन्तैः समाजघ्नुर्गदाभिश्च गदास्तथा । परिघान् परिघैः सार्द्धं शूलाञ्छूलैः समन्ततः ॥ १८ ॥ एवं तेषां महाराज कुर्वतां रणमुत्तमम् । संग्रामः सुमहानासीच्छब्दश्चापि महानभूत् ॥१९ ॥ भूतानि सुबहून्याजौ

दारुण युद्ध होने लगा और उन महात्माओंका महासागरके तूफानकी समान शब्द होने लगा, कि—"ये दौडते हुए मार रहे हैं, यह सब ओरसे राजाओंका संहार कर रहा है, यह वीर्यवान् महाभुज खड्ग लेकर आरहा है॥ १२ ॥ १३ ॥ यह भयंकर दारुण बाणवाला आरहा है, यह गदाधारी बलवान् राजा हम सबोंको पीडा देरहा है १४ यह कुन्तपाणि तो रथी शरी चापी गदी तूणी और कवचधारीकी समान आरहा है १५ यह पुरुष बड़े भारी शूलको लेकर चारों दिशाओंमें घूम रहा है, यह दाँतों वाला हाथी चारों ओर घूम रहा है १६ हे जगत्पते ! यह सब को अतिक्रमण करने वाला वेगवान् शूर वायुकी समान(फुर्तीला) है, यह बाणोंसे बाणोंको काट रहा है और दण्डोंसे दण्डोंको तोड रहा है" १७इस समय शूर कुन्तोंसे कुन्तोंको नष्ट कररहे थे गदाओंसे गदाओंको तोड रहे थे और शूलोंसे शूलों पर महार कर रहे थे१८हे महाराज! इसप्रकार उत्तम रण करतेहुए कृष्ण

शब्दवन्ति महान्ति च । प्रादुरासन् सहस्राणि . शंखानां भीम-
निःस्वनः ॥ २० ॥ रात्रौ प्रादुरभूच्छब्दः संग्रामे रोमहर्षणः ।
वर्तमाने महायुद्धे वृष्णीनां चैव तैः सह ॥ २१ ॥ केचिद् ग्रस्ताः
समापेतुः पृथिव्यां पृथिवीक्षितः । केचित् पतितश्लिष्टाश्च विप्र-
कीर्णशिरोधराः ॥ २२ ॥ पेतुरुर्व्यां महावीर्या राजानः शस्त्र-
पाणयः । केचित्तु छिन्नवर्माणः समापेतुः सहस्रधा ॥ २३ ॥
परस्परं समाश्रित्य परस्परवधैषिणः । न्यस्तशस्त्रा महात्मानः
समन्तात् क्षतविग्रहाः ॥ २४ ॥ पेतुर्गतासवः केचिद्यमराष्ट्रविव-
र्द्धनाः । एवं ते निहता राजन् योधिताः सर्व एव तु ॥ २५ ॥
एतस्मिन्नन्तरे शूर एकलव्यो निषादपः । धनुर्गृह्य महाघोरं
कालान्तकयमोपमः ॥ २६ ॥ शरैरनेकसाहस्रैरर्दयामास याद-

और पौंड्रकोंमें संग्राम बढ गया और बडा भारी शब्द होने
लगा १६ युद्धस्थलमें डकराने वाले बहुतसे प्राणी आगए और
शंखोंका भयंकर शब्द होने लगा २० वृष्णि और सैनिकोंका
युद्ध चलने पर रात्रिमें रोमहर्षण शब्द होने लगा २१ कोई राजे
ग्रस्त होकर पृथ्वीमें गिरने लगे, गिरे हुए और (पृथ्वीका)
आलिंगन करते हुए योधाओंके बाल बिखर गए २२ महावीर्य-
वान् क्षत्रिय शस्त्र पकड़े हुए ही पृथिवीमें गिरने लगे और कोई
टूटे हुए कवचवाले पृथ्वीमें सैंकडों प्रकारसे गिरने लगे । २३ ।
चारों ओरसे घायल हुए परस्परका वध करना चाहने वाले
महात्मा शस्त्रोंको छोड एक दूसरे पर गिरने लगे २४ कुछ प्राण-
हीन योधा यमराजका राष्ट्र बढानेके लिए ढह पडे हे राजन् !
इस प्रकार युद्ध करने वाले सब योधा मारे जाने लगे २५ इसी
समय निषादोंकी रक्षा करने वाले शूर एकलव्यने महाभयंकर
धनुष उठा लिया, फिर वह काल अन्तक और यमराजकी
समान एकलव्य सहस्रों बाणोंसे यादवोंको पीडित करने लगा,

वान् । परं शतैः शराणां तु निशितैर्मर्मभेदिभिः ॥२७॥वृष्णीनां च बलं सर्वं पोथयामास सर्वतः । युध्यतः शस्त्रपाणींश्च क्षत्रियान् वीर्यवत्तरान् ॥ २८ ॥ निशठं पञ्चविंशत्या शराणां नतपर्वणाम् । सारणं दशभिर्विद्ध्वा हार्दिक्यं पञ्चभिः शरैः २९ उग्रसेनं नवत्याशु वसुदेवञ्च सप्तभिः । उद्धवं दशभिश्चैव ह्यक्रूरं पञ्चभिः शरैः ॥३०॥ एवमेकैकशः सर्वे निहता निशितैः शरैः । विद्राव्य यादवीं सेनां नाम विश्राव्य वीर्यवान् ॥३१॥एकलव्यो यदुश्रेष्ठान् वीरवान् बलवाहनम् । इदानीं सात्यकिर्वीरः क्व यास्यति महाबलः ॥ ३२ ॥ मदमत्तो हली साक्षात् क्व यातीह गदाधरः । इत्याह सिंहनादेन सिंहान् विस्मापयन्निव ॥ ३३ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौण्ड्रकवधे चतुर्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥

वह सैंकड़ों मर्मभेदी बाण छोड़ कर वृष्णियोंकी सेनाको चारों ओरसे मसलने लगा और हाथमें शस्त्र लेकर युद्ध करने वाले बलवान् क्षत्रियोंको मसलने लगा । २७–२८ । उसने निशठको पच्चीस, सारणको दश, हार्दिक्यको पाँच, उग्रसेनको नब्बे, वसुदेवको सात उद्धवको दश और अक्रूरको नमी हुई गाँठ वाले पाँच बाणोंसे बींध डाला । २९ । ३० । इस प्रकार उसने एक एकको तीक्ष्ण बाणोंसे मारा और वह वीर्यवान् अपना नाम सुना कर यादवीसेनाको भगाने लगा ३१ फिर एकलव्य यादवों से कहने लगा, कि-मैं वीर्यवान् पुरुष खड़ा हुआ हूँ, अरे ! महाबली वीर सात्यकि इस समय कहां गया ३२ अरे ! गदाधारी मदमत्त हली बलदेव इस समय कहां भाग गया, सिंहनाद से सिंहोंको विस्मित करता हुआ वह इस प्रकार कहने लगा।३३। चौरानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥ ९४ ॥ छ छ छ

वैशम्पायन उवाच । निवृत्तेष्वथ सैन्येषु वृष्णिवीरेषु चैव हि । भीतेष्वथ महाराज हतेषु युधि सर्वतः ॥ १ ॥ दीपिकासु प्रशान्तासु निःशब्दे सति सर्वतः। जितमित्येव यन्मत्वा वृष्णीनां बलमुत्तमम् २ ततः पौण्ड्रो महावीर्यो बभाषे सैनिकान् स्वकान् । शीघ्रं गच्छत राजेन्द्राष्टंकैः कुन्तैः पुरीमिमाम्॥३॥ कुठारैः कुंतलैश्चैव पाषाणैः सर्वतो दिशम् । कर्पणस्थैः सुपाषाणैः सर्वतो यात भूमिपाः ४ भिद्यन्तां प्राकारचयाः प्रासादाश्च समन्ततः । गृह्यन्तां कन्यकाः सर्वा दास्यश्चैव समन्ततः ५ गृह्यन्तां वसुमुख्यानि धनानि सुबहून्यथ । ते तथेति महात्मानो राजानः सर्व एव तु ६ कुठारैः सर्वतश्चैव चिच्छिदुः पौण्ड्रकाज्ञया । प्राकारांश्चैव सर्वत्र प्रासादान् नरसंचयान् ॥७॥ अथ तत्र महाशब्दः प्रादुरासीत् समन्ततः । टंकेषु पात्यमानेषु प्राकारेषु महाबलैः ८ पूर्वद्वारे महाराज भिन्नाः प्राकारसंचयाः । श्रुत्वा शब्दं महा-

वैशम्पायनजीने कहा, कि-जब सेनाएँ और वृष्णि वीर लौट गए डर गए और हे महाराज! युद्धमें चारों ओर मरी पडने लगी १ मशालें शान्त होगईं, चारों ओर सन्नाटा छागया, उस समय वृष्णियोंके सैन्यदलको जीता हुआ समझ कर ।२। महावीर्यवान् पौण्ड्रक अपने सैनिकोंसे कहने लगा, कि-हे राजेन्द्रों! तुम शीघ्र ही जाओ और टंक कुन्त कुठार कुन्तल पाषाण कर्पणस्थ और सुपाषाणोंको लेकर इस नगरी पर चढ जाओ।३।४। महल और परकोटोंको ढा दो तथा कन्या और दासियोंको पकड लो ५ कीमती चीजोंको और धनको लूट लो; तब सब महात्मा राजा तथास्तु कहकर ६ पौण्ड्रककी आज्ञासे कुठारोंसे परकोटों को और बहुतसे मनुष्योंसे व्याप्त महलोंको तोडने लगे ७ महाबलभरे टंकोंके महलों पर गिरने पर तहाँ महाशब्द होने लगा।८। हे महाराज! पूर्वद्वारके महल ढाये जाने लगे तब महाघोर शब्द

घोरं सात्यकिः क्रोधमूर्च्छितः ॥९॥ मयि सर्वं समारोप्य केशवो यादवेश्वरः । गतः कैलासशिखरं द्रष्टुं शंकरमव्ययम् ॥ १० ॥ अवश्यं हि मया रक्ष्या पुरी द्वारवती त्वियम् । इति संचिन्त्य मनसा धनुरादाय सत्वरम्११ रथं महान्तमारुह्य दारुकस्य महात्मनः । पुत्रेण संस्कृतं घोरं यन्ता च स्वयमेव हि१२धनुर्महत्तदादाय शरांश्चाशीविषोपमान् । आमुच्य कवचं घोरं शस्त्रसम्पातदुःसहम् १३ अङ्गदी कुंडली तूणी शरी चापी गदासिमान् । ययौ युद्धाय शैनेयः संस्मरन् केशवं वचः १४ दीपिकादीपिते देशे ययौ सात्यकिरुत्तमः । तथैव बलदेवोऽपि रथमारुह्य भास्वरम् १५गदी शरी महावीर्यः प्रायाद्रणचिकीर्षया। सिंहनादं प्रकुर्वन्तो रथाते। भैरवं .वरम्१६ उद्धवोपि बली साक्षाद्गजमारुह्य सत्व-

को सुनकर सात्यकि क्रोधमें भर गए ९ और विचारने लगे, कि यादवेश्वर केशव मेरे ऊपर सारा भार रख कर अव्यय शंकरके देखनेके लिए कैलासके शिखर पर गए हैं १० इस लिये द्वारकापुरी रक्षा मुझे अवश्य करनी चाहिये, इस प्रकार मनमें विचार करके धनुषको शीघ्रतासे उठा ११ महात्मा दारुकके बडे भारी रथ पर सवार होगया, उस रथको दारुकके पुत्रने ठीक किया था, परन्तु उसका सारथी दारुक ही था १२ बड़े भारी धनुषको उठानेके बाद सर्पोंकी समान बाणोंको उठा लिया और शस्त्र जिसके ऊपर पडनेसे उसकी चोटको कठिनतासे सह सकें ऐसे दुःसह कवचको पहर कर अंगद कुण्डल तूण चाप गदा और तलवार वाला शिनिवंशी सात्यकि केशवके वचनका स्मरण करता हुआ युद्ध करनेको चल पडा॥१३॥१४॥इसप्रकार उत्तम सात्यकि दीपिका (मशालों) से दीपित देशमें चलदिया और महावीर्य बलदेव जी भी गदा और बाणोंको ले युद्ध करनेकी इच्छासे रथ पर बैठ कर चल दिये, इस प्रकार सब योधा सिंहनादका भयंकर

रम् । मत्तं महारवं घोरं संग्रामे नीतितत्परम् ॥१७॥ ययौ नीतिं विचिन्वानः परां नीतिं महाबलः । अन्ये च वृष्णयः सर्वे ययुः संग्रामलालसाः ॥ १८ ॥ रथान् गजान् समारुह्य हार्दिक्यप्रमुखा-स्तथा । दीपिकाभिश्च सर्वत्र पुरोभृत्याभिरीश्वराः ॥ १९ ॥ सिंह-नादं प्रकुर्वन्तः स्मरन्तः कैशवं वचः । पूर्वद्वारं समागम्य वृष्णयो युद्धलालसाः ॥ २० ॥ ते समेत्य यथायोग्यं स्थितास्तत्र महा-बलाः । स्थिते सैन्ये महाघोरे दीपिकादीपिते पथि ॥२१॥ शिनि-र्वीरः शरी चापि गदी तूणीरवान् विभो । वायव्यास्त्रं समादाय योजयित्वा महाशरम् ॥ २२ ॥ आकर्णपूर्णमाकृष्य धनुःप्रवर-मुत्तमम् । मुमोच परसैन्येषु शिनिर्वीरः प्रतापवान् ॥२३॥ वाय-व्यास्त्रेण ते सर्वे तत्रस्था नरसत्तमाः । विजिता हस्तवीर्येण गत्र

शब्द करते हुए चल दिये ॥ १५ ॥ १६ ॥ तदनन्तर महाबली उद्धव भी श्रीकृष्णके स्नेहका विचार करके नीतिपूर्वक बड़ी चिग्घाड़ करने वाले नीतिमान् मत्त और भयंकर हाथी पर चढ़ कर रणको चलदिये; दूसरे हार्दिक्य आदि संग्राम करना चाहने वाले वृष्णि भी रथ और हाथी घोड़ों पर सवार होकर चल दिये, उस समय उन ऐश्वर्यशाली पुरुषोंके आगे (पुरुष हाथमें) मशालें लेकर चल रहे थे ॥ १७ ॥ १८ ॥ युद्ध करनेकी अभिलाषा वाले वृष्णि श्रीकृष्णके वचनका स्मरण कर सिंहनाद करते हुए पूर्वद्वार पर पहुँच गए तहाँ वह महाबली यथायोग्यरीति से मशालोंसे प्रदीप्त मार्गमें खड़े होगए ॥२०॥ हे विभो ! उस समय बाण चाप गदा और भाथे वाले वीर शिनिने महाशरको वायव्यास्त्रसे अभिमंत्रित किया ॥ २१ ॥ फिर प्रतापी शिनि वीरने श्रेष्ठ धनुषको कान तक खैंच कर उसको शत्रुसेना पर छोड दिया ॥ २२ ॥ वायव्यास्त्रसे वे नरसत्तम हारगए और अस्त्रके वीर्य से पराजित हो तहाँ पहुँचे जहाँ पर पौण्ड्रक खड़ा

तिष्ठति पौण्ड्रकः ॥ २४ तत्र गत्वा स्थिताः सर्वे निर्द्धूता वात-रंहसा । यत्र पूर्वं स्थिताः सर्वे विद्रुता राजसत्तमाः ॥ २५ ॥ तत्र स्थित्वा च शैनेयः शरणादाय सत्वरम् । निशितं सर्पभोगाभं बभाषे सात्यकिस्तदा ॥ २६ ॥ क्व इदानीं महाबुद्धिः पौण्ड्रको राजसत्तमः । स्थितोऽस्ति व्यवसायेन शरी चापी महाबलः २७ यदि द्रष्टा दुरात्मानं ततो हन्ता नृपाधमम् । भृत्योऽस्मि केशव-स्याहं जिघांसुः पौण्ड्रकं स्थितः ॥२८॥ छित्वा शिरस्तु तस्यास्य सर्वक्षत्रस्य पश्यतः । बलिं दास्यामि गृध्रेभ्यः श्वभ्यश्चैव दुरा-त्मनः ॥ २९ ॥ को नाम ईदृशं कर्म चोरवच्च समाचरेत् । सुप्तेषु निशि सर्वत्र यादवेषु महात्मसु ॥ ३० ॥ चोरोऽयं सर्वथा राजा न हि राजा बलान्वितः । यदि शक्तो न कुर्याच्च चौर्यमेवं नृपा-धमः ॥३१॥ अहोऽस्य बलिनो राज्ञश्चौरकार्यं प्रकुर्वतः । सर्वथा-

था ॥ २३ ॥ वायव्यास्त्र के तेजसे झँकोड़े हुए राजसत्तम और भागे हुए राजाओं के पास जा कर पहुँच गए ॥ २४ ॥ २५ ॥ वहाँ खड़े हो सर्पके शरीरकी समान तीक्ष्ण बाण लेकर सात्यकि कहने लगा, कि- २६ महाबुद्धि और महाबल धनुर्बाणधारी राजसत्तम पौण्ड्रक इस समय कहाँ है और वह क्या व्यवसाय कर रहा है २७ यदि मैं उस दुरात्माको देख लूँगा तो उस नृपाधमको मार डालूँगा, मैं केशवका सेवक हूँ और पौण्ड्रकको मारनेके लिए खड़ा हुआ हूँ ॥२८॥ मैं क्षत्रियों के देखते हुए उस दुरात्माके शिरको काट कर गीध और कुत्तों को बलि दूँगा ।२९। चोरकी समान ऐसा कर्म और कौन कर सकता है ? इसने रात्रिमें सोते हुए महात्मा यादवों पर (आक्र-मण किया है) ३० यह राजा तो सर्वथा चोर है; यह कोई बल-युक्त राजा नहीं है, यदि यह समर्थ होता तो ऐसा चौरकर्म नहीं करता ३१ अहो ! यह बली राजा चौरकर्म कर रहा है, इस

गमनं तस्य न हि पश्यामि साम्प्रतम् ॥३२॥ इत्युक्त्वा सात्यकिर्वीरः प्रजहास महाबलः। विस्फार्य सुदृढं चापं संदधे कार्मुके शरम् ॥ ३३ ॥ आकर्ण्य वचनं वीरः सात्यकेस्तस्य धीमतः। क्व नु कृष्णः क्व गोपालः कुतः सोऽथ प्रवर्त्तते ३४॥ स्त्रीहंता पशुहन्ता न क्व च स्वामीति सेवितः। स इदानीं क्व वर्तेत गृहीत्वा मम नाम तत् ॥ ३५ ॥ हन्ता सख्युर्महावीर्यो नरकस्य महात्मनः। ममैव तात युद्धेऽस्मिन् हते तस्मिन् दुरात्मनि ॥ ३६ ॥ गच्छ त्वं कामतो वीर योद्धुं न क्षमते भवान्। अथवा तिष्ठ किंचित्तु ततो द्रक्ष्यसि मे बलम् ॥ ३७॥ शिरस्ते पातयिष्यामि शरैर्घोरैर्दुरासदैः। हतस्य तव वीरेह भूमिः पास्यति शोणितम् ॥३८ श्रोष्यते स तथा गोपो हतः सात्यकिरित्यपि। गोगर्वस्तस्य गोपस्य सर्वदा वर्तते महान् ॥ ३९ ॥ विनश्यति स तु क्षिप्रं

लिए इस समय मुझे इसका आगमन उचित प्रतीत नहीं होता ३२ इस प्रकार कह कर महाबली वीर सात्यकि बड़ी जोरसे हँसा और बड़े भारी धनुषको तान उस पर बाण चढ़ाया ॥ ३३ ॥ बुद्धिमान् सात्यकिके वचनको सुनकर वीर पौण्ड्रक कहने लगा, कि कृष्ण कहां है, वह ग्वाला कहां है ? ॥ ३४ ॥ वह स्त्रीको मारने वाला और पशुओंको मारने वाला कहाँ है; वह मेरा नाम धारण करके इस समय कहां बैठा है ३५ उस महावीर्यवान्ने मेरे मित्र महात्मा नरकासुरको मार डाला था, हे तात ! युद्धमें उस दुरात्माके मारे जाने पर मुझे (परम प्रसन्नता होगी) ३६ हे वीर ! तू इच्छानुसार चला जा, क्योंकि—तुझमें मेरे साथ युद्ध करनेकी सामर्थ्य नहीं है अथवा तू कुछ देर ठहरा रह तब मेरा बल तुझे दीख जावेगा ॥ ३७। मैं दुरासद बाणोंसे तेरे शिर को भूमि पर गिरा दूँगा, हे वीर ! जब तू मर जावेगा तब भूमि तेरे रुधिरका पान करेगी ॥ ३८ ॥ तब वह गोप सुनेगा,

हते त्वयि यदूत्तम । त्वयि रक्षां समादिश्य गोपः कैलासगव-तम् ॥४०॥ गत इत्येवमस्माभिः श्रुतं पूर्वं महामते । शरं गृहाण निशितं यदि शक्तोऽसि सात्यके । इत्युक्त्वा बाणमादाय यथौ योद्धुं व्यवस्थितः ॥ ४१ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौंड्रकवधे सात्यकिपौंड्रभाषणं नाम पञ्चनवतितमोऽध्यायः ९५

वैशम्पायन उवाच । ततः क्रुद्धो महाराज सात्यकिर्वृष्णि-पुङ्गवः । उवाच वचनं राजन् वासुदेवं स्मरन्निव ॥ १ ॥ अवोचद्यदीदृशं वाक्यं वासुदेवं नृपाधमः । को नाम जगतां नाथमित्थं ब्रूयाज्जिजीविषुः ॥ २ ॥ मृत्युस्त्वां सर्वथा याति वदन्तं तादृशं वचः । जिह्वा ते शतधा दीर्यात्वदतस्तादृशं वचः ॥ ३ ॥ एष ते पातयिष्यामि शिरः कायाच्च पौण्ड्रक । यन्नाम वासुदेवेति तव

कि—सात्यकि भी मारा गया उस गोपको बड़ा भारी गर्व है, हे यदूत्तम ! तेरे मारे जाने पर उसका वह घमण्ड शीघ्र ही दूर हो जाय, हे महामते ! तेरे ऊपर रक्षाका भार छोड़ कर वह कैलास-पर्वतको चला गया है यह बात हमने पहिले भी सुनी थी हे सात्यके ! यदि तू समर्थ हो तो तीक्ष्ण बाणको उठाले, इस प्रकार कह कर वह बाण लेकर लड़नेके लिए तयार हो गया ॥ ३९ ॥ ४१ ॥ पिचानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥ ९५ ॥ छ

वैशम्पायनजीने कहा, कि—हे महाराज ! तब वृष्णिपुंगव सात्यकि क्रोधमें भर गया और हे राजन् ! वह श्रीकृष्णका स्म-रण करके यह बात कहने लगा ॥१॥ हे नृपाधम ! तुमने वासु-देवके विषयमें जैसी बात कही है, ऐसी बात जीवित रहने वाला कौन कह सकता है २ तूने ऐसी बात कही है, इससे मृत्यु तुझ पर झपट रही है, ऐसी बात कहनेसे तेरी जीभके सौ टुकड़े हो जावेंगे ३ हे पौण्ड्रक ! मैं अब तेरे शिरको काटे डालता हूँ, इस

संप्रति वर्त्तते ॥ ४ ॥ यावत् पतति कायात्ते शिरस्तावत् प्रवर्त्तते । स एव शब्दो न भगवान् वासुदेवो भविष्यसि ॥ ५ ॥ एक एव जगन्नाथः कर्ता सर्वस्य सर्वगः । दुरात्मन सर्वथा देवो भविष्यति न संशयः । ६ ॥ एष तेऽहं शिरः कायात् पातयिष्यामि राजक । यद्यसौ भगवान् विष्णुर्नागमिष्यति सांप्रतम् ॥ ७ ॥ अस्त्रवीर्यं बलं चैव सर्वं दर्शय सांप्रतम् । नातः परतरं राजन् वीर्यं च तव वर्त्तते । ८ ॥ सर्वं दर्शय यत्नेन स्थितोऽस्मि व्यवसायवान् । शरी चापी गदी खड्गी सर्वथाहमुपस्थितः ॥ ९ ॥ नैतन्नगरमायासीः सत्यमेतद् ब्रवीम्यहम् । सर्वथा कृतकृत्योऽस्मि दृष्ट्वा त्वां वासुदेवकम् ॥ १० ॥ तवाङ्गं तिलशः कृत्वा श्वभ्यो दास्यामि राजक । इत्युक्त्वा बाणमादाय वासुदेवं महाबलः ॥ ११ आकर्णपूर्णमाकृष्य विव्याध निशितं शरम् । स तेन विद्धो

समय जो तेरा वासुदेव नाम प्रचलित है । ४ । वह तेरे धडसे तेरे शिरके अलग होने तक ही रहेगा, कल प्रातःकाल तू भगवान् वासुदेव न रह सकेगा ५ हे दुरात्मन ! सबके कर्त्ता सर्वव्यापी एक जगन्नाथ ही वासुदेव रहेंगे, इसमें कुछ सन्देह नहीं है । ६ । हे कुत्सित राजन् ! मैं अब तेरे शिरको पृथ्वी पर गिराये देता हूँ यदि भगवान् विष्णु नहीं आपहुँचे ॥ ७ ॥ तो तू इस समय मेरे बल वीर्यको इस समय देखेगा, हे राजन् ! तुझमें इस (बकवाद) से अधिक वीर्य नहीं है ॥८॥ तू अपना सब पराक्रम दिखाले, मैं तयार खडा हूँ, मैं धनुष बाण गदा और खड्गको लेकर सब प्रकारसे तयार खडा हुआ हूँ ९ तू इस नगरमें न घुस सकेगा, यह बात मैं सत्य कहता हूँ, मैं तुझ ओछे वासुदेवको देख कर भली प्रकार कृतकृत्य होगया हूँ १० मैं तेरे अङ्गके तिल तिल की समान टुकडे करके कुत्तोंको देदूँगा, इस प्रकार कह कर महाबली सात्यकिने वासुदेवकी ओर बाण

गदुना वासुदेवः प्रतापवान् ॥ १२ ॥ वमञ्छोणितमत्युष्णमंगान्नेत्रान्नृपोत्तम । ततश्चुकोध नृपतिर्वासुदेवः प्रतापवान् ॥ १३ ॥ नवभिर्दशभिश्चैव शरैः सन्नतपर्वभिः । विव्याध सात्यकिं राजा नर्दंश्च बहुधा किल ॥ १४ ॥ ततो नाराचमादाय निशितं यमसंनिभम् । धनुराकृष्य भगवान् वासुदेवो नृपोत्तम ॥ १५ ॥ विव्याध सात्यकिं भूयो निशि प्रह्लादयन् स्वकान् । नाराचेन समाविद्धः सात्यकिः सत्यसङ्गरः ॥ १६ ॥ ललाटे सुदृढं वीरो वृष्णीनामग्रणीस्तदा । निषसाद रथोपस्थे निश्चेष्ट इव सत्तमः १७ ततः स पौण्ड्रको राजा विद्ध्वा दशभिराशुगैः । सारथिं पञ्चविंशत्या हयांश्च चतुरो नृप ॥ १८ ॥ ते हया रुधिराक्ताङ्गाः सारथिश्च समन्ततः । विह्वलाः समपद्यन्त वासुदेवस्य पश्यतः १९ वासुदेवो रथे चापि सिंहनादं समादधे । तेन नादेन तत्राभूद्वि-

ताना ११ और कान तक खैंच कर उस तीक्ष्ण बाणको छोड़ दिया, उस यादवसे घायल होने पर प्रतापी वासुदेव मुखसे नेत्रसे तथा और अङ्गोंसे गरम २ खून गिराने लगा, हे नृपोत्तम ! तदनंतर प्रतापी वासुदेव क्रोधमें भर गया १२-१३ और उस राजाने बारम्बार गर्जना करके नमी हुई गाँठ वाले नौ और दश बाणोंसे उसको बींध डाला १४ हे नृपोत्तम ! तदनन्तर भगवान् वासुदेवने यम की समान तीक्ष्ण बाणको लेकर धनुषको ताना १५ और रात्रिमें अपने मनुष्योंको प्रसन्न करनेके लिए सात्यकिको घायल कर दिया वृष्णियोंका अग्रणी सत्यप्रतिज्ञ वीर सात्यकि बाणसे घायल होनेपर रथकी बैठक पर निश्चेष्ट होकर बैठ गया १६-१७ तदनन्तर राजा पौंड्रकने दश बाणोंसे सात्यकिको और पच्चीस बाणोंसे सारथिको तथा चार बाणोंसे घोड़ोंको घायल कर डाला ॥ १८ ॥ तब वासुदेवके देखते हुए सारथि और घोड़े रुधिरसे सराबोर हो विह्वल होगए ॥ १९ ॥ फिर रथमें वासुदेवने

युक्तः सात्यकिर्नृप ॥ २० ॥ विद्धान् हयांस्तथा दृष्ट्वा सारथिं च तथागतम् । शैनेयोऽथ महावीर्यो रुषितो नृपसत्तमः ॥ २१ ॥ अलं द्रष्टास्मि ते वीर्यमित्युक्त्वा बाणमाददे । निजघान तेन बाणेन च हृदयेनं महाबलः ॥ २२ ॥ ततश्चचाल तेनाजौ वासुदेवः शरेण ह । सुस्राव रुधिरं घोरमत्युष्णं वक्षसो नृप ॥ २३ ॥ रथोपस्थे पपाताशु निश्वसन्नुरगो यथा । कृत्यं चापि न जानाति केवलं निःषसाद ह ॥ २४ ॥ सात्यकिस्तु रथं विद्ध्वा दशभिः सायकैस्तथा । ध्वजं चिच्छेद भल्लेन वासुदेवस्य वृष्णिपः ॥ २५ ॥ हयांश्च चतुरो हत्वा बाणैः सारथिमेव च । युयुधानोऽथ राजेंद्र पौण्ड्रकस्य च पश्यतः ॥ २६ ॥ सारथेश्च शिरः कायादाहरत् स रथात्तदा । रथग्रंथिं च चिच्छेद हयाश्च व्यसनो-

---

भी सिंहनाद किया, हे राजन् ! उस नादसे सात्यकि होशमें हो गया ॥ २० ॥ घोड़ोंको और सारथिको घायल हुआ देख कर नृपसत्तम महावीर्यवान् सात्यकि क्रोधमें भरगया ॥ २१ ॥ और अब तेरे वीर्यको देखूँगा, कहकर सात्यकिने बाण उठा लिया फिर महाबली सात्यकिने बाण मार कर उसके हृदयको घायल कर दिया ॥ २२ ॥ हे राजन् ! उस बाणसे युद्धमें वासुदेव काँप गया और हे राजन् ! उसके वक्षःस्थलमेंसे गरम रुधिर बहने लगा ॥ २३ ॥ और वह फुंकार भरते हुए सर्पकी समान रथकी बैठक पर गिर पड़ा, उसे कुछ कर्तव्यज्ञान न रहा और वह ढहरी पड़ा २४ तब वृष्णियोंकी रक्षा करने वाले सात्यकि ने दश बाणोंसे रथपर प्रहार करके भल्ल नामक बाणसे ध्वजा को काट डाला २५ हे राजेन्द्र ! फिर युयुधानने वासुदेवके देखते देखते चार बाणोंसे घोड़ोंको मारा और सारथिको पीड़ित किया २६ फिर रथ पर बैठे हुए सारथिके शिरको सारथीके धड़से अलग कर दिया रथके बन्दोंको काट दिया, तब घोड़े भी

भवन् ॥ २७ ॥ चक्रं च तिलशः कृत्वा शैनेयोऽसौ शिनिर्हसन् ॥ रहसा । जहास विपुलं राजन् वासुदेवो महाबलः ॥ २८ ॥ ततः परं महानादं सात्यकिर्वृष्णिनन्दनः । शब्दं कृत्वा बली साक्षात् सर्वक्षत्रस्य पश्यतः ॥ २९ ॥ शरैः सप्ततिसंख्याकैर्वेगयामास सत्वरम् । ते शराः शलभाकारा निपेतुः सर्वशस्तदा ॥ ३० ॥ शिरस्तः पार्श्वतश्चैव पृष्ठतः पुरतस्तथा । केवलं धैर्यविजय-स्तृषार्तः शरवान् यथा ३१ यथा मनस्वी विक्तश्च तथा तिष्ठति पौण्ड्रकः । ततश्चक्रोध बलवान् वासुदेवः प्रतापवान् ॥ ३२ ॥ अर्धचन्द्रं समादाय विव्याध युधि सात्यकिम् । विद्ध्वा सप्तभि-रायान्तं क्रोधेन प्रस्फुरन्निव ३३ विद्धोऽथ सात्यकिस्तेन शरैः पञ्चभिराशुगैः । चापं चिच्छेद पौण्ड्रस्य सिंहनादं व्यनीन-दत् ३४ वासुदेवो गदां गृह्य भ्रामयित्वा पदात् पदम् । त्वरितं

भरगया २७ हे राजन्! फिर महाबली सात्यकि वेगपूर्वक दश बाण छोड चक्रके तिलकी समान टुकड़े करके जोरसे हँसनेलगा २८ तब वृष्णिनन्दन बलवान् सात्यकिने सब क्षत्रियोंके देखते हुए बड़ी भारी शब्द किया ॥ २९ ॥ और त्वराके साथ सत्तर बाण छोड़ कर वासुदेवको पीड़ित किया, वे बाण टीड़ियोंकी समान वासुदेवके शिर पसली पीठ पर तथा सामने गिरे, उस समय बाणधारी धैर्यवान् वासुदेव उन बाणोंको पिलासे मनुष्यकी समान पीने लगा, फिर मनस्वी बलवान प्रतापी वासुदेव क्रोधमें भरगया ॥ ३०–३२ ॥ और अर्धचन्द्र बाण मार कर सात्यकि को घायल कर दिया, फिर सामने आते हुए सात्यकिको सात बाणोंसे घायल करके वह क्रोधसे काँपनेसा लगा ३३ सात्यकि ने घायल होने पर पाँच बाणोंसे पौण्ड्रकके धनुषको काट डाला और सिंहकी समान गर्जनाकी ॥ ३४ ॥ हे प्रभो ! फिर वासु-देवने गदाको उठाकर घुमाया और पैर उठा कर सात्यकिके

पातयामास सात्यकेर्वक्षसि प्रभो ॥३५॥ सव्येन तां समाकृष्य करेण यदुनन्दनः। शरं प्रगृह्य विव्याध सात्यकिर्युधि पौण्ड्रकम् ॥ ३६ ॥ तमन्तरे गृहीत्वाशु वासुदेवः प्रतापवान्। शक्तिभिर्दशभिश्चैव सात्यकिं निजघान ह ॥ ३७ ॥ ताभिर्विद्धो रणे वीरः सात्यकिः सत्यसंगरः। अपास्य धनुरन्यत्तद्धनुरादाय सत्वरम्। आजघान तदा वीरो वृष्णीनामग्रणीर्नृपः ॥ ३८ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां पौण्ड्रकवधे षण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥

वैशम्पायन उवाच। ततः क्रुद्धो गदापाणिः सात्यकिर्वृष्णिनन्दनः। वासुदेवं जघानाशु गदया तीक्ष्णया नृप॥१॥सात्यकिं वासुदेवस्तु गदयाभ्यहनद्बली। तावुद्यतगदौ वीरौ शुशुभाते सुदारुणौ ॥ २ ॥ हस्तौ वने यथा सिंहौ परस्परवधैषिणौ। ततः स सात्यकिः क्रुद्धः सव्यं मण्डलमागमत् ॥३॥ दक्षिणं वासु-

वक्षःस्थलमें त्वराके साथ प्रहार करने लगा ॥ ३५ ॥ यदुनन्दन सात्यकिने बाएँ हाथसे उस गदाको पकड़ लिया और बाण पकड़कर पौण्ड्रकके मारा ॥ ३६॥ इसी समय प्रतापी वासुदेवने दश शक्तियोंको उठा कर सात्यकिको मारा ॥३७॥ सत्यप्रतिज्ञ सात्यकिने उन शक्तियोंसे घायल होकर उस धनुषको फेंककर दूसरा धनुष उठालिया, फिर वह वृष्णियों का नेता राजा सात्यकि प्रहार करने लगा ॥ ३८ ॥ छियानवेवाँ अध्याय समाप्त

वैशम्पायनजीने कहा,कि हे राजन्! तदनन्तर क्रोधमें भरेहुए गदापाणि सात्यकिने फुर्तीकेसाथ तीक्ष्ण गदासे वासुदेवपरप्रहार किया१तब बलवान् वासुदेवने भी सात्यकिके गदामारी,उससमय गदाको उठाने वाले वे दोनों वीर परस्परका वध करना चाहने वाले वनके बलवान् सिंहोंकी समान शोभा पाने लगे तदनन्तर सात्यकि क्रोधमें भरकर सव्यमण्डलमें आगया ॥ २ ॥ ३ ॥

देवस्तु तं जघान स्तनान्तरे । युयुधानोथ वीरस्तु बाह्वोर्मध्यमताडयत् ॥ ४ ॥ दृढं स ताडितो वीरो जानुभ्यामपतद्भुवि । तत्र उत्थाय वीरस्तु ललाटेऽभ्यहनद्गदाम् ॥ ५ ॥ विषण्णः किंचिदास्थाय तत उत्थाय सत्वरम् । गदयाऽभ्यहनद्वीरः सात्यकिः पौंड्रसत्तमम् ॥ ६ ॥ वासुदेवो बलिर्वीरः साक्षान्मृत्युरिवापरः । जघान गदया वृष्णिं निर्दहन्निव चक्षुषा ॥७॥ स तया ताडितो वृष्णिर्गदया बाहुमुक्तया ॥ ७ ॥ आलम्ब्य भूमिं सहसा मृत्योरंकगतो यथा ॥ ८ ॥ संज्ञां पुनः समालभ्य पाणिभ्यां दृढमेव च । गदां तस्य महाराज गृहीत्वा मग्रहेण च ॥ ९ ॥ द्विधा कृत्वा महागुर्वीं गदां कालायसीं शुभाम् । उत्सृज्य सहसा वीरः सिंहनादं व्यनीनदत् ॥ १० ॥ तत उत्सृज्य राजा तु वासुदेवो महा-

और वासुदेव दक्षिणमण्डलमें आगया, तब वासुदेवने सात्यकिके स्तनोंके बीचमें प्रहार किया और वीर सात्यकिने वासुदेवकी की भुजाओंपर प्रहारकिया ४ दृढ़तासे प्रहार होनेपर वह वीर घुटनोंके बल पृथ्वी पर गिरपडा, फिर वीर वासुदेवने सात्यकिके मस्तकमें गदा मारी ५ तब सात्यकि खिन्न होगया, फिर वह वीर सात्यकि कुछ थम कर उठा और उसने वासुदेवके गदा मारी ६ फिर मृत्युकी समान बलवान् वीर वासुदेवने नेत्रसे भस्म सा करता हो इस प्रकार सात्यकिकी ओर देख कर उसके गदा मारी ७ पौण्ड्रकके हाथसे छूटीहुई उस गदासे ताडित होने पर वृष्णिवंशी सात्यकि सहसा भूमि पर गिर पड़ा और मृत्यु की गोदमें पहुँचा हुआसा प्रतीत हुआ ॥ ८ ॥ हे महाराज ! फिर चेतना आनेपर सात्यकिने उसकी गदाको पकड़ कर छीन लिया ॥ ९ ॥ और उस ठोसलोहेकी बड़ीभारी शुभ गदाके दो टुकड़े करके फेंक दिये, फिर वह वीर सिंहकी समान दहाड़ने लगा १० तदनन्तर महाबली राजा वासुदेवने

बलः । सव्येन सात्यकिं गृह्य दक्षिणेन करेण ह ॥ ११ ॥ मुष्टिं कृत्वा महाघोरां वासुदेवः प्रतापवान् । ताडयामास मध्ये तु स्तनयोः सात्यकेर्नृप ॥ १२ ॥ शैनेयो वृष्णिवीरस्तु गदामुत्सृज्य सत्वरम् । तलेनाभ्यहनद्वीरो वासुदेवं रणाजिरे ॥ १३ ॥ तलेन वासुदेवोऽपि सात्यकिं सत्यसंगरम् । तयोरेवं महाघोरं तलयुद्धं प्रवर्तत ॥ १४ ॥ जानुभ्यां मुष्टिभिश्चैव बाहुभ्यां शिरसा तदा । उरसोरः समाहत्य जानुभ्यां जानुनी तथा ॥ १५ ॥ कराभ्यां करमाहत्य तौ युद्धं संप्रचक्रतुः । तालयोरिव राजेन्द्र वृक्षयोः संनिकर्षयोः ॥ १६ ॥ वने यथा निरुत्पन्नस्तथैवाभून्महास्वनः । तावाजौ मथितौ वीरावुभौ पौंड्रकसात्यकी ॥ १७ ॥ निशि स्तिमितमूकायां शस्त्रं त्यक्त्वा महाबलौ । युयुधाते महारंगे मल्लौ द्वाविव विश्रुतौ ॥ १८ ॥ उभे सैन्ये महाराज्ञोः संशयं जग्मतुस्तदा । किं नु स्यात्सात्यकिर्वीरो

उठ कर बायें हाथसे सात्यकिको पकड़लिया और दायें हाथसे महाघोर मुट्ठी बाँधकर सात्यकिकी छातीमें मारी ११ १२ तदनन्तर वृष्णिवीर सात्यकिने फुर्तीके साथ गदाको फेंक दिया और रणाङ्गणमें वासुदेवके एक तमाचा मारा १३ फिर वासुदेवने भी सत्यनिष्ठ सात्यकिके तमाचा मारा इसप्रकार उन दोनोंमें तमाचों का महाघोर युद्ध होने लगा १४ तदनन्तर वे दोनों घुटनोंसे मुक्कोंसे भुजाओंसे और शिरसे प्रहार करने लगे, फिर छाती से छाती भड़ाकर और घुटनों पर घुटना मार कर और हाथों पर हाथोंका प्रहार करके युद्ध करने लगे हे राजन् । जैसे वनमें पास२ खड़े हुए दो तालके वृक्षोंके टकराने पर शब्द होता है वैसा बड़ा भारी शब्द होने लगा, पौण्ड्रक तथा सात्यकि नाम वाले वे दोनों महाबली वीर सूनसानहुई रात्रिमें शस्त्रोंको त्याग कर अखाड़ेमें लड़ते हुए दो प्रसिद्ध मल्लों समान, युद्ध करने

हतस्तेन भविष्यति ॥ १९ ॥ आहोस्विद्वासुदेवस्तु हतस्तेन महा-
त्मना । अथ वै तौ महावीरौ परस्परवधैषिणौ॥२०॥ युध्यमानौ
महावीरौ तदा (नरौ) स्वर्गं गमिष्यतः । अन्यथा नोपरम्येतां
युद्धाद्वीरौ सुनिश्चितौ२१अहो वीर्यमहो धैर्यमेतयोर्बलशालिनोः।
एतौ महाबलौ लोके एतौ प्रकृतिसत्तमौ ॥ २२ ॥ नैवं युद्धं महा-
घोरमासीद्देवासुरेष्वपि । न श्रुतो न च वा दृष्टः संग्रामोयं कदा-
चन ॥ २३ ॥ एवं वै सैनिका ब्रूयुः सेनयोरुभयोरपि । रात्रौ
निशीथे मेघौघे दृष्ट्वा युद्धं सुदारुणम् ॥ २४ ॥ अथ तौ बाहुभि-
र्वीरौ अन्निपेततुरंजसा । दशभिर्मुष्टिभिर्जघ्ने सात्यकिः पौण्ड्रकं
तदा ॥ २५ ॥ पंचभिः सात्यकिं पौण्ड्रः समाजघ्ने महाबलः ।

लगे १५-१८ उस समय दोनों महाराजाओंकी सेनाएँ संशयमें
पड गईं, कि-क्या वीर सात्यकिको पौण्ड्रक मार डालेगा १९
क्या महात्मा सात्यकि वासुदेवको मार डालेगा, आज परस्पर
का वध चाहनेवाले ये दोनों वीर युद्ध कर रहे हैं॥२०॥ ये युद्ध
करते हुए दोनों ही महावीरपुरुष मर जावेंगे,वैसे यह वीर युद्ध
से नहीं हटेंगे २१ इन बलशालियोंके वीर्यको धन्यवाद है, लोक
में ये दोनों महाबलवान हैं और प्राकृतिक पुरुषोंमें श्रेष्ठ हैं॥२२॥
देवता और असुरोंमें भी ऐसा महाघोर युद्ध कभी नहीं
हुआ है, ऐसा युद्ध तो न कभी सुना है और न कभी
देखा है ॥२३॥ मेघोंसे घिरी हुई अर्धरात्रिमें दारुण युद्धको
देख कर दोनों सेनाओंके वीर (उपरोक्त बातें) कहने लगे २४
तदनन्तर वे दोनों वीर भुजाओंसे युद्ध करने लगे, तब सात्यकि
ने पौण्ड्रके दश मुक्के मारे२५ फिर महाबली पौण्ड्रने सात्यकि
के पाँच बाण मारे, ब्रह्माण्डको क्षुभित करनेवाला उन दोनोंका

ततोश्चटचटाशब्दो ब्रह्माण्डक्षोभणो महान् । प्रादुरासीत्तु सर्वत्र सर्वान् विस्मापयन्निव ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौंड्रकवधोनाम सप्तनवतितमोऽध्यायः ।९७॥

वैशम्पायन उवाच । एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्ध एकलव्यो निषादपः । बलभद्रमभि क्षिप्रं धनुरादाय सत्वरम् ॥ १ ॥ नाराचैर्दशभिर्विद्ध्वा बाणैश्च दशभिः परैः । चिच्छेद धनुरर्द्धं तत्सर्वक्षत्रस्य पश्यतः ॥ २ ॥ सूतं दशभिराहत्य रथं त्रिंशद्भिरेव च । ध्वजं चिच्छेद भल्लेन निषादस्य जगत्पतिः ॥ ३ ॥ ततः परं महच्चापं निषादो वीर्यसम्मतः । दृढमौर्व्या समायुक्तं दशतालप्रमाणतः ४ कामपालं शरेणाशु जघान जनमध्यतः । बलदेवो महावीर्यः सर्पः शेष इव श्वसन् ॥ ५ ॥ दशभिस्तद्धनुर्दिव्यं शरैः सर्पसमैर्बलः । चिच्छेद मुष्टिदेशे तु माधवो माधवाग्रजः ॥६ ॥ एकलव्यो निषा-

चटचटा शब्द सबको विस्मित करता हुआ होने लगा ॥ २६ ॥ सत्तानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥ ९७ ॥ ❀ ❀ ❀

वैशम्पायनजीने कहा, कि-इसी समय निषादोंकी रक्षा करने वाला एकलव्य क्रोधमें भर गया और धनुष ले फुर्तीसे बलभद्र की ओर दौड़ा १ तब जगत्के स्वामी बलदेवजीने सब क्षत्रियोंके देखते २ दश बाणोंसे एकलव्यको घायल करके दूसरे दश बाणोंसे उसके आधे धनुषको काट डाला, फिर सूतके दश बाण मारकर तीस बाणोंसे रथको बींधकर भल्ल नाम बाणसे ध्वजा को काट डाला । २ । ३ । तदनन्तर वीर्यसम्मत निषादने दृढ प्रत्यंचा वाला और दश तालका बड़ा भारी धनुष उठा लिया४ और मनुष्योंके बीचमें बलदेवजीके तीक्ष्ण बाण मारा, तब महावीर्यवान् बलदेव शेष नामक सर्पकी समान श्वास भरने लगे ५ तब माधवके बड़े भाई मधुवंशी बलदेवजीने सर्पकी समान दश

देशः खड्गमादाय सत्वरः । प्राहिणोद्बलमादाय निशितं घोर-
विग्रहम् ॥७॥ तमन्तरे पटुर्वीरो वृष्णिवीरः प्रतापवान् । तिलशः
पञ्चभिर्बाणैश्चकार यदुनन्दनः ॥ ८ ॥ ततो परं महत्खड्गं सर्व-
कालायसं शुभम् । प्राहिणोत्सारथेः कायमालोक्याथ निषादजः ९
तं चापि दशभिर्वीरो माधवो यदुनन्दनः । बाह्वोरन्तरयोश्चैव
निर्बिभेद महारणे ॥ १० ॥ ततः शक्तिं समादाय घण्टामाला-
कुलां नृपः । निषादो बलदेवाय प्रेषयित्वा महाबलः ॥ ११ ॥
सिंहनादं महाघोरमकरोत्स निषादपः । सा शक्तिः सर्वकल्याणी
बलदेवमुपागमत् १२ उत्पतन्तीं महाघोरां बलभद्रः प्रतापवान् ।
आदायाथ निषादेशं सर्वान् विस्मापयन्निव ॥ १३ ॥ तथैव तं
जघानाशु वक्षोदेशे स माधवः । स तया ताडितो वीरः स्वश-
क्त्याथ निषादपः । विह्वलः सर्वगात्रेषु निपपात महीतले । माघ-

बाणोंसे मुष्टिप्रदेशसे उस बड़ेभारी धनुषको काटडाला ६ तदन-
न्तर निषादोंके स्वामी एकलव्यने शीघ्रतासे भयंकर दिखाववाले
खड्गको बलपूर्वक बलदेवजी पर फेंका ।७। इसी समय प्रताप-
वान् यदुनन्दन वृष्णिवीरने पांच बाणोंसे उस खड्गके तिलकी
समान टुकड़े २ कर डाले ।८। तदनन्तर निषादपुत्रने सारथिके
शरीरको लक्ष्य करके लोहेकी श्रेष्ठ तलवार फेंकी ९ यदुनन्दन
वीर माधवने उस (सारथिकी) भुजाओंके बीचमें पहुँचते ही
उसको काट डाला १० तदनन्तर महाबली राजा एकलव्यने घण्टा
लगी हुई शक्ति उठाकर बलदेव पर फेंकी फिर वह निषादोंका
रक्षक महाघोर सिंहनाद करनेलगा और वह सर्वकल्याणी शक्ति
बलदेवजीकी ओर चली १२ उसी समय प्रतापवान् बलभद्रने उस
आतीहुई महाघोर शक्तिको पकड़कर निषादराजको तथा दूसरे
सब मनुष्योंको भी विस्मयमें डालदिया १३ और उस गदाको एक-
लव्यकी ही छातीमें मारा, अपनी शक्तिसे घायल होने पर एक-

संशयमापन्नो निषादो रामताड़ितः ॥ १५ ॥ निषादास्तस्य राजेन्द्र शतशोऽथ सहस्रशः । अष्टाशीति सहस्राणि निषादास्तस्य योधिनः १६ गदिनः खड्गिनश्चैव महेष्वासा महाबलाः। शरैरनेकसाहस्रैः शक्तिभिश्च परश्वधैः १७ गदाभिः पट्टिशैः शूलैः परिघैः प्रासतोमरैः । कुन्तैरथ कुठारैश्च यादवानां महौजसाम् १८ शलभा इव राजेन्द्र दीप्यमानं हुताशनम् । ते शरैः पातयाञ्चक्रू रामं राममिवापरम् ॥ १९ ॥ केचित् कुठारैराजघ्नुः केचित् कुन्तैः परश्वधैः । गदाभिः केचिदाघ्नन्ति शक्तिभिश्च तथाऽपरे२०निजघ्नुः सहसा रामं स्फुरन्तं पावकं यथा। ततः क्रुद्धो हली साक्षाद्धलमुद्यम्य सत्वरम् २१ सर्वानाकर्षयामास मुशलेन हि पीडयन् । ते हन्यमाना राजेन्द्र निषादाः पर्वताश्रयाः २२ निपेतुर्धरणीपृष्ठे शतशोऽथ सहस्रशः । क्षणेन तन्महाराज हत्वा

उसके सब अंग घूम गए और वह पृथ्वीमें गिरपड़ा, इसप्रकार बलरामके ताड़ना करनेपर उसके प्राण संशयमें पड़ गए१४-१५ हे राजेन्द्र ! एकलव्यके पास सैंकड़ों हजारों निषाद थे, उसके अट्ठासीसहस्र योधा गदा खड्ग और बड़े२ धनुषोंको धारण करते थे,वे महाबली हजारों बाण शक्ति गदा पट्टिश शूल प्रास तोमर कुन्त और कुठार लेकर यादवोंमें महाबलवान् पर,प्रदीप्त अग्नि पर टूटने वाले भुनगोंकी समान दूसरे परशुरामकी समान राम पर दौड़े और उन पर बाण बरसाने लगे १६-१९कोई उनको कुठारोंसे मारने लगे तथा कोई कुन्तोंसे मारने लगे कोई फरसोंसे मारनेलगे,कोई गदाओंसे मारनेलगे और कुछ शक्तियोंसे बलराम परप्रहार करनेलगे२०उन्होंने अग्निकी समान दमकतेहुए बलराम पर सहसा प्रहार करना आरम्भ कर दिया, तब हलधारी बलदेवजीने क्रोधमें भरकर फुर्तीसे हल उठालिया २१ और मूसलों से पीट२ कर सबको खेंचने लगे,हे राजेन्द्र ! पर्वतमें रहने वाले

सर्वान् महाबलान् २३ सिंहवन्ननदंस्तत्र तस्थौ रामो महाबलः। ततो रात्रौ महाघोराः पिशाचाः पिशिताशनाः ॥२४॥ आकृष्य मांसयूगानि भक्षयन्तः समासने। पिबन्तः शोणितं कोष्ठात् संछिद्य च शवं बहु ॥ २५ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि एकलव्यसैन्यवधो नामाष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ९८ ॥

क्रव्यादाः सर्वे एवाशु भक्षयन्तस्तदा शवम्। हसन्तो विविधं घोरं नादयन्तो वसुन्धराम् ॥ १ ॥ राक्षसाश्च पिशाचाश्च पिबन्तः शोणितं बहु। आशिखं भुञ्जते राजञ्छवस्य पिशिताशनाः २ नृत्यन्ति स्म तदा राजन्नगर्यां रणतोषिताः। काका बलाका गृध्राश्च श्येना गोमायवस्तथा ३ भक्षयन्तः प्रवर्तन्ते राक्षसाश्चैव दारुणाः। एतस्मिन्नन्तरे वीरो निषादो लब्धसंज्ञकः ॥४॥ हतान् सर्वान् समालोक्य निषादान् वनचारिणः

निषाद पिटने पर सैंकड़ों और सहस्रोंकी संख्यामें भूमि पर गिरने लगे हे महाराज! इस प्रकार क्षणभरमें सब महाबली निषादोंको मारकर महाबली राम सिंहकी समान गर्जना करने लगे तब रात्रिमें मांसका भक्षण करनेवाले महाघोर पिशाच मांस को खेंच कर बैठ कर खाने लगे और लहाशको चीरकर कोष्ठमें से रक्तपान करने लगे २२-२५ अट्ठानवेंवाँ अध्याय समाप्त ९८

वैशम्पायनजीने कहा, कि—तब बहुतसे पिशाच ल्हाशको खाकर पृथ्वीको गुञ्जारते हुए भयंकररीतिसे हँसने लगे ॥१॥ हे राजन्! मांसभक्षी पिशाच और राक्षस शवके रक्तको पीकर शवकी चोटी तकको खाजाते थे ॥ २ ॥ हे राजन्! उस समय रणसे सन्तुष्ट हुए कौए बगला गीध बाज और गीदड़ नगरीमें नाचने लगे ॥ ३ ॥ और दारुण राक्षस (मांस) खाते हुए विचरने लगे, इसी समय वीर निषादको होश आगया ॥ ४ ॥ वह

गदामादाय कुपितो राममेव जगाम ह ॥ ५ ॥ जघान गदया राजञ्जत्रुदेशे निषादपः । ततो रामो गदी राजन् निषादं बाहुशालिनम् ॥६॥ आजघ्ने गदया क्रूरं गदयत्तो हलायुधः । तयोश्च तुमुलं युद्धं गदाभ्यां समवर्तत ॥ ७ ॥ आकाशे शब्द आसीत्तु तयोर्युद्धे महाभुज । समुद्राणां यथा घोषः सर्वेषां सन्निगच्छताम् ॥८॥ कल्पान्तये महाराज शब्दः सुतुमुलोऽभवत् । क्षोभितो नागराजश्च नागाः क्षोभं समाययुः ॥ ९ ॥ पृथिवी चान्तरिक्षं च सर्वं शब्दमयं बभौ। ततः स पौण्ड्रको राजा सात्यकिं वृष्णिनन्दनम् ॥ १० ॥ गदयैव जघानाशु सत्वरं रणकोविदः। युयुधानो बली राजन् वासुदेवं जघान ह ॥ ११ ॥ तयोश्च तुमुलः शब्दः प्रादुरासीन्महारणे। चतुर्णां युध्यतां राजन् परस्परवधैषिणाम् ॥ १२ ॥ ब्रह्माण्डक्षोभणो राजञ्छब्द आसीत् सुदा-

सब पर्वतचारी निषादोंको मरा हुआ देखकर कोपमें भर गया और हाथमें गदा ले बलरामजी पर दौड़ा ॥५॥ और हे राजन् ! उसने बलरामकी हँसली पर प्रहार किया, हे राजन ! गदयत्त गदाधारी हलायुधने भुजबलशाली क्रूर निषादराज पर गदा पटकाई, इस प्रकार उन दोनोंमें तुमुल गदायुद्ध होने लगा ॥६॥७॥ हे महाराज ! उस समय युद्धमें दोनोंका शब्द, प्रलयके समय, मिलकर आते हुए सब समुद्रोंके घोषकी समान होने लगा, उस तुमुल शब्दसे नागराज शेष क्षुब्ध होगए और दिग्गज भी क्षुब्ध होगए। ॥८॥९॥ उस समय अन्तरिक्ष और पृथ्वी सब शब्दमय होगए, तदनंतर रणचतुर पौण्ड्रक राजाने वृष्णिनन्दन सात्यकि पर शीघ्रतासे गदाका प्रहार किया, तब हे राजन् ! बलवान् सात्यकिने भी वासुदेव पर प्रहार किया ॥ १० ॥ ११ ॥ उन दोनोंका रणमें तुमुल शब्द होने लगा, हे राजन ! परस्पर वध करना चाहते वाले लड़ते हुए चारों योधाओंका दारुण शब्द

रुणः । ततो रजः प्रादुरभूत्तस्मिन् संग्राममूर्द्धनि ॥ १३॥ तारका निष्प्रभा राजंस्तमस्येवं क्षयं गते । उषसि प्रतिबुद्धायां ततो निःशेषतां ययौ ॥ १४॥ उदितो भगवान् सूर्यश्चन्द्रश्च क्षयमाययौ । तयोर्युद्धं प्रादुरभूच्चतुर्णां बाहुशालिनाम् । देवासुरसमं राजन्नुदिते भास्करे महत् ॥ १५ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौंड्रकयुद्धे नवनवतितमोऽध्यायः ॥ ९९ ॥

वैशम्पायन उवाच । ततः प्रभाते विमले भगवान् देवकीसुतः। गन्तुमैच्छज्जगन्नाथः पुरं बदरिकाश्रमात्॥१॥ नमस्कृत्य मुनीन् सर्वान् ययौ द्वारवतीं नृप । आरुह्य गरुडं विष्णुर्वेगेन महता प्रभुः ॥ २ ॥ सुमहाञ्छुश्रुवे शब्दस्तेषां युद्धं प्रकुर्वताम् । गच्छता देवदेवेन पुरीं द्वारवतीं नृप ॥ ३ ॥ अचिन्तयज्जगन्नाथः कोन्वयं शब्द उत्थितः । संग्रामसम्भवो घोर आर्यशैनेयसंयुतः ॥ ४ ॥

ब्रह्माण्डको क्षुब्ध करने लगा, हे राजन् ! फिर उस संग्रामके मुहाने पर धूल उड़ने लगी ॥ १२ ॥ १३ ॥ हे राजन् ! फिर अंधकारके दूर होने पर तारे प्रभारहित होगए और उषःकाल होने पर अंधकार पूर्णरीतिसे दूर होगया ॥१४॥ भगवान् सूर्य उदय होगए और चन्द्रमा क्षीण होगया, हे राजन् ! सूर्यका उदय होने पर उन चारों भुजबलशालियोंमें देवासुरसंग्रामकी समान युद्ध होने लगा ॥ १५ ॥ निन्यानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥ ९९ ॥

वैशम्पायनजीने कहा, कि–तदनन्तर निर्मल प्रभात होने पर जगत्के स्वामी देवकीपुत्र भगवान् कृष्णने बदरिकाश्रमसे अपने नगरको जानेकी अभिलाषा की ॥ १ ॥ हे राजन् ! प्रभु विष्णु सब मुनियोंकी वन्दना करके गरुड़ पर चढ़ कर वेगसे द्वारकाको चले ॥ २ ॥ हे राजन् ! देवदेवने द्वारकाके समीप पहुँच युद्ध करते हुए पुरुषोंका बड़ा भारी शब्द सुना ॥ ३ ॥ उस समय

भ्यागतवान् पौण्ड्रो नगरीं द्वारकामनु । तेन युद्धं समभवत् पौण्ड्रकेन दुरात्मना ॥ ५ ॥ यदूनां वृष्णिवीराणां युद्ध्यतामितरेतरम् । शब्दोयं सुमहान्व्यक्तो नात्र कार्या विचारणा ॥६॥ इत्येवं चिन्तयित्वा तु दध्मौ शंखं महारवम् । पाञ्चजन्यं हरिः साक्षात् भीणयन् वृष्णिपुङ्गवान् ॥ ७ ॥ रोदसी पूरयामास तेन शब्देन केशवः । यादवा वृष्णयश्चैव श्रुत्वा शंखस्य ते रवम् ८ अभ्यागमाति भगवान् पाञ्चजन्यरवो ह्ययम् । इति ते मेनिरे राजन् वृष्णयो यादवास्तथा ॥९॥ निर्भयाः समपद्यन्त वृष्णयो यादवाश्च ते । तस्मिन्नेव क्षणे दृष्टस्तार्क्ष्यश्च पततां वरः ॥ १० ॥ ततश्च देवकीसूनुर्दृष्टो यादवेश्वरः । सूताश्च मागधाश्चैव पुरो यान्ति जगत्पते ॥ ११ ॥ स्तुत्या स्तुतं हरिं विष्णुमीश्वरं कमले-

---

जगत्के स्वामी विष्णुने विचारा, कि यह बलदेवजीका और सात्यकिका युद्धका घोर शब्द कैसे सुनाई आ रहा है ॥ ४ ॥ प्रतीत होता है, मेरे पीछे पौण्ड्र द्वारका पर चढ़ आया है और उस दुरात्मा पौण्ड्रकसे युद्ध होरहा है ॥५॥ और यह लड़ते हुए वृष्णिवीर यादवोंका बड़ा भारी शब्द है, इसमें सन्देह करनेकी कुछ बात नहीं है ॥६॥ यह विचार कर हरिने वृष्णिपुंगवोंको प्रसन्न करनेके लिए बड़ी भारी ध्वनि करने वाले पाञ्चजन्य नामक शंखको बजाया ॥७॥ केशवने उस शब्दसे आकाश और पृथ्वीको डाट दिया, यादव और वृष्णि शंखके उस शब्दको सुनकर समझने लगे, अब भगवान् ही आ रहे हैं यह पाञ्चजन्यका शब्द है, ॥ ८ ॥ ९ ॥ उसी समय वृष्णि और यादव निर्भय होगए और उसी समय पक्षियोंमें श्रेष्ठ गरुड़जी दीखे ॥ १० ॥ तदनन्तर उन्होंने यादवोंके स्वामी देवकीके पुत्रको देखा, हे जगत्पते ! उस समय सूत और मागध उनके सामने जाने लगे ११ जब ये स्तुतियोंसे उनकी स्तुति कर चुके, तब कमलकी समान

त्तणम् । गताश्च यादवाः सर्वे परिवव्रुर्जनार्दनम् १२ कृष्णस्तु गरुडं प्रूये गच्छ त्वं नाकमुत्तमम् । इत्युक्त्वा गरुडं विष्णुर्विसृज्य यदुनन्दनः ॥ १३ ॥ दारुकं पुनराहेदं रथमानय मे प्रभो । स तथेति प्रतिज्ञाय रथमादाय सत्वरम् ॥ १४ ॥ रथोऽयं भगवन् देव किमतः कृत्यमस्ति मे । इत्युक्त्वा रथमादाय प्रणम्याग्रे स्थितो हरेः ॥ १५ ॥ गतेऽथ गरुडे विष्णू रथमारुह्य सत्वरम् । यत्र युद्धं समभवत्तत्र याति स्म केशवः ॥ १६ ॥ तत्र गत्वा महाराज युध्यतां च महात्मनाम् । पाञ्चजन्यं महाशंखं दध्मौ यदुवृषो-त्तमः ॥ १७ ॥ पौण्ड्रोऽथ वासुदेवस्तु कृष्णं दृष्ट्वा रणोत्सुकम् । सात्यकिं पृष्ठतः कृत्वा वासुदेवमुपागमत् ॥ १८ ॥ क्रुद्धोऽथ सात्यकी राजन् वारयामास पौण्ड्रकम् । न गन्तव्यमितो राजन्नेष धर्मः सनातनः ॥ १९ ॥ जित्वा मां गच्छ राजेन्द्र परं योद्धुं महा-

नेत्रवाले विष्णुके अवतार हरिको सब यादवोंने घेर लिया।१२। तदनन्तर कृष्णने गरुड़से कहा; कि—तुम उत्तम स्वर्ग लोकको जाओ, यदुनन्दन गरुडको इस प्रकार भेजनेके अनन्तर ॥१३॥ दारुकसे कहने लगे, कि हे प्रभो ! आप मेरे रथको लाइये, वह बहुत अच्छा कह फुर्तीसे रथको लेकर पहुँच गया ।१४। "हे भगवन् देव ! यह रथ है, अब मुझे क्या आज्ञा है" कह कर हरिके सामने प्रणाम करके खड़ा होगया ।१५। गरुडके चले जाने पर भगवान् विष्णु शीघ्रतासे रथ पर चढ़कर तहाँको चल दिये, जहाँ युद्ध हो रहा था ।१६। हे महाराज ! तहाँ पहुँच कर उन्होंने युद्ध करते हुए महात्माओंके बीचमें अपने पाञ्चजन्य नामक महाशंखको बजाया ॥ १७ ॥ उधर पौण्ड्रक वासुदेव कृष्णको रणोत्सुक देख कर सात्यकिको पीछे छोड़कर वासुदेवकी ओर जाने लगा ॥ १८ ॥ हे राजन् ! तब सात्यकि क्रोधमें भर कर पौण्ड्रको रोकने लगा (और कहने लगा कि—)

रणे । क्षत्रियोऽसि महावीर स्थिते मयि रणोत्सुके ॥ २० ॥ एष ते गर्वमखिलं नाशयिष्यामि संयुगे । इत्युक्त्वा चाग्रतस्तस्थौ गच्छतो यादवेश्वरः ॥ २१ ॥ पौण्ड्रस्य शिनिनप्ता तु पश्यतः केशवस्य ह । अवज्ञाय शिनेः पौत्रं कृष्णमेव जगाम ह ॥ २२ ॥ निर्भर्त्स्य सहसा भूयः सात्यकिः क्रोधमूर्च्छितः । गदया प्राहरत् पौण्ड्रं वासुदेवस्य पश्यतः ॥ २३ ॥ यथाप्राणं यथायोगं सात्यकिः सत्यविक्रमः । दृष्ट्वाथ भगवानेव सात्यकिं प्रशशंस ह ॥ २४ ॥ निवार्य सात्यकिं कृष्णो यथेष्टं क्रियतामसौ । उपारमद्यथायोगं सात्यकिः कृष्णवारितः ॥ २५ ॥ स ततः पौण्ड्रको राजा वासुदेवमुवाच ह । भो भो यादव गोपाल इदानीं क्व गतो भवान् २६

हे राजन् ! तुम यहाँसे न जाओ, यह सनातन धर्म नहीं है १९ हे राजेन्द्र ! तुम महारणमें मुझे जीत कर ही दूसरोंसे लड़नेके लिए जा सकते हो, हे महावीर तुम क्षत्रिय हो, मुझ रणोत्सुक के खड़े रहने पर (तुम क्यों भागे जाते हो) ॥ २० ॥ मैं युद्धमें तेरे सारे घमण्डको दूरकर दूँगा, इस प्रकार कह कर यादवेश्वर सात्यकि-प्रयाण करते हुए पौण्ड्रकके आगे खड़ा होगया तब वह श्रीकृष्णके देखते हुए शिनिके पौत्र सात्यकिको तुच्छ समझ कर कृष्णकी ओर ही बढ़ने लगा ॥ २१ ॥२२॥ तब सात्यकि ने क्रोधसे मूर्छित होकर वासुदेवके सामने वासुदेवका तिरस्कार कर उस पर गदा मारी ॥ २३ ॥ सत्यपराक्रमी सात्यकि फिर उस पर युक्ति और प्राणबलके अनुसार गदाका प्रहार करता रहा, इस घटनाको देख कर भगवान्ने सात्यकिकी प्रशंसाकी २४ और सात्यकिसे कहने लगे, कि-इसको इच्छानुसार वर्ताव करने दो, तब कृष्णके हटाने पर सात्यकि युक्तिके साथ हट गया तब राजा पौण्ड्रक वासुदेवसे कहने लगा, कि-अरे ! गोपाल ! अरे ! यादव ! इस समय तू कहाँ गया था ॥ २५ ॥ २६ ॥ मैं

त्वां द्रष्टुमथ संप्राप्तो वासुदेवोऽस्मि साम्प्रतम् । हत्वा त्वां सबलं कृष्ण बलैर्बहुभिरन्वितः ॥ २७ ॥ अहमेको भविष्यामि वासुदेवो महीतले । यच्चक्रं तव गोविन्द प्रथितं सुप्रभं महत् ॥ २८ ॥ अनेन तव चक्रेण पीडितोऽस्मि च तद्रणे । चक्रमस्तीति तद्वीर्यं तव माधव साम्प्रतम् ॥ २९ ॥ नाशयिष्यामि तत्सर्वं सर्वक्षत्रस्य पश्यतः । शार्ङ्गिणं मां विजानीहि न त्वं शार्ङ्गीति शिष्यसे ३० (शंखमस्तीति तद्वीर्यं तव माधव साम्प्रतम् ।) शंखी चाहं गदी चाहं चक्री चाहं जनार्दन ॥ ३१ ॥ मामेव हि सदा प्रभुं जानन्ती वीर्यशालिनः । आदौ त्वं बलवद्वृद्धान् हत्वा स्त्रीबालकान् बहून् ॥ ३२ ॥ गाश्च हत्वा महागर्वस्तव सम्प्रति वर्तते । तमहं व्यपनेष्यामि यदि तिष्ठसि मत्पुरः ॥ ३३ ॥ शस्त्रं गृहाण गोविन्द यदि योद्धुं व्यवस्थितः । इत्युक्त्वा बाणमादाय तस्थौ पार्श्वे

वासुदेव इस समय तुझे देखनेके लिए आया हूँ मैं अपने साथ में बहुतसी सेनाएँ लाया हूँ, मैं तुझे और तेरी सेनाओंको मार कर २७ पृथ्वीमें एक वासुदेव रहूँगा और हे गोविन्द ! तेरा जो बड़ी प्रभा वाला प्रसिद्ध चक्र है २८ उस चक्रसे रणमें मुझे पीड़ा होरही है, हे माधव ! तेरे पास जो चक्र और वीर्य है उसको मैं सब क्षत्रियोंके देखते हुए नष्ट कर दूँगा तू मुझे ही शार्ङ्गी जान, तू शार्ङ्गी बाकी नहीं रह सकता ॥ २९ ॥ ३० ॥ (हे माधव ! इस समय तुम्हें यह वीर्य (घमण्ड) है; कि-मैं शंखधारी हूँ) परन्तु हे जनार्दन ! मैं ही शंखधारी गदाधारी और चक्रधारी हूँ, बलशाली पुरुष मुझे ही सदा शंखधारी आदि जानते हैं, तूने पहिले बहुतसे वृद्ध स्त्री और बालकोंको बलपूर्वक मार डाला था और गौओंको भी मार डाला था, उसीका तुझे घमण्ड है, परन्तु तू मेरे सामने खड़ा रहेगा तो मैं तेरे उस गर्वको दूर कर दूँगा ॥ ३१-३३ ॥ हे गोविन्द ! यदि तू युद्ध करनेके लिए खड़ा

जगत्पतेः ॥३४॥ एतद्वचनमाकर्ण्य वासुदेवेन भाषितम् । स्मितं कृत्वा हरिः कृष्णो बभाषे पौण्ड्रकं नृपम् ॥ ३५ ॥ कामं वद नृपाद्य त्वं हि पातक्यस्मि सदा नृप। गोघाती बालघाती च स्त्रीहन्ता सर्वथा नृप ॥ ३६॥ चक्री भव गदी शाङ्ग्धारी च सततं भव । नामधेयं वृथा मह्यं वासुदेवेति च प्रभो ॥ ३७ ॥ शार्ङ्गी चक्री गदी शंखीत्येवमादि वृथा मम । किन्तु वक्ष्यामि किंचित्तु शृणुष्व यदि मन्यसे । क्षत्रियाः बलिनो ये तु स्थिते मयि जगत्पतौ ३८ तथानुब्रुवते त्वां हि जीवत्येव मयि प्रभो । यत्ते चक्रं महाघोर-मसुरान्तकरं महत् ३९ तत्तुल्यं मम चक्रन्तु वृत्ततो न तु वीर्यतः॥ आयुधेष्वथ सर्वेषु शब्दसादृश्यमस्ति ते ॥४०॥ गोपोऽहं सर्वदा राजन् प्राणिनां प्राणदः सदा । गोप्ता सर्वेषु लोकेषु शाश्वता

हुआ है तो शस्त्र पकड़; इस प्रकार कह वह जगत्पतिके सामने बाण ले खड़ा होगया ३४ वासुदेवके कहे हुए इस वचनको सुन कर हरि कृष्ण मुस्करा कर पौण्ड्रकसे कहने लगे ३५ हे राजन् ! तुम इच्छानुसार कहो, मैं पातकी हूँ गोघाती हूँ, बाल-घाती हूँ और स्त्रीघाती हूँ ३६ हे राजन् ! तुम सर्वदा चक्र गदा और शार्ङ्ग धनुषको धारण करते रहो हे प्रभो ! तुम मेरे वासुदेव नामको भी व्यर्थ समझते रहो ३७ और मेरे शार्ङ्ग धनुष चक्र और गदा तथा शंख धारण करनेको निष्फल समझते रहो, किन्तु मैं जो बात कहता हूँ, आपकी इच्छा हो तो उसको सुनिये, परन्तु मुझ जगत्पतिकी जीवित दशामें तो बलवान् क्षत्रिय आपको ही ऐसा कहते हैं, तेरा जो असुर विनाशक महा-घोर चक्र है ३८॥३९ मेरा चक्र उसकी बराबर वृत्तान्तमें तो अवश्य है, परन्तु वीर्यमें उसकी समान नहीं है तथा आपके और आयुधोंमें भी शब्द-सादृश्य है ४० हे राजन् ! मैं तो सर्वदाका गोप हूँ और प्राणियोंको प्राणदान करता रहता हूँ, मैं सब लोकों

दुष्टस्य सर्वदा ॥ ४१ ॥ कत्थनं सर्व कार्यं हि जित्वा शत्रून् नृपाधम । अजित्वा किं भवान् ब्रूते स्थिते मयि त्व शस्त्रिणि ॥४२॥ हत्वा मां ब्रूहि राजेन्द्र यदि शक्तोऽसि पौण्ड्रक । स्थितोऽहं चक्रमाश्रित्य रथी चापी गदासिमान् ॥४३॥ रथमारुह्य युद्धाय सन्नद्धो भव मानद । इत्युक्त्वा भगवान् विष्णुः सिंहनादं व्यनीनदत् ४४ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कृष्णपौण्ड्रकयुद्धे शततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥

वैशम्पायन उवाच । ततः शार्ङ्गं समादाय वासुदेवः प्रतापवान् । पौण्ड्रं जघान सहसा निशितेन शरेण ह ॥ १ ॥ पौण्ड्रोऽथ वासुदेवस्तु शरैर्दशभिराशुगैः । वासुदेवं जघानाशु वार्ष्णेयं वृष्णिनन्दनम् ॥ २ ॥ दारुकं पञ्चविंशत्या हयान्दशभिरेव च । सप्तत्या वासुदेवं तु यादवं वासुदेवकः ॥ ३ ॥ ततः प्रहस्य सुचिरं केशवः ।

में (शिष्टोंका) रक्षक हूँ और दुष्टोंको दण्ड देने वाला हूँ ४१ हे नृपाधम ! शत्रुओंको जीत कर अपनी प्रशंसा करना ठीक होता है परन्तु तुम बिना जीते हुए ही मुझ शस्त्रधारीके खड़े रहने पर क्यों बकवाद कर रहे हो ४२ हे राजेन्द्र पौण्ड्रक ! यदि तू शक्तिशाली है, तो मैं भी चक्र चाप गदा और तलवार लेकर रथमें बैठा हुआ हूँ ४३ अब हे मानद ! तू भी रथ पर चढ़ कर युद्ध करनेके लिये तयार होजा ! भगवान् विष्णु इस प्रकार कह कर सिंहकी समान दहाड़ने लगे ४४ सौवाँ अध्याय समाप्त १००

वैशम्पायनजीने कहा, कि-तदनन्तर प्रतापी वासुदेवने बाण को चढ़ाया और सहसा तीक्ष्ण बाणका पौण्ड्रपर प्रहार किया १ तदनन्तर पौण्ड्र वासुदेवने वृष्णिनन्दन वार्ष्णेय वासुदेवको दश शीघ्रगामी बाणोंसे घायल कर दिया २ तथा दारुकको पच्चीस और घोड़ोंको दश और यादव वासुदेवको फिर सत्तर बाण मार कर घायल कर दिया ३ तदनन्तर केशिनिषूदन केशव

केशिसूदनः । दृष्टोऽसाविति मनसा सम्पूज्य यदुनन्दनः ॥ ४ ॥ आकृष्य शार्ङ्गं बलवान् सन्धाय रिपुसूदनः । नाराचेन सुतीक्ष्णेन ध्वजं चिच्छेद केशवः ५ सारथेश्च शिरः कायादाहृत्य यदुनंदनः । अश्वांश्च चतुरो हत्वा चतुर्भिः सायकोत्तमैः ६ रथं राज्ञः समाहृत्य तदोभौ पार्ष्णिसारथी । चक्रं च तिलशः कृत्वा हसन् किंचिदिव स्थितः ॥ ७ ॥ पौण्ड्रको वासुदेवस्तु रथादुत्प्लुत्य सत्वरः । आदाय निशितं खड्गं प्राहिणोत् केशवाय सः ॥८॥ स खड्गं शतधा कृत्वा तूष्णीमासीच्च केशवः । ततः परं महाघोरं परिघं कालसंमितम् ॥ ९ ॥ गृहीत्वा वासुदेवाय वासुदेवः प्रतापवान् । प्राहिणोद्वृष्णिवीराय सर्वक्षत्रस्य पश्यतः ।१०। तद्दृष्ट्वा जगतां नाथश्चकार यदुनन्दनः । ततश्चक्रं महाघोरं सहस्रारं महाप्रभम् ॥ ११ ॥ त्रिंशद्भारसमायुक्तमायसास्यमभि-

बहुत समय तक अपने मनमें हँस कर कहने लगे कि-बस देख लिया ४ फिर रिपुनाशी केशवने शार्ङ्ग धनुषको खेंच तेज बाण से उसकी ध्वजाको काट डाला ५ तदनन्तर यदुनन्दनने सारथि के शिरको धड़से अलग कर दिया और चार उत्तम बाणोंसे उसके चारों घोड़ोंको मार डाला ॥ ६ ॥ फिर उन्होंने राजाके रथको नष्ट करके पार्ष्णि और सारथीको मार डाला और चक्रके तिल २ की समान टुकड़े करके मुस्कुरा कर खड़े होगए ॥ ७ ॥ तब पौण्ड्रक वासुदेवने फुर्तीके साथ रथ परसे कूद कर तीक्ष्ण खड्ग उठा वासुदेव पर फेंका । ८ । केशव उस खड्गके सैंकड़ों टुकड़े करके चुपचाप खड़े ही गए, तदनन्तर प्रतापी वासुदेवने कालकी समान एक महाघोर परिघ उठा लिया और सब क्षत्रियोंके सामने उसको वृष्णिवीर वासुदेव पर फेंक दिया ॥ ९ ॥ १० ॥ जगत्के स्वामी यदुनन्दनने उसके दो टुकड़े कर दिये तदनन्तर शत्रुओंका नाश करने वाला

ग्रहा। आदायाथ महाराज केशवं वाक्यमब्रवीत् ॥१२॥ पश्येदं निशितं घोरं तव चक्रविनाशनम्। अनेन तव गोविन्द दर्पं दर्पवतां वर ॥ १३ ॥ अपनेष्यामि वार्ष्णेय सर्वक्षत्रस्य पश्यतः। त्वामुद्दिश्य महाघोरं कृतमन्यद्दुरासदम् ॥ १४ ॥ यदि शक्तो हरे कृष्ण दारयेदं महास्पदम्। इत्युक्त्वा तच्छतगुणं भ्रामयित्वा महाबलः ॥ १५ ॥ चिक्षेपाथ महावीर्यः पौण्ड्रको नृपसत्तमः। अवप्लुत्य ततो देशात्तदुत्सृज्य महाबलः ॥१६॥ सिंहनादं महाघोरं व्यनदद्वीर्यवांस्तदा। ततो विस्मयमापन्नो भगवान् देवकीसुतः ॥ १७ ॥ अहो वीर्यमहो धैर्यमस्य पौण्ड्रस्य दुःसहम्। इति मत्वा जगन्नाथ उत्थितश्च रथोत्तमात् ॥ १८॥ ततः शिलां समादाय प्रेषयामास केशवम्। तां शिलां प्रेषयामास तस्मै यदुकुलो-

पौण्ड्रक तीस भार वाले मुख पर लोहा लगे हुए सहस्र अरे वाले महाप्रभावान् महाघोर चक्रको उठा कर केशवसे यह बात कहने लगा, कि-॥११॥१२॥ अपने चक्रको नष्ट करने वाले इस घोर तीक्ष्ण चक्रको देख, अरे बड़े घमण्डी वासुदेव! मैं सब क्षत्रियोंके सामने तेरे गर्वको दूर कर दूँगा, मैंने तुझको लक्ष्यमें रखकर इस दूसरोंसे न सहने योग्य चक्रकी रचनाकी थी।१३।१४। हे हरे कृष्ण! यदि तू समर्थ है तो इस प्रतिष्ठित चक्रको विदीर्ण कर, इस प्रकार कह कर उस महाबलीने उस चक्रको सौ बार घुमाया ॥ १५ ॥ फिर नृपसत्तम महावीर्यवान् पौण्ड्रकने उस स्थानसे कूद कर उस चक्रको फेंक दिया १६ फिर वह वीर्यवान् महाघोर सिंहनाद करने लगा, तब देवकीपुत्र भगवान् कृष्ण विस्मित होने लगे कि-॥ १७ ॥ इसका वीर्य आश्चर्यजनक है और इस दुःसह पौण्ड्रका धैर्य भी आश्चर्यजनक है, यह विचार कर जगन्नाथ श्रेष्ठ रथसे उठे१८तदनन्तर पौंड्रकने शिला उठाकर केशवपर फैंकी; परन्तु यदुकुलोद्वह श्रीकृष्णने उस शिलाको उस

द्रुहः ॥ १९ ॥ पौण्ड्रेण सुचिरं कालं विक्रीड्य भगवान् हरिः । ततश्चक्रं समादाय निशितं रक्तभोजनम् ॥ २० ॥ दैत्यग्रास-प्रदिग्धांगं नारीगर्भविमोचनम् । शातकुम्भमयं घोरं दैत्यदानव-नाशनम् ॥२१॥ सहस्रारं शतारं तदद्भुतं दैत्यभीषणम् । ऐश्वर्य-धर्म परमं नित्यं सुरगणार्चितम् ॥ २२ ॥ विष्णुः कृष्णस्तथा शार्ङ्गी नित्ययुक्तः सदा हरिः । जघान तेन गोविन्दः पौण्ड्रकं नृपसत्तमम् ॥२३॥ तस्य देहं विदार्याशु चक्रं पिशितभोजनम् । कृष्णस्याथ करं भूयः प्राप सर्वेश्वरस्य ह ॥ २४ ॥ ततः स पौण्ड्रको राजा गतासुः प्रापतद्भुवि । निहत्य भगवान् विष्णुर्दु-र्विज्ञेयगतिः प्रभुः । प्रतिपेदे सुधर्मान्तु यादवैः पूजितो हरिः ॥ २५ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां पौण्ड्रकवासुदेववधो नामैकाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥

के पास ही लौटा दिया १९ इस प्रकार भगवान् हरिने पौण्ड्रकके साथ बहुत समय तक क्रीड़ा करके रक्तका भोजन करनेवाला दैत्योंके मांससे सना हुआ और स्त्रियोंके गर्भको गिराने वाला दैत्यदानवनाशक सुवर्णनिर्मित, सैंकड़ों हजारों अरों वाला, दैत्यभीषण, ऐश्वर्यरूप कवच वाला देवताओंसे पूजित चक्र उठा लिया २०-२२ शार्ङ्ग धनुषको सर्वदा धारण करने वाले तथा हरि विष्णु कृष्ण और गोविन्द नाम वालेने उस चक्रसे नृपसत्तम पौण्ड्रक पर प्रहार किया ॥ २३ ॥ तब वह मांसभक्षक चक्र शीघ्रतापूर्वक उसके देहको विदीर्ण करके सर्वेश्वर कृष्ण के हाथमें फिर आगया ॥२४॥ तब पौण्ड्रक राजा प्राणहीन हो भूमिपर ढह पड़ा उसको मारनेके अनन्तर जिनकी गतिको जानना कठिन है ऐसे प्रभु विष्णु यादवोंसे प्रशंसा पाते हुए सुधर्मा नामक सभामें घुसे २५ एकसौ एकवाँ अध्याय समाप्त १०१

वैशम्पायन उवाच । निषादेशं ततो रामः शक्त्या वीर्यवतां वरः । आजघान स्तनद्वन्द्वे सिंहनादं व्यनीनदत् ॥ १ ॥ ततः क्रुद्धो निषादेशो रामं मत्तं महाबलम् । गदया लोकविख्यातो जघान स्तनवक्षसि ॥ २ ॥ आहतः स तु तेनाशु बलभद्रो महाबलः । उभाभ्यां चैव रामस्तु कराभ्यां वृष्णिपुङ्गवः ॥३॥ गदां गृह्य महाघोरामायान्तीं प्राणहारिणीम् । दुद्राव निषादेशः समुद्रं मकरालयम् ॥ ४ ॥ धावत्येवं तदा राज्ञि एकलव्ये निषादपे । धावत्येवं च रामोऽपि यत्र यातो निषादपः ॥ ५ ॥ सागरं स प्रविश्याशु गत्वा योजनपञ्चकम् । भीत एव तदा राजन्नेकलव्यो निषादपः ॥ ६ ॥ कंचिद् द्वीपान्तरं राजन् प्रविश्य न्यवसत्तदा । ततो रामो निषादेशं जिगाय यदुनन्दनः ॥ ७ ॥ तां सभां मणिरत्नाढ्यां प्रविवेश हलायुधः । सात्यकिर्युद्धसंसक्तस्तां

वैशम्पायनजीने कहा, कि-इसी समय वीर्यवानोंमें श्रेष्ठ बलरामने निषादराजकी छातीमें शक्ति मारी और सिंहनाद करने लगे १ तब लोकमें प्रसिद्ध निषादराज एकलव्यने कोपमें भर कर महाबली मत्त बलरामके हृदयमें गदाका प्रहार किया २ महाबली बलभद्रने उससे ताडित होनेपर दोनों हाथोंसे उस गदाको पकड़ लिया ३ जब बलरामने प्राणहारिणी आती हुई भयंकर गदाको पकड लिया तब निषादराज मगर मच्छोंके निवासस्थान समुद्रमेंको भागनेलगा ४ निषादरक्षक राजा एकलव्यके दौड़ने पर बलराम भी उसके पीछे भागने लगे ॥ ५ ॥ हे राजन् ! वह शीघ्रतासे समुद्रके भीतर पाँच योजन तक चला गया फिर वह अकेला निषादराज भयभीत होने लगा ६ हे राजन् ! फिर वह किसी द्वीपान्तरमें जाकर रहने लगा, तहाँ जाकर यदुनन्दन रामने निषादराजको जीत लिया ७ तदनन्तर हलायुधने मणि और रत्नोंसे भरीहुई सुधर्मा नामकी सभामें प्रवेश किया और युद्धसे

सभां प्रविवेश ह ॥ ८ ॥ अन्ये च यादवा राजन् यथायोगमुप-
स्थिताः । आसीनेषु च सर्वेषु वृष्णिवीरेषु सर्वतः ॥ ९ ॥ अभि-
वाद्य यथायोगं वृष्णीन् सर्वांश्च केशवः । उवाच वचनं काले
भगवान् देवकीसुतः ॥ १० ॥ दृष्टं कैलासशिखरं शंकरो नील-
लोहितः । स तु मह्यं यदुवराः प्रीतिमांश्च ददौ वरम् ॥ ११ ॥
तत्र देवाः समायाता मुनयश्च तपोधनाः । दृष्ट्वा मां शंकरश्चैव
प्रीतः स्तुत्वा समाययौ ॥ १२ ॥ अत्यद्भुतं मया दृष्टं रात्रौ यादव-
सत्तमाः । पिशाचौ द्वौ महाघोरौ वदन्तौ मामिकां कथाम् १३
मृगयां चक्रतुस्तौ तु चिन्तयन्तौ तु मां सदा । दृष्ट्वा मां तौ तु
राजेन्द्राः प्रीतिमन्तौ तपस्विनौ ॥ १४ ॥ भक्तिनम्रौ महात्मानौ
प्रणामं चक्रतुस्तदा । ततोऽहं सर्वथा प्रीतस्तौ नीतौ स्वर्गमुत्त-
मम् ॥ १५ ॥ तोषयित्वा महादेवं मया चाद्य समागतम् । वैशं-

भली भाँति प्रेम करनेवाले सात्यकिने भी उस सभामें प्रवेश
किया ८ हे राजन् ! इसी प्रकार और राजे भी उचित रीतिसे
तहाँ आगए, इस प्रकार जब सब वृष्णिवीर चारों ओर बैठ
गयेह तब देवकीपुत्र भगवान् केशव सब वृष्णियोंको उचितरीति
से प्रणाम करके समयोचित वचन कहने लगे १० कि मैंने कैलास
का शिखर देखा और नीललोहित शंकरके दर्शन किये हे यदु
श्रेष्ठों ! उन्होंने प्रसन्न होकर मुझे वर भी दिया था ११ तहाँ पर
देवता और तपोधनमुनि भी आए थे,शंकर मुझको देख प्रसन्न
हुए थे और मेरी स्तुति करके चले गए १२ हे यादवसत्तमों !
मैंने रात्रिमें एक अद्भुत बात देखी थी, कि-दो महाघोर पिशाच
मेरीकथा कह शिकार खेलरहे थे और सर्वदा मेरा चिन्तवन करते
रहते थे,हे राजेन्द्रों ! वे तपस्वी मुझे देखकर प्रसन्न हुए१३।१४
और उन महात्माओंने भक्तिसे नम्रहोकर मुझे प्रणामकिया
तबमैंने सर्वथा प्रसन्न होकर उन्हें उत्तम स्वर्गमें भेज दिया १५

पायन उवाच । ततस्ते वृष्णयः सर्वे देवदेवं शशंसिरे ॥ १६ ॥
सर्वथा कृतकृत्यास्ते वृष्णयः केशवाश्रयाः । यादवाः सर्वं एवैते
स्वं स्वं जग्मुर्गृहालयम् ॥ १७ ॥ अभ्यन्तरे जगन्नाथः प्रविश्य
हरिरीश्वरः । रुक्मिणीसत्यभामाभ्यामाचचक्षे यथाभवत् ।१८।
ते प्रीते प्रीतियुक्तेन केशवेन समन्विते । एतत्ते सर्वमाख्यातं
केशवस्य विचेष्टितम् ॥ १९ ॥ शशास पृथिवीं कृत्स्नां दुष्टान्
हत्वा महाबलान् । नरकं घोरकर्माणं पौण्ड्रकं नृपसत्तमम् २०
हयग्रीवं निशुम्भं च तथा सुन्दोपसुन्दकौ । ररक्ष विप्रान् देवेशो
मुनीन् मुनिवरार्चितः ॥ २१ ॥ विप्रेभ्यश्च ददौ वित्तं गाश्च
दत्वा स केशवः । अग्निहोत्रं प्रयुञ्जानो ब्राह्मणांश्च सुतर्पयन् २२
मुनींश्च ब्रह्मचर्येण देवान् यज्ञैरनेकधा। स्वधया च पितॄन् सर्वान्

और मैं भी महादेवको सन्तुष्ट करके आज आगया हूँ, वैशम्पायन जी कहते हैं, कि—तब सब वृष्णि देवदेव शंकरकी प्रशंसा करने लगे ॥ १६ ॥ तदनन्तर कृष्णका आश्रय लेने वाले सब वृष्णि कृत्यकृत्य हो अपने अपने घरोंको चले गए १७ तदनन्तर हरि ईश्वर जगन्नाथने महलमें प्रवेश करके रुक्मिणी सत्यभामासे जैसा वृत्तान्त हुआ था वह सब सुना दिया १८ तब वह प्रीतियुक्त केशवसे बातचीतकर प्रसन्न हुइ यह तुमसे केशवकी सारी चेष्टा कह दी । १९ । उन्होंने महाबली दुष्टोंको मारकर पृथ्वीका शासन किया था, देवताओंके स्वामी मुनियोंसे पूजित श्रीकृष्णने भयंकर कर्म करनेवाले नरकको नृपसत्तम पौंड्रकको हयग्रीवको निशुंभको तथा सुन्दको और उपसुन्द को मारकर ब्राह्मणोंकी और मुनियोंकी रक्षाकी थी ।२०।२१। केशवने अग्निहोत्र करते समय और ब्राह्मणोंको तृप्त करते समय गौएँ दी थीं और धन दिया था ।२२। वह ब्रह्मचर्यसे मुनियोंको अनेक प्रकारसे यज्ञ करके देवताओंको और स्वधासे सकल

प्रीणयन्नेव सर्वदा ॥ २३ ॥ तस्मिञ्छासति देवेशे राज्यं निष्कण्टकं प्रभो । सुखमेव प्रजाः सर्वा जीवन्ति ब्राह्मणादयः ॥२४॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां पौण्ड्रकवधसमाप्तौ द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१०२॥

जनमेजय उवाच । भूय एव द्विजश्रेष्ठ शंखचक्रगदाभृतः । चरितं श्रोतुमिच्छामि विस्तरेण तपोधन ॥ १ ॥ न हि मे तृप्तिरस्तीह शृण्वतः केशवीं कथाम् । को नु नाम हरेर्विष्णोर्देवदेवस्य चक्रिणः ॥२॥ शृण्वंस्तथा रमन् वापि तृप्तिं याति दिवानिशम् । पुरुषार्थोऽयमेकैको यत्कथाश्रवणं हरेः ॥३॥ कथमासीज्जगद्धेतोर्हंसस्य डिम्भकस्य च । समितिः सर्वभूतानां सदा विस्मयदायिनी ॥ ४ ॥ विचक्रस्य कथं युद्धं दानवस्य महात्मनः । स तयोर्मित्रतां यात इत्येवमनुशुश्रुम ॥ ५ ॥ तौ सुतौ वीर्य-

---

पितरोंको तृप्त करते रहते थे २३ हे राजन् ! वह देवेश जब निष्कण्टक होकर राज्यशासन करते थे उस समय ब्राह्मण आदि सब प्रजाएँ सुखपूर्वक रहती थीं ।२४। एकसौ दोवाँ अध्याय समाप्त । १०२ । छ छ छ छ छ

जनमेजयने कहा, कि—हे द्विजश्रेष्ठतपोधन ! मैं शंख चक्र और गदाको धारण करने वाले विष्णुके माहात्म्यको फिर विस्तारके साथ सुनना चाहता हूँ १ केशवकी कथा सुनते २ मुझे तृप्ति नहीं होती, देवदेव हरि विष्णु चक्रधारीकी कथाको रात दिन सुन कर वा उस कथामें रातदिन रमण करके भी किसको तृप्ति होसकती है? हरिकी कथाको सुनना भी एक पुरुषार्थ ही है ।।२।।३।। सब प्राणियोंको विस्मयमें डालने वाली हंस और डिंभककी समिति जगत् के लिए किसप्रकार निर्मितहुई थी ४ और महात्मा विचक्र दानवका युद्ध किस प्रकार हुआ था, हमने सुना है, कि वह उन दोनोंका मित्र था ५ (हंस और डिंभक नाम वाले) ये दोनों पुत्र

सम्पन्नौ शिष्यौ भृगुसुतस्य ह । सर्वास्त्रकुशलौ वीरौ हरेर्लब्धवरौ किल ॥ ६ ॥ संग्रामः सुमहानासीदित्युक्तं भवता पुरा । तयोश्च नृपयोर्विप्र केशवस्य जगत्पतेः ॥ ७ ॥ कस्य पुत्रौ समुत्पन्नौ यथाभूद्विग्रहो महान् । अष्टाशीतिसहस्राणि दानवानां तरस्विनाम् ८ बलान्यथ विचक्रस्य शितशूलधराणि च । आसन् युद्धे महाराज दानवस्य महात्मनः ९ यदूनामन्तरप्रेप्सुर्यदूनां युद्धकाङ्क्षया । देवासुरे महायुद्धे देवान् जयति दुर्धरः । तद्वधार्थं सदा यत्नमकरोच्चैव केशवः ॥ १० ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिभकोपाख्याने त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०३ ॥

वैशम्पायन उवाच । आसीच्छाल्वेषु राजेन्द्र ब्रह्मदत्तो नृपोत्तमः । नाम्ना राजन् स पूतात्मा सर्वभूतदयापरः १ पञ्चयज्ञ-

भृगुके पुत्र परशुरामजीके शिष्य थे, वे दोनों सब अस्त्रोंमें कुशल थे और उन्होंने पहिले हरिसे वर पाया था ६ हे विप्र ! आपने पहिले कहा था, कि—उन राजाओंका जगत्पति केशवके साथ घोर संग्राम हुआ था ॥ ७ ॥ ये दोनों किसके पुत्र थे और इनका बड़ा भारी संग्राम जिस प्रकार हुआ हो (वह सुनाइये), हे महाराज ! महात्मा विचक्र दानवके पास तीक्ष्ण शूलोंको धारण करने वाली वेगवान् दानवोंकी अट्ठासी हजार फौज थी ।८।९। वह यादवोंसे युद्ध करनेकी इच्छासे उनके छिद्र ढूँढता रहता था, वह दुर्धर व्यक्ति देवासुर संग्राम होने पर देवताओंको जीत लिया करता था, केशव उसका वध करनेके लिए सर्वदा यत्न करते रहते थे ॥१०॥ एकसौ तीनवाँ अध्याय समाप्त ॥१०३ ॥

वैशम्पायनजीने कहा, कि—हे राजेन्द्र ! शाल्वदेशमें ब्रह्मदत्त नाम वाला एक श्रेष्ठ राजा था, उसका अन्तःकरण पवित्र था और वह सब प्राणियों पर दया करता रहता था १ सर्वदा पञ्च-

परो नित्यं जितात्मा विजितेन्द्रियः । महाविद्वेदविच्चैव सदा यज्ञमयः शिवः २ तस्य भार्ये महीपाल रूपौदार्यगुणान्विते । बभूवतुः सुसम्पन्ने अनपत्ये नृपोत्तम ३ स ताभ्यां मुमुदे राजा शच्या शक्र इवाम्बरे । नाम्ना मित्रसहो नाम सखा चासीद्द्विजोत्तमः ४ तस्य राज्ञो महायोगी वेदवेदान्ततत्परः । अनपत्यः स विप्रेन्द्रो यथा राजा बभूव ह ॥ ५ ॥ स राजा सहितस्ताभ्यामर्चयामास शंकरम् । पुत्रार्थे शूलिनं शर्वं दशवर्षाण्यनन्यधीः ॥ ६ ॥ स विप्रो वैष्णवं सत्रं पुत्रार्थं समयोजयत् । अर्चितस्तेन राजेन्द्र शंकरो नीललोहितः ॥ ७ ॥ आत्मानं दर्शयामास स्वप्ने राजानमब्रवीत् । प्रीतोऽस्मि तव भद्रन्ते वरं वरय सुव्रत ॥ ८ ॥ अथ राजा जगन्नाथमुवाचेदं स्मयन्निव । पुत्रौ मम भवेतां हि तथेत्यु-

यज्ञमें परायण रहता था मन और इन्द्रियोंको वशमें रखता था, यज्ञ और वेदको जाननेवाला था और यज्ञमय शिवस्वरूप था २ हे महीपाल ! उसके रूप और उदारतासे युक्त दो रानियें थीं, हे नृपोत्तम ! वह सुसम्पन्न रानियें सन्तानरहित थीं ३ वह राजा उन दोनों रानियोंसे, स्वर्गमें इन्द्राणीसे प्रसन्न रहने वाले इन्द्र की समान, आनन्दित रहता था, मित्रसह नाम वाला एक एक ब्राह्मण उस राजाका मित्र था वह महायोगी था और वेद वेदान्तमें परायण रहता था तथा वह भी राजेन्द्रकी समान सन्तानहीन था ।४।५। उस राजाने अपनी दोनों रानियोंके साथ पुत्रके लिए एकाग्रमनसे शूलधारी शर्व शंकरकी उपासनाकी थी ।६। और उस ब्राह्मणने भी पुत्रके लिए वैष्णवयज्ञ करके नीललोहित शंकरकी पूजाकी थी ॥ ७ ॥ तब शिवजीने राजा को स्वप्नमें अपना दर्शन देकर कहा था, कि–मैं तुझ पर प्रसन्न हूँ हे सुव्रत ! तू वर माँग ले ।८। तब राजा जगन्नाथसे मुस्कुरा कर यह बात कहने लगा, कि–"मेरे दो पुत्र हो" तब वृषध्वज

त्वा वृषध्वजः ॥ ९ ॥ अन्तर्धानं गतः शम्भुः प्रतिबुद्धस्ततो नृपः । सोपि मित्रसहो विद्वान् देवं केशवमव्ययम् ॥ १० ॥ पञ्च-वर्षं जगन्नाथमर्चयामास भक्तितः । अर्चितस्तेन विप्रेण देवदेवो जनार्दनः ॥ ११ ॥ पुत्रमेकं ददौ तस्मै स्वात्मना सदृशं हरिः । ते भार्ये गर्भमापन्ने तेजसा शंकरस्य ह ॥ १२ ॥ विप्रभार्या महाराज वैष्णवं तेज आदधत् । महिष्यौ ते महावीर्यौ पुत्रौ शंकर-निर्मितौ ॥ १३ ॥ असूयेतां महीपाल क्रमेणैव नृपस्य ह । स तयोश्च महाराज नामकर्मादिकाः क्रियाः ॥ १४ ॥ चकार विधि-वत् सर्वा विप्रेभ्योऽदान्महद्धनम् । स च विप्रो विनीतात्मा पुत्र-मेकं हि लब्धवान् ॥ १५ ॥ साक्षादिव जगन्नाथं स्थितं पुत्रा-त्मना नृप । जातकर्मादिकं सर्वं ब्राह्मणः स चकार ह ॥ १६ ॥ तौ कुमारावयं चैव त्रयः सवयसोऽभवन् । वेदानधीत्य ते सर्वा-

शंकर तथास्तु कह कर अन्तर्धान हो गए और राजा जाग उठे और उस मित्रसह नाम वाले विद्वान्ने भी जगत्के स्वामी अव्यय केशवकी भक्तिपूर्वक पाँच वर्ष तक सेवाकी थी, ब्राह्मणके पूजा करने पर देवदेव जनार्दन हरिने उसको अपनी समान पुत्र दिया; तदनन्तर राजाकी उन दोनों भार्याओंने शंकरके तेजसे गर्भको धारण किया और हे महाराज ! ब्राह्मणकी भार्याने वैष्णव तेज को धारण किया, हे राजन् ! राजाकी महावीर्यवती रानियोंने क्रमशः राजाके लिए शंकरनिर्मित दो पुत्र उत्पन्न किए, हे महा-राज ! उस राजाने उन दोनोंके जातकर्म आदि संस्कार शास्त्रा-नुसार किए और ब्राह्मणोंको बहुतसा धन दिया, उधर उस विनीतात्मा ब्राह्मणके भी एक पुत्र हुआ १५ हे राजन् ! वह पुत्र साक्षात् जगन्नाथकी समान था, उस ब्राह्मणने भी उसके जात-कर्म आदि सब संस्कार किए ॥१६॥ वे दोनों कुमार और वह विप्रकुमार तीनों समवयस्क थे, वे वेदोंको पढ़कर और आन्वीक्षि-

ब्छ्रुत्वा चान्वीक्षिकीं तथा ॥ १७ ॥ धनुर्वेदे तथास्त्रे च निपुणास्तेऽभवंस्तदा । हंसो ज्येष्ठो नृपसुतो डिम्भकोऽनन्तरोऽभवत् १८
स च विप्रसुतो राजन् जनार्दन इति स्मृतः । अन्योऽन्यं मित्रतां याताः सर्वे चैव कुमारकाः ॥ १९ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोत्पत्तौ चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥

वैशम्पायन उवाच । हंसश्च डिम्भकश्चैव तपश्चर्तुं महामती । मनश्चक्रतुरत्यंशौ शंकरस्य नृपोत्तम ॥ १ ॥ गत्वा तु हिमवत्पार्श्वं तपश्चक्रतुरुत्तमम् । उद्दिश्य शंकरं शर्वं नीलग्रीवमुमापतिम् ॥ २॥ वीर्यास्त्रे चैव नौ स्यातामित्याधाय तु मानसे । एकाग्रौ मनसौ भूत्वा वाय्वम्बुभाशिनौ नृप ॥ ३ ॥ नमस्ते देवदेवेति शंकरेति दिवानिशम् । हर शर्व शिवानन्द नीलग्रीव उमापते ॥ ४ ॥ वृषध्वज विरूपाक्ष हर्यक्ष जगतां पते । भक्त-

क्षी को सुन कर धनुर्वेदमें तथा अस्त्रमें निपुण होगए राजाके बडे पुत्रका नाम हंस था और छोटे पुत्रका नाम डिंभक था १७॥१८ हे राजन् ! यह ब्राह्मणपुत्र जनार्दन नामसे कहा जाता है, ये सब कुमार परस्पर मित्र होगए ॥ १९ ॥ एकसौ चारवाँ अध्याय समाप्त ॥ १०४ ॥ छ छ छ छ छ

वैशम्पायनजी कहते हैं, कि–नृपोत्तम ! शंकरके अंश महामति हंस और डिंभकने तप करनेका विचार किया ॥ १ ॥ तदनन्तर वे हिमाचलकी तलैटीमें जाकर नीलग्रीव उमापति शर्व शंकरको लक्ष्य करके तप करने लगे २ हे राजन् ! वे दोनों अपने मनमें यह विचार कर "हम दोनोंमें वीर्यबल और अस्त्रबल हो" एकाग्रमनसे जल और वायुका भक्षण करके तप करने लगे ॥ ३ ॥ (वे कहने लगे, कि–) हे देवदेव ! हे शंकर ! आपको रात दिन प्रणाम है, हे हर ! शिवानन्द ! हे नीलग्रीव ! हे उमापते !

प्रिय गिरीशेश वासुदेव शिवाच्युत ॥ ५ ॥ सद्योजात महादेव देवदेव गुहाशय । भूतभावन देवेश प्रणवात्मन् सदाशिव ॥६॥ इत्यादिनामभिर्नित्यं स्तुवन्तौ शंकरं भवम् । हृदि कृत्वा विरूपाक्षं तपस्तेपतुरञ्जसा ॥ ७ ॥ निर्ममौ निरहंकारौ मौनव्रतसमास्थितौ । वर्षाणीह तदा राजन् पञ्च चक्रतुरोजसा ॥ ८ ॥ ततः प्रीतोऽभवच्छर्वस्ताभ्यां संयमनेन च । स ददौ दर्शनं नैजं व्याघ्रचर्माम्बरो हरः ॥ ९ ॥ त्रिनेत्रः शंकरः शर्वः शूलपाणिरुमापतिः । अग्रतः संस्थितं शर्वं चन्द्रार्द्धकृतशेखरम् । तौ दृष्ट्वा प्रीतमनसौ नमश्चक्रतुरञ्जसा ॥ १० ॥ श्रीभगवानुवाच । वरं वरय भद्रं वां यथेच्छा वां तथास्तु वौ । तावूचतुस्तदा राजन् प्रीतस्त्वं भगवन् यदि ॥११॥ देवासुरचमूमुख्यैर्गन्धर्वदानवैः । आवा-

आपको प्रणाम है ॥ ४ ॥ हे वृषध्वज विरूपाक्ष इर्यक्ष जगत्के स्वामिन् ! भक्तप्रिय गिरीशेश वासुदेव शिव और अच्युत आपको प्रणाम है ॥ ५ ॥ हे सद्योजात ! महादेव देवदेव गुहाशय भूतभावन देवेश प्रणवात्मन् सदाशिव आपको प्रणाम है ॥६॥ आदि नामोंसे वे शंकर भवकी सर्वदा स्तुति करनेलगे और विरूपाक्ष शिवको हृदयमें धारण करके तप करनेलगे ७ उन्होंने निर्मम निरहंकार रहकर और मौनव्रतका पालन कर पाँच वर्ष तक हठपूर्वक तप किया ८ तदनन्तर उन दोनोंके तपसे शंकर प्रसन्न होगए और उन व्याघ्रका चर्म ओढने वाले त्रिनेत्र शंकर शर्व शूलपाणि उमापतिने उन दोनोंको अपना दर्शन दिया, अपने आगे चन्द्रमाका शेखर धारण करने वाले शर्वको खड़ा देख कर उन दोनोंने मनमें प्रसन्न होकर उनको प्रणाम किया ।९।१०। श्रीभगवान्ने कहा, कि—तुम्हारा कल्याण हो; तुम दोनों वर माँग लो, तुम्हारी जो इच्छा हो वह पूर्ण होजाय, हे राजन् ! तब उन दोनोंने कहा, कि—हे राजन् ! यदि आप प्रसन्न हैं

मजय्यौ सर्वात्मन्नेष नौ प्रथमो वरः ॥१२॥ द्वितीयो नौ विरूपाक्ष रौद्रास्त्राणां च संग्रहः । माहेश्वरं तथा रौद्रमस्त्रं ब्रह्मशिरो महत् ॥ १३ ॥ अभेद्यं कवचं दिव्यमच्छेद्यं चापि कार्मुकम् । परशुं च तथा शर्व सदा रक्षार्थमेव च ॥ १४ ॥ सहायौ द्वौ महादेव भूतौ युद्धे हि गच्छताम् । एवमस्त्विति देवेश आह भृंगिरिटी हरः ॥ १५॥ कुंडोदरं विरूपाक्षं सर्वप्राणिहिते रतम् । युवामथ च भूतेशौ सहायौ सततं रणे १६ संग्रामं गच्छतां घोरमेतयोर्बलशालिनोः । इत्युक्त्वा भगवाञ्छर्वस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ १७ ॥ ततस्तौ वीर्यसम्पन्नौ हंसो डिंभक एव च । कृतास्त्रौ शस्त्रसम्पन्नौ चापिनौ वीर्यवत्तरौ ॥ १८ ॥ आमुक्तकवचौ वीरावजय्यौ देवदानवैः । अत्यन्तभक्तौ देवेशे

तो ॥ ११ ॥ हे सर्वात्मन् ! हम देवता और असुरोंकी सेनाओंके मुख्य २ व्यक्तियोंसे तथा यक्ष गन्धर्व और दानवोंसे भी अजेय रहें, यह हमारा प्रथम वर है ।१२। हे विरूपाक्ष ! दूसरा वर हम यह माँगते हैं, कि-भयंकर अस्त्रोंका संग्रह हमारे पास रहे, भयंकर पाशुपतास्त्र और ब्रह्मशिर नामवाला बड़ा भारी अस्त्र भी हमारे पास रहे ॥१३॥ हमारा कवच अभेद्य रहे और धनुष अच्छेद्य रहे और हमारा फरसा भी कभी न टूटे और हे शर्व महादेव ! युद्धके समय आपकी ओरसे दो भूत हमारी सहायता करनेके लिए चला करें, तब देवेश भृंगिरिटीहरने एवमस्तु कहा ॥ १४ ॥ १५ ॥ और सब प्राणियोंके हितमें परायण रहनेवाले कुण्डोदर और विरूपाक्षसे कहने लगे, कि-हे भूतेशो ! जब जब यह दोनों बलशाली पुरुष भयंकर युद्ध करनेको जाया करें, तब तुम इनकी सहायता किया करो, यह कह कर भगवान् शंकर तहाँ ही अन्तर्धान होगए ॥ १६ ॥ १७ ॥ तदनन्तर वे वीर्यवान् हंस और डिंभक अस्त्रकुशल तथा शस्त्र-

शंकरे नीललोहिते ॥ १९ ॥ नित्योत्सवकरौ देवे भस्मोद्धूल-शोभिनौ । कृतत्रिपुण्ड्रकौ नित्यं जटायुक्तशिरोधरौ ॥ २० ॥ रुद्राक्षार्पितसर्वाङ्गौ व्याघ्रचर्माम्बरावृतौ । नमः शिवाय शांताय महादेवाय धीमते ॥ २१ ॥ इत्यादिभिर्महादेवं स्तुवन्तौ नामभिः शिवम् । साक्षादिव महादेवौ रेजतुर्बलधारिणौ ॥ २२ ॥ ततः स्वभवनं गत्वा पितुः पादावगृह्णताम् । पितुश्च सख्युर्बलिनौ मातुश्च चरणौ तदा २३ जनार्दनोऽपि धर्मात्मा कालेन महता नृप । विद्यापारं महाबुद्धिर्युक्तेनासावुपेयिवान् ॥ २४ ॥ स च विष्णुं हृषीकेशं पीतकौशेयवाससम् । ब्रह्मतत्त्वपरो नित्यमुपास्ते विजितेन्द्रियः ॥ २५ ॥ हंसश्च डिम्भकश्चैव कृतदारौ बभूवतुः । जनार्दनोऽपि धर्मात्मा कृतदारो बभूव ह ॥ २६ ॥ सर्वे ते पङ्-

कुशल होगये और अधिक बलवान् होगए १८ वे कवच पहिरने पर देवता और दानवोंसे भी अजेय होगए और देवेश शंकर नीललोहितकी बड़ी भक्ति करने लगे १९ शंकरका नित्यप्रति उत्सव करने लगे और भस्म मलकर शोभित रहने लगे, त्रिपुण्ड्र लगाने लगे और शिर पर जटाएँ रखने लगे २० सारे शरीर पर रुद्राक्ष धारण करने लगे और व्याघ्रका चर्म ओढने लगे और शान्त महादेव शिवके लिए प्रणाम है,इत्यादि नामोंसे शिव की स्तुति करते हुए वे दोनों जलधारी शिवकी समान शोभा पाने लगे ॥ २१ ॥ २२ ॥ फिर उन दोनों बलवान् पुरुषोंने अपने घर जाकर माता और पिताके चरणोंका स्पर्श किया और पिताके मित्रको भी प्रणाम किया २३ हे राजन् ! उधर धर्मात्मा महाबुद्धि जनार्दनने भी बहुतसमयमें युक्तिपूर्वक विद्या का पार पा लिया २४ और वह जितेन्द्रिय ब्रह्मतत्त्वमें परायण होकर पीला रेशमी वस्त्र धारण करने वाले हृषीकेश विष्णुकी उपासना करने लगा २५ तदनन्तर हंस और डिंभकने विवाह

निरताः पंचयज्ञपरास्तथा। स्वदारनिरताः सर्वे गुरुशुश्रूषणे रताः। धर्म एव परं श्रेय इति ते मेनिरे नृप ॥ २७ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां हंसडिंभकोपाख्याने पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥

वैशम्पायन उवाच। ततः कदाचित्तौ वीरौ वीरौ मृगयामाटतुः किल। जनार्दनेन सहितौ रथैरश्वैर्गजैरपि ॥ १ ॥ वनं गत्वा तु तौ वीरौ सिंहव्याघ्रांश्च जघ्नतुः। शितैर्बाणैर्महाराज वराहानथ सर्वशः ॥ २ ॥ व्यालानन्यान् मृगान् हिंस्रांश्च्छभिश्च सहितौ नृप। एष आयाति विपुलो वराहो दीर्घलोचनः ३ एनं बाणेन संछिन्धि याति व्याघ्रो मृगाधिपः। अयमन्योऽथ महिषः शृङ्गपोतसरीसृपः ॥ ४ ॥ एते खलु मृगाः सार्द्धं शावैर्धावन्ति सर्वशः। एतद्द्रवति सर्वत्र भीतं शशकुलं महत् ५ शावं स्तनं

करलिया और धर्मात्मा जनार्दनका भी विवाह होगया २६ वे सब यज्ञमें परायण रहने लगे और पञ्चयज्ञ करने लगे और अपनी स्त्रीसे ही सन्तुष्ट रह कर गुरुशुश्रूषामें परायण रहने लगे और हे राजन्! धर्मको ही परमकल्याणप्रद समझने लगे २७

एकसौ पाँचवाँ अध्याय समाप्त १०५ छ छ छ

वैशम्पायनजीने कहा, कि—एक समय उन दोनों वीरोंने जनार्दनको साथमें रख कर रथ घोड़े और हाथियोंको साथमें ले शिकार खेला। १। हे महाराज! उन दोनों वीरोंने वनमें जाकर तीक्ष्ण बाणोंसे सिंह व्याघ्र और शूकरोंको मारना आरम्भ कर दिया २ और उन्होंने कुत्तोंको साथमें लेकर सर्प मृग तथा हिंसक जीवोंको भी मारना आरम्भ कर दिया (और कहने लगे, कि-) यह चौड़े नेत्र वाला सूअर आरहा है ३ इसको बाणसे काट डालो, यह शेर जारहा हैं अरे यह भैंसा जारहा है, इसके सींगोंमें साँप पड़े हुए हैं ४ यह मृग और बच्चोंको

पिबत् साधु न हन्तव्यमिदं शुभम् । ग्रहीतव्यमिदं सर्वं निरुध्य श्वगणैरिह ॥६॥ इत्यादि शब्दः सुमहान् मृगयां कुर्वतां नृप । सन्निपाते नृपश्रेष्ठ व्याधानां चैव धावताम् ॥७॥ हत्वा मृगान् सुबहुशो व्याघ्रान् सिंहान् नृपोत्तमौ । श्रमं च जग्मतुर्वीरौ मध्यं याते दिवाकरे ॥८॥ अलं हि मृगयास्माकं श्रमः समुपजायते । इत्यूचतुर्महाराज पुष्करं जग्मतुः सरः । ६ । सरः समीपमागम्य मुनिसिद्धनिषेवितम्। वीजन्मारुतसानूपं श्रमात्तत्र सुखस्थितौ १० ततो जनाः सरः सर्वे विगाह्य श्रमकर्षिताः । बिसान् प्रवालान् पद्मानां भक्षयामासुरार्त्तवत् ११ जनार्दनेन सहितौ हंसो डिंभक एव च । सरः क्वचित् समाश्रित्य श्रमं संत्यज्य तिष्ठतः ॥१२॥ विश्रम्य सरसस्तीरे तदासाते सुखं नृपौ । अशृणुवतां परं ब्रह्म

साथमें लेकर (किसानोंको) सर्वदा पीडित करते रहते हैं, यह खरगोशोंकी टोली घबराई हुई घूम रही है ५ यह बच्चा दूध पीरहा है, इसको नहीं मारना चाहिये, यह तो बड़ा अच्छा है, इसको तो कुत्तोंसे घेर कर पकड लो ६ हे नृपश्रेष्ठ ! राजे और व्याधे ऐसे २ शब्द कर रहे थे, कि—दौडते २ दोपहर होगया और बहुतसे मृग व्याघ्र और सिंहोंको मारते२ वे थक गए७।८ हे महाराज ! "अब शिकार बहुत होचुका, अब थकान चढती है" यह कर वह पुष्कर सरोवरके पास जाने लगे ६ और मुनि तथा सिद्धोंसे सेवित सरोवरके पास पहुँच गए तहाँ द्वीपमें वायु का पंखा चल रहा था, इससे श्रमके कारण तहां सुख लेनेको ठहर गये १० तदनन्तर वे सब थके हुए मनुष्य तालावमें स्नान करके पद्मोंके भसींडे और प्रवालोंको खाने लगे ११ हंस और डिंभक भी जनार्दनको साथमें ले सरोवरके एक किनारे पर श्रमरहित होकर बैठ गए १२ वे राजे सरोवरके तट पर विश्राम करके सुखपूर्वक बैठ श्रेष्ठ २ मुनियोंके व्याख्यानमें परब्रह्मका

मुनिमुख्यैः समीरितम् १३ मध्यन्दिनं तथा सर्वैः सवनं सस्वरं नृपौ । ततः प्रीतौ नृपौ भूत्वा श्रुत्वा वेदध्वनिं तदा ॥ १४ ॥ ऐच्छेतां तौ तदा द्रष्टुं यज्ञं मुनिकृतं तदा । स्थापयित्वा ततः सेनां सर्वां मृगसमन्विताम् ॥ १५॥ आदाय च महाचापे शरान् कतिचिदेव च । जनार्दनस्तदा वीरो हंसो डिम्भक एव च १६ पदातिनौ महाराज जग्मतुश्चाश्रमं किल । महर्षेः कश्यपस्याथ सत्रं वैष्णवसंज्ञकम् । यजन्तो मुनिभिः सार्द्धं जपहोमपरायणौ॥१७

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिभकोपाख्याने मृगयावर्णनं नाम षडधिकशततमोऽध्यायः ॥१०६॥

वैशम्पायन उवाच । जनार्दनश्च धर्मात्मा हंसो डिम्भक एव च । सदः प्रविश्य सत्रस्य नमश्चक्रुर्मुनीश्वरान् ॥ १ ॥तानागताम् महात्मानो मुनयः शिष्यसंयुताः । अर्घपाद्यासनादीनि चक्रुः पूजां प्रयत्नतः ॥२॥ तौ नृपौ स च विप्रेन्द्रः सपर्यां प्रति-

---

वर्णन सुनने लगे १३ और उन दोनों राजाओंने स्वरके साथ होते हुए मध्याह्नके सवनको भी सुना, तदनन्तर वे दोनों राजे वेदध्वनिको सुन कर प्रसन्न हुए ॥१४॥ मुनियोंके यज्ञको देखना चाहने लगे, तब उन्होंने मृगोंसे युक्त अपनी सारी सेनाको तहाँ ही रोकदिया १५ तदनन्तर जनार्दन और वीर हंस तथा डिंभक कुछ बाण और धनुषोंको लेकर पैदल ही महर्षि कश्यपके आश्रमको चल दिए, तहाँ पर वह जप तथा होममें परायण मुनियोंके साथ वैष्णवयज्ञ कर रहे थे ॥१६॥१७॥ एकसौ छवाँ अध्याय समाप्त ॥ १०६ ॥ छ छ छ छ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं, कि धर्मात्मा जनार्दन, हंस तथा डिंभक यज्ञभवनमें प्रवेश करके मुनियोंको प्रणाम करने लगे १ तब उन महात्माओंका मुनियोंने और उनके शिष्योंने अर्घ पाद्य आसन आदिसे सत्कार किया ॥ २ ॥ हे नृप ! वे दोनों राजा

गृह्य च। प्रीतात्मानो महाराजान आसने समुखं नृप ॥ ३ ॥
ततो हंसो वभाषे तान् मुनीन् संयतवाङ् नृप। पिता हि नौ मुनि-
श्रेष्ठा यष्टुमैच्छत् ससाधनम् ॥४॥ गन्तव्यं तत्र युष्माभिः सत्रान्ते
मुनिसत्तमाः। राजसूयेन यज्ञेन कृत्वा दिग्विजयं वयम् ॥ ५ ॥
याजयिष्याम हे विप्राः पितरं धार्मिकं नृपम्। आगन्तु तत्र
विप्रेन्द्राः सशिष्याः सपरिच्छदाः ॥६॥ वयमद्यैव सहितौ दिशो
जेष्यामहे वयम्। शक्ता वयमिहैवैतत् कर्तुं सैनिकसंचयैः ॥७॥
आवयोः पुरतः स्थातुं न शक्ता देवदानवाः। कैलासनिलया-
द्देवाद्वरं लब्धाः स्म यत्नतः ॥ ८ ॥ अजय्यौ शत्रुसंघानामस्त्राणि
विविधानि च। इत्युक्त्वा विरामैव हंसो मदबलान्वितः ॥ ९ ॥
मुनय ऊचुः। यदि स्यात्तत्र गच्छामो वयं शिष्यैर्नृपोत्तमौ। आ-
स्महे वान्यथा राजन्नित्यूचुः किल तापसाः ॥ १० ॥ वैशंपायन

तथा वह ब्राह्मण उनके सत्कारको ग्रहण करके मनमें प्रसन्न होकर सुखपूर्वक बैठ गए। ३। हे राजन्! तदनन्तर वाणीको नियममें रखने वाले हंसने उन मुनियोंसे कहा, कि—हे श्रेष्ठ मुनियो! हमारे पिता पूर्णरीतिसे यज्ञ करना चाहते हैं ४ हे श्रेष्ठ मुनियो! तुम यज्ञके अन्तमें तहाँ पर आना हे विप्रो! हम राजसूय यज्ञसे दिग्विजय करके अपने धार्मिक पितासे राजसूय यज्ञ करावेंगे हे विप्रेन्द्रो! तहाँ आप अपने शिष्यों सहित आइये५।६ हम आज ही दिशाओंको जीतना आरम्भ कर देंगे हम अपने सैनिकोंके कारण यहाँ हीसे यह सब काम कर सकते हैं ।७॥ देवता और दानव हमारे सामने नहीं टिक सकते, क्योंकि—हमने कैलासमें रहने वाले देवसे यत्नपूर्वक वर पालिया है ८ शत्रुओंके झुण्ड भी हमको नहीं जीत सकते और हमारे पास नाना-प्रकारके अस्त्र हैं, मद और बलसे युक्त हंस इस प्रकार कह कर चुप होगया ९ मुनियोंने कहा, कि—हे नृपोत्तमो! यदि तुम्हारे

उवाच । ततो देशान्महाराज गन्तुं निश्चितमानसौ । पुष्करस्योत्तरं तीरं दुर्वासा यत्र तिष्ठति ।११। यतयो नियता भूत्वा मन्त्रब्राह्मणनिषेविणः । ब्रह्मसूत्रपदे सक्तास्तदर्था लोकनतत्पराः ॥१२॥ निर्ममा निरहंकारा कौपीनाच्छादनव्रताः । तथात्मानं जगद्योनिं विष्णुं विश्वेश्वरं विभुम् ॥ १३ ॥ ब्रह्मरूपं शुभं शान्तमक्षरं सर्वतोमुखम् । वेदान्तमूर्तिमव्यक्तमनन्तं शाश्वतं शिवम् ॥१४॥ शिरयुक्तं विरूपाक्षं भूतात्मानमनामयम् । ध्यायन्तं सर्वदा देवं मनसा सर्वतोमुखम् ॥ १५ । दुर्वाससा सदोपास्यं वेदान्तैकरसं गुरुम् । तर्कनिश्चिततत्त्वार्था ज्ञाननिर्मलचेतसः ॥ १६ ॥ हंसा परमहंसाश्च शिष्या दुर्वाससः प्रभो । गत्वा तत्र महात्मानौ तौ दृष्ट्वा तूर्ध्वरेतसम् ॥ १७ ॥ दुर्वाससं महाबुद्धिं विचिन्वानं परं पदम् । क्रुद्धो यदि स दुर्वासा दग्धुं लोकानिमान् क्षमः १८

यहाँ यज्ञ होगा तो हम और हमारे शिष्य अवश्य आवेंगे ॥१०॥ वैशम्पायनजीने कहा, कि तदनन्तर उन्होंने पुष्करके उत्तरी किनारे पर जानेका विचार किया, तहाँ पर दुर्वासा रहते थे ११ तथा ब्राह्मणभाग और संहिताभागका सेवन करने वाले, सूत्रात्माके उपासक और परब्रह्मका दर्शन पानेके लिए उद्योग करने वाले मुनि भी रहते थे ॥१२॥ और हे प्रभो ! उन दुर्वासा के ममतारहित अहंकाररहित कौपीनमात्र पहिरने वाले तर्कसे तत्त्वका निश्चय करने वाले और ज्ञानसे निर्मल चित्त वाले हंस और परमहंस उपाधि वाले शिष्य दुर्वासाके सर्वदाके उपास्य आत्मस्वरूप जगत्की योनि ब्रह्मरूप शुभ शान्त अक्षर सर्वतोमुख वेदान्तमूर्ति अव्यक्त अनन्त शाश्वत शिवकी उपासना करते थे और विश्वेश्वर विभु विष्णुकी भी उपासना करते थे, तहाँ पहुँच कर उन महात्माओंने महाबुद्धि दुर्वासाको परमपदका अन्वेषण करते हुए देखा, वह दुर्वासा यदि क्रोधमें भर जाँय

देवा अपि च यं द्रष्टुं क्रुद्धं वै न क्षमाः सदा। रोषमूर्तिः सदा यस्तु रुद्रात्मा विश्वरूपधृक् ॥ १९ ॥ रक्तकौपीनवसनो हंसः परम एव च। दृष्ट्वैनं च तयोरेवं बुद्धिरासीन्महामते ॥ २० ॥ को नामासौ महाभूतः काषायी वर्णवित्तमः। कश्चायमाश्रमो नाम विहाय च गृहाश्रमम् ॥२१॥ गृहस्थ एव धर्मात्मा गृहस्थो धर्मवित्तमः। गृहस्थो धर्मरूपस्तु गृहस्थो वर्ण एव च ॥ २२ ॥ गृहस्थश्च सदा माता प्राणिनां जीवनं सदा। तं विनान्येन रूपेण वर्त्तते योऽतिमूर्खवत् ॥ २३ ॥ उन्मत्तोयं विरूपोऽयमथवा मूर्ख एव च। ध्यायन्निव सदा चायमास्ते वंचयितापि वा २४ किमेते प्राकृतज्ञाना ध्यायन्त इति किंचन। वयमेतान् दुरारोहानाश्रमान्तरकल्पकान् ॥ २५ ॥ स्थापयिष्यामहे सर्वान् मन्द-

---

तो इन लोकोंको भस्म कर सकते हैं १३-१८ दुर्वासाके क्रोधमें भरने पर देवता भी (सदा) उनकी ओर नहीं देख सकते, वह रोषमूर्ति हैं और विश्वरूपधारी रुद्रात्मा हैं ॥ १९ ॥ कौपीनका लाल वस्त्र धारण करते हैं और परमहंस हैं, हे महामते ! उनको देख कर उन दोनोंको यह विचार उठा, कि—॥ २० ॥ यह कषाय वस्त्रधारी महापुरुष कौन है,और गृहस्थाश्रमसे अतिरिक्त यह कौन सा आश्रम है? ॥ २१ ॥ गृहस्थ ही धर्मात्मा होता है, गृहस्थ ही धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ होता है, गृहस्थ प्राणियोंके लिए मातास्वरूप और जीवनस्वरूप है इसके अतिरिक्त जो दूसरे आश्रमका आश्रय लेता है, वह तो मूर्खसा है गृहस्थ धर्मरूप है और गृहस्थ ही वर्ण है ॥ २२ ॥ २३ ॥ यह (दुर्वासा) तो उन्मत्त विरूप और मूर्ख प्रतीत होता है यह तो सदा ध्यानसा करता हुआ ठगता रहता है ॥२४॥ यह साधारण बुद्धि किसी बातका ध्यान कर रहे हैं, हम इन दूसरे आश्रमोंको रचने वाले मन्दबुद्धि पुरुषोंको गृहस्थाश्रममें प्रविष्ट करेंगे, इन मूढ विज्ञा-

बुद्धीनिमान् गृहे । बलादेव द्विजानेतान् मूढविज्ञानतत्परान् २६ असद्ग्राहगृहीतांश्च बालिशान् दुर्मतीनिमाम् । एषां शास्ता च को मूढो न विप्रो वयमत्र ह ॥ २७॥ धर्मे वर्त्मनि संस्थाप्य पुनर्यास्याव निर्वृतौ। इति संचिन्त्य तौ वीरौ विप्रेण सहितौ नृप२८ जनार्दनेन राजानौ मोहाद्भाग्यक्षयान्नृप । समीपं तस्य राजेन्द्र यतेः संयतचेतसः ॥ २९ ॥ गत्वा च मोचतुरुभौ दुर्वाससमतीन्द्रियम् । यतींश्च नियतान् क्रुद्धौ राजानौ राजसत्तम ॥ ३० ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिंभकोपाख्याने सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥

हंसडिम्भकावूचतुः । ज्ञानलेशाद्विहीनात्मन किं ते व्यवसितं द्विज । कश्चायमाश्रमो विप्र भवता यः समाश्रितः ॥ १ ॥ गृहमेधं परित्यज्य किं त्वया साधितं पदम् । दम्भ एव भवान्व्यक्तं

नियोंको हम बलपूर्वक गृहस्थी जावेंगे । २५ । २६ । इन असत् रूपी ग्राहसे ग्रस्त बालिश दुर्मतियोंको (हम ठीक करेंगे) कोई मूर्ख ब्राह्मण इनको यहां दण्ड नहीं देता अतः हम इनका शासन करेंगे २७ हम इनको धर्ममार्गमें स्थापित करके आनन्दित होकर यहांसे चलेंगे । हे राजन् ! मोहवश और भाग्यक्षयवश वे दोनों वीर राजे ब्राह्मणके साथ इस प्रकार विचार कर उन मनको नियममें रखने वाले यतिके पास पहुँचे ।२८।२९। और हे राजसत्तम ! वे दोनों राजा उनके पास पहुँच क्रोधमें भर अतीन्द्रिय दुर्वासासे और नियमोंका पालन करने वाले यतियोंसे कहने लगे ॥ ३० ॥ एक सौ सातवाँ अध्याय समाप्त ॥ १०७ ॥ छ

हंस और डिंभकने कहा, कि-हे ज्ञानके लेशसे भी शून्य द्विज ! तुम्हारी यह क्या चेष्टा है और हे विप्र ! तुम जिस आश्रमको पाल रहे हो, यह कौनसा आश्रम है ? तुम गृहमेधको छोड़ कर कौनसा पद साधन कररहे हो, मैं समझता हूँ, कि-आप निःसंदेह

शंके नास्त्यत्र कारणम् ॥ २ ॥ लोकांश्चैवान् सदा मूढ नाशयिष्यसि निर्वृतः। एतान् सर्वान् विनेतासि नरके पातयिष्यसि ॥ ३ ॥ स्वयं नष्टः परान् मूर्ख नाशयिष्यसि यत्नतः। अहो शास्ता कथं नास्ति तव मन्दमतेर्द्विज ॥ ४ ॥ सर्वथा त्वद्विनेता च पापो नास्त्यत्र संशयः। त्यक्त्वेममाश्रमं विप्र गृही भव यतात्मवान् ॥ ५ ॥ पंचयज्ञान् सदा विप्र कुरु यत्नपरो भव। ततः स्वर्गं परं गन्ता स्वर्गे हि सुमहत् सुखम् ॥ ६ ॥ एष श्रेयःपथो विप्र जीवितं चेत् स्पृहा तव। इत्युक्तवन्तौ धर्मात्मा श्रुत्वा विप्रो जनार्दनः ॥ ७ ॥ उवाच च यतिं दृष्ट्वा प्रणम्यासौ सुनीतवत्। मा ब्रूतामीदृशं वाक्यं राजानौ मन्दतेजसौ ॥ ८ ॥ अश्राव्यमीदृशं घोरं लोकयोरुभयोरपि। को वक्तुमीशो मन्दात्मा यदि जीवेत् सबांधवः ॥

दंभका ही सेवन कर रहे हैं २ हे मूढ़! तू आनन्दमें मस्त रहकर इन लोकोंका भी नाश कर रहा है, तू इन सबका नेता बना बैठा है और इन सबोंको नरकमें डुबा देगा। ३। हे मूर्ख! तू अपने आप तो नष्ट हो ही रहा है और इन सबको भी यत्न कर करके नष्ट कररहा है, हे द्विज! तुझ मन्दमतिको कोई दण्ड क्यों नहीं देता ॥४॥ मालूम होता है तुझे पाप दण्ड नहीं देता है, तू इस आश्रमको त्याग कर गृहस्थाश्रमी होजा और अपनी आत्माको वशमें कर (तभी तेरा कल्याण होगा) ५ हे विप्र! तू सदा यत्नपूर्वक पञ्चयज्ञ करता रह, तब तुझे स्वर्ग मिलेगा और तहां तुझे परमसुख मिलेगा ६ हे विप्र! यदि तुझे जीवित रहनेकी इच्छा हो तो तेरे लिए कल्याणका यही मार्ग है, उनकी इस बातको सुन कर धर्मात्मा विप्र जनार्दनने यतिकी ओर देख कर नम्रतापूर्वक उन दोनोंसे कहा, कि हे मन्द तेज वाले राजाओं! ऐसा वाक्य मत कहो ॥ ७ ॥ ८ ॥ ऐसा वाक्य इनको नहीं सुनाना चाहिये; यह वाक्य लोक और परलोक दोनोंके लिए भयंकर है;

सर्वथा काल एवायं युवयोर्मन्दचेतसोः । समाप्त आयुषः शेषो ब्रह्मदण्डहतौ युवाम् ॥ १० ॥ एते हि यतयः शुद्धा ज्ञानदीपितचेतसः । ज्ञानाग्निदग्धकर्माणः प्राणान प्राणेषु जुह्वति ॥ ११ ॥ ऋते वामीदृशं वाक्यं कः समर्थो ह्यनुब्रुवन्। सर्वथा ज्ञानमस्माभिः समाप्तमिह जीवितम् ॥ १२ ॥ चत्वार आश्रमाः पूर्वमृषिभिर्विहिता नृपौ । ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थश्च भिक्षुकः ॥१३॥ तेषामग्रश्चतुर्थोऽयमाश्रमो भिक्षुकः स्मृतः । आस्ते तस्मिन् महाबुद्धिः स हि पुण्यतरः स्मृतः ॥ १४ ॥ नोपासिता भवद्भ्यां च वृद्धाः सम्यग्विनीतवत् । ज्ञानं नाप्तं तपस्विभ्यस्तथा चैवं वदेत कः ॥ १५ ॥ अश्राव्यमीदृशं घोरम्मया प्राणभृता नृप । किं करिष्यामि मन्दात्मन् मित्रत्वाद्भवतो नृप१६ ज्ञानं यदाप्तं भवता

बान्धवोंसहित जीवित रहना चाहने वाला कौन मन्दात्मा पुरुष ऐसी बात कहसकता है? ६ तुम मन्दबुद्धियोंका वास्तवमें काल ही आगया है तुम्हारी आयुका शेष भाग पूर्ण होगया है, तुम्हारा ब्रह्मदण्डसे नाश होगया है १० ये यति शुद्ध हैं, इनका अन्तःकरण ज्ञानसे पवित्र रहता है और इनके कर्म ज्ञानाग्निसे भस्म हो गए हैं और ये प्राणोंका प्राणोंमें होम करते हैं ११ तुम्हारे सिवाय और कौन ऐसा वाक्य कह सकता है, मैंने भली भाँति समझ लिया कि-तुम्हारा जीवन समाप्त होगया है १२ हे राजाओं ! ऋषियोंने पहिले ब्रह्मचर्य गृहस्थ वानप्रस्थ और संन्यस्त ये चार आश्रम बनाए हैं १३ उनमें यह चौथा संन्यासाश्रम सबसे श्रेष्ठ कहा है जो महाबुद्धि इसका पालन करता है, वह परमपुण्यात्मा कहलाता है १४ तुमने नम्र पुरुषकी समान वृद्धोंकी सेवा नहीं की है और तुमने तपस्वियोंसे ज्ञान भी नहीं सीखा है; नहीं तो ऐसी बात कौन कह सकता है १५ हे मन्दात्मन् मित्र ! तुम्हारे मित्र होनेके कारण तुम्हारी इस भयंकर अश्राव्य बातको

गुरुभ्यस्तदत्र दुःखाय हि केवलं नृप । ज्ञानं हि धर्मप्रभवं यथेष्टं बलाद्धिपापस्य विशातुरूपम् १७ युवां विहाय यास्ये वा पतेयं वा शिलातलम्।पिबेयं वा विषं घोरं पतेयं वा महोर्मिषु१८आत्मानं वात्र संत्यक्ष्ये पश्यतां शृण्वतां पुनः । इत्युक्त्वा विललापैनं मा नूनमिति तौ वदन् ॥ १९ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां हंसडिंभकोपाख्यानेऽष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०८ ॥

वैशम्पायन उवाच । ततः क्रुद्धोथ दुर्वासा धक्ष्यन्निव तपोरसून् । एकेनाक्ष्णाथ दुर्वासा रौद्रेणाग्नियुजा तदा १ पश्यंस्तौ च दुरात्मानौ रोषव्याकुलितेन्द्रियः । कुर्वन्निव तदा लोकान् भस्मभूतानिमान्नृप २ ब्राह्मणं चक्षुषा पश्यन् सौम्येनान्येन केवलम् । उवाच वचनं राजन् ध्वंसत ध्वंसतेति च ॥ ३ ॥ इतो

मुझे भी सुनना पड़ा है १६ तुमने गुरुओंसे जो ज्ञान पाया है, वह तो केवल दुःखदायी हुआ जो ज्ञान धर्मपूर्वक होता है वही यथेष्ट फल देता है और तुम्हारा बलपूर्वक धर्म तो पापका ही उत्पादक है १७ मैं तुम दोनोंको त्यागकर चला जाऊँगा,अपने शिरको पत्थरसे फोड़ डालूँगा भयंकर विषको पीलूँगा अथवा बड़ी लहरों में डूब जाऊँगा१८ अथवा सबके देखते सुनतेहुए मैं अपने शरीर को त्याग दूँगा इस प्रकार कह कर वह विलाप करने लगा, कि-ऐसा मत कहो॥१९॥एकसौ आठवाँ अध्याय समाप्त ॥ १०८ ॥

वैशम्पायनजीने कहा, कि-तदनन्तर दुर्वासा उनके प्राणोंको भस्मसा करना चाहते हुए उनकी ओर देखने लगे, उनकी इन्द्रियें रोषसे व्याकुल होने लगीं और वह भयंकर अग्नि वाले एक नेत्रसे उन दुरात्माओंको देखने लगे, हे राजन्! वह उस समय संसारको भस्मसा करते हुए उनको देखने लगे॥१॥२॥हे राजन! वह दूसरे सौम्य नेत्रसे ब्राह्मणको देखने

गच्छत राजानो किं विलम्बत मा चिरम् । न वां वचनसंभूतं रोषं धारयितुं क्षमे ॥४॥ अन्यथा वो महीपालान् सर्वान् दग्धुमहं क्षमः । किमतः साहसं वक्तुं कश्च शक्नोति मत्पुरः ॥५॥ दर्पं वां लोकविख्यातः शंखचक्रगदाधरः । व्यपनेष्यति मन्दज्ञौ किं वो वक्ष्यामि साम्प्रतम् ॥ ६ ॥ तत उत्थाय धर्मात्मा गन्तुमैच्छद्यतीश्वरः । ततो निषेद्धुं हंसस्तं यतते स्म यतीश्वरम् ॥७॥ तस्य बाहुं समादाय हंसो नृपवरोत्तमः । कौपीनं चिच्छिदे क्रूरः कृतान्त इव सत्तमः ॥ ८ ॥ यतयोऽन्ये पलायन्त दिशो दश विचेतसः । कष्टं हेति वदन् विभो मित्रभावाज्जनार्दनः ॥ ९ ॥ न्यवारयद्यथाशक्ति किमिदं साहसं त्विति । दुर्वासाः सत्यधर्मस्तु हन्तुमीशोऽपि तं ततः ॥ १० ॥ मन्दं मन्दमुवाचेदं हंसं डिंभक-

देखने लगे और उनसे कहने लगे, कि—तुम्हारा नाश होजायगा तुम्हारा नाश होजायगा ॥ ३ ॥ हे राजाओं ! तुम यहाँसे चले जाओ ! विलम्ब न करो, मुझे तुम्हारी बातसे बड़ा क्रोध आरहा है, मैं उसको धारण नहीं कर सकूँगा ४ मैं तुम सब राजाओंको भस्म कर सकता हूँ, इस प्रकार साहसके साथ मुझसे कौन बात चीत कर सकता है ५ हे मन्दबुद्धियों ! शंख चक्र और गदाको धारण करने वाले संसारमें प्रसिद्ध विष्णु तुम्हारे गर्वका नाश करेंगे ही, इसलिए मैं तुमसे इस समय क्या कहूँ ॥६॥ तदनन्तर धर्मात्मा यतीश्वर उठ कर जाना चाहने लगे, तब उन यतीश्वर को रोकनेके लिए हंस यत्न करने लगा ॥७॥ हे सत्तम ! नृपोंमें श्रेष्ठ राजा हंस यमकी समान क्रूरताका बर्ताव कर यतीश्वरकी भुजा पकड़ उनकी लँगोटी फाड़ने लगा ८ तब और यति मूढसे बन कर दशों दिशाओंमेंको भागने लगे और जनार्दन मित्रभाववश "बड़े दुःखकी बात है यह क्या साहस है" यह कहकर उस को शक्तिके अनुसार रोकने लगा, सत्यधर्मका पालन करने वाले

मेव च । शापेनाहं समर्थोऽपि हन्तुं राजकुलाधमौ ॥ ११ ॥
तथापि न करोम्यन्तं यतयो ह्यत्र ते वयम् । यो हि देवो जगन्नाथः
केशवो यादवेश्वरः ॥ १२ ॥ शंखचक्रगदापाणिर्गर्वं वां व्यपने-
ष्यति । लोके नियमित यदुश्रेष्ठे रक्षत्येनं जगत्पती ॥ १३ ॥ युवयोः
सर्वथा जीवः सञ्जीव इति मे मतिः । जरासन्धोपि वां बन्धुः स
च वक्तुं न चेच्छति ॥ १४ ॥ ईदृशं लोकविद्विष्टं स हि धर्मपथे
सदा । एतादृशं स वां बन्धुर्न हि भूयो भविष्यति ॥ १५ ॥
विद्वेषो ह्यस्तु वां तस्य मागधस्य महीपतेः । अत्येदं घोररूपं तु स
हि बन्धुः सहेत चेत् ॥ १६ ॥ धर्मनाशो भवेत्तस्य नात्र कार्या
विचारणा । इत्युक्त्वा गच्छ गच्छेति हंसं प्राह पुनः पुनः ॥ १७ ॥
जनार्दनमुवाचेदं दुर्वासा यतिसत्तमः । स्वस्त्यस्तु तव विप्रेन्द्र

दुर्वासा यद्यपि उसका नाश कर सकते थे तो भी ॥ ९ ॥ १० ॥
हंस और डिंभकसे कहने लगे, कि-हे राजकुलमें अधम
पुरुषों ! यद्यपि मैं शाप देकर नष्ट कर सकता हूँ ११ तथापि मैं
ऐसा नहीं करता हूँ क्योंकि-हम यति हैं, जो यादवेश्वर केशव
जगन्नाथ हैं, वह शंख चक्र और गदाको हाथमें धारण करने
वाले देव तुम्हारा गर्व उतार देंगे, वह यदुश्रेष्ठ जगत्के स्वामी
इस समय इस लोककी रक्षा कर रहे हैं ॥ १२ ॥ १३ ॥ इस
लिए मुझे प्रतीत होता है कि तुम्हारा जीव सञ्जीव है (क्योंकि-
तुम उनके हाथसे मारे जाओगे) तुम्हारा बन्धु जरासन्ध भी
तुमसे बात चीत करना नहीं चाहेगा १४ वह धर्ममार्गमें तत्पर
रहता है तुम्हारे ऐसा लोकविद्विष्ट कर्म करने पर वह तुम्हारा
बंधु नहीं रह सकेगा १५ इसप्रकार मगधराजमें और तुममें द्वेष
हो जायगा यदि ऐसे घोर कर्मको सुनकर भी सह लेगा और
तुम्हारा बन्धु बना रहेगा १६ तो उसका भी धर्मनाश होजायगा,
इसमें तुम कुछ विचार न करो, इस प्रकार कह कर वह हंससे

भक्तिरस्तु जनार्दने ॥ १८ ॥ संगतिस्तव तस्मास्तु शंखचक्र गदाभृतः । अद्य श्वो वा परश्वो वा साधुरेव सदा भवान् ॥ १९ न हि साधोर्विनाशोऽस्ति लोकयोरुभयोरपि । गच्छ सर्वं पितु र्ब्रूहि ज्ञात्वा वृत्तं यथाखिलम् ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिभको-पाख्याने दुर्वाससो भाषणे नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०९ ॥

वैशम्पायन उवाच । ततस्तौ हंसडिम्भकौ क्रुद्धौ कालेन चोदितौ । शिक्यं कमण्डलुं चैव द्विदलं दारुमेव च ॥ १॥ दंडान् पात्रविशेषांश्च छित्वा भित्वा च सर्वशः । तस्मिन् देशे महाराज व्याधैर्मांसान्यदीदहन् ॥ २ ॥ भक्षयित्वा ततो देशात् स्वपुरीं तौ गजग्मतुः । जनार्दनश्च धर्मात्मा स्नेहादनुगयौ तयोः ॥ ३ ॥ नष्टाविमाविति तदा स मेने दुःखितः परम् । गतेषु तेषु सर्वेषु

बार २ कहने लगे, कि - जा ! जा !! ॥ १७ ॥ फिर यतिसत्तम दुर्वासा जनार्दनसे कहने लगे, कि-हे विप्रेन्द्र ! तुम्हारा कल्याण हो, और जनार्दनमें तुम्हारी भक्ति बनी रहे १८ आज कल या परसों तुम्हारा शंख चक्र और गदाधारीसे मेल होगा, तुम तो सर्व्वदा साधु रहते हो १९ साधुका कभी विनाश नहीं होता उसके इस लोकका तथा परलोकका भी विनाश नहीं होता, जाओ ! तुम इस सब वृत्तान्तको अपने पितासे जाकर कहो २० एक सौ नौवाँ अध्याय समाप्त ॥ १०९ ॥ ❀ ❀

वैशम्पायनजीने कहा, कि हे महाराज ! तदनन्तर कालसे प्रेरित हंस और डिभकने क्रोधमें भर कर छीका कमण्डल द्विदल दण्डा और दूसरे पात्रोंको तोड़ फोड़ डाला और उस स्थानमें व्याधोंसे मांस पकवाया ॥ १ ॥ २ ॥ और उसको खाकर वहाँ से अपनी पुरीको चल दिये, तब धर्मात्मा जनार्दन भी स्नेह वश उनके पीछे २ चल दिया ३ और अपने मनमें परम दुःखित

दुर्वासा यतिसत्तमः ॥ ४ ॥ पलायनपरान् सर्वानिदं प्राह यतीश्वरान् । इतो देशाद्विनिर्गत्य पुष्करात् पुण्यसंयुतात् ॥ ५ ॥ मन्दं मन्दं समाश्वास्य विश्रम्य च ततस्ततः । प्रविश्य द्वारकां देवं शंखचक्रगदाधरम् ॥ ६ ॥ दृष्ट्वा च तस्मै प्रभवे वदयामो यतिसत्तमाः । स हि रक्षन् जगदिदं धर्मवर्त्मनि संस्थितः ॥ ७ ॥ आद्यो लोकगुरुर्विष्णुर्यतात्मा तत्त्ववित्प्रियः । उद्धृत्य कंटकान् सर्वाञ्छशास पृथिवीमिमाम् ॥ ८ ॥ स च पापान्महाघोरान् सर्वान् पापकृतान् प्रभुः । रक्षेन्नः सकलान् सर्वान् ध्यानेषु निषतात्मनः ॥ ९ ॥ इदमद्य क्षमं विप्रा यानमद्य विधीयताम् । सोऽहसं यत्कृतं ताभ्यां पात्रभेदादि सत्तमाः ॥ १० ॥ एतत् सर्वमशेषेण दर्शयाम जनार्दनम् । तथेति ते प्रतिज्ञाय यतयो ज्ञानचक्षुषः ११

हो यह विचारने लगा, कि—इनका तो नाश ही होजायगा, उन सबके चले जाने पर यतिसत्तम दुर्वासाने भागनेको तयार हुए सब यतीश्वरोंसे कहा, कि-हे यतिसत्तमों ! हम इस पुण्यमय पुष्कर देशसे धीरे धीरे निकल कर इधर उधर विश्राम लेकर द्वारकामें प्रवेश करके शंख चक्र और गदाको धारण करने वाले देवको देख कर उन प्रभुसे कहेंगे, वह इस जगत्की रक्षा करते हुए धर्ममार्गमें स्थिर रहते हैं ॥ ४ ॥ ७ ॥ वह आद्य लोकगुरु तत्त्ववेत्ताओंको प्रिय यतात्मा विष्णु सब काँटोंको दूर कर इस पृथ्वीका शासन कर रहे हैं ८ वह हम ज्ञानमें चित्त लगाने वाले सब पुरुषोंकी, पाप करने वाले महाघोर. पापियोंको मार कर रक्षा करेंगे ९ यह बात उचित ही है, इसलिए हे विप्रों ! आज ही पयान करो, हे श्रेष्ठ पुरुषों ! जो उन्होंने पात्रभेद आदि साहस किया है १० उस सबको हम जनार्दनको दिखावेंगे, तब वह तथास्तुकी प्रतिज्ञा करके ज्ञाननेत्र मुनि उन दोनोंके तोड़े हुए काठके डाँड़े द्विदल कर्पट कौपीन वल्कल कमण्डलु और आधे

छिन्नं ताभ्यां समादाय शिक्यं दारुमयं तथा । द्विदलं कर्पटं चैव कौपीनमथ वल्कलम् ॥ १२ ॥ कमण्डलुं तथा राजन्नर्धमोत-कपालकम् । एतानन्यान् समादाय द्रष्टुं केशवमाययुः ॥ १३ ॥ पञ्च चैवं सहस्राणि पुरस्कृत्य महामुनीन् । दुर्वाससं तपोयोनि-मीश्वरस्यात्मसम्भवम् ॥ १४ ॥ अहोरात्रेण ते सर्वे द्वारकां कृष्णपालिताम् । ययुर्दान्ता महात्मानो लोमशाः केशवर्जिताः १५ प्रातः प्रविश्य राजेन्द्र वापिकायां यतीश्वराः । स्नात्वोपस्पृश्य ते सर्वे यत्नेन महता तदा ॥ १६ ॥ द्रष्टुमभ्युद्यता विष्णुं कण्टको-द्धृतितत्परम् । एकरूपं समास्थाय सुधर्मायामवस्थितम् ॥१७॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसोपाख्याने यतीनां द्वारकागमनं नाम दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११० ॥

वैशम्पायन उवाच । अथ सर्वेश्वरो विष्णुः पद्मकिञ्जल्कलो-चनः । श्यामः पीताम्बरः श्रीमान् प्रलम्बाम्बरभूषणः ॥ १ ॥ किरीटी श्रीपतिः कृष्णो नीलकुञ्चितमूर्द्धजः । अव्यक्तः शाश्वतो

हिलगे हुए कपालकको लेकर केशवको दिखानेके लिए चल दिये ॥११॥१३॥ पाँच हजार लोमश और रोमरहित महात्मा तपोनिधि ईश्वरके अंशरूप महात्मा दुर्वासाको आगे करके कृष्ण से रक्षित द्वारकापुरीको चल दिये और एक दिन रातमें तहाँ पहुँचगए ॥ १४ ॥ १५ ॥ हे राजेन्द्र ! उन्होंने प्रातःकालके समय द्वारकामें प्रवेश करके बावड़ीमें स्नान किया और यत्न-पूर्वक सन्ध्यावन्दन किया १६ तदनन्तर वे कण्टकोंका उद्धार करनेमें तत्पर और एक रूपको धारण करके सुधर्मा नामक सभा में विराजमान विष्णुका दर्शन करनेके लिए उद्यत होगए ।१७। एक सौ दशवाँ अध्याय समाप्त ॥ ११० ॥ छ छ

वैशम्पायनजी कहते हैं, कि—उधर पद्मकी समान नेत्र वाले सर्वेश्वर विष्णु एकसमय क्रीड़ाके उपवनमें गए थे उनके शरीर

देवः सकलो निष्कलः शिवः ॥ २ ॥ क्रीडाविहारोपगतः कदाचिदपराह्णिकः । कुमारैरपरैः सार्द्धं सात्यकिप्रमुखैर्नृप ॥ ३ ॥ गोलक्रीडां सुधर्मायां मध्ये यादवसत्तमः । चकार प्रियकृत् कृष्णो युयुधानेन केशवः ॥ ४ ॥ ममायं प्रथमो गोलस्तव पश्चाद्भविष्यति । इति ब्रुवंस्तदा विष्णुः सात्यकिं कमलेक्षणः ॥ ५ ॥ पार्श्वस्था यादवास्तत्र वसुदेवपुरोगमाः । उद्धवप्रमुखा राजन्नासेदुः क्वचिदत्र च ॥ ६ ॥ अन्यव्यापाररहितो भूतात्मा भूतभावनः । विजहार यथा रामः सुग्रीवेण पुरा नृप ॥ ७ ॥ मध्यन्दिने महाविष्णुः शैनेयेन सहाच्युतः । विक्रीड्य सुचिरं कृष्ण उपारंसीत् सयादवः ॥ ८ ॥ द्वास्थेन वारिताः पूर्वं द्वार्येव

का वर्ण श्याम था, वह पीला वस्त्र पहरते थे और लम्बे लम्बे वस्त्र तथा आभूषणोंको धारण करते थे, किरीट धारण करते थे; श्रीपति थे उनके बाल काले और घुँघराले थे वह देव अव्यक्त शाश्वत निष्कल सकल और शिव थे, हे राजन् ! ऐसे श्रीकृष्ण सात्यकि आदि मुख्य २ पुरुषको लेकर और कुमारों को लेकर क्रीड़ा करनेके लिए गए थे ॥ १ ॥ ३ ॥ यादवसत्तम श्रीकृष्ण सुधर्मा नामकी सभामें युयुधानके साथ गोलक्रीड़ा करने लगे ४ उस समय कमलकी समान नेत्र वाले विष्णु, सात्यकिसे कहने लगे, कि यह पहिला गोल मेरा है दूसरा गोल तुम्हारा होगा ।५। वसुदेव आदि यादव उनके पास बैठे हुए थे और हे राजन् ! उद्धव आदि भी तहां ही बैठे हुए थे । ६ । उस समय प्राणियोंका कल्याण चाहने वाले भूतात्मा दूसरा व्यापार न करके, रामके सुग्रीवसे क्रीड़ा करनेकी समान सात्यकिसे क्रीड़ा करने लगे ७ महाविष्णु अच्युत यादव सात्यकिके साथ क्रीड़ा करके दोपहरके समय विश्राम करने लगे हे राजन् ! इसी समय ऋषि मुनियोंको पहिले द्वारपालोंने रोका तब वे द्वार पर खड़े

च मया स्थिताः । इदमन्तरमित्येव विविशुस्तां सभां नृप ६ यमयो
दीर्घतपसः पुरस्कृत्य तपोधनम् । दुर्वाससं सुमनसो ददृशुर्यादवे-
श्वरम् ॥ १० ॥ गोलक्रीडासमासक्तं करसंस्थितगोलकम् । पद्म-
पत्रविशालाक्षं विष्णुं तं सात्यकिं हरिम् ॥ ११ ॥ एकेनाक्ष्णा
ह्लादयन्तं परेणान्येन गोलकम् । यतयश्च महाराज प्रत्यदृश्यन्त
तत्पुरः ॥ १२ ॥ वृष्णिपः पुण्डरीकाक्षः सात्यकिर्बलभद्रकः ।
वसुदेवस्तथाऽक्रूरः उग्रसेनस्तथा नृप ॥ १३ ॥ अन्ये च यादवाः
सर्वे सम्भ्रमं प्रतिपेदिरे । इदं किमिदमित्येव व्याशंकमनसोऽ-
भवन् १४ पृष्ठतोऽप्यनुगच्छन्ति दिधक्षन्तं जगत्त्रयम् । अर्धकौपीन-
वसनं स्मरन्तं कमपि द्विजम् ॥ १५ ॥ अन्तस्तापसमायुक्तं
छिन्नदण्डधरं यतिम् । अन्तर्ज्वलन्तं रोषेण हंसासादितकल्म-

रहे (फिर श्रीकृष्णकी आज्ञा मिलने पर) वह उसी समय
सभामें घुस आए अतिकालतक तप करने वाले मुनि तपोधन
दुर्वासाजीको आगे करके यादवेश्वरको देखने लगे ॥१०॥ उस
समय श्रीकृष्ण गोलक्रीड़ामें आसक्त होरहे थे और उनके हाथमें
गोलक थी, उस समय कमलपत्रकी समान विशाल नेत्र वाले
श्रीकृष्ण सात्यकिसे खेल रहे थे ११ वह एक नेत्रसे यादवोंको
प्रसन्न कर रहे थे और दूसरे नेत्रसे गोलकको देख रहे थे, हे
महाराज ! इसी समय ऋषि सामनेसे दिखाई दिये । १२ । हे
राजन् ! उस समय वृष्णियोंकी रक्षा करने वाले पुण्डरीकाक्ष
सात्यकि बलभद्र वसुदेव अक्रूर उग्रसेन तथा दूसरे सब
यादव भी संभ्रममें पड़ गए और यह क्या है; इस
प्रकार मनमें शंका करने लगे ॥ १३ ॥ १४ ॥ उस
समय भस्मसा करते हुए आधा कौपीन धारण करनेवाले
किसी द्विजके पीछे बहुतसे ऋषि चल रहे थे १५ उनके हृदयके
भीतर सन्ताप भर रहा था और वह टूटे हुए दण्डको पकड़

यम् १६ नेत्रोत्थितमहावह्निं प्रेक्षन्तं यादवेश्वरम् । दुर्वाससं ते ददृशुर्भीता यादवसत्तमाः १७ किं करिष्यत्यसौ क्रुद्धः किं वा वक्ष्यति नः प्रभुः । इति माक्रान्तयः सर्वे यादवाः प्रतिपेदिरे १८ इदमासनमित्येवं किञ्चिदूचुश्च वृष्णयः । ततः कृष्णो हृषीकेशः किंचिदुत्प्लुत्य तत्पुरः१९इदमासनमित्येवं स्थीयतामिह निवृतः॥ अहमत्र स्थितो विप्र किं करोमीति चाब्रवीत् २० ततः किंचिदिवासीन आसने यतिविग्रहः । आसने संस्थिते तस्मिन् यतयो वीतमत्सराः २१ आसनानि यथायोगं भेजिरे निवृताः किल । अर्घादिसमुदाचारं चक्रे कृष्णः किरीटभृत् २२ आह भूयो हृषीकेशो यतिं दुर्वाससं प्रभुम् । किमर्थं ब्रूहि विप्रेन्द्र अस्मिन् प्रत्यागमो हि वः ॥ २३॥ दृष्टं वा अथवा किंचित् कारणं चास्ति वो

रहे थे, रोषके कारण उनका अन्तःकरण जल रहा था और हमने उनका अपराध किया था १६ और नेत्रमेंसे निकलती हुई अग्निसे यादवेश्वरको देख रहे थे, ऐसे दुर्वासाको यादवसत्तमों ने भयभीत होकर देखा१७(और विचारने लगे, कि-) यह क्रोधमें भरेहुए न जाने क्या करडालेंगे और यह प्रभु हमसे न जाने क्या कहेंगे, यह विचार कर सब यादव हाथ जोड़ कर खड़े होगए १८ कुछ वृष्णियोंने कहा, कि–यह आसन है, इसी समय हृषीकेश श्रीकृष्ण कुछ उछल कर उनके पास पहुँच गए १९ और सुखी होकर कहने लगे, कि–यह आसन है, इस पर बैठिये हे विप्र ! मैं आपके सामने खड़ा हूँ, बताइये मैं क्या करूँ २० तब वह यति आसन पर बैठे कि–रागद्वेषशून्य दूसरे यति भी सुखी होकर अपने योग्य अपने आसनों पर बैठनेलगे, तब किरीटधारी श्रीकृष्णने अर्घ आदि शिष्टाचार किया ॥ २१ ॥ २२ ॥ फिर हृषीकेश प्रभु दुर्वासा यतिसे कहने लगे, हे विप्रेन्द्र ! बताइये ! आप किस लिए यहाँ पधारे हैं ॥ २३ ॥ अथवा तुमने ऐसी

महत् । सन्न्यासिनो द्विजश्रेष्ठा यूयं विगतकल्मषाः ॥ २४ ॥
निस्पृहाश्च सदा यूयमस्मत्तो द्विजपुङ्गवाः । प्रार्थ्यं नाम न
चैवास्ति स्पृहा नैवास्ति वो यतः ॥ २५ ॥ स्पृहाप्रेरितकर्माणः
क्षत्रियान् यान्ति सुव्रताः । निरूप्यमाणमस्माभिर्विप्र किंचिन्न
दृश्यते ॥ २६ ॥ न जाने कारणं ब्रह्मन्युष्मदागमनं प्रति । एता-
वता चानुमेयं किञ्चित्कारणमस्ति वै ॥ २७ ॥ तद्ब्रूहि यदि
विद्येत त्वत्तो ज्ञास्यामहे वयम् । इत्युक्तवति देवेशे चक्रपाणौ
जनार्दने ॥ २८ ॥ तस्यापि राजन् विप्रस्य भूयः कोपो महान-
भूत् । तस्मादभ्यधिकः पूर्वात् कोपः सञ्जायते महान् ॥ २९ ॥
दिधक्षन्निव लोकांस्त्रीन् भक्षयन्निव पश्यतः । रोषरक्तेक्षणः
क्रुद्धो हसन्निव दहन्निव ॥ ३० ॥ उवाच वचनं विष्णुं दुर्वासाः
क्रोधमूर्च्छितः । न जाने इति कस्मात्त्वं ब्रूषे नो यादवेश्वर ३१

कोई बड़ी भारी बात देखी है, हे द्विजश्रेष्ठो ! तुम संन्यासी हो
और निष्पाप हो २४ और हे द्विजपुंगगवो ! तुम सर्वदा हमसे
निस्पृह रहते हो, ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जिसकी तुम याचना
करो और तुममें स्पृहा भी नहीं है २५ हे सुव्रत पुरुषो ! मनुष्य
स्पृहासे प्रेरित होकर क्षत्रियोंके पास आया करते हैं, हे विप्र !
हम विचारते हैं, तो हमें ऐसा कोई कारण नहीं दीखता ॥२६॥
हे ब्रह्मन् ! मुझे आपके आगमनका कोई कारण विदित नहीं
है परन्तु मेरा अनुमान है, कि-इसका कोई न कोई कारण
अवश्य होगा २७ यदि कोई कारण हो तो बताइये, हम आपसे
जानना चाहते हैं, चक्रपाणि जनार्दन देवके इस प्रकार कहने
पर ।२८। हे राजन् ! उन ब्राह्मणको पहिलेसे भी अधिक कोप
बढ़ने लगा २९ और वह तीनों लोकोंको भस्म और भक्षणसा
करते हुए रोषसे नेत्रोंको लाल लाल करके क्रोधसे मूर्छित हो
विष्णुसे कहने लगे, कि-हे यादवेश्वर ! मैं नहीं जानता हूँ, कि-

जानामि त्वां महादेवं वञ्चयन्निव भाषसे । पुरातना वयं विष्णो पूर्ववृत्तान्तवेदिनः ॥ ३२ ॥ यथा हि देवदेवोऽसि मायामानुषदेहवान् । निगूहसे प्रभुस्त्वः कस्मान्नो जगतीपते ॥ ३३ ॥ सोऽसि ब्रह्मविदां मूर्तिस्तत्रैव परमं पदम् । यदभ्यर्च्य पुरा ब्रह्मा यच्च ज्ञाना वयं पुरा ॥ ३४ ॥ यतो विश्वमिदं भूतं तदेतत् परमं पदम् । यच्च स्थूलं विजानन्ति पुरा तत्त्वेन चेतसा ॥ ३५ ॥ पुराविदोथ विश्वेश तदेतत् परमं वपुः । कर्मणा प्राप्यते यत्तु यत् स्मृत्वा निर्वृता वयम् ॥३६॥ गत्यन्तमपि यद्रूपं नैव जानंति मानुषाः । न हि मूढधियो देव न वयं तादृशा हरे ॥ ३७ ॥ न जाने इति यद्ब्रूषे किमतः साहसं वचः । ये हि मूलं विजानन्ति तेषां तु मदिवेचनम् ॥ ३८ ॥ कुर्वतः किं फलं देव तव केशि-

आप ऐसा क्यों कह रहे हैं ॥ ३० ॥ ३१ ॥ मैं आपको महादेव समझता हूँ आप ठगते हुएसे बोल रहे हैं, हे विष्णो ! हम भी प्राचीन व्यक्ति हैं और पुराने वृत्तान्तको जानते हैं ॥ ३२ ॥ आप देवदेव हैं और आपने मायासे मनुष्यका शरीर धारण किया है; (इस बातको हम जानते हैं) फिर हे जगतीपते ! आप हमसे क्यों दुराव कर रहे हैं ३३ आप ब्रह्मवेत्ताओंकी मूर्ति हैं और आप ही परम पद हैं, आपकी पूजा करके ही हमने पहिले ज्ञान पाया था ३४ जिनसे यह सब विश्व उत्पन्न हुआ है, वह परमपद आपका रूप ही है, तत्त्वयुक्त चित्तसे जिस स्थूल रूपका पुरुष चिंतवन करते हैं ३५ और हे विश्वेश ! पुरातत्त्ववेत्ता जिस जिस रूपका चिंतवन करते हैं, वह यह आपका परमश्रेष्ठ शरीर ही है ३६ मनुष्य आपके गत्यन्त शरीरको भी नहीं जानते, और मूढबुद्धि पुरुष भी आपके इस शरीरको नहीं पहिचान सकते और हे हरे ! हम भी आपके रूपको पूर्णरीतिसे नहीं पहिचानते ॥ ३७ ॥ आप जो कहते हैं, कि मैं नहीं जानता, यह तो

निषूदन । वेदान्ते प्रथितं तेजस्तव चेदं विचार्यते ॥ ३९॥ ये च विज्ञानतृप्तास्तु योगिनो वीतकल्मषाः। पश्यन्ति हृत्सरोजेऽपि तदेवेदं वपुः प्रभो ॥ ४०॥ वेदैर्यद्गीयते तेजो ब्रह्मेति प्रतिपाद्य वै। तदेवेदं विजानेऽहं रूपमैश्वरमेव च ॥ ४१ ॥ वैष्णवं परमं तेज इति वेदेषु पठ्यते । अवगच्छाम्यहं विष्णो तदेवेदं वपुस्तव ४२ यं ओमित्युच्यते शब्दो यस्य वागिति गीयते । स एवासि प्रभो विष्णो न जाने इति मा वद ॥ ४३ ॥ परोक्षं यदि किंचित् स्यात्तव वक्तुं प्रयुज्यते। न जाने इति गोविन्द मा वादीः साहसं हरे ॥ ४४ ॥ विश्वं यदा प्रादुरासीद्यस्मिंल्लीनं क्षये सति। इदं तदैश्वरं तेजस्त्वंवगच्छामि केशव ॥४५॥ कर्ता त्वं भूतभव्येश प्रतिभासि सदा हृदि। यद्यद्रूपं स्मरेन्नित्यं तत्तदेवासि मे हृदि ४६

आपका साहसिक वचन है, जो आपकी मूलको जानते हैं, उनसे विवेचना करनेसे क्या लाभ ? हे केशिनिषूदन ! आपके वेदान्त में प्रसिद्ध तेजका चिन्तवन किया जाता है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ हे प्रभो ! विज्ञानसे तृप्त निष्पाप योगी हृदयकमलमें आपके इस शरीरका दर्शन करते हैं ४० वेदोंमें जिस तेजका वर्णन है और वेद जिस स्वरूपका प्रतिपादन करते हैं वह यह आपका ही ऐश्वर्यमयरूप है ४१ वैष्णव तेज श्रेष्ठ तेज है, ऐसा वेदोंमें लिखा है, हे विष्णो ! वह वैष्णव तेज आपका यह शरीर है ॥ ४२ ॥ जो ॐ कहलाता है और जो वाणी नामसे गाया जाता है, आप वही हैं, बताइये, क्या मैं इस बातको नहीं जानता ४३ आपसे कुछ बात छिपी रहती हो, तो आपका यह कहना उचित भी होता इस लिए हे हरे गोविन्द ! आप यह कहनेका साहस न करिए कि-मैं नहीं जानता ।४४। जिससे विश्व उत्पन्न हुआ है और प्रलयके समय जिसमें लीन होजायगा, हे केशव ! मैं तुम्हारे उस इस ऐश्वर तेजको जानता हूँ ४५ हे भूत और भविष्यतके

वायुरेव यदा विष्णुरिति मे धीयते मतिः । तदा तद्रूपमेवासि हृन्मध्ये संस्थितो विभो ॥ ४७ ॥ आकाशो विष्णुरित्येव कदाचिद्धीयते मतिः । तदा तद्रूपमेवासि हृन्मध्ये संस्थितो विभो४८ पृथिवी विष्णुरित्येतत् कदाचिद्धीयते मतिः । तदा पार्थिवरूपस्त्वं प्रतिभासि सदा मम ॥ ४९ ॥ रसोयं देव इत्येव कदाचिच्चिन्त्यते मया । तदा रसात्मना विष्णो हृन्मध्ये संस्थितो विभो ॥५०॥ यदा च तेज इत्येव स्मर्ता स्यां पुरुषोत्तम । तदा तद्रूपसम्पन्नः प्रतिभासि सदा हृदि ॥ ५१ ॥ चन्द्रमा हरिरित्येवं तदा चान्द्रमसं वपुः । निरीक्ष्य चक्षुषा देव ततः प्रीतोऽस्मि केशव ॥ ५२ ॥ यदा सौरं वपुरिति स्मर्ता स्यां जगतीपते । तदा तद्भावनायोगात्सूर्य एव विराजसे ॥ ५३ ॥

स्वामिन् ! आप मेरे हृदयमें कर्तारूपसे प्रतिभासित होते रहते हैं, मैं आपके जिस २ रूपका चिन्तवन करता हूँ, वही रूप मेरे हृदयमें प्रकाशित होने लगता है ॥ ४६ ॥ हे विभो ! जब मैं चिन्तवन करता हूँ, कि-विष्णु वायुरूप हैं तब आप उसी रूपसे मेरे हृदयमें स्थित होजाते हैं ४७ हे प्रभो ! जब कभी मेरा यह विचार होता है, कि-विष्णु आकाशरूप हैं, हे विभो ! उस समय आप आकाशरूपसे मेरे हृदयमें प्रकाशित होने लगते हैं जब यह विचार होता है, कि-विष्णु पृथ्वीमय हैं, तब आप सदा पार्थिवरूपमें प्रकाशित होते हैं ४९ देव ! कभी मैं रसस्वरूपसे आपका चिन्तवन करता हूँ, तब हे विभो विष्णो ! आप रसस्वरूपसे मेरे हृदयमें प्रकाशित होते हैं ।५०। हे पुरुषोत्तम ! जब मैं तेजःस्वरूपमें आपका ध्यान करता हूँ तब आप उसी रूपमें मेरे हृदयमें प्रकाशित होजाते हैं५१जब मैं आपके चन्द्रस्वरूपका ध्यान करता हूँ, तब मैं अपने नेत्रसे आपके चान्द्रमस शरीरको देख देखकर प्रसन्न होजाता हूँ५२हे जगतीपते ! जब मैं आपके

तस्मात् सर्वं त्वमेवासि निश्चिता मतिरीदृशी । अतो न जानेऽहमिति वक्तुं नेशो जनार्दन ॥ ५४ ॥ इत्यर्थे संस्थितो विष्णो पीडां नो चैव चिन्त्यसे । अत्यन्तदुःखिता विष्णो वयं त्वामनुसंस्थिताः ॥ ५५ ॥ ईदृशीयमवस्था नो नैतां स्मरसि केशव । एतत्पुनर्भाग्यमतो नष्टमित्येव चिन्तये ॥ ५६ ॥ मन्दभाग्या वयं विष्णो यतो नो न स्मरेः प्रभो । कौचित् क्षत्रियदायादौ गिरीशवरगर्वितौ ॥ ५७ ॥ नाम्ना हंसोडिम्भक च बाधेते नो जनार्दन । गार्हस्थ्यं हि सदा श्रेयो वदन्ताविति केशव ॥ ५८ ॥ इतस्ततश्च धावन्तौ वदन्तौ बहु किल्बिषम् । अयुक्तं बहु भाषन्तौ धर्षयन्तौ च नः सदा ॥ ५९ ॥ इदमन्यत्कृतं देव असह्यं पापमुच्यते । पश्येदं बहुधा देव भिन्नं भिन्नं सहस्रशः ॥६०॥

और शरीरका ध्यान करता हूँ, तब उस भावनावश आप सूर्यरूप में ही विराजमान होने लगते हैं। इसलिए मेरा विचार है, कि आप ही सब कुछ हैं, हे जनार्दन ! इस लिए "मैं नहीं जानता" आपको यह कहना उचित नहीं है ५४ यह बात है परन्तु आप हमारी पीड़ाका कुछ विचार नहीं करते हैं, हे विष्णो ! हम अत्यन्त दुःखित होकर आपके पास आए हैं। ५५ । हे केशव ! आप हमारी ऐसी अवस्थाका भी विचार नहीं करते, अतः मैं समझता हूँ, कि हमारा भाग्य ही नष्ट होगया है ५६ हम मन्दभाग्य हैं, इसीलिए, हे प्रभो ! आप हमारा स्मरण नहीं करते, हे जनार्दन ! किसी क्षत्रियके शिवके वरदानसे गर्वमें भरे हुए हंस और डिंभक नाम वाले पुत्र हमें पीड़ा दिया करते हैं हे केशव ! वह गृहस्थाश्रमको ही सदा कल्याणकारक बताते रहते हैं ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ और इधर उधर दौड़ बहुतसी असभ्य बातें कह हमें सदा धमकाया करते हैं ।५९। हे देव ! उनके किये हुए इस दूसरे असह्य अपराधको मैं कहता हूँ, हे देव ! देखो !

शिक्यं च दारवं पात्रं छिद्रलान् वेणुकान् बहून्। इदमप्यपरं पश्य तयोः साहसचेष्टितम् ॥ ६१ ॥ कौपीनं बहुधा छिन्नं तदस्माकं महद्धनम्। कृतं कपालमात्रेण कमण्डलु जगत्प्रभो ६२ त्वं तु नो रक्षसे नित्यं क्षात्रं वै व्रतमास्थितः। चित्रं चित्रमिदं देव रक्षस्यसि सदा निशम् ॥ ६३ ॥ किं करिष्यामि मन्दात्मा मन्दभाग्या वयं विभो। किन्नः शरणमद्यैव तद्ब्रूहि जगतां पते ६४ जीवन्तौ तौ यदि स्यातां नष्टा लोका इमे त्रयः। न विप्रा न च राजानो न वैश्या न च पादजाः ॥ ६५॥ अत्यन्तबलिनौ मत्तौ तीक्ष्णदण्डधरौ नृप। न तयोः पुरतः स्थातुं शक्ता देवाः सवासवाः॥६६॥ न च भीष्मो न वा राजा बाल्हीको भीमविक्रमः। यो हि वीरो जरासन्धः क्षत्रियाणां भयंकरः ॥ ६७ ॥ नैव च

उन्होंने यह सैंकड़ों चीजें तोड़ डाली हैं।६०। इन छीके काठके पात्र छिद्रल और बहुतसे बाँसोंको देखिये, और उनके दूसरे साहसिक कर्मको भी देखिये ६१ उन्होंने हमारे कौपीनको भी फाड़ डाला है, कमण्डलु और कपाल ही हमारा परमधन है ६२ और आप क्षात्रव्रतका पालन करके भी हमारी रक्षा नहीं करते, हे देव! आप रात दिन रक्षा करते रहते हैं (परन्तु हमारी रक्षा नहीं करते) यह बड़ी विचित्र बात है ६३ मैं मन्दात्मा क्या करूँ ? हे विभो! हम मन्दभाग्य हैं, हे जगत्पते! अब बताइये, हमें कौन शरण देगा ६४ यदि हंस और डिंभक जीवित रहेंगे, तो तीनों लोक नष्ट होजावेंगे ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र भी नहीं रहेंगे ६५ हे नृप! वे दोनों अतीव बलवान् हैं, मदमत्त हैं, और तीक्ष्ण दण्ड देते हैं, देवता और इन्द्र भी उनके सामने खड़े नहीं होसकते ॥६६॥ हे हरे कृष्ण! उन शिवजीके वरदानसे गर्व में भरे हुए और जिनका मुचैटा कोई नहीं लेसकता, ऐसे हंस डिंभकोंके सामने न भीष्म खड़े होसकते हैं, न भयंकर पराक्रमी

प्रायशः स्मातुं गिरीशवरदर्पिणो॥ तयोः कृष्ण हरे शक्तो नित्यमप्रतिसंगिनोः ॥ ६८ ॥ तस्मात्त्वं जहि तौ वीरौ रक्ष लोकाञ्जिमान् प्रभो । अन्यथा रक्षसीत्येवं व्यर्थः शब्दोत्र जायते ६९ बहुनात्र किमुक्तेन रक्ष रक्ष जगत्त्रयम् । इत्युक्त्वा विरराभैव दुर्वासाः क्रोधमूर्च्छितः ॥ ७० ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिंभकोपाख्याने दुर्वासासमागमो नामैकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥

वैशम्पायन उवाच । यतेर्वचनमाकर्ण्य मन्दमुच्छ्वस्य केशवः। दुर्वाससं समालोक्य बभाषे यादवेश्वरः ॥ १ ॥ क्षन्तव्यं भवता सर्वं दोष एव ममैव हि । शृणु वाक्यं ममैतत्तु श्रुत्वा शान्तिपरो भव ॥२॥ जेष्यामि तौ रणे विप्र हंसं डिम्भकमेव च । गिरीशो वा वरं दद्याच्छक्रो वा धनदोऽपि वा ॥ ३ ॥ यमो वा वरुणो

राजा बाल्हीक खड़ा होसकता है और न क्षत्रियोंको भयभीत करने वाला वीर जरासन्ध खड़ा होसकता है ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ हे प्रभो ! इसलिए आप उन दोनों वीरोंको नष्ट करके इन लोकों की रक्षा करिए, अन्यथा आप रक्षा करते हैं, यह शब्द यहाँ व्यर्थ होजावेगा ६९ यहाँ बहुत कहनेसे क्या ? आप तीनों लोकोंकी रक्षा करिये ! रक्षा करिये !! इस प्रकार कह कर क्रोधसे मूर्छित होते हुए दुर्वासा चुप होगए ॥७०॥ एकसौ ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १११ ॥ छ छ छ छ छ

वैशम्पायनजी कहते हैं, कि—यतिके वचनको सुन कर केशव ने मन्दतासे साँस छोड़ा, फिर वह यादवेश्वर दुर्वासाकी ओर देखकर कहने लगे, कि-॥ १ ॥ आप क्षमा करें ! सब दोष मेरा ही है, अब आप मेरी बातको सुन कर शान्त हूजिये २ हे विप्र ! मैं रणमें हंस और डिंभकको जीत ही लूँगा, इन्द्रने वर दिया हो, या कुबेरने वर दिया हो अथवा यम वरुण तथा चतुर्मुख ब्रह्माने

वापि ब्रह्मा वाथ चतुर्मुखः। सबलौ सानुजौ हत्वा पुनर्दा-
स्यामि वो रतिम् ॥४॥ सत्येनैव शपाम्यद्य मा रोषवशगो भव।
रक्षां वोऽहं करिष्यामि हत्वा तौ च नृपाधमौ ॥ ५ ॥ जानामि
तौ दुरात्मानौ युष्मद्दोषकरौ हि तौ। श्रुतं च पूर्वमस्माभिस्तीक्ष्ण-
दण्डधराविति ॥ ६ ॥ अत्यन्तबलिनौ मत्तौ गिरीशवरदर्पितौ।
नाल्पप्रयत्नसंसाध्यौ जरासन्धहितैषिणौ ॥ ७ ॥ प्राणानपि तयो
राजा दास्यत्येव न संशयः। जरासन्धो महीपालो विना तौ
जयते महीम् ॥ ८ ॥ जये तयोर्विप्रवर्याः तत्र श्रेयो भवेत्ततः।
यत्र यत्र तु गतौ गत्वा स्थितावित्यनुशुश्रुम ॥ ९ ॥ तत्र तत्र च
हन्ताहं नात्र कार्या विचारणा। गच्छध्वं यतयः स्वैरं निजकार्य-
परायणाः ॥ १० ॥ अचिरेणैव कालेन जेष्यामि रणपुङ्गवौ।

भी वर क्यों न दिया हो, मैं इन दोनोंको इनकी सेनासहित मारकर
तुम्हें फिर आनन्द दूँगा ॥ ३-४ ॥ यह बात मैं आज सत्यकी
शपथ खाकर कहता हूँ, तुम क्रोध मत करो, मैं उन अधम राजाओं
को मार कर तुम्हारी रक्षा करूँगा ॥ ५ ॥ मैं समझता हूँ, कि
उन दोनों दुरात्माओंने तुम्हारा अपराध किया होगा, मैंने पहिले
सुना भी था, कि वह तीक्ष्ण दण्ड दिया करते हैं ।६। अत्यन्त
बली हैं, मदमत्त हैं और शिवजीके वरसे घमण्डमें भरे रहते हैं,
जरासन्ध उनका हितैषी है, इस लिए साधारण प्रयत्न करनेसे
वह वशमें नहीं आ सकते ॥ ७ ॥ राजा जरासंध उनके लिए
अपने प्राण तक देदेगा वह राजा जरासंध उनके विना भी पृथ्वी
को जीत लिया करता है ॥ ८ ॥ हे विप्रवर्य ! उनकी जय होने
पर तुम्हारा कल्याण होगा मैं उनके होनेका जहाँ जहाँ पता
पाऊँगा ९ तहाँ २ जाकर मैं उनको मारूँगा, इसमें आप कुछ
विचार न करें हे यतियो ! तुम अब इच्छानुसार चले जाओ
और अपने कार्यमें लग जाओ ॥१०॥ मैं थोड़े समयमें ही उन

ततः प्रीतः प्रसन्नात्मा यादवेश्वरमाह सः ॥ ११ ॥ स्वस्त्ययस्तु भवते कृष्णः जगतां स्वस्ति कुर्वते । किन्तु नाथ जगन्नाथ दुःसाध्यं तव केशव ॥ १२ ॥ त्रिलोकेश त्रिधामासि सर्वसंहारकारकः । देवानामपि देवेश सर्वत्र समदर्शनः ॥ १३ ॥ विष्णो देव हरे कृष्ण नमस्ते चक्रपाणये । नमः स्वभावशुद्धाय शुद्धाय नियताय च ॥ १४ ॥ शब्दगोचर देवेश नमस्ते भक्तवत्सल । अज्ञानादथवाऽज्ञानाद्यन्मयोक्तं क्षमस्व तत् ॥ १५ ॥ त्वमेवाहं जगन्नाथ नावयोरन्तरं पृथक् । अतः क्षमस्व भगवन् क्षमासारा हि साधवः ॥ १६ ॥ श्रीभगवानुवाच । क्षन्तव्यं भवता विप्र न ॥सारा वयं सदा । संन्यासिनः क्षमासाराः क्षमा तेषां

रणपुंगवोंको जीत लूँगा, तब दुर्वासा ऋषि प्रसन्न होकर यादवेश्वरसे कहने लगे कि-॥ ११ ॥ हे कृष्ण ! आप जगत्को कल्याण करना चाहते हैं, अतः आपका कल्याण हो, हे जगत्के स्वामिन केशव ! आपके लिए दुःसाध्य क्या है ? ॥ १२ ॥ हे त्रिलोकीके स्वामिन् ! आप त्रिधामा हैं और सबका संहार करने वाले हैं, हे देवताओंके स्वामिन् ! आप देवताओं पर भी समदृष्टि रखते हैं । १३ । हे विष्णो ! हे देव ! हे हरे ! हे कृष्ण ! आप चक्रपाणिके लिए प्रणाम है, स्वभावतः शुद्ध शुद्धस्वरूप और नियतात्मा आपको प्रणाम है १४ हे शब्द (वेद) गोचर देवेश ! आपको प्रणाम है, हे भक्तवत्सल ! मैंने अज्ञानवश वा जान बूझ कर जो कुछ कहा हो उसको आप क्षमा करिये ।१५। हे जगन्नाथ ! मैं आपका ही स्वरूप हूँ, हममें और आपमें कुछ भेद नहीं है, हे भगवन् ! इस लिए आप क्षमा करिए, क्योंकि-साधु क्षमासे भरेहुए होते हैं ॥ १६ ॥ श्रीभगवान्ने कहा, कि-हे विप्र ! आप ही हमें क्षमा करिये, क्योंकि-हम क्षमा करने योग्य हैं और संन्यासी तो क्षमाके सार होते हैं और क्षमा ही

परं बलम् ॥ १७ ॥ क्षमा मोक्षकरी नित्यं तत्त्वज्ञानमिव द्विज । क्षमा धर्मः क्षमा सत्यं क्षमा दानं क्षमा यशः ।१८।क्षमा स्वर्गस्य सोपानमिति वेदविदो विदुः। तस्मात् सर्वप्रयत्नेन क्षमां पालयत स्वकाम् ॥ १९ ॥ प्रत्यक्षज्ञानसंयुक्ता यूयं सर्वे यतीश्वराः । य एते यतयो विप्राः पूजनीया ममाद्य वै ॥२०॥ भोक्तव्या यतयो विप्रा भिक्षुकाः सर्व एव हि । तथेति ते प्रतिज्ञाय भोक्तुमैच्छन् हरेर्गृहे ॥ २१ ॥ ततः स्वभवनं विष्णुः प्रविश्य हरिरीश्वरः । चतुर्विधं तथाहारं कारयित्वा यथाविधि ॥ २२ ॥ भोजयामास तान् सर्वान् यतीन् यतिवरार्चितः । छित्वा छित्वा च देवेशो दुकूलानि मृदूनि सः ॥ २३ ॥ ददौ तेभ्यस्तदा विष्णुः सर्वेभ्यो जनमेजय । ते च प्रीताः यथायोगं यथापूर्वं ततो गताः ॥२४॥

उनका परम बल होता है १७ हे द्विज ! क्षमा तो तत्त्वज्ञानकी समान सर्वदा मोक्षप्रदायिनी है, क्षमा ही धर्म है, क्षमा ही सत्य है, क्षमा ही दान है, क्षमा ही सत्य है और क्षमा ही यश है१८ और क्षमा स्वर्गकी सीढ़ी है,ऐसा वेदवेत्ता विद्वान् कहते हैं,इसलिए सब प्रकारसे यत्न करके अपने क्षमा धर्मका पालन करिये १९ हे यतीश्वरों ! आप सब प्रत्यक्षज्ञानसे युक्त हैं, ये सब जो मेरे पूज्य यति हैं, इन सब पूजनीय ब्राह्मणोंको मेरे घरमें आज भोजन करना चाहिये, तब उन ब्राह्मणोंने तथास्तु कह कर हरिके घरमें भोजन करनेका विचार किया ।२०। तदनन्तर हरि ईश्वर विष्णुने अपने भवनमें प्रवेश करके उचितरीतिसे चार प्रकारका आहार तयार कराया ॥ २१ ॥ २२ ॥ फिर श्रेष्ठ यतियोंसे पूजित हरिने उन सबको भोजन कराया. हे जनमेजय ! फिर देवेश विष्णुने उनके फटे पुराने वस्त्रोंको अलग कराकर उनको कोमल वस्त्र दिये, तब वे प्रसन्न होकर चले गए ॥ २३ ॥ २४ ॥

एक सौ बारहवाँ अध्याय समाप्त ॥ ११२ ॥

वैशम्पायन उवाच । दुर्वासास्त्वथ तत्रैव नारदेन महात्मना । चिन्तयन् ब्रह्मणस्तत्त्वं विजहार यथासुखम् ॥ १ ॥ भगवानपि गोविन्दस्तयोर्वासमन्वमन्यत । ततस्तौ हंसडिम्भकौ तस्मिन् काले महीपतिम् ॥२॥ ब्रह्मदत्तं महीपालं पितरं वीर्यशालिनम् । प्रावोचतामिदं वाक्यं समन्ताज्जनसंसदि ॥३॥ राजसूयं महायज्ञं पितः कुरु सुयत्नतः । अस्मिन् मासि नृपश्रेष्ठ यतावो यज्ञसिद्धये ।४। आवां तेऽद्य महाराज दिशां विजयतत्परौ । यतिष्यावो बलैः सार्द्धं गजैरश्वै रथैरपि ॥ ५ ॥ संभारा यज्ञसिद्ध्यर्थमानेतव्या नृपोत्तम । तथेति स महाबाहो ब्रह्मदत्तोऽब्रवीत्तदा ॥६॥ जनार्दनस्तु विप्रेन्द्रो दृष्ट्वा साहसतत्परौ । अशक्यमिति मन्वानो वयस्यं हंसमब्रवीत् ॥ ७ ॥ शृणु हंस वचो मह्य श्रुत्वा निश्चित्य वीर्य-

वैशम्पायनजीने कहा, कि परन्तु दुर्वासा तो महात्मा नारदजीके साथ तहाँ ही रह कर ब्रह्मतत्त्वका चिन्तवन करते हुए सुखपूर्वक विहार करने लगे १ उस समय भगवान्ने भी उनके तहाँ रहनेका अनुमोदन किया था, तदनन्तर उसी समयमें हंस और डिम्भकने अपने वीर्यवान् पिता राजा ब्रह्मदत्तसे जनसमाज में यह वचन कहा, कि ॥ २ ॥ ३ ॥ हे नृपश्रेष्ठ पिताजी ! आप इस मासमें राजसूय महायज्ञको करिए, हम यज्ञसिद्धिके लिए यत्न करेंगे ४ हे महाराज ! हम आपके लिए हाथी घोड़े सेना और रथोंको साथमें लेकर दिशाओंको जीतनेका प्रयत्न करते हैं ५ हे नृपोत्तम ! अब आप यज्ञकी सिद्धिके लिए सामान मँगवाइये, हे महाभुज ! तब ब्रह्मदत्तने कहा, कि—बहुत अच्छा ।६। परन्तु विप्रेन्द्र जनार्दन उनको साहस करता देख और इस काम को अशक्य मान कर अपने वयस्य हंससे कहने लगा, कि-॥७॥ हे हंस ! आप मेरी बातको सुनिये, हे वीर्यवान् नृपोत्तम ! हे आयुष्मन् ! मेरी बातका निश्चय करके आपको साहस करना

धान् । आयुष्मन साहसं कर्तुमुद्यतोसि नृपोत्तम ॥ ८ ॥ स्थिते भीष्मे जरासन्धे वाल्हीके च नृपोत्तमे । किं च वीरेषु सर्वेषु यादवेषु नृपोत्तम ॥ ९ ॥ भीष्मो हि बलवान् वृद्धः सत्यसन्धो जितेन्द्रियः । त्रिःसप्त कृत्वः पृथिवीं यो जिगाय भृगूत्तमः ॥१०॥ तं युद्धे जितवान् भीष्मः सर्वक्षत्रस्य पश्यतः । जरासन्धस्य यद्वीर्यं तद्भवान् वेत्ति संयुगे॥११॥ वृष्णिवीरास्तु ते सर्वे कृतास्त्रा युद्धदुर्मदाः । तत्र कृष्णो हृषीकेशो जितशत्रुः कृती सदा ।१२। जरासन्धेन सहितः सदा युद्धे जितश्रमः । प्रमुखे तस्य न स्थातुं शक्तो जीवन् नृपोत्तमः ॥ १३ ॥ बलभद्रस्तथा मत्तः क्रुद्धो यदि भवेद्बली । लोकानिमान् समाहर्तुं शक्नोतीति मतिर्मम ॥ १४ ॥ तथा च सात्यकिर्वीरः शक्तो जेतुं रणे रिपून । तथान्ये यादवाः सर्वे कृष्णमाश्रित्य दंशिताः ॥ १५ ॥ अस्माभिश्च कृतः पूर्वं

उचित है ८ आज कल भीष्म जरासन्ध और नृपोत्तम वाल्हीक और सब वीर यादव जीवित हैं ९ इनमें भीष्म वृद्ध होने पर भी बलवान् हैं, सत्यप्रतिज्ञ हैं और जितेन्द्रिय हैं, जिन्होंने इक्कीस बार पृथ्वीको जीत लिया था उन भृगुवंशियोंमें उत्तम परशुरामको भीष्मजीने सब क्षत्रियोंके सामने जीत लिया था, और जरासन्ध युद्धमें जैसा पराक्रम दिखाता है, उसको तो आप जानते ही हैं ॥ १० ॥ ११ ॥ उधर सब वृष्णि भी अस्त्रकुशल हैं और युद्धदुर्मद हैं, उनमें हृषीकेश कृष्ण तो चतुर हैं और सर्वदा शत्रुओंको जीतते रहते हैं ॥ १२ ॥ वह जरासन्धके साथ भी युद्ध करनेमें कुछ परिश्रम नहीं समझते, राजाओंमें श्रेष्ठ जरासन्ध उनके सामने जीवित खडा नहीं रह सकता १३ उनमेंके बलवान् और मदमत्त बलदेवजी यदि क्रोधमें भर जावें तो मेरा विचार है, कि — वह बलवान् व्यक्ति इन लोकोंका संहार कर सकते हैं । १४ । इसी प्रकार वीर सात्यकि भी रणमें शत्रुओंको जीत

विरोधो यतिभिः सह। दुर्वासा यतिभिः सार्धं गतो द्रष्टुं स केशवम् ॥ १६ ॥ इति श्रुतं नृपश्रेष्ठ ब्राह्मणाद्भोक्तुमागतात्। तथा रति यथा सिद्धेयत्तथा चिन्त्यं च मन्त्रिभिः ॥१७॥ ततः पश्चाद्विधास्यामो राजसूयं महाक्रतुम्। हंस उवाच। यो नाम भीष्मो मन्दात्मा वृद्धो हीनबलः सदा ॥१८॥ आवयोः पुरतः स्थातुं शक्तः स किल वृद्धकः। यादवा इति विप्रं नः शक्ताः स्थातुं रणे द्विज ॥१९॥ कश्च कृष्णः पुरः स्थातुं बलदेवश्च मत्तकः। शैनेयश्चापि विप्रेन्द्र स्थातुं न इति चिन्तय ॥२०॥ जरासंधस्तु धर्मात्मा बन्धुरेव सदा मम। गच्छ विप्र यदुश्रेष्ठं ब्रूहि मद्वचनात्त्वरन् ॥२१॥ दीयतां करसत्त्वं यज्ञार्थं सुन्दरं बहु। लवणानि

सकता है दूसरे यादव भी कृष्णका आश्रय लेकर रहते हैं।१५। और हमने भी यतियोंके साथ पहिले विरोध ठान लिया था, और दुर्वासा भी यतियोंको साथमें लेकर केशवको देखनेके लिए चले गए हैं १६ ऐसा हमने भोजन करनेको आए हुए ब्राह्मणोंसे सुना है, अब जिस प्रकार अपना काम सिद्ध हो तैसा मन्त्रियोंके साथ विचार करो ॥१७॥ तदनन्तर फिर राजसूय यज्ञ करना, हंसने कहा, कि भीष्मकी क्या शक्ति है जो हमारे सामने खड़ा होसके उस वृद्धका मन तो मूढ है और उसने कभी पराक्रम भी दिखाया है? ॥ १८ ॥ क्या वह वृद्ध हमारे सामने खड़ा हो सकता है और हे द्विज! यह भी अद्भुत बात है, कि-यादव हमारे सामने युद्धमें खड़े होसकेंगे १९ वह कौनसा कृष्ण और मदमत्त बलदेव है, जो हमारे सामने खड़ा हो सके, हे विप्रेन्द्र! तुम यह निश्चय रक्खो कि-शैनेय सात्यकि भी हमारे सामने खड़ा नहीं रह सकता २० और धर्मात्मा जरासन्ध तो हमारा बन्धु है इस लिए विप्र! तुम मेरे कहनेसे त्वराके साथ यदुश्रेष्ठके पास जाओ और उससे कहो, कि-॥२१॥ तू यज्ञके लिए हमें बहुतसा कर

बहून्यद्य गृह्य केशव मा चिरम् ॥ २२ ॥ आगच्छ त्वरितं कृष्ण न ते कार्यं विलम्बनम्। इति ब्रूहि यदुश्रेष्ठं याहि त्वरितविक्रमः२३ न ब्रूयाश्चोत्तरं विप्र शपेयं त्वां प्रियोऽसि मे। मित्रभावादिदं ब्रूहि पश्यामि त्वां पुनः पुनः ॥ २४ ॥ इति सञ्चोदितो विप्रो नोत्तरं मत्यभाषत। मित्रभावात्तथा राजन् स्नेहाच्च जनमेजय२५ जनार्दनस्तु धर्मात्मा नित्यं गन्तुं समुद्यतः। अद्य श्वो परश्वो वा गच्छामीति यतेत सः ॥२६॥ देवं द्रष्टुं जगद्योनिं शंखचक्रगदाधरम्। एक एव च धर्मात्मा हयमारुह्य सत्वरम् ॥ २७॥ प्रातरेव जगामाशु द्रष्टुं द्वारवतीं द्विजः। हरिं कृष्णं हृषीकेशं मनसा संस्मरन् द्विजः ॥ २८ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिंभकोपाख्याने त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११३ ॥

दे और बहुत सा लवण भी करमें दे, हे केशव! तू अब देर मत कर २२ हे कृष्ण! तू त्वराके साथ आ, विलम्ब न कर" तुम यदुश्रेष्ठसे इस प्रकार कहना अब तुम फुरतीसे तहाँ जाओ२३ हे विप्र! मैं तुम्हें अपनी शपथ दिलाता हूँ, अब तुम मेरी बात को न लौटना, तुम मेरे प्रिय हो, मैं तुमसे मित्रभाववश इतनी बात कहता हूँ और तुम्हारी ओर बारम्बार निहार रहा हूँ २४ हे राजन्! इसप्रकार प्रेरणा करनेपर मित्रभावश और स्नेहवश उसे उसने कुछ उत्तर नहीं दिया २५ और धर्मात्मा जनार्दन तो श्रीकृष्णके पास जानेको सर्वदा उत्सुक रहता था, वह तो यह चाहता रहता था, कि मैं आज कल या परसों जनार्दनके पास पहुँच जाऊँ २६ अत एव वह धर्मात्मा द्विज प्रातःकाल ही घोड़े पर चढ़ शंखचक्रगदाधारी जगत्के उत्पादक देवको देखनेके लिए हरिकृष्णका मनमें स्मरण करता हुआ त्वराके साथ चल दिया ॥ २७ ॥ २८ ॥ एक सौ तेरहवाँ अध्याय समाप्त।११३।

वैशम्पायन उवाच । ततः प्रागाद्धरिं विष्णुं ब्राह्मणो ब्रह्म-वित्तमः । हयेनैकेन राजेन्द्र त्वरितं स ययौ नृप ॥ १ ॥ यथा निदाघसमये सूर्यांशुपरिपीडितः । पान्थो याति जलं दृष्ट्वा त्वरितं तत्पिपासया ॥ २ ॥ धावत्येव तथा विप्रो हरिं द्रष्टुं जनार्दनः । गच्छन् स चिन्तयामास चोदयन् हयमुत्तमम् ३ हंस एव प्रियो मह्यं कुर्यात् प्रियहितं मम । तथा हि प्रेषितस्तेन हरिं पश्याम्यहं प्रभुम् ४ अहमेव सदा धन्यो मत्तो ह्यभ्यधिको न हि । यतो द्रक्ष्याम्यहं विष्णुं वसन्तं द्वारकापुरे ५ सा हि मे जननी धन्या हरिं दृष्ट्वा पुनर्गतम् । कृतार्थं सर्वदा देवी द्रक्ष्यत्येषा मनस्विनी ६ मुखमुन्निद्रहेमाब्जकिञ्जल्कसदृशप्रभम् । द्रक्ष्यामि देवदेवस्य चक्रिणः शार्ङ्गधन्वनः ७ वपुर्द्रक्ष्याम्यहं विष्णोर्नीलोत्पलदल-

वैशम्पायनजीने कहा, कि—हे राजेन्द्र! राजन्! तदनन्तर ब्रह्म-वेत्ताओंमें श्रेष्ठ ब्राह्मण जनार्दन एक घोड़े पर बैठ, त्वराके साथ विष्णुको देखनेके लिए चल दिया ॥ १ ॥ जैसे ग्रीष्म ऋतुमें सूर्यकी किरणोंसे तपता हुआ बटोही जलको देख कर पीनेकी इच्छासे दौड़ता है ॥ २ ॥ इसी प्रकार वह जनार्दन ब्राह्मण हरिको देखनेके लिये दौड़ने लगा जाते २ घोडेको चलाता हुआ जनार्दन विचारने लगा, कि—॥ ३ ॥ हंस मेरा प्यारा है, इसी लिए वह मेरा प्रिय और हितकर कार्य करता रहता है उसके भेजने पर ही मैं प्रभु हरिके दर्शन करूँगा मैं द्वारकापुरीमें रहने वाले विष्णुको देखूँगा, अतः मैं धन्य हूँ, मुझसे अधिक और धन्य नहीं है ।५। मेरी माता भी धन्य है, वह मनस्विनी हरिको देख कर कृतार्थ हो लौटे हुए मुझे फिर देखेगी ॥६॥ मैं शार्ङ्ग धनुष और चक्रको धारण करने वाले देवदेवके खुले हुए सुवर्ण के कमलकी समान प्रभा वाले मुखको देखूँगा ॥७॥ मैं शंख चक्र गदा शार्ङ्ग धनुष और वनमालासे विभूषित विष्णुके नीले कमल

च्छवि । शंखचक्रगदाशार्ङ्गवनमालाविभूषितम् । ८ । नेत्रे ते देव-देवस्य पद्मकिञ्जल्कसप्रभे । पश्याम्यहमदीनात्मा नष्टदुःखोऽस्मि निर्वृतः ६ अपि दृक्ष्यति योगात्मा सौम्येनैव स्वचक्षुषा । अपि वा मत्प्रियं ब्रूयात् स्वस्ति चेति च वा वदेत् ॥ १० ॥ द्रक्ष्यामि चक्रिणो वर्ष्म ततस्त्रैलोक्यसन्निभम् । पादाब्जं चक्रिणो द्रष्टुं त्वरत्येव च मे मनः ॥ ११ ॥ वक्षःस्थलं सदा विष्णोः स्फुर-द्रत्नप्रभायुतम् । पश्यन्निव च गच्छामि स्मरंश्चानिशमीश्वरम् १२ पीतकौशेयवसनं लम्बहारविभूषितम् । ईषत्स्मितताधरं विष्णुं पश्यामि च पुनः पुनः त १३ ॥ स्मरतश्च हरे रूपं रोमहर्षोऽयमीदृशः । गच्छतश्च पुरो भाति शंखचक्रगदासिमान् ॥ १४ ॥ यातीव च पुरो भाति मह्यं देवो जगद्गुरुः । एषोऽयमिति मे

की समान छवि वाले शरीरको देखूँगा ॥८॥ अदीन चित्त वाला मैं देवदेवके कमलके किञ्जल्ककी समान प्रभावाले नेत्रोंको देखूँगा, अब मेरा दुःख दूर होजायगा, अब मैं सुखी होऊँगा ६ क्या योगात्मा सौम्य नेत्रसे मेरी ओर देखेंगे, क्या वह मुझे प्रिय लगे ऐसी बात कहेंगे ? क्या वह मुझसे कहेंगे, कि तेरा कल्याण हो ॥१०॥ मैं चक्रधारीके त्रिलोकीकी समान शरीरको देखूँगा, चक्रधारीके चरणकमलोंको देखनेके लिए मेरा मन उतावली कर रहा है ॥११॥ मैं सदा दमकते हुए रत्नकी प्रभासे सम्पन्न रहने वाले विष्णुके वक्षःस्थलको देखता हुआसा और उन ईश्वरका स्मरण करता हुआसा जा रहा हूँ ॥१२॥ मैं पीला रेशमी वस्त्र धारण करने वाले, लम्बायमान हारसे विभूषित और मन्दहास्य करते हुए अधर वाले विष्णुका वारम्वार दर्शन कर रहा हूँ १३ हरिका स्मरण करनेसे हर्षके कारण मेरे रोंगटे खड़े होरहे हैं, मैं चलरहा हूँ, तब भी शंख चक्र और गदाको धारण करने वाले मेरे सामने खड़े हुए प्रतीत होरहे हैं ॥ १४ ॥ जगद्गुरु देव मेरे

वक्तुं जिह्वा प्रस्फुरतीव तम् ॥ १५ ॥ इदं दुःखतरं मन्ये करं देहीति मद्वचः । इदं तस्मात् साहसं मन्ये तद्वचस्तस्य भूपतेः १६ हंसस्य करदो विष्णुस्तदाज्ञापरिचारकः । तस्य सर्वं पुरो गत्वा वक्ताहं किल निर्दयः ॥ १७ ॥ मूढानामग्रणीरस्मि निर्लज्जश्च तथा वदन । करं देहि हरे विष्णो हंसस्य यदुपुङ्गव ॥ १८ ॥ लवणानि बहून्याशु पातव्यानि करात्मना । इति वक्तुं न मे युक्तं पुरतस्तस्य शार्ङ्गिणः ॥१९॥ तथापि मित्रभावात्तु वक्तव्यं घोरमीदृशम् । कष्टो ह्ययं मित्रभावो मनुष्याणां कृतात्मनाम् २० अथवा सर्वविद्विष्णुः सर्वस्य हृदि संस्थितम् । जानात्येव सदा भावं प्राणिनां शोभने रतः ॥ २१ ॥ तथा सति न मे दोषो मित्रभावो यतो ह्ययम् । सर्वथा रक्षता विष्णुर्घोरं वक्तुं यतस्त्वं

सामने जाते हुए से दीख रहे हैं, "यह रहे" कहनेको मेरी जिह्वा फड़क रही है ॥ १५ ॥ मैं यह कहूँ; कि—आप कर दीजिए, यह बड़े कष्टकी बात है, मैं उस राजाके इस वचनको साहसका काम समझता हूँ ॥१६॥ हाय ! मैं निर्दय उनके सामने जाकर कैसे कहूँगा, कि—आप हंसको कर दीजिए और उसकी आज्ञाके अनुसार कर दीजिए ॥ १७ ॥ मैं ऐसा कहूँगा, अतः मैं मूढ पुरुषों का अगुआ हूँ और निर्लज्ज हूँ मुझे शार्ङ्ग धनुषधारीके सामने यह कहना उचित नहीं है, कि हे यदुपुंगव ! विष्णो ! आप हंस को करदीजिए और आप करमें बहुतसा नमक दीजिए।१८।१९। तो भी हंसके मित्रभाववश ऐसा कहना पड़ेगा, यह बड़े कष्टकी बात है, अहो ! कृतज्ञ पुरुषोंके लिए यह मित्रभाव भी बड़ा कष्ट देने वाला है ॥ २० ॥ अथवा विष्णु सर्ववेत्ता हैं अतः वह सब की हृदयोंके भावको जानते ही होंगे वह तो प्राणियोंका कल्याण करनेमें तत्पर रहते हैं ॥२१॥ इस लिए वह मेरा कुछ अपराध न समझेंगे, क्योंकि-मैं मित्रभाववश ही उद्यत होरहा हूँ, इसलिए

मे ॥ २२ ॥ द्रक्ष्याम्यहं जगन्नाथं नीलकुञ्चितमूर्द्धजम् । कंबुग्रीवाधरं विष्णुं श्रीवत्साच्छादितोरसम् ॥ २३ ॥ स्फुरत्पद्ममहाबाहुं रत्नच्छायाविराजितम् । द्रक्ष्यामि केशवं विष्णुं चक्रिणं यादवेश्वरम् ॥ २४ ॥ अचिन्त्यविभवं देवं भूतभव्यभवत्प्रभुम् । आत्मेच्छया जगद्रक्षं द्रक्ष्यामि जलशायिनम् ॥ २५ ॥ कृतार्थः सर्वथा चाहं भवामि विगतज्वरः । अद्य मे सफलं जन्म साक्षाद्दृष्टवतो हरिम् ॥ २६ ॥ अद्य मे सफला यज्ञाः साक्षात् कृतवतो हरिम् । नेत्रे मे सफले विष्णुं पश्यतश्च जगन्मयम् ॥ २७ ॥ प्रीतिमानस्तु मे विष्णुर्वक्तुर्घोरस्य कर्मणः । उन्मिषन्नेत्रयुग्मेन द्रक्ष्यामि सकृदीश्वरम् ॥ २८ ॥ आमूलमसकृद्विष्णुं पश्यामि च पुनः पुनः । पिबामि नेत्रयुग्मेन वपुः कृष्णस्य केवलम् ॥२९॥

मुझ घोर बात कहने वालेकी विष्णु सदा रक्षा करें २२ काले घुँघराले बालवाले, शंखकी समान ग्रीवा वाले और श्रीवत्ससे ढके हुए वक्षःस्थल वाले जगन्नाथ विष्णुको मैं देखूँगा२३ मैं दमकते हुए रत्नोंको भुजामें धारण करने वाले, रत्नोंकी छाया से विराजमान चक्रधारी यादवेश्वर विष्णुको देखूँगा ॥ २४ ॥ अचिन्त्य विभव वाले भूत भविष्य और वर्तमानके स्वामी जगद्रक्षक जलशायी भगवान्को मैं अपनी इच्छानुसार देख सकूँगा। तब मैं कृतार्थ और निश्चिन्त होजाऊँगा, विष्णुका साक्षात्कार करनेसे आज मेरा जन्म सफल हो जावेगा ॥ २५ ॥ २६ ॥ आज विष्णुका साक्षात्कार होने पर मेरे यज्ञ सफल होजावेंगे, जगन्मय विष्णुको देखनेसे मेरे नेत्र सफल होजावेंगे ।२७। मुझ घोर कर्मका वर्णन करनेवाले पर भी विष्णु प्रसन्न रहें ! क्या मैं खुले हुए दोनों नेत्रोंसे विष्णुको एकबार देख सकूँगा२८क्या मैं विष्णुके पूर्ण शरीरको बारम्बार देख सकूँगा क्या मैं दोनों नेत्रोंसे विष्णुके शरीरका पान कर सकूँगा ॥ २९ ॥ मैं उनके

धारयिष्याम्यहं पांसुं तत्पादप्रभवं शिवम् । ततः कृतार्थतां यास्ये स्वर्गमार्गो हि तद्रजः ३० मेघगम्भीरनिर्घोषं श्रोष्यामि च हरेः स्वरम् पादाब्जं चक्रिणो विष्णोः पश्यामि च जगत्पतेः ३१ पश्यामि च हरेर्वक्त्रं पूर्णेन्दुसदृशप्रभम् । हरेरिदं जगद्रूपं पश्यामीव च सर्वतः ३२ प्रसीदतु सदा विष्णुरयुक्तं वक्तुमिच्छतः । आलोलकुण्डलयुतं हरिचन्दनचर्चितम् ॥ ३३ ॥ स्फुरत्केयूररत्नार्चिर्बाहुद्वयविराजितम् । सव्ये प्रोन्नमहाशंखं रश्मिजालविराजितम् ॥ ३४ ॥ प्रोद्यद्भास्करवर्णाभं चक्रज्वालाविराजितम् । प्रोज्ज्वलत्कंकणयुतं तप्तजाम्बूनदांगदम् ॥ ३५ ॥ पीतकौशेयवसनं विस्तीर्णोरस्कसम्युतम् । कदा द्रक्ष्यामि देवेशमिदानीमथवाऽन्यदा ॥ ३६ ॥ सर्वथा कृतकृत्योऽहं यद्वपुर्द्रष्टुमुद्यतः । नमो मह्यं नमो मह्यं यतो द्रष्टाहं हरिम् ॥ ३७ ॥ उद्यतोऽस्मि जगन्नाथं बलभद्र-

चरणकमलोंसे निकली हुई धूलको अपने शिर पर रख लूँगा और कृतार्थ होजाऊँगा; क्योंकि—उनकी चरणरज स्वर्गमार्ग (की पदर्शक) है ॥३०॥ मैं मेघकी समान गम्भीर स्वर करने वाले हरिके स्वरको सुनूँगा और जगत्के स्वामी चक्रधारी विष्णुके चरणकमलको देखूँगा ॥ ३१ ॥ पूर्ण चन्द्रमाकी समान प्रभा वाले हरिके मुखको भी मैं देखूँगा और हरिके जगन्मय रूप को सर्वत्र देखूँगा ३२ अयोग्य बात कहना चाहने वाले मुझ पर विष्णु सदा प्रसन्न रहें, चञ्चल कुण्डलों वाले और हरिचन्दनसे चर्चित तथा फड़कते हुए केयूर और रत्नोंकी दमकसे दमकती हुई दोनों भुजा वाले, वाम भुजामें दमकते हुए महाशंख वाले, किरणोंके समूहसे विराजमान देवेश विष्णुको मैं कब देखूँगा, अब देखूँगा अथवा फिर देखूँगा ॥३३—३६॥ मैं सर्वथा कृतकृत्य हूँ, जो उनका शरीर देखनेको उद्यत हुआ हूँ, मुझे प्रणाम है, मुझे प्रणाम है, क्योंकि मैं विष्णुको देखनेके लिए उद्यत

कृतास्पदम् । द्रक्ष्याम्यहमद्यैव जिष्णुं विष्णुं जगद्गुरुम् ॥ ३८ ॥ श्रीकौस्तुभोद्भवरुचिं स्फुरितोरुवक्षः पीताम्बरं मकरकुण्डलपंकजाक्षम् । कृष्णं किरीटवरचक्रगदोर्ध्वहस्तं तेजोमयं मम हरेर्वपुरस्तु भूत्यै ॥ ३९ ॥ वेदोदधौ विशदशास्त्रमहाहियोगे निष्णातशुद्धमतिमन्दरमथ्यमाने । उद्योतमानममरैरनिशं निषेव्यं नारायणाख्यममृतं प्रपिबामि चाद्य ॥ ४० ॥ ध्येयं मुमुक्षुभिरमेयमनाद्यनन्तं स्थूलं सुसूक्ष्मतरमेकमनेकमाद्यम् । ज्योतिस्त्रिलोकजनकं त्रिदशैकवन्द्यमक्ष्णोर्ममास्तु सततं हृदयेऽच्युताख्यम् ॥४१॥ चिन्तयन्निति विप्रेन्द्रो ययौ द्वारावतीं पुरीम् । मत्वा कृतार्थमात्मानं वाहयन्हयमुत्तमम् ॥ ४२ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिंभकोपाख्याने विप्रस्य द्वारवतीगमने चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः

हुआ हूँ मैं आज ही जिष्णु विष्णु और बलभद्रकी प्रतिष्ठा करने वाले जगन्नाथको आज ही देखूँगा॥३७॥३८॥कौस्तुभ मणिकी निकलती हुई कान्तिसे हुए दमकते वक्षःस्थल वाले, पीताम्बरधारी मगर कुण्डल और कमलकी समान नेत्र वाले किरीट और श्रेष्ठ चक्र तथा गदाको हाथमें धारण करने वाले हरिका तेजोमय शरीर मेरा कल्याण करे ॥३९॥ वेदरूपी समुद्रमें, विशद शास्त्ररूपी बड़े २ सर्पोंके, शास्त्रचतुरमतिरूपी मन्दराचलसे मथे देवताओंसे सर्वदा निषेवित प्रकाशमान नारायणात्मक अमृतका मैं आज पान करूँगा ॥ ४० ॥ मुमुक्षुओंसे ध्यान करने योग्य अनादि अनन्त स्थूल परमसूक्ष्म एक अनेक आद्य,त्रिलोकोत्पादक, देवताओंकी एकमात्र वन्दनीय अच्युत नाम वाली ज्योति मेरे हृदय और नेत्रोंमें सर्वदा वास करे ॥४१॥ विप्रेन्द्र जनार्दन इस प्रकार विचारता हुआ द्वारकापुरीको चलने लगा और घोड़ेको हाँकता हुआ अपनेको कृतार्थ मानने लगा ॥४२॥

वैशम्पायन उवाच । स निवेदितसर्वस्वो द्वारस्थेन हि जना-
र्दनः । अथ प्रविश्य धर्मात्मा सुधर्मां वै द्विजोत्तमः ॥ १ ॥
अपश्यद्देवदेवेशं सुधर्माकृतिसंस्थितम् । बलभद्रेण संयुक्तमध्या-
सितमहासनम् ॥ २ ॥ अग्रतः स्थितशैनेयं पार्श्वतः स्थितनार-
दम् । दुर्वाससा कृतकथमुग्रसेनपुरस्कृतम् ॥ ३ ॥ गायद्गन्धर्व-
मुख्यैश्च नृत्यदप्सरसां गणैः । सेव्यमानं महाराज सूतमागध-
वन्दिभिः ॥ ४ ॥ उद्गीयमानयशसं माधवं मधुसूदनम् । उद्गीय-
मानं विप्रैश्च सामभिः सामगैर्हरिम् । दृष्ट्वा प्रीतमना विष्णुं
प्रोद्भूतपुलकच्छविः ॥५॥ नाम्ना जनार्दनोस्मीति ननाम चरणौ
हरेः । बलभद्रं ततो देवं ववन्दे शिरसा द्विजः ॥ ६ ॥ दूतोस्मि
देवदेवेश हंसस्य डिम्भकस्य च । इति ब्रुवाणं विप्रेन्द्रमिदमाह

वैशम्पायनजीने कहा, कि-तदनन्तर जनार्दनने द्वार पर
पहुँच द्वारपालको अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया; तदनन्तर
द्विजोत्तम धर्मात्मा जनार्दनने सुधर्मा नामकी सभामें प्रवेश करके
सुधर्मामें उचित रीतिसे बैठे हुए देवदेवेशको देखा, वह बलदेवजी
के साथ योग्य आसन पर बैठे हुए थे २ उनके आगे सात्यकि
बैठे हुए थे और पार्श्वमें नारदजी बैठे हुए, दुर्वासा कथा कह
रहे थे और उग्रसेन उनके आगे बैठे हुए थे ॥ ३ ॥ हे महाराज !
सूत मागध और बन्दी तथा मुख्य मुख्य गन्धर्व गान करके और
अप्सराओंके टोले नाच कर उनकी सेवा कर रहे थे ४ जिनका
यश गाया जारहा था और सामगान करनेवाले ब्राह्मण साम-
गान करके जिनकी स्तुति कर रहे थे ऐसे माधव मधुसूदन
हरिको देख कर जनार्दनका मन प्रसन्न होगया और शरीरके
पुलकित होनेसे शरीर दमकने लगा५ और उसने मेरा नाम जना-
र्दन है यह कहकर हरिके चरणोंमें प्रणाम किया तदनन्तर उस
ब्राह्मणने बलदेवजीके चरणोंमें प्रणाम किया६ "हे देवदेवेश! मैं

स माधवः ॥ ७ ॥ आस्वेदं विष्टरं पूर्वं पश्चाद्ब्रूहि प्रयोजनम् । तथेति चाब्रवीद्विप्रो महदासनमास्थितः ॥ ८ ॥ वाचा सम्पूज्य विप्रेन्द्रमपृच्छत् कुशलं हरिः । ब्रह्मदत्तस्य राजेन्द्र हंसस्य डिम्भकस्य च ॥ ९ ॥ श्रुतं चापि तयोर्वीर्यं प्रयोजनमतो द्विज । अपि वा कुशलं विप्र पितुस्तव जनार्दन ॥ १० ॥ जनार्दन उवाच । कुशलं ब्रह्मदत्तस्य पितुश्च मम केशव । तयोरेव जगन्नाथ हंसस्य डिम्भकस्य च ॥११॥ श्रीभगवानुवाच । किमाहतुर्महीपालौ तौ हंसडिम्भकौ नृपौ । ब्रूहि सर्वमशेषेण नात्र शंका द्विजोत्तम ॥१२॥ वाच्यं वाप्यथवाऽवाच्यं कर्तव्यमथ चेतरत् । श्रुत्वा तस्य विधास्यामो युक्तरूपं द्विजोत्तम ॥ १३ ॥ दूतोऽसि सर्वथा विप्र न वाच्यावाच्यकल्पना । यत्कर्मकारनिर्दिष्टं तद्वाच्यं दूतज-

हंस तथा डिंभकका दूत हूँ" ब्राह्मणके ऐसा कहने पर विप्रेन्द्रसे माधवने कहा, कि— ७ पहिले आप इस आसन पर बैठिये, फिर कामकी बातचीत करना, तब ब्राह्मण तथास्तु कह कर बड़े भारी आसन पर बैठगया ८ तब हरि वाणीसे ब्राह्मणका सत्कार करके ब्रह्मदत्तकी हंसकी और डिंभककी कुशल बूझने लगे ९। हे द्विज ! मैंने उनका पराक्रम और उनका (अश्वमेधरूप) प्रयोजन सुना है और हे जनार्दन ! आपके पिताजी तो सकुशल हैं ॥ १० ॥ जनार्दनसे कहा, कि—हे केशव ! ब्रह्मदत्त और मेरे पिता सकुशल हैं और हे जगन्नाथ ! हंस और डिंभक भी सकुशल हैं ११ श्रीभगवान्ने कहा, कि—हे द्विजोत्तम ! हंस और डिंभक नाम वाले राजाओंने क्या सन्देशा भेजा है, उसको आप पूर्णरीतिसे कहिये और कुछ शंका न रखिये १२ उन्होंने वाच्य अवाच्य तथा कर्तव्य अकर्तव्य जो बात कही हो उसको सुनकर हम उचित कार्यवाही करेंगे १३ हे विप्र ! तुम दूत हो अतः तुम वाच्य अवाच्यकी कल्पना न करना, क्योंकि—दूतको स्वामीका

त्मना ॥ १४ ॥ नात्र शंका त्वया कार्या वक्तव्यस्येतरस्य च । अतो वद यथा प्रोक्तं ताभ्यामिह जनार्दनः ॥ १५ ॥ केशवेनैवमुक्तस्तु प्रोवाच स जनार्दनः । अजानन्निव किं ब्रूषे सर्वं प्रत्यक्षदर्शिवान् ॥ १६ ॥ न चास्ति ते परोक्षं तु जगद्वृत्तान्तमच्युत । सर्वं हि मनसा पश्यन् किं त्वमात्थ वदेति माम् १७ विद्वद्भिर्गीयसे विष्णो त्वमेव जगतीपते । इच्छया सर्वमाप्नोषि दृष्टादृष्टविवेचनम् ॥ १८ ॥ त्वमेवेदं जगत् सर्वं जगच्च त्वयि तिष्ठति । न त्वया रहितो ह्येकः पदार्थः सचराचरः ॥ १९ ॥ नास्ति किंचिददृश्यं ते सर्वगोऽसि जगत्पते । त्वमिन्द्रः सर्वभूतानां रुद्रः संहारकर्मकृत् ॥ २० ॥ रक्षितासि सदा विष्णुः सर्वलोकस्य माधव । संसारस्य भवान् स्रष्टा किं त्वमात्थ वदेति

बताया हुआ सारा सन्देशा कहना चाहिये ।१४। अतः तुम यह विचार न करो, कि-यह बात कहने योग्य है अथवा कहने योग्य नहीं है, किन्तु हे जनार्दन ! उन्होंने जो बात कही हो उस को वैसे ही कहो १५ केशवके इस प्रकार कहने पर जनार्दन कहने लगा, कि–आप अजानकी समान क्यों कह रहे हैं, आप तो सब बातोंको प्रत्यक्ष देखने वाले हैं ॥ १६ ॥ हे अच्युत ! जगत्का कोई वृत्तान्त आपसे छिपा हुआ नहीं है, आप सब बातको मनमें ही देख लेते हैं, फिर मुझसे क्यों कहते हैं, कि कह १७ हे जगतीपते विष्णो ! विद्वान् आपका ही गान करते हैं, आप इच्छा करते ही सब दृष्ट अदृष्ट विषयोंको जान जाते हैं १८ आप ही यह सब जगत् हैं और जगत आपमें प्रतिष्ठित है, चर और अचर पदार्थोंमें ऐसा एक भी पदार्थ नहीं है जो आपसे रहित हो १९ आपसे कुछ छिपा हुआ नहीं है, क्योंकि– हे जगत्पते ! आप सब भूतोंके इन्द्र हैं और सबका संहार कर्म करने वाले रुद्र हैं २० हे माधव ! हे विष्णो ! आप सब लोकों

माम् ॥ २१ ॥ विद्वद्भिर्गीयसे नित्यं ज्ञानात्मेति च माधव । प्राणं प्राणविदः प्राहुस्त्वामेव पुरुषोत्तम ॥ २२ ॥ शब्दं शब्दविदः प्राहुस्त्वामेव पुरुषोत्तम । तथा सति हृषीकेशं किं त्वमात्थ वदेति माम् ॥ २३ ॥ तथापि शृणु देवेश चोदितोऽस्मि यतस्त्वया । वदेत्यसकृदेवैतत्तस्माद्वक्ष्यामि माधव ॥ २४ ॥ राजसूयेन यज्ञेन ब्रह्मदत्तोऽद्य यक्ष्यते । तदर्थं प्रेषितस्ताभ्यां हंसेन डिंभकेन च॥२५ करार्थं यदुमुख्येभ्यस्तव चामन्त्रणाय हि । लवणं बहु देयं ते यज्ञार्थं तस्य केशव ॥ २६ ॥ इत्यर्थं प्रेषितस्ताभ्यां करं देहि तदाज्ञया । इदं त्वमपरं ताभ्यामुक्तं शृणु जगत्पते ॥ २७ ॥ लवणानि बहून्याशु प्रगृह्य त्वरितं भवान् । आगच्छतु तयोः

की सर्वदा रक्षा करते रहते हैं, और आप संसारके रचयिता हैं, फिर आप मुझसे कहनेके लिए क्यों कहते हैं २१ हे माधव ! विद्वान् पुरुष आपको सर्वदा ज्ञानात्मा कहते हैं, हे पुरुषोत्तम ! प्राणवेत्ता पुरुष आपको ही प्राण कहते हैं २२ हे पुरुषोत्तम ! शब्दवेत्ता आपको ही शब्द कहते हैं, ऐसा होनेपर हे हृषीकेश ! आप मुझसे यह क्यों कहते हैं; कि—तुम कहो;२३ हे देवेश ! आपने बार बार प्रेरणाकी है इस लिए आप सुनिए. आपने मुझसे बार २ कहा, कि कहो इसलिये मैं कहूँगा २४ आजकल ब्रह्मदत्त राजसूय यज्ञ करेगा, इसीलिए हंस और डिंभकने मुझे भेजा है ॥२५॥ उन्होंने मुझे मुख्य २ यादवोंसे कर लेनेके लिए और आपको निमन्त्रण देनेके लिए भेजा है, और हे केशव ! आपको भी यज्ञके लिए बहुतसा लवण करमें देना चाहिये २६ इस लिए उन दोनोंने मुझे आपके पास भेजा है, इसलिये आप उनकी आज्ञासे कर दीजिये, और हे जगत्पते ! आप उनके कहे हुए इस दूसरे वाक्यको भी सुनिए २७ आप बहुतसा नमक लेकर फुर्तीके साथ आइये हे केशव ! उन दोनों राजाओंने यह

राज्ञो सेयं केशव वाग् विभो ॥ २८ ॥ इत्युक्तवति विप्रेन्द्रे दूते तत्र तयोर्नृप । प्रहस्य सुचिरं कृष्णो बभाषे दूतमीश्वरः ॥२९॥ शृणु दूत वचो मह्यं युक्तमुक्तं द्विजोत्तम । करं ददामि ताभ्यां तु करदोऽस्मि यतो नृप ॥ ३० ॥ धाष्ट्र्यमेतत्तयोर्विप्र मत्तो यस्तु करग्रहः । अहो धाष्ट्र्यमहो धाष्ट्र्यं तयोः क्षत्रियबीजयोः ॥३१॥ इदमश्रुतपूर्वं मे मत्तो यस्तु करग्रहः । इत्युक्त्वा केशवो दूतमिदमाह स्म यादवान् ॥ ३२ ॥ हास्यमेतद्यदुश्रेष्ठा मत्तो यस्तु करग्रहः । यष्टासौ राजसूयस्य ब्रह्मदत्तो महीपतिः ॥ ३३ ॥ तौ तु याजयितारौ हि हंसो डिम्भक एव च । वोढा किल यदुश्रेष्ठो लवणस्य दुरात्मनः ॥ ३४ ॥ करदो वासुदेवो हि जितोऽस्मि यदुसत्तमाः । हास्यं हास्यमिदं भूयः शृणुध्वं यादवाः वचः ३५ इत्युक्तवति देवेशे बलभद्रपुरोगमाः । यादवाः सर्व एवैते हासाग

बात कही है । २८ । हे राजन् ! उन दोनोंके दूत विप्रेन्द्रके ऐसे कहनेपर श्रीकृष्ण बहुत देर तक हँसते रहे, फिर वह ईश्वर दूतसे कहने लगे, कि–२९ हे द्विजोत्तम दूत ! उन्होंने ठीक कहा है अब तुम मेरा बचन सुनो, मैं उन दोनोंको कर दूँगा, क्योंकि–करद हूँ ३० हे विप्र ! मुझसे कर लेना उनका ढीठपन है अहो ! उन क्षत्रियके बीजोंकी यह बड़ी धृष्टता है ३१ यह तो मैंने कभी नहीं सुना, कि कोई मुझसे कर माँगता हो केशव दूतसे इस प्रकार कह कर यादवोंसे कहने लगे ॥ ३२ ॥ हे श्रेष्ठ यादवों ! मुझसे कर माँगना, यह तो बड़े हास्यकी बात है, यह राजा ब्रह्मदत्त तो राजसूय यज्ञ करेंगे ॥ ३३ ॥ और हंस तथा डिंभक यज्ञ करावेंगे और मैं उस दुरात्माको लवण ढोकर दूँगा ॥३४॥ हे श्रेष्ठ श्रेष्ठ यादवों ! वासुदेव अब कर देगा, क्योंकि–मैं हार गया हूँ, यह तो बड़े हँसनेकी और बारम्बार हँसनेकी बात है; अब आप खूब हँसिये हे यादवों ! इस बातको तो सुनो ॥३५॥

समवस्थिताः ॥ ३६ ॥ करदः कृष्ण इत्येवं ब्रुवन्तः सर्वसात्वताः । हासं मुमुचुरत्यर्थं तलं दत्त्वा परस्परम् ॥ ३७ ॥ तलशब्दो हासशब्दो रोदसी पर्यपूरयत् । स च विप्रो नृपश्रेष्ठ नंदयन् मित्रमात्मनः ॥ ३८ ॥ अहो कष्टमहो पष्टं दौत्यं यत् कृतवानहम् । इति लज्जासमाविष्टस्तूष्णीमासीदवाङ्मुखः ॥ ३९ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिंभकोपाख्याने वासुदेववाक्यं नाम पंचदशाधिकशततमोऽध्यायः ११५

वैशम्पायन उवाच । हासं कुर्वत्सु तेष्वेवं केशवः केशिसूदनः । उवाच वचनं दूतं गच्छ मद्वचनाद् द्विज ॥ १ ॥ तावित्थं हंसडिम्भकौ ब्रूहि त्वरितविक्रमः । बाणैर्दास्यामि निशितैः शार्ङ्गमुक्तैः शिलाशितैः ॥ २ ॥ असिना चाथ दास्यामि निशितेन

देवेशके इस प्रकार कहने पर बलभद्र आदि सब यादव हँसनेको उद्यत होगए ॥ ३६ ॥ वे सब यादव "कृष्ण कर देने वाले हैं" यह कह परस्पर तालियें बजा कर हँसने लगे ॥ ३७ ॥ उस समय तालियोंके बजानेके शब्दने और हँसनेके शब्दने आकाश को गुंजार दिया, हे नृपश्रेष्ठ ! तब वह ब्राह्मण भी अपनी मित्रमण्डलीको आनन्दित करताहुआ कहने लगा, कि अहो ! यह बड़े दुःखकी बात है, कि-मैं यहाँ दूत बन कर आया हूँ। इतना कहनेके अनन्तर उसको लज्जा आगई और वह नीचेको मुख करके चुप होगया ॥३८॥३९॥ एक सौ पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥ ११५ ॥ * * *

वैशम्पायनजीने कहा, कि-जब वह इस प्रकार हँस रहे थे, उस समय केशी दैत्यका संहार करने वाले केशवने दूतसे यह बात कही, कि-हे द्विज ! तुम फुर्तीके साथ कदम रख (अपने नगरमें पहुँच) मेरे कहनेसे हंस और डिंभकसे यह बात कहना, कि-"मैं शिला पर तेज किये हुए बाणोंको शार्ङ्ग धनुषसे छोड़

महात्मनोः। शिरो वा छेत्स्यते चक्रं मत्करप्रहितं बलिम् ॥ ३ ॥
यो वरं दत्तवान् रुद्रो युवयोर्धाष्ट्र्यकारणम्। स एव रक्षिता वां स्यात्तं जित्वा वां निहन्म्यहम् ॥ ४ ॥ देशोऽयं संविधातव्यो यत्र नः संगतिर्भवेत्। तत्र गन्ता यथा चास्मि सबलः सहवाहनः ॥ ५ ॥ भवन्तौ निर्भयौ भूत्वा गच्छेतां सबलौ नृपौ। पुष्करे वा प्रयागे वा मथुरायामथापि वा ॥ ६ ॥ तत्राहं सबलो याता नात्र कार्या विचारणा। अथवा मित्रभावाच्च वक्तुमेवं न ते क्षमम् ॥७॥ न शक्यं यत्त्वया वक्तुं तच्च वक्ष्यति सात्यकिः। त्वया सह ततो गत्वा साक्षिभूतो भव द्विज ॥ ८ ॥ इदं च जाने

कर उन दोनों महात्माओंको कर दूँगा, अथवा तीक्ष्ण तलवार से कर दूँगा अथवा मेरे हाथसे फेंका हुआ सुदर्शन चक्र उन दोनोंके मस्तकोंको काट कर उनको कर देगा ॥२॥३॥ भगवान् रुद्रने तुमको वर दिया है, इस लिए तुम धृष्ट होगए, यदि वह रुद्र भी तुम्हारी रक्षा करेंगे, तब मैं उनको भी जीत कर तुम्हारा वध कर डालूँगा ॥४॥ तुम दोनों जहाँ मुझसे भेंटा करना चाहते हो, उस देशको चुन लो, मैं अपनी फौज और वाहनोंको लेकर तहाँ पहुँच जाऊँगा ॥५॥ हे राजाओं! तुम अपनी सेनाओंको लेकर निर्भयताके साथ पुष्कर प्रयाग अथवा मथुरामें आ जाओ ॥ ६ ॥ तहाँ ही मैं सेनाको लेकर पहुँच जाऊँगा तुम इस काममें विचार न करना, अथवा हे विप्र! मित्रभाववश तुम ऐसा कहना उचित न समझो तो॥ ७ ॥ जिस बातको तुम न कह सको तो यह सात्यकि तुम्हारे साथ जाकर उस बातको कह देंगे, और हे द्विज! तुम साक्षी ही बने रहना ॥ ८ ॥ हे विप्रेन्द्र! मैं यह बात जानता हूँ, कि—तुम मुझसे सर्वदा स्नेह करते रहते हो, इस लिए तुम दुःखसंकुल संसारमें विजयी रहो,

विप्रेन्द्र स्नेहो तव सदा मयि । तेन त्वं विजयी भूत्वा संसारे दुःखसंकुले । मत्कथापरमो नित्यं सदा भव जनार्दन ॥ ६ ॥
इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिभकोपाख्याने षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११६ ॥

वैशम्पायन उवाच । इत्युक्त्वा ब्राह्मणं कृष्णः सात्यकिं पुनराह सः । गत्वा शैनेय विप्रेण ब्रूहि यद्वचनात्तयोः ॥ १ ॥ यन्मयोक्तमशेषेण वद गत्वा तयोः पुरः । यथा नः संगतिर्युद्धे तथा वद बलात्तदा ॥ २ ॥ धनुरादाय गच्छ त्वं बद्धगोधाङ्गुलित्रवान् । एकेनाश्वेन गच्छ त्वमसहायो यदूत्तम ॥३॥ सात्यकिस्तं तथेत्युक्त्वा हयमारुह्य शीघ्रगम् । गन्तुमैच्छत्ततो राजन्नसहायः स सात्यकिः ॥ ४ ॥ जनार्दनं विसृज्याशु दूतं तं यादवेश्वरः । अहो धाष्टर्यमहो धाष्टर्यमित्युवाच जनार्दनः ॥ ५ ॥ नमस्कृत्य तदा दूतो माधवं माधवेश्वरम् । स ययौ शाल्वनगरं

और हे जनार्दन ! तुम सर्वदा मेरी कथामें परायण रहो ! ।६। एक सौ सोलहवाँ अध्याय समाप्त ॥ ११६ ॥ * *

वैशम्पायनजी कहते हैं, कि ब्राह्मणसे इस प्रकार कह कर श्रीकृष्ण फिर सात्यकिसे कहने लगे, कि—हे शैनेय ! तुम मेरे कहनेसे ब्राह्मणके साथ जाकर मैंने जो कुछ कहा है, उस सब को उनके सामने कह दो, और तुम इस प्रकार जोरके साथ बात कहना, कि हमारा और उन दोनोंका मुचैटा हो ही जाय ।१।२। तुम हाथमें गोहके चमडेके दस्ताने पहन धनुष धारण करके जाओ, और हे यादवोंमें उत्तम ! तुम घोड़े पर इकले सवार होकर जाना ३ तब सात्यकि तथास्तु कह कर शीघ्रगामी घोड़े पर सवार हो किसी सहायकको साथमें न लेकर इकला ही जाना चाहने लगा ४ यादवेश्वर जनार्दन जनार्दन नामक दूत को शीघ्रतासे भेज कर कहने लगे, कि —यह तो बड़ी धृष्टता है

शैनेयेन समन्वितः ॥ ६ ॥ ततः प्रविश्य धर्मात्मा ब्राह्मणो ब्रह्मवित्तमः । आसनं महदास्थाय विसृज्य यादवं पुनः ॥ ७ ॥ आस्ते सुखं यदा विप्रः शैनेयेन समन्वितः । अथ तं हंसडिम्भयोर्दर्शयामास सात्यकिम् ॥ ८ ॥ दूतोऽयं सात्यकिः प्राप्तः सव्यो बाहुरयं हरेः । तस्य तद्वचनं श्रुत्वा हंसः प्राह वचस्तदा ॥ ९ ॥ श्रुतः समागमः पूर्वमद्य दृष्टो मया त्वसौ । धनुर्वेदे च वेदे च शास्त्रे शस्त्रे तथैव च ॥ १० ॥ निपुणोऽयं सदा धीर इत्येनमनुशुश्रुम । अथो दृष्टिपथं प्राप्तः प्रीतिं नौ विदधात्यसौ ॥ ११ ॥ कुशलं वासुदेवस्य बलभद्रस्य वा पुनः । कुशलाः सात्वताः सर्वे उग्रसेनपुरोगमाः ॥ १२ ॥ तथेति सात्यकिः प्राह मन्दमुन्मथिताननः । ततो जनार्दनं प्राह हंसो वाक्यविशारदः ॥ १३ ॥

बात है ! इनकी धृष्टताको तो देखो ५ तदनन्तर वह दूत माधवेश्वर श्रीकृष्णको नमस्कार करके सात्यकिके साथ शाल्वनगर को चल दिया ६ और ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ धर्मात्मा ब्राह्मण (नगरमें) प्रवेश करके बड़े भारी आसन पर बैठ गया, फिर उसने सात्यकिको भी आसन दिया ७ जब ब्राह्मण सात्यकि के साथ बैठ कर सुख पाने लगा, तब उसने हंस डिम्भकके सामने सात्यकिको उपस्थित किया ॥ ८ ॥ और कहा, कि-यह सात्यकि दूतरूपमें आये हैं, यह कृष्ण दाहिनीकी भुजा हैं ॥९॥ उसकी इस बातको सुन कर हंस कहने लगा, कि—हमने इनके आनेका समाचार पहिले ही सुना था, अब हम इनका दर्शन कर रहे हैं, हमने सुना है, कि—यह धीर पुरुष धनुर्वेदमें वेदमें शास्त्रमें और शस्त्रमें चतुर हैं, अब इनका दर्शन पाकर हमें बड़ी प्रसन्नता होरही है । १० । ११ । हे सात्यके ! वासुदेव बलभद्र और उग्रसेन आदि सब सात्वत सकुशल हैं क्या ? ॥१२॥ तब सात्यकिने मुस्करा कर कर कहा, कि हाँ सब

अपि दृष्टस्त्वया चक्री सिद्धं नः कार्यमीहितम्। वद सर्वमशेषेण मा वृथा कालमत्यगाः ॥ १४ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिभकोपाख्याने सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११७ ॥

वैशम्पायन उवाच। इत्युक्तवति हंसे च धर्मात्माथ जनार्दनः। उवाच प्रहसन् वीरः स्तुवन्नारायणं सदा ॥१॥ अद्राक्षमद्राक्षमहं जनार्दनं हस्तस्थशङ्खं वरचक्रधारिणम्। आतप्तजाम्बूनदभूषिताङ्गदं स्फुरत्प्रभाद्योतितरत्नधारिणम् ॥ २ ॥ अद्राक्षमेनं यदुभिः पुरातनैः संसेव्यमानं मुनिवृन्दमुख्यैः। संस्तूयमानं प्रभुभिः समागधैः स्मितप्रवालाधरपल्लवारुणम् ॥ ३ ॥ अद्राक्षमेनं कविभिः पुरातनैर्विविच्य वेद्यं विधिवत् सहामरैः। प्रफुल्ल

सकुशल हैं, तब वाक्यविशारद हंस जनार्दनसे यह बात कहने लगा, कि—तुमने चक्रधारी श्रीकृष्णको देखा, क्या हमारा चाहा हुआ कार्य सिद्ध होगया, इस सब बातको अब तुम कहो, और समयको व्यर्थ ही मत खोओ। १४। एकसौ सत्रहवाँ अध्याय समाप्त। ११७। छ छ छ छ छ

वैशम्पायनजीने कहा, कि—हंसके इस प्रकार कहने पर धर्मात्मा वीर जनार्दन नारायणकी स्तुति करता हुआ हँस कर कहने लगा। १। कि-मैंने हाथमें शङ्ख धारण करनेवाले, श्रेष्ठ चक्रको धारण करने वाले, तपे हुए सुवर्णके बाजूबन्दोंको धारण करने वाले, और दमकने वाली प्रभासे दमकते हुए रत्नों को धारण करने वाले जनार्दनको देखा और (अच्छी तरह) देखा २ मैंने देखा कि-यादव तथा प्राचीन मुनियोंके झुण्ड उन की सेवा कर रहे थे उनका अधरपल्लव लाल रंगका था और मूँगोंके समान अधर वाले श्रीकृष्ण मुस्कुरा रहे थे और राजा लोग मागधों सहित उनकी स्तुति कर रहे थे ३ पुरातन कवि और देवता

नीलोत्पलशोभितं श्रिया विनिद्रहेमाब्जविराजितोदरम् ॥ ४ ॥
भूयोऽहमद्राक्षमजं जगद्गुरुं प्रमोदयन्तं वचनेन यादवान् । निरूपयन्तं विधिवन्मुनीश्वरैः प्रवृत्तवेदार्थविधिं पुरातनैः ॥ ५ ॥
अद्राक्षमद्राक्षमहं पुनः पुनः समस्तलोकैकहितैषिणं हरिम् । वसन्तमस्मिञ्जगतो हिताय जगन्मयं तान् परिभूय शत्रून् ॥ ६ ॥
भूयोऽप्यपश्यं सह यादवेश्वरैर्विक्रीडयमानं च विहारकाले । रमन्तमीड्यं रमयन्तमीश्वरान् यदूत्तमान् यादवमुख्यमीश्वरम् ७
भूयोऽप्यपश्यं सरसीरुहेक्षणं समेतया भीष्मतनूजया हरिम् । वसन्तमम्भोनिधिशायिनं विभुं भक्तप्रियं भक्तजनास्पदं शिवम् ८
अद्राक्षमद्राक्षमहं सुनिर्वृतः पिबन् पिबंस्तस्य वपुः पुरातनम् । नेत्रेण मीलद्विवरेण केवलं धन्योऽहमस्मीति तदा व्यचिन्तयम् ९

विचार करके जिनको ध्येय कहते हैं उन प्रफुल्ल नीलकमलसे शोभित, खिलेहुए सुवर्णकमलकी समान सुशोभित उदर वाले श्रीकृष्णके मैंने दर्शन किये थे ४ फिर मैंने देखा ! कि—जगद्गुरु अपने वचनोंसे यादवोंको प्रसन्न कर रहे थे और प्राचीन मुनियोंके साथ प्रचलित वेदकी विधिपर विचार कर रहे थे ५ मैंने समस्त लोकोंका हित चाहने वाले जगन्मय हरिको इस जगत् का हित करनेके लिये शत्रुओंका तिरस्कारकरे इस लोकमें विराजते हुए देखा है ! देखा है !! ६ मैंने देखा कि-वह विहारके समय यादवेश्वरोंके साथ क्रीडा कररहे थे और उन पूज्य व्यक्तिको मैंने खेलते हुए तथा उन यादवोत्तम ईश्वरको मैंने श्रेष्ठ २ यादव राजाओंको खिलाते हुए भी देखा है ।७। फिर मैंने भक्तजनोंमें प्रतिष्ठित कल्याणकारक, समुद्रमें शयन करने वाले भक्तप्रिय विभु हरिको भीष्मककी पुत्रीके साथ बसता हुआ देखा ॥ ८ ॥ जिस समय मैंने आनन्दके साथ उनके प्राचीन शरीरको नेत्रोंसे पान करके देखा, तब मैंने समझा, कि मैं धन्य हूँ ९ मैंने प्रभु

अद्राक्षमम्भोजयुगं दधानं प्रभुं विभुं भूतमयं विभावनम् । आर्य ककुद्मानमुरं विभावसुं संस्मृत्य संस्मृत्य तमेव निर्वृतः ॥ १० ॥ अद्राक्षं जगतामीशं वक्षोराजितकौस्तुभम् । वीज्यमानं हरिं कृष्णं चामराणां शतैः सदा ॥ ११ ॥ युवां विद्वेषयुक्तेन चेतसा यादवेश्वरम् । स्मरन्तं सर्वदा विष्णुं क्व चैवं क्व च वेत्ति कः ॥ १२ क्व च द्रक्ष्यामि तौ मन्दौ कुतो वा मत्पुरोगतौ । ध्यायन्तमित्थं देवेशं करे शंखवहं सदा ॥ १३ ॥ हसन्तमेनमद्राक्षं करदं हास्यतत्परम् । वदन्तं नारदे वाचं दुर्वाससि यतीश्वरे ॥ १४ ॥ ब्रह्मसूत्रपदां वाणीं दापयन्तं मुनीश्वरम् । दृष्ट्वाहं तं हरिं देवं पुनः पुनरचिन्तयम् ॥ १५ ॥ असाध्यमिदमारब्धं ताभ्यामिति नृपोत्तम । नारब्धव्यमिदं कार्यमितः प्रभृति भूमिप ॥ १६ ॥ निवृत्ता सा कथा हंसाविन्तयद्द् ग्रहणं तव । तद्वृत्तमखिलं सर्वं वदिष्यति-

विभु भूतमय विभावनको दो कमल लिए हुए देखा था मैं उन ककुद्-वाले विभावसुका स्मरण कर करके प्रसन्न होरहा हूँ १० मैंने कौस्तुभमणिसे दमकते हुए वक्षःस्थल वाले जगत्के स्वामी को देखा था, उन हरि कृष्ण पर सैंकड़ों चमर ढुल रहे थे ११ वह तुम्हारे ऊपर चित्तमें द्वेष रख कर तुम्हारा स्मरण कर रहे थे और कह रहे थे, कि–वह दोनों कहाँ हैं और उन दोनोंको कौन जानता है १२ उन दोनों मन्द पुरुषोंको मैं कहाँ देखूँगा और कहाँसे वे मेरे सामने पड़ेंगे, वह हाथमें शंखको धारण करके इस प्रकार ध्यान कर रहे थे ॥ १३ ॥ मैंने देखा कि—वह कर देने वाले हास्य करि रहे थे और यतीश्वर दुर्वासा और नारदजी से बातचीत कर रहे थे । १४ । मैं हरिको मुनीश्वरोंको ब्रह्मसूत्रके पदके अर्थ वाली वाणीका उपदेश देते देख कर विचारने लगा, कि–॥ १५ ॥ उन दोनोंने असाध्य काम हाथमें लिया है, इस लिए हे राजन् ! इस कार्यका आप आरम्भ न करिये १६

हि सात्यकिः । एतद्वचनमाकर्ण्य हंसः क्रुद्धोऽब्रवीद्वचः ॥ १७ ॥ हंस उवाच । अरे ब्राह्मणदायाद का नाम तव वाग्मियम् । आवयोः पुरतो वक्तुं त्रैलोक्यं जेतुमिच्छतोः ॥ १८ ॥ मायया त्वां भ्रामयति कृष्णो लीलाविधानवित् । तं दृष्ट्वा भ्रम एवैष तव संजायते महान् ॥१९॥ शंखचक्रगदाशार्ङ्गवनमालाविभूषितम् । वृष्णिवीरं समावेश्य समुच्छ्रितयशोधरम् ॥ २० ॥ सूतमागधसंस्तावप्रकटद्वारबाहुकम् । अत्यद्भुतयशोराशिं विक्रमाल्लोकमण्डनम् ॥ २१ ॥ चतुर्भुजं बलाक्रान्तं वृष्णियादवसंमतम् । अहोऽद्य भ्रम एवैष दर्शनात्तस्य चक्रिणः ॥ २२ ॥ इदानीं च महाराज भ्रामयत्येव दुर्मतिः । त्वामेव विप्र मन्दात्मन्निन्द्रजालिकता हि या ॥ २३ ॥ चापल्यमिदमेवैतत्तव विप्र भ्रमोद्भवम् ।

हे हंस ! यह बात तो होगई, उन्होंने तुम्हें दण्ड देनेका भी विचार किया था, उस सब वृत्तान्तको आपसे सात्यकि कहेंगे" इस बातको सुन कर हंस क्रोधमें भर कर कहने लगा ॥ १७ ॥ हंसने कहा, कि-अरे ब्राह्मणके बच्चे ! तू यह क्या बात कह रहा है हम त्रिलोकीको जीतनेमें समर्थ हैं, हमारे सामने ऐसी बात कौन कह सकता है ? ॥१८॥ खेलको जाननेवाले श्रीकृष्ण ने मायासे तुझे चक्करमें डाल दिया है, उसको देख कर तुझे बड़ा भारी भ्रम होरहा है १९ शंख चक्र गदा शार्ङ्ग और वनमालासे विभूषित वृष्णिवीर श्रीकृष्णने अपना यश फैला रक्खा है ॥२०॥ सूत और मागधोंकी स्तुतिरूप भुजाओंसे उसने अपना यश फैला रक्खा है; उन अद्भुत यशराशि वाले विक्रमसे संसार को भूषित करने वाले, वृष्णि और यादवोंके माननीय सेनासे घिरे हुए चतुर्भुजको देख कर तुझे भ्रम होगया (क्योंकि-यह सब जादूगरी है) ॥ २१-२२ ॥ हे महाराज ! हे मन्दात्मन् ब्राह्मण ! वह दुर्मति इन्द्रजालसे तुझे चकराता ही रहता है २३

अहो हि खलु सादृश्यं वक्तव्यं भवता मम ॥ २४ ॥ अहमेव त्वया विप्र मर्षये गोदितं वचः । सखिभावाद्द्विजश्रेष्ठ अन्यथा कः सहेदिदम् ॥ २५ ॥ गच्छ मन्दमते विप्र यथेष्टं सांप्रतं तव । द्विज गच्छ यथेष्टं त्वं पृथिवीं पृथिवी तव॥२६॥ जित्वा गोपालदायादं हत्वा यादवकान् बहून् । एष नः प्रथमः कल्पो जेष्याम इति यादवान् ॥ २७ ॥ गच्छ गच्छेति विप्र त्वं धृष्टं परुषवादिनम् । शत्रुपक्षस्तुतिपरं सह युक्त्वा सदा मया ॥ २८ ॥ न मे विप्रवधः कार्यः कष्टादपि हि सर्वतः । इत्युक्त्वा ब्राह्मणं भूयो हंसः सात्यकिमब्रवीत् ॥ २९ ॥ भो भो यादवदायाद किमर्थं प्राप्तवानिह । किमब्रवीन्नन्दसुतः किं वासौ मेऽदिशत्करम्॥३०॥ सात्यकिरुवाच । इदं सत्यं वचो हंस शंखचक्रगदाभृतः । शरै-

---

हे विप्र ! भ्रमके कारण तुम यह चपलता कर रहे हो, कि—तुम मेरी और उनकी समानता करते हो ॥ २४ ॥ हे विप्र ! मैं ही तुम्हारे कहे वचनको सहन कर रहा हूँ (डिंभक सहन नहीं कर सकता) हे द्विजश्रेष्ठ ! मैं भी मित्रभाववश तुमसे कुछ नहीं कहता हूँ, वैसे ऐसी बातको कौन सह सकता है ? ॥२५॥ हे मूढ़बुद्धि ब्राह्मण ! अब तू इच्छानुसार चला जा, हे ब्राह्मण ! तू पृथ्वी पर इच्छानुसार घूम ! सारी पृथ्वी तेरे लिए (पड़ी हुई) है ।२६। इस गोपालके पुत्रको जीत कर और बहुतसे यादवोंको मार कर यादवोंको जीत लेंगे, यह तो हमारी पहिली प्रतिज्ञा है ॥ २७ ॥ हे विप्र ! तू चला जा ! चला जा !! मैं कठोरतासे भाषण करने वाले और शत्रुपक्षकी स्तुतिमें परायण रहने वाले तुझे साथमें रखना नहीं चाहता ॥ २८ ॥ बड़ा भारी कष्ट पड़ने पर भी मैं ब्राह्मणका वध नहीं करूँगा । ब्राह्मणसे इस प्रकार कह कर हंस फिर सात्यकिसे कहने लगा, कि—। २९ । अरे यादवके बच्चे ! तू यहाँ किस लिए आया है, नन्दके लड़केने क्या कहा

र्निशितधाराग्रैः शार्ङ्गमुक्तैः शिलाशितैः ॥ ३१ ॥ दास्यामि कर-सर्वस्वमसिना निशितेन ते । शिरश्छेत्स्यामि ते हंस करदानस्य संग्रहम् ॥ ३२ ॥ आश्चर्यं हि तव मन्दात्मन् किमतोऽपि नृपाधम । देवदेवाज्जगन्नाथात् करमिच्छति यो नृपः ॥३३॥ तस्यैव करसंक्षेपो जिह्वाच्छेदो नराधम । तस्य शार्ङ्गरवं श्रुत्वा शंखस्य च हरेः पुनः ॥ ३४ ॥ को नाम जीवितं काङ्क्षेदिदानीं त्वमद्य मे । गिरीशवरदर्पेण को ब्रूयादीदृशं वचः ॥३५॥ सहाया वय-मेवैते बलभद्रपुरोगमाः । प्रथमो बलभद्रोऽसौ द्वितीयोऽहं च सात्यकिः ॥ ३६ ॥ कृतवर्मा तृतीयस्तु चतुर्थो निशठो बली । पञ्चमोऽत्र च बभ्रुस्तु षष्ठश्चैवोत्कलः स्मृतः ॥ ३७ ॥ सप्तम-स्सारणो धीमानस्त्रशस्त्रविशारदः । अष्टमस्तत्र सारंगो नवमो

है और उसने मुझे बया कर भेजा है ३० सात्यकिने कहा, कि-हे हंस ! शंख चक्र और गदाधारीका यह सत्य वचन है, कि-शार्ङ्ग धनुषसे छोड़े हुए तीक्ष्ण धार वाले और शिला पर तेज किये हुए बाणोंसे और तीक्ष्ण तलवारसे तेरे शिरको काट कर कर दिया जायगा, हे नृपाधम ! हे मन्दात्मन् ! तेरी यह धृष्टता है, कि-तू राजा होकर देवदेव जगन्नाथसे कर माँगता है ॥ ३१ ॥ ३३ ॥ हे नराधम ! हम तुम्हें यही कर देंगे, कि-तेरी जीभ काट ली जावेगी हरिके शार्ङ्ग धनुषके शब्दको और शंखकी ध्वनिको सुन कर कौन पुरुष जीवित रहना चाह सकता है, तू अब डटा रहना, अरे ! शिवजीके वरसे घमण्डमें भर कर भी ऐसी बात कौन कह सकता है ? ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ अरे ! बलभद्र आदि हम भी उनके सहायक हैं, पहिले बलभद्र उनके सहायक हैं, दूसरा सहायक मैं हूँ, तीसरा कृतवर्मा हैं चौथा बल-वान् निशठ है, पाँचवाँ सहायक बभ्रु है और छठा सहायक उत्कल है ॥ ३५-३७ ॥ और सातवाँ अस्त्रशस्त्रविशारद बुद्धि-

विपृथुस्तथा ॥३८॥ दशमश्चोद्धवो धीमान् वयमेते बलान्विताः ।
त एते पुरतो गोप्तुः शंखचक्रगदाभृतः ॥३९॥ देवदेवस्य युद्धेषु
तिष्ठन्त्येव दिवानिशम् । यौ हि वीरौ सुतौ तस्य नासत्यसदृशौ
बले ॥ ४० ॥ तावेव वां क्षमौ युद्धे हन्तुं बलमदान्वितौ । यो
गिरीशो गिरा देवो वरं दत्वा स तिष्ठति ॥ ४१ ॥ युवां हि किं
बलौ युद्धे तिष्ठतः सशरं धनुः । गृहीत्वा शत्रुभिः सार्द्धं युद्धं
कर्तुं समुद्यतौ ॥ ४२ ॥ ईदृशेष्वथ भृत्येषु युद्धं कुर्वत्सु शत्रुभिः ।
त्रैलोक्यं रक्षतस्तस्मात् करमिच्छन् व्रजेत कः ॥४३॥ हनिष्यत्येव
वां युद्धे त्रैलोक्यं यो हि रक्षति । शरेण निशितेनाजौ शार्ङ्गमुक्तेन
केवलम् ॥ ४४ ॥ क्व नः संग्राम इत्येवं पुनराह जगत्पतिः ।
पुष्करे पुण्यदे नित्यमुत गोवर्द्धने गिरौ ॥ ४५ ॥ मथुरायां

मान् तारण है, आठवाँ सारंग है और नौवाँ विपृथु है ॥ ३८ ॥
और दशवें सहायक बुद्धिमान् उद्धव हैं,ये युद्धमें शंख चक्र गदा-
धारी देवके सामने उनकी रक्षा करनेके लिए उनके सामने रात
दिन खड़े रहते हैं, श्रीकृष्णके जो दो वीर पुत्र बलमें अश्विनी-
कुमारोंकी समान हैं, वे ही तुम मदबल युक्त दोनोंको युद्धमें
मार सकते हैं, गिरीश देव तो तुमको वाणीसे वरदान देकर
बैठ गए हैं ॥ ३९–४१ ॥ तुममें क्या बल है जो उनके सामने
धनुष बाण ले खडे होसकोगे,तुम कौनसे बलपर शत्रुओंसे लड़ने
को उद्यत होरहे हो ॥ ४२ ॥ जब उनके ऐसे २ भृत्य शत्रुओंसे
युद्ध कर सकते हैं तब उन त्रिलोकीकी रक्षा करने वालेसे कर
लेनेको कौन जावेगा ४३ वह त्रिलोकीकी रक्षा करनेवाले शार्ङ्ग
धनुषसे बाण छोड़ कर ही तुम दोनोंको मार डालेंगे ॥ ४४ ॥
उन जगत्पतिने फिर यह बात कही है, कि–हमारा तुम्हारा
संग्राम कहाँ होगा, तुम पुण्यप्रद पुष्करमें लड़ोगे अथवा गोव-
र्धनमें लड़ोगे ॥ ४५ ॥ तुम मथुरामें अथवा प्रयागमें मुझे अपनी

मपांगे वा दर्शयन्तो बलानि मे। शंखचक्रधरे देवे जगत्पालन-
तत्परे ॥ ४६ ॥ राजसूयं महायज्ञं कर्त्तुमिच्छति कः स्वयम्।
वदन् वा स्वस्तिमान् मर्त्यस्त्वां विना को व्रजेत् सुखम् ॥४७॥
इदमिच्छसि चेन्मूढ हास्यतां यासि भूतले। इत्युक्त्वा सात्यकि-
र्वीरो हसन्निव भुवि स्थितः ॥ ४८ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसोपाख्याने सात्यकिवाक्यं नामाष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११८ ॥

वैशम्पायन उवाच। ततः क्रुद्धौ महाराज हंसो डिंभक एव
च। इदं वै प्रोचतुर्वाक्यं रोषव्याकुलितेक्षणौ१ दिधक्षन्तौ दिशः
सर्वाः सर्वान् वीक्ष्य नृपोत्तमान्। करेण निष्पीड्य करं स्मरंतौ
तद्वचो महत् ॥ २ ॥ क नु क्व वा नन्दसूनुः क्व वा रामो बलो-
त्कटः। इति ब्रुवाणौ साक्षेपौ सात्यकिं सत्यसंगरम् ॥ ३ ॥

सेनाएँ दिखाओ ! शंख और चक्रको धारण करने वाले देव जगत्‌को रक्षा कर रहे हैं ४६ इस समय राजसूय यज्ञ कौन कर सकता है, और ऐसी बातका मुखसे उच्चारण करके भी तेरे विना और कौन पुरुष सुख पा सकता है ४७ हे मूढ ! यदि तू इस यज्ञको करना चाहेगा, तो पृथ्वीमें तेरी हँसी ही होगी, इस प्रकार कह कर सात्यकि हँसता हुआसा भूमि पर खड़ा होगया ॥ ४८ ॥ एक सौ अठारहवाँ अध्याय समाप्त ॥११८॥

वैशम्पायनजीने कहा, कि—हे महाराज ! उस समय हंस और डिंभक क्रोधमें भरगए और रोषके कारण उनके नेत्र व्याकुल होगए, वह सब दिशाओंको भस्मसा करते हुए सब राजाओंको देखने लगे और श्रीकृष्णके बड़े भारी वचनका स्मरण कर हाथोंसे हाथोंको मसल यह बात कहने लगे, कि—॥ १ ॥ २ ॥ वह नन्दपुत्र कहाँ है? और वह बलोत्कट राम कहाँ है, इसप्रकार आक्षेपके साथ सत्यप्रतिज्ञ सात्यकिसे कह कर वह फिर कहने

अरे यादवदायाद किं ब्रूषे नः पुरो गतः । इतो निर्गच्छ मंदात्मन् दूतस्त्वमसि साम्प्रतम् ॥ ४ ॥ अन्यथा वध्य एव त्वं मत्तपन् परुषं वचः । सत्यं निर्लज्ज एवासि यद्ब्रूया ईदृशं वचः ५ आवामिदं जगत् सर्वं शासितुं संयतौ नृपौ । को नाम मानुषे लोके करदो नैव जीवति ॥६॥ हत्वा गोपालकान् सर्वान् वद्ध्वा यादवकान् बहून् । गृहीणः करसर्वस्वं ततो गच्छ नराधम ॥७॥ अवध्यो दूतता प्राप्तो बह्ववद्धं प्रभाषसे । ईश्वरो नौ वरं दाता ह्यस्त्राणामपि च प्रभुः ॥ ८ ॥ रक्षितारौ महाभूतौ संग्रामं गच्छतोश्च नौ । पितरं याजयिष्यावो जित्वा गोपालकं रणे ॥९॥ एते प्रोक्ता भृशं युद्धे कातराः सर्व एव ते । हत्वा तान् सुबलान् युद्धे पुनर्जेष्यामि केशवम् ॥ १० ॥ संहर्तव्या

लगे, कि-।३। अरे यादवोंके बच्चे ! तू हमारे आगे आकर क्या बक २ कर रहा है, हे मन्दात्मन् ! अब तू यहांसे चला जा ! इस समय तू दूत है ४ अन्यथा ऐसे कठोर वचन कहने पर मैं तुझे मार ही डालता ! तू ऐसी बातें कह रहा है, अतः मतीत है; तू वास्तवमें निर्लज्ज है ५ हम दोनों राजे इस सारे जगत्का शासन करनेके लिए तयार हुए हैं, इस समय ऐसा कौन पुरुष है, जो हमें कर दिये बिना जीवित रह सके ६ हम सब कुत्सित गोपालोंको मारकर और बहुतसे यादवोंको मारकर कर लेलेंगे, इस लिए हे नराधम ! अब तुम भाग जाओ ७ तू दूत होनेसे अवध्य होरहा है, इसीलिए तू बहुतसा असम्बद्ध भाषण कर रहा है, अरे ! हमें तो शिवजीने वर दिया है और उन्होंने ही हमें वर दिया है ॥८॥ जब हम संग्रामको जाते हैं, तब उनके दो महाभूत हमारी रक्षा करते हैं, हम उस क्षुद्र ग्वालेको जीत कर अपने पिताको यज्ञ करावेंगे ९ जिनका तुमने नाम लिया है, वे सब तो युद्धमें कातर हैं; हम उन सबको और उनकी फौजोंको

महासेना प्रगृहीतशरासना । गृहीतमासमुशला गृहीतकवचा सदा ॥ ११ ॥ आरूढरथसाहस्रा गदापरिघसंकुला । सुप्रभूतेन्धनवती प्रभूतबलसाधना ॥ १२ ॥ चाल्यतां वाहिनी घोरा बलाध्यक्षा समन्ततः । अवध्य एव गच्छ त्वं न ते मरणतो भयम् ॥ १३ ॥ संग्रामः पुष्करेऽस्माकं श्वः परश्वोपि वा नृप । ततो ज्ञास्यामहे वीर्यं केशवस्य बलस्य च । ये त्वयोक्ता नृपाः संख्ये तेषामपि च गद्धलम् ॥ १४ ॥ सात्यकिरुवाच । हंसागच्छामि वां हन्तुं श्वः परश्वोपि वा नृप । अद्यैव हि मया वध्यौ न चेद्दूतो भवाम्यहम् ॥ १५ ॥ न हि श्वो वा परश्वो वा युवां कटुकभाषिणौ । दौत्ये हि दुःखमतुलं वहाम्येव सदा

युद्धमें जीत कर फिर केशवको जीतेंगे १० अब तीरन्दाजोंकी बड़ी भारी सेना एकत्रित करनी चाहिये, उसके पास मांस मूसल और कवच होने चाहिये ११ उसमें सहस्रों पुरुष रथों पर चढ़े हुए हों, और वह गदा तथा परिघसे व्याप्त हों, उसमें बहुत सा ईंधन और सेनाकी बहुतसी सामग्री होनी चाहिये १२ (हे मेरे पुरुषों !) तुम ऐसी घोर सेना और सेनासरदारोंका कूँच बोल दो और हे दूत ! तू तो अब चला जा ! अवध्य होनेके कारण तुझे मरणसे भय नहीं है ॥ १३ ॥ हे राजन् ! हमारा कल या परसों केशवके साथ पुष्करमें संग्राम होगा; उस समय हम केशवके और बलदेवजीके वीर्यको देख लेंगे और तूने जिन राजाओंका वर्णन किया है, उनके बलको भी संग्राममें देखलेंगे १४ सात्यकिने कहा, कि—हे राजा हंस ! मैं तुम दोनोंको मारनेके लिए कल या परसों आऊँगा, यदि मैं दूत नहीं होता, तो तुम दोनोंको आज ही मार डालता १५ अब मैं कठोरतासे भाषण करने वाले तुम दोनोंको कल वा परसों देखूँगा; अहो ! मनुष्यों को दूतपनमें बड़ा दुःख सह पड़ता है, इसीलिए मैं दूत दुःख

नृणाम् ॥ १६ ॥ अन्यथाऽहं युवां हत्वा ततो यास्यामि निर्वृतिम् । स्ववीर्यं बाहुदर्पं च दर्शयन् वां नृपाधमौ ॥ १७ ॥ शंखचक्रगदापाणिः शार्ङ्गधन्वा किरीटभृत् । नीलकुञ्चितकेशाढ्यो लम्बबाहुः श्रिया वृतः ॥ १८ ॥ स सर्वलोकप्रभवो विश्वरूपः सुरूपवान् । दैत्यदानवहन्ताऽसौ योगिध्येयः पुरातनः ॥ १९ ॥ पद्मकिञ्जल्कनयनः श्यामलः सिंहविक्रमः । सृष्टिस्थितिलयेष्वेकः कर्ता त्रिजगतो गुरुः ॥ २० ॥ शरेण निशितेनाजौ दर्पं वां व्यपनेष्यति । इत्युक्त्वा रथमारुह्य प्रययौ सात्यकिः किल ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिंभकोपाख्याने एकोनविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११९ ॥

वैशम्पायन उवाच । प्रविश्य स पुरं विष्णोः सात्यकिः शिनिपुङ्गवः । आचचक्षेऽथ कृष्णाय यथा वृत्तं तयोस्तथा ॥ १ ॥ ततः प्रभाते विमले केशवः केशिसूदनः । बलाध्यक्षानुवाचेदं

सह रहा हूँ ॥ १४ ॥ १६ ॥ अन्यथा हे अधम राजाओं ! मैं अपने भुजबल और वीर्यको दिखा, तुम दोनोंको आज ही मार कर प्रसन्न होजाता १७ परन्तु अहो ! हाथमें शंख चक्र और गदाको धारण करने वाले और शार्ङ्ग धनुषको धारण करने वाले किरीटधारी जिनके बहुतसे नीले घुँघराले केश हैं वह श्यामल सिंहविक्रम, सृष्टि स्थिति तथा प्रलयमें भी एक, कर्ता और तीनों जगत्के गुरु केशव तीक्ष्ण बाणसे रणमें तुम्हारे गर्वको दूर कर देंगे, सात्यकि इसप्रकार कह रथ पर चढ़कर चलागया १८।२१

एक सौ उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ११९ ॥

वैशम्पायनजीने कहा, कि–शिनिपुंगव सात्यकिने विष्णुके नगरमें प्रवेश करके कृष्णसे उन दोनोंके व्यवहारका वर्णन किया । १ । तब प्रातःकालके समय केशी दानवका नाश करने वाले केशवने सेनापतियोंसे कहा, कि—अब बहुतसी भेरी

चक्रपाणिर्गदाधरः ॥ २ ॥ संनह्यतां बलं सर्वं रथकुञ्जरवाजिमत् । अनेकभेरीपणवं प्रासासिपरिघाकुलम् ॥ ३ ॥ सध्वजं सपताकं च सालंकारपरिच्छदम् । ते तथेति प्रतिज्ञाय सर्वं चक्रुरधीनगाः ॥ ४ ॥ आदाय सुदृढं चापं रथमारुह्य दंशिताः । अग्रतो जग्मुरत्यर्थं सेनायाः पुरुषोत्तमाः ॥ ५ ॥ सात्यकिश्च तथा राजन् प्रगृहीतशरासनः । बभौ क्रोधसमायुक्तो जगामाग्रे महाबलः ॥ ६ ॥ अन्ये च यादवा शूराः प्रगृहीतमहायुधाः । सिंहनादं प्रकुर्वन्तो जग्मुरत्यर्थमुत्तमाः ॥ ७ ॥ हरिस्तु रथमारुह्य संस्कृतं दारुकेण ह । शार्ङ्गभारसहं घोरं गृहीत्वा सशरं धनुः ८ चक्रपाणिस्तदा शंखी गदाशरवरासिमान् । बद्धगोधांगुलित्राणः पीतवासा जनार्दनः॥९॥पद्ममालावृतोरस्को।नवजीमूतसन्निभः। ययौ रथगतो विप्रैः स्तूयमानो मुदान्वितैः १० सूतैर्मागधपुत्रैश्च

पणव प्रास तलवार और परिघोंसे गच्छी हुई पताका ध्वजा और अलंकारसे विभूषित रथ हाथी और घोड़ोंकी सब सेनाको तयार करो,तब अधीनस्थ पुरुष तथास्तु कह कर तैसा ही करने लगे ॥ २-४ ॥ तदनन्तर वे पुरुषोत्तम कवच पहन दृढ धनुषों को ले सेनाके आगे वेगसे चलने लगे ५ हे राजन् ! उस समय महाबली सात्यकि भी हाथमें धनुषले सेनाके आगे जाकर खड़ा होगया और क्रोधके कारण शोभा पाने लगा । ६ । दूसरे शूर यादव भी बड़े २ आयुधोंको ले सिंहनाद करते हुए वेगसे चलने लगे । ७ । तदनन्तर हरि भी बाण और धनुषको धारण करके शार्ङ्ग धनुषके भारको सहन करने वाले दारुकके ठीक किये हुए भयंकर रथ पर बैठ गए ॥८॥ नवीन मेघकी समान वर्ण वाले, कमलोंकी मालासे घिरे हुए वक्षःस्थल वाले पीतवस्त्रधारी जनार्दन हाथमें गोहके दस्तानेके मौजे पहन जब रथमें बैठ च दिये, तब ब्राह्मण हर्षमें भर कर उनकी स्तुति करने लगे

गीयमानस्ततस्ततः । आनीय सेनां सकलां ययौ काष्ठामथो-
त्तराम् ॥ ११ ॥ पांचजन्यं मुखेन्यस्य सर्वप्राणेन केशवः ।
दध्मौ महारवं कुर्वञ्छत्रूणां भयवर्द्धनम् ॥ १२ ॥ आध्मातस्तेन
हरिणा स चक्रे शंखराट् ध्रुवम् । स्वनः स रोदसी राजन् पूरया-
मास सर्वतः ॥ १३ ॥ तस्मिञ्छंखे तथाध्माते दध्मुः शंखान्
सहस्रशः । भेर्यश्चापि समाध्माता मृदङ्गा बहवो नृप ॥ १४ ॥
नेदुस्त्वर्थमतुलं घर्मान्ते जलदा यथा । अथाययुर्महाराज पुष्करं
पुण्यवर्धनम् ॥ १५ ॥ सरसस्तस्य राजेन्द्र पुष्करस्य नृपोत्तमाः।
प्रतीक्ष्य हंसडिम्भकौ युद्धाय समवस्थिताः ॥ १६ ॥ निवेशं कार-
यामासुर्यादवाः सर्व एव हि । स्वं स्वं ययुः सुखं राजन् प्रगृहीत-
कुटीमठम् ॥ १७ ॥ भगवानपि गोविन्दः सरो दृष्ट्वा सुशोभनम् ।

सूत और मागध इधर उधर उनकी कीर्त्तिका गान करने लगे, उस समय केशव सब सेनाको लेकर उत्तर दिशाकी ओर चल दिये ११ फिर केशव प्राणोंका पूर्ण बल लगा कर शत्रुओंके भयको बढाने वाले महाशब्द करने वाले पाञ्चजन्य शंखको मुखपर रख कर बजाने लगे १२ हरिके बजाने पर वह शंखराज ऐसा शब्द करने लगा, कि—उससे आकाश और पृथ्वी भर गए १३ हे राजन् ! उस शंखके इस प्रकार बजने पर तहाँ हजारों भेरियें और मृदंग बजने लगे ॥१४॥ बहुतसे मृदंग इस प्रकार बजने लगे, कि मानो वर्षा ऋतुके बादल गरज रहे हैं, हे राजन् ! तदनन्तर वह श्रेष्ठ राजे पुण्यवर्धन पुष्कर सरोवर पर पहुँच गए और हे महाराज ! हंस और डिंभककी प्रतीक्षामें युद्ध करनेके लिए खडे होगए । १५ । १६ । फिर सब यादवोंने तहाँ छावनी डाल दी, हे राजन् ! तदनन्तर सब यादव अपने २ मनोनीत कुटीमठोंमें सुखपूर्वक बैठ गए १७ भगवान् गोविन्दने भी उस शोभन सरोवरको देख जलका आचमन करके यतियों

उपस्पृश्य जले तस्मिन् प्रणम्य यतिपुङ्गवान् ॥ १८ ॥ तयोरागमनं लिप्सुरास्ते तीरे यथासुखम् । शृण्वन् वेदध्वनिं विष्णुर्ब्राह्मणानां समन्ततः ॥ १९ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिंभकोपाख्याने कृष्णपुष्करप्रवेशो नाम विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥

वैशम्पायन उवाच । अथ तौ हंसडिंभकौ जग्मतुः पुष्करं प्रति । प्रगृहीतमहाचापौ सरथौ सध्वजौ नृप ॥ १ ॥ पुरः सरमहाभूतौ संहरताविवोल्बणौ । प्रकुर्वन्तौ सिंहरवं भस्मना परिलेपिनौ ॥ २ ॥ त्रिपुण्ड्रकललाटान्तौ रुद्राक्षपरिशोभितौ । अन्यौ द्वाविव रुद्रौ तौ लोकसंहारकारकौ ॥ ३ ॥ ततोऽनुजग्मुः शतशः सैन्यानि नृपसत्तम । अक्षौहिण्यो दशैवास्तयोरथ समागताः॥४ विचक्रस्तु महाराज दानवो नगसन्निभः । तयोरेव सखा पूर्वमासीच्च बलशालिनोः ॥५॥ शक्रो यस्य पुरःसरः स्थातुं शक्तो

को प्रणाम किया ।१८। और उनके आगमनकी प्रतीक्षामें उस सरोवरके किनारे सुखपूर्वक बैठ कर ब्राह्मणोंकी वेदध्वनिको सुनने लगे ॥ १९ ॥ एकसौ बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १२० ॥

वैशम्पायनजीने कहा, कि हे राजन् ! तदनन्तर हंस और डिंभक ध्वजा वाले रथोंमें बैठ बड़े २ चापोंको लेकर पुष्कर सरोवरकी ओर चल दिये । वे उत्कट पुरुष मानो अपने सामने के व्यक्तियोंको मार डालेंगे इस प्रकार सिंहनाद करते हुए चल दिये, उस समय उनके शरीर पर भस्म लग रही थी, ललाट पर त्रिपुण्ड्र लग रहा था और वे रुद्राक्षसे शोभा पाकर लोक संहारकारक दो रुद्रोंकी समान प्रतीत होते थे ॥ १–३ ॥ हे नृपसत्तम ! तदनन्तर सैंकड़ों सेनाएँ उनके पीछे चलने लगीं; उनके पीछे दश अक्षौहिणी सेनाएँ (पुष्करमें) आईं थीं ४ हे महाराज ! विचक्र नामका पर्वतकी समान दानव उन दोनोंका मित्र

न वज्रभृत् । यो हि वीरो महाराज देवदैत्यसमागमे ॥ ६ ॥
देवान् निघ्नंस्तथा राजन् देवेन्द्रमजयन्महान् । अकरोच्च पुरा
युद्धं विष्णुना प्रभविष्णुना ॥७॥ यो हि द्वारवतीं प्राप्य बबाधे
यदुपुङ्गवान् । स तदानीं महाराज श्रुत्वा युद्धमुपस्थितम् ॥ ८ ॥
अनेकशतसाहस्रैः दानवैः परिघायुधैः । वृतः समभवद्द्वेषो
वृष्णिद्वेषान्नृपोत्तम ॥९ ॥ हंसस्य डिम्भकस्याथ साहाय्यं कर्तु-
मुद्यतः । विचक्रस्याथ दैत्यस्य हिडिम्बो राक्षसेश्वरः ॥ १० ॥
अतीव मित्रतां यातो दद्यात् प्राणानिव संयति। राक्षसैरपरैः सार्धं
शिलाशूलासिपाणिभिः ॥ ११ ॥ ययौ तस्य सहायार्थं हिडिंबः
पुरुषादपः । अष्टाशीतिसहस्राणि राक्षसास्तस्य चाभवन्॥१२॥
अनुयाता महाराज शिलापरिघबाहवः । तयोस्तत्र महासैन्यं

थाप्र वज्रधारी इन्द्र भी उसके सामने खड़ा नहीं हो सकता था, हे महाराज ! दैत्य दानवोंका समागम होने पर उस बड़े भारी दानवने देवताओंको मारकर देवेन्द्रको जीतलिया था तथा उसने पहिले प्रभाववान् विष्णुके साथ भी युद्ध किया था । ६ । ७ । और उसने द्वारकापुरी पर चढ़ाई करके श्रेष्ठ २ यादवोंको भी पीडित किया था, हे महाराज ! उसने जब सुना, कि—बड़ा भारी युद्ध होने वाला है ८ हे नृपोत्तम ! उस समय उसने वृष्णियोंसे द्वेष रखनेके कारण परिघका आयुध धारण करने वाले हजारों दानवोंको बुला लिया ९ इसी समय राक्षसेश्वर हिडिम्ब हंस डिम्भक और विचक्र दानवकी सहायता करनेको उद्यत हो गया१०वह उनका बड़ा मित्र था और उनके लिए अपने प्राण भी देसकता था,पुरुषोंका भक्षण करनेवालोंकी सहायता करनेवाला हिडिम्ब शिला शूल और तलवारको हाथमें थामने वाले राक्षसों को साथमें लेकर चलदिया,उसके पास अट्ठासी सहस्र राक्षस थे हे महाराज ! वे शिला और परिघोंको हाथमें लेकर उसके पीछे

गच्छतो: केशवं प्रति ॥ १३ ॥ मिश्रितं दैत्यसंघैश्च राक्षसैश्च समंततः ।
अत्यद्भुतं महारौद्रं त्रैलोक्यभयदायकम् ॥ १४ ॥ दैत्येन सहितौ
तौ हि जग्मतुः पुष्करं प्रति । तावेतौ हंसडिम्भकौ हन्तुं केशव-
मञ्जसा ॥ १५ ॥ ततः श्रुत्वा जरासन्धो विग्रहं यदुभिः सह ।
नाकरोन्नृप साहाय्यं पापं मे भवितेति ह ॥ १६ ॥ गच्छतोः समिति
राजन् हंसस्य डिंभकस्य च । अतित्वरितविक्रान्तास्ते ययुः
पुष्करं प्रति ॥ १७ ॥ सिंहनादं विमुञ्चन्तः कथयन्तः परस्परम् ।
अहमेव नृपा युद्धं करोमि प्रथमं हरेः ॥ १८ ॥ इत्यब्रुवन् नृपा
राजन्छतशः केशवं प्रति । सम्प्राप्तास्ते नृपश्रेष्ठाः पुष्करं पुण्य-
वर्द्धनम् ॥ १९ ॥ मुनिजुष्टं तपोवृद्धैर्ऋषिभिश्च निषेवितम् ।
अत्यन्तभद्रं लोकेषु पुष्करं प्रथमं नृप ॥ २० ॥ पुष्करं पुण्ड
रीकाक्षो द्वावेव जगतीपते । दर्शनात् स्पर्शनाच्चैव किल्विषच्छे-

चल रहे थे, जब वे केशवकी ओर जा रहे थे, उस समय दानव और राक्षसोंसे मिश्रित उनकी महाअद्भुत रौद्र सेना त्रिलोकीको भी भयभीत कर रही थी ॥ ११-१४ ॥ वे हंस और डिंभक दानवों को साथमें लेकर केशवको मारनेके लिए चल दिये ॥ १५ ॥ उस समय जरासन्धने भी यादवोंके साथ लड़ने की बात सुनी, परन्तु हे राजन्! उसने इसमें पाप जान कर उनकी सहायता नहीं की ॥ १६ ॥ हंस और डिंभकके जमघटमें मिल कर वे फुर्तीसे पैर रख कर पुष्करकी ओर चल दिये १७ वे सिंहनाद करके परस्पर कहने लगते थे, कि—हे राजाओं! मैं ही पहिले हरिके साथ युद्ध करूँगा १८ हे राजन्! इस प्रकार बात चीत करते २ पुण्यवर्धन पुष्करमें केशवके समीप पहुँच गए १९ हे राजन्! पुष्कर पर पहिलेसे ही तपोवृद्ध ऋषि रहा करते हैं मुनि उसकी सेवा करते रहते हैं और वह लोकोंमें अत्यंत कल्याणकारी माना जाता है २० हे पृथ्वीपति राजन्! पुष्कर

दिनौ नृप ॥ २१ ॥ पुष्करं पुण्डरीकाक्षौ द्वावेव नृपसत्तम । सेव्यमानौ मुनिश्रेष्ठैरमरैर्धर्महात्मभिः ॥ २२ ॥ द्वावेव हि नृपश्रेष्ठ सर्वपापप्रणाशकौ । तावुभौ यत्र सहितौ तत्र ते संस्थिता नृपाः ॥२३॥ दृष्टवन्तो हरिं विष्णुं विष्टरश्रवसं परम् । पुष्करं पुण्यनिलयं तीर्थं ब्रह्मनिषेवितम् ॥२४॥ ताभ्यां कुरु नमस्कारं मनसा नृपसत्तम । अहो निःशेषमभवत्तत्र भूयो न संशयः २५ सैन्यं तत्र च सम्प्राप्तं दैत्यरक्षःसमाकुलम् । अनेकभेरीपणवझर्झरीडिण्डिमाकुलम् ॥ २६ ॥ नानापणवसंमिश्रं रक्षोनादविनादितम् । प्रविश्य सरसस्तीरं पुष्करस्य विशाम्पते । दर्शयामास देवेशं युद्धाय समुपस्थितम् ॥ २७ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिंभकोपाख्याने एकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२१ ॥

और पुण्डरीकाक्ष ये दो ही दर्शन करनेसे और स्पर्श करनेसे पापको नष्ट कर देते हैं ।२१। हे नृपसत्तम ! पुष्कर और पुण्डरीकाक्ष इन दोनोंकी ही श्रेष्ठ मुनि और महात्मा देवताओंके झुण्ड सेवा करते हैं २२ हे नृपश्रेष्ठ ! ये दो ही सब,पापोंका नाश करने वाले हैं, वे दोनों जहाँ पर एकत्रित थे, तहाँ जाकर वे राजे खडे होगए २३ तहाँ पर उन्होंने हरि विष्णु विष्टरश्रवको देखा और ब्राह्मणोंसे सेवित पुण्यस्थान पुष्कर तीर्थको भी देखा २४ हे नृपसत्तम ! तुम भी मनमें उन दोनोंको प्रणाम करो, (उनको प्रणाम करनेसे तुम्हारे सब पाप) नष्ट होजावेंगे ।२५। दानव और राक्षसोंसे घिरी हुई, बहुतसे भेरी पणव झाँझ और डिण्डिमोंसे व्याप्त और पणवसे मिश्रित तथा राक्षसोंके नादसे गुञ्जारतीहुई सेनाने तहाँ पुष्करसरोवरमें प्रवेश करके देवेशको युद्ध करनेके लिए डटे हुए देखा । २६ । २७ । एकसौ इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १२१ ॥ छ छ छ

वैशम्पायन उवाच । द्वे सेने संगते राजन् सध्वजे सपरिच्छदे । महापरिघसंकीर्णे गदाशक्तिसमाकुले ॥१॥ भेरीझर्झरसम्पूर्णे डिण्डिमारावसंकुले । प्रगृहीतमहाशस्त्रे शूलासिवरकार्मुके ॥ २ ॥ परस्परकृतोत्साहे चक्राते युद्धमुल्बणम् । ते शराः कार्मुकोत्सृष्टा निर्भिद्याथ शरीरिणाम् ॥ ३ ॥ शरीराणि महाराज जग्मुर्दूरं सहस्रशः । भटबाहुविनिर्मुक्ताः खड्गा निर्भिद्य वक्षसि ॥ ४ ॥ स्फुरन्तश्च तथा राजञ्छिरांस्याहृत्य खं ययुः । परिघाश्च तथा राज्ञां बाहुभिः परिचोदिताः ॥ ५ ॥ तिलशश्चक्रुरतुलं शरीरं नृपरक्षसाम् । दैत्यानां कुर्वतां नादमन्योन्यवधकाङ्क्षिणाम् ॥ ६ ॥ दैत्या रक्षांसि राजेन्द्र राजानश्च समंततः । अन्योन्यं परिघैर्जघ्नुश्चापमुक्तैः शिलाशितैः ॥ ७ ॥ शरैश्च

वैशम्पायनजीने कहा, कि हे राजन् ! तब ध्वजा परिच्छद बड़े २ परिघ गदा और शक्तिसे भरी हुई, भेरी और झर्झर से पूर्ण और डिण्डिमकी ध्वनिसे आकुल, बड़े २ शस्त्रोंको पकड़ने वाली बढ़िया शूल तलवार और धनुष वालीं वे दोनों सेनाएँ उत्साहमें भरकर परस्पर विकट युद्ध करनेलगीं, हे राजन् ! धनुषसे छूटेहुए सहस्रों बाण प्राणियोंके शरीरोंको फोड़कर दूर जापड़ते थे, इसी प्रकार भटोंकी भुजाओंसे फेंकी हुई तलवारें हृदयको फाड़ कर तथा शिरोंको काट कर आकाशमेंको उछल जाती थीं, इसी प्रकार राजाओंकी भुजाओंसे मारे हुए परिघ,परस्परका वध चाह कर नाद करते हुए दैत्योंके राजाओंके और राक्षसोंके शरीरके तिल २ की समान धुर्रे बखेरने लगे ॥ १–६ ॥ हे राजेन्द्र ! दैत्य राक्षस और राजे परिघ मार कर परस्पर प्रहार करने लगे और मदमत्त हाथीकी समान पराक्रम करने वाले दूसरे महाबली राक्षस और दानव सर्पके शरीर की समान आकृतिवाले,शिलापर तेज किये हुए बाणोंको धनुषों

भोगिभोगाभैस्तीक्ष्णैरन्ये महाबलाः । राक्षसा दानवाश्चान्ये मत्तमातंगविक्रमाः ॥ ८ ॥ अन्योऽन्यं जघ्निरे राजंश्चापमुक्तैर्महाशरैः । नागा नागैर्महाराज हया अश्वैः समन्ततः ॥ ९ ॥ रथा रथैः समाजग्मुः सादिनः सादिभिस्तथा । पट्टिशासिशरप्रासैः कुन्तैः सायककर्षणैः ॥ १० ॥ सशक्तिपरिघप्रासपरश्वधसमाकुलैः । भिण्डिपालैर्महारौद्रैर्जघ्नुरन्योन्यमाहवे ॥ ११ ॥ अन्योन्यं जघ्निरे राजंश्चापमुक्तैः शिलाशितैः । राक्षसा दानवा राजन् क्षत्रियाश्च समन्ततः । इतश्चेतश्च धावन्तः कुर्वन्तो विस्वरं रवम् ॥ १२ ॥ हताः केचिन्महाराज पेतुरुर्व्यां महासिभिः । केचिन्मथितमस्तिष्का गदाभिर्वीर्यवत्तमाः ॥ १३ ॥ भिन्नग्रीवा महाराज परिघैः परिघायुधैः । यमराष्ट्रं गताः केचित् केचित् स्वर्गं समाययुः ॥ १४ ॥ अप्सरोभिः समासेदुः पश्यन्तः स्व-

से छोड़कर परस्पर प्रहार करने लगे, हे महाराज ! उस समयमें हाथीसवार हाथीसवारोंसे डट गए, घुड़सवार घुड़सवारोंसे अड़ गए रथी रथियोंसे भिड़ गए और पैदल पैदलोंसे मुचेटा लेने लगे, वे पटे तलवार बाण कुन्त सायककर्षण (धनुष) शक्ति परिघ प्रास परश्वध और भिन्दिपालोंसे परस्पर संहार करने लगे ॥ ७-११ ॥ हे राजन् ! राक्षस दानव और क्षत्रिय शिला पर घिस कर तेज किए हुए बाणोंको धनुषसे छोड़कर परस्पर संहार करने लगे और इधर उधर दौड़ते हुए डकराने लगे ॥ १२ ॥ हे महाराज ! कुछ पुरुष बड़ी २ तलवारोंसे कट कर पृथ्वी पर गिरने लगे और कुछ बलवान् पुरुषोंके मस्तक गदासे कुचल गये ॥ १३ हे राजन् ! परिघका आयुध धारण करने वाले योधाओंने परिघोंसे बहुतसे योधाओंकी गरदनोंको तोड़ डाला, उस समय कुछ पुरुष यमसदनको पधार गए और कुछ स्वर्गको सिधार गए ॥ १४ ॥ और अपने शरीरको देखते हुए

कलेवरम् । केचित् स्वांश्च परांश्चैव हत्वा भ्रान्ता इवाभवन् १५
एतस्मिन्नन्तरे राजन् शंखाः भेर्यः सहस्रशः । सस्वनुः सर्वतः
सैन्ये मृदङ्गाः बहवस्तथा ॥ १६ ॥ मध्यन्दिनगते सूर्ये तापं
दधति घोरवत् । ततः पिशाचाः विकृताः करालवितितोदराः१७
राक्षसाश्च महाघोराः पिशितं केशशाड्वलम् । मुदिता भक्षया-
मासुः पिबन्तः शोणितं बहु ॥ १८ ॥ संचितानि शवान्यासन्
कबन्धाः खड्गपातिताः । विभज्य देशं बहुशो युद्धभूमौ शवा-
शिनः ॥ १९ ॥ अथ श्येना मृगाश्चैव कंका गृध्रास्तथाऽपरे ।
तुण्डैः शवान् विनिष्कृष्य भक्षयन्ति ततस्ततः ॥ २० ॥ सप्ता-
शीतिसहस्राणि हता नागा नृपोत्तम । त्रिंशत्सहस्रमयुतं निहता
हयसत्तमाः ॥ २१ ॥ हतं लक्षं महाराज रथानां रथिभिः सह ।
त्रिंशत्कोट्यो हतास्तत्र सादिनः सायुधा भृशम् ॥२२॥ मध्यं-

अप्सराओंके साथ चले गए, और कुछ योधा भ्रान्तसे होकर
अपने और पराये योधाओंको मारने लगे ॥ १५ ॥ हे राजन् !
इसी समय सेनामें चारों ओरसे हजारों शंख भेरी और बहुत
से मृदङ्ग बजनेलगे ॥१६॥ जब सूर्य दुपहरियामें पहुँचकर भयंकर
होगया, तब कराल और फैले हुए उदर वाले विकृत पिशाच
और महाभयंकर राक्षस प्रसन्न होकर रक्तपान करने लगे और
केशोंसे भरे हुए मांसको खाने लगे । १८ । जब शवोंका ढेर
लग गया, तब खड्गसे गिराये हुए कबंध उठ कर युद्ध
भूमिमें शवोंका भक्षण करने लगे । १९ । और श्येन गृध्र कंक
तथा गृध चोंचोंसे ल्हासोंको खींच २ कर खाने लगे । २० । हे
नृपोत्तम ! उस समय सतासी हजार हाथी मारे गए और एक
लाख तीस हजार श्रेष्ठ २ घोड़े मारे गये । २१ । और हे महा-
राज ! एक लाख रथी तहाँ पर रथियोंके साथ लड़ कर मारे
गए, और आयुध धारी तीस करोड सवार मारे गए २२ जब

दिनगते सूर्ये हताः केचन निर्गताः । केचिच्च तृषिता राजन् विविशुः पुष्करं सरः ॥ २३ ॥ केचिद्भूमिं समालिङ्ग्य भीता इत्यब्रुवन् रणे । मुक्तकेशाः पतन्ति स्म रथान् संत्यज्य केचन २४ संदष्टोष्ठपुटाः केचित् सादिनः पुरतो हताः । अत्यद्भुतं महायुद्धमासीत् पुष्करतीर्थके। यथा देवासुरं युद्धमासीत् पूर्वं नृपोत्तम २५

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिंभको-पाख्याने द्वाविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२२ ॥

वैशम्पायन उवाच । एतस्मिन्नन्तरे राजन् द्वन्द्वयुद्धमवर्तत । विचक्रं योधयामास शार्ङ्गधन्वा गदाधरः ॥ १ ॥ बलभद्रोथ हंसेन डिंभकेन च सात्यकिः । वसुदेवोग्रसेनाभ्यां हिडिंबः पुरुषादकः ॥ २ ॥ शेषाश्च शेषै राजेन्द्र चक्रुर्युद्धमदीनगाः । वासुदेवस्त्रिसप्तत्या दैत्यं वक्षस्यताडयत् ॥ ३ ॥ शरैर्निशितधाराग्रै-

मध्य दिनका सूर्य होगया उस समय बहुतसे योधा मारे गए और बहुतसे पिआसे योधा युद्धमेंसे निकल कर पुष्करसरोवर की ओरको दौडे २३ कोई पृथ्वीसे चिपट कर कहने लगे, कि-हम डर गए हैं और कुछ रथोंपरसे गिरपडे और उनके बाल बिखर गए २४ और कोई योधा होठोंको (दांतों से) दबा रहे थे, कि-सामनेके सवारोंने उनको मार डाला, हे राजसत्तम! इस प्रकार पुष्कर तीर्थमें देवासुर युद्धकी समान घोर संग्राम हुआ था २५ एक सौ बाईसवाँ अध्याय समाप्त। १२२ ।

वैशम्पायनजीने कहा, कि-इसी समय द्वन्द्वयुद्ध होने लगा, गदाधारी शार्ङ्ग धनुषवाले श्रीकृष्ण विचक्रसे युद्ध करनेलगे, बलभद्र हंससे भिड़गए और सात्यकि डिंभकके सामने जा डटा और वसुदेव तथा उग्रसेन पुरुषभक्षी हिडिम्बसे भिड़ गए १-२ हे राजेन्द्र ! शेष अदीनगामी पुरुष शेष व्यक्तियोंसे लड़ने लगे, उस समय वासुदेवने दैत्यकी छातीमें तिहत्तर बाण मारे ३ इस

विस्मयं दर्शयन् रणे । दानवो देवदेवेशं हृत्वेन निशितेन च ४
शरेणाकर्णमाकृष्य धनुः-प्रवरमीश्वरम् । जघान स्तनमध्ये च
पश्यतस्तु शचीपतेः ॥५॥ तेन विद्धोथ भगवान् वक्षोदेशे जना-
र्दनः । अवमच्छोणितं विष्णुरादिकाले यथा प्रजाः ॥ ६ ॥ ततः
क्रुद्धो हृषीकेशः क्षुरमेणाहनद्ध्वजम् । अश्वांश्च चतुरो हत्वा
सारथिं च शरैस्त्रिभिः ॥ ७ ॥ ततो दध्मौ महाशंखं यथा तारा-
मये रणे । रथादुत्प्लुत्य सहसा दानवः क्रोधमूर्च्छितः ॥ ८ ॥
गदां गृह्य महाघोरां दुःसहां वीर्यशालिनीम् । तया जघान
दैत्येन्द्रः किरीटे केशवस्य ह ॥९॥ ललाटे च पुनर्विष्णुं सिंह-
नादं व्यनीनदत् । ततः शिलां च महतीं प्रगृह्य दनुजः किल१०
भ्रामयित्वा दशगुणं प्राहरत् केशवोरसि । तामापतन्तीं संप्रेक्ष्य
हस्तेनादाय केशवः ॥ ११ ॥ जघान च तया दैत्यं स पपाता-

प्रकार तीखी धार वाले बाण छोड़कर युद्धमें विस्मय फैला दिया
इसी समय दानवने धनुषको कानतक खेंचकर देवेशके वक्षःस्थल
में प्रहार किया । ।४ ॥ ५ ॥ उस बाणसे हृदयके घायल होनेपर
जनार्दन विष्णुने सृष्टिके समय रक्त ओकने वाली प्रजाकी
समान रक्त ओकना आरम्भ कर दिया ॥ ६ ॥ तब तो हरिने
क्रोधमें भर कर क्षुरप्र नामक बाणसे उसकी ध्वजाको काट डाला
फिर तीन बाणोंसे चारों घोड़ोंको और सारथिको मार डाला७
फिर उन्होंने महाशंखको बजाया, तब क्रोधसे मूर्छित दानव
तारामय संग्रामकी समान रणमें रथसे कूद पड़ा ॥ ८ ॥ और
उस दैत्येन्द्रने महाघोर दुःसह वीर्यशालिनी गदाको केशवके
किरीट पर मारा ॥ ९ ॥ फिर विष्णुके ललाटमें गदा मार कर
सिंहकी समान दहाड़ने लगा फिर उस दानवने बड़ी भारी
शिला उठाली और उसको दश बार घुमा कर केशवके वक्षः-
स्थल पर फेंका, केशवने उसको आती हुई देख कर अपने हाथ

दितः क्षितौ । गतासुरिव संगङ्गे श्वसन्निव पपात ह ॥ १२ ॥ प्राप्य संज्ञां ततो दैत्यः क्रोधाद्द्विगुणमावभौ । आदाय परिघं घोरमिदमाह जनार्दनम् ॥ १३ ॥ अनेन तव गोविन्द दर्पजातं निहन्म्यहम् । विक्रमज्ञस्तदा चासि मम देवासुरे रणे ॥ १४ ॥ तावेव विपुलौ बाहू स एवास्मि जनार्दन । तथापि युध्यसे वीर ज्ञात्वा त्वं मामकं बलम् ॥ १५ ॥ वारयैनं महाबाहो परिघं बाहुनिःसृतम् । इत्युक्त्वा देवदेवेशं शंखचक्रगदाधरम् । चिक्षेप दैत्यो लोकेशं सर्वलोकस्य पश्यतः ॥ १६ ॥ तं गृह्य बाहुना कृष्णो हतोऽसीति वदन् हरिः । खण्डशः कारयामास खड्गेन निशितेन ह ॥ १७ ॥ उत्पाट्य वृक्षं दैत्येशः शतशाखं महाशिखम् । तेन संपोथयामास विष्टरश्रवसं विभुम् ॥१८॥ छित्वा

से पकड़ लिया ॥ १० ॥ ११ ॥ और उससे दैत्यको ही मारा, तब वह पीड़ित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा और गिर कर मरनहारकी समान श्वास लेने लगा ॥ १२ ॥ होश आने पर दानव क्रोधसे दुगना तमतमाने लगा और भयंकर परिघको ले जनार्दनसे यह बात कहने लगा, कि–॥ १३ ॥ हे गोविन्द ! मैं इससे तेरे घमण्डको उतार दूँगा, तुम मेरे विक्रमको देवासुरसंग्राममें देख ही चुके हो ॥ १४ ॥ हे जनार्दन ! ये दोनों मेरी भुजाएँ वही हैं, और मैं भी वही हूँ, हे वीर ! तुम मेरे बलको जान कर भी मुझसे लड़ रहे हो १५ हे महाभुज ! अब मेरे हाथोंसे फेंके हुए इस परिघको रोकिए, लोकके स्वामी शंखचक्रधारी देवदेवेश श्रीकृष्णसे इस प्रकार कहकर सब लोकोंके सामने श्रीकृष्ण पर परिघ फेंका १६ "अरे ! मार लिया" कह कर श्रीकृष्णने उस को भुजासे पकड़ लिया और तलवारसे उसके तिलकी समान टुकडे कर डाले १७ दैत्येश सैंकड़ों गुद्दे वाले और बड़ी चोटी वाले वृक्षको उखाड़ कर विष्टरश्रव प्रभु श्रीकृष्णको पीड़ित करने

तं चापि खड्गेन तिलशश्च चकार ह। विक्रीड्य सुचिरं विष्णु-
स्तेन दैत्येन माधवः ॥१९॥ हन्तुमैच्छत्तदा दैत्यमादाय निशितं
शरम्। आग्नेयास्त्रेण संयोज्य जघानैनं महान् हरिः ॥ २० ॥
संदह्य स शरो दैत्यं सर्वलोकस्य पश्यतः। यथापूर्वं जगामाशु
करं भगवतः पुनः ॥ २१ ॥ हतशिष्टास्ततो दैत्याः पलायन्तो
दिशो दश। अद्यापि न निवर्त्तन्ते गच्छन्तो वै महोदधिम् २२
इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसोपाख्याने
कृष्णस्योत्कर्षवर्णनंनाम त्रयोविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥१२३॥

वैशम्पायन उवाच। बलदेवस्तु धर्मात्मा धनुरादाय सत्वरम्।
जघान हंसं दशभिर्बाणैर्बाणभृतां वरः ॥ १ ॥ तं प्रत्यविध्य-
न्नाराचैर्हंसः पञ्चभिराशुगैः। तानन्तरे हली छित्वा नाराचै-
र्दशभिः पुनः ॥ २ ॥ नाराचेनाशु विव्याध ललाटे हंसमोजसा।

लगा १८ माधवने खड्गसे उसके भी तिल २ की समान टुकड़े
कर डाले, इसप्रकार माधव कृष्णने उस दानवके साथ बहुत
समयतक क्रीड़ा करके उसके मारनेका विचार किया और तीक्ष्ण
बाणको आग्नेयास्त्रसे संयुक्त करके दानवके ऊपर बाण
मारा ॥ १९ ॥ २० ॥ वह बाण सब लोकोंके देखते २ उस
दानवको भस्म करके फिर भगवान्के हाथमें आगया ॥२०॥ तब
मरनेसे बचे हुए दानव दशों दिशाओंमेंको भागने लगे, उस
समय जो दानव समुद्रकी ओर भागे थे, वे आज तक नहीं
लौटे ॥ २२ ॥ एक सौ तेईसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १२३ ॥ छ

वैशम्पायनजीने कहा, कि-इसी समय बाणधारियोंमें श्रेष्ठ
धर्मात्मा बलदेवने शीघ्रतासे धनुष उठा दश बाणोंसे हंसको
घायल कर डाला ॥ १ ॥ तब हंस फुर्तीसे जाने वाले पाँच
बाणोंसे बलदेवको बींधने लगा, कि-हलधारी बलदेवजीने दश
बाणोंसे उन्हें बीचमें ही काट डाला ॥२॥ फिर बलदेवजीने एक

दृढं पतन् स नाराचस्तस्य संज्ञां समाददे। रथोपस्थे चिरं स्थित्वा तूणाद्बाणं समाददे ॥ ३ ॥ लब्ध्वा हंसः स संज्ञां तु विद्ध्वा तेन यदूत्तमम्। सिंहवन्नदद्धंसो देवान् विस्मापयन् रणे४ ततः क्रुद्धो हली विद्धस्तेन बाणेन माधवः। वमञ्छोणितमत्युष्णं निश्वसंश्च रणाजिरे ॥ ५ ॥ लोहिताविष्टगात्रस्तु कुंकुमार्द्र इवाभवत्। नाराचैः शतसाहस्रै रर्दयामास माधवः ॥ ६ ॥ हंसं हंसगतिं वीरं नीलवासा हलायुधः। ते मुक्ता निशिता घोरा नाराचाश्च सुवाजिनः ॥ ७ ॥ रथे ध्वजे तथा चापे चक्रे तूणाद्वये नृप। पतिताः सर्वतो राजन् व्यथां चैव तथा विदुः ॥८॥ ततः क्रुद्धो महाराज हंसो वीर्यमदान्वितः। शरेण हलिनं विद्ध्वा ध्वजं चिच्छेद कालवित् ॥ ९ ॥ शरैश्चतुर्भिरश्वांश्च सूतं

बाण खींच कर बलपूर्वक हंसके मस्तकमें मारा, उस बाणने वेग से चोट देकर हंसको बेहोश करदिया,तब वह बहुत देरतक रथ की बैठक पर पड़ा रहा,फिर होश आनेपर हंसने भाथेमेंसे बाण खींच कर यदूत्तमके बाण मारा, और सिंहकी समान दहाड़ कर देवताओंको विस्मित करने लगा।३।४। उस बाणसे बिंधने पर मधुवंशी बलदेवजी क्रोधमें भर गए और रणभूमिमें खून ओकने लगे तथा गरम २ साँस छोड़ने लगे ५ और शरीरके रक्तसे सन जानेके कारण कुंकुमचर्चित प्रतीत होने लगे, उस समय नीलवस्त्रधारी मधुवंशी हलायुधने हंसकी समान गति वाले हंस के हजार बाण मारे वे सुन्दर पूंछडी वाले छोड़े हुए तीक्ष्ण और घोर बाण रथ ध्वजा चाप चक्र दोनों भाथे तथा सब ओर गिरे और पीडा देने लगे। ६-८। हे महाराज ! तब वीर्य और मद से छके हुए हंसने क्रोधमें भर कर बाणसे बलदेवजीको बींध डाला फिर समयको पहिचानने वाले हंसने ध्वजाको काट कर चार बाणोंसे चारों घोड़ोंको घायल करके सूतको यमसदन भेज

मे ताभिर्पं ददौ । ततः क्रुद्धो हली तस्मै गदां गृह्य महारणे १०
आपपात महाबाहुर्हंसं शेष इव श्वसन् । तथा रथं ध्वजं चक्रम-
श्वान् सूतं हलायुधः । बभञ्ज तिलशः सर्वं ननाद च पुनः पुनः ११
भूयश्च गदया हंसं चिक्षेप च बली किल । सोपि हंसो गदां
गृह्य रथात्तस्मादवापतत् ॥ १२ ॥ ततस्तौ हंसहलिनौ युयुधाते
महारणे । महारथौ महाबाहू लोके प्रथिततेजसौ ॥ १३ ॥
अत्यद्भुतं सुविक्रान्तौ परस्परवधैषिणौ । कृतश्रमौ महायुद्धे
हंसविक्रान्तगामिनौ ॥ १४ ॥ यथा देवासुरे युद्धे शक्र-
वृत्रौ पुराम्बरे । उभौ संसक्तसर्वांगौ शोणितेन महारणे ॥१५॥
अत्यन्तखेदिनौ युद्धे परस्परबलेन ह । ततश्च दक्षिणं मार्गं बल-
भद्रोऽन्वगच्छत ॥१६॥ सव्यं तु हंसो राजेन्द्रो व्यगृह्णात् स्वयमेव

दिया, तब बलवान् बलदेवजीने क्रोधमें भर कर महारणमें गदा उठा ली ।६।१०। और शेषकी समान फुंकार भरते हुए हंसपर दौड गए और उस गदासे हंसके रथ ध्वजा चक्र अश्व और सूतके तिलकी समान टुकड़े कर डाले ११ फिर गदासे हंसको पीटने लगे; तब हंस भी गदाको लेकर रथ परसे कूद पडा १२ तब लोकमें प्रसिद्ध तेज वाले महारथी और महाभुज हंस और बलदेवजी महारणमें युद्ध करने लगे १३ ये दोनों अति अद्भुत थे, सुन्दरतासे पराक्रम करते थे और परस्परका वध चाहते थे, इन दोनोंने युद्धमें परिश्रम किया था और ये दोनों हंसकी समान चलने थे १४ जैसे पहिले देवासुरयुद्धके समय आकाश में युद्ध करके इन्द्र और वृत्रासुर रक्तसे सराबोर होगए थे, इसी प्रकार ये दोनों महारणमें रक्तसे सराबोर होगए १५ और महा-युद्धमें परिश्रम करके विपक्षीको अतिखिन्न करने लगे, तब बल-भद्रने दाहिनोमण्डल दिखाया और हंस बाया मण्डल करनेलगा तदनन्तर हाथीकी समान पराक्रम करने वाले ये दोनों युद्धमें

हि । पोथयाञ्चक्रतुर्युद्धे गदाभ्यां गजविक्रमौ ॥ १७ ॥ यथाप्राणं महाबाहू जघ्नतुर्मरणाय तौ । अतिमहद्द्वं संग्रामं देवासुररणोपमम् ॥ १८ ॥ विदधाते महारंगे पश्यतां त्रिदिवौकसाम् । देवाश्च मुनयश्चैव विस्मयं परिजग्मिरे ॥ १९ ॥ अहो खल्वीदृशं युद्धं दृष्टं पूर्वं न च श्रुतम् । इत्यूचुर्विस्मयवशाद्देवगन्धर्वकिन्नराः २० परस्परकृतोत्साहौ चक्रतुर्युद्धमुत्तमम् । अथ हंसो महारंगे दक्षिणं दक्षिणोत्तमः ॥ २१ ॥ व्यचरन्मार्गमत्यर्थं सव्यं तु बलवान् बलः । निकुञ्च्य जानुनी पूर्वं चक्रतुर्गदया भृशम् । रणे रणविदां श्रेष्ठौ पश्यतां त्रिदिवौकसाम् ॥ २२ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिंभकोपाख्याने हंसबलभद्रयुद्धे चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥

वैशम्पायन उवाच । युद्धं चक्रतुरत्यर्थं ततो डिंभकसात्यकी ।

गदासे एक दूसरेको कुचला करने लगे । १६ । १७ । और वे दोनों महाभुज मरणके लिए प्राणोंके बलके अनुसार प्रहार करने लगे और देवताओंके देखते देखते वे महारंगमें देवासुर संग्रामकी समान परम भयंकर संग्राम करने लगे; तब देवता और मुनि परम विस्मित होने लगे । १८ । १९ । उस समय देवता गन्धर्व और किन्नर विस्मयमें होकर कहने लगे, कि—अहो ! ऐसा युद्ध तो न हमने देखा था और न सुना था ॥२०॥ और वे दोनों परस्पर उत्साहमें भर कर उत्तम युद्ध करने लगे, इसी समय दाहिना पैंतरा दिखानेमें उत्तम हंस महारंगमें दाहिने पैंतरे से विचरण करने लगा २१ और बलवान् बलदेव बायाँ पैंतरा दिखाने लगे, फिर रण जानने वालोंमें श्रेष्ठ हंस और बलदेव सब देवताओंके देखते हुए घुटनोंको सकोड कर युद्ध करने लगे । २२ । एकसौ चौबीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १२४ ॥ छ

वैशम्पायनजीने कहा, कि—तदनन्तर डिंभक और सात्यकि

तावुभौ बलिनौ वीरौ विख्यातौ क्षत्रियेषु च ॥ १ ॥ कृतश्रमौ महायुद्धे सततं वृद्धसेविनौ । सात्यकिर्दशभिर्वीरो डिम्भकं वेद-पारगम् ॥ २ ॥ अविध्यन्निशितैर्बाणैस्तेन वक्त्रे तथोरसि । स तेन विद्धो बलिना डिम्भकः क्षत्रियोत्तमः ॥३॥ नाराचैः पञ्च-साहस्रैर्विव्याध युधि गर्वितः । तानन्तरे वृष्णिवीरो निषिद्ध-न्निनदन् मुधन् ॥ ४ ॥ अथ क्रुद्धो नृपवरो विद्धः सप्तभि-राशुगैः । पुनः शतसहस्रेण प्रत्यविध्यत सात्यकिम् ॥ ५ ॥ सात्यकिस्त्वथ विक्रान्तो धनुश्चिच्छेद तस्य तत् । अर्धचन्द्रेण तीक्ष्णेन डिम्भकस्य स यादवः ॥ ६ ॥ आजघ्ने डिम्भको वीर-श्चापमादाय चापरम् । क्षुरप्रेणाथ रौद्रेण तैलधौतेन विक्रमी ७ स तेन विद्धो बाणेन चमच्छोणितकं नृप । अतीव शुशुभे राजन् वसन्ते किंशुको यथा ॥ ८ ॥ धनुश्चिच्छेद भूपस्तु गृहीतं यत्

घोर युद्ध करने लगे, वे दोनों वीर थे और क्षत्रियोंमें प्रसिद्ध थे १ उन्होंने पहिले महायुद्धमें परिश्रम किया था और वे दोनों वृद्धों का सेवन करते थे; इसी समय वीर सात्यकिने वेदपारगामी डिंभकके दश तीक्ष्ण बाण मारे, जब इस प्रकार बलवान् सात्यकिने इसके वक्षःस्थल तथा मुख पर प्रहार किया ।२।३। तब उसने युद्धमें गर्वमें भर कर पाँच हजार बाणोंसे उसको बींध डाला, वृष्णिवीरने उनको बीचमें ही रोक कर बडी भारी गर्जनाकी ४ फिर उस नृपवरने सात बाणोंसे घायल हो क्रोध में भरने पर सैंकड़ों हजारों बाणोंसे सात्यकिको बींध डाला ५ तदनन्तर पराक्रमी यादव-सात्यकिने अर्धचन्द्र नामक तीक्ष्ण बाणसे डिंभकके धनुषको काट डाला ६ इसी समय विक्रमी वीर डिंभकने दूसरा धनुष लेकर तेल पिलाये हुए तीक्ष्ण क्षुरप्रसे डिंभक पर प्रहार किया ।७। हे राजन् ! उस बाणसे बिंधने पर रक्त ओकता हुआ सात्यकि वसन्तके समय टेसूके फूलकी समान

पुरा धनुः । ततोऽन्यद्धनुरादाय डिम्भको यादवेश्वरम् ॥ ९ ॥ जघान निशितैर्बाणैः सर्वक्षत्रस्य पश्यतः । स धनुः पुनरप्युग्रं चिच्छेद युधि सात्यकिः ॥ १० ॥ शरेण तीक्ष्णपुंखेन डिम्भकस्य दुरात्मनः । ततोऽन्यद्धनुरादाय सत्वरं स नृपोत्तमः ११ धनुषा तेन राजेन्द्र सात्यकिं विव्यधे पुनः । एवं धनूंषि राजेन्द्र शतं पञ्च च पञ्च च ॥ १२ ॥ छित्वा ननाद शैनेयः सर्वक्षत्रस्य पश्यतः । धनुषी तौ परित्यज्य वीरौ डिम्भकसात्यकी ॥ १३ ॥ खड्गौ प्रगृह्य चात्युग्रौ युद्धाय समुपस्थितौ । तौ हि खड्गविदां श्रेष्ठौ वीरौ डिम्भकसात्यकी १४ दौःशासनिर्महाभागः सौमदत्तिस्तथैव च । अभिमन्युश्च विक्रांतो नकुलश्च तथैव च १५ एते खड्गविदां श्रेष्ठाः कीर्तिता युधि सत्तमाः । एतेष्वेतौ नृपश्रेष्ठौ पटू तु वै नृपसत्तम ॥ १६ ॥ तावेतावसिना युद्धं चक्रतुर्युद्धलालसौ ।

शोभा पाने लगा ॥८॥ उस समय डिंभकने पहिले जिस धनुष को उठाया था, उस धनुषको सात्यकिने फिर काट डाला तदनन्तर डिंभक दूसरा धनुष ले सब क्षत्रियोंके सामने यादवेश्वर को तीक्ष्ण बाणोंसे मारने लगा, तब सात्यकिने तीक्ष्ण बाणसे दुरात्मा डिंभकके भयंकर धनुषको फिर काट डाला, तब उस श्रेष्ठ राजाने शीघ्रतासे दूसरा धनुष उठा लिया ॥ ९—११ ॥ और हे राजेन्द्र ! उस धनुषसे सात्यकिको बींधने लगा, हे राजेन्द्र ! इस प्रकार एक सौ दश धनुषोंको काट कर सात्यकि सब राजाओंके सामने गर्जना करने लगा, तदनन्तर वीर डिंभक और सात्यकिने धनुषोंको रख दिया ॥ १२ ॥ १३ ॥ और परम भयंकर खड्ग लेकर युद्ध करनेको डट गए, वीर डिम्भक और सात्यकि खड्गधारियोंमें श्रेष्ठ थे ॥१४॥ महाभाग दुःशासनका पुत्र, सोमदत्तका पुत्र, विक्रांत, अभिमन्यु और नकुल, ये छः श्रेष्ठ पुरुष युद्धमें और खड्गधारियोंमें श्रेष्ठ हैं, परन्तु हे नृ-

भ्रान्तमुद्भ्रान्तमाविद्धं प्रविद्धं बाहुनिःसृतम् ॥ १७ ॥ आकरं विकरं भिन्नं निर्मयादममानुषम् । संकोचितं कुलचितं सव्यजानु विजानु च ॥१८॥ आहिकं चित्रकं क्षिप्तं कुसुम्वं लम्बनं धृतम् । सर्वबाहुविनिर्बाहु सव्येतरमथोत्तरम् ॥ १९॥ त्रिबाहुस्तुङ्गबाहुश्च सव्योन्नतमुदासि च । पृष्ठतः मथितं चैव यौधिकं मथितं तथा२० इति प्रकारान् द्वात्रिंशच्चक्रतुः खड्गयोधिनौ । पुनः पुनः प्रहरन्तौ न च श्रममुपेयतुः ॥ २१ ॥ पुष्करस्थौ महाराज युद्धाय कृतनिश्चयौ । ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ॥ २२ ॥ तुष्टुवुस्तौ महाराज जये कृतपरिश्रमौ । अहो वीर्यमहो धैर्यमनयोर्बाहुशालिनोः ॥२३॥ एतावेव रणे शक्तौ खड्गे धनुषि पारगौ। एकः शिष्यो गिरीशस्य द्रोणस्यान्यो हि धीमतः ॥२४॥अर्जुनः

सत्तम ! ये दोनों श्रेष्ठ राजे इन छः से भी श्रेष्ठ थे ॥१५॥१६॥ युद्ध करनेकी लालसा वाले ये दोनों तलवारके भ्रान्त उद्भ्रान्त आविद्ध प्रविद्ध बाहुनिःसृत आकर विकर भिन्न निर्मयाद अमानुष संकोचित कुलचित सव्यजानु विजानु आहिक चित्रक क्षिप्त कुसुम्ब लम्बन धृत सर्वबाहु विनिर्बाहु सव्य दक्षिण उत्तर त्रिबाहु तुङ्गबाहु सव्योन्नत उदासि पृष्ठसे प्रसिद्ध यौधिक और प्रथित पैंतरोंको दिखाने लगे १७-२०उन तलवारसे युद्ध करने वालोंने इस प्रकार बत्तीस पैंतरे दिखाये, और वारम्वार प्रहार करने पर भी उनको कुछ परिश्रम प्रतीत नहीं हुआ ॥२१॥ और हे महाराज ! वे पुष्करमें खडे होकर युद्ध करनेका ही निश्चय करने लगे, तब हे महाराज ! विजयके लिए परिश्रम करने वालों की देवता गन्धर्व सिद्ध और परमर्षि स्तुति करने लगे, कि-इन भुजबलशालियोंका धैर्य और वीर्य प्रशंसनीय है ॥ २३ ॥ यही रणमें खड़े होसकते हैं, ये तीरन्दाजीमें पारगामी हैं, इनमें एक शिवके शिष्य हैं और दूसरे बुद्धिमान् द्रोणके शिष्य हैं ॥ २४ ॥

सात्यकिश्चैव वासुदेवो जगत्पतिः । त्रय एते महाराज प्रथिताः संगरे सदा ॥ २५ ॥ डिम्भकः शक्तिभृच्छर्वस्त्रय एते महारथाः॥ प्रसिद्धाः सर्व एवैते वीर्येषु च बलेषु च ॥ २६ ॥ इति ते देव-गन्धर्वाः सिद्धा यक्षा महोरगाः । दिवि स्थिताः समं ब्रूयुर्युद्ध-दर्शनलालसाः ॥ २७ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिंभकोपा-ख्याने पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२५ ॥

वैशम्पायन उवाच । वसुदेवोग्रसेनौ च वृद्धौ युद्धे सुनिर्वृतौ॥ जराजरितसर्वांगौ पलितांगशिरोरुहौ ॥ १ ॥ ज्ञानविज्ञानसंपन्नौ राजमार्गविशारदौ । युयुधाते महारंगे राक्षसेन दुरात्मना ॥२॥ शरैरनेकसाहस्रै रर्दयामासतू रणे । राक्षसेन्द्रं दुरात्मानं हिडिंबं पुरुषादकम् ॥३॥ हिडिम्बो राक्षसेन्द्रस्तु भक्षयन् सर्वतो नरान्। अतिगृद्धो दुष्टात्मा लम्बबाहुर्महाहनुः ॥ ४ ॥ लम्बोदरो विरू-

हे महाराज ! अर्जुन सात्यकि और जगत्पति वासुदेव ये तीनों युद्ध करनेमें सर्वदासे प्रसिद्ध हैं २५ डिंभक कार्तिकेय और शिव ये तीन महारथी वीर्यमें और बलमें प्रसिद्ध हैं २६ युद्धको देखने की लालसा वाले देवता गन्धर्व सिद्ध और महोरग इस प्रकार उनकी समानताका वर्णन करने लगे ॥२७॥ एकसौ पच्चीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १२५ ॥ छ छ छ छ

वैशम्पायनजीने कहा, कि—वसुदेव और उग्रसेन वृद्ध थे और युद्धमें परम आनन्द पाते थे, उनके अङ्गमें झुर्रियें पड़ रही थी, वे ज्ञानविज्ञानसे सम्पन्न थे और राजमार्गमें दुरासद थे, वे दुरात्मा राक्षसके साथ रंगस्थलमें युद्ध करने लगे ॥ १ ॥ २ ॥ वे रणमें हजारों बाण छोड़ कर पुरुषभक्षी दुरात्मा राक्षसेन्द्रको पीड़ित करने लगे ॥ ३ ॥ लम्बी भुजा और बड़ी ठोड़ी वाला दुष्टात्मा राक्षसेन्द्र हिडिम्ब सर्वत्र मनुष्योंका भक्षण करके बढ़ने

पाक्षः पिंगकेशो विलोचनः। श्येननासो महारौद्र ऊर्ध्वरोमा महाभुजः ॥ ५ ॥ पर्वताकारवर्णो च दीर्घदंष्ट्रः शिवाननः। लम्बोदरो दीर्घदन्तो जगद्ग्रासपरस्तथा ॥६॥ उन्नतांसो महोरस्को दीर्घग्रीवो गजोपमः। भक्षयन् मांसपिटकं पिबन् शोणितसंचयम् ॥७॥ गजान्नागैः समाहत्य हयैरश्वान्नृपोत्तम। रथान् रथैः समाहत्य सादिनः सादिभिस्तथा ॥ ८ ॥ मनुष्यान् स पुरो दृष्ट्वा नास्यग्रासं चकार सः। कांश्चिद्धृत्वा महाराज वृष्णिपालान् समन्ततः ॥९॥ भक्षयामास सहसा हिडिम्बः पुरुषादकः। यान् पश्यन् पुरतो रक्षस्तान् जघान विरूपधृक् ॥ १० ॥ भक्षयन्नपरान् वृष्णीन् यादवान् राक्षसेश्वरः। चिक्षेप सहसा कांश्चिद्धिडिम्बः पुरुषादकः ॥११॥ अन्तकाले यथा क्रुद्धो रुद्रः

लगा ४ उसका पेट लम्बा था, आँखे विरूप थीं, केश पीले थे, नासिका बाजकी समान थी, वह महाभयंकर था केश खड़े हुए थे और भुजाएँ बड़ी २ थीं; शरीर पर्वतकी समान था, डाढ़े बड़ी थीं और मुख कल्याणप्रद था और वह जगत्का ग्रास करनेको तत्पर रहता था ॥ ५ ॥ ६ ॥ उसका कन्धा उन्नत था, वक्षःस्थल चौड़ा था, ग्रीवा लम्बी थी और वह हाथीकी समान था, हे नृपोत्तम! वह हाथियोंसे हाथियोंको मार कर और घोड़ों से घोड़ोंको मार कर रक्तको पीने लगा और मांसके लोथड़ों को खाने लगा। ७। वह रथोंसे रथोंको नष्ट करके सवारोंको सवारोंसे मारने लगा और मनुष्योंको सामने देख कर उनको नासिकाग्रास बनाने लगा अर्थात् श्वाससे खेंच कर उनका भक्षण करने लगा, हे महाराज! पुरुषोंका भक्षण करने वाला हिडिम्ब कुछ वृष्णियोंको सहसा पकड़ कर खाने लगा सकल रूपोंको धारण करने वाला हिडिम्ब राक्षस जिसको सामने पाता था उसको खाजाता था ॥ ८–१० ॥ जिस प्रकार अन्तकालमें

प्राणभृतो नृपः । क्षणेनैकेन सर्वांस्तान् भक्षयामास राक्षसः१२ केचिद्भीता दिशः प्रापुर्वृष्णयो वीर्यशालिनः । केचित्तु भक्षिताः स्तेन रक्षसा वृष्णिपुंगवाः ॥ १३ ॥ कुम्भकर्णो यथा राजन् भक्षयामास वानरान् । निःशेषं वृष्णिसैन्यन्तु चकार पुरुषादकः ॥ १४ ॥ निश्चेष्टं वृष्णिसैन्यं तु स्थितं चित्रपटे यथा । एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धौ वृद्धौ यादवपुङ्गवौ । धनुर्गृह्य महाघोरं राक्षसस्य पुरः स्थितौ ॥१५॥ यथा क्रुद्धस्य सिंहस्य मृगौ वृद्धतमाविव । व्यादायास्यं महारक्षस्तौ वृद्धावभ्यधावत ॥ १६ ॥ चिखादिषुर्विरूपाक्षः पातालतलसन्निभः । ततो रथः पर्यधावन् खादन् खादन् कलेवरम् ॥ १७ ॥ पूरयामासतुर्वीरौ शरैर्यदुवृषौ नृप । हिडिम्बस्य महाघोरं व्यादितास्यमिवान्तकम् ॥ १८ ॥

क्रोधमें भरेहुए रुद्र प्राणियोंका संहार करते हैं, इसी प्रकार वह पुरुषभक्षक क्षणभरमें उन सबको खागया । ११ । १२ । उस समय कुछ बलवान् वृष्णि डर कर दिशाओंमेंको भाग गये और कुछ वृष्णि-पुंगवोंको वह राक्षस खागया १३ हे राजन् ! जिस प्रकार कुम्भकर्णने वानरोंका भक्षण किया था, इसीप्रकार उस पुरुषभक्षी राक्षसने वृष्णियोंको खाकर सेनाका नाश कर डाला ॥१४॥ उस समय वृष्णियोंकी सेना चित्रमें लिखी हुईकी समान निश्चेष्ट होगई, इसी समय दोनों बूढे यादवपुंगव क्रोध में भर गए और महाघोर धनुषोंको लेकर राक्षसके सामने खडे होगए तब वे दोनों वृद्ध ऐसे दीखने लगे, जैसे सिंहके सामने दो मृग खडे होजावें, तब वह राक्षस अपना मुख फाड़ कर उन को खानेके लिए दौडा, उस भौडोल नेत्र वाले राक्षसका पाताल की समान रथ शरीरोंका भक्षण करता हुआ आगेको बढने लगा १५-१७ हे नृप ! उस समय मुख फाड़ते हुए कालकी समान हिडिम्बके भयानक रथको वे दोनों यदुवीर बाणोंसे छाने

सर्वास्तान् वारयामास देवशत्रुर्विरूपधृक् । धावति स्म ततो रक्षो व्यादितास्यं भयानकम् ॥ १९ ॥ तयोर्गृहीत्वा धनुषी बभञ्ज युधि सत्वरम् । बाहू प्रसार्य दुष्टात्मा राक्षसो विकृताननः ॥ २० ॥ वसुदेवं महीपालं राजानं वृद्धसेविनम् । ग्रहीतुं राक्षसश्रेष्ठो यतते नृपसंसदि ॥ २१ ॥ हिडिम्ब उवाच । एष वां भक्षयिष्यामि वसुदेवं त्वया सह । उग्रसेन किमर्थं त्वं तिष्ठसे मत्पुरोगमः ॥ २२ ॥ आगच्छ प्रविशास्यं मे ग्रासभूतौ तु वां मम । विधिना निर्मितो वृद्धो वसुदेवो हरेः पिता ॥ २३ ॥ बुभुक्षितः श्रमार्तश्च युद्धे त्वरितविक्रमः । मन्मुखान्नैव गच्छेतां प्रविशेतां त्वरान्वितौ ॥ २४ ॥ युवयोः शोणितं पीत्वा तृप्तिं यास्यामि निर्वृतः। खादामि च पुनर्मांसं वृद्धयोर्युवयोः सुखम् २५ इति ब्रुवंस्तथा रक्षो व्यादितास्यो महाहनुः । धावति स्म तदा

लगे १८ विरूपवान् उस देवशत्रुने उन सबको रोक दिया, फिर वह राक्षस भयंकर रीतिसे मुख फाड़ कर दौडने लगा १९ और उन दोनोंके धनुषको पकड कर त्वरासे उनको तोड डाला, तदनन्तर वह दुष्टात्मा राक्षस राजाओंकी सभामें भुजा फैला कर वृद्धोंका सेवन करने वाले राजा वसुदेवको पकडना चाहने लगा ॥२०॥२१॥ हिडिम्बने कहा, कि-अब मैं तुम दोनोंको खा जाऊँगा, हे उग्रसेन ! तू वसुदेवको साथमें लेकर मेरे सामने क्यों खड़ा हुआ है २२ आओ ! तुम मेरे मुखमें घुस जाओ;तुम दोनों मेरे ग्रास हो; ब्रह्माने भाग्यवश ही हरिके पिताको वृद्ध बनाया है२३मैं बुभुक्षित हूँ और युद्धमें श्रम करनेसे थक रहा हूँ क्योंकि-युद्धमें मैंने बडा पराक्रम किया है,इस लिए तुम मेरे मुखमेंसे नहीं छूट सकोगे, अब तुम त्वराके साथ मेरे मुखमें घुस आओ॥२४॥ मैं तुम्हारे रक्तको पीकर तृप्त होऊँगा, फिर मैं तुम दोनों वृद्धोंके मांसको सुखपूर्वक खाऊँगा २५ इस प्रकार कह कर बडी ठोडी

क्षिप्रं हिडिम्बो राक्षसेश्वरः ॥ २६ ॥ वसुदेवोग्रसेनौ च भीतौ विमेद्य सर्वतः । दिशोऽभ्यभजतां राजन्निःशस्त्रौ वृष्णि-पुंगवौ ॥ २७ ॥ एतस्मिन्नन्तरे दृष्ट्वा बलभद्रः प्रतापवान् । दृष्ट्वा च तौ तथा भूतौ वसुदेवोग्रसेनकौ ॥ २८ ॥ वासुदेवे समादिश्य हंसं युध्यन्तमीश्वरे । निर्गत्य चान्तरं तस्य राक्षसस्य दुरात्मनः ॥ २९ ॥ मा कृथाः साहसं रक्षो मुंचैतौ राजसत्तमौ । स्थितोऽस्मि युध्यतां रक्षो मया शत्रून् जिघांसता ॥३०॥ अहमेव हनिष्ये,त्वां का त्वेयं तव भीषिका। इति ब्रुवाणं हलिनं तौ विसृज्य महारणे ॥३१॥ महानयमसौ दुष्टो भक्षयाम्येनमग्रतः । विदार्य पूर्ववद्वक्त्रं बलभद्रमुपाद्रवत् ॥३२॥ विसृज्य सशरं चापं राक्षसस्य पुरः स्थितः । मुष्टिं प्रगृह्य बलवान् स्फोटयन् बाहुमुत्तमम् ॥३३॥

वाला राक्षसेश्वर हिडिम्ब मुखको फाड़ कर दौड़ा २६ तब वसु-देव और उग्रसेन उसको देख कर डर गए और वे वृष्णिपुङ्गव शस्त्रोंको फेंक कर दिशाओंमेंको भागने लगे २७ इसी समय प्रतापवान् बलभद्रने वसुदेव और उग्रसेनकी यह दशा देख कर हंससे लडनेका भार ईश्वर कृष्ण पर धर दिया और तहाँसे निकल कर उस दुरात्मा राक्षसके पास आगए (और कहने लगे,कि-) हे राक्षस ! तू साहस मत कर और इन श्रेष्ठ राजाओं को छोड दे, हे राक्षस ! मैं तेरे सामने खड़ा हुआ हूँ, तू मुझ शत्रुओंका संहार करने वालेसे लड़ २८-३० मैं ही तुझे मार डालूँगा, तू इन्हें क्या डरा रहा है, बलदेवजीके इस प्रकार कहने पर उसने महारणमें उन दोनोंसे लडना छोड दिया (और कहने लगा,कि-) । ३१ । यह बड़ा दुष्ट है, पहिले मैं इसको ही खाजाऊँगा फिर वह पहिलेकी समान मुख फाड कर बलदेवजी की ओर दौड़ा ३२ तब बलदेवजीने अपने धनुष बाणको दूर फेंक दिया और भुजाओं पर थाप दे मुट्ठी बाँध राक्षसके सामने खड़े

हिडिम्बस्त्वथ दुष्टात्मा मुष्टिं कृत्वा भयानकाम्। जघान वक्षो रामस्य व्यादितास्य इवान्तकः ॥ ३४ ॥ क्रुद्धोऽथ बलभद्रस्तु मुष्टिना तेन ताडितः। जघान मुष्टिना तेन राक्षसेशमनिंदितः ३५ मुष्टियुद्धं समभवन्नरराक्षसवीरयोः। युद्ध्यतोर्युद्धरंगेऽथ नर-राक्षससिंहयोः ॥ ३६ ॥ तयोश्चटचटाशब्दः प्रादुरासीद्भयानकः। अथ राक्षसराजस्तु मुष्टिना राममाहवे ॥ ३७ ॥ जघान वक्षो देशे तु वज्रेणेव पुरन्दरः। अथ रामोऽवली साक्षान्मुष्टिं संवर्त्य यत्नतः ॥३८॥ हिडिम्बं ताडयामास वक्षस्यमरविद्विषम्। तला-भ्यामथ रामस्तु वक्त्रे हत्वा स राक्षसम् ॥ ३९ ॥ आहतस्तल-घातेन हिडिम्बो राक्षसेश्वरः। जानुभ्यामपतद्भूमौ गतासुर्वीर-राक्षसः ॥४०॥ तत उत्थाप्य रामस्तु दोर्भ्यां संगृह्य राक्षसम्। आदाय बाहुवेगेन भ्रामयित्वा पदात् पदम् ॥४१॥ व्याविध्यत्

होगए ३३ तब कालकी समान मुख फाडे हुए दुष्टात्मा हिडिम्बने मुट्ठी बाँधकर बलदेवजीके वक्षःस्थल पर प्रहार किया ३४ मुट्ठी से ताडित होने पर अनिन्दित बलभद्रजी क्रोधमें भर गए और उन्होंने राक्षसराजके हृदयमें मुक्का मारा ३५ इस प्रकार राक्षस-वीर और नरवीरमें युद्ध होने लगा, युद्धरंगमें जब नरसिंह और राक्षससिंह लड रहे थे तब चटापट पटापटका भयानक शब्द होने लगा, तदनन्तर राक्षसराजने इन्द्रके वज्रसे प्रहार करनेकी समान, बलदेवजीके हृदयमें मुक्केका प्रहार किया, तदनन्तर बल-रामने यत्नपूर्वक मुट्ठी बाँधी और देवद्वेषी राक्षसके वक्षःस्थल पर जोरसे प्रहार किया, फिर राक्षसके मुख पर रैपटे लगाने लगे ३६-३९ थप्पडोंसे पिटनेपर राक्षसेश्वर हिडिम्ब घुटनोंके बल भूमि पर गिर पडा और मर गया ४० तदनन्तर बलरामजी ने उस राक्षसको भुजाओंसे पकड़ कर उठा लिया और पैर उठा २ कर उसको बाहुवेगसे घुमाने लगे ॥ ४१ ॥ बलरामने

सुचिरं रामो दर्शयन्नात्मनो बलम् । उत्क्षिप्य राक्षसेन्द्रं तं सर्व-
लोकस्य पश्यतः ॥ ४२ ॥ गव्यूतिमात्रं चिक्षेप ततो देशाद्धला-
युधः । गतासु राक्षसश्रेष्ठस्ततो देशान्निराकृतः ॥ ४३ ॥ ये
केचित्राक्षसास्तत्र हतशेषा महारणे । बलभद्रात्ततो भीता जग्मु-
श्चैवं दिशो दश ॥ ४४ ॥ अथांशुमाली भगवान् दिनेशः संहृत्य
तेजांसि सहस्त्ररश्मिः । अस्तं ययौ चक्षुरपि प्रजानामीषत्तमश्चापि
समाविवेश ॥ ४५ ॥ तस्मिन् प्रविष्टे समुद्रतोयं प्रजापतौ ।
विश्वमुखे जगद्गुरौ । नक्षत्रनाथः समुपाजगाम सन्ध्यातमोऽपि
व्यपनशन्नृपोत्तम ॥ ४६ ॥ प्रभातकाले नृपसत्तमो रणे गोवर्द्धने
किन्नरगीतनादिते । इति ब्रुवन्तो नृपसत्तमास्तदा व्युपारमंस्तत्र
रणोत्सवे नृप ॥ ४७ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिंभको-
पाख्याने हिडिंबवधो नाम षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

अपना बल दिखानेके लिए सब लोकोंके सामने उसको बहुत
देर तक घुमाया और उसको उठा कर दो कोस दूर फेंक दिया,
इस प्रकार वह प्राणहीन राक्षस उस देशसे हट गया ।४२।४३।
उस महारणमें और जो राक्षस मरनेसे बच गए थे वे बलभद्रसे
डर कर दशों दिशाओंमेंको भाग गए ॥ ४४ ॥ इसी समय दिन
के स्वामी सहस्र किरणों वाले अंशुमाली भगवान् दिनेश तेज
का संहार करके अस्ताचल पर्वत पर चलेगए और प्रजाओंके
नेत्रोंमें भी थोड़ा २ अन्धेरा छाने लगा ४५ प्रजापति विश्वमुख
जगद्गुरु सूर्यके समुद्रजलमें प्रवेश करने पर नक्षत्रनाथ चन्द्रमा
उदित होगए, हे नृपोत्तम ! संध्याके समयका अन्धकार भी नष्ट
होगया४६हे नृप ! उस समय श्रेष्ठ २ राजे यह कहकर विश्राम
करने लगे, कि—अब प्रातःकालके समय किन्नरोंके गीतोंसे गुञ्जा-
रते हुए गोवर्धन पर्वतपर युद्ध करेंगे ॥४७॥१२६वाँ अ० समाप्त

वैशम्पायन उवाच । उभौ तौ हंसडिंभकौ रात्रावेव महा-
गिरिम् । जग्मतुः सहितौ राजन् गोवर्द्धनमथो नृप ॥ १ ॥ अथ
प्रभाते विमले सूर्ये चाभ्युदिते सति । गोवर्द्धनं जगामाशु केशवः
केशिसूदनः ॥ २ ॥ शैनेयो बलभद्रश्च यादवाः सारणादयः ।
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च नादितं बहुधा गिरिम् ॥३॥ जग्मतुः सहितौ
राजन् गोवर्द्धनमथो गिरिम् । गोधनैरथ सैन्यैश्च नादितं बहुधा
गिरिम् ॥ ४ ॥ तस्योत्तरं नृपश्रेष्ठ पार्श्वं सम्प्राप्य यादवाः ।
निकषा यमुनां राजंस्ततो युद्धमवर्त्तत ॥ ५ ॥ विव्याध हंस-
डिम्भकौ वसुदेवश्च सप्तभिः । सारणः पंचविंशत्या दशभिः
कंक एव च ॥ ६ ॥ हंसेन डिम्भकेनाथ यादवैश्च समन्ततः ।
उग्रसेनस्त्रिसप्तत्या शराणां नतपर्वणाम् ॥ ७ ॥ विराटस्त्रिंशता
राजन् सात्यकिश्चापि सप्तभिः । अशीत्या विपृथू राजन्नुद्धवो
दशभिः शरैः ॥ ८ ॥ प्रद्युम्नस्त्रिंशता राजन् साम्बश्चापि च

वैशम्पायनजीने कहा, कि- हे राजन् ! तदनन्तर हंस और
डिंभक रात्रिमें ही महागिरि गोवर्धन पर्वतको चल दिये ॥ १ ॥
निर्मल प्रभात होनेपर और सूर्य निकलने पर केशी दैत्यका
संहार करने वाले केशव शीघ्रतासे गोवर्धन पर्वतको चल दिये२
सात्यकि बलभद्र तथा दूसरे यादव भी गन्धर्वों और अप्सराओं
से प्रायः गुंजारते रहने वाले और गोधनसे प्रायः प्रतिनादित
रहने वाले गोवर्धन गिरिको चल दिये ।३.४। जब यादव उस
पर्वतकी तलैटीमें पहुँचे तो यमुनाके पास युद्ध आरम्भ होगया५
वसुदेवने हंस तथा डिंभकके सात वाण मारे, सारणने पचीस
और कंकने दश वाण मारे ६ तब हंस और डिंभकका यादवोंके
साथ चारों ओरसे संग्राम होने लगा उग्रसेनने नमीहुई गाँठवाले
नब्भे वाण छोड़े ॥ ७ ॥ विराटने तीस वाण छोड़े, सात्यकि
ने सात वाण छोड़े, विपृथुने अस्सी बाण छोड़े और उद्धव

सप्तभिः। अनाधृष्टिस्त्वेकषष्ट्या शराणां नतपर्वणाम् ॥ ९ ॥
एवं ते सहिता शार्जंश्चक्रुर्युद्धमदीनवत्। अत्यद्भुतं महाघोरं
यादवाः सर्व एव हि ॥१०॥ चक्रुस्ताभ्यां महायुद्धं वासुदेवस्य
पश्यतः। सर्वानपि महाराज यादवान् बलदर्पितान ॥ ११ ॥
तावुभौ हंसडिम्भकौ नृपास्तान् प्रत्यविध्यताम्। प्रत्येकं दशभि-
र्विद्ध्वा बाणैर्निशितकोमलैः ॥ १२ ॥ जघ्नतुश्च शरैस्तीक्ष्णै-
रत्यर्थं यादवेश्वरान्। व्यथिताः सर्व एवैते वमन्तः शोणितं
बहु ॥ १३ ॥ माधवे किंशुका राजन् पुष्पिता इव ते बभुः।
भीताश्च यादवा राजन् पलायनपरायणाः ॥१४॥ एतस्मिन्न-
न्तरे राजन् वसुदेवात्मजो नृप। वासुदेवो हली युद्धे प्रमुखे
धन्विनौ तयोः ॥१५॥ चक्रतुर्युद्धमतुलं स्कन्दशक्राविवाम्बरे।

ने दश बाण छोड़े ॥ ८ ॥ प्रद्युम्नने तीस बाण छोड़े
साम्बने सात बाण छोड़े, अनाधृष्टिने नमी हुई गाँठ वाले इक-
साठ बाण मारे ९ हे राजन्! इस प्रकार वह सब यादव
निर्भय होकर अतिअद्भुत महाघोर युद्ध करने लगे॥ १० ॥
वासुदेवके सामने ही यादव हंस और डिंभकसे महायुद्ध करने
लगे, हे महाराज! दोनों हंस और डिंभक भी बलदर्पित सब
यादवोंको घायल करने लगे ॥११॥१२॥ वे प्रत्येकको तीक्ष्ण
और कोमल बाणोंसे घायल करके तीक्ष्ण बाणोंसे यादवेश्वर
को बहुत घायल करने लगे, तब सब यादव परम व्यथित हो
रक्त ओकने लगे १३ उस समय वह माधवमासके टेसूके फूलों
की समान शोभा पाने लगे, हे राजन्! वे यादव डर कर
भागनेको उद्यत होगए १४ हे राजन्! इसी समय वसुदेवके पुत्र
वासुदेव और बलराम जो सब धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ थे,वे आकाश
में स्कन्द और इन्द्रकी समान तुमुल युद्ध करने लगे, तब
विमानमें बैठे हुए गन्धर्व सिद्ध यक्ष और महर्षि देवासुर युद्ध

तयोरेव सगन्धर्वाः सिद्धा यक्षा महर्षयः ॥ १६ ॥ विमानस्थाश्च ददृशुर्युद्धं देवासुरोपमम् । ततः प्रादुरभूतान्तौ दूतौ भूतेश्वरौ नृप ॥ १७ ॥ शूलिना प्रेषितौ युद्धे रक्षार्थं बलिनोस्तयोः । हंसोऽथ वासुदेवश्च युद्धं चक्रतुरीश्वरौ ॥ १८ ॥ रामश्च डिम्भकश्चैव संयुक्तौ युद्धकांक्षया । विशून्याः सर्व एवैते ह्यस्त्रे शस्त्रे तथा बले ॥ १९ ॥ शंखान् दध्मुः पृथक् हार्दं स्वे स्वे सर्वे रथे स्थिताः । अथ कृष्णो हृषीकेशः पाञ्चजन्यं महारवम् ॥ २० ॥ दध्मौ पद्मपलाशाक्षः सर्वान् विस्मापयन्निव । अथ भूतौ महाघोरौ लम्बोदरशरीरिणौ ॥ २१ ॥ दुद्रुवतुर्महाराज शूलमादाय केशवम् । शूलेन पोथयां राजन् चक्रतुर्यादवेश्वरम् ॥ २२ ॥ ताभ्यां समाहतो विष्णुर्देवगन्धर्वसन्निधौ । ईषत्स्मिताधरो देवः किंचिदुत्प्लुत्य सत्वरम् ॥ २३ ॥ रथाद्रथिवरश्रेष्ठस्तौ प्रगृह्य जनार्दनः । भ्रामयित्वा शतगुणमलातमिव केशवः ॥ २४ ॥ कैलासं

की समान उन दोनोंके युद्धको देखने लगे, हे राजन् ! तदनन्तर भूतेश्वरके दो दूत प्रकट हुए ॥ १५ ॥१७॥ भगवान् शूलधारीने उनको दोनों बलवानोंकी रक्षा करनेके लिए युद्धमें भेजा था तब हंस और वासुदेव ये दोनों ऐश्वर्यवान् व्यक्ति युद्ध करने लगे१८ उधर बलराम और डिंभक भी युद्ध करनेकी इच्छासे जुट गए, पहिले इन सबोंने अस्त्र शस्त्र तथा बलको छोड़ अपने रथमें बैठ कर ही हर्षपूर्वक शंखोंको बजाया कमलपत्रकी समान नेत्र वाले श्रीकृष्ण भी तब सबको विस्मित करनेके लिए महाशब्द करनेवाले पाञ्चजन्यशंखको बजानेलगे तदनन्तर लम्बे पेट और लम्बे शरीर वाले महाघोर दो भूत शूल लेकर केशव पर दौड़े और शूलसे केशवको मारने लगे ॥ १६–२२ ॥ उनसे पिटने पर विष्णु देवता और गन्धर्वोंके सामने मुस्कुराये, फिर वह रथियोंमें श्रेष्ठ रथसे उछले और उन दोनों भूतोंको पकड़ लिया

च समुद्दिश्य प्रचिक्षेप ततो हरिः । ता उपेत्य गिरेः शृङ्गं कैलासस्य महामते ॥२५॥ दृष्ट्वा तत्कर्म देवस्य विस्मयं जग्मतुः परम् । हंसश्च दृष्ट्वा तत्कर्म रोषताम्रायतेक्षणः ॥ २६ ॥ उवाच वचनं हंसः शृण्वतां त्रिदिवौकसाम् । किमर्थं राजसूयस्य विघ्नं चरसि केशव ॥ २७ ॥ ब्रह्मदत्तो महीपालो यष्टा तस्य महाक्रतोः । करं दिश यथायोगं यदि प्राणान् हि रक्षसि ॥ २८ ॥ अथवा त्वं क्षणं तिष्ठ ततो ज्ञात्वा दरं बहु । ददासि त्वं नन्दपुत्र ततो यष्टा स मे गुरुः ॥ २९ ॥ ईश्वरोऽहं सदा राज्ञां देवानामिव शूलभृत् । एष ते वीर्यमतुलं नाशयिष्यामि संयुगे ॥३०॥ इत्युक्त्वा सशरं चापं शालतालोपमं नृप । आकृष्य च यथाप्राणं नाराचेन च केशवम् ॥ ३१ ॥ ललाटे चिक्षेपे हंसो ललाम

और बरेंटीकी समान उनको सौ बार घुमाकर कैलासपर्वतकी ओर फेंक दिया, हे महामते ! कैलासके शिखर पर पहुँच देवदेवेशके कर्मको देख कर वे परमविस्मित हुए, इस कर्मको देख कर हंसके नेत्र भी क्रोधसे लाल लाल होगए ॥२३–२६॥ और वह देवताओंके सुनते हुए यह वचन कहने लगा, कि–हे केशव ! तुम राजसूय यज्ञमें विघ्न क्यों डाल रहे हो २७ राजा ब्रह्मदत्त राजसूय यज्ञ करना चाहता है, यदि तुम्हें अपने प्राण बचाने हों तो अपने स्वरूपके अनुरूप कर दो २८ अथवा तू क्षण भरको धीरज रख, तब मेरे बलका पता लगजाने पर तुझे बहुतसा कर देना पड़ेगा, और हे नन्दपुत्र ! मेरे पिता यज्ञ करेंगे २९ जैसे शूलधारी शिव देवताओंके प्रभु हैं, इसी प्रकार मैं राजाओंका प्रभु हूँ, अब मैं युद्धमें तेरे वीर्यको नष्ट करे डालता हूँ ॥ ३० ॥ इसप्रकार कहनेके अनन्तर हंसने सालके लट्ठेकी समान बाण और धनुष उठा लिया और अपने प्राणबलके अनुसार खींच कर केशवके ललाटमें बाण मारा, यह बात बड़ी सुन्दर हुई,

इव सोभवत् । उवाच सात्यकिं भूयो रथं वाहय मे प्रभो ॥ ३२ ॥ दारुकं पृष्ठवाहं तं कृत्वा देशं तमीश्वरः । अथ तेन समादिष्टः सात्यकिर्वाहयन् रथम् ॥ ३३ ॥ मण्डलानि बहून्याजौ दर्शयामास सत्वरम् । अथ विद्धो दृढं तेन शरेण हरिरीश्वरः ॥ ३४ ॥ आग्नेयमस्त्रं संयोज्य शरे कस्मिंश्चिदव्ययः। उवाच हंसं राजेन्द्र सात्यकिं प्रेरयन् रणे ३५ अनेन त्वां दहे पाप यदि शक्तोऽसि वारय । अलं ते बहुवद्धेन क्षत्रियोऽसि सदा शठ ॥३६॥ यतश्चेत् करमिच्छेस्त्वं दर्शयाद्य पराक्रमम् । यतयो बाधिता हंस पुष्करे संस्थितास्त्वया ३७ शास्ता त्वं खलु विप्राणां स्थिते मयि नराधम । स्थिते मयि जगन्नाथे हत्वा क्षत्रियकण्टकान् ३८ शास्तास्म्यपरो सतां लोके दुष्टानां ब्रह्म-

---

हे प्रभो ! तब कृष्णने सात्यकिसे कहा, कि-आप मेरे रथको चलाइये ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ तब ईश्वरने दारुकको पीठके पीछे बैठा लिया तब सात्यकि उनके आज्ञा देने पर रथको हाँकने लगे ॥ ३३ ॥ और रणमें त्वराके साथ बहुतसे मण्डल दिखाने लगे हरि उस बाणसे बहुत घायल होरहे थे ॥ ३४ ॥ इस लिए उन अव्यय पुरुषने एक बाणको आग्नेयास्त्रसे अभिमन्त्रित किया और सात्यकिको प्रेरणा करते हुए हंससे कहने लगे, कि-॥ ३५ ॥ हे पापिष्ठ ! मैं तुझे इस बाणसे भस्म करे डालता हूँ, यदि तेरी शक्ति हो तो तू इसको हटा, तेरे साथ असम्बद्ध बातचीत करनेकी मेरी इच्छा नहीं है, क्योंकि हे शठ ! तू युद्ध कर ॥ ३६ ॥ यदि तू मुझसे कर लेना चाहता है, तो मुझे पराक्रम दिखा, हे हंस ! तूने पुष्करमें रहने वाले यतियों को कष्ट दिया था ॥ ३७ ॥ हे नराधम ! तू मेरे होने पर भी ब्राह्मणोंका शासन करना चाहता है मैं जगन्नाथ तुम सब क्षत्रियकण्टकोंको मार डालूँगा, फिर मैं ब्रह्मद्वेषी दुष्ट मनुष्योंका

विद्विषाम् । शापेन यतिमुख्यानां हत एव नृपाधम ३९ मृत्यवे त्वां निवेद्याद्य रक्षिता ब्राह्मणानहम् । इति ब्रुवंस्तदस्त्रं तु मुमोच युधि केशवः ४० तदस्त्रं वारुणेनाथ हंसोऽपि प्रत्यषेधयत् । वायव्यमथ गोविन्दो मुमोच युधि हंसके ४१ तदस्त्रं वारयामास माहेन्द्रेण नृपोत्तमः। अथ माहेश्वरं कृष्णो मुमोचात्युग्रमाहवे ४२ रौद्रेण तत्ततो हंसो वारयामास तत्क्षणात् । गान्धर्वं राक्षसं चैव पैशाचमथ केशवः ४३ ब्रह्मास्त्रमथ कौरवेमासुरं याम्यमेव च । चत्वार्येतानि हंसस्तु मुमोच युधि सत्वरम् ॥४४॥ वारणार्थं तदस्त्राणां चतुर्णां माधवस्य ह अथ ब्रह्मशिरो नाम घोरमस्त्रं विनाशकम् ॥ ४५ ॥ मुमोच हंसमुद्दिश्य देवदेवो जनार्दनः । योजयामास तद्धंसे महाघोरपराक्रमम् ॥ ४६ ॥ अथ भीतो महा-

शासन करूँगा, हे नृपाधम ! तू तो श्रेष्ठ यतियोंके शापसे पहिले ही मारा जा चुका है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ मैं तुझे आज मृत्युके अर्पण करके ब्राह्मणोंकी रक्षा करूँगा, इस बातको कहते २ केशवने युद्धमें उस अस्त्रको हंस पर छोडा ॥ ४० ॥ हंसने वारुणास्त्र मार कर उस अस्त्रको रोक दिया, तब गोविन्दने हंसके ऊपर वायव्यास्त्र छोडा ४१ नृपोत्तम हंसने माहेन्द्र नामक अस्त्र मार कर उस अस्त्रको रोक दिया तब श्रीकृष्णने रणमें अति उग्र माहेश्वरास्त्रको छोड़ा ४२ हंसने उसी समय रौद्रास्त्र छोड़कर उस अस्त्रको रोक दिया तदनन्तर केशवने गान्धर्व राक्षस और पैशाच अस्त्र छोडे ॥४३॥ माधवके चारों अस्त्रोंका वारण करनेके लिए उसने ब्रह्मास्त्र कौवेरास्त्र असुरास्त्र याम्यास्त्र नामक चार अस्त्रोंको फुर्तीसे छोड़ा, तब देवदेव जनार्दनने हंसको लक्ष्य करके ब्रह्मशिर नामक भयंकर अस्त्र छोडा, वह अस्त्र हंस पर बड़ा पराक्रम जमाने लगा ४४-४६ नृपोत्तम हंस उस महारौद्र अस्त्रको देख कर

रौद्रमस्त्रं दृष्ट्वा नृपोत्तम॥हंसोपि तेन राजेंद्र वारयामास तं शरम्॥४७
यमुनाप उपस्पृश्य देवदेवो जनार्दनः। अस्त्रं वैष्णवमादाय शरे स निशिते हरिः॥४८॥ योजयामास भूतात्मा भूतभावनभावनः। येन देवा रणे हत्वा राज्यमापुः पुरासुरान्। तदस्त्रं योजयामास वधार्थं तस्य भूपतेः॥ ४९ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसोपाख्याने हंसकेशवयुद्धे सप्तविंशाधिकशततमोऽध्यायः॥१२७॥

वैशम्पायन उवाच। अथ भीतो महारौद्रमस्त्रं दृष्ट्वा नृपोत्तम। हंसो राजा महाराज निश्चेष्ट इव संबभौ॥ १ ॥ उत्प्लुत्य स रथात्तस्माद्यमुनामभ्यधावत। यत्र कृष्णो हृषीकेशः कालियाहिं ममर्द ह॥ २॥ महाह्रदं महारौद्रं यावत् पातालसंस्थितम्। तावद्दीर्घं महानीलं कालाञ्जननिभं हि यत्॥ ३ ॥ तस्मिन् ह्रदे महाघोरे पपाताथ स हंसकः। हंसे पतति तस्मिंस्तु महान् रावो

डर गया और हे राजेन्द्र! वह भी उस बाणको उस बाणसे रोकने लगा॥ ४७ ॥ तब देवदेव जनार्दनने यमुनाके जलका स्पर्श करके वैष्णवास्त्रको तीक्ष्ण बाणसे अभिमन्त्रित किया जिस अस्त्रसे देवताओंने असुरोंको मार कर राज्य पाया था भूतभावनभावन भूतात्मा श्रीकृष्णने उस राजाका वध करनेके लिए उस अस्त्रको चढाया॥ ४८ ॥ ४९ ॥ एकसौ सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त॥ १२७॥ छ छ छ छ

वैशम्पायनजी कहते हैं, कि-हे नृपोत्तम! राजा हंस महारौद्र अस्त्रको देखते ही डर गया और सुन्न होगया॥ १॥ और वह रथपरसे कूद कर यमुनाकी ओर भागा, जहाँ पर श्रीकृष्णने काली नागका दमन किया था।२। जो महाह्रद महारौद्र था और पाताल तक चला गया था, बड़ा चौड़ा था, महानील था और काले अञ्जनकी समान था॥३॥ उस महाघोर सरोवरमें हंस

बभूव ह ॥ ४ ॥ गिरीणां पात्यमानानां समुद्र इव वज्रिणा । रथादुत्प्लुत्य कृष्णोऽपि तस्योपरि पपात ह ॥ ५ ॥ देवदेवो जगन्नाथो जगद्विस्मापयन्निव । प्राहरत्तं महाबाहुः पादाभ्यामथ केशवः ॥ ६ ॥ पादक्षेपं नृपस्तस्माल्लब्ध्वा हंसो नृपोत्तम । ममार च नृपश्रेष्ठ केचिदेवं वदन्ति हि ॥ ७ ॥ अन्ये पातालमायातो भक्षितः पन्नगैरपि । अद्यापि नैव राजेन्द्र दृष्ट इत्यनुशुश्रुम ॥ ८ ॥ यथापूर्वं जगन्नाथो रथं समुपजग्मिवान् । हते तस्मिन् महाराज धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ९ ॥ अकरोद्राजसूयं च तव पूर्वपितामहः । यदि जीवेदसौ हंसः को नाशयति तं क्रतुम् ॥ १० ॥ स च सर्वास्त्रविन्नित्यं रुद्राल्लब्धवरः प्रभो । क्षणादेव महाराज वार्त्तेयं नामगा हत ॥ ११ ॥ हतो हंसः हतो

गिर पड़ा, हंसके गिरने पर तहाँ बड़ा शब्द हुआ ॥ ४ ॥ और ऐसा प्रतीत होने लगा, कि-मानो इन्द्र वज्रसे पर्वतोंको समुद्रमें गिरा रहा हो, तब श्रीकृष्ण भी रथसे उतर कर उसके ऊपर कूद पड़े ५ और देवदेव जगन्नाथ जगत्को विस्मित करतेहुए उसको अपने पैरोंसे खूँदने लगे ।६। हे नृपश्रेष्ठ ! कुछ पुरुष कहते हैं, कि-श्रीकृष्णके चरणोंके प्रहारसे वह मर गया ॥ ७ ॥ और दूसरे कहते हैं; कि-वह पातालमें डूबता हुआ चला गया और उसको साँपोंने खा लिया, और वह आज तक नहीं दीखा ऐसा हमने सुना है ॥८॥ फिर जगन्नाथ भी पहिलेकी समान अपने रथपर आकर बैठ गए, हे महाराज ! उसके मारे जाने पर तुम्हारे पड़दादा युधिष्ठिरने राजसूय यज्ञ किया था, यदि हंस जीवित होता तो उस यज्ञकी प्रशंसा कौन करता है ।९।१०। हे प्रभो ! वह सब अस्त्रोंको जानता था, उसने रुद्रसे वर पाया था, परन्तु क्षण भरमें यह बात कहनेको ही रह गई ॥११॥ देवलोकमें गन्धर्वपति यह गान करने लगे, कि-रिपुमर्दी श्रीकृष्णने

हंसः कृष्णेन रिपुमर्दिना । जगुर्गन्धर्वपतयो देवलोके दिवा-
निशम् ॥ १२ ॥ कृष्णेन लोकनाथेन विष्णुना प्रभविष्णुना ।
यमुनाया ह्रदे घोरे हंसो निहतः इत्यपि ॥ १३ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिंभकोपा-
ख्याने हंसवधो नामाष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२८ ॥

वैशम्पायन उवाच । श्रुत्वा निहतमत्युग्रं भ्रातरं वीर्यशालि-
नम् । बलदेवं परित्यज्य युध्यमानं महारणे ॥ १ ॥ डिम्भको
वीर्यसम्पन्नो यमुनामनु जग्मिवान् । तमन्वधावद्वेगेन बलभद्रो
हलायुधः ॥ २ ॥ हंसो हि यत्र पतितस्तत्रासौ निपपात ह । यमु-
नायां महाराज विलोड्य जलसंचयम् ॥ ३ ॥ अथ क्रुद्धः स
डिम्भको भ्रामयित्वा जलं बहु । उन्मज्जन्योन्मज्ज्य सहसा
निमज्ज्य च पुनः पुनः ॥ ४ ॥ न ददर्श तदा राजन् भ्रातरं वीर्य-
शालिनम् । उन्मज्ज्याथ महाबाहुर्वासुदेवं विलोक्य च ॥ ५ ॥

हंसको मार डाला ! हंसको मार डाला १२ और यह भी कहने
लगे, कि-प्रभाववान् लोकनाथ विष्णुने यमुनाके भयंकर कुण्डमें
में हंसको मार डाला ॥ १३ ॥ एक सौ अट्ठाईसवाँ अध्याय
समाप्त ॥ १२८ ॥ ✱ ✱ ✱

वैशम्पायनजीने कहा, कि-वीर्यवान् भाईको मरा हुआ सुन
कर वीर्यवान् डिंभक बलदेवजीको लड़ता हुआ छोड़ कर यमुना
की ओर चला, तब हलधारी बलदेवजी भी उसके पीछे वेगसे
दौड़े । १ । २ । परन्तु डिंभक तहाँ कूद ही गया जहाँ हंस कूदा
था और हे महाराज ! वह यमुनाजीके जलको उछालने लगा ३
तदनन्तर डिंभक क्रोधमें भरगया और जलको बारम्बार हिलोड़
कर गोता मारने लगा और निकलने लगा, परन्तु जब उसको
अपने वीर्यवान् भाईके दर्शन नहीं हुए तब वह महाभुज जलमेंसे
निकला फिर श्रीकृष्णकी ओर देख कर वीर्यवान् डिम्भक यह

उवाच वचनं राजन् डिम्भको वीर्यवत्तमः । अरे गोपकदायाद क्वासौ हंस इति स्थितः ॥ ६ ॥ वासुदेवोऽपि धर्मात्मा यमुनां पृच्छ राजक । इत्यब्रवीत् प्रसन्नात्मा वासुदेवः प्रतापवान् ॥७॥ तच्छ्रुत्वा यमुनां भूयः प्रविश्य डिंभकः किल । बहुप्रकारमुद्वीक्ष्य भ्रातरं भ्रातृवत्सलः ॥ ८ ॥ विललाप ततो राजा डिम्भको भ्रान्तमानसः । क्व नु गच्छसि राजेन्द्र विहायैनमबान्धवम् ।६। कुतो भ्रातरितो गच्छेः परित्यज्यैव मामिह । विलप्यैवं नृपश्रेष्ठ डिम्भको भ्रातृवत्सलः ॥ १० ॥ आत्मत्यागे मनः कुर्वन् यमुनाया महाह्रदे । निमज्योन्मज्य सहसा मरणे कृतनिश्चयः ११ हस्तेन जिह्वामाकृष्य भूयो भूयो विलप्य च । ततः समूलामाकृष्य जिह्वां साहसकृत् स्वयम् ॥ १२ ॥ ममारान्तर्जले राजन् डिम्भको नरकाय वै । एवं तु निहते हंसे डिंभके वीर्यशालिनि १३

कहने लगा, कि-अरे गोपबालक ! हंस कहाँ है । ४-६ । तब प्रतापवान् धर्मात्मा वासुदेवने मनमें प्रसन्न होकर, कहा, कि-हे राजन् ! तू यमुनासे बूझ ७ इस बातको सुन कर भ्रातृवत्सल डिंभक यमुनामें फिर प्रवेश करके अनेक रीतिसे अपने भाईको देखने लगा। ८ तदनन्तर राजा डिंभकका मन घबड़ा गया और वह विलाप करने लगा, कि—हे राजेन्द्र ! तुम मुझे बन्धुहीन करके कहाँको चलदिये ।६। हे भ्रातः ! तुम मुझे यहाँ छोड़ कर कहाँको चले गए, हे नृपश्रेष्ठ ! भ्रातृवत्सल डिंभकने इस प्रकार विलाप करके यमुनाके कुण्डमें अपने शरीरको त्यागनेका विचार किया और मरणका निश्चय करके यमुनाजीमें गोते मारने लगा । १० । ११ । तदनन्तर वह अपनी जीभको हाथसे पकड़ कर बारम्बार बाहरको खेंचने लगा, फिर साहस करने वाले डिंभकने जड़सहित जीभ उखाड़ ली और यमुनाजीके जल में नरकगति पानेके लिए मर गया । जब इस प्रकार वीर्यवान्

आगमत् पुण्डरीकाक्षो भूयान् विस्मापयन्निव । ततः प्रीतः प्रसन्नात्मा वासुदेवः प्रतापवान् ॥ १४ ॥ गोवर्धनेऽथ विश्रम्य बलभद्रसहायवान् । किंचित् कालं महाराज पूर्वभुक्तमुवास ह १५

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकवधो नामैकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१२९॥

वैशम्पायन उवाच । यशोदा नन्दगोपश्च कृष्णदर्शनलालसौ । गोवर्द्धनगतं श्रुत्वा वासुदेवं सहाग्रजम् ॥ १ ॥ नवनीतं च दधि च पायसं कृसरं तथा । वन्यं पुष्पं महाराज मयूराङ्गदमेव च ॥ २ ॥ बल्लवैरपरैः सार्द्धं गोपीभिश्च समन्ततः । जग्मतुः सहसा प्रीतौ गोवर्धनमथो नृप ॥ ३ ॥ कचिद्वृक्षे तमासक्तं कृष्णं कृष्णमृगेक्षणम् । ददर्शतुर्महाबाहुं वासुदेवं सहाग्रजम् ॥ ४ ॥ प्रणेमतुः सुसंहृष्टौ तत्र दृष्ट्वा महाबलौ । दर्शयामासतुर्देवौ पायसानि महान्ति च ॥ ५ ॥ तात मातर्व्रजे गोष्ठे कुशलं

डिम्भक और हंस मर गए ।१२।१३। तब पुण्डरीकाक्ष प्राणियों को विस्मित करते हुए फिर आगए, हे महाराज ! फिर प्रतापवान् वासुदेवने बलभद्रजीको साथ ले मनमें प्रसन्न हो कुछ समय तक पहिले भोगे हुए गोवर्धन पर्वत पर निवास किया था । १४ । १५ । एकसौ उन्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१२९॥

वैशम्पायनजीने कहा; कि—यशोदा और नन्द गोपने सुना, कि—वासुदेव और बलरामजी गोवर्धनपर्वत पर आये हैं, तब वह कृष्णके दर्शनकी लालसासे मक्खन दही दूध लप्सी जंगली फूल और मोरका बाजूबन्द ले गोवर्धन पर्वतको चले तब उनके साथमें बल्लव और गोपी भी आई थीं । १-३ । उन्होंने कृष्णमृगकी समान नेत्र वाले कृष्णको अपने महाभुज भाईके साथ एक वृक्षके समीप बैठे हुए देखा ४ महाबली कृष्ण बलदेव नन्द और यशोदाको देख कर परम प्रसन्न हुए और उन्हें

वा स्वगोधनम् । अपि गावः क्षीरवत्यो वत्सा वत्सतराः पितः ६ अपि वा सुशुभं क्षीरमपि गावः सुशोभनाः । अपि वा दारका मातर्वत्सपालाः पिबन्ति च ॥७॥ बहूनि चापि दामानि कीलका अपि वा बहु । तृणानि बहुरूपाणि किं वा सन्ति पितः सदा ८ शकटानि सुगन्धीनि किं वा सन्ति पितर्ध्रुवम् । अपि गोप्यः पुत्रवत्यो दारकान् किमजीजनन् ॥९॥ घटाः किं बहवो मातर-भिन्नाः सर्वतो व्रजे । किं गावः क्षीरमतुलं स्रवन्त्यहरहः पितः११ हैयङ्गवीनं क्षीराणि दधि वा किमजीजनन् । गोधनं सर्वमेवेदं नीरोगं प्रतिपद्यते ॥११॥ नन्द उवाच । सर्वमेतद्यदुश्रेष्ठ नीरोगं बहुशः प्रभो । कुशलं गोधनस्यैव सर्वकालेषु केशव ॥ १२ ॥ रक्षणाच्चव देवेश सदा कुशलिनो वयम् । सगोपनाःसवत्साश्च

प्रणाम करने लगे, फिर उन्होंने बहुतसे दुग्धके पदार्थोंको देखा५ (और कहने लगे, कि-, हे तात ! हे मातः ! व्रजमें कुशल है गोठमें कुशल है अपना गोधन तो अच्छा है, गौएँ दूध तो देती हैं और हे पिता! बछडे बछियें तो बनजाते हैं ६दूध अच्छा तो होता है, गौएँ शोभन तो रहती हैं, हे मातः ! बच्चोंको और बछड़ोंकी रक्षा करने वालकों भी क्या दूध मिलता है ७ हे पितः ! क्या आपके यहाँ बहुतसी रस्सियें खूँटे और अनेक प्रकारका तृण तो होता है ८ और हे पितः ! क्या आपके शकट सुगन्धित रहते हैं, क्या गोपियें पुत्र वाली हैं और क्या उन के बालक होते रहते हैं । ९ । और हे मातः ! व्रजमें घड़े चटके हुए तो नहीं रहते हैं और हे पितः ! गौएँ प्रतिदिन अतुल क्षीर तो देती हैं ॥ १० ॥ क्या वह मक्खन दूध और दहीको दिये जाती हैं गोधन यदि नीरोग रहता है, तो यह सब मिलता रहता है ११ नन्दजीने कहा, कि- हे यदुश्रेष्ठ ! हे प्रभो ! यह सब नीरोग हैं और हे केशव ! गोधन भी सर्वदा कुशलपूर्वक रहता है १२ हे देवेश ! आपकी रक्षा

नीरोगा इव केशव ॥ १३ ॥ एकमेव सदा दुःखं न त्वां द्रक्ष्यासि केशव । यदेतत् केवलं दुःखमिति धीः क्षीयते सदा ॥ १४ ॥ वैशम्पायन उवाच । एवमादि विलप्यन्तं गच्छेत्याह स केशवः । यशोदां पुनराहेदं मातर्गच्छ गृहं प्रति ॥ १५ ॥ ये च त्वां कीर्तयिष्यन्ति ते च स्वर्गमवाप्नुयुः । ये केचित्त्वां नमस्यन्ति ते मे प्रियतराः सदा ॥ १६ ॥ मद्भक्ताः सर्वदा सन्तु गच्छेत्याह च तां हरिः । इत्युक्त्वा पितरौ देवौ वासुदेवः सनातनः ॥ १७ ॥ गाढमालिङ्ग्य तौ भीतौ प्रेषयामास केशवः । यशोदा नन्दगोपश्च जग्मतुः स्वगृहं प्रति ॥ १८ ॥ ततः कृष्णो हृषीकेशो यादवैः सह वृष्णिभिः । गन्तुमैच्छत्तदा विष्णुः पुरीं द्वारवतीं किल १९

करनेसे हम भी कुशलक्षेमसे रहते हैं, हे केशव ! हम गोधन और बछड़ोंसहित सदा नीरोग रहते हैं १३ परन्तु मुझे एक ही दुःख है, कि—आपको मैं (अपने सामने) नहीं देखा करता हूँ यही हमें एक बड़ा भारी दुःख है । इससे हमारी बुद्धि सदा विचलित होती रहती है १४ वैशम्पायनजीने कहा, कि-जब नन्दजी इस प्रकार विलाप कर रहे थे तब केशवने उनसे कहा, कि-आप जाइये, फिर केशव अपनी मातासे कहने लगे, कि—हे मातः ! तुम अब घरको जाओ १५ जो आपका कीर्तन करेंगे, उनको स्वर्ग मिलेगा; जो तुम्हारी प्रशंसा करेंगे, वह सब मेरे सर्वदा प्रिय रहेंगे १६ तुम सदा मेरे भक्त रहो, इस प्रकार कह कर उन्होंने अपनी मातासे कहा, कि-आप जाइये, सनातन वासुदेव केशवने माता पितासे इस प्रकार कह आलिंगन कर उनको बिदा कर दिया, तब नन्दगोप और यशोदा अपने घरको चले गए। १७ । १८ । तदनन्तर हृषीकेश विष्णुने भी यादव और वृष्णियोंको साथमें लेकर द्वारकापुरीमें जानेका विचार किया १९ जो पुरुष सावधानचित्तसे इसको पढ़ता है वा सुनता

य एतच्छृणुयान्नित्यं पठेद्वापि समाहितः । पुत्रवान् धनवांश्चैव अन्ते मोक्षं च गच्छति ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि यशोदानन्दगोपवल्लभद्रकृष्णसमागमो नाम त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥

वैशम्पायन उवाच । गच्छन्नथ महाविष्णुः पुष्करं प्राप्य यादवैः । अपश्यन्मुनिमुख्यांस्तु पुष्करस्थान् नृपोत्तम ॥ १ ॥ ते समेत्य महादेवमृषयो वीतमत्सराः । अर्घादिसमुदाचारं कृत्वैनं यादवोत्तमम् ॥२॥ प्रोचुर्विश्वेश्वरं विष्णुं भूतभव्यभवत्प्रभुम् । अत्यद्भुतमिदं विष्णो तव वीर्यं जनार्दन॥३॥येन तौ निहतौ युद्धे हंसो डिभक एव च । यो विचक्रो दुराधर्षो देवैरपि सुदुःसहः४ संगरे निहतो देव दुःसाध्य इति नो मतिः । क्षेमो नः सर्वकार्येषु चरतां तप उत्तमम् ॥ ५ ॥ निष्कल्मषा भविष्यामस्तव

है वह पुत्रवान् और धनवान् होता है और अन्तमें मोक्ष पाता है ॥२०॥ एक सौ तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १३० ॥ *

वैशम्पायनजीने कहा, कि-हे नृपोत्तम ! महाविष्णु जब वृष्णियोंके साथ चलते २ पुष्कर पर पहुँचे तो उन्होंने पुष्करमें बैठे हुए मुख्य २ मुनियोंको देखा १ उन मत्सररहित ऋषियोंने एकत्रित होकर यादवोत्तम महादेव विष्णुका अर्घ देकर सत्कार किया ॥ २ ॥ तदनन्तर वे भूत भविष्यत् और वर्तमानके स्वामी विश्वेश्वर विष्णुसे कहने लगे, कि-हे जनार्दन विष्णो ! आपका वीर्य अति अद्भुत है ३ आपने उस वीर्यसे युद्धमें हंस और डिंभकको मार डाला और देवताओंसे भी दुःसह दुराधर्ष विचक्रको भी मार डाला ॥ ४ ॥ आपने उसको युद्धमें मार डाला, हमारा विचार है; कि-आपने यह बड़ा दुःसाध्य कर्म किया है अब उत्तम तप करनेसे सब कामोंमें हमारा कल्याण होगा ५ हे हरे ! आपका स्मरण करनेसे हम निष्पाप होजावेंगे

संस्मरणाद्धरे । त्वं हि सर्वस्य दुःखस्य हर्ता त्वां ध्यायतो सदा६
त्वदनुस्मरणं जन्तोः सदा पुण्यप्रदं प्रभो । त्वं हि नः सततं
धाता विधाता तपसो हरे ॥ ७ ॥ त्वमोंकारो वषट्कारस्त्वं
यज्ञस्त्वं पितामहः । त्वं ज्योतिर्ब्रह्मणो मूर्तिस्त्वं ब्रह्मा रुद्र एव
च ॥ ८ ॥ प्राणस्त्वं सर्वभूतानामन्तरात्मेति कथ्यते । उपास्यः
सर्वभूतानां यज्ञैर्दानैर्जगत्पते ॥ ९ ॥ नमो विश्वविसृजे देव
नमस्ते विश्वमूर्तये। पाहि लोकमिमं देव हत्वा ब्रह्मद्विषः सदा१०
स तथेति हरिर्विष्णुर्ययौ द्वारवतीं पुरीम् । अवसद्वृष्णिभिः सार्द्धं
स्तूयमानः समागधैः ॥ ११ ॥ इयं च देवदेवस्य चेष्टा हि जन-
मेजय । प्रोक्ता ते पृच्छते राजन् किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥१२॥
इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि द्वारकायां कृष्ण-
प्रत्यागमनं नामैकत्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३१ ॥

जो आपका स्मरण करते हैं, आप उनके दुःखोंको सर्वदा हरते रहते हैं६हे प्रभो! आपका स्मरण करना प्राणीका सदा कल्याण करने वाला है, हे हरे ! आप ही हमारे तपके धाता और विधाता हैं ॥७॥ आप ही ओंकार हैं, वषट्कार हैं और आप ही पितामह हैं, यज्ञ हैं, आप ज्योति हैं, ब्रह्ममूर्त्ति हैं और ब्रह्मा तथा रुद्र हैं ॥ ८ ॥ आप सब प्राणियोंके प्राण हैं और अन्तरात्मा कहलाते हैं, हे जगत्पते ! सब भूत यज्ञ और दानसे आप की उपासना करते हैं ॥९॥ हे विश्वकी रचना करने वाले देव ! आपको प्रणाम है ! विश्वमूर्त्तिको प्रणाम है, हे देव ! आप ब्रह्मद्वेषियोंको मार कर सर्वदा इस लोककी रक्षा करिये ।१०। तब विष्णुके अवतार हरि तथास्तु कह कर द्वारकापुरीको चले गए और मागधोंसे स्तुति सुनतेहुए वृष्णियोंके साथ द्वारकापुरीमें रहने लगे ११ जनमेजय ! तुम्हारे बूझने पर देवदेवकी यह चेष्टा मैंने तुमसे कहदी, हे राजन्! अब तुम और क्या सुनना चाहते हो१२

जनमेजय उवाच । भगवन् केन विधिना श्रोतव्यं भारतं बुधैः । फलं किं के च देवाश्च पूज्या वै पारणेष्विह ॥ १ ॥ देयं समाप्ते भगवन् किं च पर्वणि पर्वणि । वाचकः कीदृशश्चात्र यष्टव्यस्तद्ब्रवीहि मे ॥ २ ॥ वैशम्पायन उवाच । शृणु राजन् विधिमिमं फलं यच्चापि भारतात् । श्रुताद्भवति राजेन्द्र यत्त्वं मामनुपृच्छसि ॥ ३ ॥ दिवि देवा महीपाल क्रीडार्थमवनिं गताः । कृत्वा कार्यमिदं चैव ततश्च दिवमागताः ॥ ४ ॥ हन्त यत्ते प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व समाहितः । ऋषीणां देवतानां च सम्भवं वसुधातले ॥५॥अत्र रुद्रास्तथा साध्या विश्वेदेवाश्च शाश्वताः। आदित्याश्चाश्विनौ देवौ लोकपाला महर्षयः ॥ ६ ॥ गुह्यकाश्च सगन्धर्वा नागा विद्याधरास्तथा । सिद्धा धर्मः स्वयंभूश्च मुनिः

जनमेजयने कहा, कि—हे भगवन् ! पण्डितोंको यह महाभारत किस विधिसे सुनना चाहिए, इसके सुननेका क्या फल है, और इसकी पारणा करनेमें किन २ देवताओंका पूजन करना चाहिये ? ॥१॥ हे भगवन् ! पर्व २ के समाप्त होने पर क्या देना चाहिये ? और इसकी कथाके लिए कैसा कथावाचक बुलाना चाहिये, यह मुझे सुनाइये ॥ २ ॥ वैशम्पायनने कहा, कि—हे राजन् ! भारतके सुननेकी इस विधिको सुनो और हे राजेन्द्र ! भारतके सुननेसे जो फल होता है, जैसा कि-तूने मुझसे बूझा है, उसको भी सुन ॥ ३ ॥ हे राजन् ! स्वर्गमें जो देवता क्रीड़ा करनेके लिये पृथ्वी पर आये थे और वे इस कामको करके फिर स्वर्गमें पहुँच गये हैं ॥ ४ ॥ इस भूतल पर ऋषियोंके और देवताओंके जन्मके विषयमें तुमसे मैं जो कुछ कहता हूँ उसको भरे ! तू ध्यान देकर सुन ॥ ५ ॥ यहाँ रुद्र, साध्य, शाश्वत (सनातन कालके) विश्वेदेवा, आदित्य, दोनों अश्विनीकुमार, लोकनाथ तथा महर्षि, ॥ ६ ॥ और गुह्यक, गन्धर्व, नाग तथा

कात्यायनो वरः ॥ ७ ॥ गिरयः सागरा नद्यस्तथैवाप्सरसां गणाः । ग्रहाः संवत्सराश्चैव अयनान्यृतवस्तथा ॥ ८ ॥ स्थावरं जङ्गमं चैव जगत् सर्वं सुरासुरम् । भारते भरतश्रेष्ठ एकस्थमिह दृश्यते ॥ ६ ॥ तेषां श्रुतिप्रतिष्ठानां नामकर्मानुकीर्तनात् । कृत्वापि पातकं घोरं सद्यो मुच्येत मानवः ॥ १० ॥ इतिहासमिमं श्रुत्वा यथावदनुपूर्वशः । संयतात्मा शुचिर्भूत्वा पारं गत्वा च भारते ॥ ११ ॥ तेषां श्राद्धानि देयानि श्रुत्वा भारत भारतम् । ब्राह्मणेभ्यो यथाशक्त्या भक्त्या च भरतर्षभ ॥ १२ ॥ महादानानि देयानि रत्नानि विविधानि च । गावः कांस्योपदोहाश्च कन्याश्चैव स्वलंकृताः ॥ १३ ॥ सर्वकामगुणोपेता यानानि विविधानि च । भवनानि विचित्राणि भूमिर्वासांसि काञ्चनम् ॥१४॥ वाहनानि च देयानि हया मत्ताश्च वारणाः ।

विद्याधर, सिद्ध, स्वयं धर्म और स्वयंभू, श्रेष्ठ मुनि कात्यायन७ पर्वत सागर, नदियें तथा अप्सराओंके समूह, ग्रह, सम्वत्सर, अयन तथा ऋतु ८ स्थावर और जङ्गम सकल जगत्, देवता और असुर हे भरतश्रेष्ठ! इस भारतमें एक ही जगह इकट्ठे हुए प्रतीत होते हैं ६ उनकी प्रतिष्ठाकी कथाको सुनकर तथा उनके नाम और कर्मोंका कीर्त्तन करके मनुष्य चाहे जैसे घोर पातक करने पर भी उससे एक साथ मुक्त होजाता है १० मनुष्य मन को नियममें रखकर पवित्र होकर इस इतिहासको यथा विधि क्रमसे सुनकर और भारतके पार पहुँच । ११ । हे भरतवंशी हे भरतसत्तम! भारतको सुनकर उसमें सुनेहुए वीरोंके श्राद्ध करे और शक्ति तथा भक्तिके अनुसार ब्राह्मणोंको १२ भाँति २ के रत्न, गौएँ दूध दूनेके काँसीके पात्र तथा अच्छे प्रकार गहनोंसे सजी हुई और सब कामनाओंको पूर्ण करनेवाली गुणवती कन्यायें भाँति २ की सवारियें, विचित्र स्थान, भूमि, वस्त्र और

शयनं शिबिकाश्चैव स्यन्दनाश्च स्वलंकृताः ॥ १५ ॥ यद्यद्
गृहे वरं किंचिद्यद्दस्ति महद्वसु । तत्तद्देयं द्विजातिभ्य आत्मा
दाराश्च सूनवः ॥१६॥ श्रद्धया परया दत्तं क्रमशस्तस्य पारगः।
शक्तितः सुमना हृष्टः शुश्रूषुरविकल्पकः ॥ १७ ॥ सत्यार्जवरतो
यत्तः शुचिः शौचपरायणः । श्रद्दधानो जितक्रोधो यथा सिद्धयति
तच्छृणु ॥ १८ ॥ शुचिः शीलान्विताचारः शुक्लवासा जिते-
न्द्रियः । संस्कृतः सर्वशास्त्रज्ञः श्रद्दधानोऽनसूयकः ॥ १९ ॥
रूपवान् सुभगो दान्तः सत्यवादी जितेन्द्रियः । दानमानगृहीत-
श्च कार्यो भवति वाचकः ॥ २० ॥ अविलम्बमना यत्तमद्रुतं

सुवर्णके बड़े २ दान देय १३-१४ तथा भाँति २ के वाहन
घोड़े और मतवाले हाथी, शय्याएँ पालकियें और उत्तम रीति
से सजे हुए रथोंके दान देय १५ घरमें जो २ वस्तु श्रेष्ठ और
बडी हो वह ब्राह्मणोंको दानमें देय, अपना आपा, स्त्रियें तथा
पुत्रोंको भी देदेय ॥१६॥ परम श्रद्धासे क्रमानुसार उसके पार
पहुँचनेवाला शुश्रूषु निर्मल मन रखकर, प्रसन्न होते हुए, मन
में विकल्प न करके शक्तिके अनुसार ब्राह्मणोंको दान देय १७
मनुष्य सत्य और सरलताका प्रेमी, इन्द्रियोंका दमन करने वाला
पवित्र चित्त पवित्र आचरणवाला, श्रद्धावान् और क्रोधको जीतने
वाला कैसे होता है, उसको सुन । १८ । पवित्रतासे रहनेवाला,
शीलवान, आचारवान्, श्वेतवस्त्रधारी, जितेन्द्रिय, संस्कारी,
सब शास्त्रोंको जाननेवाला श्रद्धावान् किसीसे डाह न करनेवाला
रूपवान् सौभाग्यवान्, मनको वशमें रखनेवाला, सत्यवादी जिते-
न्द्रिय और जिसको दान और मान मिलचुका हो, ऐसे मनुष्य
को भारतका कथावाचक बनाना चाहिये ॥ १९ ॥ २० ॥ कथा
कहनेवाला विलम्ब न लगावे, परिश्रम न माने, शीघ्रता न करे
धैर्यवान् हो उत्साही हो, अक्षरों और पदोंको उलझाकर न बोले

धीरमूर्जितम् । असंसक्ताक्षरपदं न स्वरभावसमन्वितम् ॥२१॥
त्रिषष्टिवर्णसंयुक्तमष्टस्थानसमीरितम् । वाचयेद्वाचकः स्वस्थः
स्वाधीनः सुसमाहितः ॥ २२ ॥ नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव
नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥ २३ ॥
ईदृशाद् वाचकाद् राजञ्छ्रुत्वा भारत भारतम्। नियमस्थः शुचिः
श्रोता शृण्वन् सः फलमश्नुते ॥ २४ ॥ पारणं प्रथमं प्राप्य
द्विजान् कामैश्च तर्पयन् । अग्निष्टोमस्य यागस्य फलं वै लभते
नरः ॥ २५ ॥ अप्सरोगणसंकीर्णं विमानं लभते महत् । प्रहृष्टः
स तु देवैश्च दिवं याति समाहितः ॥ २६ ॥ द्वितीयं पारणं
प्राप्य अतिरात्रफलं लभेत् । सर्वरत्नमयं दिव्यं विमानमधिरो-
हति ॥ २७ ॥ दिव्यमाल्याम्बरधरो दिव्यगन्धविभूषितः ।

अच्छे स्वरसे पढ सकता हो और भावार्थ समझा सके ॥२१॥
तिरेसठ वर्णोंका, आठों स्थानोंसे अच्छे प्रकारसे उच्चारण कर
सकता हो, ऐसा कथावाचक स्वस्थताके साथ सुन्दर आसन पर
बैठकर बहुत सावधानीके साथ कथा सुनावे २२ नारायण, नरों
में श्रेष्ठ नर और सरस्वती देवीको प्रणाम करके महाभारतका
कीर्तन करे २३ हे भरतवंशी राजन् ! ऐसे कथा बाँचने वालेसे
महाभारतकी कथा सुने, नियमोंका पालन करने वाला, पवित्र
श्रोता कथाको सुनकर इसप्रकार फल पाता है २४ पहले पारण
को पाकर ब्राह्मणोंको तृप्त करनेवाला मनुष्य अग्निष्टोम यज्ञके
फलको पाता है२५उसको अप्सराओंके समूहोंसे भराहुआ बड़ा
भारी विमान मिलता है और वह बड़ा हर्ष पाता हुआ एक
ध्यान होकर देवताओंके साथ स्वर्गमें जाता है २६ जब दूसरा
पारण आता है तब उसको अतिरात्रका फल मिलता है वह रत्नों
से पूरे जडेहुए विमानोंमें बैठकर जाता है २७ दिव्य मालाओं
और वस्त्रोंवाला, दिव्य गन्धोंसे शोभायमान और दिव्य बाजू-

दिव्याङ्गदधरो नित्यं देवलोके महीयते ॥ २८ ॥ तृतीयं पारणं प्राप्य द्वादशाहफलं लभेत् । वसत्यमरसंकाशो वर्षाण्ययुतशो दिवि ॥ २९ ॥ चतुर्थे वाजपेयस्य पञ्चमे द्विगुणं फलम् । उदितादित्यसंकाशं ज्वलन्तमनलोपमम् ॥ ३० ॥ विमानं विबुधैः सार्द्धमारुह्य दिवि गच्छति । वर्षायुतानि भवने शक्रस्य दिवि मोदते३१षष्ठे द्विगुणमस्तीति सप्तमे त्रिगुणं फलम् । कैलासशिखराकारं वैदूर्यमणिवेदकम् ॥३२॥परिक्षिप्तं च बहुधा मणिविद्रुमभूषितम् । विमानं समधिष्ठाय कामगं साप्सरोगणम् ॥ ३३ ॥ सर्वाँल्लोकान्विचरते द्वितीय इव भास्करः । अष्टमे राजसूयस्य पारणे लभते फलम् ॥ ३४ ॥ चन्द्रोदयनिभं रम्यं विमानमधि-

---

बन्दोंको धारण करनेवाला वह नित्य देवलोकमें पूजा जाता है २८ तीसरे पारण पर पहुँचकर द्वादशाह यज्ञके फलको पाता है और देवताओंकी समान होकर दश हजार वर्ष तक स्वर्गमें बसता है २९ चौथे पारण पर पहुँचकर वाजपेय यज्ञका और पाँचवें पारण पर दो वाजपेयका फल पाता है और उदय होते हुए सूर्यकी समान तथा जलतेहुए अग्निकी समान दमकतेहुए विमानोंमें देवताओंके साथ चढकर स्वर्गमें जाता है और स्वर्गमें दश सहस्र वर्ष तक इन्द्रके भवनमें आनन्द भोगता है ३०–३१ छठे पारणके समय पाँचवेंसे दुगने और सातवें पारणके समय पाँचवेंसे त्रिगुण फलको पाता है और कैलासके शिखरके आकारवाले, वैदूर्यमणिकी वेदिकावाले, भाँति २ के अनेकों मणि मूँगोंसे शोभायमान, इच्छानुसार चलनेवाले और अप्सराओं के झुण्डोंसे भरे विमानमें बैठकर, दूसरा सूर्यसा सब लोकोंमें घूमता है,आठवें पारण पर उसको राजसूय यज्ञका फल मिलता है ३२–३४ वह उदय होतेहुए चन्द्रमाकी समान रमणीय और चन्द्रमाकी किरणोंकी समान श्वेत तथा मनकी समान वेग

रोहति । चन्द्ररश्मिप्रतीकाशैर्हयैर्युक्तं मनोजवैः ॥ ३५ ॥ सेव्यमानो वरस्त्रीणां चन्द्रकान्ततरैर्मुखैः । मेखलानां निनादेन नूपुराणां च निःस्वनैः ॥ ३६ ॥ अंके परमनारीणां सुखं सुप्तो विबोध्यते । नवमे क्रतुराजस्य वाजिमेधस्य भारत ॥ ३७ ॥ काञ्चनस्तम्भनिर्व्यूहं वैदूर्यकृतवेदिकम् । जाम्बूनदमयैर्दिव्यैर्गवाक्षैः सर्वतो वृतम् ॥ ३८ ॥ सेवितं चाप्सरःसंघैर्गन्धर्वैर्दिविचारिभिः । विमानं समधिष्ठाय श्रिया परमया ज्वलन् ॥ ३९ ॥ दिव्यमाल्याम्बरधरो दिव्यचन्दनभूषितः । मोदते दैवतैः सार्द्धं दिवि देव इवापरः ॥ ४० ॥ दशमं पारणं प्राप्य द्विजातीनभिवन्द्य च । किंकिणीजालनिर्घोषं पताकाध्वजशोभितम् ॥४१॥ रत्नवेदिकसंबाधं वैदूर्यमणितोरणम् । हेमजालपरिक्षिप्तं गवाल-

वाले घोड़ोंसे जुते विमानमें बैठता है ॥ ३५ ॥ चन्द्रमासे अधिक सुन्दर मुखवाली स्त्रियोंमेंकी श्रेष्ठ स्त्रियें उसकी सेवा करती हैं और श्रेष्ठ स्त्रियोंकी गोदमें सुखसे सोयाहुआ वह स्त्रियोंकी कमरमें पहरी हुई तागड़ीके शब्दसे तथा उनके पैरोंमें पहरे हुए नूपुरोंकी झनकारसे जागता है, हे भारत! जब नवम पारणके पार पहुँच जाता है तब यज्ञोंके राजा अश्वमेधके फलको पाता है ॥३६–३७॥ सोनेके खंभोंवाली वैदूर्यमणिसे बनी वेदीवाले, सुवर्णकी दिव्य गोखोंसे चारों ओरसे घिरेहुए और अप्सरायें, गन्धर्व तथा आकाशमें विचरनेवाले जिसमें सेवा करते हैं ऐसे विमानमें परमशोभासे प्रकाशित होता हुआ बैठकर दिव्य मालायें और वस्त्रोंको धारण करनेवाला तथा दिव्य चन्दनसे लिप्त हुआ वह पुरुष मानो दूसरा इन्द्र देवता हो, इसप्रकार स्वर्गमें देवताओंके साथ आनन्द करता है ३८-४० दशवां पारणं पाकर और ब्राह्मणोंको प्रणाम करके, घूँघरुओंकी झालरके झंकारवाले, पताका और ध्वजाओंसे शोभायमान, रत्नोंकी

वज्रमीशुभम् ॥ ४२ ॥ गन्धर्वैर्गीतकुशलैरप्सरोभिर्निषेवितम् । विमानं सुकृतावासं सुखेनैवोपपद्यते ॥ ४३ ॥ मुकुटेनार्कवर्णेन जाम्बूनदविभूषिणा । दिव्यचन्दनदिग्धाङ्गो दिव्यमाल्यविभूषितः ॥४४॥ दिव्याँल्लोकान् प्रचरति दिव्यैर्भोगैः समन्वितः । विबुधानां प्रसादेन श्रिया परमया युतः ॥४५॥ अथ वर्षगणानेवं स्वर्गलोके महीयते । ततो गन्धर्वसहितः सहस्राण्येकविंशतिः ॥ ४६ ॥ पुरन्दरपुरे रम्ये शक्रेण सह मोदते । दिव्ययानविमानेषु लोकेषु विविधेषु च ॥ ४७ ॥ दिव्यनारीगणाकीर्णो निवसत्यमरो यथा । ततः सूर्यस्य भवने चन्द्रस्य भवने तथा । ४८ । शिवस्य भवने राजन् विष्णोर्याति सलोकताम् । एवमेतन्महाराज नात्र कार्या विचारणा ४९ श्रद्दधानेन वै भाव्य-

बैठकोंसे भरे, वैदूर्यमणिकी तोरण तथा सुनहरी जालवाले, मूँगोंकी छज्जोंमें लगी मैंतवाले, गानेमें चतुर गन्धर्वो और अप्सराओंसे शोभायमान तथा पुण्यवानोंका निवासस्थानरूप विमान उसको मिलता है ॥ ४१–४३ ॥ अग्निकी समान रङ्गके मुकुटसे और सोनेके आभूषणोंसे शोभायमान, दिव्य चन्दनसे लिप्त अङ्गोंवाला, दिव्य मालाओंसे सजाहुआ ४४ देवताओंकी कृपासे दिव्य भोगोंको भोगताहुआ और परम श्रीसे युक्त वह दिव्य लोकमें विचरता है ४५ इसप्रकार बहुतसे वर्षों तक स्वर्ग में उसकी प्रतिष्ठा होती है, फिर गन्धर्वोंके साथ इक्कीस हजार वर्षों तक ४६ इन्द्रके रमणीय नगरमें इन्द्रके साथ आनन्द करता है, दिव्य सवारियों और विमानोंमें तथा अनेकों लोकोंमें दिव्य स्त्रियोंसे घिराहुआ वह तहाँ एक देवताकी समान निवास करता है, फिर सूर्यके भवनमें फिर तिसीप्रकार चन्द्रमाके भवन में ४७–४८ तथा शिवके लोकमें रहता है और हे राजन् ! अन्तमें विष्णुके लोकमें जाता है, हे राजन् ! यह ठीक ही है, इसमें जरा

मेवमाह गुरुर्मम । वाचकस्य तु दातव्यं मनसा यद्यदिच्छति ५० हस्त्यश्वरथयानानि वाहनं च विशेषतः । कटके कुण्डले चैव ब्रह्मसूत्रं तथापरम् ॥ ५१ ॥ वस्त्रं चैव विचित्रं च गन्धं चैव विशेषतः । देववत् पूजयेत्तं तु विष्णुलोकमवाप्नुयात् ॥ ५२ ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि यानि देयानि भारते । वाच्यमानेथ विप्रेभ्यो राजन् पर्वणि पर्वणि ॥५३॥ जातिं देशं च सत्यं च माहात्म्यं भरतर्षभ । धर्मवृत्तिं च विज्ञाय क्षत्रियाणां नराधिप ॥ ५४ ॥ स्वस्ति वाच्य द्विजानादौ ततः कार्यं प्रवर्तयेत् । समाप्ते पर्वणि ततः स्वशक्त्या तर्पयेद्द्विजान् ॥ ५५ ॥ आदौ तु वाचकं चैव वस्त्रगन्धसमन्वितम् । विधिवद्भोजयेद्राजन् मधुपायससंयुतम् ५६ ततो मूलफलप्रायं पायसं मधुसर्पिषा । आस्तीके भोजयेद्राजन्

भी विचार नहीं करना चाहिये ४९ श्रद्धावान् पुरुषके लिए ऐसा ही होना है, यह बात मुझसे मेरे गुरुने कही है और कथा कहने वालेके मनमें जो इच्छा हो उसको वह पदार्थ देना चाहिये ।५०। हाथी, घोड़ा, रथ, सवारी, मुख्यरूपसे वाहन, कड़े, कुण्डल तथा ब्रह्मसूत्र, वस्त्र तथा विशेषरूपसे भाँति २ के सुगन्धित पदार्थ देय, उसकी देवताकी समान पूजा करे तो विष्णुलोक मिलता है ॥ ५१-५२ ॥ हे राजन् ! तदनन्तर जिस समय भारतकी कथा बाँची जारही हो उस समय पर्व २ पर ब्राह्मणोंको जो दान दिये जाते हैं, उनके विषयमें मैं तुमसे कहता हूँ ॥ ५३ ॥ हे भरतसत्तम राजन ! उनकी जाति, देश सत्यवादीपन, और माहात्म्यको तथा क्षत्रियोंके धर्म और आजीविकाको जानकर, उनसे स्वस्तिवाचन करावे, फिर कार्यका आरम्भ करे, तदनन्तर जब एक २ पर्व पूरा होताजाय उस समय ब्राह्मणोंका पूजन करे ॥ ५४-५५ ॥ हे राजन् ! प्रारम्भमें तो वाचकको वस्त्र और गन्धसे पूजकर विधिपूर्वक मिष्टान्न और खीरका भोजन

दद्याच्चैव गुडौदनम् ॥ ५७ ॥ अपूपैश्चैव पूपैश्च मोदकैश्च समन्वितम् । सभापर्वणि राजेन्द्र हविष्यं भोजयेद्द्विजान् ५८ आरण्यके मूलफलैस्तर्पयेच्च द्विजोत्तमान् । अरणीपर्व आसाद्य जलकुम्भान् प्रदापयेत् ॥५६॥ तर्पणानि च मुख्यानि वन्यमूलफलानि च । सर्वकामगुणोपेतं विप्रेभ्योऽन्नं प्रदापयेत् ॥ ६० ॥ विराटपर्वणि तथा वासांसि विविधानि च । उद्योगे भरतश्रेष्ठ सर्वकामगुणान्वितम् ॥६१॥ भोजनं भोजयेद्विप्रान् गन्धमाल्यैरलंकृतान् । भीष्मपर्वणि राजेन्द्र दत्त्वा यानमनुत्तमम् ॥ ६२ ॥ ततः सर्वगुणोपेतमन्नं दद्यात् सुसंस्कृतम् । द्रोणपर्वणि विप्रेभ्यो भोजनं परमार्चितम् ॥६३॥ शराश्च देया राजेन्द्र चापान्यसि-

---

करावे ५६ फिर (आदिपर्व) आस्तीक पर्वकी कथा होय उस समय मुख्यरूपसे फल, मूल मिष्टान्न और घीके साथ खीरका भोजन करावे तथा हे राजन् ! गुड़ भातका भोजन करावे ५७ हे राजेन्द्र ! जब सभापर्वकी कथा होती होय उस समय मालपुए पूरी और मोदकोंका हविष्य ब्राह्मणोंको जिमावे,५८ वनपर्वकी समाप्तिके समय उत्तम ब्राह्मणोंको फल मूल खिलाकर सन्तुष्ट करे, ।वनपर्व पूरा होनेके समय जलके भरेहुए कुम्भोंका दान करे ५६ तृप्त करनेवाले वनके मुख्य मुख्य फल मूल और सकल गुणोंवाला भोजन ब्राह्मणोंको इच्छानुसार खिलावे ६० विराटपर्वकी समाप्ति होने पर भाँति २ के वस्त्र देय, हे भरतसत्तम ! उद्योगपर्वके अन्तमें सकल गुणोंवाला भोजन, गन्ध और मालाओंसे सजायेहुए ब्राह्मणोंको इच्छानुसार खिलावे, हे राजेन्द्र ! भीष्मपर्वकी समाप्तिमें उत्तम सवारियें देय।६१।६२। फिर सब प्रकारके गुणोंवाला और उत्तम प्रकारसे राँधाहुआ अन्न देय, द्रोणपर्व पूरा होनेके समय ब्राह्मणोंको अत्यन्त स्वादिष्ट भोजन देय ॥६३॥ हे राजेन्द्र ! कर्णपर्वके अन्तमें गनको

वरास्तथा । कर्णपर्वण्यपि तथा भोजनं सार्वकामिकम् ॥ ६४ ॥ विप्रेभ्यः संस्कृतं सम्यक् दद्यात् संयतमानसः । शल्यपर्वणि राजेन्द्र मोदकैः सगुडौदनैः ॥ ६५ ॥ अपूपैस्तर्पयेच्चैव सर्वमन्नं प्रदापयेत् । गदापर्वण्यपि तथा मुद्गमिश्रं प्रदापयेत् ॥ ६६ ॥ स्त्रीपर्वणि तथा रत्नैस्तर्पयेत्तु द्विजोत्तमान् । घृतौदनं पुरस्ताच्च ऐषिके दापयेत् पुनः ॥ ६७ ॥ ततः सर्वगुणोपेतमन्नं दद्यात् सुसंस्कृतम् । शान्तिपर्वण्यपि गते हविष्यं भोजयेद् द्विजान् ॥ ६८ ॥ आश्वमेधिकमासाद्य भोजनं सार्वकामिकम् । तथाश्रमनिवासे तु हविष्यं भोजयेद् द्विजान् ॥ ६९ ॥ मौसले सार्वगुणिकं गन्धमाल्यानुलेपनम् । महाप्रस्थानिके तद्वत्सर्वकामगुणान्वितम् ७० स्वर्गपर्वण्यपि तथा हविष्यं भोजयेद् द्विजान् । हरिवंशसमाप्तौ

संयममें रखकर बाण, धनुष, उत्तम तलवारें तथा सकल कामनाओंको पूर्ण करनेवाला भोजन अच्छे प्रकारसे राँध कर ब्राह्मणोंको अच्छे प्रकारसे देय और हे राजेन्द्र! शल्यपर्वके अन्तमें, लड्डू गुड़, भात, मालपुए और तृप्त करनेवाला अन्न देय तथा गदापर्वके अन्तमें मूँग मिलाहुआ अन्न देय ।६४।६६। स्त्रीपर्वके अन्तमें उत्तम ब्राह्मणोंको रत्नोंसे सन्तुष्ट करे और ऐषीकपर्वके अन्तमें पहले घृत और भात देय फिर सकल प्रकारके गुणोंवाला और उत्तम प्रकारसे राँधा हुआ अन्न देय, फिर शान्तिपर्वके अन्तमें ब्राह्मणोंको हविष्य भोजन करावे ६७ फिर आश्वमेधिकपर्व आवे तब सकल कामनायें पूरी करने वाला भोजन करावे तथा आश्रमवासिकपर्वके अन्तमें ब्राह्मणों को हविष्यका भोजन करावे ६९ मौसलपर्वके अन्तमें सब प्रकार के गुणोंवाला भोजन जिमाये तथा गन्ध और मालाओंसे ब्राह्मणोंका पूजन करे, महाप्रस्थानिकपर्वके अन्तमें वैसा ही सब प्रकारके गुणोंवाला ७० और स्त्रीपर्वके अन्तमें भी ब्राह्मणोंको

तु सहस्रं भोजयेद् द्विजान् ॥७१॥ गामेकां निष्कसंयुक्तां ब्राह्मणाय निवेदयत् । तदर्द्धेनापि दातव्या दरिद्रेणापि पार्थिव: ७२ प्रतिपर्व समाप्तौ तु पुस्तकं वै विचक्षणः । सुवर्णेन च संयुक्तं वाचकाय निवेदयत् ॥ ७३ ॥ हरिवंशे पर्वणि तथा पायसं तत्र भोजयेत् । श्लोकं वा श्लोकपादं वा अक्षरं वा नृपात्मज ७४ शृणुयादेकचित्तस्तु स विष्णोर्दयितो भवेत् । व्यासं चैव सपत्नीकं पूजयेच्च यथाविधि ॥ ७५ ॥ लक्ष्मीनारायणं देवं पूजितं तच्च पूजयेत् । वाचकं पूजयेद्यस्तु भूमिवस्त्रगुधेनभिः ७६ विष्णुः संपूजितस्तेन स साक्षाद्देवकीसुतः । पारणे पारणे राजन् यथाहं भरतर्षभ ७७ समाप्य सर्वाः प्रयतः संहिताः शास्त्रकोविदः । शुभे देशे निवेश्याथ क्षौमवस्त्राभिसंवृतः ॥ शुक्लाम्बरधरः स्रग्वी शुचिभू-

तैसे ही हविष्यका भोजन करावे, हरिवंशकी समाप्तिके समय एक हजार ब्राह्मणोंको भोजन करावे ७१ हरएक ब्राह्मणको सुवर्ण के एक सिक्केके साथ एक गौ देय और हे राजन्! दरिद्र भी इससे आधा देय ७२ चतुर मनुष्य हरएक पर्वकी समाप्तिके समय वाचकको एक सिक्केके साथ कोई एक पुस्तक देय ॥ ७३ ॥ जब हरिवंश-पर्वकी समाप्ति होय उससमय ब्राह्मणोंको खीरका भोजन करावे हे नृपपुत्र ! जो इसके एक श्लोकको वा श्लोकके एक पादमात्रको अथवा अक्षरमात्रको सुन लेता है, वह विष्णुका प्रिय होजाता है फिर शास्त्रोक्तरीतिसे व्यासकी और व्यासकी पत्नीकी पूजा करे ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ फिर पूजित लक्ष्मीनारायण देवकी पूजा करे, जो पुरुष वाचककी भूमि वस्त्र और गौ से पूजा करता है मानो इसने साक्षात् देवकीनन्दनकी ही पूजा कर ली। हे भरतसत्तम राजन्! हरएक पारण पर उचित रीतिसे भोजन करावे ॥ ७६ ॥ शास्त्रके तत्त्वको जानने वाला पवित्र पुरुष सब संहिताओंको समाप्त करके, रेशमी वस्त्रमें

त्वा स्वलंकृतः७८अर्चयेत्तं यथान्यायं गन्धमाल्यैः सुसंस्कृतः। संहितापुस्तकान् राजन् प्रयतः सुसमाहितः ७९ भक्ष्यैर्माल्यैश्च पेयैश्च कामैश्च विविधैः शुभैः। हिरण्यं गां च वस्त्रं च दक्षिणाथ दापयेत् ॥ ८० ॥ सर्वत्र त्रिपलं स्वर्णं दातव्यं प्रयतात्मना। तदर्द्धं पादशेषं वा वित्तशाठ्यविवर्जितम् ॥ ८१ ॥ यद्यदेवात्मनोभीष्टं तत्तद्देयं द्विजातये। सर्वथा तोषयेद्भक्त्या वाचकं गुरुमात्मनः। देवताः कीर्तयेत् सर्वा नरनारायणौ तथा ॥८२॥ ततो गन्धैश्च माल्यैश्च स्वलंकृतद्विजोत्तमान्। तर्पयेद्विविधैः कामैर्दानैश्चोच्चावचैस्तथा ॥ ८३ ॥ अतिरात्रस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः। प्राप्नुयाच्च क्रतुफलं यथा पर्वणि पर्वणि८४

लपेट शुभ स्थानमें पधरावे ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ स्वयं स्वेत वस्त्र धारण कर, माला पहरकर, पवित्र और आभूषणोंसे सजा हुआ होकर गन्ध माला आदिसे उनका नियमानुसार अलग अलग पूजन करे ७९ हे राजन्! नियमसे रहता हुआ उन संहिताओं की बड़ी सावधानीसे पूजा करे, फिर भोजनके पदार्थ मालायें, पीनेके पदार्थ भांति २ के पवित्र कामनायें पूर्ण करनेवाले पदार्थोंके सहित हिरण्यकी और सुवर्णकी दक्षिणायें देय, नियमों का पालन करने वाला सब अवसरों पर तीन पल (बारह तोला) सोना दान करे ॥ ८० ॥ ८१ ॥ धनका लोभ छोडकर उसका आधा या चौथाई सुवर्ण देय अपने कथावाचक गुरुको भक्तिसे सदा सन्तुष्ट करे सब देवताओंका तथा नरनारायणका कीर्तन करे ८२ फिर श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको गंध और मालाओंसे सजाकर कामना पूरी करने वाले भांति २ के छोटे और बड़े दानदेकर पूजे८३ऐसा करनेसे मनुष्यको अतिरात्र यज्ञका फल मिलता है तथा हर पर्व पर एक२ यज्ञका फल मिलता है८४हे भरतश्रेष्ठ! कथावाचक अक्षर, पद और स्वरको स्पष्ट

वाचको भरतश्रेष्ठ व्यक्ताक्षरपदस्वरः । भविष्यं श्रावयेद्विद्वान् भारतं भरतर्षभ ॥ ८५ ॥ भुक्तवत्सु द्विजेन्द्रेषु यथावत् संप्रदापयेत् । वाचकं भरतश्रेष्ठ भोजयित्वा स्वलंकृतम् ॥८६॥ वाचके परितुष्टे तु शुभा प्रीतिरनुत्तमा । ब्राह्मणेषु च तुष्टेषु प्रसन्नाः सर्वदेवताः ॥ ८७ ॥ ततो हि वरणं कार्यं द्विजानां भरतर्षभ । सर्वकामैर्यथान्यायं साधुभिश्च यथाक्रमम् ॥ ८८ ॥ इत्येष विधिरुद्दिष्टो मया ते द्विपदां वर । श्रद्दधानेन वै भाव्यं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥८९॥ भारतश्रवणे राजन् पारणे च नृपोत्तम । सदा यत्नवता भाव्यं श्रेयस्तु परमिच्छता ॥ ९० ॥ भारतं शृणुयान्नित्यं भारतं परिकीर्तयेत् । भारतं भवने यस्य तस्य हस्तगतो जयः ॥ ९१ ॥ भारतं परमं पुण्यं भारते विविधाः

कहनेवाला होना चाहिये तथा विद्वान् होना चाहिए हे भरतसत्तम! वही भारत सुना सकता है॥८५॥ श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको भोजन करा कर उनको यथाविधि दान देनेके अनन्तर हे भरतसत्तम! अच्छे प्रकारसे सजाये हुए वाचकको भोजन करावे ८६ कथा बाँचने वाले जब अत्यन्त सन्तुष्ट होते हैं तो उनको उत्तम और पवित्र आनन्द होता है, ब्राह्मणोंके सन्तुष्ट होने पर सब देवता प्रसन्न होजाते हैं ८७ हे भरतसत्तम! नियमानुसार सब कामनाओंसे और अच्छे प्रकार भाँति २ की विधियोंसे ब्राह्मणोंके वरण करनेका काम करे ८८ हे नरश्रेष्ठ! तूने जो मुझसे बूझा था यही विधि मैंने तुझसे सुनादी है, यही विधि मनुष्यको श्रद्धाके साथ करनी चाहिये ॥८९॥ हे राजाओंमें श्रेष्ठ राजन्! अपना श्रेय चाहने वालेको भारतका श्रवण करनेमें तथा इसका पारण करनेमें सदा यत्न करना चाहिये। ९० । भारतको नित्य सुने भारतका खूब कीर्तन करे, जिसके घरमें भारत होता है विजय उसके हाथमें है ९१ भारत परम पुण्य देने वाला है,

कथाः । भारतं सेव्यते देवै भारतं परमं पदम् ॥ ९२ ॥ भारतं सर्वशास्त्राणामुत्तमं भरतर्षभ । भारतात् प्राप्यते मोक्षस्तत्त्वमेतद्ब्रवीमि ते ॥९३॥ महाभारतमाख्यानं क्षितिं गां च सरस्वतीम्। ब्राह्मणं केशवं चापि कीर्तयन्नावसीदति ॥ ९४ ॥ वेदे रामायणे पुण्ये भारते भरतर्षभ । आदौ चान्ते च मध्ये च हरिः सर्वत्र गीयते ॥ ९५ ॥ यत्र विष्णुकथा दिव्याः श्रुतयश्च सनातनाः । तच्छ्रोतव्यं मनुष्येण परं पदमिहेच्छता ॥ ९६ ॥ एतत् पवित्रं परममेतद्धर्मनिदर्शनम् । एतत् सर्वगुणोपेतं श्रोतव्यं भूतिमिच्छता ॥ ९७ ॥ क्रियते सारसंसारे वाञ्छितस्यैव कारणम् । हरिवंशस्य श्रवणमिति द्वैपायनोऽब्रवीत् ॥ ९८ ॥ अश्वमेधसहस्रेण वाजपेयशतैस्तथा । यत्फलं प्राप्यते पुम्भिस्तद्धरे-

---

भारतमें भाँति २ की कथायें हैं, देवता भारतकी सेवा करते हैं, भारत ही परम पद है ९२ हे भरतसत्तम ! सब शास्त्रोंमें ,भारत उत्तम शास्त्र है; भारतसे मोक्ष मिलती है यह तत्त्व मैं तुमसे कहता हूँ ॥९३॥ जो पुरुष इस महाभारत आख्यानकी, पृथिवी की गौकी, सरस्वतीकी, ब्राह्मणोंकी और केशवकी कीर्त्तिको गाता है उसको पछताना नहीं पडता है ९४ हे भरतसत्तम ! वेद में,रामायणमें और पवित्र भारतमें आदि मध्य और अन्तमें,श्री-हरिकी कीर्त्ति गायी है ९५ जिसमें विष्णुकी दिव्य कथायें तथा सनातन श्रुतियें गायी हैं उस (भारत) का इस लोकमें परम पदकी चाहनेवालेको श्रवण करना चाहिये ९६ यह परम पवित्र है, यह धर्मका निदर्शन (नमूना) है और यह सकल गुणोंसे युत है, ऐश्वर्य चाहनेवालेको इसका श्रवण करना चाहिये ९७ द्वैपायन मुनिने कहा, कि-वाञ्छित वस्तुकी प्राप्तिके लिए ही हरिवंशका श्रवण किया जाता है ९८ पुरुष सहस्र अश्वमेध यज्ञ करके जिस फलको पाते हैं वह फल हरिवंशका श्रवण करनेसे

र्वशपारणात् ॥९९॥ अजरममरमेकं ध्येयमाद्यन्तशून्यं सगुण-मगुणमाद्यं स्थूलमत्यन्तसूक्ष्मम् । निरुपममनुमेयं योगिनां ज्ञान-गम्यं त्रिभुवनगुरुमीशं त्वां प्रपन्नोस्मि विष्णो ॥१००॥ सर्व-स्तरतु दुर्गाणि सर्वो भद्राणि पश्यतु । सर्वेषां वाञ्छिता ह्यर्था भवन्त्वस्य च पारणात् ॥ १०१ ॥

श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि श्रवणफलकथनं नाम द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३२ ॥

जनमेजय उवाच । त्रिपुराद्वधमहं ब्रह्मन् श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः । त्रयाणां पुरसंज्ञानां खेचराणां समासतः ॥१॥ वैश-म्पायन उवाच । शृणु विस्तरतः सर्वं यन्मां पृच्छसि नैधनम् । दैत्यानां बाहुबलिनां सर्वप्राणिविरोधनम् ॥ २ ॥ शंकरेण वधं राजन् शूलैस्त्रिभिरजिह्मगैः । कृतं पुरासुरेन्द्राणां सर्वभूतवधैषि-

---

ही मिल जाता है ।९९। हे विष्णो ! मैं अजर, अमर, एक ध्यान करने योग्य, आदि अन्तरहित सगुण निर्गुण आद्य स्थूल और अत्यन्त सूक्ष्म निरुपम अनुपमेय योगियोंके द्वारा जाननेमें आने वाले त्रिभुवनके गुरु आप ईशकी शरण लेता है ॥ १०० ॥ इस ग्रन्थका पारण करनेसे सब प्राणी कष्टोंके पार होजावें, सब कल्याणमय कर्मोंको देखें और सबके वाञ्छित अर्थ सफल हों ॥ १०१ ॥ एकसौ बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १३२ ॥ छ

जनमेजयने कहा; कि-हे ब्रह्मन् ! आकाशमें विचरण करने वाले तीन पुर नाम वाले अर्थात् त्रिपुर नाम वाले असुरोंका वध शिवजीने किस प्रकार किया था उसको मैं संक्षेपसे सुनना चाहता हूँ ॥१॥ वैशम्पायनजीने कहा, कि-सब प्राणियोंसे विरोध करने वाले भुजबलशाली दैत्योंके वधका वर्णन आपने मुझसे बूझा, उसको आप विस्तारपूर्वक सुनिये ॥ २ ॥ सब भूतोंका वध चाहने वाले असुरेन्द्रोंका शिवजीने सरलगामी तीन शूलोंसे वध किया

णाम् ॥ ३ ॥ त्रिपुरं पुरुषव्याघ्र बृहद्धातुसमीरितम् । विभा-
भाति नभोमध्ये मेघवृन्दमिवोत्थितम् ॥ ४ ॥ प्राकारेण महद्भेन
काञ्चनेन विराजता । मणिभिश्च प्रकाशद्भिः सर्वरत्नैश्च
तोरणैः ॥ ५ ॥ बभासे नभसो मध्ये श्रिया परमया ज्वलन् ।
गन्धर्वाणामिवोदग्रं कर्मणा साधितं परम् ॥ ६ ॥ वाजिनः पक्ष-
संयुक्ता वहन्ति बलदर्पिताः । पुरं प्रभाकरश्रेष्ठं मनोभिः कामरू-
हयैः ॥ ७ ॥ धावन्ति हेषमाणास्ते विक्रमैः माणसंभृतैः । आह्व-
यन्त इवाकाशं खुरैः श्यामदलप्रभैः ॥ ८ ॥ वायुवेगसमैर्वेगैः
कालयन्त इवाम्बरम् । असुराः समदृश्यन्त चक्षुर्भिर्विदितात्मभिः ९
ऋषिभिर्ज्वलनमख्यैस्तपसा दग्धकिल्बिषैः । गीतवादित्रबहुलं
गंधर्वनगरोपमम् ॥ १० ॥ चित्रायुधसमाकीर्णैः प्रतप्तकनकप्रभैः
भवनैर्बहुभिश्चैव प्रांशुभिः समलंकृतैः ॥ ११ ॥ देवेन्द्रभवनाकारैः

था ॥ ३ ॥ हे पुरुषव्याघ्र ! त्रिपुर बड़ी २ धातुओंसे बना हुआ
था और परमश्रीसे शोभायमान उठी हुई घनघटाकी समान
हो दमकता था ४ सुवर्णके विभूषित ऊँचे परकोटेसे और प्रका-
शवान् रत्नोंके बने हुए तोरणोंसे, वह गन्धर्वोंके उग्र कर्मसे
बनाये हुए नगरकी समान आकाशमें परमलक्ष्मीसे संपन्न हो
दमक रहा था ॥ ५ ॥ पर वाले घोड़े इच्छानुसार चढ़ने वाले
परोंसे उस चन्द्रमाकी समान श्रेष्ठ पुरको वहन करते थे ७ वे
हिनहिनाते हुए दौड़ते थे और श्यामदलकी समान प्रभावाले
प्राणबलयुक्त खुरोंसे आकाशको बुलाते हुएसे दौड़ते थे ८ आत्मा
को जानने वाले पुरुष अपने नेत्रोंसे उन वायुकी समान वेग
वाले आकाशको खदेड़ते हुएसे असुरोंको देख सकते थे ९ उस
गन्धर्व नगरकी समान गाने बजानेसे भरे हुए नगर को अग्नि
की समान प्रतापवान् तपोधन ऋषि ही देख सकते थे १० वि-
चित्र आयुधोंसे भरे हुए, तपे हुए सुवर्णकी समान प्रभा वाले

शुशुभे तन्महाद्युति । प्रासादाग्रैः प्रवृद्धैश्च कैलासशिखरप्रभैः १२ शुशुभे दैत्यनगरं बहुसूर्यमिवाम्बरम्। वराट्टालकसम्पन्नं तप्तकाञ्चनसप्रभम् ॥ १३ ॥ प्रदीप्तमिव तेजोभी रराजाथ महाप्रभो । चवेडितोत्कृष्टबहुलं सिंहनादविनादितम् ॥ १४ बभौ वल्गुजनाकीर्णं वनं चैत्ररथं यथा । समुच्छ्रितपताकं तदसिभिश्च विराजितम् ॥ १५ ॥ रराज त्रिपुरं राजन् महाविद्युदिवाम्बरे । सूर्यनाभश्च दैत्येन्द्रश्चन्द्रनाभश्च भारत ॥१६॥ तथान्ये च महावीर्या दानवा बलदर्पिताः। गम्भृदुश्च वभञ्जुश्च मोहिताः परमेष्ठिना१७ पन्थानं देवगमनं पितृयानं च भारत। तैरेवमसुराग्रैश्च प्रगृहीतशरासनैः ॥ १८ ॥ दानवैर्नरशार्दूल देवयाने महापथे । पितृवन्हिवलोपेते हृते भरतसत्तम ॥ १९ ॥ ब्रह्माणमभ्यधावन्त सर्वे

बहुतसे ऊँचे ,देवेन्द्र के भवनकी समान आकार वाले भवनोंसे और कैलासके शिखरकी समान ऊँची २ अटारियोंसे वह नगर शोभा पाता रहता था ॥ ११॥१२ ॥ श्रेष्ठ २ अट्टालिकाओंसे सम्पन्न, तपे हुए सुवर्णकी समान प्रभा वाला दैत्यनगर बहुत से सूर्य वाले आकाशकी समान दमकने लगा । १३ । हे महाप्रभो ! वह नगर तेजसे प्रदीप्त पदार्थकी समान दमकता था, उसमें भुजा थपकानेके बहुतसे शब्द होते थे और वह सिंहनादों से गुञ्जारता रहता था । १४। तलवारोंसे विराजमान और उठी हुई पताकाओं वाला और मनोज्ञ पुरुषोंसे घिरा हुआ पुर चैत्ररथवनकी समान शोभा पाने लगा । १५ । हे राजन् ! त्रिपुर बिजलीकी समान आकाशमें दमकता था, हे भारत ! चन्द्रनाभ पद्मनाभ तथा और भी बलदर्पित महावीर्यवान् दानव कि—जिन को ब्रह्माजीने मोहमें डाल दिया था वे देवयानमार्गको और पितृयानमार्गको तोड़ने फोड़नेलगे, हे नरशार्दूल ! जब श्रेष्ठ असुरोंने धनुषको तानकर देवयान नामक महामार्गको और

सुरगणास्तथा । विवर्णवदनाः दीनाश्छिन्नैव गतिकर्मणि ॥२०॥ अब्रुवंश्च गताः स्थित्वा स्वरेणार्त्तनिनादिना । हन्यामहे शत्रुगणैर्भोगोच्छेदेन भागद ॥ २१ ॥ तेषां चैव वधोपायं वदस्व वदतां वर । यं ज्ञात्वा बाहुबलिनो बाधेम समरे परान् ॥ २२॥ सान्त्वयित्वा तु वरदो ब्रह्मा प्रोवाच देवताः । शृणुध्वं देवताः सर्वाः शत्रुप्रतिकृतिं पराम् ॥ २३ ॥ अवध्या दानवाः सर्वे ऋते शंकरमव्ययम् । प्रतिगृह्य च तद्वाक्यं मनोभिर्वाग्भिरेव च ॥२४॥ भूमौ प्रपेदिरे सर्वे सह रुद्रैश्च भारत । विन्ध्यपादे च मेरौ च मध्ये च पृथिवीतले ॥ २५ ॥ तप्तसोऽग्रेण योगज्ञाः सर्वे ते मुनयोऽभवन् । काश्यपेयं हरं प्राप्ता जपन्तो ब्रह्मसंहिताम् ॥ २६ ॥ येषां च परदाराणामभवद्बन्ध्यताजने विन्यस्तदर्भनिचये ताम्रलोहं

पितृवह्निबलयुक्त मार्गको घेर लिया ॥ १६—१९ ॥ तब गतिकर्मके छिन्न होने पर सब देवताओंके मुखका वर्ण फीका पड़ गया तब वे ब्रह्माजीके पास पहुँचे और आर्तस्वरमें कहने लगे, कि-भागद ! भागका उच्छेद होनेके कारण शत्रु हमको मार रहे हैं ॥ २० ॥ २१ ॥ हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ ! आप उनके वध का उपाय बताइये जिससे हम भुजबलशाली होकर समरमें अपने शत्रुओंको पीड़ा देसकें २२ वरदान देने वाले ब्रह्माजीने उनको सांत्वना देकर कहा, कि-हे सब देवताओं ! तुम शत्रुओंके पराजयके उपायको सुनो २३ अव्यय शंकरके अतिरिक्त वे दानव और किसीसे नहीं मारे जा सकते, हे भारत ! ब्रह्माजीकी इस बातको सुनकर सब देवताओंने और रुद्रोंने पृथ्वीमें पड़ कर ब्रह्माजीके चरणोंमें वाणी और मनसे प्रणाम किया वे सब मुनि विंध्यपादमें और मेरुपर्वतके मध्यस्थल पृथ्वीमें उग्र तप करते रहते थे, ऐसे सब योगी मुनि ब्रह्मसंहिताका जप करते करते काश्यपेय हरके पास पहुँच गए । २४—२६॥ वे दूसरोंकी स्त्रियों

च भूषणम् ॥२७॥ परिधानानि चर्म्माणि मृदूनि च शुभानि च । स्वयंमृतानां कृष्णानां मृगाणां कुरुसत्तम ॥ २८ ॥ गृहीतानि विमुक्तानि देहेभ्यो वनचारिणाम्। अन्तरिक्षमथोपेत्य विविशुर्मायया वृताः ॥ २९ ॥ हरालयं सुराः सर्वे व्याघ्रचर्मनिवासिनः । प्रणिपत्याथ ते दीना भगवन्तं जगत्पतिम् ॥ ३० ॥ सुव्यक्तेनाभिधानेन प्रभाषन्त हरं ततः । हविर्द्त्तमविज्ञानाद्भस्मच्छन्नेषु वह्निषु ॥३१॥ वरदानं वृथास्माकं भगवन् विमुखे त्वयि । यथादेशं यथाकालं क्रियतां ब्रह्मणो वचः ॥ ३२ ॥ यदुक्तं देवदेवेन खेचराणां समीपतः । एवं देववचोभिश्च भाविनोर्थस्य वैभवात् ॥ ३३ ॥ समनह्यन्महादेवो देवैः सह सवासवैः । आदित्य-

---

के लिए नपुंसक रहते थे, वे कुशाओंको बिछा कर शयन किया करते थे और ताँबे तथा लोहेके भूषण पहरा करते थे ॥ २७ ॥ हे कुरुसत्तम ! उनके दुपट्टे अपने आप मरे हुए कृष्णमृगोंके कोमल चर्मके थे और शुभ थे २८ उन चारियोंने अपने देहसे सब गृहीत वस्तुओंको त्याग दिया था, फिर वे माया करके आकाशमें घुस गए थे । २९ । सब देवता व्याघ्रका चर्म ओढ़ने वाले हरके भवनमें पहुँच गए और उन दीन व्यक्तियोंने जगत्पति भगवानको प्रणाम किया ३० फिर वे स्पष्टरूपसे नाम लेकर हरसे कहनेलगे, कि–जैसे राखसे ढकीहुई अग्निमें अज्ञानतासे हवि होमना व्यर्थ जाता है, ऐसे ही जब आप विमुख रहेंगे तो हमको वरदान मिलना व्यर्थ रहेगा । इस लिए आप देशकालानुसार ब्रह्माजीके वचनको कार्यरूपमें परिणत करिये ३१ देवदेवने आकाश चारियों-देवताओंके–सामने जिस बातको कहाहै उसको आप करियें, तब महादेव देवताओंके कहनेसे और भविष्यके बलवान् होनेसे इन्द्र और देवताओंको लेकर होगए और सबके सब तयार होकर तथा अलंकृत होकर आदि

पथमास्थाय सन्नद्धा समलंकृताः ॥३४॥ सर्वे काञ्चनवर्णाभा
प्रदीप्ता इवाग्नयः । रुद्रेण सहिता रुद्रा दहन्त इव तेजसा ३५
सन्नद्धाः कुशलाः सर्वे प्रांशवः पर्वता इव । विश्वे विश्वेन
वपुषा बलिनः कामरूपिणः ॥ ३६ ॥ समनह्यन्महात्मानो दान-
वान्तं विधित्सवः । एभिः सह धनाध्यक्षैः समन्तात्परिवारितः३७
त्रिपुरं योधयत् त्र्यक्षः प्रगृह्य सशरं धनुः । अथ दैत्या भिन्नदेहाः
पुराट्टालं गता इव ॥ ३८ ॥ न्यपतन्त विदेहास्ते विशीर्णा इव
पर्वताः । प्रतिविद्धाः सुविद्धाश्च रणमध्यगता नृप ॥ ३९ ॥
न्यपतन् दैत्यसंघाता वज्रेणेव हता नगाः । असिभिश्च हता
देवैं शक्तिचक्रपरश्वधैः ॥ ४० ॥ बाणैश्च भिन्नमर्माणो दैत्येन्द्रा
युद्धगोचरे । पेतुः सहिता उर्व्यां छिन्नपक्षा इवाचलाः ॥४१॥

रथपथमें आगये३४उससमय उन सबकी कान्ति सुवर्णकी समान
थी और सब प्रदीप्त अग्निकी समान शोभा पारहे थे ३४ वे सब
कुशल व्यक्ति डट कर खड़े होने वाले ऊँचे पर्वतोंकी समान
खड़े होगए सबका शरीर कान्तिवाला था और सब इच्छानुसार
रूप धारण करते थे ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ वे सब महात्मा दानवों
का अन्त करना चाह कर तयार होगए, इन धनाध्यक्षोंको साथ
ले कर त्र्यक्ष शिव धनुष बाण ले त्रिपुरसे युद्ध करने लगे तब
अट्टालिकाओं पर बैठे हुए दानव शरीरके घायल होने पर
बिखरतेहुए पर्वतकी समान, मरकर पृथ्वीमें गिरने लगे, हे
राजन् ! रणके बीचमें आकर दानवोंके टोलेके टोले कुछ बिंध
कर और थोडेसे भी घायल होकर और देवताओंके शक्ति चक्र
तलवार और फरसोंसे घायल होकर, वज्रसे मारे हुए पर्वतोंकी
समान ढह गए ॥ ३७-४० ॥ युद्धके चलने पर बाणोंसे जब
दानवेन्द्रोंके मर्मस्थल कट गए, तब वे परकटे पर्वतोंकी समान
पृथ्वीमें ढहने लगे ४१ और दीप्यमान तेजसे विक्षुब्ध हो वेहोश

तत्र संज्ञां विमुञ्चन्ति दीप्यमानेन तेजसा । एवं तेऽन्योन्यसंबाधे क्षीयन्ते क्षयकर्मणा ॥ ४२ ॥ नोपालम्यन्त चक्षुर्भ्यामपि दिव्येन चक्षुषा । अस्तं प्राप्ते दिनकरे सुरेन्द्रास्ते निशामुखे । छिन्नभिन्नक्षतमुखा निपेतुर्वसुधातले ४३ अथ दैत्या जयं प्राप्ता निशायां निशितैः शरैः । विनेदुर्विपुलैर्नादैर्मेघा इव महारवाः ॥ ४४ ॥ जयमाप्तयाऽसुराश्चैव तेऽन्योन्यमभिजल्पिरे । आसितास्त्रिदशा सर्वे सङ्ग्रामजयकांक्षिणः ॥ ४५ ॥ अस्माभिर्बलसंपन्नैः सह प्रासासितोमरैः । विरेजुश्च जयं प्राप्ता उशनोहृव्यबोधिताः ४६ समरे बलसंपन्ना सायुधा दैत्यसत्तमाः । सुरैश्च सहिताः सर्वैः रथमास्थाय शंकरः ॥ ४७ ॥ दर्पितान् निनदन् दैत्यान् प्रदहन्निव तेजसा । युगान्तकाले वितते रश्मिवानिव निर्दहन् ॥४८॥ सर्वभूतानि भूतात्मा प्रलये समुपस्थिते । स रथो वाजिभिः शीघ्रै-

---

होने लगे इस प्रकार परस्पर मार काट चलने पर क्षयप्रद कर्म करनेके कारण वे क्षीण होने लगे ॥४२॥ परन्तु जब सूर्य अस्त होगया तब सायंकालके समय दोनों नेत्रोंसे और दिव्य चक्षुसे देवताओंको कुछ न प्रतीतहुआ, और वे मुखोंके छिन्न भिन्न और घायल होनेसे पृथ्वीतलमें गिरने लगे ४३ तब दानव तीक्ष्ण बाणोंसे रात्रिमें विजय पाकर महाशब्द करनेवाले मेघोंकी समान बड़ा शब्द करने लगे ।४४। जीत होनेसे असुर आपसमें कहने लगे, कि-संग्राममें विजय चाहने वाले सब देवताओंको हम बलवानोंने प्रास तलवार और तोमरोंसे त्रस्त करदिया तदनन्तर वे शुक्राचार्यके हव्यसे जागृत हो दमकने लगे ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ जब दैत्य समरमें बलसम्पन्न हो आयुध दिखाने लगे तब शिव सब देवताओंको साथमें लेकर रथमें बैठे ४७ और दर्पमें भरे हुए दैत्योंके ऊपर दहाड़ने लगे और उनको अपने तेजसे इस प्रकार भस्म करने लगे जैसे युगोंका अन्त होने पर प्रलयके

रुह्यमानो मनोजवैः ॥ ४९ ॥ विबभौ नभसो मध्ये सविद्युदिव तोयदः । वृषभेण ध्वजाग्रेण गर्जमानेन भारत ॥ ५० ॥ भाति स्म स रथो राजन्सेन्द्रायुध इवाम्बुदः । ततोम्बरगताः सिद्धास्तुष्टुवुर्वृषभध्वजम् ५१ कर्मभिः पूर्वजं पूर्वैः शुचिभिस्त्र्यम्बकं तदा । ऋषयश्च तपःशान्ताः सत्यव्रतपरायणाः ॥ ५२ ॥ अमृतप्राशिनश्चैव सुरसंघास्तथैव च । गन्धर्वाप्सरसश्चैव गन्धर्वेण स्वरेण वै ॥५३॥ महृष्टवदनाः सौम्याः पैत्र्ये स्थानान्तरे नृप । चयाट्टालकसंपन्ने शतघ्नीशतसंकुले ॥५४॥ तस्मिंस्तु दैत्यनगरे सर्वभूतभयावहे । ततस्तु शरवर्षाणि मुमुचुर्दैत्यदानवाः ॥ ५५॥ सुराणामरयो मध्ये तीक्ष्णाग्राणि समन्ततः । शतघ्नीभिश्च निघ्नन्तो भल्लैः शूलैश्च भारत ॥ ५६ ॥ ते चक्रिरे महत्कर्म दानवा

समय प्राणियोंमें श्रेष्ठ सूर्य सब भूतको भस्म करता हो, मनकी समान वेगवान् घोड़ोंके चलाने पर वह रथ आकाशके बीचमें बिजलीसा दमकने लगा, हे भारत ! ध्वजाके अग्रभागमें स्थित गरजते हुए वृषभसे वह रथ इन्द्रधनुष वाले मेघकी शोभा पाने लगा, तब आकाशमेंके स्थित सिद्ध पहिलेके पवित्र कर्मोंसे त्र्यम्बककी स्तुति करने लगे, सत्यका व्रत पालनेमें परायण ऋषि और अमृतका पान करनेवाले देवताओंके टोले तथा गंधर्व और अप्सरायें भी गंधर्व स्वरसे शंकरकी स्तुति करने लगे ४८-५३ हे राजन् ! तदनन्तर सैकड़ों तोपोंसे भरे हुए अट्टालिकाओंसे भरे हुए और पितरोंके स्थान पर आधिपत्य जमाने वाले सब प्राणियोंको भयदायक उस नगरके आस पास सब दैत्य दानव तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ हे भारत ! देवताओंके शत्रु दानव बीच २ में तोप भल्ल और तीक्ष्ण अग्रभाग वाले भल्लों और शूलोंसे देवताओंको मार कर बड़ा भारी कर्म करते थे, वे गदाओंसे गदाओंको तोड देते थे

युद्धकोविदाः। गदाभिश्च गदां जघ्नुर्भल्लैर्भल्लांश्च चिच्छिदुः ५७
अस्त्रैरस्त्राण्यबाधन्त मायां मायाभिरेव च। ततोऽपरे समुद्यम्य
शरशक्तिपरश्वधान् ५८ अशनीश्च महाघोरान् मुक्तान् शतसह-
स्रशः। असिभिर्मायाविहितैर्मृत्योर्विषयगोचरे ५९ ते बध्यमाना
विबुधाः शरवर्षैरवस्थिताः। गन्धर्वनगराकारः सोसीदत् सहरो
रथः ॥ ६० ॥ हन्यमानोसुरगणैः प्रासासिशरतोमरैः। तैश्च
दैत्यप्रहरणैर्गुरुभिर्भारसाहिभिः। चित्रैश्च बहुभिः शस्त्रैरतिष्ठत
शचीपतिः ६१ ततो मध्ये दिव्यशब्दः प्रादुरासीन्महीपते। ऋषीणां
ब्रह्मपुत्राणां महतामपि भारत ॥ ६२ ॥ स एष शंकरस्याग्रे रथो
भूमिं प्रतिष्ठितः। अजेयो जय्यतां प्राप्तः सर्वलोकस्य पश्यतः६३
तस्मिन्निपतिते राजन्रथानां प्रवरे रथे। निपेतुः सर्वभूतानि
भूतले वसुधाधिप ॥६४॥ विचेलुः पर्वताग्राणि चेलुश्चैव महा-

और भल्लोंसे भल्लोंको काट देते थे ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ अस्त्रोंसे अस्त्रोंको पीडित कर देते थे और मायाओंसे मायाओंको नष्ट कर देते थे, तदनन्तर दूसरे असुर बाण शक्ति और फरसोंको उठाकर तथा महाघोर सैंकड़ों हजारों बाणोंको छोड कर और अज्ञानके विषयमें गोचर होने वाली मायामयी तलवारोंको छोडने लगे ।५८ । ५९। बाणोंकी बौछारोंसे पिटने पर देवता खड़े रह गए और गन्धर्वनगरकी समान आकार वाला हरका रथ भी कष्ट पाने लगा ।६०॥ असुरोंके प्रास बाण तोमर और वजनदार विचित्र दानवास्त्रोंका प्रहार होने पर भी इन्द्र खडा ही रहा ६१ हे महीपते ! इस बीचमें ब्रह्माजीके पुत्र महर्षियोंका दिव्य शब्द सुनाई दिया, कि—६२ यह शंकरका रथ भूमिमें पडा हुआ है यह अजेय रथ आज सबके देखते २ जीतनेमें आगया ॥ ६३ ॥ हे वसुधाधिप! उस श्रेष्ठ रथके भूमि पर गिरने पर सब प्राणी भूमि में गिरने लगे ॥ ६४ ॥ पर्वतोंके शिखर और बड़े २ वृक्ष काँपने

द्रुमाः । विचुक्षुभुः समुद्राश्च न रेजुश्च दिशो दश ॥ ६५ ॥ वृद्धास्तु ब्राह्मणास्तत्र जेपुश्च परमं जपम् । यत्तद्ब्रह्ममयं तेजः सर्वत्र विजयैषिणाम् ॥ ६६ ॥ शान्त्यर्थं सर्वभूतानामिह लोके परत्र च । समाधायात्मनात्मानं योगभासेन हेतुना ॥६७॥ रथन्तरेण साम्नाथ ब्रह्मभूतेन भारत । तेजसा ज्वलयन्विष्णोस्त्रयक्षस्य च महात्मनः ॥ ६८ ॥ सर्वेषां चैव देवानां बलिनां कामरूपिणाम् । ऋषीणां तपसाढ्यानां वसतां विजने वने ॥ ६९ ॥ अथ विष्णुर्महायोगी सर्वतोऽदृश्य तत्त्वतः । वृषरूपं समास्थाय प्रोज्जहार रथोत्तमम् ॥ ७० ॥ समाक्रान्तं देवगणैः समग्रबलपौरुषैः । वलवांस्तोलयित्वा तु विषाणाभ्यां महावलः । ननाद प्राणयोगेन मथ्यमान इवार्णवः ॥७१॥ तृतीयं वायुविषयं समाक्रम्य विषाणवान् । ननाद बलवान्नादं समुद्र इव पर्वणि ७२

लगे, समुद्र क्षुब्ध होने लगे और दशों दिशाएँ फीकी पड़ गईं ६५ तब वृद्ध ब्राह्मण परम जप करने लगे, उस समय जो विजयाभिलाषियोंका ब्रह्ममय तेज है और जो इस लोकमें तथा परलोकमें सब भूतोंको शान्ति देता है और योगसे मनको आत्मा में लगाने पर मिलता है, इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले सब बलवान् देवता और निर्जन वनमें रहने वाले तपोधन मुनि जिस तेजका ध्यान करते हैं और जो रथन्तर सामरूपमें महात्मा विष्णु और हरके तेजसे दमकता रहता है ॥६६—६९॥ वह महायोगी विष्णु सब तत्त्वोंसे अदृश्य हो वृषभका रूप धारण कर उस उत्तम रथको उठाने लगे ॥७०॥ महाबली बल पुरुषार्थसम्पन्न देवताओंसे भरे हुए उस रथको अपने सींगोंसे तोल कर, मथे जाते हुए समुद्रकी समान प्राणबलसे गरजने लगे ॥ ७१ ॥ वह सींगों वाले बलवान वृषभ तीसरे वायुविषयको दबा कर पर्वके समय गरजने वाले समुद्रकी समान रंभाने लगे ७२ उस नादसे

ततो नादेन वित्रस्ता दैतेया युद्धदुर्मदाः । पुनस्ते कृतसन्नाहा युयुधुः सुमहाबलाः ॥ ७३ ॥ सर्वे ते बाहुबलिनः समर्थबलपौरुषाः । सुरसैन्यं प्रमर्दन्तः प्रगृहीतशरासनाः ॥ ७४ ॥ अग्निं सन्धाय धनुषि शितं बाणं सुपत्रिणम् । ब्रह्मास्त्रेणाभिसंयोज्य ब्रह्मदण्डं शिवोऽव्ययः । मुमोच दैत्यनगरं त्रिधामात्रानुसंज्ञितम् ॥ ७५ ॥ तं बाणं त्रिविधं वीर्यात् सन्धाय मनसा प्रभुः । सत्येन ब्रह्मयोगेन तपसोग्रेण भारत ॥ ७६ ॥ मुमोच दैत्यनगरे सर्वप्राणहराञ्छरान् । दीप्तान् कनकवर्णाभान् सुवर्णांश्च सुनिर्मलान् ॥७७॥ मुक्त्वा वरशरान् घोरान् सविषानिव पन्नगान् । प्रदीप्तैस्त्रिभिर्बाणैर्वेगिभिस्तद्विदारितम् ॥ ७८ ॥ शरघातप्रदीप्तानि विन्ध्याग्राणीव भारत । गोपुराणि पुरैः सार्द्धं व्यशीर्यन्त नराधिप ॥ ७९ ॥ अग्निना संप्रदीप्तानि वह्निगर्भाणि भारत ।

युद्धदुर्मद दानव त्रस्त होने लगे और वे महाबली युद्ध करनेके लिए फिर डट गए ॥ ७३ ॥ वे सब भुजबलशाली थे बलवान् और पौरुषवान् थे वे धनुषोंको लेकर देवसेनाको मसलने लगे ७४ तब अव्यय शिवने धनुष पर अग्नि रख, उस पर तीक्ष्ण बाण चढ़ाया और त्रिपुर नाम वाले दानवनगर पर छोड़ दिया ।७५। हे भारत ! प्रभु शिवने तीन प्रकार (अ उम्) वाले बाणको उग्रतप ब्रह्मयोग और सत्यके द्वारा चढाकर छोड़ा था ॥ ७६ ॥ तदनन्तर वह दैत्यनगर पर सबके प्राणोंका हरण करने वाले सुवर्णकी समान आभा वाले सुवर्णके निर्मल और दीप्त बाणों को मारने लगे ७७ फिर विष वाले सर्पोंकी समान घोर बाणों को बरसाने लगे, उस समय तीन वेगवान् दीप्त बाणोंसे वह नगर विशीर्ण होगया ७८ हे राजन् ! बाणोंके घातसे जलतेहुए गोखों सहित नगर विंध्याचलके शिखरोंकी समान ढहने लगे ७९ अग्निसे जलते हुए और जिनके भीतर भी अग्नि जल रही थीं

धरणीं संप्रपद्यन्त पुराणि वसुधाधिप ॥ ८० ॥ तानि वैदूर्यव-र्णानि शिखराणि गिरेरिव । शंकरेण प्रदग्धानि ब्रह्मास्त्रेणापत-न्नृप ॥ ८१ ॥ हते च त्रिपुरे देवैर्वाचो हर्षात्कलेरिताः । सर्वान् जहीति शत्रूंस्त्वं प्रहृष्टान्पुरुषोत्तम ॥ ८२ ॥ विष्णुरेव महायोगी योगेन मस्मयन्निव । स्तूयते ब्रह्मसदृशैर्ऋषिभिः शंकरेण च । ब्राह्मणः सहितैर्देवैः सम्पन्नबलपौरुषैः ॥ ८३ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि त्रिपुरवधो नाम त्रयस्त्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३३ ॥

वैशम्पायन उवाच । हरिवंशेऽत्र वृत्तान्ताः प्रकीर्त्यन्ते क्रमो-दिताः । तत्राद्यमादिसर्गस्तु भूतसर्गस्ततः परः ॥१॥ पृथोर्वैन्यस्य चाख्यानं मनूनां कीर्तनं तथा । वैवस्वतकुलोत्पत्तिर्धुंधुमारकथा तथा ॥ २ ॥ गालवोत्पत्तिरिक्ष्वाकुवंशस्याप्यनुकीर्तनम् । पितृ-

ऐसे नगर पृथ्वीमें आपड़े ॥८०॥ हे राजन् ! जब शिवने उनको ब्रह्मास्त्रसे भस्म कर दिया तब वे पर्वतके वैदूर्यमणियोंसे जड़े हुए शिखरोंकी समान ढह गए ८१ त्रिपुरके नष्ट होने पर देवता हर्षमें भर कर कहने लगे, कि-हे पुरुषोत्तम ! तुम सब इतराते हुए शत्रुओंको नष्ट कर डालो ८२ तदनन्तर ब्रह्माजीकी समान ऋषि शंकर और बलपुरुषार्थ युक्त देवता महायोगी-विष्णुकी स्तुति करने, तब विष्णु मुस्कुराने लगे ॥ ८३ ॥ एक सौ तैंती-सवाँ अध्याय समाप्त ॥ १३३ ॥ छ छ छ

वैशम्पायनजीने कहा, कि-हरिवंशमें जिन वृत्तान्तोंका वर्णन आया है, उनको इस अध्यायमें मैं कहता हूँ, इनमें पहिला आदि सर्ग है, तदनन्तर भूतसर्ग है, फिर वेनके पुत्र पृथु और मनुओं का आख्यान है, फिर वैवस्वत कुलकी और धुन्धुमारकी कथा आती है ॥ १ ॥ २ ॥ फिर गालवकी उत्पत्ति और इक्ष्वाकुवंश का वर्णन आता है, तदनन्तर पितृकल्प आता है, फिर सोम

कल्पस्तथोत्पत्तिः सोमस्य च बुधस्य च ॥ ३ ॥ अमावसोरन्वयस्य कीर्त्तनं कीर्तिवर्द्धनम् । च्युतिप्रतिष्ठे शक्रस्य प्रसवः चत्रवृद्धजः ॥४॥ दिवोदासप्रतिष्ठा च त्रिशंकोः क्षत्रियस्य च । ययातिचरितं चैव पुरुवंशस्य कीर्तनम् ॥ ५ ॥ कीर्तनं कृष्णसंभूतेः स्यमन्तकमणेस्तथा । संक्षेपात्कीर्तिता विष्णोः प्रादुर्भावस्ततः परम् ॥ ६ ॥ तारकामययुद्धं च ब्रह्मलोकस्य वर्णनम् । योगनिद्रासमुत्थानं विष्णोर्वाक्यं च वेधसः ॥ ७ ॥ पृथिवीवाक्यं च देवानामंशावतरणं तथा । ततो नारदवाक्यं च स्वप्नगर्भविधिस्तथा ॥८॥ आर्यास्तवः पुनः कृष्णे समुत्पत्तिः प्रपञ्चतः । गोव्रजे ...नं विष्णोः शकटस्य निवर्तनम् ॥ ९ ॥ पूतनाया वधो भंगो

...र बुधकी उत्पत्ति आती है ।३। फिर कीर्तिको बढाने वाला ...मावसुके वंशका वर्णन है, फिर इन्द्रके इन्द्रपदसे भ्रष्ट होनेकी ...र फिर इन्द्रपद पर प्रतिष्ठित होनेकी कथा आती है फिर क्षत्रवृद्धके पुत्रकी उत्पत्ति आती है ।४। फिर दिवोदास और क्षत्रिय ...शंकुकी प्रतिष्ठाका वर्णन आता है, फिर ययातिचरित और पुरुवंशका बिस्तार कहा है ॥ ५ ॥ फिर स्यमन्तक मणि और श्रीकृष्णकी विभूतिका संक्षिप्त वर्णन आता है तदनन्तर विष्णुका प्रादुर्भाव कहा है ६ फिर तारकामय युद्ध और ब्रह्मलोकका वर्णन आता है, फिर योगनिद्रासे उठनेका तथा ब्रह्मा और विष्णुके वाक्यका वर्णन आता है, ७ फिर पृथ्वीके वाक्य और देवताओंके अंशावतरणका, नारदजीके वाक्यका और स्वप्नगर्भ विधिका वर्णन आता है । ८ । फिर आर्यास्तव आता है, फिर विस्तारपूर्वक कृष्णकी उत्पत्तिका वर्णन आता है, फिर उनके गोव्रजमें जानेका और गाडीको लौटनेका वर्णन आता है ॥९॥ फिर पूतनाके वधकी और यमलार्जुन वृक्षोंके तोडनेकी कथा आती है, फिर भेडियोंके दीखनेकी और वृन्दावनमें जानेकी

यमलार्जुनयोरपि । वृकसंदर्शनं चैव वृन्दावननिवेशनम् ॥ १० ॥ प्रावृषो वर्णनं चापि यमुनाह्रददर्शनम् । कालीयस्यापि दमनं धेनुकस्य च भञ्जनम् ॥ ११ ॥ प्रलम्बनिधनं चैव शरद्वर्णनमेव च । गिरियज्ञप्रवृत्तिश्च गोवर्धनविधारणम् ॥ १२ ॥ गोविन्दस्याभिषेकं च गोपीसंक्रीडनं तथा । रिष्टासुरस्य निधनमक्रूरप्रेषणं तथा ॥१३॥ अन्धकस्य च वाक्यानि केशिनो निधनं तथा । अक्रूरागमनं चैव नागलोकस्य दर्शनम् ॥ १४ ॥ धनुर्भङ्गस्य कथनं कंसवाक्यमतः परम् । कुवलयापीडवधश्चाणूरान्ध्रवधस्तथा ॥ १५ ॥ कंसस्य निधनं चापि विलापः कंसयोषिताम् । उग्रसेनाभिषेकश्च यादवाश्वासनं तथा ॥ १६ ॥ प्रत्यागतिर्गुरुकुलादशोका रामकृष्णयोः । मथुरायाश्चोपरोधो जरासन्धनिवर्तनम् ॥ १७ ॥ विकद्रुवाक्यं रामस्य दर्शनं भाषणं तथा । गोम-

---

कथा आती है । १० । फिर वर्षा ऋतुका वर्णन और यमुनाके कुण्डको देखनेकी कथा आती है, फिर कालिय नागका दमन और धेनुकवध आता है ११ फिर प्रलम्बमरण और शरद ऋतु का वर्णन आता है, फिर पर्वतपूजनकी विधि और गोवर्धनको धारण करनेका वर्णन आता है १२ फिर गोविन्दका अभिषेक गोपियोंकी क्रीड़ा अरिष्टासुरका वध और अक्रूरको भेजनेका वर्णन आता है १३ फिर अन्धकके वाक्य और केशीमरणकी कथा है फिर अक्रूरके आगमन और नागलोकके दर्शनकी कथा है १४ फिर धनुर्भंग और कंसकी बातोंका वर्णन आता है, फिर कुवलयापीड और चाणूर तथा अन्धकके वधका वर्णन आता है १५ फिर कंसकी मृत्यु और कंसकी स्त्रियोंके विलापकी कथा है, फिर उग्रसेनको अभिषेक और यादवोंको ढाढस दिया गया है १६ फिर बलराम और कृष्णके गुरुकुलसे आनेका वर्णन है, फिर मथुराके घिरने और जरासन्धके लौट कर आनेका वर्णन

न्तारोहणं चापि जरासन्धगतिस्तथा ॥ १८ ॥ गोमन्तस्य गिरे-
र्दाहः करवीरपुरे गतिः । शृगालस्य वधस्तत्र मथुरागमनं तथा १९
यमुनाकर्षणं चैव मथुरापक्रमस्तथा । उपायेन वधः कालयवन-
स्य प्रकीर्तितः ॥ २० ॥ निर्माणं द्वारवत्यास्तु रुक्मिणीहरणं
तथा । विवाहश्चैव रुक्मिण्या रुक्मिणो निधनं तथा ॥ २१ ॥
बलदेवाह्निकं पुण्यं बलमाहात्म्यमेव च । नरकस्य वधः पारिजा-
तस्य हरणं तथा ॥ २२ ॥ द्वारवत्या विशेषेण पुनर्निर्माणकीर्त-
नम् । द्वारकायां प्रवेशश्च सभायां च प्रवेशनम् ॥ २३ ॥ नार-
स्य च वाक्यानि वृष्णिवंशानुकीर्त्तनम् । षट्पुरस्य वधाख्यानं
यकस्य निवर्हणम् ॥ २४ ॥ समुद्रयात्रा कृष्णस्य जलक्रीडा-
तूहलम् । तथा भैमप्रवीराणां मधुपानप्रवर्त्तकम् ॥ २५ ॥ तत-
शालिक्यगान्धर्वसमुदाहरणे हरेः । भानोश्च दुहितुर्भानुमत्या

१७ फिर विकद्रुका भाषण, परशुरामका दर्शन तथा भाषण,
ामन्त पर्वत पर चढना और जरासन्धकी गति है ।१८। फिर
ामन्त पर्वतका दाह, करवीरपुरमें जाना, शृगालका वध और
थुरामें आना (लिखा) है १९ फिर यमुनाको खेंचा गया है
और मथुराका त्याग और उपायसे कालयवनका वध कहा
है २० फिर द्वारकापुरीकी रचना और रुक्मिणीहरण है, फिर
रुक्मिणीका विवाह और रुक्मीका वध हुआ है २१ फिर बल-
देवका दैनिक कृत्य और बलदेवका माहात्म्य नरकका वध और
पारिजातका हरण है २२ फिर द्वारकाकी विशेष रचना है फिर
द्वारकामें और सभामें प्रवेश करनेका वर्णन है २३ फिर नार-
दजीके वाक्य और वृष्णिवंशका कीर्तन आता है फिर षटपुरके
वधकी कथा और मेधककका निवर्हण है,फिर श्रीकृष्णकी समुद्र-
यात्रा और जलक्रीडाका कुतूहल आता है, फिर भीमवंशी वीरों
के मधुपानमें प्रवृत्त होनेकी कथा आती है । २४ । २५ । फिर

हरणकीर्त्तनम् ॥ २६ ॥ शम्बरस्य वधश्चैव धन्योपाख्यानमेव च । वासुदेवस्य माहात्म्यं बाणयुद्धं प्रपञ्चितम् ॥२७॥ भविष्यं पुष्करं चैव प्रपञ्चेनैव कीर्तितम् । वाराहं नारसिंहं च वामनं बहुविस्तरम् ॥२८॥ कैलासयात्रा कृष्णस्य पौण्ड्रकस्य वधस्ततः । हंसस्य डिम्भकस्यैव वधश्चैव प्रकीर्तितः ॥ २९ ॥ पुरत्रयस्य संहार इति वृत्तान्तसंग्रहः । कथितो नृपशार्दूल सर्वपापप्रणाशनः ३० वृत्तान्तं शृणुयाद्यस्तु सायं प्रातः समाहितः । स याति वैष्णवं धाम लब्धकामः कुरूद्वह । धन्यं यशस्यमायुष्यं भक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥ ३१ ॥ छ छ छ छ छ

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि, वृत्तान्तसंग्रहो नाम चतुस्त्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३४ ॥

॥ इति हरिवंशः समाप्तः ॥

छालिक्य गान्धर्वका नमूना और हरिके भानुकी पुत्री भानुमती के हरणकी कथा है २६ फिर शम्बरका वध और धन्योपाख्यान वासुदेवका माहात्म्य और बाणासुरका युद्ध कहा है २७ फिर भविष्य और पुष्करको विस्तारसे कहा है, फिर अतिविस्तृत वराह नरसिंह और वामनावतारका वर्णन आता है २८ फिर श्रीकृष्णकी कैलासयात्रा और पौण्ड्रकका वध आता है, फिर हंस और डिंभकका वध कहा है, फिर त्रिपुरका संहार आयो है, हे नृपशार्दूल ! यह मैंने तुमसे सब पापोंको नष्ट करने वाला वृत्तान्तसंग्रह कह दिया ॥ २९ ॥ ३० ॥ जो पुरुष प्रातःकाल और सायंकालके समय सावधान होकर इस धन देने वाले यश तथा भक्ति और मुक्तिका फल देने वाले वृत्तान्तको सुनता है, हे कुरूद्वह ! वह अपनी कामनाओंको पाता हुआ विष्णुके लोक में निवास करता है ॥ ३१ ॥ एक सौ चौंतीसवाँ अध्याय समाप्त । १३४ । छ छ छ छ छ

* अथ श्रवणफलकथनम् *

जनमेजय उवाच। हरिवंशे पुराणे तु श्रुते मुनिवरोत्तम किं फलं किं च देयं वै तद्ब्रूहि त्वं ममाग्रतः ॥ १ ॥ वैशम्पायन उवाच। हरिवंशे पुराणे तु श्रुते च भरतोत्तम। कायिकं वाचिकं चैव मनसा समुपार्जितम् ॥ २ ॥ तत्सर्वं नाशमायाति हिमं सूर्योदये यथा। अष्टादशपुराणानां श्रवणाद्यत्फलं भवेत् ॥ ३ ॥ तत् फलं समवाप्नोति वैष्णवो नात्र संशयः। श्लोकार्द्धं श्लोकपादं वा हरिवंशसमुद्भवम् ४ शृण्वन्ति श्रद्धया युक्ता वैष्णवं प्राप्नुयुः। जम्बुद्वीपं समाश्रित्य श्रोतारो दुर्लभाः कलौ ॥ ५ ॥ भविष्यन्ति नरा राजन् सत्यं सत्यं वदाम्यहम्। स्त्रीभिश्च पुत्रकामाभिः श्रोतव्यं वैष्णवं यशः ॥ ६ ॥ दक्षिणा चात्र देया निष्कत्रयसुवर्णकम्। वाचकाय यथा शक्त्या यथोक्तं फल-

जनमेजयने कहा, कि—हे श्रेष्ठ मुनियोंमें उत्तम ! हरिवंशपुराण के सुननेका क्या फल है और इसको सुनने पर क्या देना चाहिये, इसको आप मुझसे कहिये १ वैशम्पायनजीने कहा, कि—हे भरतवंशमें उत्तम पुरुष ! हरिवंश पुराणके सुनने पर कायिक वाचिक और मानसिक सब कर्म इस प्रकार नष्ट हो जाता है, जिस प्रकार सूर्योदय होने पर पाला (हिम) विलीन होजाता है, अठारह पुराणोंको सुननेसे जो फल मिलता है, विष्णुभक्त इस पुराणको सुननेसे उस फलको पाता है, जो पुरुष श्रद्धापूर्वक हरिवंशके आधे श्लोक वा आधे पदको भी सुन लेते हैं; वे वैष्णवपदको पाते हैं, हे राजन् ! मैं सत्य कहता हूँ, कि—जम्बूद्वीपमें इसके सुनने वाले दुर्लभ होंगे, पुत्र चाहने वाली स्त्रियोंको भी यह वैष्णव यश सुनना चाहिये ॥२–६॥ यथोक्त फल चाहने वाला पुरुष वाचकको तीन निष्क सोना देवे और

मिच्छता ॥ ७ ॥ सुवर्णशृङ्गीं च कपिलां सवत्सां वस्त्रसंयुताम् । वाचकाय प्रदद्याद्वै आत्मनः श्रेयकांक्षया ॥ ८ ॥ अलंकारं प्रदद्याच्च पाण्योर्वै भरतर्षभ कर्णस्याभरणं दद्याद्यानं च सविशेषतः ॥९॥ भूमिदानं समादद्याद्ब्राह्मणाय नराधिप । भूमिदानसमं दानं न भूतं न भविष्यति ॥ १० ॥ शृणोति श्रावयेद्वापि हरिवंशं तु यो नरः । सर्वथा पापनिर्मुक्तो वैष्णवं पदमाप्नुयात् ॥ ११ ॥ पितॄनुद्धरते सर्वानेकादशसमुद्भवान् । आत्मानं ससुतं चैव स्त्रियं च भरतर्षभ ।१२। दशांशश्चात्र होमो वै कार्यः श्रोत्रा नराधिप । इदं मया तवाग्रे च सर्वं प्रोक्तं नरर्षभ ॥१३॥ यस्य स्मरणमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते । अपुत्रः पुत्रमाप्नोति अधनो धनमाप्नुयात् ॥१४॥ नरमेधाश्वमेधाभ्यां यत्फलं प्राप्यते नरैः । तत्फलं लभते नूनं पुराणश्रवणाद्धरेः ॥ १५ ॥ ब्रह्महा

अपने कल्याणकी इच्छासे यथाशक्ति सुवर्णके सींगों वाली बछडे वाली कपिला गौ वस्त्र उढा कर देय ८ हे भरतर्षभ ! हाथके गहने देय और कानोंके गहने तथा अधिकतर सवारी देय ।९। हे नराधिप ! ब्राह्मणको भूमिका दान देय, भूमिदानकी समान दान न हुआ है और न होगा १० जो पुरुष हरिवंशको सुनता है अथवा सुनाता है वह पापसे मुक्त होकर वैष्णवपदको पाता है । ११ । और अपनी ग्यारह पीढियों तकके पितरोंका उद्धार करता है और पुत्र तथा स्त्रीसहित अपना भी उद्धार कर लेता है १२ हे राजन ! श्रोताको यहाँ दशांश होम करना चाहिये, हे भरतर्षभ ! यह मैंने तुमसे सब कुछ कह दिया ॥ १३ ॥ इसका स्मरणमात्र करनेसे मनुष्य सब पापोंसे छूट जाता है; पुत्रहीनको पुत्र मिलता है और निर्धनको धन मिलता है, मनुष्योंको नरमेध और अश्वमेध यज्ञसे जो फल मिलता है, वह फल हरिके पुराण (हरिवंश) को सुननेसे ही मिल जाता है ।१४।१५

भ्रूणहा गोघ्नः सुरापो गुरुतल्पगः । सकृत्पुराणश्रवणात्पूतो भवति नान्यथा ॥ १६ ॥ इदं मया ते परिकीर्तितं महच्छ्रीकृष्ण-माहात्म्यमपारमद्भुतम् । शृण्वन् पठन्नाशु समाप्नुयात् फलं यच्चापि लोकेषु सुदुर्लभं महत् ॥ १७ ॥ छ छ छ

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासक्यां खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि श्रवणफलकथनं नाम पंचत्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३५ ॥

…हत्या करने वाला भ्रूणहत्या करने वाला गोहत्या करने …ा, शराब पीने वाला और गुरुकी शय्या पर चढ़ने वाला इस पुराणको एक बार सुननेसे ही पवित्र होजाता है । १६ । यह आपसे श्रीकृष्णका बड़ा भारी अपूर्व माहात्म्य कह …ा, इसको सुनने और पढनेसे लोकमें दुर्लभ फल भी प्राप्त …जाता है ॥ १७ ॥ एकसौ पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १३५ ॥

इति श्रीमहाभारतके हरिवंशपर्वका भविष्यपर्व मुरादाबादनिवासी भारद्वाजगोत्र गौड़वंश्य भोलानाथात्मज ऋषिकुमार प० रामस्वरूपात्मज ऋ० कु० प० रामचन्द्र शर्मा द्वारा सम्पादित हिन्दीभाषानुवाद सहित समाप्त

—०—

मिलनेका पता—

सनातनधर्म प्रेस

मुरादाबाद.